कक्षा 12 के लिए
इतिहास की पाठ्यपुस्तक

भारतीय इतिहास के कुछ विषय

भाग 1

विषय सूची

भाग 1

विषय एक 1

ईंटें, मनके तथा अस्थियाँ

हड़प्पा सभ्यता

विषय दो 28

राजा, किसान और नगर

आरंभिक राज्य और अर्थव्यवस्थाएँ

(लगभग 600 ई.पू. से 600 ईसवी)

विषय तीन 53

बंधुत्व, जाति तथा वर्ग

आरंभिक समाज

(लगभग 600 ई.पू. से 600 ईसवी)

विषय चार 82

विचारक, विश्वास और इमारतें

सांस्कृतिक विकास

(लगभग 600 ईसा पूर्व से ईसा संवत् 600 तक)

भाग 2*

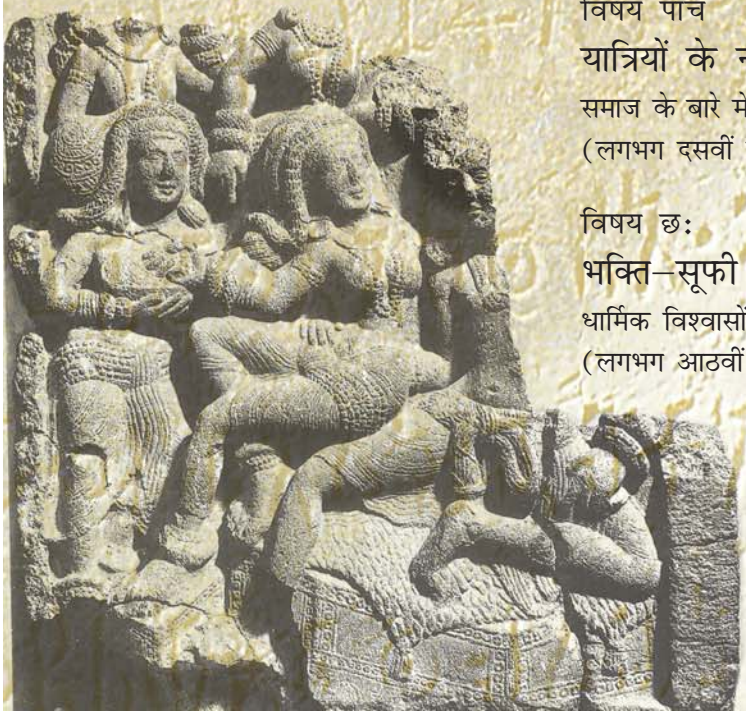

विषय पाँच

यात्रियों के नज़रिए

समाज के बारे में उनकी समझ

(लगभग दसवीं से सत्रहवीं सदी तक)

विषय छः

भक्ति–सूफी परंपराएँ

धार्मिक विश्वासों में बदलाव और श्रद्धा ग्रंथ

(लगभग आठवीं से अठारहवीं सदी तक)

विषय सात
एक साम्राज्य की राजधानी : विजयनगर
(लगभग चौदहवीं से सोलहवीं सदी तक)

विषय आठ
किसान, ज़मींदार और राज्य
कृषि समाज और मुगल साम्राज्य
(लगभग सोलहवीं और सत्रहवीं सदी)

विषय नौ
राजा और विभिन्न वृत्तांत
मुगल दरबार
(लगभग सोलहवीं और सत्रहवीं सदी)

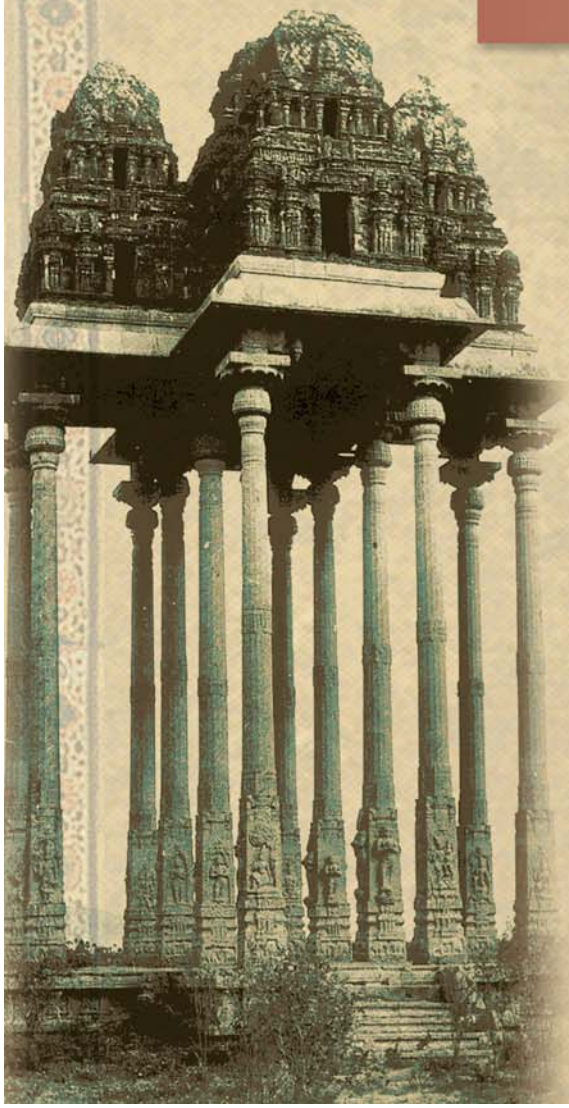

भाग 3*

विषय दस
उपनिवेशवाद और देहात
सरकारी अभिलेखों का अध्ययन

विषय ग्यारह
विद्रोही और राज
1857 का आंदोलन और उसके व्याख्यान

विषय बारह
औपनिवेशिक शहर
नगर-योजना, स्थापत्य

विषय तेरह
महात्मा गांधी और राष्ट्रीय आंदोलन
सविनय अवज्ञा और उससे आगे

विषय चौदह
विभाजन को समझना
राजनीति, स्मृति, अनुभव

विषय पंद्रह
संविधान का निर्माण
एक नए युग की शुरुआत

विषय एक

ईंटें, मनके तथा अस्थियाँ
हड़प्पा सभ्यता

हड़प्पाई मुहर (चित्र 1.1) संभवत: हड़प्पा अथवा सिंधु घाटी सभ्यता की सबसे विशिष्ट पुरावस्तु है। सेलखड़ी नामक पत्थर से बनाई गई इन मुहरों पर सामान्य रूप से जानवरों के चित्र तथा एक ऐसी लिपि के चिह्न उत्कीर्णित हैं जिन्हें अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। फिर भी हमें इस क्षेत्र में उस समय बसे लोगों के जीवन के विषय में उनके द्वारा पीछे छोड़ी गई पुरावस्तुओं–जैसे उनके आवासों, मृदभाण्डों, आभूषणों, औज़ारों तथा मुहरों–दूसरे शब्दों में पुरातात्विक साक्ष्यों के माध्यम से बहुत जानकारी मिलती है। अब हम देखेंगे कि हम हड़प्पा सभ्यता के विषय में *क्या* और *कैसे* जानते हैं। हम यह अन्वेषण करेंगे कि पुरातात्विक साक्ष्यों की व्याख्या *कैसे* की जाती है और इन व्याख्याओं में *कैसे* कभी-कभी बदलाव आ जाता है। निश्चित रूप से इस सभ्यता के कई पहलू आज भी हमारी जानकारी से परे हैं और हो सकता है, हमेशा ही रहें।

चित्र 1.1
एक हड़प्पाई मुहर

पारिभाषिक शब्द, स्थान तथा काल

सिंधु घाटी सभ्यता को *हड़प्पा संस्कृति* भी कहा जाता है। पुरातत्वविद 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग पुरावस्तुओं के ऐसे समूह के लिए करते हैं जो एक विशिष्ट शैली के होते हैं और सामान्यतया एक साथ, एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र तथा काल-खंड से संबद्ध पाए जाते हैं। हड़प्पा सभ्यता के संदर्भ में इन विशिष्ट पुरावस्तुओं में मुहरें, मनके, बाट, पत्थर के फलक (चित्र 1.2) और पकी हुई ईंटें सम्मिलित हैं। ये वस्तुएँ अफ़गानिस्तान, जम्मू, बलूचिस्तान (पाकिस्तान) तथा गुजरात जैसे क्षेत्रों से मिली हैं जो एक दूसरे से लंबी दूरी पर स्थित हैं (मानचित्र 1)।

इस सभ्यता का नामकरण, हड़प्पा नामक स्थान, जहाँ यह संस्कृति पहली बार खोजी गई थी (पृष्ठ 6), के नाम पर किया गया है। इसका काल निर्धारण लगभग 2600 और 1900 ईसा पूर्व के बीच किया गया है। इस क्षेत्र में इस सभ्यता से पहले और बाद में भी संस्कृतियाँ अस्तित्व में थीं जिन्हें क्रमश: आरंभिक तथा परवर्ती हड़प्पा कहा जाता है। इन संस्कृतियों से हड़प्पा सभ्यता को अलग करने के लिए कभी-कभी इसे विकसित हड़प्पा संस्कृति भी कहा जाता है।

चित्र 1.2
मनके, बाट तथा फलक

अंग्रेज़ी में बी.सी. (हिंदी में ई.पू.) का तात्पर्य 'बिफोर क्राइस्ट' (ईसा पूर्व) से है। कभी-कभी आप तिथियों से पहले ए.डी. (हिंदी में ई.) लिखा पाते हैं। यह 'एनो डॉमिनी' नामक दो लैटिन शब्दों से बना है तथा इसका तात्पर्य ईसा मसीह के जन्म के वर्ष से है। आजकल ए. डी. की जगह सी.ई. तथा बी.सी. की जगह बी.सी.ई. का प्रयोग होता है। सी.ई. अक्षरों का प्रयोग 'कॉमन एरा' तथा बी.सी.ई. का 'बिफ़ोर कॉमन एरा' के लिए होता है। हम इन शब्दों का प्रयोग इसलिए करते हैं क्योंकि विश्व के अधिकांश देशों में अब 'कॉमन एरा' का प्रयोग सामान्य हो गया है। कभी-कभी अंग्रेज़ी के बी.पी. अक्षरों का प्रयोग होता है, जिसका तात्पर्य 'बिफ़ोर प्रेजेंट' है। इस पुस्तक में हमने बी.सी.ई. के लिए ई.पू., सी.ई. के लिए ई. तथा बी. पी. के लिए वर्तमान से पहले शब्दों का प्रयोग किया है।

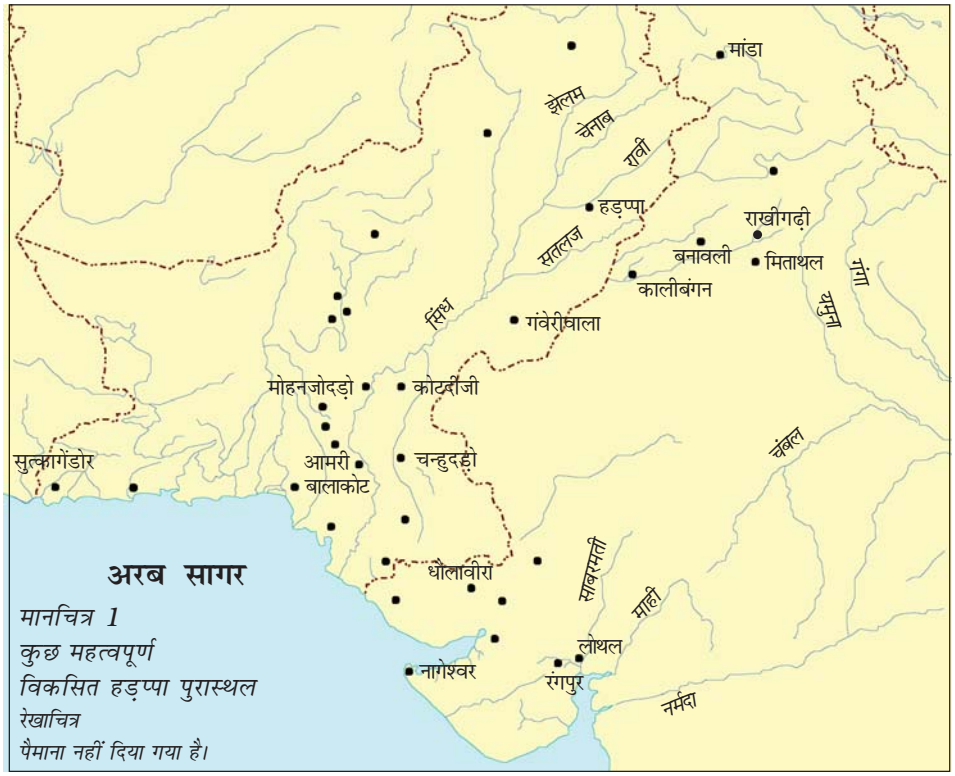

मानचित्र 1
कुछ महत्वपूर्ण विकसित हड़प्पा पुरास्थल
रेखाचित्र
पैमाना नहीं दिया गया है।

आरंभिक तथा विकसित हड़प्पा संस्कृतियाँ

सिंध और चोलिस्तान (थार रेगिस्तान से लगा हुआ पाकिस्तान का रेगिस्तानी क्षेत्र) में बस्तियों की संख्या के संबंध में ये आँकड़े देखिए।

	सिंध	चोलिस्तान
बस्तियों की कुल संख्या	106	239
आरंभिक हड़प्पा स्थल	52	37
विकसित हड़प्पा स्थल	65	136
नए स्थलों पर विकसित हड़प्पा बस्तियाँ	43	132
त्याग दिए गए आरंभिक हड़प्पा स्थल	29	33

1. आरंभ

इस क्षेत्र में विकसित हड़प्पा से पहले भी कई संस्कृतियाँ अस्तित्व में थीं। ये संस्कृतियाँ अपनी विशिष्ट मृदभाण्ड शैली से संबद्ध थीं तथा इनके संदर्भ में हमें कृषि, पशुपालन तथा कुछ शिल्पकारी के साक्ष्य भी मिलते हैं। बस्तियाँ आमतौर पर छोटी होती थीं और इनमें बड़े आकार की संरचनाएँ लगभग न के बराबर थीं। कुछ स्थलों पर बड़े पैमाने पर इलाकों में जलाए जाने के संकेतों से तथा कुछ अन्य स्थलों के त्याग दिए जाने से ऐसा प्रतीत होता है कि आरंभिक हड़प्पा तथा हड़प्पा सभ्यता के बीच क्रम-भंग था।

2. निर्वाह के तरीके

आपने मानचित्रों (1 तथा 2) में देखा होगा कि विकसित हड़प्पा संस्कृति कुछ ऐसे स्थानों पर पनपी जहाँ पहले आरंभिक हड़प्पा संस्कृतियाँ अस्तित्व में थीं। इन संस्कृतियों में कई तत्व जिनमें निर्वाह के तरीके शामिल हैं, समान थे। हड़प्पा सभ्यता के निवासी कई प्रकार के पेड़-पौधों से प्राप्त उत्पाद और जानवरों जिनमें मछली भी शामिल है, से प्राप्त भोजन करते थे। जले अनाज के दानों तथा बीजों की खोज से पुरातत्वविद आहार संबंधी आदतों के विषय में जानकारी प्राप्त करने में सफल हो पाए हैं। इनका अध्ययन पुरा-वनस्पतिज्ञ करते हैं जो प्राचीन वनस्पति के अध्ययन

के विशेषज्ञ होते हैं। हड़प्पा स्थलों से मिले अनाज के दानों में गेहूँ, जौ, दाल, सफ़ेद चना तथा तिल शामिल हैं। बाजरे के दाने गुजरात के स्थलों से प्राप्त हुए थे। चावल के दाने अपेक्षाकृत कम पाए गए हैं।

हड़प्पा स्थलों से मिली जानवरों की हड्डियों में मवेशियों, भेड़, बकरी, भैंस तथा सूअर की हड्डियाँ शामिल हैं। पुरा-प्राणिविज्ञानियों अथवा जीव-पुरातत्वविदों द्वारा किए गए अध्ययनों से संकेत मिलता है कि ये सभी जानवर पालतू थे। जंगली प्रजातियों जैसे वराह (सूअर), हिरण तथा घड़ियाल की हड्डियाँ भी मिली हैं। हम यह नहीं जान पाए हैं कि हड़प्पा-निवासी स्वयं इन जानवरों का शिकार करते थे अथवा अन्य आखेटक-समुदायों से इनका मांस प्राप्त करते थे। मछली तथा पक्षियों की हड्डियाँ भी मिली हैं।

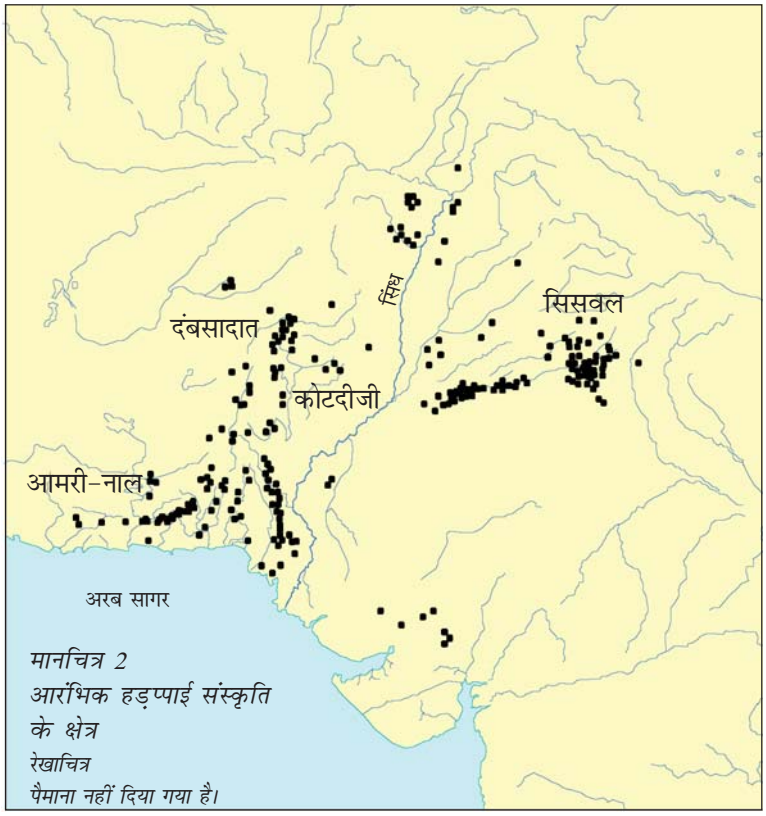

मानचित्र 2
आरंभिक हड़प्पाई संस्कृति के क्षेत्र
रेखाचित्र
पैमाना नहीं दिया गया है।

2.1 कृषि प्रौद्योगिकी

हालाँकि अनाज के दानों से कृषि के संकेत मिलते हैं पर वास्तविक कृषि विधियों के विषय में स्पष्ट जानकारी मिलना कठिन है। क्या जुते हुए खेतों में बीजों का छिड़काव किया जाता था? मुहरों पर किए गए रेखांकन तथा मृण्मूर्तियाँ यह इंगित करती हैं कि वृषभ के विषय में जानकारी थी और इस आधार पर पुरातत्वविद यह मानते हैं कि खेत जोतने के लिए बैलों का प्रयोग होता था। साथ ही चोलिस्तान के कई स्थलों और बनावली (हरियाणा) से मिट्टी से बने हल के प्रतिरूप मिले हैं। इसके अतिरिक्त पुरातत्वविदों को कालीबंगन (राजस्थान) नामक स्थान पर जुते हुए खेत का साक्ष्य मिला है जो आरंभिक हड़प्पा स्तरों से संबद्ध है। इस खेत में हल रेखाओं के दो समूह एक-दूसरे को समकोण पर काटते हुए विद्यमान थे जो दर्शाते हैं कि एक साथ दो अलग-अलग फ़सलें उगाई जाती थीं।

पुरातत्वविदों ने फ़सलों की कटाई के लिए प्रयुक्त औज़ारों को पहचानने का प्रयास भी किया है। क्या हड़प्पा सभ्यता के लोग लकड़ी के हत्थों में बिठाए गए पत्थर के फलकों का प्रयोग करते थे या फिर वे धातु के औज़ारों का प्रयोग करते थे?

अधिकांश हड़प्पा स्थल अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में स्थित हैं जहाँ संभवत: कृषि के लिए सिंचाई की आवश्यकता पड़ती होगी। अफ़गानिस्तान में शोर्तुघई नामक हड़प्पा स्थल से नहरों के कुछ अवशेष मिले हैं, परंतु पंजाब और सिंध में नहीं। ऐसा संभव है कि प्राचीन नहरें बहुत पहले ही गाद से भर गई थीं। ऐसा भी हो सकता है कि कुओं से प्राप्त पानी का

चित्र 1.3
पकी मिट्टी से बना वृषभ

➲ चर्चा कीजिए...

मानचित्र 1 तथा 2 की आपस में तुलना कीजिए तथा इनमें बस्तियों के वितरण में समानताओं तथा असमानताओं की सूची बनाइए।

चित्र 1.4
धातु के औज़ार

➲ क्या आपको लगता है कि इन औज़ारों का प्रयोग फसल कटाई के लिए किया जाता होगा?

चित्र 1.5
धौलावीरा से मिला जलाशय। इसके राजगिरी-कार्य पर ध्यान दीजिए।

➲ चर्चा कीजिए...

आहार संबंधी आदतों को जानने के लिए पुरातत्वविद किन साक्ष्यों का इस्तेमाल करते हैं।

प्रयोग सिंचाई के लिए किया जाता हो। इसके अतिरिक्त धौलावीरा (गुजरात) में मिले जलाशयों का प्रयोग संभवत: कृषि के लिए जल संचयन हेतु किया जाता था।

स्रोत 1

पुरावस्तुओं की पहचान कैसे की जाती है

भोजन तैयार करने की प्रक्रिया में अनाज पीसने के यंत्र तथा उन्हें आपस में मिलाने, मिश्रण करने तथा पकाने के लिए बरतनों की आवश्यकता थी। इन सभी को पत्थर, धातु तथा मिट्टी से बनाया जाता था। यहाँ एक महत्वपूर्ण हड़प्पा स्थल मोहनजोदड़ो में हुए उत्खननों पर सबसे आरंभिक रिपोर्टों में से एक से कुछ उद्धरण दिए जा रहे हैं:

अवतल चक्कियाँ ... बड़ी संख्या में मिली हैं ... और ऐसा प्रतीत होता है कि अनाज पीसने के लिए प्रयुक्त ये एकमात्र साधन थीं। साधारणत: ये चक्कियाँ स्थूलत: कठोर, कंकरीले, अग्निज अथवा बलुआ पत्थर से निर्मित थीं और आमतौर पर इनसे अत्यधिक प्रयोग के संकेत मिलते हैं। चूँकि इन चक्कियों के तल सामान्यतया उत्तल हैं, निश्चित रूप से इन्हें ज़मीन में अथवा मिट्टी में जमा कर रखा जाता होगा जिससे इन्हें हिलने से रोका जा सके। दो मुख्य प्रकार की चक्कियाँ मिली हैं। एक वे हैं जिन पर एक दूसरा छोटा पत्थर आगे-पीछे चलाया जाता था, जिससे निचला पत्थर खोखला हो गया था, तथा दूसरी वे हैं जिनका प्रयोग संभवत: केवल सालन या तरी बनाने के लिए जड़ी-बूटियों तथा मसालों को कूटने के लिए किया जाता था। इन दूसरे प्रकार के पत्थरों को हमारे श्रमिकों द्वारा 'सालन पत्थर' का नाम दिया गया है तथा हमारे बावर्ची ने एक यही पत्थर रसोई में प्रयोग के लिए संग्रहालय से उधार माँगा है।

अर्नेस्ट मैके, *फर्दर एक्सकैवेशन्स एट मोहनजोदड़ो*, 1937 से उद्धृत

चित्र 1.6
अवतल चक्की

➲ पुरातत्वविद वर्तमान समय की तुलनाओं से यह समझने का प्रयास करते हैं कि प्राचीन पुरावस्तुएँ किस प्रयोग में लायी जाती थीं। मैके खोजी गई वस्तु की तुलना आजकल की चक्कियों से कर रहे थे? क्या यह एक उपयोगी नीति है?

3. मोहनजोदड़ो

एक नियोजित शहरी केंद्र

संभवतः हड़प्पा सभ्यता का सबसे अनूठा पहलू शहरी केंद्रों का विकास था। आइए ऐसे ही एक केंद्र, मोहनजोदड़ो को और सूक्ष्मता से देखते हैं। हालाँकि मोहनजोदड़ो सबसे प्रसिद्ध पुरास्थल है, सबसे पहले खोजा गया स्थल हड़प्पा था।

बस्ती दो भागों में विभाजित है, एक छोटा लेकिन ऊँचाई पर बनाया गया और दूसरा कहीं अधिक बड़ा लेकिन नीचे बनाया गया। पुरातत्वविदों

चित्र 1.7
मोहनजोदड़ो का नक्शा

➲ निचला शहर दुर्ग से किस प्रकार भिन्न है?

नक्शे पर रोमन लिपि के अक्षर उन विविध पुराविदों के नामों का संकेत करते हैं जिन्होंने मोहनजोदड़ो के विविध क्षेत्रों में खुदाई करवाई।

हड़प्पा की दुर्दशा

हालाँकि हड़प्पा सबसे पहले खोजा गया स्थल था, इसे ईंट चुराने वालों ने बुरी तरह से नष्ट कर दिया था। 1875 में ही भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के पहले जनरल अलेक्ज़ैंडर कनिंघम, जिन्हें सामान्यत: भारतीय पुरातत्व का जनक भी कहा जाता है, ने लिखा था कि प्राचीन स्थल से ले जाई गई ईंटों की मात्रा "लगभग 100 मील" लंबी लाहौर तथा मुल्तान के बीच की रेल-पटरी के लिए ईंटें बिछाने के लिए पर्याप्त थी। इस प्रकार इस स्थल की कई प्राचीन संरचनाएँ नष्ट कर दी गईं। इसके विपरीत मोहनजोदड़ो कहीं बेहतर संरक्षित था।

ने इन्हें क्रमश: दुर्ग और निचला शहर का नाम दिया है। दुर्ग की ऊँचाई का कारण यह था कि यहाँ की संरचनाएँ कच्ची ईंटों के चबूतरे पर बनी थीं। दुर्ग को दीवार से घेरा गया था जिसका अर्थ है कि इसे निचले शहर से अलग किया गया था।

निचला शहर भी दीवार से घेरा गया था। इसके अतिरिक्त कई भवनों को ऊँचे चबूतरों पर बनाया गया था जो नींव का कार्य करते थे। अनुमान लगाया गया है कि यदि एक श्रमिक प्रतिदिन एक घनीय मीटर मिट्टी ढोता होगा, तो मात्र आधारों को बनाने के लिए ही चालीस लाख श्रम-दिवसों, अर्थात् बहुत बड़े पैमाने पर श्रम की आवश्यकता पड़ी होगी।

अब कुछ और देखिए। एक बार चबूतरों के यथास्थान बनने के बाद शहर का सारा भवन-निर्माण कार्य चबूतरों पर एक निश्चित क्षेत्र तक सीमित था। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि पहले बस्ती का नियोजन किया गया था और फिर उसके अनुसार कार्यान्वयन। नियोजन के अन्य लक्षणों में ईंटें शामिल हैं जो भले ही धूप में सुखाकर अथवा भट्ठी में पकाकर बनाई गई हों, एक निश्चित अनुपात की होती थीं, जहाँ लंबाई और चौड़ाई, ऊँचाई की क्रमश: चार गुनी और दोगुनी होती थी। इस प्रकार की ईंटें सभी हड़प्पा बस्तियों में प्रयोग में लाई गई थीं।

3.1 नालों का निर्माण

हड़प्पा शहरों की सबसे अनूठी विशिष्टताओं में से एक ध्यानपूर्वक नियोजित जल निकास प्रणाली थी। यदि आप निचले शहर के नक्शे को देखें तो आप यह जान पाएँगे कि सड़कों तथा गलियों को लगभग एक 'ग्रिड' पद्धति में बनाया गया था और ये एक दूसरे को समकोण पर काटती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले नालियों के साथ गलियों को बनाया गया था और फिर उनके अगल-बगल आवासों का निर्माण किया गया था। यदि घरों के गंदे पानी को गलियों की नालियों से जोड़ना था तो प्रत्येक घर की कम से कम एक दीवार का गली से सटा होना आवश्यक था।

चित्र 1.8
मोहनजोदड़ो की एक नाली और इसके विशाल प्रवेशद्वार को देखिए

दुर्ग

हालाँकि अधिकांश हड़प्पा बस्तियों में एक छोटा ऊँचा पश्चिमी तथा एक बड़ा लेकिन निचला पूर्वी भाग है, पर इस नियोजन में विविधताएँ भी हैं। धौलावीरा तथा लोथल (गुजरात) जैसे स्थलों पर पूरी बस्ती किलेबंद थी, तथा शहर के कई हिस्से भी दीवारों से घेर कर अलग किए गए थे। लोथल में दुर्ग दीवार से घिरा तो नहीं था पर कुछ ऊँचाई पर बनाया गया था।

3.2 गृह स्थापत्य

मोहनजोदड़ो का निचला शहर आवासीय भवनों के उदाहरण प्रस्तुत करता है। इनमें से कई एक आँगन पर केंद्रित थे जिसके चारों ओर कमरे बने थे। संभवत: आँगन, खाना पकाने और कताई करने जैसी गतिविधियों का केंद्र था, खास तौर से गर्म और शुष्क मौसम में। यहाँ का एक अन्य रोचक पहलू लोगों द्वारा अपनी एकांतता को दिया जाने वाला महत्त्व था: भूमि तल पर बनी दीवारों में खिड़कियाँ नहीं हैं। इसके अतिरिक्त मुख्य द्वार से आंतरिक भाग अथवा आँगन का सीधा अवलोकन नहीं होता है।

हर घर का ईंटों के फ़र्श से बना अपना एक स्नानघर होता था जिसकी नालियाँ दीवार के माध्यम से सड़क की नालियों से जुड़ी हुई थीं। कुछ घरों में दूसरे तल या छत पर जाने हेतु बनाई गई सीढ़ियों के अवशेष मिले थे। कई आवासों में कुएँ थे जो अधिकांशत: एक ऐसे कक्ष में बनाए गए थे जिसमें बाहर से आया जा सकता था और जिनका प्रयोग संभवत: राहगीरों द्वारा किया जाता था। विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि मोहनजोदड़ो में कुओं की कुल संख्या लगभग 700 थी।

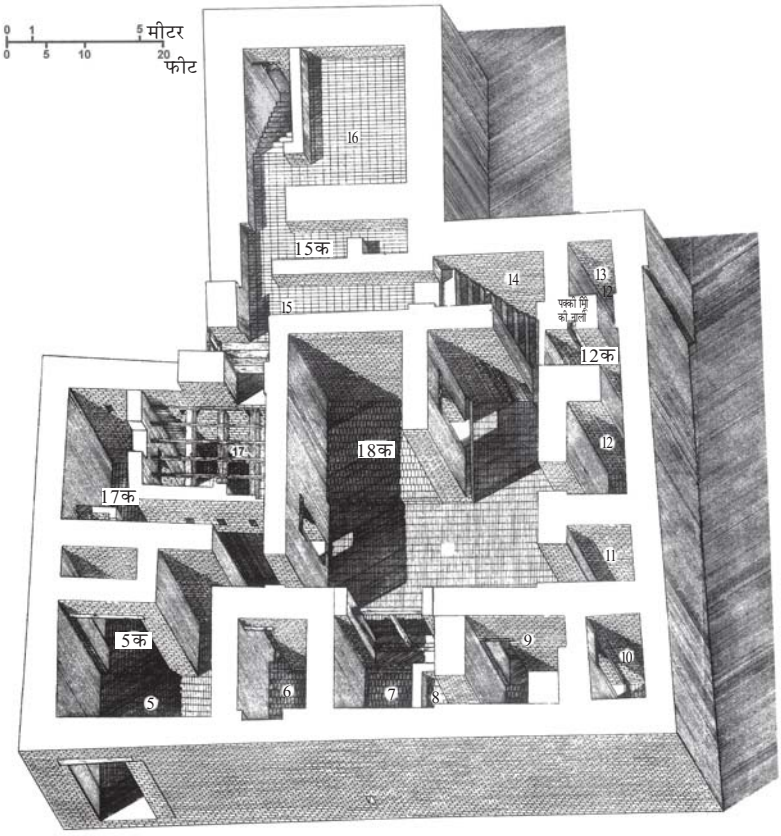

➲ आँगन कहाँ है? दो सीढ़ियाँ कहाँ हैं? आवास का प्रवेशद्वार कैसा है?

चित्र 1.9
यह मोहनजोदड़ो में एक बड़े आवास का सममितीय आरेखण है। कमरा न. 6 में एक कुआँ था।

स्रोत 2

अब तक खोजी गई प्राचीनतम प्रणाली

नालियों के विषय में मैके लिखते हैं: ''निश्चित रूप से यह अब तक खोजी गई सर्वथा संपूर्ण प्राचीन प्रणाली है।'' हर आवास गली की नालियों से जोड़ा गया था। मुख्य नाले गारे में जमाई गई ईंटों से बने थे और इन्हें ऐसी ईंटों से ढँका गया था जिन्हें सफ़ाई के लिए हटाया जा सके। कुछ स्थानों पर ढँकने के लिए चूना पत्थर की पट्टिका का प्रयोग किया गया था। घरों की नालियाँ पहले एक हौदी या मलकुंड में खाली होती थीं जिसमें ठोस पदार्थ जमा हो जाता था और गंदा पानी गली की नालियों में बह जाता था। बहुत लंबे नालों में कुछ अंतरालों पर सफ़ाई के लिए हौदियाँ बनाई गई थीं। यह पुरातत्व का एक अजूबा ही है कि ''मलबे, मुख्यत: रेत के छोटे-छोटे ढेर सामान्यत: निकासी के नालों के अगल-बगल पड़े मिले हैं जो दर्शाते हैं..... कि नालों की सफ़ाई के बाद कचरे को हमेशा हटाया नहीं जाता था।''

अर्नेस्ट मैके, *अर्ली इंडस सिविलाईज़ेशन,* 1948

जल निकास प्रणालियाँ केवल बड़े शहरों तक ही सीमित नहीं थीं बल्कि ये कई छोटी बस्तियों में भी मिली थीं। उदाहरण के लिए, लोथल में आवासों के निर्माण के लिए जहाँ कच्ची ईंटों का प्रयोग हुआ था, वहीं नालियाँ पकी ईंटों से बनाई गई थीं।

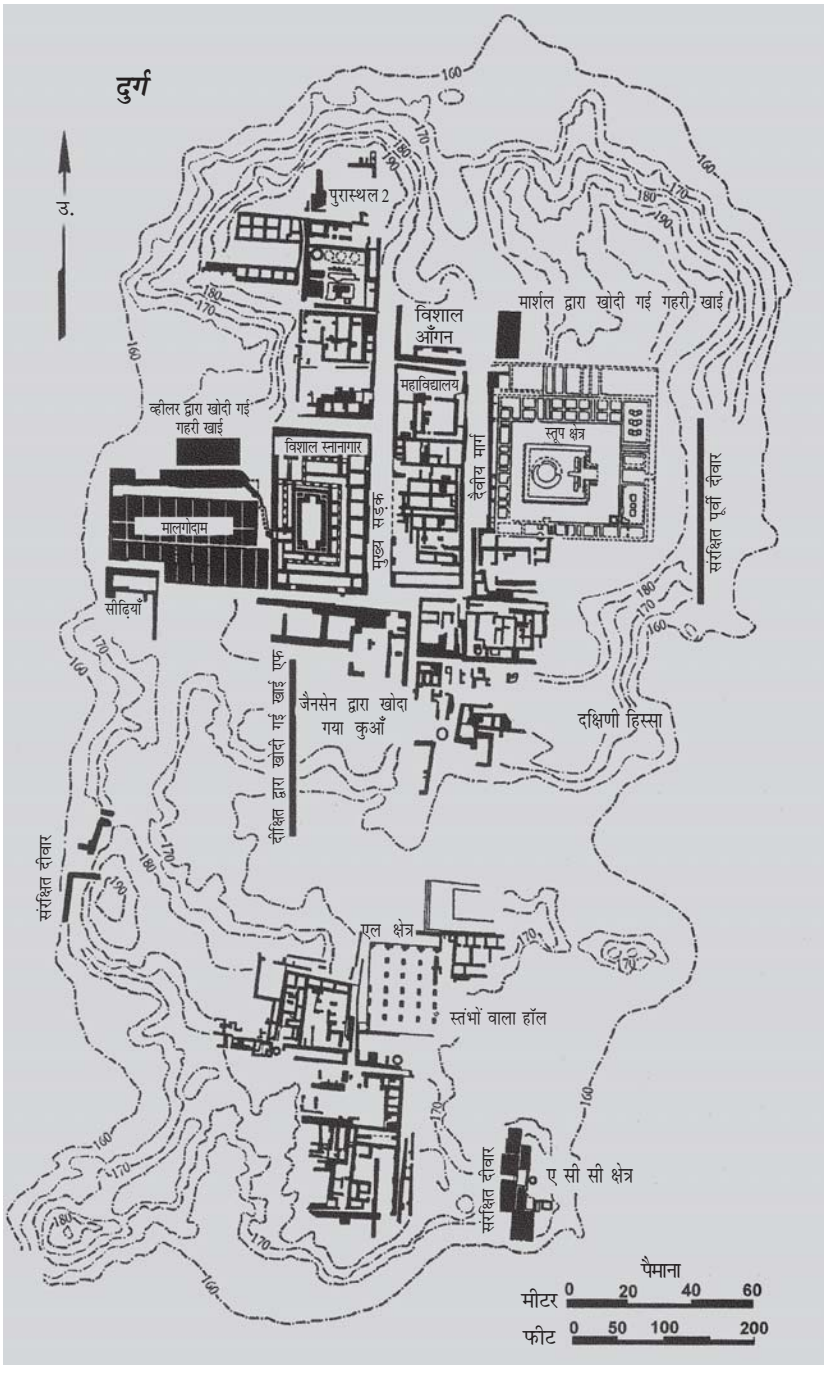

चित्र 1.10
दुर्ग का नक्शा

3.3 दुर्ग

दुर्ग पर हमें ऐसी संरचनाओं के साक्ष्य मिलते हैं जिनका प्रयोग संभवत: विशिष्ट सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए किया जाता था। इनमें एक मालगोदाम–एक ऐसी विशाल संरचना है जिसके ईंटों से बने केवल निचले हिस्से शेष हैं, जबकि ऊपरी हिस्से जो संभवत: लकड़ी से बने थे, बहुत पहले ही नष्ट हो गए थे–और विशाल स्नानागार सम्मिलित हैं।

विशाल स्नानागार आँगन में बना एक आयताकार जलाशय है जो चारों ओर से एक गलियारे से घिरा हुआ है। जलाशय के तल तक जाने के लिए इसके उत्तरी और दक्षिणी भाग में दो सीढ़ियाँ बनी थीं। जलाशय के किनारों पर ईंटों को जमाकर तथा जिप्सम के गारे के प्रयोग से इसे जलबद्ध किया गया था। इसके तीनों ओर कक्ष बने हुए थे जिनमें से एक में एक बड़ा कुआँ था। जलाशय से पानी एक बड़े नाले में बह जाता था। इसके उत्तर में एक गली के दूसरी ओर एक अपेक्षाकृत छोटी संरचना थी जिसमें आठ स्नानघर बनाए गए थे। एक गलियारे के दोनों ओर चार-चार स्नानघर बने थे। प्रत्येक स्नानघर से नालियाँ, गलियारे के साथ-साथ बने एक नाले में मिलती थीं। इस संरचना का अनोखापन तथा दुर्ग क्षेत्र में कई विशिष्ट संरचनाओं के साथ इनके मिलने से इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि इसका प्रयोग किसी प्रकार के विशेष आनुष्ठानिक स्नान के लिए किया जाता था।

➲ चर्चा कीजिए...

मोहनजोदड़ो के कौन से वास्तुकला संबंधी लक्षण नियोजन की ओर संकेत करते हैं?

➲ क्या दुर्ग पर मालगोदाम तथा स्नानागार के अतिरिक्त अन्य संरचनाएँ भी हैं?

4. सामाजिक भिन्नताओं का अवलोकन

4.1 शवाधान

पुरातत्वविद यह जानने के लिए कि क्या किसी संस्कृति विशेष में रहने वाले लोगों के बीच सामाजिक तथा आर्थिक भिन्नताएँ थीं, सामान्यत: कई विधियों का प्रयोग करते हैं। इन्हीं विधियों में से एक शवाधानों का अध्ययन है। आप संभवत: मिस्र के विशाल पिरामिडों जिनमें से कुछ हड़प्पा सभ्यता के समकालीन थे, से परिचित हैं। इनमें से कई पिरामिड राजकीय शवाधान थे जहाँ बहुत बड़ी मात्रा में धन-संपत्ति दफ़नाई गई थी।

हड़प्पा स्थलों से मिले शवाधानों में आमतौर पर मृतकों को गर्तों में दफ़नाया गया था। कभी-कभी शवाधान गर्त की बनावट एक-दूसरे से भिन्न होती थी—कुछ स्थानों पर गर्त की सतहों पर ईंटों की चिनाई की गई थी। क्या ये विविधताएँ सामाजिक भिन्नताओं की ओर संकेत करती हैं? कहना कठिन है।

कुछ कब्रों में मृदभाण्ड तथा आभूषण मिले हैं जो संभवत: एक ऐसी मान्यता की ओर संकेत करते हैं जिसके अनुसार इन वस्तुओं का मृत्योपरांत प्रयोग किया जा सकता था। पुरुषों और महिलाओं, दोनों के शवाधानों से आभूषण मिले हैं। 1980 के दशक के मध्य में हड़प्पा के कब्रिस्तान में हुए उत्खननों में एक पुरुष की खोपड़ी के समीप शंख के तीन छल्लों, जैस्पर (एक प्रकार का उपरत्न) के मनके तथा सैकड़ों की संख्या में सूक्ष्म मनकों से बना एक आभूषण मिला था। कहीं-कहीं पर मृतकों को ताँबे के दर्पणों के साथ दफ़नाया गया था। परंतु कुल मिलाकर ऐसा लगता है कि हड़प्पा सभ्यता के निवासियों का मृतकों के साथ बहुमूल्य वस्तुएँ दफ़नाने में विश्वास नहीं था।

चित्र 1.11
एक ताँबे का दर्पण

4.2 'विलासिता' की वस्तुओं की खोज

सामाजिक भिन्नता को पहचानने की एक अन्य विधि है ऐसी पुरावस्तुओं का अध्ययन जिन्हें पुरातत्वविद मोटे तौर पर, उपयोगी तथा विलास की वस्तुओं में वर्गीकृत करते हैं। पहले वर्ग में रोज़मर्रा के उपयोग की वस्तुएँ सम्मिलित हैं जिन्हें पत्थर अथवा मिट्टी जैसे सामान्य पदार्थों से आसानी से बनाया जा सकता है। इनमें चक्कियाँ, मृदभाण्ड, सूइयाँ, झाँवा आदि शामिल हैं। ये वस्तुएँ सामान्य रूप से बस्तियों में सर्वत्र पाई गई हैं। पुरातत्वविद उन वस्तुओं को कीमती मानते हैं जो दुर्लभ हों अथवा मँहगी, स्थानीय स्तर पर अनुपलब्ध पदार्थों से अथवा जटिल तकनीकों से बनी हों। इस प्रकार फ़यॉन्स (घिसी हुई रेत अथवा बालू तथा रंग और चिपचिपे पदार्थ के मिश्रण को पका कर बनाया गया पदार्थ) के छोटे पात्र संभवत: कीमती माने जाते थे क्योंकि इन्हें बनाना कठिन था।

चित्र 1.12
फ़यॉन्स से बना एक पात्र

संचय शब्द, लोगों द्वारा सावधानीपूर्वक अधिकांशत: पात्रों, जैसे कि घड़ों में रखी गई वस्तुओं के लिए प्रयुक्त किया जाता है। ऐसे संचय आभूषणों के हो सकते थे अथवा धातुकर्मियों द्वारा पुन: प्रयोग के लिए सँभाल कर रखी गई धातुओं के। यदि किसी कारणवश मूल स्वामियों ने इन्हें पुन: प्राप्त नहीं किया तो ये तब तक अपने स्थान पर ही रहते हैं जब तक कोई पुरातत्वविद इन्हें खोज नहीं निकालता।

➲ चर्चा कीजिए...

आधुनिक समय में प्रचलित मृतकों के अंतिम संस्कार की विधियों पर चर्चा कीजिए। ये किस सीमा तक सामाजिक भिन्नताओं को परिलक्षित करती हैं?

स्थिति तब और जटिल हो जाती है जब हमें रोज़मर्रा के प्रयोग की वस्तुएँ जैसे तकलियाँ, जो फ़यॉन्स जैसे दुर्लभ पदार्थ से बनी, मिलती हैं। क्या हम इनका वर्गीकरण उपयोगी या फिर विलास की वस्तुओं के रूप में करें?

यदि हम ऐसी पुरावस्तुओं के वितरण का अध्ययन करें तो हम पाते हैं कि मँहगे पदार्थों से बनी दुर्लभ वस्तुएँ सामान्यत: मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसी बड़ी बस्तियों में केंद्रित हैं और छोटी बस्तियों में ये विरले ही मिलती हैं। उदाहरण के लिए, फ़यॉन्स से बने लघुपात्र जो संभवत: सुगंधित द्रव्यों के पात्रों के रूप में प्रयुक्त होते थे, अधिकांशत: मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से मिले हैं और कालीबंगन जैसी छोटी बस्तियों से बिलकुल नहीं। सोना भी दुर्लभ तथा संभवत: आज की तरह कीमती था–हड़प्पा स्थलों से मिले सभी स्वर्णाभूषण संचयों से प्राप्त हुए थे।

5. शिल्प-उत्पादन के विषय में जानकारी

मानचित्र 1 में चन्हुदड़ो को चिह्नित कीजिए। यह मोहनजोदड़ो (125 हेक्टेयर) की तुलना में एक बहुत छोटी (7 हेक्टेयर) बस्ती है जो लगभग पूरी तरह से शिल्प-उत्पादन में संलग्न थी। शिल्प कार्यों में मनके बनाना, शंख की कटाई, धातुकर्म, मुहर निर्माण तथा बाट बनाना सम्मिलित थे।

मनकों के निर्माण में प्रयुक्त पदार्थों की विविधता उल्लेखनीय है: कार्नीलियन (सुंदर लाल रंग का), जैस्पर, स्फटिक, क्वार्ट्ज़ तथा सेलखड़ी जैसे पत्थर; ताँबा, काँसा तथा सोने जैसी धातुएँ; तथा शंख, फ़यॉन्स और पकी मिट्टी, सभी का प्रयोग मनके बनाने में होता था। कुछ मनके दो या उससे अधिक पत्थरों को आपस में जोड़कर बनाए जाते थे और कुछ सोने के टोप वाले पत्थर के होते थे। इनके कई आकार होते थे; जैसे–चक्राकार, बेलनाकार, गोलाकार, ढोलाकार तथा खंडित। कुछ

चित्र 1.13
औज़ार तथा मनके

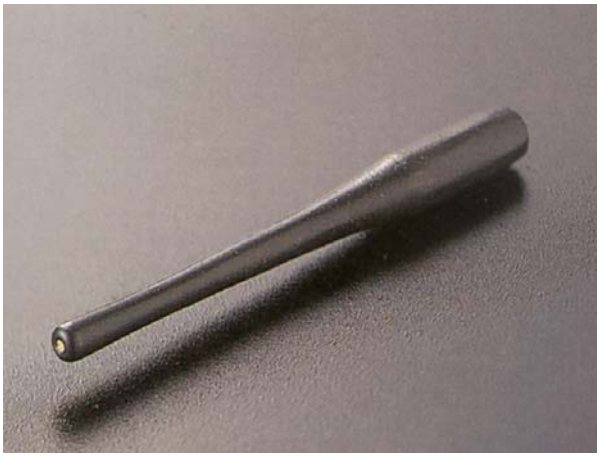

को उत्कीर्णन या चित्रकारी के माध्यम से सजाया गया था और कुछ पर रेखाचित्र उकेरे गए थे।

मनके बनाने की तकनीकों में प्रयुक्त पदार्थ के अनुसार भिन्नताएँ थीं। सेलखड़ी जो एक बहुत मुलायम पत्थर है, पर आसानी से कार्य हो जाता था। कुछ मनके सेलखड़ी चूर्ण के लेप को साँचे में ढाल कर तैयार किए जाते थे। इससे ठोस पत्थरों से बनने वाले केवल ज्यामितीय आकारों के विपरीत कई विविध आकारों के मनके बनाए जा सकते थे। सेलखड़ी के सूक्ष्म मनके कैसे बनाए जाते थे, यह प्रश्न प्राचीन तकनीकों का अध्ययन करने वाले पुरातत्वविदों के लिए एक पहेली बना हुआ है।

पुरातत्वविदों द्वारा किए गए प्रयोगों ने यह दर्शाया है कि कार्नीलियन का लाल रंग, पीले रंग के कच्चे माल तथा उत्पादन के विभिन्न चरणों में मनकों को आग में पका कर प्राप्त किया जाता था। पत्थर के पिंडों को पहले अपरिष्कृत आकारों में तोड़ा जाता था, और फिर बारीकी से शल्क निकाल कर इन्हें अंतिम रूप दिया जाता था। घिसाई, पॉलिश और इनमें छेद करने के साथ ही यह प्रक्रिया पूरी होती थी। चन्हुदड़ो, लोथल और हाल ही में धौलावीरा से छेद करने के विशेष उपकरण मिले हैं।

यदि आप मानचित्र 1 में नागेश्वर तथा बालाकोट को चिह्नित करें तो आप पाएँगे कि ये दोनों बस्तियाँ समुद्र-तट के समीप स्थित हैं। ये शंख से बनी वस्तुओं जिनमें चूड़ियाँ, करछियाँ तथा पच्चीकारी की वस्तुएँ सम्मिलित हैं, के निर्माण के विशिष्ट केंद्र थे जहाँ से यह माल दूसरी बस्तियों तक ले जाया जाता था। इसी प्रकार, यह भी संभव है कि चन्हुदड़ो और लोथल से तैयार माल (जैसे मनके) मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसे बड़े शहरी केंद्रों तक लाया जाता था।

चित्र 1.15
मृण्मूर्ति

5.1 उत्पादन केंद्रों की पहचान

शिल्प-उत्पादन के केंद्रों की पहचान के लिए पुरातत्वविद सामान्यत: निम्नलिखित को ढूँढ़ते हैं: प्रस्तर पिंड, पूरे शंख तथा ताँबा-अयस्क जैसा कच्चा माल; औज़ार; अपूर्ण वस्तुएँ; त्याग दिया गया माल तथा कूड़ा-करकट।

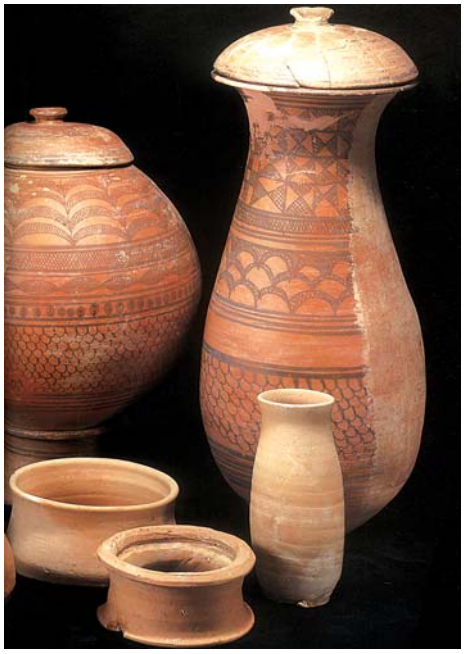

चित्र 1.14
मिट्टी से बनी पुरावस्तुएँ: मृदभाण्ड
इनमें से कई पुरावस्तुएँ दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय या लोथल के स्थानीय संग्रहालय में देखी जा सकती हैं।

➲ चर्चा कीजिए...

इस अध्याय में दिखाई गई पत्थर की पुरावस्तुओं की एक सूची बनाइए। इनमें से प्रत्येक के संदर्भ में चर्चा कीजिए कि क्या इन्हें उपयोगी अथवा विलास की वस्तुएँ माना जाए। क्या इनमें ऐसी वस्तुएँ भी हैं जो दोनों वर्गों में रखी जा सकती हैं?

चित्र 1.16
ताँबे व काँसे के बरतन

यहाँ तक कि कूड़ा-करकट शिल्प कार्य के सबसे अच्छे संकेतकों में से एक हैं। उदाहरण के लिए, यदि वस्तुओं के निर्माण के लिए शंख अथवा पत्थर को काटा जाता था तो इन पदार्थों के टुकड़े कूड़े के रूप में उत्पादन के स्थान पर फेंक दिए जाते थे।

कभी-कभी बड़े बेकार टुकड़ों को छोटे आकार की वस्तुएँ बनाने के लिए प्रयोग किया जाता था परंतु बहुत छोटे टुकड़ों को कार्यस्थल पर ही छोड़ दिया जाता था। ये टुकड़े इस ओर संकेत करते हैं कि छोटे, विशिष्ट केंद्रों के अतिरिक्त मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा जैसे बड़े शहरों में भी शिल्प उत्पादन का कार्य किया जाता था।

6. माल प्राप्त करने संबंधी नीतियाँ

जैसा कि स्पष्ट है कि शिल्प उत्पादन के लिए कई प्रकार के कच्चे माल का प्रयोग होता था। हालाँकि कुछ, जैसे कि मिट्टी, स्थानीय स्तर पर उपलब्ध थे, कुछ अन्य जैसे पत्थर, लकड़ी तथा धातु जलोढ़क मैदान से बाहर के क्षेत्रों से मँगाने पड़ते थे। बैलगाड़ियों के मिट्टी से बने खिलौनों के प्रतिरूप संकेत करते हैं कि यह सामान तथा लोगों के लिए स्थल मार्गों द्वारा परिवहन का एक महत्वपूर्ण साधन था। संभवत: सिंधु तथा इसकी उपनदियों के बगल में बने नदी-मार्गों और साथ ही तटीय मार्गों का भी प्रयोग किया जाता था।

6.1 उपमहाद्वीप तथा उसके आगे से आने वाला माल

हड़प्पावासी शिल्प-उत्पादन हेतु माल प्राप्त करने के लिए कई तरीके अपनाते थे। उदाहरण के लिए, उन्होंने नागेश्वर और बालाकोट में जहाँ शंख आसानी से उपलब्ध था, बस्तियाँ स्थापित कीं। ऐसे ही कुछ अन्य पुरास्थल थे—सुदूर अफ़गानिस्तान में शोर्तुघई, जो अत्यंत कीमती माने जाने वाले नीले रंग के पत्थर लाजवर्द मणि के सबसे अच्छे स्रोत के निकट स्थित था तथा लोथल जो कार्नीलियन (गुजरात में भड़ौच), सेलखड़ी (दक्षिणी राजस्थान तथा उत्तरी गुजरात से) और धातु (राजस्थान से) के स्रोतों के निकट स्थित था।

कच्चा माल प्राप्त करने की एक अन्य नीति थी—राजस्थान के खेतड़ी अँचल (ताँबे के लिए) तथा दक्षिण भारत (सोने के लिए) जैसे क्षेत्रों में अभियान भेजना। इन अभियानों के माध्यम से स्थानीय समुदायों के साथ संपर्क स्थापित किया जाता था। इन इलाकों में यदा-कदा मिलने वाली हड़प्पाई पुरावस्तुएँ ऐसे संपर्कों की संकेतक हैं। खेतड़ी क्षेत्र में मिले साक्ष्यों को पुरातत्वविदों ने गणेश्वर-जोधपुरा संस्कृति का नाम दिया है। इस संस्कृति के विशिष्ट मृदभाण्ड हड़प्पाई मृदभाण्डों से भिन्न थे तथा यहाँ ताँबे की वस्तुओं की असाधारण संपदा मिली थी। ऐसा संभव है कि इस क्षेत्र के निवासी हड़प्पा सभ्यता के लोगों को ताँबा भेजते थे।

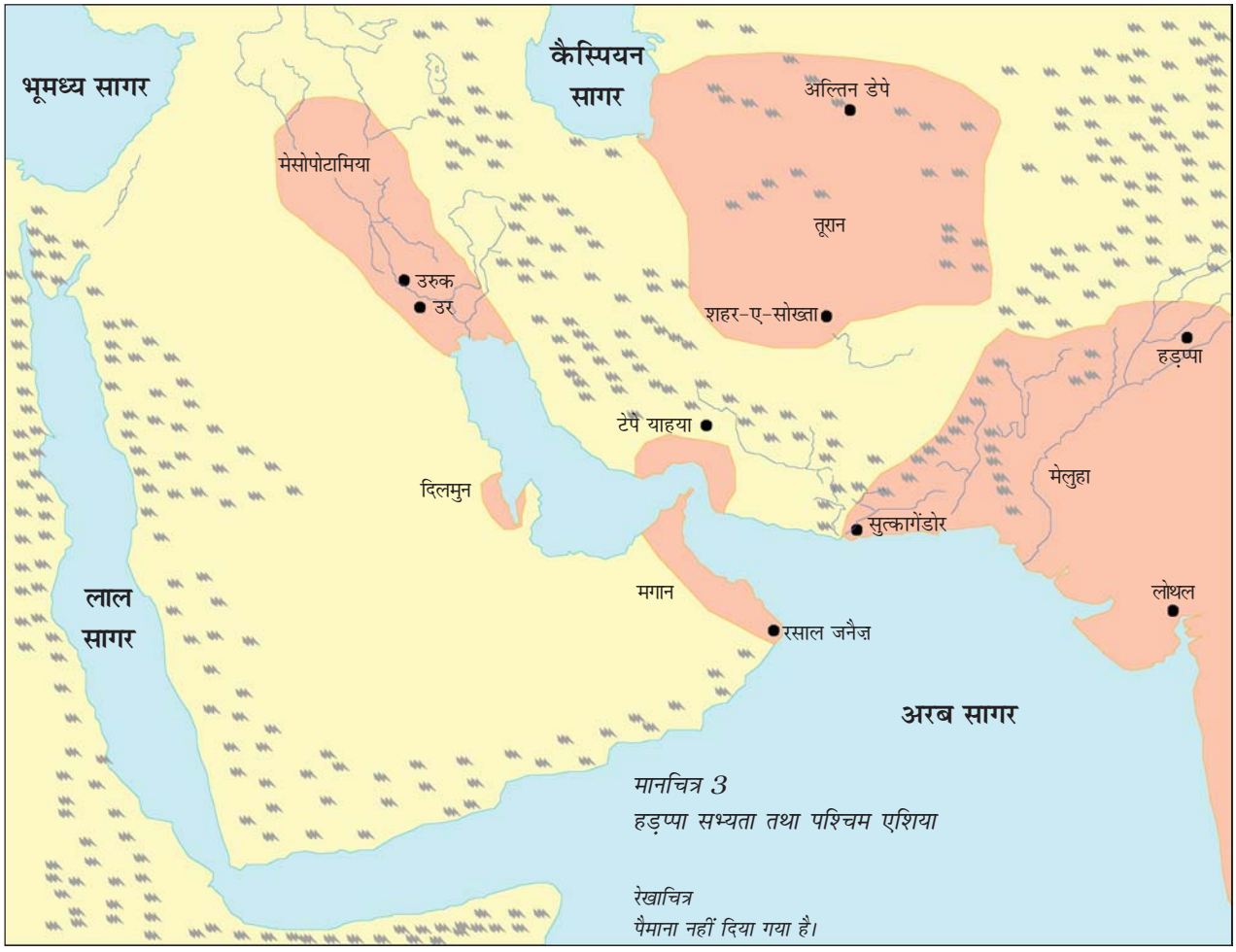

मानचित्र 3
हड़प्पा सभ्यता तथा पश्चिम एशिया

रेखाचित्र
पैमाना नहीं दिया गया है।

6.2 सुदूर क्षेत्रों से संपर्क

हाल ही में हुई पुरातात्विक खोजें इंगित करती हैं कि ताँबा संभवत: अरब प्रायद्वीप के दक्षिण-पश्चिमी छोर पर स्थित ओमान से भी लाया जाता था। रासायनिक विश्लेषण दर्शाते हैं कि ओमानी ताँबे तथा हड़प्पाई पुरावस्तुओं, दोनों में निकल के अंश मिले हैं जो दोनों के साझा उद्भव की ओर संकेत करते हैं। संपर्क के और भी संकेत मिलते हैं। एक विशिष्ट प्रकार का पात्र अर्थात् एक बड़ा हड़प्पाई मर्तबान जिसके ऊपर काली मिट्टी की एक मोटी परत चढ़ाई गई थी, ओमानी स्थलों से मिला है। ऐसी मोटी परतें तरल पदार्थों के रिसाव को रोक देती हैं। हमें यह नहीं पता कि इन पात्रों में क्या रखा जाता था पर यह संभव है कि हड़प्पा सभ्यता के लोग इनमें रखे सामान का ओमानी ताँबे से विनिमय करते थे।

चित्र 1.17
ओमान में मिला एक हड़प्पाई मर्तबान

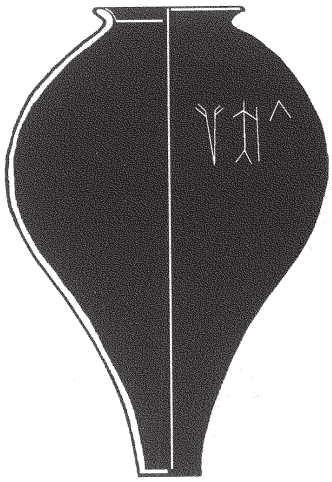

चित्र 1.18
यह मेसोपोटामिया की एक विशिष्ट बेलनाकार मुहर है, परंतु इस पर बना कूबड़दार वृषभ का चित्र सिंधु क्षेत्र से लिया गया प्रतीत होता है।

तीसरी सहस्राब्दि ईसा पूर्व में दिनांकित मेसोपोटामिया के लेखों में मगान जो संभवत: ओमान के लिए प्रयुक्त नाम था, नामक क्षेत्र से ताँबे के आगमन के संदर्भ मिलते हैं। यहाँ रोचक बात यह है कि मेसोपोटामिया के स्थलों से मिले ताँबे में भी निकल के अंश मिले हैं। लंबी दूरी के संपर्कों की ओर संकेत करने वाली अन्य पुरातात्विक खोजों में हड़प्पाई मुहरें, बाट, पासे तथा मनके शामिल हैं। इस संदर्भ में यह भी देखना महत्वपूर्ण है कि मेसोपोटामिया के लेख दिलमुन (संभवत: बहरीन द्वीप), मगान तथा मेलुहा, संभवत: हड़प्पाई क्षेत्र के लिए प्रयुक्त शब्द, नामक क्षेत्रों से संपर्क की जानकारी मिलती है। यह लेख मेलुहा से प्राप्त निम्नलिखित उत्पादों का उल्लेख करते हैं: कार्नीलियन, लाजवर्द मणि, ताँबा, सोना तथा विविध प्रकार की लकड़ियाँ। मेलुहा के विषय में एक मेसोपोटामियाई मिथक यह बताता है: ''तुम्हारा पक्षी हाजा पक्षी हो, उसकी आवाज़ राजप्रासाद में सुनाई दे।'' कई पुरातत्वविदों का मानना है कि हाजा पक्षी मोर था। क्या यह नाम उसे अपनी आवाज़ से मिला था? ऐसा संभव है कि ओमान, बहरीन या मेसोपोटामिया से संपर्क सामुद्रिक मार्ग से था। मेसोपोटामिया के लेख मेलुहा को नाविकों का देश कहते हैं। इसके अतिरिक्त हम मुहरों पर जहाज़ों तथा नावों के चित्रांकन पाते हैं।

चित्र 1.19
बहरीन में मिली गोलाकार 'फारस की खाड़ी' प्रकार की मुहर पर कभी-कभी हड़प्पाई चित्र मिलते हैं। रोचक तथ्य यह है कि 'दिलमुन' के स्थानीय बाट हड़प्पाई मानक का अनुसरण करते थे।

चित्र 1.20
नाव के चित्र वाली मुहर

➲ चर्चा कीजिए...

हड़प्पाई क्षेत्र से ओमान, दिलमुन तथा मेसोपोटामिया तक कौन से मार्गों से जाया जा सकता था।

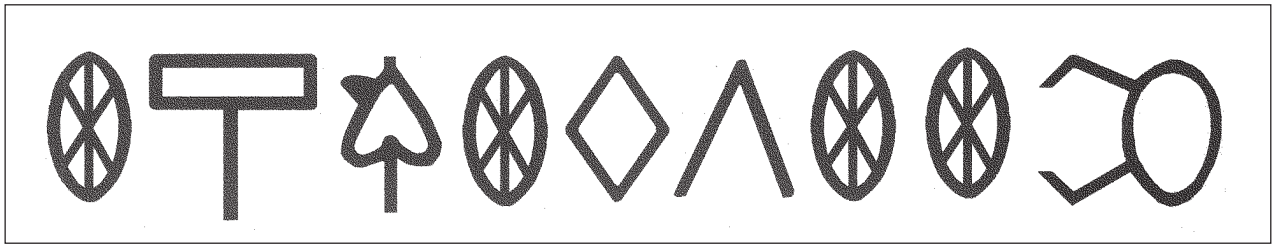

चित्र 1.21
एक प्राचीन सूचनापट्ट के अक्षर

7. मुहरें, लिपि तथा बाट

7.1 मुहरें और मुद्रांकन

मुहरों और मुद्रांकनों का प्रयोग लंबी दूरी के संपर्कों को सुविधाजनक बनाने के लिए होता था। कल्पना कीजिए कि सामान से भरा एक थैला एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजा गया। उसका मुख रस्सी से बाँधा गया और गाँठ पर थोड़ी गीली मिट्टी जमा कर एक या अधिक मुहरों से दबाया गया, जिससे मिट्टी पर मुहरों की छाप पड़ गई। यदि इस थैले के अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचने तक मुद्रांकन अक्षुण्ण रहा तो इसका अर्थ था कि थैले के साथ किसी प्रकार की छेड़-छाड़ नहीं की गई थी। मुद्रांकन से प्रेषक की पहचान का भी पता चलता था।

चित्र 1.22
रोपड़ से मिला एक मुद्रांकन

➲ मिट्टी के इस टुकड़े पर कितनी मुहरों की छाप दिखती है?

7.2 एक रहस्यमय लिपि

सामान्यत: हड़प्पाई मुहरों पर एक पंक्ति में कुछ लिखा है जो संभवत: मालिक के नाम व पदवी को दर्शाता है। विद्वानों ने यह सुझाव भी दिया है कि इन पर बना चित्र (आमतौर पर एक जानवर) अनपढ़ लोगों को सांकेतिक रूप से इसका अर्थ बताता था।

अधिकांश अभिलेख संक्षिप्त हैं; सबसे लंबे अभिलेख में लगभग 26 चिह्न हैं। हालाँकि यह लिपि आज तक पढ़ी नहीं जा सकी है, पर निश्चित रूप से यह वर्णमालीय (जहाँ प्रत्येक चिह्न एक स्वर अथवा व्यंजन को दर्शाता है) नहीं थी क्योंकि इसमें चिह्नों की संख्या कहीं अधिक है– लगभग 375 से 400 के बीच। ऐसा प्रतीत होता है कि यह लिपि दाईं से बाईं ओर लिखी जाती थी क्योंकि कुछ मुहरों पर दाईं ओर चौड़ा अंतराल है और बाईं ओर यह संकुचित है जिससे लगता है कि उत्कीर्णक ने दाईं ओर से लिखना आरंभ किया और बाद में बाईं ओर स्थान कम पड़ गया।

अब हम उन विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को देखते हैं जिन पर लिखावट मिली है: मुहरें, ताँबे के औज़ार, मर्तबानों के अँवठ, ताँबे तथा मिट्टी की लघुपट्टिकाएँ, आभूषण, अस्थि-छड़ें और यहाँ तक कि एक प्राचीन सूचना पट्ट। याद रखिए हो सकता है कि नष्टप्राय वस्तुओं पर भी लिखा जाता हो। क्या इसका यह अर्थ लगाया जा सकता है कि साक्षरता व्यापक थी?

➲ चर्चा कीजिए...

वर्तमान समय में सामान के लंबी दूरी के विनिमय के लिए प्रयुक्त कुछ तरीकों पर चर्चा कीजिए। उनके क्या-क्या लाभ और समस्याएँ हैं?

7.3 बाट

विनिमय बाटों की एक सूक्ष्म या परिशुद्ध प्रणाली द्वारा नियंत्रित थे। ये बाट सामान्यत: चर्ट नामक पत्थर से बनाए जाते थे और आमतौर पर ये किसी भी तरह के निशान से रहित घनाकार (चित्र 1.2) होते थे। इन बाटों के निचले मानदंड द्विआधारी (1, 2, 4, 8, 16, 32 इत्यादि 12,800 तक) थे जबकि ऊपरी मानदंड दशमलव प्रणाली का अनुसरण करते थे। छोटे बाटों का प्रयोग संभवत: आभूषणों और मनकों को तौलने के लिए किया जाता था। धातु से बने तराजू के पलड़े भी मिले हैं।

चित्र 1.23
एक पुरोहित-राजा

8. प्राचीन सत्ता

हड़प्पाई समाज में जटिल फैसले लेने और उन्हें कार्यान्वित करने के संकेत मिलते हैं। उदाहरण के लिए, हड़प्पाई पुरावस्तुओं में असाधारण एकरूपता को ही लें, जैसा कि मृदभाण्डों (चित्र 1.14), मुहरों, बाटों तथा ईंटों से स्पष्ट है। महत्वपूर्ण बात यह है कि ईंटें, जिनका उत्पादन स्पष्ट रूप से किसी एक केंद्र पर नहीं होता था, जम्मू से गुजरात तक पूरे क्षेत्र में समान अनुपात की थीं। हमने यह भी देखा है कि अलग-अलग कारणों से बस्तियाँ विशेष स्थानों पर आवश्यकतानुसार स्थापित की गई थीं। इसके अतिरिक्त ईंटें बनाने और विशाल दीवारों तथा चबूतरों के निर्माण के लिए श्रम संगठित किया गया था।

इन सभी क्रियाकलापों को कौन संगठित करता था?

8.1 प्रासाद तथा शासक

सत्ता के केंद्र अथवा सत्ताधारी लोगों के विषय में पुरातात्विक विवरण हमें कोई त्वरित उत्तर नहीं देते। पुरातत्वविदों ने मोहनजोदड़ो में मिले एक विशाल भवन को एक प्रासाद की संज्ञा दी परंतु इससे संबद्ध कोई भव्य वस्तुएँ नहीं मिली हैं। एक पत्थर की मूर्ति को 'पुरोहित-राजा' की संज्ञा दी गई थी और यह नाम आज भी प्रचलित है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पुरातत्वविद मेसोपोटामिया के इतिहास तथा वहाँ के 'पुरोहित-राजाओं' से परिचित थे और यही समानताएँ उन्होंने सिंधु क्षेत्र में भी ढूँढ़ी। लेकिन जैसा कि हम देखेंगे (पृ. 23), हड़प्पा सभ्यता की आनुष्ठानिक प्रथाएँ अभी तक ठीक प्रकार से समझी नहीं जा सकी हैं और न ही यह जानने के साधन उपलब्ध हैं कि क्या जो लोग इन अनुष्ठानों का निष्पादन करते थे, उन्हीं के पास राजनीतिक सत्ता होती थी।

कुछ पुरातत्वविद इस मत के हैं कि हड़प्पाई समाज में शासक नहीं थे तथा सभी की सामाजिक स्थिति समान थी। दूसरे पुरातत्वविद यह मानते हैं कि यहाँ कोई एक नहीं बल्कि कई शासक थे जैसे मोहनजोदड़ो, हड़प्पा आदि के अपने अलग-अलग राजा होते थे। कुछ और यह तर्क देते हैं कि यह एक ही राज्य था जैसा कि पुरावस्तुओं में समानताओं,

➲ चर्चा कीजिए...

क्या हड़प्पाई समाज में सभी लोग समान रहे होंगे?

नियोजित बस्तियों के साक्ष्यों, ईंटों के आकार में निश्चित अनुपात, तथा बस्तियों के कच्चे-माल के स्रोतों के समीप संस्थापित होने से स्पष्ट है। अभी तक की स्थिति में अंतिम परिकल्पना सबसे युक्तिसंगत प्रतीत होती है क्योंकि यह कदाचित् संभव नहीं लगता कि पूरे के पूरे समुदायों द्वारा इकट्ठे ऐसे जटिल निर्णय लिए तथा कार्यान्वित किए जाते होंगे।

9. सभ्यता का अंत

ऐसे साक्ष्य मिले हैं जिनके अनुसार लगभग 1800 ईसा पूर्व तक चोलिस्तान जैसे क्षेत्रों में अधिकांश विकसित हड़प्पा स्थलों को त्याग दिया गया था। इसके साथ ही गुजरात, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश की नयी बस्तियों में आबादी बढ़ने लगी थी।

ऐसा लगता है कि उत्तर हड़प्पा के क्षेत्र 1900 ईसा पूर्व के बाद भी अस्तित्व में रहे। कुछ चुने हुए हड़प्पा स्थलों की भौतिक संस्कृति में बदलाव आया था जैसे सभ्यता की विशिष्ट पुरावस्तुओं–बाटों, मुहरों तथा विशिष्ट मनकों–का समाप्त हो जाना। लेखन, लंबी दूरी का व्यापार तथा शिल्प विशेषज्ञता भी समाप्त हो गई। सामान्यत: थोड़ी वस्तुओं के निर्माण के लिए थोड़ा ही माल प्रयोग में लाया जाता था। आवास निर्माण की तकनीकों का ह्रास हुआ तथा बड़ी सार्वजनिक संरचनाओं का निर्माण अब बंद हो गया। कुल मिलाकर पुरावस्तुएँ तथा बस्तियाँ इन संस्कृतियों में एक ग्रामीण जीवनशैली की ओर संकेत करती हैं। इन संस्कृतियों को ''उत्तर हड़प्पा'' अथवा ''अनुवर्ती संस्कृतियाँ'' कहा गया।

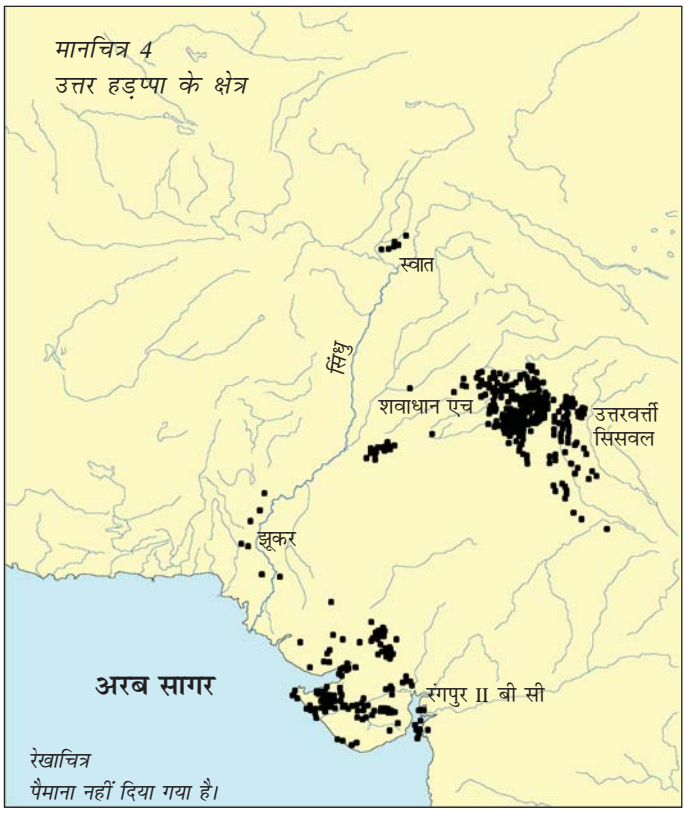

मानचित्र 4
उत्तर हड़प्पा के क्षेत्र
रेखाचित्र
पैमाना नहीं दिया गया है।

ये परिवर्तन कैसे हुए? इस विषय में कई व्याख्याएँ दी गई हैं। इनमें जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, अत्यधिक बाढ़, नदियों का सूख जाना और/या मार्ग बदल लेना तथा भूमि का अत्यधिक उपयोग सम्मिलित हैं। इनमें से कुछ 'कारण' कुछ बस्तियों के संदर्भ में तो सही हो सकते हैं परंतु पूरी सभ्यता के पतन की व्याख्या नहीं करते।

ऐसा लगता है कि एक सुदृढ़ एकीकरण के तत्व, संभवत: हड़प्पाई राज्य, का अंत हो गया था। मुहरों, लिपि, विशिष्ट मनकों तथा मृद्भाण्डों के लोप, मानकीकृत बाट प्रणाली के स्थान पर स्थानीय बाटों के प्रयोग; शहरों के पतन तथा परित्याग जैसे परिवर्तनों से इस तर्क को बल मिलता है। उपमहाद्वीप को एक पूरी तरह से अलग क्षेत्र में नए शहरों के विकास के लिए एक सहस्राब्दि से भी अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ी।

स्रोत 3

एक 'आक्रमण' के साक्ष्य

डैडमैन लेन एक सँकरी गली है, जिसकी चौड़ाई 3 से 6 फ़ीट तक परिवर्ती है . . . . वह बिंदु जहाँ यह गली पश्चिम की ओर मुड़ती है, 4 फ़ीट तथा 2 इंच की गहराई पर एक खोपड़ी का भाग तथा एक वयस्क की छाती तथा हाथ के ऊपरी भाग की हड्डियाँ मिली थीं। ये सभी बहुत भुरभुरी अवस्था में थीं। यह धड़ पीठ के बल, गली में आड़ा पड़ा हुआ था। पश्चिम की ओर 15 इंच की दूरी पर एक छोटी खोपड़ी के कुछ टुकड़े थे। इस गली का नाम इन्हीं अवशेषों पर आधारित है।
जॉन मार्शल, *मोहनजोदड़ो एंड द इंडस सिविलाईज़ेशन, 1931* से उद्धृत।

1925 में मोहनजोदड़ो के इसी भाग से सोलह लोगों के अस्थि-पंजर उन आभूषणों सहित मिले थे जो इन्होंने मृत्यु के समय पहने हुए थे।

बहुत समय पश्चात 1947 में आर.ई.एम. व्हीलर ने जो भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के तत्कालीन डायरेक्टर जनरल थे, इन पुरातात्विक साक्ष्यों का उपमहाद्वीप में ज्ञात प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद के साक्ष्यों से संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने लिखा:

ऋग्वेद में पुर शब्द का उल्लेख है जिसका अर्थ है प्राचीर, किला या गढ़। आर्यों के युद्ध के देवता इंद्र को *पुरंदर*, अर्थात् गढ़-विध्वंसक कहा गया है।

ये दुर्ग कहाँ हैं .... या थे ....? पहले यह माना गया था कि ये मिथक मात्र थे .... हड़प्पा में हाल में हुए उत्खननों ने मानो परिदृश्य बदल दिया है। यहाँ हम मुख्यत: अनार्य प्रकार की एक बहुत विकसित सभ्यता पाते हैं जिसमें अब प्राप्त जानकारी के अनुसार विशाल किलेबंदियाँ की गई थीं .... यह सुदृढ़ रूप से स्थिर सभ्यता कैसे नष्ट हुई? हो सकता है जलवायु संबंधी, आर्थिक अथवा राजनीतिक ह्रास ने इसे कमज़ोर किया हो, पर अधिक संभावना इस बात की है कि जानबूझ कर तथा बड़े पैमाने पर किए गए विनाश ने इसे अंतिम रूप से समाप्त कर दिया। यह मात्र संयोग ही नहीं हो सकता कि मोहनजोदड़ो के अंतिम चरण में आभास होता है कि यहाँ पुरुषों, महिलाओं तथा बच्चों का जनसंहार किया गया था। पारिस्थितिक साक्ष्यों के आधार पर इंद्र अभियुक्त माना जाता है।
आर.ई.एम. व्हीलर, हड़प्पा 1946, *एंशिएंट इंडिया (जर्नल)* 1947 से उद्धृत।

1960 के दशक में जॉर्ज डेल्स नामक पुरातत्वविद ने मोहनजोदड़ो में जनसंहार के साक्ष्यों पर सवाल उठाए। उन्होंने दिखाया कि उस स्थान पर मिले सभी अस्थि-पंजर एक ही काल से संबद्ध नहीं थे:

हालाँकि इनमें से दो से निश्चित रूप में संहार के संकेत मिलते हैं, ... पर अधिकांश अस्थियाँ जिन संदर्भों में मिली हैं वे इंगित करती हैं कि ये अत्यंत लापरवाही तथा श्रद्धाहीन तरीके से बनाए गए शवाधान थे। शहर के अंतिम काल से संबद्ध विनाश का कोई स्तर नहीं है, व्यापक स्तर पर अग्निकांड के चिह्न नहीं हैं, चारों ओर फैले हथियारों के बीच कवचधारी सैनिकों के शव नहीं हैं। दुर्ग से जो शहर का एकमात्र किलेबंद भाग था, अंतिम आत्मरक्षण के कोई साक्ष्य नहीं मिले हैं।
जी.एफ.डेल्स, 'द मिथिकल मैसेकर एट मोहनजोदड़ो', *एक्सपीडीशन,* 1964 से उद्धृत।

जैसा कि आप देख सकते हैं कि तथ्यों का सावधानीपूर्वक पुनर्निरीक्षण कभी-कभी पूर्ववर्ती व्याख्याओं को पूरी तरह से उलट देता है।

➲ चर्चा कीजिए...

मानचित्र 1, 2 और 4 के बीच समानताओं और भिन्नताओं पर विचार कीजिए।

10. हड़प्पा सभ्यता की खोज

अब तक हमने हड़प्पा सभ्यता के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण इस संदर्भ में किया है कि किस प्रकार पुरातत्वविदों ने भौतिक अवशेषों से प्राप्त साक्ष्यों के माध्यम से एक आकर्षक इतिहास के अलग-अलग अंशों को एक साथ जोड़ा है। लेकिन एक और कहानी भी है–कि किस प्रकार पुरातत्वविदों ने सभ्यता की 'खोज' की।

जब हड़प्पा सभ्यता के शहर नष्ट हो गए तो लोग धीरे-धीरे उनके विषय में सब कुछ भूल गए। जब लोगों ने इस क्षेत्र में सहस्राब्दियों बाद रहना आरंभ किया तब वे यह नहीं समझ पाए कि बाढ़ या मिट्टी के कटाव के कारण अथवा खेत की जुताई के समय या फिर खज़ाने के लिए खुदाई के समय यदा-कदा धरती की सतह पर आने वाली अपरिचित पुरावस्तुओं का क्या अर्थ लगाया जाए।

10.1 कनिंघम का भ्रम

जब भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के पहले डायरेक्टर जनरल कनिंघम ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में पुरातात्विक उत्खनन आरंभ किए, तब पुरातत्वविद अपने अन्वेषणों के मार्गदर्शन के लिए लिखित स्रोतों (साहित्य तथा अभिलेख) का प्रयोग अधिक पसंद करते थे। यहाँ तक कि कनिंघम की मुख्य रुचि भी आरंभिक ऐतिहासिक (लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व से चौथी शताब्दी ईसवी) तथा उसके बाद के कालों से संबंधित पुरातत्व में थी। आरंभिक बस्तियों की पहचान के लिए उन्होंने चौथी से सातवीं शताब्दी ईसवी के बीच उपमहाद्वीप में आए चीनी बौद्ध तीर्थयात्रियों द्वारा छोड़े गए वृतांतों का प्रयोग किया। कनिंघम ने अपने सर्वेक्षणों के दौरान मिले अभिलेखों का संग्रहण, प्रलेखन तथा अनुवाद भी किया। उत्खनन के समय वे ऐसी पुरावस्तुओं को खोजने का प्रयास करते जो उनके विचार में सांस्कृतिक महत्त्व की थीं।

हड़प्पा जैसा पुरास्थल जो चीनी तीर्थयात्रियों के यात्रा-कार्यक्रम का हिस्सा नहीं था और जो एक आरंभिक ऐतिहासिक शहर नहीं था, कनिंघम के अन्वेषण के ढाँचे में उपयुक्त नहीं बैठता था। इसलिए हालाँकि हड़प्पाई पुरावस्तुएँ उन्नीसवीं शताब्दी में कभी-कभी मिलती थीं और इनमें से कुछ तो कनिंघम तक पहुँची भी थीं, फिर भी वह समझ नहीं पाए कि ये पुरावस्तुएँ कितनी प्राचीन थीं।

एक अंग्रेज़ ने कनिंघम को एक हड़प्पाई मुहर दी। उन्होंने मुहर पर ध्यान तो दिया पर उन्होंने उसे एक ऐसे काल-खंड में, दिनांकित करने का असफल प्रयास किया जिससे वे परिचित थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि कई और लोगों की तरह ही उनका भी यह मानना था कि भारतीय इतिहास का प्रारंभ गंगा की घाटी में पनपे पहले शहरों के साथ

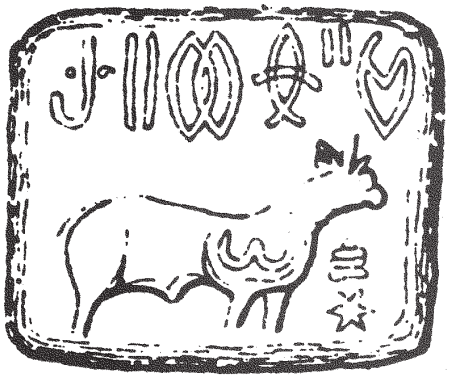

चित्र 1.24
कनिंघम द्वारा हड़प्पा से प्राप्त पहली ज्ञात मुहर का बनाया गया रेखाचित्र

पुरास्थल, टीले, स्तर

पुरातात्विक *पुरास्थल* वस्तुओं और संरचनाओं के निर्माण, प्रयोग और फिर उन्हें त्याग दिए जाने से बनते हैं। जब लोग एक ही स्थान पर नियमित रूप से रहते हैं तो भूमि-खंड के अनवरत उपयोग तथा पुनः उपयोग से आवासीय मलबों का निर्माण हो जाता है जिन्हें *टीला* कहते हैं। अल्पकालीन या स्थायी परित्याग की स्थिति में हवा या पानी की क्रियाशीलता और कटाव के कारण भूमि-खंड के स्वरूप में बदलाव आ जाता है। इन टीलों में मिले स्तरों से प्राप्त प्राचीन वस्तुओं से आवास का पता चलता है। ये स्तर एक दूसरे से रंग, प्रकृति और इनमें मिली पुरावस्तुओं के संदर्भ में भिन्न होते हैं। परित्यक्त स्तरों, जिन्हें "बंजर स्तर" कहा जाता है, की पहचान इन सभी लक्षणों के अभाव से की जाती है।

सामान्य तौर पर सबसे निचले स्तर प्राचीनतम और सबसे ऊपरी, नवीनतम होते हैं। इन स्तरों के अध्ययन को स्तर क्रम विज्ञान कहा जाता है। स्तरों में मिली पुरावस्तुओं को विशेष सांस्कृतिक काल-खंडों से संबद्ध किया जा सकता है जिससे एक पुरास्थल का पूरा सांस्कृतिक क्रम पता किया जा सकता है।

ही हुआ था (अध्याय 2 देखिए)। उनकी सुनिश्चित अवधारणा के चलते यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वह हड़प्पा के महत्त्व को समझने में चूक गए।

10.2 एक नवीन प्राचीन सभ्यता

कालांतर में बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में दया राम साहनी जैसे पुरातत्वविदों ने हड़प्पा में मुहरें खोज निकालीं जो निश्चित रूप से आरंभिक ऐतिहासिक स्तरों से कहीं अधिक प्राचीन स्तरों से संबद्ध थीं। अब इनके महत्त्व को समझा जाने लगा। एक अन्य पुरातत्वविद राखाल दास बनर्जी ने हड़प्पा से मिली मुहरों के समान मुहरें मोहनजोदड़ो से खोज निकालीं जिससे अनुमान लगाया गया कि ये दोनों पुरास्थल एक ही पुरातात्विक संस्कृति के भाग थे। इन्हीं खोजों के आधार पर 1924 में भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के डायरेक्टर जनरल जॉन मार्शल ने पूरे विश्व के समक्ष सिंधु घाटी में एक नवीन सभ्यता की खोज की घोषणा की। जैसा कि एस.एन. राव, द *स्टोरी ऑफ़ इंडियन आर्कियोलॉजी,* में लिखते हैं, "मार्शल ने भारत को जहाँ पाया था, उसे उससे तीन हज़ार वर्ष पीछे छोड़ा" ऐसा इसलिए था क्योंकि मेसोपोटामिया के पुरास्थलों में हुए उत्खननों से हड़प्पा पुरास्थलों पर मिली मुहरों जैसी, पर तब तक पहचानी न जा सकीं, मुहरें मिली थीं। इस प्रकार विश्व को न केवल एक नयी सभ्यता की जानकारी मिली, पर यह भी कि वह मेसोपोटामिया के समकालीन थी।

भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के डायरेक्टर जनरल के रूप में जॉन मार्शल का कार्यकाल वास्तव में भारतीय पुरातत्व में एक व्यापक परिवर्तन का काल था। वे भारत में कार्य करने वाले पहले पेशेवर पुरातत्वविद थे और वे यहाँ यूनान तथा क्रीट में अपने कार्यों का अनुभव भी लाए। हालाँकि अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि कनिंघम की तरह ही उन्हें भी आकर्षक खोजों में दिलचस्पी थी, पर उनमें दैनिक जीवन की पद्धतियों को जानने की भी उत्सुकता थी।

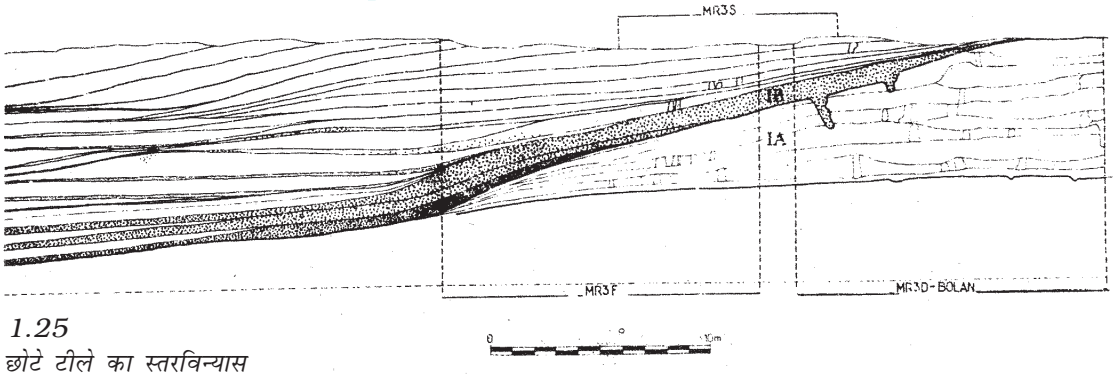

चित्र 1.25
एक छोटे टीले का स्तरविन्यास
ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि ये स्तर सदैव क्षैतिज नहीं हैं।

मार्शल, पुरास्थल के स्तर विन्यास को पूरी तरह अनदेखा कर पूरे टीले में समान परिमाण वाली नियमित क्षैतिज इकाइयों के साथ-साथ उत्खनन करने का प्रयास करते थे। इसका यह अर्थ हुआ कि अलग-अलग स्तरों से संबद्ध होने पर भी एक इकाई विशेष से प्राप्त सभी पुरावस्तुओं को सामूहिक रूप से वर्गीकृत कर दिया जाता था। परिणामस्वरूप इन खोजों के संदर्भ के विषय में बहुमूल्य जानकारी हमेशा के लिए लुप्त हो जाती थी।

10.3 नयी तकनीकें तथा प्रश्न

1944 में भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के डायरेक्टर जनरल बने आर.ई.एम. व्हीलर ने इस समस्या का निदान किया। व्हीलर ने पहचाना कि एकसमान क्षैतिज इकाइयों के आधार पर खुदाई की बजाय टीले के स्तर विन्यास का अनुसरण करना अधिक आवश्यक था। साथ ही, सेना के पूर्व-ब्रिगेडियर के रूप में उन्होंने पुरातत्व की पद्धति में एक सैनिक परिशुद्धता का समावेश भी किया।

हड़प्पा सभ्यता की भौगोलिक सीमाओं का आज की राष्ट्रीय सीमाओं से बहुत थोड़ा या कोई संबंध नहीं है। लेकिन उपमहाद्वीप के विभाजन तथा पाकिस्तान के बनने के पश्चात्, सभ्यता के प्रमुख स्थल अब पाकिस्तान के क्षेत्र में हैं। इसी कारण से भारतीय पुरातत्वविदों ने भारत में पुरास्थलों को चिह्नित करने का प्रयास किया। कच्छ में हुए व्यापक सर्वेक्षणों से कई हड़प्पाई बस्तियाँ प्रकाश में आईं तथा पंजाब और हरियाणा में किए गए अन्वेषणों से हड़प्पा स्थलों की सूची में कई और नाम जुड़ गए। हालाँकि कालीबंगन, लोथल, राखी गढ़ी और हाल में हुई धौलावीरा की खोज, वहाँ हुए अन्वेषण तथा उत्खनन इन्हीं प्रयासों का हिस्सा हैं। नए अन्वेषण अब भी जारी हैं।

इन दशकों में नए प्रश्न महत्वपूर्ण हो गए हैं। यहाँ कुछ पुरातत्वविद आमतौर पर सांस्कृतिक उपक्रम का पता लगाने के इच्छुक रहते हैं, वहीं कुछ और विशेष पुरास्थलों की भौगोलिक स्थिति के पीछे निहित कारणों को समझने का प्रयास करते हैं। वे पुरावस्तुओं रूपी निधि से भी जूझते हैं और उनकी संभावित उपयोगिताओं को समझने का प्रयास करते हैं।

1980 के दशक से हड़प्पाई पुरातत्व में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी रुचि लगातार बढ़ती रही है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो, दोनों स्थानों पर उपमहाद्वीप के तथा विदेशी विशेषज्ञ संयुक्त रूप से कार्य करते रहे हैं। वे आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग करते हैं जिनमें मिट्टी, पत्थर,

➲ चर्चा कीजिए...

इस अध्याय में दिए गए विषयों में से कौन से कनिंघम को रुचिकर लगते? 1947 के बाद से कौन-कौन से प्रश्न रोचक माने गए हैं?

हड़प्पा में व्हीलर

आरंभिक पुरातत्वविद कई बार साहस की भावना से कार्य करते थे। व्हीलर ने हड़प्पा में अपने अनुभव के विषय में यह लिखा:

> मुझे याद आता है कि 1944 की एक गर्म रात को पुरातात्विक सर्वेक्षण के नवनियुक्त डायरेक्टर जनरल के रूप में अपने स्थानीय मुस्लिम अधिकारी के साथ 'हड़प्पा' नामक एक छोटे से रेलवे स्टेशन से एक गहरे बालू के रास्ते पर चार मील की ताँगे की सवारी कर मैं प्राचीन स्थल के टीलों, जो चाँद की रोशनी से अवलोकित थे, के समीप स्थित एक विश्राम-गृह तक पहुँचा। अपने चिंतित सहकर्मी की इस चेतावनी, कि हमें अपना निरीक्षण अगली सुबह 5.30 बजे आरंभ कर 7.30 बजे तक समाप्त कर देना चाहिए, जिसके पश्चात बहुत अधिक गर्मी हो जाती है, के बाद प्रवेशद्वार में काली आकृति के पंखे वाले को धीरतापूर्वक बैठा छोड़ तथा पड़ोस की बीहड़ से अनगिनत सियारों की रात की हवा को चीरती हुई आवाज़ के बीच हम सोने चले गए।
>
> अगली सुबह ठीक 5.30 बजे हमारे छोटे से काफ़िले ने बालू के टीले की ओर बढ़ना आरंभ किया। दस मिनट के भीतर ही मैं रुका और सबसे ऊँचे टीले को देखते हुए, अपनी दृष्टि पर अविश्वास के साथ अपनी आँखे मलने लगा। छह घंटे बाद भी मेरे घबराए हुए कर्मचारीगण तथा मैं सूर्य की तेज़ रोशनी में कुदालियों और चाकुओं के साथ कठिन परिश्रम कर रहे थे, मुझे डर है कि मेरे सहयोगी काम के मेरे जुनून के कारण मुझे सनकी न समझ लें।

आर.ई.एम. व्हीलर,
माई आर्कियोलॉजिकल मिशन टू इंडिया एंड पाकिस्तान, 1976 से उद्धृत।

धातु की वस्तुएँ तथा वनस्पति और जानवरों के अवशेष प्राप्त करने हेतु सतह का अन्वेषण और साथ ही उपलब्ध साक्ष्य के हर सूक्ष्म टुकड़े का विश्लेषण सम्मिलित है। ये अन्वेषण भविष्य में रोचक परिणामों की आशा दिलाते हैं।

11. अतीत को जोड़कर पूरा करने की समस्याएँ

जैसा कि हमने देखा है, हड़प्पाई लिपि से इस प्राचीन सभ्यता को जानने में कोई मदद नहीं मिलती। बल्कि ये भौतिक साक्ष्य हैं जो पुरातत्वविदों को हड़प्पाई जीवन को ठीक प्रकार से पुनर्निर्मित करने में सहायक होते हैं। ये वस्तुएँ–मृदभाण्ड, औज़ार, आभूषण, घरेलू सामान हो सकती हैं। कपड़ा, चमड़ा, लकड़ी तथा सरकंडे जैसे जैविक पदार्थ सामान्यत: सड़ जाते हैं, विशेष रूप से ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में। जो वस्तुएँ बच जाती हैं वे हैं पत्थर, पकी मिट्टी तथा धातु।

यह भी याद रखना आवश्यक है कि केवल टूटी हुई अथवा अनुपयोगी वस्तुएँ ही फेंकी जाती थीं। अन्य वस्तुएँ संभवत: पुन: चक्रित की जाती थीं। परिणामस्वरूप जो बहुमूल्य वस्तुएँ अक्षत अवस्था में मिलती हैं या तो वे अतीत में खो गई थीं या फिर संचयन के पश्चात कभी दोबारा प्राप्त नहीं की गई थीं। अन्य शब्दों में कुछ खोजें प्रारूपिक की बजाए संयोगिक होती हैं।

11.1 खोजों का वर्गीकरण

पुरावस्तुओं की पुन: प्राप्ति पुरातात्विक उद्यम का आरंभ मात्र है। इसके बाद पुरातत्वविद अपनी खोजों को वर्गीकृत करते हैं। वर्गीकरण का एक सामान्य सिद्धांत प्रयुक्त पदार्थों; जैसे-पत्थर, मिट्टी, धातु, अस्थि, हाथीदाँत आदि के संबंध में होता है। दूसरा, और अधिक जटिल, उनकी उपयोगिता के आधार पर होता है : पुरातत्वविदों को यह तय करना पड़ता है कि उदाहरणत: कोई पुरावस्तु एक औज़ार है या एक आभूषण है या फिर दोनों अथवा आनुष्ठानिक प्रयोग की कोई वस्तु।

किसी पुरावस्तु की उपयोगिता की समझ अक्सर आधुनिक समय में प्रयुक्त वस्तुओं से उनकी समानता पर आधारित होती है–मनके, चक्कियाँ, पत्थर के फलक तथा पात्र इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। पुरातत्वविद किसी पुरावस्तु की उपयोगिता को समझने का प्रयास उस संदर्भ के परीक्षण के माध्यम से भी करते हैं जिसमें वह मिली थी: क्या वे घर में मिली थीं, नाले में, कब्र में, या फिर भट्ठी में?

कभी-कभी पुरातत्वविदों को अप्रत्यक्ष साक्ष्यों का सहारा लेना पड़ता है। उदाहरण के लिए, हालाँकि कुछ हड़प्पा स्थलों से कपास के टुकड़े मिले हैं, पर पहनावे के विषय में जानने के लिए हमें अप्रत्यक्ष साक्ष्यों, जैसे मूर्तियों में चित्रण पर निर्भर रहना पड़ता है।

पुरातत्वविदों को संदर्भ की रूपरेखाओं को विकसित करना पड़ता है। हमने देखा है कि पहली प्राप्त हड़प्पाई मुहर को तब तक नहीं समझा जा सका जब तक पुरातत्वविदों को उसे समझने के लिए सही संदर्भ नहीं मिला। सांस्कृतिक अनुक्रम जिसमें वह मिली थी तथा मेसोपोटामिया में हुई खोजों की तुलना, दोनों के संबंध में।

11.2 व्याख्या की समस्याएँ

पुरातात्विक व्याख्या की समस्याएँ संभवत: सबसे अधिक धार्मिक प्रथाओं के पुनर्निर्माण के प्रयासों में सामने आती हैं। आरंभिक पुरातत्वविदों को लगता था कि कुछ वस्तुएँ जो असामान्य और अपरिचित लगती थीं संभवत: धार्मिक महत्त्व की होती थीं। इनमें आभूषणों से लदी हुई नारी मृण्मूर्तियाँ जिनमें से कुछ के शीर्ष पर विस्तृत प्रसाधन थे, शामिल हैं। इन्हें मातृदेवियों की संज्ञा दी गई थी। पुरुषों की दुर्लभ पत्थर से बनी मूर्तियाँ जिनमें उन्हें एक लगभग मानकीकृत मुद्रा में एक हाथ घुटने पर रख बैठा हुआ दिखाया गया था, जैसा कि 'पुरोहित-राजा', को भी इसी प्रकार वर्गीकृत किया गया था। अन्य दृष्टांतों में, संरचनाओं को आनुष्ठानिक महत्त्व का माना गया है। इनमें विशाल स्नानागार तथा कालीबंगन और लोथल से मिली वेदियाँ सम्मिलित हैं।

मुहरों जिनमें से कुछ पर संभवत: अनुष्ठान के दृश्य बने हैं, के परीक्षण से धार्मिक आस्थाओं और प्रथाओं को पुनर्निर्मित करने का प्रयास भी किया गया है। कुछ अन्य जिन पर पेड़-पौधे उत्कीर्णित हैं, मान्यतानुसार प्रकृति की पूजा के संकेत देते हैं। मुहरों पर बनाए गए कुछ जानवर—जैसे कि एक सींग वाला जानवर, जिसे आमतौर पर एकशृंगी कहा जाता है—कल्पित तथा संश्लिष्ट लगते हैं। कुछ मुहरों पर एक आकृति जिसे पालथी मार कर 'योगी' की मुद्रा में बैठा दिखाया गया है और कभी-कभी जिसे जानवरों से घिरा दर्शाया गया है, को 'आद्य शिव', अर्थात् हिंदू धर्म के प्रमुख देवताओं में से एक का आरंभिक रूप की संज्ञा दी गई है। इसके अतिरिक्त पत्थर की शंक्वाकार वस्तुओं को लिंग के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

हड़प्पाई धर्म के कई पुनर्निर्माण इस अनुमान के आधार पर किए गए हैं कि आरंभिक तथा बाद की परंपराओं में समानताएँ होती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अधिकांशत: पुरातत्वविद ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ते हैं अर्थात् वर्तमान से अतीत की ओर। हालाँकि यह नीति पत्थर की चक्कियों तथा पात्रों के संबंध में युक्तिसंगत हो सकती है लेकिन 'धार्मिक' प्रतीक के संदर्भ में यह अधिक संदिग्ध रहती है।

उदाहरण के लिए, आइए हम 'आद्य शिव' मुहरों को देखते हैं। सबसे आरंभिक धार्मिक ग्रंथ *ऋग्वेद* (लगभग 1500 से 1000 ईसा पूर्व के बीच संकलित) में रुद्र नामक एक देवता का उल्लेख मिलता है जो बाद

चित्र 1.26
क्या यह एक मातृदेवी थी?

चित्र 1.27
एक 'आद्य शिव' मुहर

लिंग उस परिष्कृत पत्थर को कहा जाता है जिसकी पूजा भगवान शिव के रूप में होती है।

शमन वे महिलाएँ और पुरुष होते हैं जो जादुई तथा इलाज करने की शक्ति होने और साथ ही दूसरी दुनिया से संपर्क साधने के सामर्थ्य का दावा करते हैं।

चित्र 1.28
मुहरें या लिंग

सबसे आरंभिक उत्खनकों में से एक मैके इन पत्थरों के विषय में यह कहते हैं:

> लाजवर्द मणि, जैस्पर, चाल्सेडनी तथा अन्य पत्थरों से बने छोटे आकार के शंकुओं जो सुंदरता से तराशे और तैयार किए गए थे तथा जो दो इंच से भी कम ऊँचाई के थे, को लिंग भी माना गया है... दूसरी तरफ़, यह भी संभव है कि इनका प्रयोग पट्टों पर खेले जाने वाले खेलों में होता था... अर्नेस्ट मैके, *अर्ली इंडस सिविलाईज़ेशन,* 1948 से उद्धृत।

➲ चर्चा कीजिए...

हड़प्पाई अर्थव्यवस्था के वे कौन-कौन से पहलू हैं जिनका पुनर्निर्माण पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर किया गया है?

की पौराणिक परंपराओं में शिव के लिए प्रयुक्त एक नाम है (पहली सहस्राब्दि ईसवी में: अध्याय 4 भी देखिए)। लेकिन शिव के विपरीत रुद्र को *ऋग्वेद* में न तो पशुपति (सामान्य रूप से जानवरों और विशेष रूप से मवेशियों के स्वामी) और न ही एक योगी के रूप में दिखाया गया है। दूसरे शब्दों में, यह चित्रण ऋग्वेद में दिए गए रुद्र के विवरण से मेल नहीं खाता। फिर क्या यह कोई शमन था, जैसा कि कुछ विद्वानों ने सुझाया है?

इतने दशकों में हुए पुरातात्विक कार्यों की क्या उपलब्धि है? हड़प्पाई अर्थव्यवस्था के बारे में अब हमारी जानकारी कुछ बेहतर है। हम सामाजिक भिन्नताओं की गुत्थी सुलझाने में सफल हुए हैं और सभ्यता की कार्यप्रणाली के विषय में हमारी जानकारी कुछ बढ़ी है। सच में यह स्पष्ट नहीं है कि लिपि के पढ़े जाने की स्थिति में हम और कितना जान पाते। यदि एक द्विभाषिक अभिलेख मिलता है तो हड़प्पा निवासियों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं के विषय में प्रश्नों पर संभवत: विराम लग सकता है।

कई पुनर्निर्माण अभी भी संदिग्ध बने हुए हैं। क्या विशाल स्नानागार एक आनुष्ठानिक संरचना थी? साक्षरता कितनी व्यापक थी? हड़प्पाई कब्रिस्तानों में सामाजिक भिन्नताएँ कम क्यों दिखाई देती हैं? स्त्री-पुरुष संबंधों से जुड़े प्रश्न भी अनुत्तरित हैं– क्या महिलाएँ मृदभाण्ड बनाती थीं या फिर केवल उन्हें रँगने का कार्य करती थीं (जैसे कि आजकल)? दूसरे शिल्पकर्मियों के क्या कार्य थे? नारी मृण्मूर्तियों का क्या उपयोग था? हड़प्पा सभ्यता के संदर्भ में स्त्री-पुरुष संबंधों से जुड़े पहलुओं पर बहुत कम विद्वानों ने अन्वेषण किए हैं और यह भविष्य में होने वाले कार्य के लिए पूरी तरह से नया क्षेत्र है।

चित्र 1.29
पकी मिट्टी की खिलौना गाड़ी

कालरेखा 1
आरंभिक भारतीय पुरातत्व के प्रमुख कालखंड

20 लाख वर्ष (वर्तमान से पूर्व)	निम्न पुरापाषाण
80,000	मध्य पुरापाषाण
35,000	उच्च पुरापाषाण
12,000	मध्य पाषाण
10,000	नवपाषाण (आरंभिक कृषक तथा पशुपालक)
6,000	ताम्रपाषाण (ताँबे का पहली बार प्रयोग)
2600 ई. पू.	हड़प्पा सभ्यता
1000 ई. पू.	आरंभिक लौहकाल, महापाषाण शवाधान
600 ई. पू.–400 ई. पू.	आरंभिक ऐतिहासिक काल

सभी तिथियाँ अनुमानित हैं। इसके अतिरिक्त उपमहाद्वीप के अलग-अलग भागों में हुए विकास की प्रक्रिया में व्यापक विविधताएँ हैं। यहाँ दी गई तिथियाँ हर चरण के प्राचीनतम साक्ष्य को इंगित करती हैं।

कालरेखा 2
हड़प्पाई पुरातत्व के विकास के प्रमुख चरण

उन्नीसवीं शताब्दी	
1875	हड़प्पाई मुहर पर कनिंघम की रिपोर्ट
बीसवीं शताब्दी	
1921	माधो स्वरूप वत्स द्वारा हड़प्पा में उत्खननों का आरंभ
1925	मोहनजोदड़ो में उत्खननों का प्रारंभ
1946	आर.ई.एम. व्हीलर द्वारा हड़प्पा में उत्खनन
1955	एस.आर. राव द्वारा लोथल में खुदाई का आरंभ
1960	बी.बी. लाल तथा बी.के. थापर के नेतृत्व में कालीबंगन में उत्खननों का आरंभ
1974	एम.आर. मुगल द्वारा बहावलपुर में अन्वेषणों का आरंभ
1980	जर्मन-इतावली संयुक्त दल द्वारा मोहनजोदड़ो में सतह-अन्वेषणों का आरंभ
1986	अमरीकी दल द्वारा हड़प्पा में उत्खननों का आरंभ
1990	आर.एस. बिष्ट द्वारा धौलावीरा में उत्खननों का आरंभ

चित्र 1.30
एक हड़प्पाई शवाधान

उत्तर दीजिए (लगभग 100-150 शब्दों में)

1. हड़प्पा सभ्यता के शहरों में लोगों को उपलब्ध भोजन सामग्री की सूची बनाइए। इन वस्तुओं को उपलब्ध कराने वाले समूहों की पहचान कीजिए।

2. पुरातत्वविद हड़प्पाई समाज में सामाजिक–आर्थिक भिन्नताओं का पता किस प्रकार लगाते हैं? वे कौन सी भिन्नताओं पर ध्यान देते हैं?

3. क्या आप इस तथ्य से सहमत हैं कि हड़प्पा सभ्यता के शहरों की जल निकास प्रणाली, नगर–योजना की ओर संकेत करती है? अपने उत्तर के कारण बताइए।

4. हड़प्पा सभ्यता में मनके बनाने के लिए प्रयुक्त पदार्थों की सूची बनाइए। कोई भी एक प्रकार का मनका बनाने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

5. चित्र 1 को देखिए और उसका वर्णन कीजिए। शव किस प्रकार रखा गया है? उसके समीप कौन सी वस्तुएँ रखी गई हैं? क्या शरीर पर कोई पुरावस्तुएँ हैं? क्या इनसे कंकाल के लिंग का पता चलता है?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 500 शब्दों में)

6. मोहनजोदड़ो की कुछ विशिष्टताओं का वर्णन कीजिए।

7. हड़प्पा सभ्यता में शिल्प उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल की सूची बनाइए तथा चर्चा कीजिए कि ये किस प्रकार प्राप्त किए जाते होंगे।

8. चर्चा कीजिए कि पुरातत्वविद किस प्रकार अतीत का पुनर्निर्माण करते हैं।

9. हड़प्पाई समाज में शासकों द्वारा किए जाने वाले संभावित कार्यों की चर्चा कीजिए।

मानचित्र कार्य

10. मानचित्र 1 पर उन स्थलों पर पेंसिल से घेरा बनाइए जहाँ से कृषि के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। उन स्थलों के आगे क्रॉस का निशान बनाइए जहाँ शिल्प उत्पादन के साक्ष्य मिले हैं। उन स्थलों पर 'क' लिखिए जहाँ कच्चा माल मिलता था।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. पता कीजिए कि क्या आपके शहर में कोई संग्रहालय है। उनमें से एक को देखने जाइए, और किन्हीं दस वस्तुओं पर एक रिपोर्ट लिखिए जिसमें बताइए कि वे कितनी पुरानी हैं, वे कहाँ मिली थीं, और आपके अनुसार उन्हें क्यों प्रदर्शित किया गया है।

12. वर्तमान समय में निर्मित तथा प्रयुक्त पत्थर, धातु तथा मिट्टी की दस वस्तुओं के रेखाचित्र एकत्रित कीजिए। इनकी तुलना इस अध्याय में दिए गए हड़प्पा सभ्यता के चित्रों से कीजिए, तथा आपके द्वारा उनमें पाई गई समानताओं तथा भिन्नताओं पर चर्चा कीजिए।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो पढ़िए:

रेमंड तथा ब्रिजेट आल्चिन, 1997
ऑरिजिंस ऑफ़ ए सिविलाईज़ेशन,
वाइकिंग, नयी दिल्ली।

जी.एस. पोसल, 2003
द इंडस सिविलाईज़ेशन,
विस्तार, नयी दिल्ली।

शीरीन रत्नागर, 2001
अंडरस्टैंडिंग हड़प्पा,
तूलिका, नयी दिल्ली।

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं:
http://www.harappa.com/har/harres0.html

विषय
दो

राजा, किसान और नगर
आरंभिक राज्य और अर्थव्यवस्थाएँ
(लगभग 600 ई.पू. से 600 ई.)

हड़प्पा सभ्यता के बाद डेढ़ हज़ार वर्षों के लंबे अंतराल में उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में कई प्रकार के विकास हुए। यही वह काल था जब सिंधु नदी और इसकी उपनदियों के किनारे रहने वाले लोगों द्वारा ऋग्वेद का लेखन किया गया। उत्तर भारत, दक्कन पठार क्षेत्र और कर्नाटक जैसे उपमहाद्वीप के कई क्षेत्रों में कृषक बस्तियाँ अस्तित्व में आईं। साथ ही दक्कन और दक्षिण भारत के क्षेत्रों में चरवाहा बस्तियों के प्रमाण भी मिलते हैं। ईसा पूर्व पहली सहस्राब्दि के दौरान मध्य और दक्षिण भारत में शवों के अंतिम संस्कार के नए तरीके भी सामने आए, जिनमें महापाषाण के नाम से ख्यात पत्थरों के बड़े-बड़े ढाँचे मिले हैं। कई स्थानों पर पाया गया है कि शवों के साथ विभिन्न प्रकार के लोहे से बने उपकरण और हथियारों को भी दफ़नाया गया था।

चित्र 2.1
एक अभिलेख, साँची (मध्य प्रदेश), लगभग द्वितीय शताब्दी ई.

ईसा पूर्व छठी शताब्दी से नए परिवर्तनों के प्रमाण मिलते हैं। शायद इनमें सबसे ज़्यादा मुखर आरंभिक राज्यों, साम्राज्यों और रजवाड़ों का विकास है। इन राजनीतिक प्रक्रियाओं के पीछे कुछ अन्य परिवर्तन थे। इनका पता कृषि उपज को संगठित करने के तरीके से चलता है। इसी के साथ-साथ लगभग पूरे उपमहाद्वीप में नए नगरों का उदय हुआ।

इतिहासकार इस प्रकार के विकास का आकलन करने के लिए अभिलेखों, ग्रंथों, सिक्कों तथा चित्रों जैसे विभिन्न प्रकार के स्रोतों का अध्ययन करते हैं। जैसा कि हम आगे पढ़ेंगे, यह एक जटिल प्रक्रिया है, और आपको यह भी आभास होगा कि इन स्रोतों से विकास की पूरी कहानी नहीं मिल पाती है।

1. प्रिंसेप और पियदस्सी

भारतीय अभिलेख विज्ञान में एक उल्लेखनीय प्रगति 1830 के दशक में हुई, जब ईस्ट इंडिया कंपनी के एक अधिकारी जेम्स प्रिंसेप ने ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों का अर्थ निकाला। इन लिपियों का उपयोग सबसे आरंभिक अभिलेखों और सिक्कों में किया गया है। प्रिंसेप को पता चला कि अधिकांश अभिलेखों और सिक्कों पर पियदस्सी, यानी मनोहर मुखाकृति वाले राजा का नाम लिखा है। कुछ अभिलेखों पर राजा का

अभिलेखों के अध्ययन को अभिलेखशास्त्र कहते हैं।

नाम असोक भी लिखा है। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार असोक सर्वाधिक प्रसिद्ध शासकों में से एक था।

इस शोध से आरंभिक भारत के राजनीतिक इतिहास के अध्ययन को नयी दिशा मिली, क्योंकि भारतीय और यूरोपीय विद्वानों ने उपमहाद्वीप पर शासन करने वाले प्रमुख राजवंशों की वंशावलियों की पुनर्रचना के लिए विभिन्न भाषाओं में लिखे अभिलेखों और ग्रंथों का उपयोग किया। परिणामस्वरूप बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों तक उपमहाद्वीप के राजनीतिक इतिहास का एक सामान्य चित्र तैयार हो गया।

उसके बाद विद्वानों ने अपना ध्यान राजनीतिक इतिहास के *संदर्भ* की ओर लगाया और यह छानबीन करने की कोशिश की कि क्या राजनीतिक परिवर्तनों और आर्थिक तथा सामाजिक विकासों के बीच कोई संबंध था। शीघ्र ही यह आभास हो गया कि इनमें संबंध तो थे लेकिन संभवत: सीधे संबंध हमेशा नहीं थे।

2. प्रारंभिक राज्य

2.1 सोलह महाजनपद

आरंभिक भारतीय इतिहास में छठी शताब्दी ई.पू. को एक महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी काल माना जाता है। इस काल को प्राय: आरंभिक राज्यों, नगरों, लोहे के बढ़ते प्रयोग और सिक्कों के विकास के साथ जोड़ा जाता है। इसी काल में बौद्ध तथा जैन सहित विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का विकास हुआ। बौद्ध और जैन धर्म (अध्याय 4) के आरंभिक ग्रंथों में महाजनपद नाम से सोलह राज्यों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि महाजनपदों के नाम की सूची इन ग्रंथों में एकसमान नहीं है लेकिन वज्जि, मगध, कोशल, कुरु, पांचाल, गांधार और अवन्ति जैसे नाम प्राय: मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि उक्त महाजनपद सबसे महत्वपूर्ण महाजनपदों में गिने जाते होंगे।

अधिकांश महाजनपदों पर राजा का शासन होता था लेकिन *गण* और संघ के नाम से प्रसिद्ध राज्यों में कई लोगों का समूह शासन करता था, इस समूह का प्रत्येक व्यक्ति राजा कहलाता था। भगवान महावीर और भगवान बुद्ध (अध्याय 4) इन्हीं *गणों* से संबंधित थे। वज्जि संघ की ही भाँति कुछ राज्यों में भूमि सहित अनेक आर्थिक स्रोतों पर राजा गण सामूहिक नियंत्रण रखते थे। यद्यपि स्रोतों के अभाव में इन राज्यों के इतिहास पूरी तरह लिखे नहीं जा सकते लेकिन ऐसे कई राज्य लगभग एक हज़ार साल तक बने रहे।

प्रत्येक महाजनपद की एक राजधानी होती थी जिसे प्राय: किले से घेरा जाता था। किलेबंद राजधानियों के रख-रखाव और प्रारंभी सेनाओं

अभिलेख

अभिलेख उन्हें कहते हैं जो पत्थर, धातु या मिट्टी के बर्तन जैसी कठोर सतह पर खुदे होते हैं। अभिलेखों में उन लोगों की उपलब्धियाँ, क्रियाकलाप या विचार लिखे जाते हैं जो उन्हें बनवाते हैं। इनमें राजाओं के क्रियाकलाप तथा महिलाओं और पुरुषों द्वारा धार्मिक संस्थाओं को दिए गए दान का ब्योरा होता है। यानी अभिलेख एक प्रकार से स्थायी प्रमाण होते हैं। कई अभिलेखों में इनके निर्माण की तिथि भी खुदी होती है जिन पर तिथि नहीं मिलती है, उनका काल निर्धारण आमतौर पर *पुरालिपि* अथवा लेखन शैली के आधार पर काफ़ी सुस्पष्टता से किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, लगभग 250 ई.पू. में अक्षर 'अ' 𑀅 इस प्रकार लिखा जाता था और 500 ई. में यह 𑀅 इस प्रकार लिखा जाता था।

प्राचीनतम अभिलेख प्राकृत भाषाओं में लिखे जाते थे। प्राकृत उन भाषाओं को कहा जाता था जो जनसामान्य की भाषाएँ होती थीं। इस अध्याय में अजातसत्तु और असोक जैसे शासकों के नाम प्राकृत भाषा में लिखे गए हैं, क्योंकि यह नाम प्राकृत अभिलेखों से प्राप्त हुए हैं। आपको यहाँ तमिल, पालि और संस्कृत जैसी भाषाओं के शब्द भी मिलेंगे, क्योंकि इन भाषाओं में भी अभिलेख मिलते हैं। यह संभव है कि लोग अन्य भाषाएँ भी बोलते थे लेकिन इनका उपयोग लेखन कार्य में नहीं किया जाता था।

जनपद का अर्थ एक ऐसा भूखंड है जहाँ कोई *जन* (लोग, कुल या जनजाति) अपना पाँव रखता है अथवा बस जाता है। इस शब्द का प्रयोग प्राकृत व संस्कृत दोनों में मिलता है

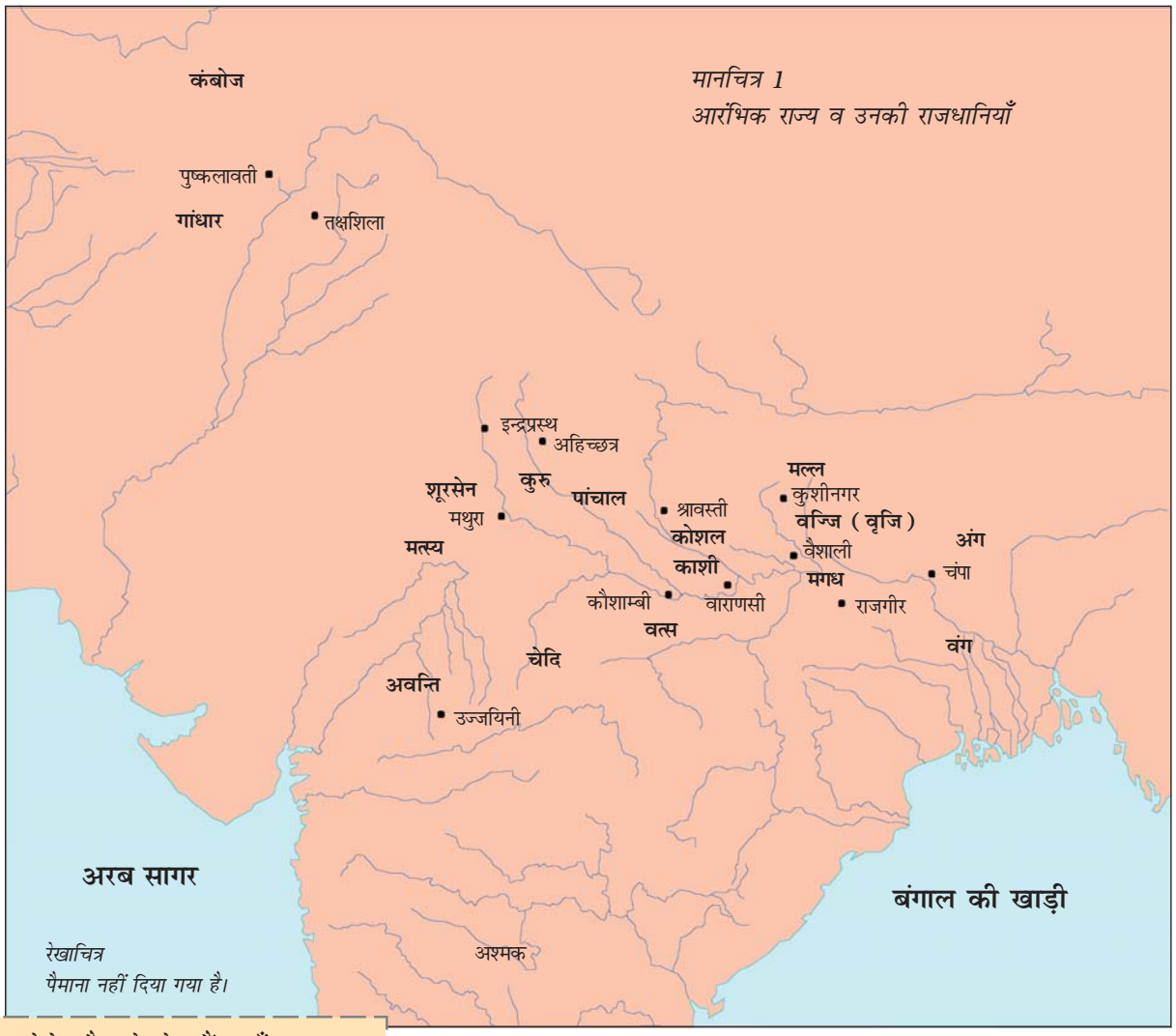

मानचित्र 1
आरंभिक राज्य व उनकी राजधानियाँ

➲ ऐसे कौन से क्षेत्र हैं जहाँ राज्य और नगर सर्वाधिक सघन रूप से बसे थे।

और नौकरशाही के लिए भारी आर्थिक स्रोत की आवश्यकता होती थी। लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व से संस्कृत में ब्राह्मणों ने धर्मशास्त्र नामक ग्रंथों की रचना शुरू की। इनमें शासक सहित अन्य के लिए नियमों का निर्धारण किया गया और यह अपेक्षा की जाती थी कि शासक क्षत्रिय वर्ण से ही होंगे (अध्याय 3 भी देखिए)। शासकों का काम किसानों, व्यापारियों और शिल्पकारों से कर तथा भेंट वसूलना माना जाता था। क्या वनवासियों और चरवाहों से भी कर रूप में कुछ लिया जाता था? हमें इतना तो ज्ञात है कि संपत्ति जुटाने का एक वैध उपाय पड़ोसी राज्यों पर आक्रमण करके धन इकट्ठा करना भी माना जाता था। धीरे-धीरे कुछ राज्यों ने अपनी स्थायी सेनाएँ और नौकरशाही तंत्र तैयार कर लिए। बाकी राज्य अब भी सहायक-सेना पर निर्भर थे जिन्हें प्रायः कृषक वर्ग से नियुक्त किया जाता था।

ओलीगार्की या समूहशासन उसे कहते हैं जहाँ सत्ता पुरुषों के एक समूह के हाथ में होती है। आपने पिछले वर्ष जिस रोमन गणराज्य के बारे में पढ़ा, वह एक समूह शासन ही है। यद्यपि इसका नाम अलग है।

2.2 सोलह महाजनपदों में प्रथम : मगध

छठी से चौथी शताब्दी ई.पू. में मगध (आधुनिक बिहार) सबसे शक्तिशाली महाजनपद बन गया। आधुनिक इतिहासकार इसके कई कारण बताते हैं। एक यह कि मगध क्षेत्र में खेती की उपज खास तौर पर अच्छी होती थी। दूसरे यह कि लोहे की खदानें (आधुनिक झारखंड में) भी आसानी से उपलब्ध थीं जिससे उपकरण और हथियार बनाना सरल होता था। जंगली क्षेत्रों में हाथी उपलब्ध थे जो सेना के एक महत्वपूर्ण अंग थे। साथ ही गंगा और इसकी उपनदियों से आवागमन सस्ता व सुलभ होता था। लेकिन आरंभिक जैन और बौद्ध लेखकों ने मगध की महत्ता का कारण विभिन्न शासकों की नीतियों को बताया है। इन लेखकों के अनुसार बिंबिसार, अजातसत्तु और महापद्मनंद जैसे प्रसिद्ध राजा अत्यंत महत्त्वाकांक्षी शासक थे, और इनके मंत्री उनकी नीतियाँ लागू करते थे।

प्रारंभ में, राजगाह (आधुनिक बिहार के राजगीर का प्राकृत नाम) मगध की राजधानी थी। यह रोचक बात है कि इस शब्द का अर्थ है 'राजाओं का घर'। पहाड़ियों के बीच बसा राजगाह एक किलेबंद शहर था। बाद में चौथी शताब्दी ई.पू. में पाटलिपुत्र को राजधानी बनाया गया, जिसे अब पटना कहा जाता है जिसकी गंगा के रास्ते आवागमन के मार्ग पर महत्वपूर्ण अवस्थिति थी।

➲ चर्चा कीजिए...

मगध की सत्ता के विकास के लिए आरंभिक और आधुनिक लेखकों ने क्या-क्या व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं? ये एक-दूसरे से कैसे भिन्न हैं।

चित्र 2.2
राजगीर के किले की दीवार

➲ इन दीवारों का निर्माण क्यों किया गया?

भाषाएँ और लिपियाँ

असोक के अधिकांश अभिलेख प्राकृत में हैं जबकि पश्चिमोत्तर से मिले अभिलेख अरामेइक और यूनानी भाषा में हैं। प्राकृत के अधिकांश अभिलेख ब्राह्मी लिपि में लिखे गए थे जबकि पश्चिमोत्तर के कुछ अभिलेख खरोष्ठी में लिखे गए थे। अरामेइक और यूनानी लिपियों का प्रयोग अफ़ग़ानिस्तान में मिले अभिलेखों में किया गया था।

चित्र 2.3
सिंह शीर्ष

➲ सिंह शीर्ष को आज महत्वपूर्ण क्यों माना जाता है?

3. एक आरंभिक साम्राज्य

मगध के विकास के साथ-साथ मौर्य साम्राज्य का उदय हुआ। मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चंद्रगुप्त मौर्य (लगभग 321 ई.पू.) का शासन पश्चिमोत्तर में अफ़गानिस्तान और बलूचिस्तान तक फैला था। उनके पौत्र असोक ने जिन्हें आरंभिक भारत का सर्वप्रसिद्ध शासक माना जा सकता है, कलिंग (आधुनिक उड़ीसा) पर विजय प्राप्त की।

3.1 मौर्यवंश के बारे में जानकारी प्राप्त करना

मौर्य साम्राज्य के इतिहास की रचना के लिए इतिहासकारों ने विभिन्न प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया है। इनमें पुरातात्विक प्रमाण भी शामिल हैं, विशेषतया मूर्तिकला। मौर्यकालीन इतिहास के पुनर्निर्माण हेतु समकालीन रचनाएँ भी मूल्यवान सिद्ध हुई हैं, जैसे चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में आए यूनानी राजदूत मेगस्थनीज़ द्वारा लिखा गया विवरण। आज इसके कुछ अंश ही उपलब्ध हैं। एक और स्रोत जिसका उपयोग प्रायः किया जाता है, वह है *अर्थशास्त्र*। संभवतः इसके कुछ भागों की रचना कौटिल्य या चाणक्य ने की थी जो चंद्रगुप्त के मंत्री थे। साथ ही मौर्य शासकों का उल्लेख परवर्ती जैन, बौद्ध और पौराणिक ग्रंथों तथा संस्कृत वाङ्मय में भी मिलता है। यद्यपि उक्त साक्ष्य बड़े उपयोगी हैं लेकिन पत्थरों और स्तंभों पर मिले असोक के अभिलेख प्रायः सबसे मूल्यवान स्रोत माने जाते हैं।

असोक वह पहला सम्राट था जिसने अपने अधिकारियों और प्रजा के लिए संदेश प्राकृतिक पत्थरों और पॉलिश किए हुए स्तंभों पर लिखवाए थे। असोक ने अपने अभिलेखों के माध्यम से *धम्म* का प्रचार किया। इनमें बड़ों के प्रति आदर, संन्यासियों और ब्राह्मणों के प्रति उदारता, सेवकों और दासों के साथ उदार व्यवहार तथा दूसरे के धर्मों और परंपराओं का आदर शामिल हैं।

3.2 साम्राज्य का प्रशासन

मौर्य साम्राज्य के पाँच प्रमुख राजनीतिक केंद्र थे, राजधानी पाटलिपुत्र और चार प्रांतीय केंद्र–तक्षशिला, उज्जयिनी, तोसलि और सुवर्णगिरि। इन सबका उल्लेख असोक के अभिलेखों में किया गया है। यदि हम इन अभिलेखों का परीक्षण करें तो पता चलता है कि आधुनिक पाकिस्तान के पश्चिमोत्तर सीमांत प्रांत से लेकर आंध्र प्रदेश, उड़ीसा और उत्तरांचल तक हर स्थान पर एक जैसे संदेश उत्कीर्ण किए गए थे। क्या इतने विशाल साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था समान रही होगी? इतिहासकार अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ऐसा संभव नहीं था। साम्राज्य में

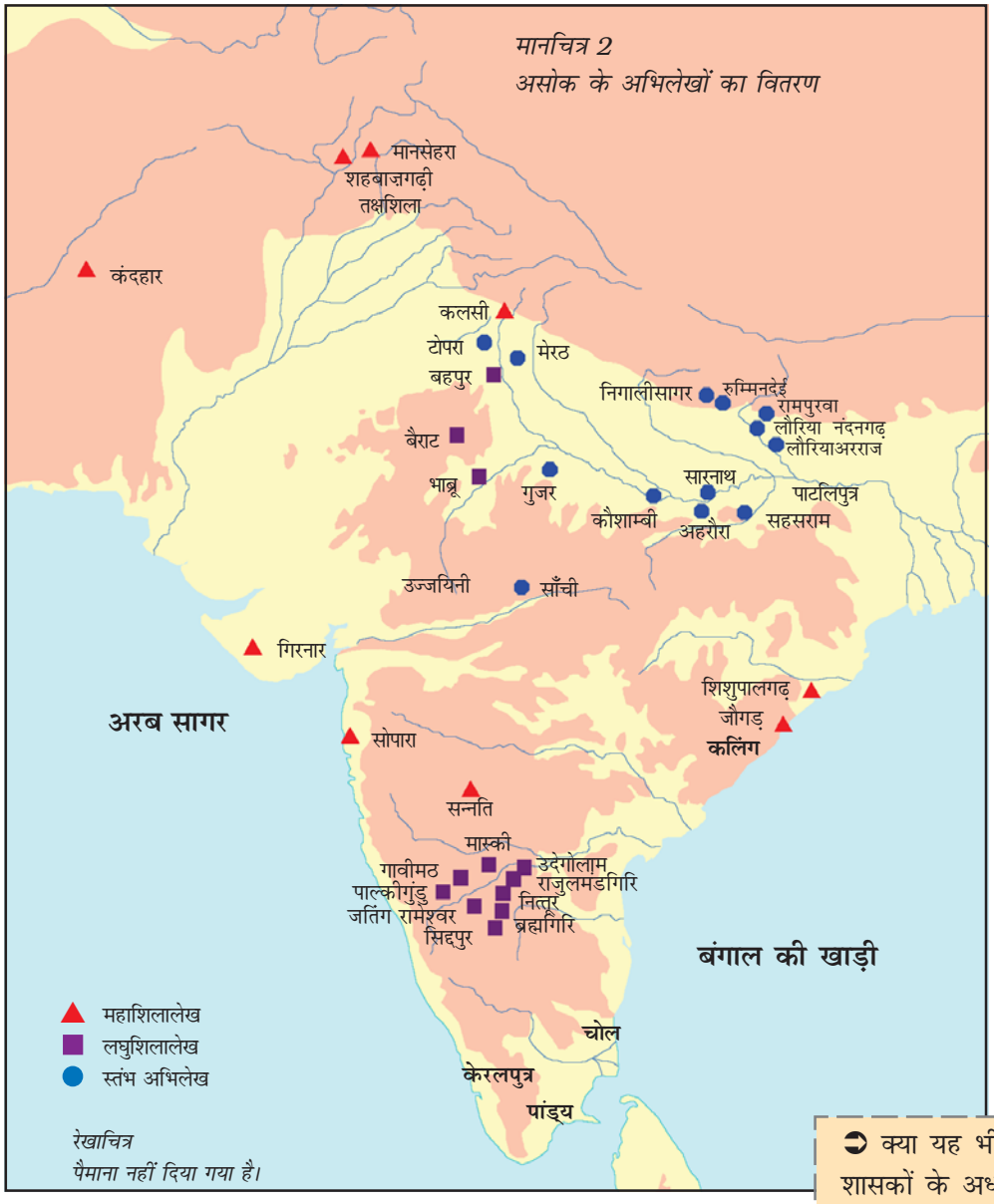

➲ क्या यह भी संभव है कि जो क्षेत्र शासकों के अधीन नहीं थे वहाँ भी उन्होंने अभिलेख उत्कीर्ण करवाए होंगे?

शामिल क्षेत्र बड़े विविध और भिन्न-भिन्न प्रकार के थे : कहाँ अफ़गानिस्तान के पहाड़ी क्षेत्र और कहाँ उड़ीसा के तटवर्ती क्षेत्र। यह संभव है कि सबसे प्रबल प्रशासनिक नियंत्रण साम्राज्य की राजधानी तथा उसके आसपास के प्रांतीय केंद्रों पर रहा हो। इन केंद्रों का चयन बड़े ध्यान से किया गया। तक्षशिला और उज्जयिनी दोनों लंबी दूरी वाले महत्वपूर्ण व्यापार मार्ग पर स्थित थे जबकि सुवर्णगिरि (अर्थात् सोने के पहाड़) कर्नाटक में सोने की खदान के लिए उपयोगी था।

स्रोत 1

सम्राट के अधिकारी क्या-क्या कार्य करते थे?

मेगस्थनीज़ के विवरण का एक अंश दिया गया है। साम्राज्य के महान अधिकारियों में से कुछ नदियों की देख-रेख और भूमि मापन का काम करते हैं जैसा कि मिस्र में होता था। कुछ प्रमुख नहरों से उपनहरों के लिए छोड़े जाने वाले पानी के मुखद्वार का निरीक्षण करते हैं ताकि हर स्थान पर पानी की समान पूर्ति हो सके। यही अधिकारी शिकारियों का संचालन करते हैं और शिकारियों के कृत्यों के आधार पर उन्हें इनाम या दंड देते हैं। वे कर वसूली करते हैं और भूमि से जुड़े सभी व्यवसायों का निरीक्षण करते हैं साथ ही लकड़हारों, बढ़ई, लोहारों और खननकर्ताओं का भी निरीक्षण करते हैं।

➲ विभिन्न व्यावसायिक समूहों के निरीक्षण के लिए इन अधिकारियों को क्यों नियुक्त किया जाता था?

साम्राज्य के संचालन के लिए भूमि और नदियों दोनों मार्गों से आवागमन बना रहना अत्यंत आवश्यक था। राजधानी से प्रांतों तक जाने में कई सप्ताह या महीनों का समय लगता होगा। इसका अर्थ यह है कि यात्रियों के लिए खान-पान की व्यवस्था और उनकी सुरक्षा भी करनी पड़ती होगी। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सेना सुरक्षा का एक प्रमुख माध्यम रही होगी। मेगस्थनीज़ ने सैनिक गतिविधियों के संचालन के लिए एक समिति और छः उपसमितियों का उल्लेख किया है। इनमें से एक का काम नौसेना का संचालन करना था, तो दूसरी यातायात और खान-पान का संचालन करती थी, तीसरी का काम पैदल सैनिकों का संचालन, चौथी का अश्वारोहियों, पाँचवीं का रथारोहियों तथा छठी का काम हाथियों का संचालन करना था। दूसरी उपसमिति का दायित्व विभिन्न प्रकार का था : उपकरणों के ढोने के लिए बैलगाड़ियों की व्यवस्था, सैनिकों के लिए भोजन और जानवरों के लिए चारे की व्यवस्था करना तथा सैनिकों की देखभाल के लिए सेवकों और शिल्पकारों की नियुक्ति करना।

असोक ने अपने साम्राज्य को अखंड बनाए रखने का प्रयास किया। ऐसा उन्होंने *धम्म* के प्रचार द्वारा भी किया। जैसा कि हमने अभी ऊपर पढ़ा, *धम्म* के सिद्धांत बहुत ही साधारण और सार्वभौमिक थे। असोक के अनुसार *धम्म* के माध्यम से लोगों का जीवन इस संसार में और इसके बाद के संसार में अच्छा रहेगा। *धम्म* के प्रचार के लिए *धम्म महामात्त* नाम से विशेष अधिकारियों की नियुक्ति की गई।

3.3 मौर्य साम्राज्य कितना महत्वपूर्ण था?

उन्नीसवीं सदी में जब इतिहासकारों ने भारत के आरंभिक इतिहास की रचना करनी शुरू की तो मौर्य साम्राज्य को इतिहास का एक प्रमुख काल माना गया। इस समय भारत ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन एक औपनिवेशिक देश था। उन्नीसवीं और आरंभिक बीसवीं सदी के भारतीय इतिहासकारों को प्राचीन भारत में एक ऐसे साम्राज्य की संभावना बहुत चुनौतीपूर्ण तथा उत्साहवर्धक लगी। साथ ही प्रस्तर मूर्तियों सहित मौर्यकालीन सभी पुरातत्व एक अद्भुत कला के प्रमाण थे जो साम्राज्य की पहचान माने जाते हैं। इतिहासकारों को लगा कि अभिलेखों पर लिखे संदेश अन्य शासकों के अभिलेखों से भिन्न हैं। इसमें उन्हें यह लगा कि अन्य राजाओं की अपेक्षा असोक एक बहुत शक्तिशाली और परिश्रमी शासक थे। साथ ही वे बाद के उन राजाओं की अपेक्षा विनीत भी थे जो अपने नाम के साथ बड़ी-बड़ी उपाधियाँ जोड़ते थे। इसलिए इसमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी कि बीसवीं सदी के राष्ट्रवादी नेताओं ने भी असोक को प्रेरणा का स्रोत माना।

➲ चर्चा कीजिए...

मेगस्थनीज़ और *अर्थशास्त्र* से उद्धृत अंशों को पुनः पढ़िए। मौर्य शासन के इतिहास लेखन में ये ग्रंथ कितने उपयोगी हैं?

फिर भी, मौर्य साम्राज्य कितना महत्वपूर्ण था? यह साम्राज्य मात्र डेढ़ सौ साल तक ही चल पाया जिसे उपमहाद्वीप के इस लंबे इतिहास में बहुत बड़ा काल नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त यदि आप मानचित्र 2 को देखें तो पता चलेगा कि मौर्य साम्राज्य उपमहाद्वीप के सभी क्षेत्रों में नहीं फैल पाया था। यहाँ तक कि साम्राज्य की सीमा के अंतर्गत भी नियंत्रण एकसमान नहीं था। दूसरी शताब्दी ई.पू. आते-आते उपमहाद्वीप के कई भागों में नए-नए शासक और रजवाड़े स्थापित होने लगे।

4. राजधर्म के नवीन सिद्धांत

4.1 दक्षिण के राजा और सरदार

उपमहाद्वीप के दक्कन और उससे दक्षिण के क्षेत्र में स्थित तमिलकम (अर्थात् तमिलनाडु एवं आंध्र प्रदेश और केरल के कुछ हिस्से) में चोल, चेर और पाण्ड्य जैसी सरदारियों का उदय हुआ। ये राज्य बहुत ही समृद्ध और स्थायी सिद्ध हुए।

सरदार और सरदारी

सरदार एक शक्तिशाली व्यक्ति होता है जिसका पद वंशानुगत भी हो सकता है और नहीं भी। उसके समर्थक उसके खानदान के लोग होते हैं। सरदार के कार्यों में विशेष अनुष्ठान का संचालन, युद्ध के समय नेतृत्व करना और विवादों को सुलझाने में मध्यस्थता की भूमिका निभाना शामिल है। वह अपने अधीन लोगों से भेंट लेता है (जबकि राजा कर वसूली करते हैं), और अपने समर्थकों में उस भेंट का वितरण करता है। सरदारी में सामान्यतया कोई स्थायी सेना या अधिकारी नहीं होते हैं।

हमें इन राज्यों के बारे में विभिन्न प्रकार के स्रोतों से जानकारी मिलती है। उदाहरण के तौर पर, प्राचीन तमिल संगम ग्रंथों में ऐसी कविताएँ हैं जो सरदारों का विवरण देती हैं कि उन्होंने अपने स्रोतों का संकलन और वितरण किस प्रकार से किया।

कई सरदार और राजा लंबी दूरी के व्यापार द्वारा राजस्व जुटाते थे। इनमें मध्य और पश्चिम भारत के क्षेत्रों पर शासन करने वाले सातवाहन (लगभग द्वितीय शताब्दी ई.पू. से द्वितीय शताब्दी ई. तक) और उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर और पश्चिम में शासन करने वाले मध्य एशियाई मूल के शक शासक शामिल थे। उनके सामाजिक उद्गम के बारे में अधिक जानकारी तो नहीं है, लेकिन जैसा कि हम सातवाहन शासकों के बारे में अध्याय तीन में पढ़ेंगे कि एक बार सत्ता में आने के बाद उन्होंने ऊँचे सामाजिक अस्तित्व का दावा कई प्रकार से किया।

स्रोत 2

सेना के लिए हाथी पकड़ना

अर्थशास्त्र में सैनिक और प्रशासनिक संगठन के बारे में विस्तृत विवरण मिलते हैं। मिसाल के तौर पर हाथी को पकड़ने के उपाय के बारे में उसमें यह लिखा है:

> हाथी वनों के संरक्षक हाथियों को पालने वाले लोगों, हाथी के पैरों में जंज़ीर बाँधने वाले लोगों, सीमारक्षकों, वनवासियों और महावतों के साथ मिलकर पाँच से सात हथिनियों की मदद से, जंगली हाथियों द्वारा गिराए गए मलमूत्र को पहचानते हुए उन्हें पकड़ने का काम करते थे।

यूनानी स्रोतों के अनुसार, मौर्य सम्राट के पास छः लाख पैदल सैनिक, तीस हज़ार घुड़सवार तथा नौ हज़ार हाथी थे। कुछ इतिहासकार इस विवरण को अतिशयोक्तिपूर्ण मानते हैं।

➲ यदि यूनानी विवरण सही है, तो बताइए कि इतनी बड़ी सेना के भरण-पोषण के लिए मौर्य शासकों को किस तरह के संसाधनों की ज़रूरत पड़ती होगी?

स्रोत 3

पाण्ड्य सरदार सेनगुत्तुवन की वनयात्रा

यह तमिल महाकाव्य *सिलप्पादिकारम्* का एक अंश है :

जब वह वन की यात्रा पर थे तो लोग नाचते-गाते हुए पहाड़ों से उतरे ठीक उसी तरह जैसे पराजित लोग विजयी का आदर करते हैं। वे अपने साथ उपहार लाए, जिनमें हाथी दाँत, सुगंधित लकड़ी, हिरणों के बाल से बने चँवर, मधु, चंदन, गेरू, सुरमा, हल्दी, इलायची, मिर्च आदि वस्तुएँ थीं। वे अपने साथ नारियल, आम, जड़ी-बूटी, फल, प्याज, गन्ना, फूल, सुपारी, केला, बाघों के बच्चे, शेर, हाथी, बंदर, भालू, हिरण, कस्तूरी मृग, लोमड़ी, मोर, जंगली मुर्गे, बोलने वाले तोते आदि भी लाए।

➲ लोग यह उपहार क्यों लाए? सरदार इन उपहारों का उपयोग किसलिए करते होंगे?

4.2 दैविक राजा

राजाओं के लिए उच्च स्थिति प्राप्त करने का एक साधन विभिन्न देवी-देवताओं के साथ जुड़ना था। मध्य एशिया से लेकर पश्चिमोत्तर भारत तक शासन करने वाले कुषाण शासकों ने (लगभग प्रथम शताब्दी ई.पू. से प्रथम शताब्दी ई. तक) इस उपाय का सबसे अच्छा उद्धरण प्रस्तुत किया। कुषाण इतिहास की रचना अभिलेखों और साहित्य परंपरा के माध्यम से की गई है। जिस प्रकार के राजधर्म को कुषाण शासकों ने प्रस्तुत करने की इच्छा की उसका सर्वोत्तम प्रमाण उनके सिक्कों और मूर्तियों से प्राप्त होता है।

उत्तर प्रदेश में मथुरा के पास माट के एक देवस्थान पर कुषाण शासकों की विशालकाय मूर्तियाँ लगाई गई थीं। अफ़गानिस्तान के एक देवस्थान पर भी इसी प्रकार की मूर्तियाँ मिली हैं। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि इन मूर्तियों के ज़रिए कुषाण स्वयं को देवतुल्य प्रस्तुत करना चाहते थे। कई कुषाण शासकों ने अपने नाम के आगे 'देवपुत्र' की उपाधि भी लगाई थी। संभवत: वे उन चीनी शासकों से प्रेरित हुए होंगे, जो स्वयं को स्वर्गपुत्र कहते थे।

चौथी शताब्दी ई. में गुप्त साम्राज्य सहित कई बड़े साम्राज्यों के साक्ष्य मिलते हैं। इनमें से कई साम्राज्य सामंतों पर निर्भर थे। अपना निर्वाह स्थानीय संसाधनों द्वारा करते थे जिसमें भूमि पर नियंत्रण भी शामिल था। वे शासकों का आदर करते थे और उनकी सैनिक सहायता भी करते थे। जो सामंत शक्तिशाली होते थे वे राजा भी बन जाते थे और जो राजा दुर्बल होते थे, वे बड़े शासकों के अधीन हो जाते थे।

गुप्त शासकों का इतिहास साहित्य, सिक्कों और अभिलेखों की सहायता से लिखा गया है। साथ ही कवियों द्वारा अपने राजा या स्वामी की प्रशंसा में लिखी प्रशस्तियाँ भी उपयोगी रही हैं। यद्यपि इतिहासकार इन रचनाओं के आधार पर ऐतिहासिक तथ्य निकालने का प्राय: प्रयास

चित्र 2.4
एक कुषाण सिक्का
अग्र भाग - कनिष्क
पृष्ठ भाग - देवता

➲ राजा को किस प्रकार दर्शाया गया है?

करते हैं लेकिन उनके रचयिता तथ्यात्मक विवरण की अपेक्षा उन्हें काव्यात्मक ग्रंथ मानते थे। उदाहरण के तौर पर, इलाहाबाद स्तंभ अभिलेख के नाम से प्रसिद्ध *प्रयाग प्रशस्ति* की रचना हरिषेण जो स्वयं गुप्त सम्राटों के संभवतः सबसे शक्तिशाली सम्राट समुद्रगुप्त के राजकवि थे, ने संस्कृत में की थी।

स्रोत 4

समुद्रगुप्त की प्रशस्ति

यह *प्रयाग प्रशस्ति* का एक अंश है :

धरती पर उनका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं था। अनेक गुणों और शुभकार्यों से संपन्न उन्होंने अपने पैर के तलवे से अन्य राजाओं के यश को मिटा दिया है। वे परमात्मा पुरुष हैं, साधु (भले) की समृद्धि और असाधु (बुरे) के विनाश के कारण हैं। वे अज्ञेय हैं। उनके कोमल हृदय को भक्ति और विनय से ही वश में किया जा सकता है। वे करुणा से भरे हुए हैं। वे अनेक सहस्र गायों के दाता हैं। उनके मस्तिष्क की दीक्षा दीन-दुखियों, विरहणियों और पीड़ितों के उद्धार के लिए की गई है। वे मानवता के लिए दिव्यमान उदारता की प्रतिमूर्ति हैं। वे देवताओं में कुबेर (धन-देव), वरुण (समुद्र-देव), इंद्र (वर्षा के देवता) और यम (मृत्यु-देव) के तुल्य हैं।

चित्र 2.5
बलुआ पत्थर से बनी कुषाण राजा की एक मूर्ति

➲ इस मूर्ति में ऐसी क्या विशेषताएँ हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि यह एक राजा की मूर्ति है?

➲ चर्चा कीजिए...

राजाओं ने दिव्य स्थिति का दावा क्यों किया?

स्रोत 5

गुजरात की सुदर्शन झील

मानचित्र 2 में गिरनार ढूँढ़िए। सुदर्शन झील एक कृत्रिम जलाशय था। हमें इसका ज्ञान लगभग दूसरी शताब्दी ई. के संस्कृत के एक पाषाण अभिलेख से होता है। इस अभिलेख को शक शासक रुद्रदमन की उपलब्धियों का उल्लेख करने के लिए बनवाया गया था।

इस अभिलेख में कहा गया है कि जलद्वारों और तटबंधों वाली इस झील का निर्माण मौर्य काल में एक स्थानीय राज्यपाल द्वारा किया गया था। लेकिन एक भीषण तूफान के कारण इसके तटबंध टूट गए और सारा पानी बह गया। बताया जाता है कि तत्कालीन शासक रुद्रदमन ने इस झील की मरम्मत अपने खर्चे से करवाई थी, और इसके लिए अपनी प्रजा से कर भी नहीं लिया था। इसी पाषाण-खंड पर एक और अभिलेख (लगभग पाँचवीं सदी) है जिसमें कहा गया है कि गुप्त वंश के एक शासक ने एक बार फिर इस झील की मरम्मत करवाई थी।

➲ शासकों ने सिंचाई के प्रबंध क्यों किए?

धान की रोपाई उन क्षेत्रों में की जाती है जहाँ पानी बहुतायत मात्रा में होता है। इसमें पहले धान के बीज अंकुरित करके पानी से भरे खेतों में पौधों की रोपाई की जाती है। चूँकि ज़्यादा मात्रा में पौध बच जाती है अत: इससे धान की उपज बढ़ जाती है।

5. बदलता हुआ देहात

5.1 जनता में राजा की छवि

राजाओं के बारे में प्रजा क्या सोचती थी? स्वाभाविक है कि अभिलेखों से सभी जवाब नहीं मिलते हैं। वस्तुत: साधारण जनता द्वारा राजाओं के बारे में अपने विचारों और अनुभव के विवरण कम ही छोड़े गए हैं। फिर भी इतिहासकारों ने इसका निराकरण करने का प्रयास किया है। उदाहरण के तौर पर, जातक और पंचतंत्र जैसे ग्रंथों में वर्णित कथाओं की समीक्षा करके इतिहासकारों ने पता लगाया है कि इनमें से अनेक कथाओं के स्रोत मौखिक किस्से-कहानियाँ हैं जिन्हें बाद में लिपिबद्ध किया गया होगा। जातक कथाएँ पहली सहस्राब्दि ई. के मध्य में पालि भाषा में लिखी गईं।

गंदतिन्दु जातक नामक एक कहानी में बताया गया है कि एक कुटिल राजा की प्रजा किस प्रकार से दुखी रहती है। इन लोगों में वृद्ध महिलाएँ, पुरुष, किसान, पशुपालक, ग्रामीण बालक और यहाँ तक कि जानवर भी शामिल हैं। जब राजा अपनी पहचान बदल कर प्रजा के बीच में यह पता लगाने गया कि लोग उसके बारे में क्या सोचते हैं तो एक-एक कर सबने अपने दुखों के लिए राजा को भला-बुरा कहा। उनकी शिकायत थी कि रात में डकैत उन पर हमला करते हैं तो दिन में कर इकट्ठा करने वाले अधिकारी। ऐसी परिस्थिति से बचने के लिए लोग अपने-अपने गाँव छोड़ कर जंगल में बस गए।

जैसा कि इस कथा से पता चलता है कि राजा और प्रजा, विशेषकर ग्रामीण प्रजा, के बीच संबंध तनावपूर्ण रहते थे, क्योंकि शासक अपने राजकोष को भरने के लिए बड़े-बड़े कर की माँग करते थे जिससे किसान खासतौर पर त्रस्त रहते थे। इस जातक कथा से पता चलता है कि इस संकट से बचने का एक उपाय जंगल की ओर भाग जाना होता था। इसी बीच करों की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए किसानों ने उपज बढ़ाने के और उपाए ढूँढ़ने शुरू किए।

5.2 उपज बढ़ाने के तरीके

उपज बढ़ाने का एक तरीका हल का प्रचलन था। जो छठी शताब्दी ई. पू. से ही गंगा और कावेरी की घाटियों के उर्वर कछारी क्षेत्र में फैल गया था। जिन क्षेत्रों में भारी वर्षा होती थी वहाँ लोहे के फाल वाले हलों के माध्यम से उर्वर भूमि की जुताई की जाने लगी। इसके अलावा गंगा की घाटी में धान की रोपाई की वजह से उपज में भारी वृद्धि होने लगी। हालाँकि किसानों को इसके लिए कमरतोड़ मेहनत करनी पड़ती थी।

यद्यपि लोहे के फाल वाले हल की वजह से फसलों की उपज बढ़ने लगी लेकिन ऐसे हलों का उपयोग उपमहाद्वीप के कुछ ही हिस्से में

सीमित था। पंजाब और राजस्थान जैसी अर्धशुष्क ज़मीन वाले क्षेत्रों में लोहे के फाल वाले हल का प्रयोग बीसवीं सदी में शुरू हुआ। जो किसान उपमहाद्वीप के पूर्वोत्तर और मध्य पर्वतीय क्षेत्रों में रहते थे उन्होंने खेती के लिए कुदाल का उपयोग किया, जो ऐसे इलाके के लिए कहीं अधिक उपयोगी था।

उपज बढ़ाने का एक और तरीका कुओं, तालाबों और कहीं-कहीं नहरों के माध्यम से सिंचाई करना था। व्यक्तिगत लोगों और कृषक समुदायों ने मिलकर सिंचाई के साधन निर्मित किए। व्यक्तिगत तौर पर तालाबों, कुओं और नहरों जैसे सिंचाई साधन निर्मित करने वाले लोग प्रायः राजा या प्रभावशाली लोग थे जिन्होंने अपने इन कामों का उल्लेख अभिलेखों में भी करवाया।

5.3 ग्रामीण समाज में विभिन्नताएँ

यद्यपि खेती की इन नयी तकनीकों से उपज तो बढ़ी लेकिन इसके लाभ समान नहीं थे। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि खेती से जुड़े लोगों में उत्तरोत्तर भेद बढ़ता जा रहा था। कहानियों में विशेषकर बौद्ध कथाओं में भूमिहीन खेतिहर श्रमिकों, छोटे किसानों और बड़े-बड़े ज़मींदारों का उल्लेख मिलता है। पालि भाषा में *गहपति* का प्रयोग छोटे किसानों और ज़मींदारों के लिए किया जाता था। बड़े-बड़े ज़मींदार और ग्राम प्रधान शक्तिशाली माने जाते थे जो प्रायः किसानों पर नियंत्रण रखते थे। ग्राम प्रधान का पद प्रायः वंशानुगत होता था। आरंभिक तमिल संगम साहित्य में भी गाँवों में रहने वाले विभिन्न वर्गों के लोगों का उल्लेख है, जैसे कि *वेल्लालर* या बड़े ज़मींदार; हलवाहा या *उल्वर* और दास *अणिमई*। यह संभव है कि वर्गों की यह विभिन्नता भूमि के स्वामित्व, श्रम और नयी प्रौद्योगिकी के उपयोग पर आधारित हो। ऐसी परिस्थिति में भूमि का स्वामित्व महत्वपूर्ण हो गया जिसकी चर्चा प्रायः विधि ग्रंथों में की जाती थी।

गहपति

गहपति घर का मुखिया होता था और घर में रहने वाली महिलाओं, बच्चों, नौकरों और दासों पर नियंत्रण करता था। घर से जुड़े भूमि, जानवर या अन्य सभी वस्तुओं का वह मालिक होता था। कभी-कभी इस शब्द का प्रयोग नगरों में रहने वाले संभ्रांत व्यक्तियों और व्यापारियों के लिए भी होता था।

स्रोत 6

सीमाओं का महत्त्व

मनुस्मृति आरंभिक भारत का सबसे प्रसिद्ध विधिग्रंथ है। इसे संस्कृत भाषा में दूसरी शताब्दी ई.पू. और दूसरी शताब्दी ई. के बीच लिखा गया था। इस ग्रंथ में राजा को यह सलाह दी गई है :

> चूँकि सीमाओं की अनभिज्ञता के कारण विश्व में बार-बार विवाद पैदा होते हैं इसलिए उसे सीमाओं की पहचान के लिए गुप्त निशान ज़मीन में गाड़ कर रखने चाहिए जैसे कि पत्थर, हड्डियाँ, गाय के बाल, भूसी, राख, खपटे, गाय के सूखे गोबर, ईंट, कोयला, कंकड़ और रेत। उसे सीमाओं पर इसी प्रकार के और तत्व भूमि में छुपा कर गाड़ने चाहिए जो समय के साथ नष्ट न हों।

➲ क्या ये सीमा चिह्न विवाद के हल के लिए पर्याप्त रहे होंगे?

स्रोत 7

एक छोटे गाँव का जीवन

हर्षचरित संस्कृत में लिखी गई कन्नौज (मानचित्र 3 देखिए) के शासक हर्षवर्धन की जीवनी है, इसके लेखक बाणभट्ट (लगभग सातवीं शताब्दी ई.) हर्षवर्धन के राजकवि थे। यह उस ग्रंथ का एक अंश है। इसमें विंध्य क्षेत्र के जंगल के किनारे की एक बस्ती के जीवन का एक अतिविरल चित्रण किया गया है:

> बस्ती के किनारे का अधिकांश क्षेत्र जंगल है और यहाँ धान की उपज वाली, खलिहान और उपजाऊ भूमि के हिस्सों को छोटे किसानों ने आपस में बाँट लिया है... यहाँ के अधिकांश लोग कुदाल का प्रयोग करते हैं... क्योंकि घास से भरी भूमि में हल चलाना मुश्किल है। बहुत कम हिस्से साफ़ हैं, जो हैं भी उसकी काली मिट्टी काले लोहे जैसी सख्त है।
>
> यहाँ लोग पेड़ की छाल के गट्ठर लेकर चलते हैं... फूलों से भरे अनगिनत बोरे... अलसी और सन, भारी भात्रा में शहद, मोरपंख, मोम, लकड़ी और घास के बोझ लेकर आते-जाते रहते हैं। ग्रामीण महिलाएँ रास्ते में बसे गाँवों में जाकर बेचने को तत्पर रहती हैं। उनके सिरों पर जंगल से एकत्र किए गए फलों की टोकरियाँ थीं।

➲ इस अंश में वर्णित लोगों को व्यवसाय के आधार पर आप कैसे वर्गीकृत करेंगे?

5.4 भूमिदान और नए संभ्रात ग्रामीण

ईसवी की आरंभिक शताब्दियों से ही भूमिदान के प्रमाण मिलते हैं। इनमें से कई का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है। इनमें से कुछ अभिलेख पत्थरों पर लिखे गए थे लेकिन अधिकांश ताम्र पत्रों पर खुदे होते थे जिन्हें संभवत: उन लोगों को प्रमाण रूप में दिया जाता था जो भूमिदान लेते थे। भूमिदान के जो प्रमाण मिले हैं वे साधारण तौर पर धार्मिक संस्थाओं या ब्राह्मणों को दिए गए थे। अधिकांश अभिलेख संस्कृत में थे। विशेषकर सातवीं शताब्दी के बाद के अभिलेखों के कुछ अंश संस्कृत में हैं और कुछ तमिल और तेलुगु जैसी स्थानीय भाषाओं में हैं। आइए एक ऐसे अभिलेख पर ध्यान से विचार करें।

प्रभावती गुप्त आरंभिक भारत के एक सबसे महत्वपूर्ण शासक चंद्रगुप्त द्वितीय (लगभग 375-415 ई.पू.) की पुत्री थी। उसका विवाह दक्कन पठार के वाकाटक परिवार में हुआ था जो एक महत्वपूर्ण शासक वंश था। संस्कृत धर्मशास्त्रों के अनुसार, महिलाओं को भूमि जैसी संपत्ति पर स्वतंत्र अधिकार नहीं था लेकिन एक अभिलेख से पता चलता है कि प्रभावती भूमि की स्वामी थी और उसने दान भी किया था। इसका एक कारण यह हो सकता है, क्योंकि वह एक रानी (आरंभिक भारतीय इतिहास की ज्ञात कुछ रानियों में से एक) थी और इसीलिए उनका यह उदाहरण एक विरला ही रहा हो। यह भी संभव है कि धर्मशास्त्रों को हर स्थान पर समान रूप से लागू नहीं किया जाता हो।

अभिलेख से हमें ग्रामीण प्रजा का भी पता चलता है। इनमें ब्राह्मण, किसान तथा अन्य प्रकार के वर्ग शामिल थे जो शासकों या उनके प्रतिनिधियों को कई प्रकार की वस्तुएँ प्रदान करते थे। अभिलेख के अनुसार इन लोगों को गाँव के नए प्रधान की आज्ञाओं का पालन करना पड़ता था और संभवत: अपने भुगतान उसे ही देने पड़ते थे।

इस प्रकार भूमिदान अभिलेख देश के कई हिस्सों में प्राप्त हुए हैं। क्षेत्रों में दान में दी गई भूमि की माप में अंतर है : कहीं-कहीं छोटे-छोटे टुकड़े, तो कहीं कहीं बड़े-बड़े क्षेत्र दान में दिए गए हैं। साथ ही भूमिदान में दान प्राप्त करने वाले लोगों के अधिकारों में भी क्षेत्रीय परिवर्तन मिलते हैं। इतिहासकारों में भूमिदान का प्रभाव एक गर्म वाद-विवाद का विषय बना हुआ है। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि भूमिदान शासक वंश द्वारा कृषि को नए क्षेत्रों में प्रोत्साहित करने की एक रणनीति थी, जबकि कुछ का कहना है कि भूमिदान से दुर्बल होते राजनीतिक प्रभुत्व का संकेत मिलता है अर्थात् राजा का शासन सामंतों पर दुर्बल होने लगा तो उन्होंने भूमिदान के माध्यम से अपने समर्थक जुटाने प्रारंभ कर दिए। उनका यह भी मानना है कि राजा स्वयं को उत्कृष्ट स्तर के मानव के

रूप में प्रदर्शित करना चाहते थे (जैसा कि हमने पिछले अंश में देखा है)। उनका नियंत्रण ढीला होता जा रहा था इसलिए वे अपनी शक्ति का आडंबर प्रस्तुत करना चाहते थे।

स्रोत 8

प्रभावती गुप्त और दंगुन गाँव

प्रभावती गुप्त ने अपने अभिलेख में यह कहा है:

प्रभावती ग्राम कुटुंबिनों (गाँव के गृहस्थ और कृषक), ब्राह्मणों, और दंगुन गाँव के अन्य वासियों को आदेश देती है ...

"आपको ज्ञात हो कि कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को धार्मिक पुण्य प्राप्ति के लिए इस ग्राम को जल अर्पण के साथ आचार्य चनालस्वामी को दान किया गया है। आपको इनके सभी आदेशों का पालन करना चाहिए।

एक *अग्रहार* के लिए उपयुक्त निम्नलिखित रियायतों का निर्देश भी देती हूँ। इस गाँव में पुलिस या सैनिक प्रवेश नहीं करेंगे। दौरे पर आने वाले शासकीय अधिकारियों को यह गाँव घास देने और आसन में प्रयुक्त होने वाली जानवरों की खाल और कोयला देने के दायित्व से मुक्त है। साथ ही वे मदिरा खरीदने और नमक हेतु खुदाई करने के राजसी अधिकार को कार्यान्वित किए जाने से मुक्त हैं। इस गाँव को खनिज-पदार्थ और *खदिर* वृक्ष के उत्पाद देने से भी छूट है। फूल और दूध देने से भी छूट है। इस गाँव का दान इसके भीतर की संपत्ति और बड़े-छोटे सभी करों सहित किया गया है।"

इस राज्यादेश को 13वें राज्य वर्ष में लिखा गया है और इसे चक्रदास ने उत्कीर्ण किया है।

➲ इस गाँव में कौन-कौन सी वस्तुएँ पैदा की जाती थीं?

अग्रहार उस भूभाग को कहते थे जो ब्राह्मणों को दान किया जाता था। ब्राह्मणों से भूमिकर या अन्य प्रकार के कर नहीं वसूले जाते थे। ब्राह्मणों को स्वयं स्थानीय लोगों से कर वसूलने का अधिकार था।

भूमिदान के प्रचलन से राज्य तथा किसानों के बीच संबंध की झाँकी मिलती है। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी थे जिन पर अधिकारियों या *सामंतों* का नियंत्रण नहीं था: जैसे कि पशुपालक, संग्राहक, शिकारी, मछुआरे, शिल्पकार (घुमक्कड़ तथा लगभग एक ही स्थान पर रहने वाले) और जगह-जगह घूम कर खेती करने वाले लोग। सामान्यत: ऐसे लोग अपने जीवन और आदान-प्रदान के विवरण नहीं रखते थे।

6. नगर एवं व्यापार

6.1 नए नगर

आइए उन नगरों की बात करें जिनका विकास लगभग छठी शताब्दी ई.पू. में

➲ चर्चा कीजिए...

यह पता कीजिए कि क्या आपके राज्य में हल से खेती, सिंचाई, तथा धान की रोपाई की जाती है? और अगर नहीं तो क्या कोई वैकल्पिक व्यवस्थाएँ हैं।

पाटलिपुत्र का इतिहास

प्रत्येक नगर का अपना इतिहास था। उदाहरण के तौर पर, पाटलिपुत्र का विकास पाटलिग्राम नाम के एक गाँव से हुआ। फिर पाँचवीं सदी ई.पू. में मगध शासकों ने अपनी राजधानी राजगाह से हटाकर इसे बस्ती में लाने का निर्णय किया और इसका नाम बदल दिया। चौथी शताब्दी ई. पू. तक आते-आते यह मौर्य साम्राज्य की राजधानी और एशिया के सबसे बड़े नगरों में से एक बन गया। बाद में इसका महत्त्व कम हो गया और जब चीनी यात्री श्वैन त्सांग सातवीं सदी ई. में यहाँ आया तो इसे यह नगर खंडहर में बदला मिला और उस समय यहाँ की जनसंख्या भी कम थी।

उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों में हुआ। जैसा कि हमने पढ़ा है, इनमें से अधिकांश नगर *महाजनपदों* की राजधानियाँ थे। प्रायः सभी नगर संचार मार्गों के किनारे बसे थे। पाटलिपुत्र जैसे कुछ नगर नदीमार्ग के किनारे बसे थे। उज्जयिनी जैसे अन्य नगर भूतल मार्गों के किनारे थे। इसके अलावा पुहार जैसे नगर समुद्रतट पर थे, जहाँ से समुद्री मार्ग प्रारंभ हुए। मथुरा जैसे अनेक शहर व्यावसायिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतिविधियों के जीवंत केंद्र थे।

6.2 नगरीय जनसंख्या :

संभ्रांत वर्ग और शिल्पकार

हमने पढ़ा है कि शासक वर्ग और राजा किलेबंद नगरों में रहते थे। यद्यपि इनमें से अधिकांश स्थलों पर व्यापक रूप से खुदाई करना संभव नहीं है, क्योंकि आज भी इन क्षेत्रों में लोग रहते हैं (हड़प्पा शहरों से भिन्न)। लेकिन फिर भी यहाँ से विभिन्न प्रकार के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं। इनमें उत्कृष्ट श्रेणी के मिट्टी के कटोरे और थालियाँ मिली हैं जिन पर चमकदार कलई चढ़ी है। इन्हें उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र कहा जाता है। संभवतः इनका उपयोग अमीर लोग किया करते होंगे। साथ ही सोने चाँदी, कांस्य, ताँबे, हाथी दाँत, शीशे जैसे तरह-तरह के पदार्थों के बने गहने, उपकरण, हथियार, बर्तन, सीप और पक्की मिट्टी मिली हैं।

द्वितीय शताब्दी ई. आते-आते हमें कई नगरों में छोटे दानात्मक अभिलेख प्राप्त होते हैं। इनमें दाता के नाम के साथ-साथ प्रायः उसके व्यवसाय का भी उल्लेख होता है। इनमें नगरों में रहने वाले धोबी,

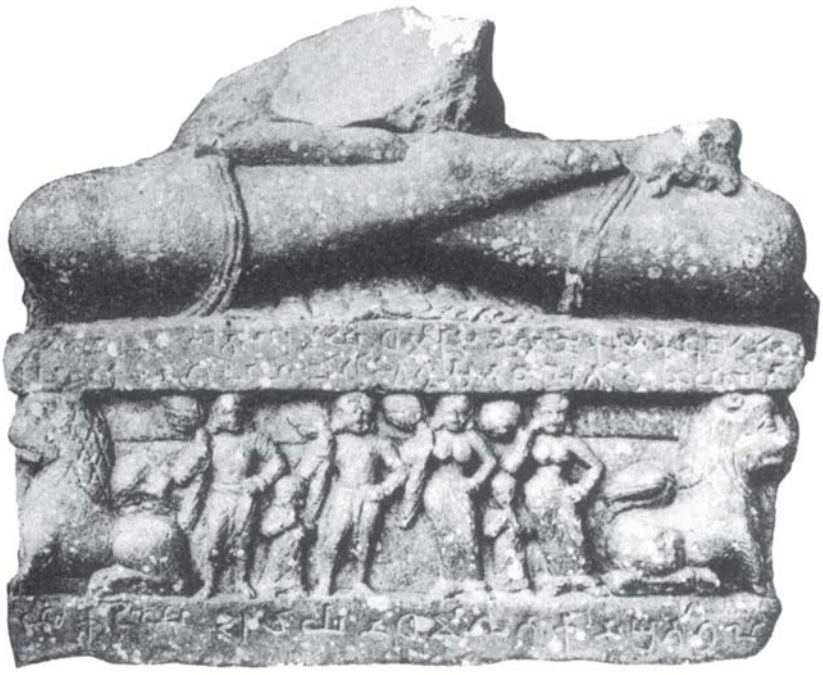

चित्र 2.6
एक प्रतिमा की भेंट
यह मथुरा से मिली एक मूर्ति का भाग है। इस पर प्राकृत में अभिलेख है जिसमें कहा गया है कि एक स्वर्णकार धर्मक की पत्नी नागपिया ने इसे एक धार्मिक स्थल में स्थापित किया था।

मानचित्र 3
कुछ महत्वपूर्ण राज्य और नगर

➲ तीसरी सहस्राब्दि ई.पू. में हड़प्पा सभ्यता जिस क्षेत्र में फैली क्या वहाँ कोई नगर थे?

बुनकर, लिपिक, बढ़ाई, कुम्हार, स्वर्णकार, लौहकार, अधिकारी, धार्मिक गुरु, व्यापारी और राजाओं के बारे में विवरण लिखे होते हैं।

कभी-कभी उत्पादकों और व्यापारियों के संघ का भी उल्लेख मिलता है जिन्हें *श्रेणी* कहा गया है। ये श्रेणियाँ संभवत: पहले कच्चे माल को खरीदती थीं; फिर उनसे सामान तैयार कर बाज़ार में बेच देती थीं। यह संभव है कि शिल्पकारों ने नगर में रहने वाले संभ्रांत लोगों की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए कई प्रकार के लौह उपकरणों का प्रयोग किया हो।

6.3 उपमहाद्वीप और उसके बाहर का व्यापार

छठी शताब्दी ई.पू. से ही उपमहाद्वीप में नदी मार्गों और भूमार्गों का मानो जाल बिछ गया था और कई दिशाओं में फैल गया था। मध्य एशिया और उससे भी आगे तक भू-मार्ग थे। समुद्रतट पर बने कई बंदरगाहों से

दानात्मक अभिलेखों में धार्मिक संस्थाओं को दिए दान का विवरण होता है।

स्रोत 9

मालाबार तट (आधुनिक केरल)

यह एक यूनानी समुद्र यात्री द्वारा रचित *पेरिप्लस ऑफ़ एरीथ्रियन सी* का एक अंश (लगभग प्रथम शताब्दी ई.) है।

भारी मात्रा में काली मिर्च और दाल चीनी खरीदने के लिए बाज़ार वाले नगरों में वे (विदेशी व्यापारी) जहाज़ भेजते हैं। एक तो यहाँ भारी मात्रा में सिक्कों, पुखराज, सुरमा, मूँगे, कच्चे शीशे, ताँबे, टिन और सीसे का आयात किया जाता है... इन बाज़ारों के आसपास भारी मात्रा में उत्पन्न काली मिर्च का निर्यात किया जाता है... इसके अलावा, उच्च कोटि के मोतियों, हाथी दाँत, रेशमी वस्त्र विभिन्न प्रकार के पारदर्शी पत्थरों, हीरों और काले नग और कछुए की खोपड़ी का भारी मात्रा में आयात होता है।

तमिलनाडु के कोडुमनाल में बहुमूल्य और कम मूल्यवान पत्थरों से बनाए जाने वाले मूँगों के उद्योग के पुरातात्विक साक्ष्य मिले हैं। यह संभव है कि *पेरिप्लस* में वर्णित पत्थरों को इन्हीं तटवर्ती बंदरगाहों तक स्थानीय व्यापारी लाए होंगे।

➲ लेखक ने यह सूची क्यों तैयार की थी?

पेरिप्लस यूनानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ समुद्री यात्रा है और *एरीथ्रियन* यूनानी भाषा में लाल सागर को कहते हैं।

जलमार्ग अरब सागर से होते हुए, उत्तरी अफ़्रीका, पश्चिम एशिया तक फैल गया; और बंगाल की खाड़ी से यह मार्ग चीन और दक्षिणपूर्व एशिया तक फैल गया था। शासकों ने प्रायः इन मार्गों पर नियंत्रण करने की कोशिश की और संभवतः वे इन मार्गों पर व्यापारियों की सुरक्षा के बदले उनसे धन लेते थे।

इन मार्गों पर चलने वाले व्यापारियों में पैदल फेरी लगाने वाले व्यापारी तथा बैलगाड़ी और घोड़े-खच्चरों जैसे जानवरों के दल के साथ चलने वाले व्यापारी होते थे। साथ ही समुद्री मार्ग से भी लोग यात्रा करते थे जो खतरनाक तो थी, लेकिन बहुत लाभदायक भी होती थी। तमिल भाषा में *मसत्थुवन* और प्राकृत में *सत्थवाह* और *सेट्ठी* के नाम से प्रसिद्ध सफल व्यापारी बड़े धनी हो जाते थे। नमक, अनाज, कपड़ा, धातु और उससे निर्मित उत्पाद, पत्थर, लकड़ी, जड़ी-बूटी जैसे अनेक प्रकार के सामान एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाए जाते थे। रोमन साम्राज्य में काली मिर्च, जैसे मसालों तथा कपड़ों व जड़ी-बूटियों की भारी माँग थी। इन सभी वस्तुओं को अरब सागर के रास्ते भूमध्य क्षेत्र तक पहुँचाया जाता था।

6.4 सिक्के और राजा

व्यापार के लिए सिक्के के प्रचलन से विनिमय कुछ हद तक आसान हो गया था। चाँदी और ताँबे के आहत सिक्के (छठी शताब्दी ई.पू.) सबसे पहले ढाले गए और प्रयोग में आए। पूरे उपमहाद्वीप में खुदाई के दौरान इस प्रकार के सिक्के मिले हैं। मुद्राशास्त्रियों ने इनका और अन्य सिक्कों का अध्ययन करके उनके वाणिज्यिक प्रयोग के संभावित क्षेत्रों का पता लगाया है।

आहत सिक्के पर बने प्रतीकों को उन विशेष मौर्य वंश जैसे राजवंशों के प्रतीकों से मिलाकर पहचान करने की कोशिश की गई तो पता चला कि इन सिक्कों को राजाओं ने जारी किया था। यह भी संभव है कि व्यापारियों, धनपतियों और नागरिकों ने इस प्रकार के कुछ सिक्के जारी किए हों। शासकों की प्रतिमा और नाम के साथ सबसे पहले सिक्के हिंद-यूनानी शासकों ने जारी किए थे जिन्होंने द्वितीय शताब्दी ई.पू. में उपमहाद्वीप के पूर्वोत्तर क्षेत्र पर नियंत्रण स्थापित किया था।

सोने के सिक्के सबसे पहले प्रथम शताब्दी ईसवी में कुषाण राजाओं ने जारी किए थे। इनके आकार और वज़न तत्कालीन रोमन सम्राटों तथा ईरान के पार्थियन शासकों द्वारा जारी सिक्कों के बिलकुल समान थे। उत्तर और मध्य भारत के कई पुरास्थलों पर ऐसे सिक्के मिले हैं। सोने के सिक्कों के व्यापक प्रयोग से संकेत मिलता है कि बहुमूल्य वस्तुओं और भारी मात्रा में वस्तुओं का विनिमय किया जाता था। इसके अलावा, दक्षिण भारत के अनेक पुरास्थलों से बड़ी संख्या में रोमन सिक्के मिले हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि व्यापारिक तंत्र राजनीतिक सीमाओं से बँधा

नहीं था; क्योंकि दक्षिण भारत रोमन साम्राज्य के अंतर्गत न होते हुए भी व्यापारिक दृष्टि से रोमन साम्राज्य से संबंधित था।

पंजाब और हरियाणा जैसे क्षेत्रों के यौधेय (प्रथम शताब्दी ई.) कबायली गणराज्यों ने भी सिक्के जारी किए थे। पुराविदों को यौधेय शासकों द्वारा जारी ताँबे के सिक्के हज़ारों की संख्या में मिले हैं जिनसे यौधेयों की व्यापार में रुचि और सहभागिता परिलक्षित होती है।

सोने के सबसे भव्य सिक्कों में से कुछ गुप्त शासकों ने जारी किए। इनके आरंभिक सिक्कों में प्रयुक्त सोना अति उत्तम था। इन सिक्कों के माध्यम से दूर देशों से व्यापार-विनिमय करने में आसानी होती थी जिससे शासकों को भी लाभ होता था।

छठी शताब्दी ई. से सोने के सिक्के मिलने कम हो गए। क्या इससे यह संकेत मिलता है कि उस काल में कुछ आर्थिक संकट पैदा हो गया था? इतिहासकारों में इसे लेकर मतभेद है। कुछ का कहना है कि रोमन साम्राज्य के पतन के बाद दूरवर्ती व्यापार में कमी आई जिससे उन राज्यों, समुदायों और क्षेत्रों की संपन्नता पर असर पड़ा जिन्हें दूरवर्ती व्यापार से लाभ मिलता था। अन्य का कहना है, कि इस काल में नए नगरों और व्यापार के नवीन तंत्रों का उदय होने लगा था। उनका यह भी कहना है कि यद्यपि इस काल के सोने के सिक्कों का मिलना तो कम हो गया लेकिन अभिलेखों और ग्रंथों में सिक्के का उल्लेख होता रहा है। क्या इसका अर्थ यह हो सकता है कि सिक्के इसलिए कम मिलते हैं क्योंकि वे प्रचलन में थे और उनका किसी ने संग्रह करके नहीं रखा था।

7. मूल बातें

अभिलेखों का अर्थ कैसे निकाला जाता है?

अभी तक हम अन्य बातों के अलावा अभिलेखों के अंशों के बारे में अध्ययन कर रहे थे। लेकिन इतिहासकारों को यह कैसे ज्ञात होता है कि अभिलेखों पर क्या लिखा है?

मुद्राशास्त्र सिक्कों का अध्ययन है। इसके साथ ही उन पर पाए जाने वाले चित्र, लिपि आदि तथा उनकी धातुओं का विश्लेषण और जिन संदर्भों में इन सिक्के को पाया गया है, उनका अध्ययन भी मुद्राशास्त्र के अंतर्गत आता है।

चित्र 2.7
आहत शब्द से ही स्पष्ट है कि इन सिक्कों पर प्रतीकों को आहत कर उन्हें बनाया जाता था

चित्र 2.8
एक यौधेय सिक्का

चित्र 2.9
एक गुप्त सिक्का

➲ चर्चा कीजिए...

व्यापार में विनिमय के लिए क्या-क्या प्रयोग होता था? उल्लिखित स्रोतों से किस प्रकार के विनिमय का पता चलता है। क्या कुछ विनिमय ऐसे भी हैं जिनका ज्ञान स्रोतों से नहीं हो पाता है?

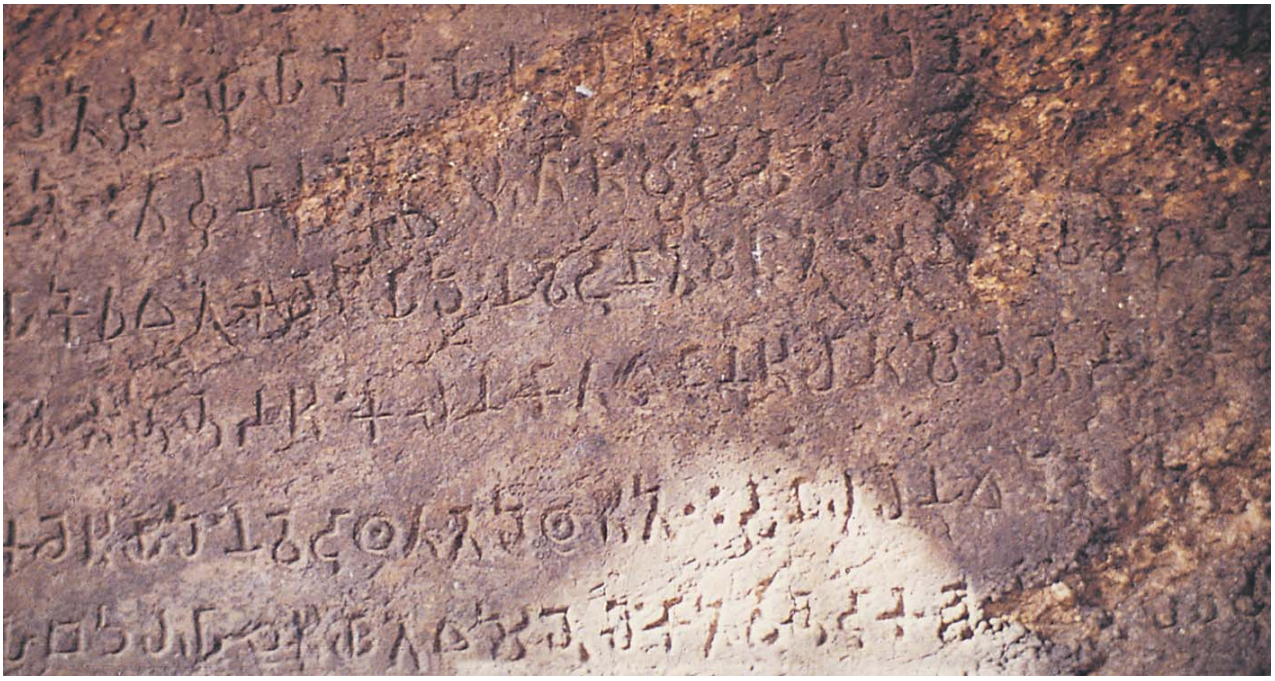

चित्र 2.10
असोक का एक अभिलेख

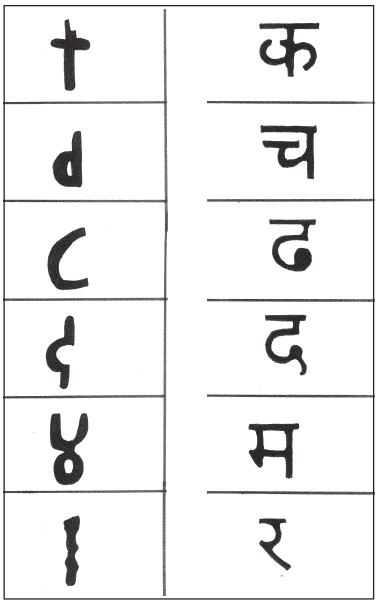

चित्र 2.11
असोक के समय की ब्राह्मी व उसके समानार्थी देवनागरी अक्षर

➲ क्या कुछ देवनागरी अक्षर ब्राह्मी से मिलते-जुलते हैं? क्या कुछ भिन्न भी हैं?

7.1 ब्राह्मी लिपि का अध्ययन

आधुनिक भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त लगभग सभी लिपियों का मूल ब्राह्मी लिपि है। ब्राह्मी लिपि का प्रयोग असोक के अभिलेखों में किया गया है। अट्ठारहवीं सदी से यूरोपीय विद्वानों ने भारतीय पंडितों की सहायता से आधुनिक बंगाली और देवनागरी लिपि में कई पांडुलिपियों का अध्ययन शुरू किया और उनके अक्षरों की प्राचीन अक्षरों के नमूनों से तुलना शुरू की।

आरंभिक अभिलेखों का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने कई बार यह अनुमान लगाया कि ये संस्कृत में लिखे हैं जबकि प्राचीनतम अभिलेख वस्तुत: प्राकृत में थे। फिर कई दशकों बाद अभिलेख वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम के बाद जेम्स प्रिंसेप ने असोककालीन ब्राह्मी लिपि का 1838 ई. में अर्थ निकाल लिया।

7.2 खरोष्ठी लिपि को कैसे पढ़ा गया?

पश्चिमोत्तर के अभिलेखों में प्रयुक्त खरोष्ठी लिपि के पढ़े जाने की कहानी अलग है। इस क्षेत्र में शासन करने वाले हिंद-यूनानी राजाओं (लगभग द्वितीय-प्रथम शताब्दी ई.पू.) द्वारा बनवाए गए सिक्कों से जानकारी हासिल करने में आसानी हुई है। इन सिक्कों में राजाओं के नाम यूनानी और खरोष्ठी में लिखे गए हैं। यूनानी भाषा पढ़ने वाले यूरोपीय विद्वानों ने अक्षरों का मेल किया। उदाहरण के तौर पर, दोनों लिपियों में अपोलोडोटस का नाम लिखने में एक ही प्रतीक, मान लीजिए 'अ' प्रयुक्त किया गया। चूँकि प्रिंसेप ने खरोष्ठी में लिखे अभिलेखों की भाषा

की पहचान प्राकृत के रूप में की थी इसलिए लंबे अभिलेखों को पढ़ना सरल हो गया।

7.3 अभिलेखों से प्राप्त ऐतिहासिक साक्ष्य

इतिहासकारों एवं अभिलेखशास्त्रियों के काम करने के तरीकों का पता लगाने के लिए आइए असोक के दो अभिलेखों को ध्यान से पढ़ें।

ध्यान देने योग्य बात है कि अभिलेख (स्रोत 10) में शासक असोक का नाम नहीं लिखा है। उसमें असोक द्वारा अपनाई गई उपाधियों का प्रयोग किया गया है; जैसे कि *देवानांपिय* अर्थात् देवताओं का प्रिय और '*पियदस्सी*' यानी 'देखने में सुन्दर'। असोक नाम अन्य अभिलेखों में मिलता है जिसमें उनकी उपाधियाँ भी लिखी हैं। इन अभिलेखों का परीक्षण करने के बाद अभिलेखशास्त्रियों ने पता लगाया कि उनके विषय, शैली, भाषा और पुरालिपिविज्ञान सबमें समानता है, अत: वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इन अभिलेखों को एक ही शासक ने बनवाया था।

आपने यह भी देखा होगा कि असोक ने अपने अभिलेखों में कहा है कि उनसे पहले के शासकों ने रिपोर्ट एकत्र करने की व्यवस्था नहीं की थी। यदि असोक से पहले के उपमहाद्वीपीय इतिहास पर विचार करें तो क्या आपको लगता है कि असोक का यह वक्तव्य सही है? इतिहासकारों को बार-बार अभिलेखों में लिखे कथनों का परीक्षण करना पड़ता है ताकि यह पता चल सके जो उनमें लिखा है, वह सत्य है, संभव है या फिर अतिशयोक्तिपूर्ण है।

क्या आपने ध्यान दिया कि कुछ शब्द ब्रैकेट में लिखे हैं? अभिलेख शास्त्री प्राय: वाक्यों के अर्थ स्पष्ट करने के लिए ऐसा करते हैं। यह बड़े ध्यान से करना पड़ता है जिससे कि लेखक का मूल अर्थ बदल न जाए।

इतिहासकारों को और भी परीक्षण करने पड़ते हैं। यदि राजा के आदेश यातायात मार्गों के किनारे और नगरों के पास प्राकृतिक पत्थरों पर उत्कीर्ण थे, तो क्या वहाँ से आने-जाने वाले लोग उन्हें पढ़ने के लिए उस स्थान पर रुकते थे? अधिकांश लोग प्राय: पढ़े-लिखे नहीं थे। क्या

स्रोत 10

राजा के आदेश

राजन् देवानांपिय पियदस्सी यह कहते हैं:

अतीत में मसलों को निपटाने और नियमित रूप से सूचना एकत्र करने की व्यवस्थएँ नहीं थीं। लेकिन मैंने निम्नलिखित (व्यवस्था) की हैं। लोगों के समाचार हम तक *पतिवेदक* सदैव पहुँचाएँ। चाहे मैं कहीं भी हूँ, खाना खा रहा हूँ, अन्त:पुर में हूँ विश्राम कक्ष में हूँ, गोशाले में हूँ, या फिर पालकी में मुझे ले जाया जा रहा हो अथवा वाटिका में हूँ। मैं लोगों के विषयों का निराकरण हर स्थल पर करूँगा।

➲ अभिलेखशास्त्रियों ने *पतिवेदक* शब्द का अर्थ संवाददाता बताया है। आधुनिक संवाददाता की तुलना में *पतिवेदक* के दायित्व कितने भिन्न रहे होंगे?

चित्र 2.12
हिंद-यूनानी शासक मेनाण्डर का एक सिक्का

स्रोत 11

राजा की वेदना

जब देवानांपिय पियदस्सी ने अपने शासन के आठ वर्ष पूरे किए तो उन्होंने कलिंग (आधुनिक तटवर्ती उड़ीसा) पर विजय प्राप्त की।

डेढ़ लाख पुरुषों को निष्कासित किया गया; एक लाख मारे गए और इससे भी ज़्यादा की मृत्यु हुई।

कलिंग पर शासन स्थापित करने के बाद देवानांपिय धम्म के गहन अध्ययन, धम्म के स्नेह और धम्म के उपदेश में डूब गए हैं।

यही देवानांपिय के लिए कलिंग की विजय का पश्चाताप है।

देवानांपिय के लिए यह बहुत वेदनादायी और निंदनीय है कि जब कोई किसी राज्य पर विजय प्राप्त करता है तो पराजित राज्य का हनन होता है, वहाँ लोग मारे जाते हैं, निष्कासित किए जाते हैं।

➲ चर्चा कीजिए...

मानचित्र 2 देखिए और असोक के अभिलेख के प्राप्ति स्थान की चर्चा कीजिए। क्या उनमें कोई एक-सा प्रारूप दिखता है?

पाटलिपुत्र में प्रयुक्त प्राकृत उपमहाद्वीप में सभी स्थानों पर लोग समझते थे? क्या राजा के आदेशों का पालन किया जाता था? इन प्रश्नों के उत्तर पाना सदैव आसान नहीं हैं।

इनमें से कुछ समस्याओं के प्रमाण हमें असोक के अभिलेख में मिलते हैं (स्रोत 11) जिसकी व्याख्या प्राय: असोक की वेदना के प्रतिबिंब के रूप में की जाती है। साथ ही यह युद्ध के प्रति उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन को भी दर्शाता है। जैसा कि हम आगे पढ़ेंगे, यदि हम अभिलेख के शाब्दिक अर्थ के परे समझने का प्रयास करते हैं तो परिस्थिति और भी जटिल हो जाती है।

यद्यपि असोक के अभिलेख आधुनिक उड़ीसा से प्राप्त हुए हैं लेकिन उनकी वेदना को परिलक्षित करने वाला अभिलेख वहाँ नहीं मिला है अर्थात् यह अभिलेख उस क्षेत्र में नहीं उपलब्ध है जिस पर विजय प्राप्त की गई थी। इसका हम क्या अर्थ लगाएँ? क्या राजा की नव विजय की वेदना उस क्षेत्र के लिए इतनी दर्दनाक थी कि राजा इस मुद्दे पर कुछ कह न सका।

8. अभिलेख साक्ष्य की सीमा

अब आपको यह पता चल गया होगा कि अभिलेखों से प्राप्त जानकारी की भी सीमा होती है। कभी-कभी इसकी तकनीकी सीमा होती है: अक्षरों को हलके ढंग से उत्कीर्ण किया जाता है जिन्हें पढ़ पाना मुश्किल होता है। साथ ही, अभिलेख नष्ट भी हो सकते हैं जिनसे अक्षर लुप्त हो जाते हैं। इसके अलावा अभिलेखों के शब्दों के वास्तविक अर्थ के बारे में पूर्ण रूप से ज्ञान हो पाना सदैव सरल नहीं होता क्योंकि कुछ अर्थ किसी विशेष स्थान या समय से संबंधित होते हैं। यदि आप अभिलेख के शोधपत्रों को पढ़ें (इसमें से कुछ का उल्लेख काल रेखा 2 में किया गया है) तो आप पाएँगे कि विद्वान इनके पढ़ने की वैकल्पिक विधियों पर चर्चा करते रहते हैं।

यद्यपि कई हज़ार अभिलेख प्राप्त हुए हैं लेकिन सभी के अर्थ नहीं निकाले जा सके हैं या प्रकाशित किए गए हैं या उनके अनुवाद किए गए हैं। इनके अतिरिक्त और अनेक अभिलेख रहे होंगे जो कालांतर में सुरक्षित नहीं बचे हैं। इसलिए जो अभिलेख अभी उपलब्ध हैं, वह संभवत: कुल अभिलेखों के अंश मात्र हैं।

इसके अतिरिक्त एक और मौलिक समस्या है। यह ज़रूरी नहीं है कि जिसे हम आज राजनीतिक और आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण मानते हैं उन्हें अभिलेखों में अंकित किया ही गया हो। उदाहरण के तौर पर, खेती की दैनिक प्रक्रियाएँ और रोज़मर्रा की ज़िंदगी के सुख-दुख का उल्लेख अभिलेखों में नहीं मिलता है क्योंकि प्राय: अभिलेख बड़े और विशेष

अवसरों का वर्णन करते हैं। इसके अलावा अभिलेख हमेशा उन्हीं व्यक्तियों के विचार व्यक्त करते हैं जो उन्हें बनवाते थे। इसलिए इन अभिलेखों में व्यक्त विचारों की समीक्षा अन्य विचारों के परिप्रेक्ष्य में करनी होगी ताकि अपने अतीत का बेहतर ज्ञान हो सके।

अर्थात् राजनीतिक और आर्थिक इतिहास का पूर्ण ज्ञान मात्र अभिलेख शास्त्र से ही नहीं मिलता है। साथ ही इतिहासकार प्रायः प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकार के प्रमाणों पर आशंका व्यक्त करते हैं। उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशकों में और बीसवीं सदी के प्रारंभ में इतिहासकार प्रमुख रूप से राजाओं के इतिहास में रुचि रखते थे। बीसवीं सदी के मध्य से आर्थिक परिवर्तन, विभिन्न सामाजिक समुदायों के उदय के विषय में महत्वपूर्ण बन गए। हाल के दशकों में ऐसे समुदायों के प्रति इतिहासकारों की रुचि बढ़ी है जो सामाजिक हाशिए पर रहे हैं। इससे संभवतः प्राचीन स्रोतों पर पुनर्विचार किया जाएगा और विश्लेषण की नयी विधियाँ विकसित होंगी।

चित्र 2.13
कर्नाटक से प्राप्त एक ताम्रपत्र लेख; लगभग छठी शताब्दी ई.

काल रेखा 1
प्रमुख राजनीतिक और आर्थिक विकास

लगभग 600-500 ई.पू.	धान की रोपाई; गंगा घाटी में नगरीकरण; महाजनपद; आहत सिक्के
लगभग 500-400 ई.पू.	मगध के शासकों की सत्ता पर पकड़
लगभग 327-325 ई.पू.	सिकंदर का आक्रमण
लगभग 321 ई.पू.	चंद्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण
लगभग 272/268-231 ई.पू.	असोक का शासन
लगभग 185 ई.पू.	मौर्य साम्राज्य का अंत
लगभग 200-100 ई.पू.	पश्चिमोत्तर में शक शासन; दक्षिण भारत में चोल, चेर व पांड्य; दक्कन में सातवाहन
लगभग 100-200 ई.पू. तक	पश्चिमोत्तर के शक (मध्य एशिया के लोग) शासक; रोमन व्यापार; सोने के सिक्के
लगभग 78 ई.पू.	कनिष्क का राज्यारोहण
लगभग 100-200 ई.पू.	सातवाहन और शक शासकों द्वारा भूमिदान के अभिलेखीय प्रमाण
लगभग 320 ई.पू.	गुप्त शासन का आरंभ
लगभग 335-375 ई.पू.	समुद्रगुप्त
लगभग 375-415 ई.पू.	चंद्रगुप्त द्वितीय; दक्कन में वाकाटक
लगभग 500-600 ई.पू.	कर्नाटक में चालुक्यों का उदय और तमिलनाडु में पल्लवों का उदय
लगभग 606-647 ई.पू.	कन्नौज के राजा हर्षवर्धन; चीनी यात्री श्वैन त्सांग की यात्रा
लगभग 712	अरबों की सिंध पर विजय

(नोट: आर्थिक विकास का शुद्ध कालनिर्धारण आसान नहीं है। साथ ही उपमहाद्वीप में अनेक भिन्नताएँ हैं जिन्हें काल रेखा में इंगित नहीं किया गया है। विशेष विकास के विशिष्ट काल का उल्लेख किया गया है। कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि निश्चित नहीं है अत: राज्यारोहण की तिथि के साथ प्रश्नवाचक चिह्न लगाया गया है।)

काल रेखा 2
अभिलेखशास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति

अट्ठारहवीं शताब्दी	
1784	बंगाल एशियाटिक सोसाइटी का गठन
उन्नीसवीं शताब्दी	
1810 का दशक	कोलिन मैकेंज़ी ने संस्कृत और तमिल भाषा के 8,000 अभिलेख एकत्र किए
1838	जेम्स प्रिंसेप द्वारा असोक के ब्राह्मी अभिलेखों का अर्थ लगाना
1877	अलेक्ज़ैंडर कनिंघम ने असोक के अभिलेखों के एक अंश को प्रकाशित किया
1886	दक्षिण भारत के अभिलेखों के शोधपत्र *एपिग्राफ़िआ कर्नाटिका* का प्रथम अंक
1888	*एपिग्राफ़िआ इंडिका* का प्रथम अंक
बीसवीं शताब्दी	
1965-66	डी.सी. सरकार ने *इंडियन एपिग्राफ़ी* एंड *इंडियन एपिग्राफ़िकल ग्लोसरी* प्रकाशित की

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. आरंभिक ऐतिहासिक नगरों में शिल्पकला के उत्पादन के प्रमाणों की चर्चा कीजिए। हड़प्पा के नगरों के प्रमाण से ये प्रमाण कितने भिन्न हैं?
2. महाजनपदों के विशिष्ट अभिलक्षणों का वर्णन कीजिए।
3. सामान्य लोगों के जीवन का पुनर्निर्माण इतिहासकार कैसे करते हैं?
4. पांड्य सरदार (स्रोत 3) को दी जाने वाली वस्तुओं की तुलना दंगुन गाँव (स्रोत 8) की वस्तुओं से कीजिए। आपको क्या समानताएँ और असमानताएँ दिखाई देती हैं?
5. अभिलेखशास्त्रियों की कुछ समस्याओं की सूची बनाइए।

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 500 शब्दों में)

6. मौर्य प्रशासन के प्रमुख अभिलक्षणों की चर्चा कीजिए। असोक के अभिलेखों में इनमें से कौन-कौन से तत्वों के प्रमाण मिलते हैं?

7. यह बीसवीं शताब्दी के एक सुविख्यात अभिलेखशास्त्री, डी.सी. सरकार का वक्तव्य है: भारतीयों के जीवन, संस्कृति, और गतिविधियों का ऐसा कोई पक्ष नहीं है जिसका प्रतिबिंब अभिलेखों में नहीं है: चर्चा कीजिए।

8. उत्तर-मौर्य काल में विकसित राजत्व के विचारों की चर्चा कीजिए।

9. वर्णित काल में कृषि के तौर-तरीकों में किस हद तक परिवर्तन हुए?

मानचित्र कार्य

10. मानचित्र 1 और 2 की तुलना कीजिए और उन महाजनपदों की सूची बनाइए जो मौर्य साम्राज्य में शामिल रहे होंगे। क्या इस क्षेत्र में असोक के कोई अभिलेख मिले हैं?

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. एक महीने के अखबार एकत्रित कीजिए। सरकारी अधिकारियों द्वारा सार्वजनिक कार्यों के बारे में दिए गए वक्तव्यों को काटकर एकत्रित कीजिए। समीक्षा कीजिए कि इन परियोजनाओं के लिए आवश्यक संसाधनों के बारे में खबरों में क्या लिखा है। संसाधनों को किस प्रकार से एकत्र किया जाता है और परियोजनाओं का उद्देश्य क्या है। इन वक्तव्यों को कौन जारी करता है और उन्हें क्यों और कैसे प्रसारित किया जाता है? इस अध्याय में चर्चित अभिलेखों के साक्ष्यों से इनकी तुलना कीजिए। आप इनमें क्या समानताएँ और असमानताएँ पाते हैं?

12. आज प्रचलित पाँच विभिन्न नोटों और सिक्कों को इकट्ठा कीजिए। इनके दोनों ओर आप जो देखते हैं उनका वर्णन कीजिए। इन पर बने चित्रों, लिपियों और भाषाओं, माप, आकार या अन्य समानताओं और असमानताओं के बारे में एक रिपोर्ट तैयार कीजिए। इस अध्याय में दर्शित सिक्कों में प्रयुक्त सामग्रियों, तकनीकों, प्रतीकों, उनके महत्त्व और सिक्कों के संभावित कार्य की चर्चा करते हुए इनकी तुलना कीजिए।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

डी.एन. झा, 2004
अर्ली इंडिया: ए कॉनसाइज़ हिस्ट्री,
मनोहर, नयी दिल्ली।

आर.सालोमन, 1998
इंडियन एपिग्राफ़ी, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली।

आर.एस. शर्मा, 1983
मैटीरियल कल्चर एंड सोशल फॉर्मेशन इन अर्ली इंडिया,
मैकमिलन, नयी दिल्ली।

डी.सी. सरकार, 1975
इंस्क्रिप्शंस ऑफ़ असोक,
पब्लिकेशन डिवीजन, मिनिस्ट्री ऑफ़ इंफ़ार्मेशन एंड ब्राडकॉस्टिंग, गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया, नयी दिल्ली।

रोमिला थापर, 1997
असोक एंड द डेक्लाइन ऑफ़ दि मौर्याज़,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,
नयी दिल्ली।

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं

http:/projectsouthasia.sdstate.edu/Docs/index.html

विषय
तीन

बंधुत्व, जाति तथा वर्ग
आरंभिक समाज
(लगभग 600 ई.पू. से 600 ईसवी)

पिछले अध्याय में हमने पढ़ा कि लगभग 600 ई.पू. से 600 ईसवी तक के मध्य आर्थिक और राजनीतिक जीवन में अनेक परिवर्तन हुए। इनमें से कुछ परिवर्तनों ने समकालीन समाज पर अपना प्रभाव छोड़ा। उदाहरणत: वन क्षेत्रों में कृषि का विस्तार हुआ जिससे वहाँ रहने वाले लोगों की जीवनशैली में परिवर्तन हुआ; शिल्प विशेषज्ञों के एक विशिष्ट सामाजिक समूह का उदय हुआ; तथा संपत्ति के असमान वितरण ने सामाजिक विषमताओं को अधिक प्रखर बनाया।

इतिहासकार इन सब प्रक्रियाओं को समझने के लिए प्राय: साहित्यिक परंपराओं का उपयोग करते हैं। कुछ ग्रंथ सामाजिक व्यवहार के मानदंड तय करते थे। अन्य ग्रंथ समाज का चित्रण करते थे और कभी-कभी समाज में मौजूद विभिन्न रिवाज़ों पर अपनी टिप्पणी भी प्रस्तुत करते थे। अभिलेखों से हमें समाज के कुछ ऐतिहासिक अभिनायकों की झलक मिलती है। हम देखेंगे कि प्रत्येक ग्रंथ (और अभिलेख) किसी समुदाय विशेष के दृष्टिकोण से लिखा जाता था। अत: यह याद रखना ज़रूरी हो जाता है कि ये ग्रंथ *किसने* लिखे, *क्या* लिखा गया और *किनके* लिए इनकी रचना हुई। इस बात पर भी ध्यान देना ज़रूरी है कि इन ग्रंथों की रचना में किस भाषा का प्रयोग हुआ तथा इनका प्रचार-प्रसार किस तरह हुआ। यदि हम इन ग्रंथों का प्रयोग सावधानी से करें तो समाज में प्रचलित आचार-व्यवहार और रिवाज़ों का इतिहास लिखा जा सकता है।

चित्र 3.1
महाभारत का एक दृश्य, *मृण्मयी मूर्तिकला (पश्चिम बंगाल) (लगभग सत्रहवीं शताब्दी)*

उपमहाद्वीप के सबसे समृद्ध ग्रंथों में से एक महाभारत का विश्लेषण करते हुए हम अपना ध्यान एक ऐसे विशाल महाकाव्य पर केंद्रित कर रहे हैं जो अपने वर्तमान रूप में एक लाख श्लोकों से अधिक है और विभिन्न सामाजिक श्रेणियों व परिस्थितियों का लेखा-जोखा है। इस ग्रंथ की रचना एक हज़ार वर्ष तक होती रही (लगभग 500 ई.पू. से)। इसमें निहित कुछ कथाएँ तो इस काल से पहले भी प्रचलित थीं। महाभारत की मुख्य कथा दो परिवारों के बीच हुए युद्ध का चित्रण है। इस ग्रंथ के कुछ भाग विभिन्न सामाजिक समुदायों के आचार-व्यवहार के मानदंड तय करते हैं। यदा-कदा (किंतु हमेशा नहीं) इस ग्रंथ के मुख्य पात्र इन सामाजिक मानदंडों का अनुसरण करते हुए दिखाई पड़ते हैं। मानदंडों का अनुसरण व उनकी अवहेलना क्या इंगित करती है?

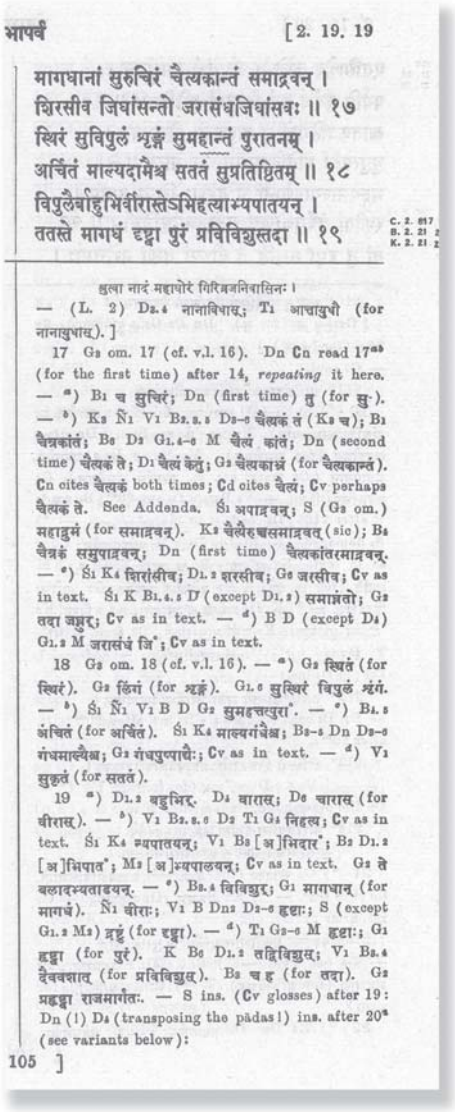

भापर्व [2. 19. 19

मागधानां सुरुचिरं चैत्यकान्तं समाद्रवन् ।
शिरसीव जिघांसन्तो जरासंधजिघांसवः ॥ १७
स्थिरं सुविपुलं शृङ्गं सुमहान्तं पुरातनम् ।
अर्चितं माल्यदामैश्च सततं सुप्रतिष्ठितम् ॥ १८
विपुलैर्बाहुभिर्वीरास्तेऽभिहत्याभ्यपातयन् ।
ततस्ते मागधं दृष्ट्वा पुरं प्रविविशुस्तदा ॥ १९

C. 2. 017
B. 2. 21
K. 2. 21

श्रुत्वा नादं महाघोरं गिरिव्रजनिवासिनः ।
— (L. 2) Ds.4 नानाविधास्; T1 आघातुधी (for नानायुधास्).]
17 G3 om. 17 (cf. v.l. 16). Dn Cn read 17ab (for the first time) after 14, *repeating* it here. — a) B1 च सुचिरं; Dn (first time) तु (for सु·). — b) K3 Ñ1 V1 Bs.2.5 Ds–5 चैत्यकं तं (K3 च); B1 चैत्रकांतं; B3 D3 G1.4–5 M चैत्यं कांतं; Dn (second time) चैत्यकं ते; D1 चैत्यं केतुं; G3 चैत्यकाग्रं (for चैत्यकान्तं). Cn cites चैत्यकं both times; Cd cites चैत्यं; Cv perhaps चैत्यकं ते. See Addenda. Ś1 अपाद्रवन्; S (G3 om.) महाद्रुमं (for समाद्रवन्). K3 चैत्यैरुच्चसमाद्रवत् (sic); B3 चैत्रकं समुपाद्रवन्; Dn (first time) चैत्यकांतरमाद्रवन्. — c) Ś1 K4 शिरांसीव; D1.2 शरसीव; G3 जरसीव; Cv as in text. Ś1 K B1.4.5 D (except D1.2) समाग्रतो; G3 तदा जह्रुः; Cv as in text. — d) B D (except D4) G1.2 M जरासंधं जि°; Cv as in text.
18 G3 om. 18 (cf. v.l. 16). — a) G3 स्थितं (for स्थिरं). G3 छिनं (for शृङ्गं). G1.5 सुस्थिरं विपुलं शृंगं. — b) Ś1 Ñ1 V1 B D G3 सुमहत्तत्पुरा°. — c) B1.5 अंचितं (for अर्चितं). Ś1 K4 माल्यगंधैश्च; B3–5 Dn D3–5 गंधमाल्यैश्च; G3 गंधपुष्पाद्यैः; Cv as in text. — d) V1 सुकृतं (for सततं).
19 a) D1.2 बहुभिर्. D4 वाराम्; D5 चाराम् (for वीराम्). — b) V1 B3.4.5 D3 T1 G3 निहत्य; Cv as in text. Ś1 K4 अपातयन्; V1 B3 [अ]भिदार°; B3 D1.2 [अ]भिपात°; M3 [अ]भ्यपालयन्; Cv as in text. G3 ते बलादभ्यताडयन्. — c) B3.4 विविशुर्; G1 मागधान् (for मागधं). Ñ1 वीराः; V1 B Dn3 D3–5 हृष्टाः; S (except G1.2 M3) द्रष्टुं (for दृष्ट्वा). — d) T1 G3–5 M हृष्टाः; G1 हृष्ट्वा (for पुरं). K B3 D1.2 तद्विविशुः; V1 B3.4 दैववशात् (for प्रविविशुस्). B3 च ह (for तदा). G3 प्रहृष्टा राजमार्गतः. — S ins. (Cv glosses) after 19: Dn (!) D4 (transposing the pādas!) ins. after 20a (see variants below):

105]

चित्र 3.2
समालोचनात्मक संस्करण के एक पृष्ठ का अंश
बड़े मोटे अक्षरों में प्रकाशित अंश मुख्य पाठ का हिस्सा है। छोटा मुद्रण विभिन्न पांडुलिपियों में पाए गए पाठभेदों को दर्शाता है जिन्हें ध्यानपूर्वक तालिकाबद्ध किया गया था।

1. महाभारत का समालोचनात्मक संस्करण

1919 में प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान वी.एस. सुकथांकर के नेतृत्व में एक अत्यंत महत्त्वाकांक्षी परियोजना की शुरुआत हुई। अनेक विद्वानों ने मिलकर महाभारत का समालोचनात्मक संस्करण तैयार करने का ज़िम्मा उठाया। इससे जुड़े क्या-क्या कार्य थे? आरंभ में देश के विभिन्न भागों से विभिन्न लिपियों में लिखी गई महाभारत की संस्कृत पांडुलिपियों को एकत्रित किया गया।

परियोजना पर काम करने वाले विद्वानों ने सभी पांडुलिपियों में पाए जाने वाले श्लोकों की तुलना करने का एक तरीका ढूँढ़ निकाला। अंततः उन्होंने उन श्लोकों का चयन किया जो लगभग सभी पांडुलिपियों में पाए गए थे और उनका प्रकाशन 13,000 पृष्ठों में फैले अनेक ग्रंथ खंडों में किया। इस परियोजना को पूरा करने में सैंतालीस वर्ष लगे। इस पूरी प्रक्रिया में दो बातें विशेष रूप से उभर कर आईं : पहली, संस्कृत के कई पाठों के अनेक अंशों में समानता थी। यह इस बात से ही स्पष्ट होता है कि समूचे उपमहाद्वीप में उत्तर में कश्मीर और नेपाल से लेकर दक्षिण में केरल और तमिलनाडु तक सभी पांडुलिपियों में यह समानता देखने में आई। दूसरी बात जो स्पष्ट हुई, वह यह थी कि कुछ शताब्दियों के दौरान हुए महाभारत के प्रेषण में अनेक क्षेत्रीय प्रभेद भी उभर कर सामने आए। इन प्रभेदों का संकलन मुख्य पाठ की पादटिप्पणियों और परिशिष्टों के रूप में किया गया। 13,000 पृष्ठों में से आधे से भी अधिक इन प्रभेदों का ब्योरा देते हैं।

एक तरह से देखा जाए तो ये प्रभेद उन गूढ़ प्रक्रियाओं के द्योतक हैं जिन्होंने प्रभावशाली परंपराओं और लचीले स्थानीय विचार और आचरण के बीच संवाद कायम करके सामाजिक इतिहासों को रूप दिया था। यह संवाद द्वंद्व और मतैक्य दोनों को ही चित्रित करते हैं।

इन सभी प्रक्रियाओं के बारे में हमारी समझ मुख्यतः उन ग्रंथों पर आधारित है जो संस्कृत में ब्राह्मणों द्वारा उन्हीं के लिए लिखे गए। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में इतिहासकारों ने पहली बार सामाजिक इतिहास के मुद्दों का अनुशीलन करते समय इन ग्रंथों को सतही तौर पर समझा–उनका विश्वास था कि इन ग्रंथों में जो कुछ भी लिखा गया है वास्तव में उसी तरह से उसे व्यवहार में लाया जाता होगा। कालांतर में विद्वानों ने पालि, प्राकृत और तमिल ग्रंथों के माध्यम से अन्य परंपराओं का अध्ययन किया। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ कि आदर्शमूलक संस्कृत ग्रंथ आमतौर से आधिकारिक माने जाते थे, किंतु इन आदर्शों को प्रश्नवाचक दृष्टि से भी देखा जाता था और यदा-कदा इनकी अवहेलना भी की जाती थी। जब हम इतिहासकारों द्वारा सामाजिक इतिहासों के पुनर्निर्माण की व्याख्या करते हैं तब हमें इस बात को ध्यान में रखना होगा।

2. बंधुता एवं विवाह

अनेक नियम और व्यवहार की विभिन्नता

2.1 परिवारों के बारे में जानकारी

हम बहुधा पारिवारिक जीवन को सहज ही स्वीकार कर लेते हैं। किंतु आपने देखा होगा कि सभी परिवार एक जैसे नहीं होते : पारिवारिक जनों की गिनती, एक दूसरे से उनका रिश्ता और उनके क्रियाकलापों में भी भिन्नता होती है। कई बार एक ही परिवार के लोग भोजन और अन्य संसाधनों का आपस में मिल-बाँटकर इस्तेमाल करते हैं, एक साथ रहते और काम करते हैं और अनुष्ठानों को साथ ही संपादित करते हैं। परिवार एक बड़े समूह का हिस्सा होते हैं जिन्हें हम संबंधी कहते हैं। तकनीकी भाषा का इस्तेमाल करें तो हम संबंधियों को *जाति समूह* कह सकते हैं। पारिवारिक रिश्ते 'नैसर्गिक' और रक्त संबद्ध माने जाते हैं किंतु इन संबंधों की परिभाषा अलग-अलग तरीके से की जाती है। कुछ समाजों में भाई-बहन (चचेरे, मौसेरे आदि) से खून का रिश्ता माना जाता है किंतु अन्य समाज ऐसा नहीं मानते।

आरंभिक समाजों के संदर्भ में इतिहासकारों को विशिष्ट परिवारों के बारे में जानकारी आसानी से मिल जाती है किंतु सामान्य लोगों के पारिवारिक संबंधों को पुनर्निर्मित करना मुश्किल हो जाता है। इतिहासकार परिवार और बंधुता संबंधी *विचारों* का भी विश्लेषण करते हैं। इनका अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे लोगों की सोच का पता चलता है। संभवत: इन विचारों ने लोगों के क्रियाकलापों को प्रभावित किया होगा। इसी तरह व्यवहार ने विचारों पर भी असर डाला होगा।

परिवार और बंधुता के लिए प्रयुक्त शब्द

संस्कृत ग्रंथों में 'कुल' शब्द का प्रयोग परिवार के लिए और 'जाति' का बांधवों के बड़े समूह के लिए होता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी किसी भी कुल के पूर्वज इकट्ठे रूप में एक ही वंश के माने जाते हैं।

2.2 पितृवंशिक व्यवस्था के आदर्श

क्या हम उन बिंदुओं को निर्दिष्ट कर सकते हैं जब बंधुता के रिश्तों में परिवर्तन आया? एक स्तर पर महाभारत इसी की कहानी है। यह बांधवों के दो दलों–कौरव और पांडव–के बीच भूमि और सत्ता को लेकर हुए संघर्ष का चित्रण करती है। दोनों ही दल कुरु वंश से संबंधित थे जिनका एक जनपद (अध्याय 2 मानचित्र 1) पर शासन था। यह संघर्ष एक युद्ध में परिणत हुआ जिसमें पांडव विजयी हुए। इनके उपरांत पितृवंशिक उत्तराधिकार को उद्घोषित किया गया। हालाँकि पितृवंशिकता महाकाव्य की रचना से पहले भी मौजूद थी, महाभारत की मुख्य कथावस्तु ने इस आदर्श को और सुदृढ़ किया। पितृवंशिकता में पुत्र पिता की मृत्यु के बाद उनके संसाधनों पर (राजाओं के संदर्भ में सिंहासन भी) अधिकार जमा सकते थे।

अधिकतर राजवंश (लगभग छठी शताब्दी ई.पू. से) पितृवंशिकता प्रणाली का अनुसरण करते थे। हालाँकि इस प्रथा में विभिन्नता थी :

पितृवंशिकता का अर्थ है वह वंश परंपरा जो पिता के पुत्र फिर पौत्र, प्रपौत्र आदि से चलती है।

मातृवंशिकता शब्द का इस्तेमाल हम तब करते हैं जहाँ वंश परंपरा माँ से जुड़ी होती है।

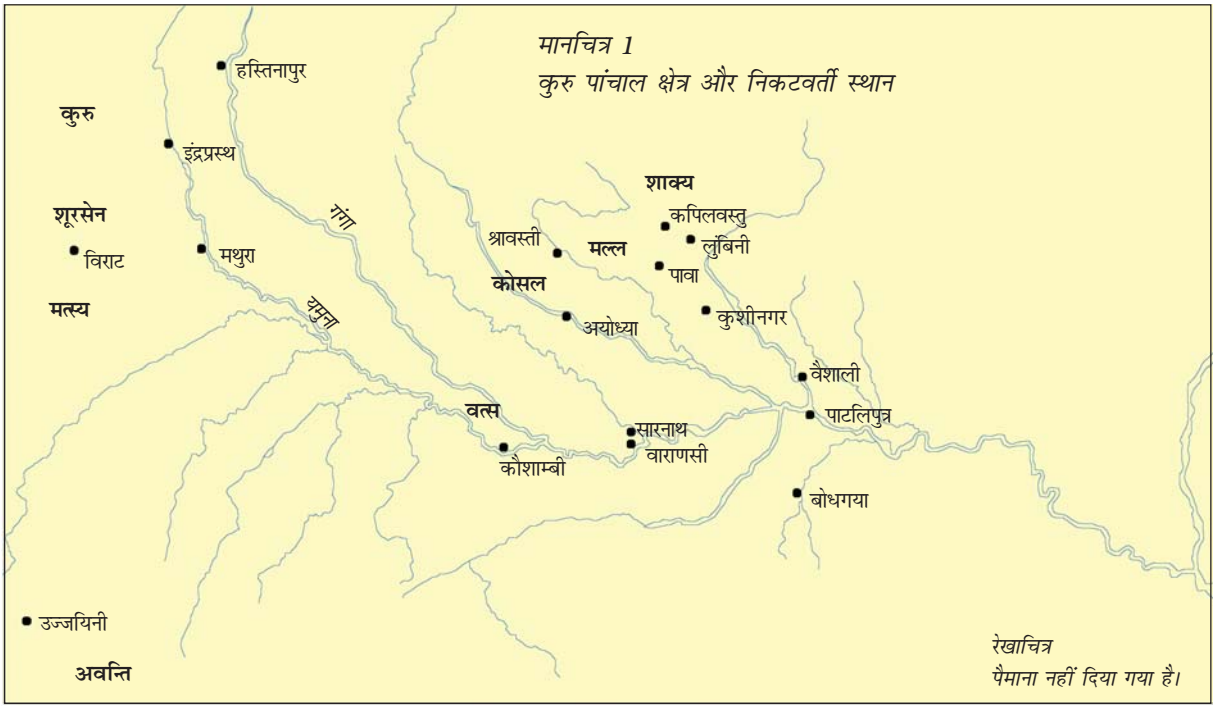

मानचित्र 1
कुरु पांचाल क्षेत्र और निकटवर्ती स्थान

कभी पुत्र के न होने पर एक भाई दूसरे का उत्तराधिकारी हो जाता था तो कभी बंधु-बांधव सिंहासन पर अपना अधिकार जमाते थे। कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में स्त्रियाँ जैसे प्रभावती गुप्त (अध्याय 2) सत्ता का उपभोग करती थीं।

पितृवंशिकता के प्रति झुकाव शासक परिवारों के लिए कोई अनूठी बात नहीं थी। ऋग्वेद जैसे कर्मकांडीय ग्रंथ के मंत्रों से भी यह बात स्पष्ट होती है। यह संभव है कि धनी वर्ग के पुरुष और ब्राह्मण भी ऐसा ही दृष्टिकोण रखते थे।

स्रोत 1

'उत्तम पुत्रों' का प्रजनन

यहाँ ऋग्वेद से एक मंत्र का अंश उद्धृत है जो इस ग्रंथ में संभवत: लगभग 1000 ई.पू. में जोड़ा गया था। विवाह संस्कार के दौरान यह मंत्र पुरोहित द्वारा पढ़ा जाता था। आज भी अनेक हिंदू विवाह संस्कारों में इसका प्रयोग होता है :

मैं इसे यहाँ से मुक्त करता हूँ किंतु वहाँ से नहीं। मैंने इसे वहाँ मज़बूती से स्थापित किया है जिससे इंद्र के अनुग्रह से इसके उत्तम पुत्र हों और पति के प्रेम का सौभाग्य इसे प्राप्त हो।

इंद्र शौर्य, युद्ध और वर्षा के एक प्रमुख देवता थे। 'यहाँ' और 'वहाँ' से तात्पर्य पिता और पति के गृह से है।

➲ इस मंत्र के संदर्भ में, विवाह का वधू और वर के लिए क्या अभिप्राय है? इसकी चर्चा कीजिए। क्या ये अभिप्राय समान हैं या फिर इनमें भिन्नताएँ हैं?

स्रोत 2

स्वजन के मध्य लड़ाई क्यों हुई?

यह उद्धरण संस्कृत महाभारत के *आदिपर्वन्* (प्रथम अध्याय) से है और कौरव पांडव के बीच हुए संघर्ष का चित्रण करता है:

> कौरव...धृतराष्ट्र के पुत्र थे और पांडव उनके बांधव जन थे। चूँकि धृतराष्ट्र नेत्रहीन थे अत: उनके अनुज पांडु हस्तिनापुर के सिंहासन पर आसीन हुए... किंतु पांडु की असामयिक मृत्यु के बाद धृतराष्ट्र राजा बने, क्योंकि सभी राजकुमार अल्पवयस्क थे। जैसे-जैसे राजकुमार बड़े हुए हस्तिनापुर के नागरिक पांडवों के प्रति अपनी अभिरुचि व्यक्त करने लगे क्योंकि वे कौरवों के मुकाबले अधिक योग्य और सदाचारी थे। इस बात से कौरवों में ज्येष्ठ, दुर्योधन को बहुत ईर्ष्या हुई। वह अपने पिता के पास गया और बोला, "हे भूपति, अपूर्णता के कारण आपको सिंहासन पर बैठने का अधिकार नहीं था हालाँकि यह आपको प्राप्त हो गया। यदि पांडव पांडु से यह विरासत प्राप्त करते हैं तो उनके बाद उनके पुत्र, पौत्र और फिर प्रपौत्र इस पैतृक संपत्ति के अधिकारी हो जाएँगे और हम तथा हमारे पुत्र इस राज्य के उत्तराधिकार से बेदखल होकर संसार में क्षुद्र समझे जाएँगे।"

इस तरह के उद्धरण अक्षरश: सत्य न भी हों तो भी वे इस बात का अनुमान करा देते हैं कि जिन लोगों ने यह ग्रंथ लिखा वे क्या सोचते थे। कभी-कभी, जैसे यहाँ, प्रकरणों में परस्पर विरोधी विचार मिलते हैं।

➲ उद्धरण पढ़िए और उन सारे मूल तत्वों की सूची तैयार कीजिए जिनका राजा बनने के लिए प्रस्ताव किया गया है। एक विशेष कुल में जन्म लेना कितना महत्वपूर्ण था? इनमें से कौन-सा मूल तत्व सही लगता है? क्या ऐसा कोई तत्व है जो आपको अनुचित लगता है?

2.3 विवाह के नियम

जहाँ पितृवंश को आगे बढ़ाने के लिए पुत्र महत्वपूर्ण थे वहाँ इस व्यवस्था में पुत्रियों को अलग तरह से देखा जाता था। पैतृक संसाधनों पर उनका कोई अधिकार नहीं था। अपने गोत्र से बाहर उनका विवाह कर देना ही अपेक्षित था। इस प्रथा को बहिर्विवाह पद्धति कहते हैं और इसका तात्पर्य यह था कि ऊँची प्रतिष्ठा वाले परिवारों की कम उम्र की कन्याओं और स्त्रियों का जीवन बहुत सावधानी से नियमित किया जाता था जिससे 'उचित' समय और 'उचित' व्यक्ति से उनका विवाह किया जा सके। इसका प्रभाव यह हुआ कि कन्यादान अर्थात् विवाह में कन्या की भेंट को पिता का महत्वपूर्ण धार्मिक कर्तव्य माना गया।

नए नगरों के उद्भव से (अध्याय 2) सामाजिक जीवन अधिक जटिल हुआ। यहाँ पर निकट और दूर से आकर लोग मिलते थे और वस्तुओं की खरीद-फ़रोख्त के साथ ही इस नगरीय परिवेश में विचारों

विवाह के प्रकार

अंतर्विवाह में वैवाहिक संबंध समूह के मध्य ही होते हैं। यह समूह एक गोत्र कुल अथवा एक जाति या फिर एक ही स्थान पर बसने वालों का हो सकता है।

बहिर्विवाह गोत्र से बाहर विवाह करने को कहते हैं।

बहुपत्नी प्रथा एक पुरुष की अनेक पत्नियाँ होने की सामाजिक परिपाटी है।

बहुपति प्रथा एक स्त्री के अनेक पति होने की पद्धति है।

स्रोत 3

विवाह के आठ प्रकार

यहाँ *मनुस्मृति* से पहली, चौथी, पाँचवीं और छठी विवाह पद्धति का उद्धरण दिया जा रहा है :

पहली : कन्या का दान, बहुमूल्य वस्त्रों और अलंकारों से विभूषित कर उसे वेदज्ञ वर को दान दिया जाए जिसे पिता ने स्वयं आमंत्रित किया हो।

चौथी : पिता वर-वधू युगल को यह कहकर संबोधित करता है कि : "तुम साथ मिलकर अपने दायित्वों का पालन करो।" तत्पश्चात वह वर का सम्मान कर उसे कन्या का दान करता है।

पाँचवीं : वर को वधू की प्राप्ति तब होती है जब वह अपनी क्षमता व इच्छानुसार उसके बांधवों को और स्वयं वधू को यथेष्ट धन प्रदान करता है।

छठीं : स्त्री और पुरुष के बीच अपनी इच्छा से संयोग... जिसकी उत्पत्ति काम से है...

➲ इनमें से प्रत्येक विवाह पद्धति के विषय में चर्चा कीजिए कि विवाह का निर्णय किसके द्वारा लिया गया था :
(क) वधू
(ख) वर
(ग) वधू का पिता
(घ) वर का पिता
(ङ) अन्य लोग

का भी आदान-प्रदान होता था। संभवत: इस वजह से आरंभिक विश्वासों और व्यवहारों (देखिए अध्याय 4) पर प्रश्नचिह्न लगाए गए। इस चुनौती के जवाब में ब्राह्मणों ने समाज के लिए विस्तृत आचार संहिताएँ तैयार कीं। ब्राह्मणों को इन आचार संहिताओं का विशेष पालन करना होता था किंतु बाकी समाज को भी इसका अनुसरण करना पड़ता था। लगभग 500 ई.पू. से इन मानदंडों का संकलन धर्मसूत्र व धर्मशास्त्र नामक संस्कृत ग्रंथों में किया गया। इसमें सबसे महत्वपूर्ण *मनुस्मृति* थी जिसका संकलन लगभग 200 ई.पू. से 200 ईसवी के बीच हुआ।

हालाँकि इन ग्रंथों के ब्राह्मण लेखकों का यह मानना था कि उनका दृष्टिकोण सार्वभौमिक है और उनके बनाए नियमों का सबके द्वारा पालन होना चाहिए, किंतु वास्तविक सामाजिक संबंध कहीं अधिक जटिल थे। इस बात को भी ध्यान में रखना ज़रूरी है कि उपमहाद्वीप में फैली क्षेत्रीय विभिन्नता और संचार की बाधाओं की वजह से भी ब्राह्मणों का प्रभाव सार्वभौमिक कदापि नहीं था।

दिलचस्प बात यह है कि धर्मसूत्र और धर्मशास्त्र विवाह के आठ प्रकारों को अपनी स्वीकृति देते हैं। इनमें से पहले चार 'उत्तम' माने जाते थे और बाकियों को निंदित माना गया। संभव है कि ये विवाह पद्धतियाँ उन लोगों में प्रचलित थीं जो ब्राह्मणीय नियमों को अस्वीकार करते थे।

2.4 स्त्री का गोत्र

एक ब्राह्मणीय पद्धति जो लगभग 1000 ई.पू. के बाद से प्रचलन में आई, वह लोगों (खासतौर से ब्राह्मणों) को गोत्रों में वर्गीकृत करने की थी। प्रत्येक गोत्र एक वैदिक ऋषि के नाम पर होता था। उस गोत्र के सदस्य ऋषि के वंशज माने जाते थे। गोत्रों के दो नियम महत्वपूर्ण थे : विवाह के पश्चात स्त्रियों को पिता के स्थान पर पति के गोत्र का माना जाता था तथा एक ही गोत्र के सदस्य आपस में विवाह संबंध नहीं रख सकते थे।

क्या इन नियमों का सामान्यत: अनुसरण होता था, इस बात को जानने के लिए हमें स्त्री और पुरुष नामों का विश्लेषण करना पड़ेगा जो कभी-कभी गोत्रों के नाम से उद्धृत होते थे। हमें कुछ नाम सातवाहनों जैसे प्रबल शासकों के वंश से मिलते हैं। इन राजाओं का पश्चिमी भारत और दक्कन के कुछ भागों पर शासन था (लगभग दूसरी शताब्दी ई.पू. से दूसरी शताब्दी ईसवी तक)। सातवाहनों के कई अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर इतिहासकारों ने पारिवारिक और वैवाहिक रिश्तों का खाका तैयार किया है।

स्रोत 4

अभिलेखों से सातवाहन राजाओं के नाम

अभिलेखों से सातवाहन राजाओं की कई पीढ़ियों के नाम प्राप्त हुए हैं। इन सभी नामों में *राजा* की एक जैसी पदवी पर ध्यान दीजिए। इसके अलावा अगले शब्द को भी लक्षित कीजिए जिसका *पुत्त* से अंत होता है। यह एक प्राकृत शब्द है जिसका अर्थ 'पुत्र' है। गोतमी-पुत्त का अर्थ है 'गोतमी का पुत्र'। गोतमी और वसिथि स्त्रीवाची नाम हैं गौतम और वशिष्ठ के। ये दोनों वैदिक ऋषि थे जिनके नाम से गोत्र हैं।

राजा गोतमी-पुत्त सिरी-सातकनि

राजा वसिथि-पुत्त (सामि) सिरि-पुलुमायि

राजा गोतमी-पुत्त सामि-सिरि-यन-सातकनि

राजा मधारि-पुत्त स्वामि-सकसेन

राजा हरिति-पुत्त चत्तरपन-सातकनि

राजा हरिति-पुत्त विनहुकद चतुकुलानम्द-सातकमनि

राजा गोतमी-पुत्त सिरी-विजय-सातकनि

➲ यहाँ कितने गोतमी-पुत्त तथा कितने वसिथि (वैकल्पिक वर्तनी वसथि) पुत्त हैं?

चित्र 3.3
एक सातवाहन राजा तथा उसकी पत्नी
सातवाहन राजाओं की आकृतियाँ बहुधा उन गुफाओं की भित्तियों पर उत्कीर्ण की जाती थीं जिन्हें बौद्ध भिक्षुओं को दान में दिया जाता था। यह मूर्ति लगभग दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व की है।

उपनिषद में मातृनाम

बृहदारण्यक उपनिषद में जो आरंभिक उपनिषदों में से एक है (देखिए अध्याय 4) आचार्यों और शिष्यों की उत्तरोत्तर पीढ़ियों की सूची मिलती है, जिसमें से कई लोगों को उनके मातृनामों से निर्दिष्ट किया गया था।

स्रोत 5

माता की सलाह

महाभारत में उल्लेख मिलता है कि जब कौरवों और पांडवों के बीच युद्ध अवश्यंभावी हो गया तो गांधारी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन से युद्ध न करने की विनती की :

शांति की संधि करके तुम अपने पिता, मेरा तथा अपने शुभेच्छुकों का सम्मान करोगे.... विवेकी पुरुष जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखता है वही अपने राज्य की रखवाली करता है। लालच और क्रोध आदमी को लाभ से दूर खदेड़कर ले जाते हैं; इन दोनों शत्रुओं को पराजित कर राजा समस्त पृथ्वी को जीत सकता है... हे पुत्र तुम विवेकी और वीर पांडवों के साथ सानंद इस पृथ्वी का भोग करोगे... युद्ध में कुछ भी शुभ नहीं होता, ना धर्म और अर्थ की प्राप्ति होती है और ना ही प्रसन्नता की; युद्ध के अंत में सफलता मिले यह भी ज़रूरी नहीं... अपने मन को युद्ध में लिप्त मत करो...

दुर्योधन ने माँ की सलाह नहीं मानी, वह युद्ध में लड़ा और हार गया।

➲ क्या यह उद्धरण आपको आरंभिक भारतीय समाज में माँ को किस दृष्टि से देखा जाता था इसका जायज़ा देता है।

➲ चर्चा कीजिए...

आजकल बच्चों का नामकरण किस भाँति होता है? क्या ये नाम इस अंश में वर्णित नामों से मिलते-जुलते हैं अथवा भिन्न हैं?

कुछ सातवाहन राजा बहुपत्नी प्रथा (अर्थात् एक से अधिक पत्नी) को मानने वाले थे। सातवाहन राजाओं से विवाह करने वाली रानियों के नामों का विश्लेषण इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि उनके नाम गौतम तथा वसिष्ठ गोत्रों से उद्भूत थे जो उनके पिता के गोत्र थे। इससे प्रतीत होता है कि विवाह के बाद भी अपने पति कुल के गोत्र को ग्रहण करने की अपेक्षा, जैसा ब्राह्मणीय व्यवस्था में अपेक्षित था, उन्होंने पिता का गोत्र नाम ही कायम रखा। यह भी पता चलता है कि कुछ रानियाँ एक ही गोत्र से थीं। यह तथ्य बहिर्विवाह पद्धति के नियमों के विरुद्ध था। वस्तुत: यह उदाहरण एक वैकल्पिक प्रथा अंतर्विवाह पद्धति अर्थात् बंधुओं में विवाह संबंध को दर्शाता है जिसका प्रचलन दक्षिण भारत के कई समुदायों में (भी) है। बांधवों (ममेरे, चचेरे इत्यादि भाई-बहन) के साथ जोड़े गए विवाह संबंधों की वजह से एक सुगठित समुदाय उभर पाता था।

संभवत: उपमहाद्वीप के और भागों में अन्य विविधताएँ भी मौजूद थीं किंतु उनके विशिष्ट ब्योरों को पुनर्निर्मित करना संभव नहीं हो पाया है।

2.5 क्या माताएँ महत्वपूर्ण थीं?

हमने पढ़ा कि सातवाहन राजाओं को उनके मातृनाम (माता के नाम से उद्भूत) से चिह्नित किया जाता था। इससे यह प्रतीत होता है कि माताएँ महत्वपूर्ण थीं किंतु किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले हमें बहुत सावधानी बरतनी होगी। सातवाहन राजाओं के संदर्भ में हमें यह ज्ञात है कि सिंहासन का उत्तराधिकार पितृवंशिक होता था।

चित्र 3.4
एक युद्ध का दृश्य
यह महाभारत के दृश्यों के सबसे प्राचीन मूर्ति चित्रणों में से एक है। यह मिट्टी की मूर्ति अहिच्छत्र (उत्तर प्रदेश) के एक मंदिर की दीवार पर उत्कीर्ण है जो लगभग पाँचवीं शताब्दी ईसवी की है।

3. सामाजिक विषमताएँ

वर्ण व्यवस्था के दायरे में और उससे परे

संभवत: आप 'जाति' शब्द से परिचित होंगे जो एक सोपानात्मक सामाजिक वर्गीकरण को दर्शाता है। धर्मसूत्रों और धर्मशास्त्रों में एक आदर्श व्यवस्था का उल्लेख किया गया था। ब्राह्मणों का यह मानना था कि यह व्यवस्था जिसमें स्वयं उन्हें पहला दर्ज़ा प्राप्त है, एक दैवीय व्यवस्था है। शूद्रों और 'अस्पृश्यों' को सबसे निचले स्तर पर रखा जाता था। इस व्यवस्था में दर्ज़ा संभवत: जन्म के अनुसार निर्धारित माना जाता था।

3.1 'उचित' जीविका

धर्मसूत्रों और धर्मशास्त्रों में चारों वर्गों के लिए आदर्श 'जीविका' से जुड़े कई नियम मिलते हैं। ब्राह्मणों का कार्य अध्ययन, वेदों की शिक्षा, यज्ञ करना और करवाना था तथा उनका काम दान देना और लेना था। क्षत्रियों का कर्म युद्ध करना, लोगों को सुरक्षा प्रदान करना, न्याय करना, वेद पढ़ना, यज्ञ करवाना और दान-दक्षिणा देना था। अंतिम तीन कार्य वैश्यों के लिए भी थे साथ ही उनसे कृषि, गौ-पालन और व्यापार का कर्म भी अपेक्षित था। शूद्रों के लिए मात्र एक ही जीविका थी—तीनों 'उच्च' वर्णों की सेवा करना।

इन नियमों का पालन करवाने के लिए ब्राह्मणों ने दो-तीन नीतियाँ अपनाईं। एक, जैसा कि हमने अभी पढ़ा, यह बताया गया कि वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति एक दैवीय व्यवस्था है। दूसरा, वे शासकों को यह उपदेश देते थे कि वे इस व्यवस्था के नियमों का अपने राज्यों में अनुसरण करें। तीसरे, उन्होंने लोगों को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि उनकी प्रतिष्ठा जन्म पर आधारित है। किंतु ऐसा करना आसान बात नहीं थी। अत: इन मानदंडों को बहुधा महाभारत जैसे अनेक ग्रंथों में वर्णित कहानियों के द्वारा बल प्रदान किया जाता था।

स्रोत 6

एक दैवीय व्यवस्था?

अपनी मान्यता को प्रमाणित करने के लिए ब्राह्मण बहुधा ऋग्वेद के *पुरुषसूक्त* मंत्र को उद्धृत करते थे जो आदि मानव पुरुष की बलि का चित्रण करता है। जगत के सभी तत्व जिनमें चारों वर्ण शामिल हैं, इसी पुरुष के शरीर से उपजे थे।

ब्राह्मण उसका मुँह था, उसकी भुजाओं से क्षत्रिय निर्मित हुआ।

वैश्य उसकी जंघा थी, उसके पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई।

➲ आपको क्या लगता है कि ब्राह्मण इस सूक्त को बहुधा क्यों उद्धृत करते थे?

स्रोत 7

'उचित' सामाजिक कर्तव्य

महाभारत के *आदिपर्वन्* से एक कहानी उद्धृत है :

एक बार ब्राह्मण द्रोण के पास, जो कुरु वंश के राजकुमारों को धनुर्विद्या की शिक्षा देते थे, एकलव्य नामक वनवासी निषाद (शिकारी समुदाय) आया। द्रोण ने जो धर्म समझते थे, उसे शिष्य के रूप में स्वीकार करने से मना कर दिया। एकलव्य ने वन में लौट कर मिट्टी से द्रोण की प्रतिमा बनाई तथा उसे अपना गुरु मान कर वह स्वयं ही तीर चलाने का अभ्यास करने लगा। समय के साथ वह तीर चलाने में सिद्धहस्त हो गया। एक दिन कुरु राजकुमार अपने कुत्ते के साथ जंगल में शिकार करते हुए एकलव्य के समीप पहुँच गए। कुत्ता काले मृग की चमड़ी के वस्त्र में लिपटे निषाद को देखकर भौंकने लगा। क्रोधित होकर एकलव्य ने एक साथ सात तीर चलाकर उसका मुँह बंद कर दिया। जब वह कुत्ता लौटा तो पांडव तीरंदाज़ी का यह अद्भुत दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने एकलव्य को तलाशा, उसने स्वयं को द्रोण का शिष्य बताया।

द्रोण ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन से एक बार यह कहा था कि वह उनके सभी शिष्यों में अद्वितीय तीरंदाज़ बनेगा। अर्जुन ने द्रोण को उनका यह प्रण याद दिलाया। द्रोण एकलव्य के पास गए जिसने उन्हें अपना गुरु मानकर प्रणाम किया। तब द्रोण ने गुरु दक्षिणा के रूप में एकलव्य से उसके दाहिने हाथ का अँगूठा माँग लिया। एकलव्य ने फ़ौरन गुरु को अपना अँगूठा काट कर दे दिया। अब एकलव्य तीर चलाने में उतना तेज़ नहीं रहा। इस तरह द्रोण ने अर्जुन को दिए वचन को निभाया : कोई भी अर्जुन से बेहतर धनुर्धारी नहीं रहा।

➲ इस कहानी के द्वारा निषादों को कौन-सा संदेश दिया जा रहा था? क्षत्रियों को इससे क्या संदेश मिला होगा? क्या आपको लगता है कि एक ब्राह्मण के रूप में द्रोण धर्मसूत्र का अनुसरण कर रहे थे जब वे धनुर्विद्या की शिक्षा दे रहे थे?

3.2 अक्षत्रिय राजा

शास्त्रों के अनुसार केवल क्षत्रिय राजा हो सकते थे। किंतु अनेक महत्वपूर्ण राजवंशों की उत्पत्ति अन्य वर्णों से भी हुई थी। मौर्य वंश जिसने एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया, के उद्भव पर गर्मजोशी से बहस होती रही है। बाद के बौद्ध ग्रंथों में यह इंगित किया गया है कि वे क्षत्रिय थे किंतु ब्राह्मणीय शास्त्र उन्हें 'निम्न' कुल का मानते हैं। शुंग और कण्व जो मौर्यों के उत्तराधिकारी थे, ब्राह्मण थे। वस्तुत: राजनीतिक सत्ता का उपभोग हर वह व्यक्ति कर सकता था जो समर्थन और संसाधन जुटा सके। राजत्व क्षत्रिय कुल में जन्म लेने पर शायद ही निर्भर करता था।

अन्य शासकों को, जैसे शक जो मध्य एशिया से भारत आए, ब्राह्मण मलेच्छ, बर्बर अथवा अन्यदेशीय मानते थे। किंतु संस्कृत के संभवत:

आरंभिक अभिलेखों में से एक में प्रसिद्ध शक राजा रुद्रदामन (लगभग दूसरी शताब्दी ईसवी) द्वारा सुदर्शन सरोवर के जीर्णोद्धार (अध्याय 2) का वर्णन मिलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि शक्तिशाली मलेच्छ संस्कृतीय परिपाटी से अवगत थे।

एक और दिलचस्प बात यह है कि सातवाहन कुल के सबसे प्रसिद्ध शासक गोतमी-पुत्त सिरी-सातकनि ने स्वयं को अनूठा ब्राह्मण और साथ ही क्षत्रियों के दर्प का हनन करने वाला बताया था। उसने यह भी दावा किया कि चार वर्णों के बीच विवाह संबंध होने पर उसने रोक लगाई। किंतु फिर भी रुद्रदामन के परिवार से उसने विवाह संबंध स्थापित किए।

जैसा आप इस उदाहरण में देख सकते हैं, जाति प्रथा के भीतर आत्मसात होना बहुधा एक जटिल सामाजिक प्रक्रिया थी। सातवाहन स्वयं को ब्राह्मण वर्ण का बताते थे जबकि ब्राह्मणीय शास्त्र के अनुसार राजा को क्षत्रिय होना चाहिए। वे चतुर्वर्णी व्यवस्था की मर्यादा बनाए रखने का दावा करते थे किंतु साथ ही उन लोगों से वैवाहिक संबंध भी स्थापित करते थे जो इस वर्ण व्यवस्था से ही बाहर थे और जैसा हमने देखा वह अंतर्विवाह पद्धति का पालन करते थे न कि बहिर्विवाह प्रणाली का जो ब्राह्मणीय ग्रंथों में प्रस्तावित है।

चित्र 3.5
शक शासक को चित्रित करता चाँदी का सिक्का, लगभग चौथी शताब्दी ईसवी

3.3 जाति और सामाजिक गतिशीलता

ये जटिलताएँ समाज के वर्गीकरण के लिए शास्त्रों में प्रयुक्त एक और शब्द *जाति* से भी स्पष्ट होती हैं। ब्राह्मणीय सिद्धांत में वर्ण की तरह जाति भी जन्म पर आधारित थी। किंतु वर्ण जहाँ मात्र चार थे वहीं जातियों की कोई निश्चित संख्या नहीं थी। वस्तुत: जहाँ कहीं भी ब्राह्मणीय व्यवस्था का नए समुदायों से आमना-सामना हुआ - उदाहरणत: जंगल में रहने वाले निषाद या फिर व्यावसायिक वर्ग जैसे सुवर्णकार, जिन्हें चार वर्णों वाली व्यवस्था में समाहित करना संभव नहीं था, उनका जाति में वर्गीकरण कर दिया गया। वे जातियाँ जो एक ही जीविका अथवा व्यवसाय से जुड़ी थीं उन्हें कभी-कभी श्रेणियों में भी संगठित किया जाता था।

हालाँकि इन समुदायों के इतिहास का लेखा-जोखा हमें कम ही प्राप्त होता है, किंतु कुछ अपवाद हैं जैसे कि मंदसौर (मध्य प्रदेश) से मिला अभिलेख (लगभग पाँचवीं शताब्दी ईसवी)। इसमें रेशम के बुनकरों की एक श्रेणी का वर्णन मिलता है जो मूलत: लाट (गुजरात) प्रदेश के निवासी थे और वहाँ से मंदसौर चले गए थे, जिसे उस समय दशपुर के नाम से जाना जाता था। यह कठिन यात्रा उन्होंने अपने बच्चों और बांधवों

के साथ संपन्न की। उन्होंने वहाँ के राजा की महानता के बारे में सुना था अत: वे उसके राज्य में बसना चाहते थे।

यह अभिलेख जटिल सामाजिक प्रक्रियाओं की झलक देता है तथा श्रेणियों के स्वरूप के विषय में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। हालाँकि श्रेणी की सदस्यता शिल्प में विशेषज्ञता पर निर्भर थी। कुछ सदस्य अन्य जीविका भी अपना लेते थे। इस अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि सदस्य एक व्यवसाय के अतिरिक्त और चीज़ों में भी सहभागी होते थे। सामूहिक रूप से उन्होंने शिल्पकर्म से अर्जित धन को सूर्य देवता के सम्मान में मंदिर बनवाने पर खर्च किया।

स्रोत 8

रेशम बुनकरों ने क्या किया?

निम्नलिखित अंश संस्कृत के एक अभिलेख से उद्धृत है :

> कुछ लोगों को संगीत से अत्यंत प्रेम है जो कानों को प्रिय होता है; अन्य को गर्व है सैकड़ों उत्तम जीवनियों (के रचयिता होने) का, इस तरह वे अनेक कथाओं से परिचित हैं। (अन्य) विनीत भाव से उत्तम धार्मिक व्याख्यानों में तल्लीन हैं... कुछ लोग अपने धार्मिक अनुष्ठानों में श्रेष्ठ हैं; इसी तरह अपने पर निग्रह रखने वाले (वैदिक) खगोल शास्त्र में पारंगत हैं। अन्य जन युद्ध करने में शूरवीर, शत्रुओं का अनिष्ट करते हैं।

➲ क्या आपको लगता है कि रेशम के बुनकर उस जीविका का पालन कर रहे थे जो उनके लिए शास्त्रों ने तय की थी?

वणिकों की स्थिति

संस्कृत के ग्रंथ और अभिलेखों में व्यापारियों के लिए वणिक शब्द प्रयुक्त किया जाता है। हालाँकि शास्त्रों में व्यापार को वैश्यों की जीविका बताया जाता है अन्य स्रोतों में अधिक जटिल परिस्थिति देखने को मिलती है। जैसे शूद्रक के नाटक *मृच्छकटिकम्* (लगभग चौथी शताब्दी ईसवी) में नायक चारुदत्त को *ब्राह्मण-वणिक* बताया गया है। पाँचवीं शताब्दी ईसवी के एक अभिलेख में दो भाइयों को *क्षत्रिय-वणिक* कहा गया है, जिन्होंने एक मंदिर के निर्माण के लिए धन दिया।

3.4 चार वर्णों के परे : एकीकरण

उपमहाद्वीप में पाई जाने वाली विविधताओं की वजह से यहाँ हमेशा से ऐसे समुदाय रहे हैं जिन पर ब्राह्मणीय विचारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। संस्कृत साहित्य में जब ऐसे समुदायों का उल्लेख आता है तो उन्हें कई बार विचित्र, असभ्य और पशुवत चित्रित किया जाता है। ऐसे कुछ उदाहरण वन प्रांतर में बसने वाले लोगों के हैं जिनके लिए शिकार और कंद-मूल संग्रह करना जीवन-निर्वाह का महत्वपूर्ण साधन था। निषाद वर्ग जिससे एकलव्य जुड़ा माना जाता था, इसी का उदाहरण है।

यायावर पशुपालकों के समुदाय को भी शंका की दृष्टि से देखा जाता था क्योंकि उन्हें आसानी से बसे हुए कृषिकर्मियों के साँचे के अनुरूप नहीं ढाला जा सकता था। यदा-कदा उन लोगों को जो असंस्कृत भाषी

थे, उन्हें मलेच्छ कहकर हेय दृष्टि से देखा जाता था। किंतु इन लोगों के बीच विचारों और मतों का आदान-प्रदान होता था। उनके संबंधों के स्वरूप के बारे में हमें महाभारत की कथाओं से ज्ञात होता है।

स्रोत 9

बाघ सदृश पति

यह सारांश महाभारत के *आदिपर्वन्* से उद्धृत कहानी का है :

पांडव गहन वन में चले गए थे। थक कर वे सो गए; केवल द्वितीय पांडव भीम जो अपने बल के लिए प्रसिद्ध थे, रखवाली करते रहे। एक नरभक्षी राक्षस को पांडवों की मानुष गंध ने विचलित किया और उसने अपनी बहन हिडिम्बा को उन्हें पकड़कर लाने के लिए भेजा। हिडिम्बा भीम को देखकर मोहित हो गई और एक सुंदर स्त्री के वेष में उसने भीम से विवाह का प्रस्ताव किया, जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इस बीच राक्षस वहाँ आ गया और उसने भीम को मल्ल युद्ध के लिए ललकारा। भीम ने उसकी चुनौती को स्वीकार किया और उसका वध कर दिया। शोर सुनकर अन्य पांडव जाग गए। हिडिम्बा ने उन्हें अपना परिचय दिया और भीम के प्रति अपने प्रेम से उन्हें अवगत कराया। वह कुंती से बोली : "हे उत्तम देवी, मैंने मित्र, बांधव और अपने धर्म का भी परित्याग कर दिया है और आपके बाघ सदृश पुत्र का अपने पति के रूप में चयन किया है... चाहे आप मुझे मूर्ख समझें अथवा अपनी समर्पित दासी, कृपया मुझे अपने साथ लें तथा आपका पुत्र मेरा पति हो।"

अंततः युधिष्ठिर इस शर्त पर इस विवाह के लिए तैयार हो गए कि भीम दिनभर हिडिम्बा के साथ रहकर रात्रि में उनके पास आ जाएँगे। यह दंपति दिन भर सभी लोकों की सैर करते। समय आने पर हिडिम्बा ने एक राक्षस पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम घटोत्कच रखा। तत्पश्चात माँ और पुत्र पांडवों को छोड़कर वन में चले गए किंतु घटोत्कच ने यह प्रण किया कि जब भी पांडवों को उसकी ज़रूरत होगी वह उपस्थित हो जाएगा।

कुछ इतिहासकारों का यह मत है कि राक्षस उन लोगों को कहा जाता था जिनके आचार-व्यवहार उन मानदंडों से भिन्न थे जिनका चित्रण ब्राह्मणीय ग्रंथों में हुआ था।

➲ इस सारांश में उन व्यवहारों को निर्दिष्ट कीजिए जो अब्राह्मणीय प्रतीत होते हैं।

3.5 चार वर्णों के परे : अधीनता और संघर्ष

ब्राह्मण कुछ लोगों को वर्ण व्यवस्था वाली सामाजिक प्रणाली के बाहर मानते थे। साथ ही उन्होंने समाज के कुछ वर्गों को 'अस्पृश्य' घोषित कर सामाजिक वैषम्य को और अधिक प्रखर बनाया। ब्राह्मणों का यह मानना था कि कुछ कर्म, खासतौर से वे जो अनुष्ठानों के संपादन से जुड़े थे, पुनीत और 'पवित्र' थे, अतः अपने को पवित्र मानने वाले लोग अस्पृश्यों

से भोजन नहीं स्वीकार करते थे। पवित्रता के इस पहलू के ठीक विपरीत कुछ कार्य ऐसे थे जिन्हें खासतौर से 'दूषित' माना जाता था। शवों की अंत्येष्टि और मृत पशुओं को छूने वालों को चाण्डाल कहा जाता था। उन्हें वर्ण व्यवस्था वाले समाज में सबसे निम्न कोटि में रखा जाता था। वे लोग जो स्वयं को सामाजिक क्रम में सबसे ऊपर मानते थे, इन चाण्डालों का स्पर्श, यहाँ तक कि उन्हें देखना भी, अपवित्रकारी मानते थे।

मनुस्मृति में चाण्डालों के 'कर्तव्यों' की सूची मिलती है। उन्हें गाँव के बाहर रहना होता था। वे फेंके हुए बर्तनों का इस्तेमाल करते थे, मरे हुए लोगों के वस्त्र तथा लोहे के आभूषण पहनते थे। रात्रि में वे गाँव और नगरों में चल-फिर नहीं सकते थे। संबंधियों से विहीन मृतकों की उन्हें अंत्येष्टि करनी पड़ती थी तथा वधिक के रूप में भी कार्य करना होता था। चीन से आए बौद्ध भिक्षु फा-शिएन (लगभग पाँचवीं शताब्दी ईसवी) का कहना है कि अस्पृश्यों को सड़क पर चलते हुए करताल बजाकर अपने होने की सूचना देनी पड़ती थी जिससे अन्य जन उन्हें देखने के दोष से बच जाएँ। एक और चीनी तीर्थयात्री श्वैन-त्सांग (लगभग सातवीं शताब्दी ईसवी) कहता है कि वधिक और सफ़ाई करने वालों को नगर से बाहर रहना पड़ता था।

चित्र 3.6
एक भिक्षु का चित्रण, पत्थर की मूर्ति (गांधार) लगभग तीसरी शताब्दी ईसवी

अब्राह्मणीय ग्रंथों में चित्रित चाण्डालों के जीवन का विश्लेषण करके इतिहासकारों ने यह जानने का प्रयास किया है कि क्या चाण्डालों ने शास्त्रों में निर्धारित अपने हीन जीवन को स्वीकार कर लिया था? यदा-कदा इन ग्रंथों के चित्रण और ब्राह्मणीय ग्रंथ में हुए चित्रण में समानता है परंतु कभी-कभी हमें एक भिन्न सामाजिक वास्तविकता का भी संकेत मिलता है।

स्रोत 10

बोधिसत्त एक चाण्डाल के रूप में

क्या चाण्डालों ने अपने को समाज की सबसे निचली श्रेणी में रखे जाने का प्रतिरोध किया? यह कहानी पढ़िए जो पालि में लिखी *मातंग जातक* से ली गई है। इस कथा में बोधिसत्त (पूर्वजन्म में बुद्ध) एक चाण्डाल के रूप में चित्रित हैं।

एक बार बोधिसत्त ने बनारस नगर के बाहर एक चाण्डाल के पुत्र के रूप में जन्म लिया, उनका नाम मातंग था। एक दिन वे किसी कार्यवश नगर में गए और वहाँ उनकी मुलाकात दिथ्थ मांगलिक नामक एक व्यापारी की पुत्री से हुई। उन्हें देखकर वह चिल्लाई "मैंने कुछ अशुभ देख लिया है।" यह कहकर उसने अपनी आँखें धोईं। उसके क्रोधित सेवकों ने मातंग की पिटाई की। विरोध में मातंग व्यापारी के घर के दरवाज़े के बाहर जाकर लेट गए। सातवें रोज़ घर के लोगों ने बाहर आकर दिथ्थ को उन्हें सौंप दिया। दिथ्थ उपवास से क्षीण हुए मातंग को लेकर चाण्डाल बस्ती में आई। घर लौटने पर मातंग ने संसार त्यागने का निर्णय लिया। अलौकिक शक्ति हासिल करने के उपरांत वह बनारस लौटे और उन्होंने दिथ्थ से विवाह कर लिया। माण्डव्यकुमार नामक उनका एक पुत्र हुआ। बड़े होने पर उसने तीन वेदों का अध्ययन किया तथा प्रत्येक दिन वह 16,000 ब्राह्मणों को भोजन कराता था।

एक दिन फटे वस्त्र पहने तथा मिट्टी का भिक्षा पात्र हाथ में लिए मातंग अपने पुत्र के दरवाज़े पर आए और उन्होंने भोजन माँगा। माण्डव्य ने कहा कि वे एक पतित आदमी प्रतीत होते हैं अत: भिक्षा के योग्य नहीं, भोजन ब्राह्मणों के लिए है। मातंग ने उत्तर दिया, "जिन्हें अपने जन्म पर गर्व है पर अज्ञानी हैं वे भेंट के पात्र नहीं हैं। इसके विपरीत जो लोग दोषमुक्त हैं वे भेंट के योग्य हैं।" माण्डव्य ने क्रोधित होकर अपने सेवकों से मातंग को घर से बाहर निकालने को कहा। मातंग आकाश में जाकर अदृश्य हो गए। जब दिथ्थ मांगलिक को इस प्रसंग के बारे में पता चला तो वह उनसे माफ़ी माँगने के लिए उनके पीछे आई। मातंग ने उससे कहा कि वह उनके भिक्षा पात्र में बचे हुए भोजन का कुछ अंश माण्डव्य तथा ब्राह्मणों को दे दें...

➲ इस कथा में उन तत्वों की ओर इंगित कीजिए जिनसे यह ज्ञात हो कि वह मातंग के नज़रिए से लिखे गए थे।

➲ चर्चा कीजिए...

इस प्रकरण में कौन से स्रोत हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि लोग ब्राह्मणों द्वारा बताई गई जीविका का अनुसरण करते थे? कौन से स्रोत हैं जिनसे अलग संभावनाओं की जानकारी मिलती है?

4. जन्म के परे

संसाधन और प्रतिष्ठा

यदि आप अध्याय 2 में वर्णित आर्थिक संबंधों पर विचार करें तो देखेंगे कि दास, भूमिहीन खेतिहर मज़दूर, शिकारी, मछुआरे, पशुपालक, किसान, ग्राममुखिया, शिल्पकार, वणिक और राजा सभी का उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में सामाजिक अभिनायक के रूप में उद्भव हुआ। उनके सामाजिक स्थान इस बात पर निर्भर करते थे कि आर्थिक संसाधनों पर उनका कितना नियंत्रण है। अब हम विशेष संदर्भों में इस बात का परीक्षण करेंगे कि संसाधनों पर नियंत्रण के क्या सामाजिक आशय थे।

स्रोत 11

द्रौपदी के प्रश्न

ऐसा माना जाता है कि द्रौपदी ने युधिष्ठिर से यह प्रश्न किया था कि वह उसे दाँव पर लगाने से पहले स्वयं को हार बैठे थे अथवा नहीं। इस प्रश्न के उत्तर में दो भिन्न मतों को प्रस्तुत किया गया।

प्रथम तो यह कि यदि युधिष्ठिर ने स्वयं को हार जाने के पश्चात द्रौपदी को दाँव पर लगाया तो यह अनुचित नहीं क्योंकि पत्नी पर पति का नियंत्रण सदैव रहता है।

दूसरा यह कि एक दासत्व स्वीकार करने वाला पुरुष (जैसे उस क्षण युधिष्ठिर थे) किसी और को दाँव पर नहीं लगा सकता।

इन मुद्दों का कोई निष्कर्ष नहीं निकला और अंततः धृतराष्ट्र ने सभी पांडवों और द्रौपदी को उनकी निजी स्वतंत्रता पुनः लौटा दी।

➲ क्या आपको ऐसा लगता है कि यह प्रकरण इस बात की ओर इंगित करता है कि पत्नियों को पतियों की निजी संपत्ति माना जाए?

4.1 संपत्ति पर स्त्री और पुरुष के भिन्न अधिकार

अब हम महाभारत के एक महत्वपूर्ण प्रकरण पर विचार करेंगे। कौरव और पांडव के बीच लंबे समय से चली आ रही प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप दुर्योधन ने युधिष्ठिर को द्यूत क्रीड़ा के लिए आमंत्रित किया। युधिष्ठिर अपने प्रतिद्वंद्वी द्वारा धोखा दिए जाने के कारण इस द्यूत में स्वर्ण, हस्ति, रथ, दास, सेना, कोष, राज्य तथा अपनी प्रजा की संपत्ति, अनुजों और फिर स्वयं को भी दाँव पर लगा कर गँवा बैठे। इसके उपरांत उन्होंने पांडवों की सहपत्नी द्रौपदी को भी दाँव पर लगाया और उसे भी हार गए।

संपत्ति के स्वामित्व के मुद्दे जो इन कहानियों में वर्णित हैं, धर्मसूत्र और धर्मशास्त्रों में भी उठाए गए हैं। *मनुस्मृति* के अनुसार पैतृक ज़ायदाद का माता-पिता की मृत्यु के बाद सभी पुत्रों में समान रूप से बँटवारा किया जाना चाहिए किंतु ज्येष्ठ पुत्र विशेष भाग का अधिकारी था। स्त्रियाँ इस पैतृक संसाधन में हिस्सेदारी की माँग नहीं कर सकती थीं।

किंतु विवाह के समय मिले उपहारों पर स्त्रियों का स्वामित्व माना जाता था और इसे *स्त्रीधन* (अर्थात् स्त्री का धन) की संज्ञा दी जाती थी। इस संपत्ति को उनकी संतान विरासत के रूप में प्राप्त कर सकती थी और इस पर उनके पति का कोई अधिकार नहीं होता था। किंतु *मनुस्मृति* स्त्रियों को पति की आज्ञा के विरुद्ध पारिवारिक संपत्ति अथवा स्वयं अपने बहुमूल्य धन के गुप्त संचय के विरुद्ध भी चेतावनी देती है।

आपने एक धनाढ्य वाकाटक महिषी प्रभावती गुप्त (अध्याय 2) के बारे में पढ़ा है। किंतु अधिकतर साक्ष्य–अभिलेखीय व साहित्यिक–इस बात की ओर इशारा करते हैं कि यद्यपि उच्च वर्ग की महिलाएँ संसाधनों पर अपनी पैठ रखती थीं, सामान्यतः भूमि, पशु और धन पर पुरुषों का ही नियंत्रण था। दूसरे शब्दों में, स्त्री और पुरुष के बीच सामाजिक हैसियत की भिन्नता संसाधनों पर उनके नियंत्रण की भिन्नता की वजह से अधिक प्रखर हुई।

स्रोत 12

स्त्री और पुरुष किस प्रकार संपत्ति अर्जित कर सकते थे?

पुरुषों के लिए *मनुस्मृति* कहती है कि धन अर्जित करने के सात तरीके हैं : विरासत, खोज, खरीद, विजित करके, निवेश, कार्य द्वारा तथा सज्जनों द्वारा दी गई भेंट को स्वीकार करके।

स्त्रियों के लिए संपत्ति अर्जन के छः तरीके हैं : वैवाहिक अग्नि के सामने तथा वधूगमन के समय मिली भेंट। स्नेह के प्रतीक के रूप में तथा भ्राता, माता और पिता द्वारा दिए गए उपहार। इसके अतिरिक्त परवर्ती काल में मिली भेंट तथा वह सब कुछ जो "अनुरागी" पति से उसे प्राप्त हो।

➲ स्त्री और पुरुष किस प्रकार धन प्राप्त कर सकते थे इसकी तुलना कीजिए व अंतर भी स्पष्ट कीजिए।

4.2 वर्ण और संपत्ति के अधिकार

ब्राह्मणीय ग्रंथों के अनुसार संपत्ति पर अधिकार का एक और आधार (लैंगिक आधार के अतिरिक्त) वर्ण था। जैसा हमने पहले पढ़ा है कि शूद्रों के लिए एकमात्र 'जीविका' ऐसी सेवा थी जिसमें हमेशा उनकी इच्छा शामिल नहीं होती थी। हालाँकि तीन उच्च वर्णों के पुरुषों के लिए विभिन्न जीविकाओं की संभावना रहती थी। यदि इन सब विधानों को वास्तव में कार्यान्वित किया जाता तो ब्राह्मण और क्षत्रिय सबसे धनी व्यक्ति होते। यह तथ्य कुछ हद तक सामाजिक वास्तविकता से मेल खाता था। साहित्यिक परंपरा में पुरोहितों और राजाओं का वर्णन मिलता है जिसमें राजा अधिकतर धनी चित्रित होते हैं; पुरोहित भी सामान्यतः धनी दर्शाए जाते हैं। हालाँकि यदा-कदा निर्धन ब्राह्मण का भी चित्रण मिलता है।

एक और स्तर पर, जहाँ समाज के ब्राह्मणीय दृष्टिकोण को धर्मसूत्र और धर्मशास्त्र में संहिताबद्ध किया जा रहा था अन्य परंपराओं ने वर्ण व्यवस्था की आलोचना प्रस्तुत की। इनमें से सर्वविदित आलोचनाएँ प्रारंभिक बौद्ध धर्म में (लगभग छठी शताब्दी ई.पू. से, अध्याय 4) विकसित हुईं। बौद्धों ने इस बात को अंगीकार किया कि समाज में विषमता मौजूद थी किंतु यह भेद न तो नैसर्गिक थे और न ही स्थायी बौद्धों ने जन्म के आधार पर सामाजिक प्रतिष्ठा को अस्वीकार किया।

स्रोत 13

एक धनाढ्य शूद्र

यह कहानी पालि भाषा के बौद्ध ग्रंथ *मज्झिमनिकाय* से है जो एक राजा अवन्तिपुत्र और बुद्ध के अनुयायी कच्चन के बीच हुए संवाद का हिस्सा है। यद्यपि यह कहानी अक्षरश: सत्य नहीं थी तथापि यह बौद्धों के वर्ण संबंधी रवैये को दर्शाती है।

अवन्तिपुत्र ने कच्चन से पूछा कि ब्राह्मणों के इस मत के बारे में उनकी क्या राय है, कि वे सर्वश्रेष्ठ हैं और अन्य जातियाँ निम्न कोटि की हैं; ब्राह्मण का वर्ण शुभ्र है और अन्य जातियाँ काली हैं; केवल ब्राह्मण पवित्र हैं अन्य नहीं; ब्राह्मण ब्रह्मा के पुत्र हैं, ब्रह्मा के मुख से जन्मे हैं, उनसे ही रचित हैं तथा ब्रह्मा के वंशज हैं।

कच्चन ने उत्तर दिया: "क्या यदि शूद्र धनी होता... दूसरा शूद्र... अथवा क्षत्रिय या फिर ब्राह्मण अथवा वैश्य... उससे विनीत स्वर में बात करता?"

अवन्तिपुत्र ने प्रत्युत्तर में कहा कि यदि शूद्र के पास धन अथवा अनाज, स्वर्ण या फिर रजत होती वह दूसरे शूद्र को अपने आज्ञाकारी सेवक के रूप में प्राप्त कर सकता था, जो उससे पहले उठे और उसके बाद विश्राम करे; जो उसकी आज्ञा का पालन करे, विनीत वचन बोले; अथवा वह क्षत्रिय, ब्राह्मण या फिर वैश्य को भी आज्ञावाही सेवक बना सकता था।

कच्चन ने पूछा, "यदि ऐसा है, तो क्या फिर यह चारों वर्ण एकदम समान नहीं हैं?"

अवन्तिपुत्र ने यह स्वीकार किया कि इस आधार पर चारों वर्णों में कोई भेद नहीं है।

➲ अवन्तिपुत्र के पहले वक्तव्य को दुबारा पढ़िए। इसमें कौन से विचार ऐसे हैं जो ब्राह्मणीय ग्रंथों/परंपराओं से लिए गए हैं? क्या आप इनमें से किसी विचार के स्रोत की पहचान कर सकते हैं? इस ग्रंथ के अनुसार सामाजिक असमानता के लिए क्या स्पष्टीकरण दिया जा सकता है?

4.3 एक वैकल्पिक सामाजिक रूपरेखा : संपत्ति में भागीदारी

अभी तक हम उन परिस्थितियों का परीक्षण करते रहे हैं जहाँ लोग अपनी संपत्ति के आधार पर सामाजिक प्रतिष्ठा का दावा करते थे, या फिर उन्हें वह स्थिति प्रदान की जाती थी। किंतु समाज में अन्य संभावनाएँ भी थीं। वह स्थिति जहाँ दानशील आदमी का सम्मान किया जाता था तथा कृपण व्यक्ति अथवा वह जो स्वयं अपने लिए संपत्ति संग्रह करता था, घृणा का पात्र होता था। प्राचीन तमिलकम् एक ऐसा ही क्षेत्र था जहाँ उपरोक्त आदर्शों को संजोया जाता था। जैसा हमने पहले पढ़ा (अध्याय 2), इस क्षेत्र में 2000 वर्ष पहले अनेक सरदारियाँ थीं। यह सरदार अपनी प्रशंसा गाने वाले चारण और कवियों के आश्रयदाता होते थे। तमिल भाषा के संगम साहित्यिक संग्रह में सामाजिक और आर्थिक संबंधों का अच्छा चित्रण है जो इस ओर इंगित करता है कि हालाँकि

धनी और निर्धन के बीच विषमताएँ थीं, जिन लोगों का संसाधनों पर नियंत्रण था उनसे यह अपेक्षा की जाती थी कि वे मिल-बाँट कर उसका उपयोग करेंगे।

स्रोत 14

निर्धन दानी सरदार

यह रचना *पुरुनारुरू* से उद्धृत है जो तमिल संगम साहित्य (लगभग प्रथम शताब्दी ईसवी) की एक पद्यावली है। इस रचना में एक चारण अपने आश्रयदाता का चित्रण अन्य कवियों के समक्ष इस भाँति कर रहा है :

उसके (अर्थात् आश्रयदाता) पास हर रोज़ दूसरों पर खर्चा करने के लिए धन नहीं है।

किंतु वह इतना ओछा भी नहीं है कि यह कहकर, कि मेरे पास कुछ नहीं है, दान देने से मना कर दे!...

वह इरंतई (एक स्थान) में रहता है और दानप्रिय है। वह चारणों की क्षुधा का शत्रु है।

यदि तुम अपनी गरीबी को समाप्त करना चाहो तो मेरे साथ आओ, तुम सभी चारण जिनके होंठ इतने दक्ष हैं!

यदि हम उससे प्रार्थना करेंगे और अपनी भूख से क्षीण हुई पसलियाँ उसे दिखाएँगे, तो वह अपने गाँव के लोहार के पास जाएगा और उस सक्षम हाथ वाले से कहेगा: "मुझे युद्ध के लिए एक लंबा भाला तैयार कर दो, एक ऐसा भाला जिसका सीधा फलक हो!"

➲ चारण ने सरदार को दानी बताने के लिए किस तरह के दाँव-पेंच अपनाए?
धन अर्जित करने के लिए सरदार को क्या करना होता था जिससे वह उसका कुछ अंश चारण को दे सके?

चित्र 3.7
एक सरदार और उसका अनुयायी; पत्थर की मूर्ति, अमरावती (आंध्र प्रदेश) लगभग दूसरी शताब्दी ईसवी

➲ मूर्तिकार ने सरदार व उसके अनुयायी के बीच अंतर को कैसे दर्शाया है?

➲ चर्चा कीजिए...

वर्तमान समाजों में सामाजिक रिश्ते किस तरह परिचालित होते हैं? क्या यह अतीत के सामाजिक रिश्तों से मिलते-जुलते हैं, अथवा भिन्न हैं?

5. सामाजिक विषमताओं की व्याख्या

एक सामाजिक अनुबंध

बौद्धों ने समाज में फैली विषमताओं के संदर्भ में एक अलग अवधारणा प्रस्तुत की। साथ ही समाज में फैले अंतर्विरोधों को नियमित करने के लिए जिन संस्थानों की आवश्यकता थी, उस पर भी अपना दृष्टिकोण सामने रखा। *सुत्तपिटक* नामक ग्रंथ में एक मिथक वर्णित है जो यह बताता है कि प्रारंभ में मानव पूर्णतया विकसित नहीं थे। वनस्पति जगत भी अविकसित था। सभी जीव शांति के एक निर्बाध लोक में रहते थे और प्रकृति से उतना ही ग्रहण करते थे जितनी एक समय के भोजन की आवश्यकता होती है।

किंतु यह व्यवस्था क्रमशः पतनशील हुई। मनुष्य अधिकाधिक लालची, प्रतिहिंसक और कपटी हो गए। इस स्थिति में उन्होंने विचार किया कि: "क्या हम एक ऐसे मनुष्य का चयन करें जो उचित बात पर क्रोधित हो, जिसकी प्रताड़ना की जानी चाहिए उसको प्रताड़ित करे और जिसे निष्कासित किया जाना हो उसे निष्कासित करे? बदले में हम उसे चावल का अंश देंगे... सब लोगों द्वारा चुने जाने के कारण उसे *महासम्मत* की उपाधि प्राप्त होगी।"

इससे यह ज्ञात होता है कि राजा का पद लोगों द्वारा चुने जाने पर निर्भर करता था। 'कर' वह मूल्य था जो लोग राजा की इस सेवा के बदले उसे देते थे। यह मिथक इस बात को भी दर्शाता है कि आर्थिक और सामाजिक संबंधों को बनाने में मानवीय कर्म का बड़ा हाथ था। इसके कुछ और आशय भी हैं। उदाहरणतः यदि मनुष्य स्वयं एक प्रणाली को बनाए रखने के लिए ज़िम्मेदार थे तो भविष्य में उसमें परिवर्तन भी ला सकते थे।

6. साहित्यिक स्रोतों का इस्तेमाल

इतिहासकार और महाभारत

यदि आप इस अध्याय के स्रोतों की ओर गौर करें तो आप पाएँगे कि इतिहासकार किसी ग्रंथ का विश्लेषण करते समय अनेक पहलुओं पर विचार करते हैं तथा इस बात का परीक्षण करते हैं कि ग्रंथ किस *भाषा* में लिखा गया : पालि, प्राकृत अथवा तमिल, जो आम लोगों द्वारा बोली जाती थी अथवा संस्कृत जो विशिष्ट रूप से पुरोहितों और खास वर्ग द्वारा प्रयोग में लाई जाती थी। इतिहासकार ग्रंथ के *प्रकार* पर भी ध्यान देते हैं। क्या यह ग्रंथ 'मंत्र' थे जो अनुष्ठानकर्ताओं द्वारा पढ़े और उच्चरित किए जाते थे अथवा ये 'कथा' ग्रंथ थे जिन्हें लोग पढ़ और सुन सकते थे तथा दिलचस्प होने पर जिन्हें दुबारा सुनाया जा सकता था? इसके अलावा

इतिहासकार लेखक(कों) के बारे में भी जानने का प्रयास करते हैं जिनके दृष्टिकोण और विचारों ने ग्रंथों को रूप दिया। इन ग्रंथों के श्रोताओं का भी इतिहासकार परीक्षण करते हैं क्योंकि लेखकों ने अपनी रचना करते समय श्रोताओं की अभिरुचि पर ध्यान दिया होगा। इतिहासकार ग्रंथ के संभावित संकलन/रचना काल और उसकी रचनाभूमि का भी विश्लेषण करते हैं। इन सब मुद्दों का जायज़ा लेने के बाद ही इतिहासकार किसी भी ग्रंथ की विषयवस्तु का इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए इस्तेमाल करते हैं। महाभारत जैसे विशाल और जटिल ग्रंथ के संदर्भ में, आप कल्पना कर सकते हैं कि यह कार्य कितना कठिन होगा।

6.1 भाषा एवं विषयवस्तु

अब हम ग्रंथ की भाषा की ओर देखते हैं। महाभारत का जो पाठ हम इस्तेमाल कर रहे हैं वह संस्कृत में है (यद्यपि अन्य भाषाओं में भी इसके संस्करण मिलते हैं)। किंतु महाभारत में प्रयुक्त संस्कृत वेदों अथवा प्रशस्तियों (अध्याय 2 में चर्चित) की संस्कृत से कहीं अधिक सरल है। अत: यह संभव है कि इस ग्रंथ को व्यापक स्तर पर समझा जाता था।

इतिहासकार इस ग्रंथ की विषयवस्तु को दो मुख्य शीर्षकों–*आख्यान* तथा *उपदेशात्मक*–के अंतर्गत रखते हैं। आख्यान में कहानियों का संग्रह है और उपदेशात्मक भाग में सामाजिक आचार-विचार के मानदंडों का चित्रण है। किंतु यह विभाजन पूरी तरह अपने में एकांकी नहीं है–उपदेशात्मक अंशों में भी कहानियाँ होती हैं और बहुधा आख्यानों में समाज के लिए एक सबक निहित रहता है। अधिकतर इतिहासकार इस बात पर एकमत हैं कि महाभारत वस्तुत: एक भाग में नाटकीय कथानक था जिसमें उपदेशात्मक अंश बाद में जोड़े गए।

उपदेशात्मक शब्द का तात्पर्य है निर्देश अथवा शिक्षा देना।

चित्र 3.8
श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए
महाभारत का सबसे महत्वपूर्ण उपदेशात्मक अंश *भगवद्गीता* है जहाँ कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं। इस दृश्य को चित्रों और मूर्तिकला में कई बार दर्शाया गया है। इस चित्र का काल अठारहवीं शताब्दी है।

आरंभिक संस्कृत परंपरा में महाभारत को 'इतिहास' की श्रेणी में रखा गया है। इस शब्द का अर्थ है : 'ऐसा ही था।' क्या महाभारत में, सचमुच में हुए किसी युद्ध का स्मरण किया जा रहा था? इस बारे में हम निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि स्वजनों के बीच हुए युद्ध की स्मृति ही महाभारत का मुख्य कथानक है। अन्य इस बात की ओर इंगित करते हैं कि हमें युद्ध की पुष्टि किसी और साक्ष्य से नहीं होती।

6.2 लेखक (एक या कई) और तिथियाँ

यह ग्रंथ किसने लिखा? इस प्रश्न के कई उत्तर हैं। संभवत: मूल कथा के रचयिता भाट सारथी थे जिन्हें 'सूत' कहा जाता था। ये क्षत्रिय योद्धाओं के साथ युद्धक्षेत्र में जाते थे और उनकी विजय व उपलब्धियों के बारे में कविताएँ लिखते थे। इन रचनाओं का प्रेषण मौखिक रूप में हुआ। पाँचवीं शताब्दी ई.पू. से ब्राह्मणों ने इस कथा परंपरा पर अपना अधिकार कर लिया और इसे लिखा। यह वह काल था जब कुरु और पांचाल जिनके इर्द-गिर्द महाभारत की कथा घूमती है, मात्र सरदारी से राजतंत्र के रूप में उभर रहे थे। क्या नए राजा अपने इतिहास को अधिक

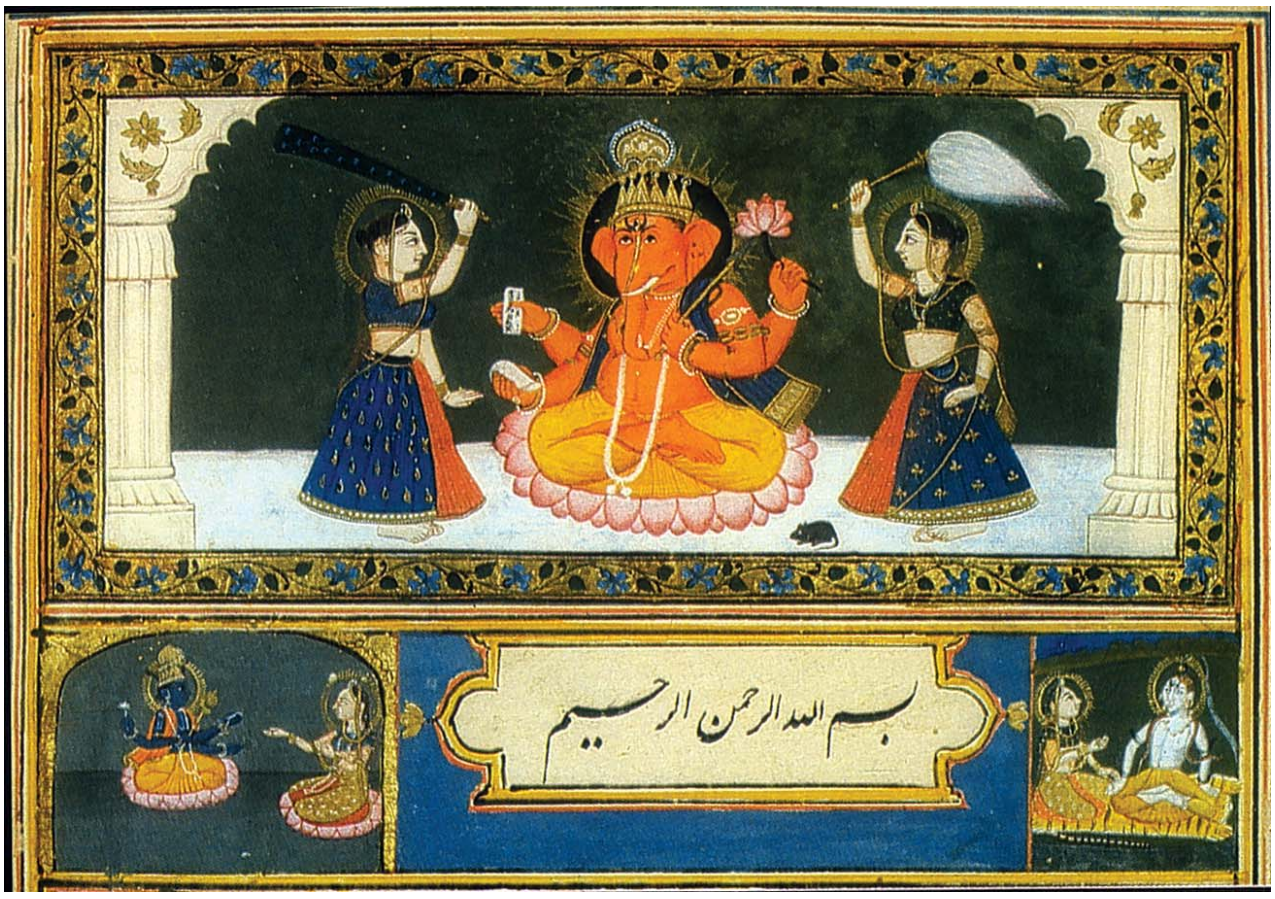

चित्र 3.9
लिपिक श्रीगणेश
परंपरा के अनुसार व्यास ने इस ग्रंथ को श्रीगणेश को लिखवाया। यह चित्र महाभारत के फारसी अनुवाद (लगभग 1740-50) से लिया गया है।

नियमित रूप से लिखना चाहते थे? यह भी संभव है कि नए राज्यों की स्थापना के समय होने वाली उथल-पुथल के कारण पुराने सामाजिक मूल्यों के स्थान पर नवीन मानदंडों की स्थापना हुई जिनका इस कहानी के कुछ भागों में वर्णन मिलता है।

लगभग 200 ई.पू. से 200 ईसवी के बीच हम इस ग्रंथ के रचनाकाल का एक और चरण देखते हैं। यह वह समय था जब विष्णु देवता की आराधना प्रभावी हो रही थी, तथा श्रीकृष्ण को जो इस महाकाव्य के महत्वपूर्ण नायकों में से हैं, उन्हें विष्णु का रूप बताया जा रहा था। कालांतर में लगभग 200-400 ईसवी के बीच *मनुस्मृति* से मिलते-जुलते बृहत उपदेशात्मक प्रकरण महाभारत में जोड़े गए। इन सब परिवर्धनों के कारण यह ग्रंथ जो अपने प्रारंभिक रूप में संभवत: 10,000 श्लोकों से भी कम रहा होगा, बढ़ कर एक लाख श्लोकों वाला हो गया। साहित्यिक परंपरा में इस बृहत रचना के रचयिता ऋषि व्यास माने जाते हैं।

6.3 सदृशता की खोज

महाभारत में अन्य किसी भी प्रमुख महाकाव्य की भाँति युद्धों, वनों, राजमहलों और बस्तियों का अत्यंत जीवंत चित्रण है। 1951-52 में पुरातत्ववेत्ता बी.बी. लाल ने मेरठ ज़िले (उ.प्र.) के हस्तिनापुर नामक एक गाँव में उत्खनन किया। क्या यह गाँव महाकाव्य में वर्णित हस्तिनापुर था? हालाँकि नामों की समानता मात्र एक संयोग हो सकता है किंतु गंगा के ऊपरी दोआब वाले क्षेत्र में इस पुरास्थल का होना जहाँ कुरु राज्य भी स्थित था, इस ओर इंगित करता है कि यह पुरास्थल कुरुओं की राजधानी हस्तिनापुर हो सकती थी जिसका उल्लेख महाभारत में आता है।

बी.बी. लाल को यहाँ आबादी के पाँच स्तरों के साक्ष्य मिले थे जिनमें से दूसरा और तीसरा स्तर हमारे विश्लेषण के लिए महत्वपूर्ण है। दूसरे स्तर (लगभग बारहवीं से सातवीं शताब्दी ई.पू.) पर मिलने वाले घरों के बारे में लाल कहते हैं : "जिस सीमित क्षेत्र का उत्खनन हुआ वहाँ से आवास गृहों की कोई निश्चित परियोजना नहीं मिलती किंतु मिट्टी की बनी दीवारें और कच्ची मिट्टी की ईंटें अवश्य मिलती हैं। सरकंडे की छाप वाले मिट्टी के पलस्तर की खोज इस बात की ओर इशारा करती है कि कुछ घरों की दीवारें सरकंडों की बनी थीं जिन पर मिट्टी का पलस्तर चढ़ा दिया जाता था।" तीसरे स्तर (लगभग छठी से तीसरी शताब्दी ई.पू.) के लिए लाल कहते हैं: "तृतीय काल के घर कच्ची और कुछ पक्की ईंटों के बने हुए थे। इनमें शोषक-घट और ईंटों के नाले गंदे पानी के निकास के लिए इस्तेमाल किए जाते थे, तथा वलय-कूपों का इस्तेमाल, कुओं और मल की निकासी वाले गर्तों, दोनों ही रूपों में किया जाता था।"

स्रोत 15

हस्तिनापुर

महाभारत के *आदिपर्वन्* में इस नगर का चित्रण इस प्रकार मिलता है :

> यह नगर जो समुद्र की भाँति भरा हुआ था, जो सैकड़ों प्रासादों से संकुलित था। इसके सिंहद्वार, तोरण और कंगूरे सघन बादलों की तरह घुमड़ रहे थे। यह इंद्र की नगरी के समान शोभायमान था।

➲ क्या आपको लगता है कि लाल की खोज और महाकाव्य में वर्णित हस्तिनापुर में समानता है।

चित्र 3.10
हस्तिनापुर में उत्खनित एक दीवार का अंश

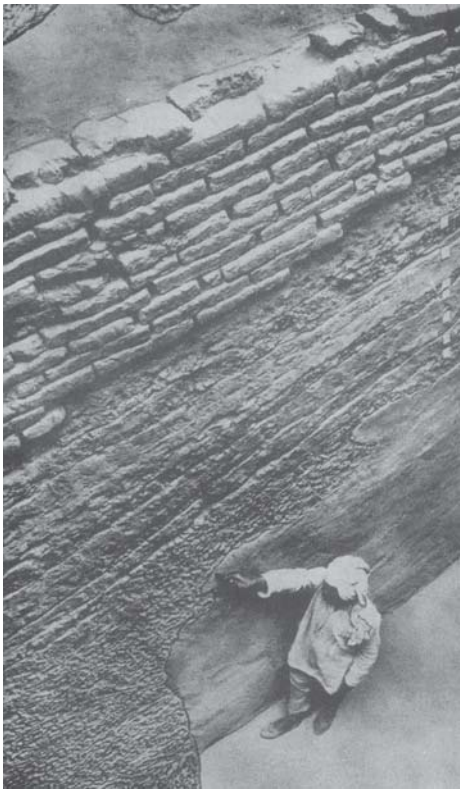

क्या नगर का यह चित्रण महाकाव्य के मुख्य कथानक में बाद में (ईसा पूर्व छठी शताब्दी के पश्चात) जोड़ दिया गया जब इस क्षेत्र में नगरों का विकास हुआ? अथवा यह मात्र कवियों की कल्पना की उड़ान थी जिसकी अन्य किसी भी साक्ष्य के साथ तुलना कर उसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता।

एक और उदाहरण पर गौर कीजिए। महाभारत की सबसे चुनौतीपूर्ण उपकथा द्रौपदी से पांडवों के विवाह की है। यह बहुपति विवाह का उदाहरण है जो महाभारत की कथा का अभिन्न अंग है। यदि हम महाकाव्य के इस अंश का विश्लेषण करें तो यह विदित होता है कि लेखक(कों) ने विभिन्न तरीकों से इसका स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया है।

स्रोत 16

द्रौपदी का विवाह

पांचाल नरेश द्रुपद ने एक स्वयंवर का आयोजन किया जिसमें यह शर्त रखी गई कि धनुष की चाप चढ़ा कर निशाने पर तीर मारा जाए; विजेता उनकी पुत्री द्रौपदी से विवाह करने के लिए चुना जाएगा। अर्जुन ने यह प्रतियोगिता जीती और द्रौपदी ने उसे वरमाला पहनाई। पांडव उसे लेकर अपनी माता कुंती के पास गए जिन्होंने बिना देखे ही उन्हें लाई गई वस्तु को आपस में बाँट लेने को कहा। जब कुंती ने द्रौपदी को देखा तो उन्हें अपनी भूल का एहसास हुआ, किंतु उनकी आज्ञा की अवहेलना नहीं की जा सकती थी। बहुत सोच-विचार के बाद युधिष्ठिर ने यह निर्णय लिया कि द्रौपदी उन पाँचों की पत्नी होगी।

जब द्रुपद को यह बताया गया तो उन्होंने इसका विरोध किया। किंतु ऋषि व्यास ने उन्हें इस तथ्य से अवगत कराया कि पांडव वास्तव में इंद्र के अवतार थे और उनकी पत्नी ने ही द्रौपदी के रूप में जन्म लिया था। अत: नियति ने ही उन सबका साथ निश्चित कर दिया था।

व्यास ने यह भी बताया कि एक बार युवा स्त्री ने पति प्राप्ति के लिए शिव की आराधना की और उत्साह के अतिरेक में एक के बजाय पाँच बार पति प्राप्ति का वर माँग लिया। इसी स्त्री ने द्रौपदी के रूप में जन्म लिया तथा शिव ने उसकी प्रार्थना को परिपूर्ण किया है। इन कहानियों से संतुष्ट होकर द्रुपद ने इस विवाह को अपनी सहमति प्रदान की।

➲ आपको क्यों लगता है कि लेखक(कों) ने एक ही प्रकरण के लिए तीन स्पष्टीकरण प्रस्तुत किए?

वर्तमान इतिहासकारों का यह सुझाव है कि लेखक(कों) द्वारा बहुपति विवाह संबंध का चित्रण इस बात की ओर इंगित करता है कि संभवत: यह प्रथा शासकों के विशिष्ट वर्ग में किसी काल में मौजूद थी। किंतु साथ ही इस प्रकरण के विभिन्न स्पष्टीकरण इस बात को भी व्यंजित करते हैं कि समय के साथ बहुपति प्रथा उन ब्राह्मणों में अमान्य हो गई जिन्होंने कई शताब्दियों के दौरान इस ग्रंथ को पुनर्निर्मित किया।

कुछ इतिहासकार इस तथ्य की ओर भी ध्यान दिलाते हैं कि यद्यपि ब्राह्मणों की दृष्टि में बहुपति प्रथा अमान्य और अवांछित थी, यह हिमालय क्षेत्र में प्रचलन में थी (और आज भी है)। यह भी कहा जाता है कि युद्ध के समय स्त्रियों की कमी के कारण बहुपति प्रथा को अपनाया गया। दूसरे शब्दों में कहें तो संकट की स्थिति में इसे अपनाया गया।

कुछ आरंभिक स्रोत इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि बहुपति प्रथा न तो एकमात्र विवाह पद्धति थी और न ही यह सबसे अधिक प्रचलित थी। फिर क्यों इस ग्रंथ के रचनाकार(रों) ने इस प्रथा को महाभारत के प्रमुख पात्रों के साथ अभिन्न रूप से जोड़कर देखा? हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सृजनात्मक साहित्य की अपनी कथा संबंधी ज़रूरतें होती हैं जो हमेशा समाज में मौजूद वास्तविकताओं को नहीं दर्शातीं।

7. एक गतिशील ग्रंथ

महाभारत का विकास संस्कृत के पाठ के साथ ही समाप्त नहीं हो गया। शताब्दियों से इस महाकाव्य के अनेक पाठान्तर भिन्न-भिन्न भाषाओं में लिखे गए। ये सब उस संवाद को दर्शाते थे जो इनके लेखकों, अन्य लोगों और समुदायों के बीच कायम हुए। अनेक कहानियाँ जिनका उद्भव एक क्षेत्र विशेष में हुआ और जिनका खास लोगों के बीच प्रसार हुआ, वे सब इस महाकाव्य में समाहित कर ली गईं। साथ ही इस महाकाव्य की मुख्य कथा की अनेक पुनर्व्याख्याएँ की गईं। इसके प्रसंगों को मूर्तिकला और चित्रों में भी दर्शाया गया। इस महाकाव्य ने नाटकों और नृत्य कलाओं के लिए भी विषय-वस्तु प्रदान की।

इस महाकाव्य की पुनर्व्याख्याओं में मुख्य कथावस्तु को बहुत ही सृजनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। हम ऐसे ही एक उदाहरण का उल्लेख करते हैं। महाभारत के एक प्रसंग का रूपांतरण समसामयिक बांग्ला लेखिका महाश्वेता देवी ने किया है, जो शोषण के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाने के लिए प्रसिद्ध हैं। इस उदाहरण में उन्होंने महाभारत की

➲ चर्चा कीजिए...

इस अध्याय में महाभारत से उद्धृत अंशों को एक बार फिर पढ़िए। इनमें से प्रत्येक के विषय में यह चर्चा कीजिए कि क्या वे वास्तव में सत्य थे। ये उद्धरण हमें महाकाव्य के रचयिताओं, पाठकों या फिर श्रोताओं के विषय में क्या बताते हैं?

मुख्य कथावस्तु के लिए अन्य विकल्प खोजे हैं और उन प्रश्नों की ओर ध्यान खींचा है जिन पर संस्कृत पाठ पूर्णतया मूक है।

संस्कृत पाठ में दुर्योधन द्वारा पांडवों को छल से लाक्षागृह में जलाकर मार देने का उल्लेख आता है। किंतु पहले से मिली चेतावनी के कारण पांडव उस गृह में सुरंग खोदकर भाग निकलते हैं। उस समय कुंती एक भोज का आयोजन करती है जिसमें ब्राह्मण आमंत्रित होते हैं, किंतु एक निषादी भी अपने पाँच पुत्रों के साथ उसमें आती है। खा-पीकर वे गहरी नींद में सो जाते हैं और पांडवों द्वारा लगाई गई आग में वे उसी लाक्षागृह में भस्म हो जाते हैं। जब उस निषादी और उसके पुत्रों के जले शव मिलते हैं तो लोग यह सोचते हैं कि पांडवों की मृत्यु हो गई है।

अपनी लघु कथा जिसका शीर्षक "कुंती ओ निषादी" है, महाश्वेता देवी ने कथानक का प्रारंभ वहाँ से किया है जहाँ महाभारत के इस प्रसंग का अंत होता है। उन्होंने अपनी कहानी का संयोजन एक वनप्रांतर में किया है जहाँ महाभारत के युद्ध के बाद कुंती रहने लगती हैं। कुंती के पास अब अपने अतीत के विषय में सोचने का समय है। पृथ्वी जो प्रकृति की प्रतीक है उससे बातें करते हुए वह अपनी त्रुटियों को अंगीकार करती हैं। प्रतिदिन वह निषादों को देखती हैं जो वन में लकड़ी, शहद, कंदमूल आदि एकत्रित करने आते हैं। एक निषादी बहुधा कुंती को पृथ्वी से बात करते हुए सुनती है।

एक दिन वातावरण में कुछ था; जानवर जंगल छोड़कर भाग रहे थे। कुंती ने देखा कि निषादी उन्हें ताक रही है, जब उसने यह पूछा कि क्या उन्हें लाक्षागृह की याद है, तो कुंती सकपका गई। उन्हें याद था। क्या उन्हें एक वृद्धा निषादी और उसके पाँच पुत्र याद थे? और इसकी स्मृति थी कि कुंती ने उन्हें मदिरा पिलाई थी, इतनी कि वे सब बेसुध हो गए थे जबकि वह स्वयं अपने पुत्रों के संग बचकर निकल गई थीं। कुंती ने पूछा क्या तुम वह निषादी हो? उसने उत्तर दिया कि मरी हुई निषादी उसकी सास थी। साथ ही वह बोली कि अपने अतीत पर विचार करते समय तुम्हें एक बार भी उन छः निर्दोष लोगों की याद नहीं आई जिन्हें प्राणों से हाथ धोना पड़ा था, क्योंकि तुम अपनी और अपने पुत्रों की जान बचाना चाहती थीं। जिस समय वे दोनों बातें कर रही थीं आग की लपटें करीब आ रही थीं। निषादी तो अपने प्राण बचाकर निकल गई किन्तु कुंती जहाँ खड़ी थी वहीं रह गई।

कालरेखा 1
प्रमुख साहित्यिक परंपराएँ

लगभग 500 ई. पू.	पाणिनि की *अष्टाध्यायी*, संस्कृत व्याकरण
लगभग 500-200 ई. पू.	प्रमुख धर्मसूत्र (संस्कृत में)
लगभग 500-100 ई. पू.	आरंभिक बौद्ध ग्रंथ *त्रिपिटक* सहित (पालि में)
लगभग 500 ई. पू.-400 ईसवी	*रामायण* और *महाभारत* (संस्कृत में)
लगभग 200 ई. पू.-200 ईसवी	*मनुस्मृति* (संस्कृत में), तमिल संगम साहित्य की रचना और संकलन
लगभग 100 ईसवी	*चरक* और *सुश्रुत* संहिता, आयुर्वेद के ग्रंथ (संस्कृत में)
लगभग 200 ईसवी से	*पुराणों* का संकलन (संस्कृत में)
लगभग 300 ईसवी	भरतमुनि का *नाट्यशास्त्र* (संस्कृत में)
लगभग 300-600 ईसवी	अन्य धर्मशास्त्र (संस्कृत में)
लगभग 400-500 ईसवी	संस्कृत नाटक कालिदास के साहित्य सहित; खगोल व गणित शास्त्र पर आर्यभट्ट और वराहमिहिर के ग्रंथ (संस्कृत में); जैन ग्रंथों का संग्रहण (प्राकृत में)

कालरेखा 2
महाभारत के अध्ययन में प्रमुख कीर्तिमान

बीसवीं शताब्दी	
1919-66	महाभारत के समालोचनात्मक संस्करण की परिकल्पना और प्रकाशन
1973	जे.ए.बी. वैन बियुटेनेन द्वारा समालोचनात्मक संस्करण का अंग्रेज़ी अनुवाद आरंभ; 1978 में उनकी मृत्यु के बाद यह परियोजना अधूरी रह गई।

उत्तर दीजिए (लगभग 100-150 शब्दों में)

1. स्पष्ट कीजिए कि विशिष्ट परिवारों में पितृवंशिकता क्यों महत्वपूर्ण रही होगी?

2. क्या आरंभिक राज्यों में शासक निश्चित रूप से क्षत्रिय ही होते थे? चर्चा कीजिए।

3. द्रोण, हिडिम्बा और मातंग की कथाओं में धर्म के मानदंडों की तुलना कीजिए व उनके अंतर को भी स्पष्ट कीजिए।

4. किन मायनों में सामाजिक अनुबंध की बौद्ध अवधारणा समाज के उस ब्राह्मणीय दृष्टिकोण से भिन्न थी जो 'पुरुषसूक्त' पर आधारित था।

5. निम्नलिखित अवतरण महाभारत से है जिसमें ज्येष्ठ पांडव युधिष्ठिर दूत संजय को संबोधित कर रहे हैं :

> संजय धृतराष्ट्र गृह के सभी ब्राह्मणों और मुख्य पुरोहित को मेरा विनीत अभिवादन दीजिएगा। मैं गुरु द्रोण के सामने नतमस्तक होता हूँ... मैं कृपाचार्य के चरण स्पर्श करता हूँ... (और) कुरु वंश के प्रधान भीष्म के। मैं वृद्ध राजा (धृतराष्ट्र) को नमन करता हूँ। मैं उनके पुत्र दुर्योधन और उनके अनुजों के स्वास्थ्य के बारे में पूछता हूँ तथा उनको शुभकामनाएँ देता हूँ... मैं उन सब युवा कुरु योद्धाओं का अभिनंदन करता हूँ जो हमारे भाई, पुत्र और पौत्र हैं... सर्वोपरि मैं उन महामति विदुर को (जिनका जन्म दासी से हुआ है) नमस्कार करता हूँ जो हमारे पिता और माता के सदृश हैं... मैं उन सभी वृद्धा स्त्रियों को प्रणाम करता हूँ जो हमारी माताओं के रूप में जानी जाती हैं। जो हमारी पत्नियाँ हैं उनसे यह कहिएगा कि, "मैं आशा करता हूँ कि वे सुरक्षित हैं"... मेरी ओर से उन कुलवधुओं का जो उत्तम परिवारों में जन्मी हैं और बच्चों की माताएँ हैं, अभिनंदन कीजिएगा तथा हमारी पुत्रियों का आलिंगन कीजिएगा... सुंदर, सुगंधित, सुवेशित गणिकाओं को शुभकामनाएँ दीजिएगा। दासियों और उनकी संतानों तथा वृद्ध, विकलांग और असहाय जनों को भी मेरी ओर से नमस्कार कीजिएगा...

इस सूची को बनाने के आधारों की पहचान कीजिए – उम्र, लिंग, भेद व बंधुत्व के संदर्भ में। क्या कोई अन्य आधार भी हैं? प्रत्येक श्रेणी के लिए स्पष्ट कीजिए कि सूची में उन्हें एक विशेष स्थान पर क्यों रखा गया है?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 500 शब्दों में)

6. भारतीय साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार मौरिस विंटरविट्ज़ ने महाभारत के बारे में लिखा था कि: "चूँकि महाभारत संपूर्ण साहित्य का प्रतिनिधित्व करता है... बहुत सारी और अनेक प्रकार की चीज़ें इसमें निहित हैं... (वह) भारतीयों की आत्मा की अगाध गहराई को एक अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।" चर्चा कीजिए।

7. क्या यह संभव है कि महाभारत का एक ही रचयिता था? चर्चा कीजिए।

8. आरंभिक समाज में स्त्री-पुरुष के संबंधों की विषमताएँ कितनी महत्वपूर्ण रही होंगी? कारण सहित उत्तर दीजिए।

9. उन साक्ष्यों की चर्चा कीजिए जो यह दर्शाते हैं कि बंधुत्व और विवाह संबंधी ब्राह्मणीय नियमों का सर्वत्र अनुसरण नहीं होता था।

मानचित्र कार्य

10. इस अध्याय के मानचित्र की अध्याय 2 के मानचित्र 1 से तुलना कीजिए। कुरु-पांचाल क्षेत्र के पास स्थित महाजनपदों और नगरों की सूची बनाइए।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. अन्य भाषाओं में महाभारत की पुनर्व्याख्या के बारे में जानिए। इस अध्याय में वर्णित महाभारत के किन्हीं दो प्रसंगों का इन भिन्न भाषा वाले ग्रंथों में किस तरह निरूपण हुआ है उनकी चर्चा कीजिए। जो भी समानता और विभिन्नता आप इन वृत्तांत में देखते हैं उन्हें स्पष्ट कीजिए।

12. कल्पना कीजिए कि आप एक लेखक हैं और एकलव्य की कथा को अपने दृष्टिकोण से लिखिए।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

उमा चक्रवर्ती, 2006
एवरीडे लाइव्ज़, एवरीडे हिस्ट्रीज़,
तूलिका, नयी दिल्ली।

इरावती कार्वे, 1968
किनशिप आर्गनाईज़ेशन इन इंडिया,
एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे।

आर.एस. शर्मा, 1983
पर्सपेक्टिव इन सोशल एंड इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ़ अर्ली इंडिया,
मुंशीराम मनोहर लाल, नयी दिल्ली।

वी.एस. सुकथांकर, 1957
ऑन द मीनिंग ऑफ़ द महाभारत,
एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बॉम्बे, बॉम्बे।

रोमिला थापर, 2000
कल्चरल पास्ट्स: ऐसेज़ इन अर्ली इंडियन हिस्ट्री, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,
नयी दिल्ली।

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं
http://bombay.indology.info/mahabharata/statement.html

विषय चार

विचारक, विश्वास और इमारतें
सांस्कृतिक विकास
(ईसा पूर्व 600 से ईसा संवत् 600 तक)

चित्र 4.1
साँची की एक मूर्ति

इस अध्याय में हम एक हज़ार साल लंबी यात्रा पर जाएँगे। इसमें हम दार्शनिकों के बारे में पढ़ेंगे और यह जानने की कोशिश करेंगे कि उन्होंने समाज में अपनी स्थिति को समझने के क्या प्रयास किए। हम यह भी देखेंगे कि उनके विचार किस तरह से मौखिक और लिखित परंपराओं में संग्रहित हुए तथा उन्हें स्थापत्य और मूर्तिकला के माध्यम से कैसी अभिव्यक्ति मिली। ये सब जनता पर इन विचारकों के स्थायी प्रभाव को दर्शाते हैं। हालाँकि हम बौद्ध धर्म का विशेष अध्ययन करेंगे, यह ध्यान देने की बात है कि यह परंपरा अकेली विकसित नहीं हुई। दूसरी कई परंपराएँ थीं जो एक-दूसरे के साथ लगातार वाद-विवाद और संवाद चला रही थीं।

इन रोमांचक विचारों और विश्वासों की दुनिया के पुनर्निर्माण के लिए इतिहासकार जिन स्रोतों का इस्तेमाल करते हैं उनमें बौद्ध, जैन और ब्राह्मण ग्रंथों के अलावा इमारतों और अभिलेखों जैसे प्रभूत मात्रा में उपलब्ध भौतिक साक्ष्य भी शामिल हैं। उस युग की बची हुई इमारतों में सबसे सुरक्षित है साँची का स्तूप। यह स्तूप इस अध्याय के अध्ययन का एक प्रमुख केंद्र-बिंदु है।

चित्र 4.2
शाहजहाँ बेगम

1. साँची की एक झलक

साँची उन्नीसवीं सदी में

भोपाल राज्य के प्राचीन अवशेषों में सबसे अद्‌भुत साँची कनखेड़ा की इमारतें हैं। भोपाल से बीस मील उत्तर-पूर्व की तरफ़ एक पहाड़ी की तलहटी में बसे इस गाँव को हम कल देखने गए थे। हमने पत्थर की वस्तुओं, बुद्ध की मूर्तियों और एक प्राचीन तोरणद्वार का निरीक्षण किया... ये अवशेष यूरोप के सज्जनों को विशेष रुचिकर लगते हैं जिनमें मेजर अलेक्ज़ैंडर कनिंघम एक हैं। मेजर अलेक्ज़ैंडर कनिंघम ने... इस इलाके में कई हफ़्तों तक रुक कर इन अवशेषों का निरीक्षण किया। उन्होंने इस जगह के चित्र बनाए, वहाँ के अभिलेखों को पढ़ा और गुंबदनुमा ढाँचे के बीचोंबीच खुदाई की। उन्होंने इस खोज के निष्कर्षों को एक अंग्रेज़ी पुस्तक में लिखा है...

भोपाल की नवाब (शासनकाल 1868-1901), शाहजहाँ बेगम की आत्मकथा *ताज-उल-इकबाल तारीख भोपाल* (भोपाल का इतिहास) से। 1876 में एच.डी. बार्स्टो ने इसका अनुवाद किया।

उन्नीसवीं सदी के यूरोपियों में साँची के स्तूप को लेकर काफ़ी दिलचस्पी थी। फ्रांसीसियों ने सबसे अच्छी हालत में बचे साँची के पूर्वी तोरणद्वार को फ्रांस के संग्रहालय में प्रदर्शित करने के लिए शाहजहाँ बेगम से फ्रांस ले जाने की इजाज़त माँगी। कुछ समय के लिए अंग्रेज़ों ने भी ऐसी ही कोशिश की। सौभाग्यवश फ्रांसिसी और अंग्रेज़ दोनों ही बड़ी सावधानी से बनाई प्लास्टर प्रतिकृतियों से संतुष्ट हो गए। इस प्रकार मूल कृति भोपाल राज्य में अपनी जगह पर ही रही।

भोपाल के शासकों, शाहजहाँ बेगम और उनकी उत्तराधिकारी सुल्तानजहाँ बेगम, ने इस प्राचीन स्थल के रख-रखाव के लिए धन का अनुदान दिया। आश्चर्य नहीं कि जॉन मार्शल ने साँची पर लिखे अपने महत्वपूर्ण ग्रंथों को सुल्तानजहाँ को समर्पित किया। सुल्तानजहाँ बेगम ने वहाँ पर एक संग्रहालय और अतिथिशाला बनाने के लिए अनुदान दिया। वहाँ रहते हुए ही जॉन मार्शल ने उपर्युक्त पुस्तकें लिखीं। इस पुस्तक के विभिन्न खंडों के प्रकाशन में भी सुल्तानजहाँ बेगम ने अनुदान दिया। इसलिए यदि यह स्तूप समूह बना रहा है तो इसके पीछे कुछ विवेकपूर्ण निर्णयों की बड़ी भूमिका है। शायद हम इस मामले में भी भाग्यशाली रहे हैं कि इस स्तूप पर किसी रेल ठेकेदार या निर्माता की नज़र नहीं पड़ी। यह उन लोगों से भी बचा रहा जो ऐसी चीज़ों को यूरोप के संग्रहालयों में ले जाना चाहते थे। बौद्ध धर्म के इस महत्वपूर्ण केंद्र की खोज से आरंभिक बौद्ध धर्म के बारे में हमारी समझ में महत्वपूर्ण बदलाव आए। आज यह जगह भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के सफल मरम्मत और संरक्षण का जीता जागता उदाहरण है।

चित्र 4.3
साँची का महान स्तूप
यदि आप दिल्ली से भोपाल की रेलयात्रा करेंगे तो आप एक पहाड़ी के ऊपर एक मुकुट जैसे इस खूबसूरत स्तूप को देखेंगे। यदि आप गार्ड को सूचित करेंगे तो वह साँची के छोटे से स्टेशन पर दो मिनट के लिए गाड़ी को रोक देंगे - बस इतना समय कि आप गाड़ी से उतर जाएँ। पहाड़ी पर चढ़ते हुए आप पूरे स्तूप समूह को देख सकते हैं - एक विशाल गोलार्ध ढाँचा और कई दूसरी इमारतें जिनमें पाँचवीं सदी में बना एक मंदिर भी शामिल है।

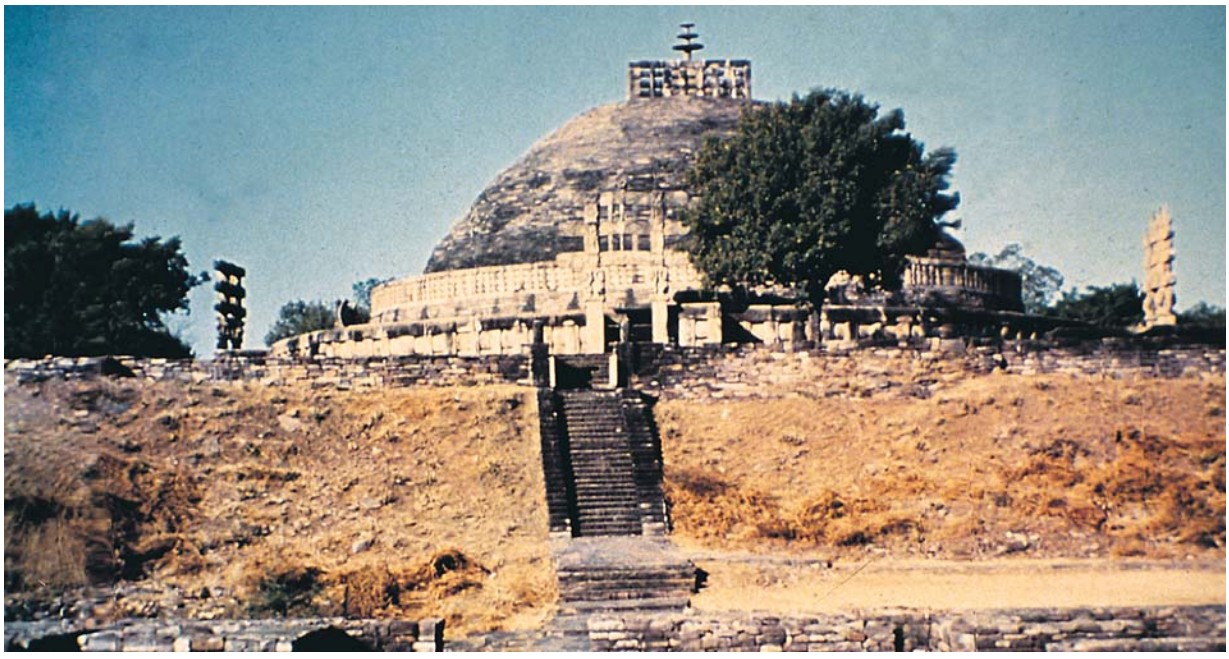

➲ चर्चा कीजिए...

शाहजहाँ बेगम द्वारा किए गए वर्णन की तुलना चित्र 3 से कीजिए। इनमें आप क्या समानताएँ और असमानताएँ पाते हैं?

आखिर इस इमारत का क्या महत्त्व है? यह टीला क्यों बनाया गया और इसके अंदर क्या था? इसके चारों ओर पत्थर की रेलिंग क्यों बनाई गई? इस स्तूप-समूह को किसने बनवाया या इसके लिए धन किसने दिया? इसकी "खोज" कब की गई? ग्रंथों, मूर्तियों, स्थापत्य कला और अभिलेखों के अध्ययन के द्वारा हम इस रोचक इतिहास की खोज कर सकते हैं। आइए, हम प्रारंभिक बौद्ध धर्म की पृष्ठभूमि के अन्वेषण से शुरुआत करते हैं।

2. पृष्ठभूमि

यज्ञ और विवाद

ईसा पूर्व प्रथम सहस्राब्दि का काल विश्व इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ माना जाता है। इस काल में ईरान में जरथुस्त्र जैसे चिंतक, चीन में खुंगत्सी, यूनान में सुकरात, प्लेटो, अरस्तु और भारत में महावीर, बुद्ध और कई अन्य चिंतकों का उद्भव हुआ। उन्होंने जीवन के रहस्यों को समझने का प्रयास किया। साथ-साथ वे इनसानों और विश्व व्यवस्था के बीच रिश्ते को समझने की कोशिश कर रहे थे। यही वह समय था जब गंगा घाटी में नए राज्य और शहर उभर रहे थे और सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में कई तरह के बदलाव आ रहे थे (अध्याय 2 तथा 3)। ये मनीषी इन बदलते हालात को भी समझने की कोशिश कर रहे थे।

स्रोत 1

अग्नि की प्रार्थना

यहाँ पर *ऋग्वेद* से लिए गए दो छंद हैं जिनमें अग्निदेव का आह्वान किया गया है :

हे शक्तिशाली देव, आप हमारी आहुति देवताओं तक ले जाएँ। हे बुद्धिमंत, आप तो सबके दाता हैं। हे पुरोहित, हमे खूब सारे खाद्य पदार्थ दें।

हे अग्नि यज्ञ के द्वारा हमारे लिए प्रचुर धन ला दें। हे अग्नि, जो आपकी प्रार्थना करता है उसके लिए आप सदा के लिए पुष्टिवर्धक अद्भुत गाय ला दें। हमें एक पुत्र मिले जो हमारे वंश को आगे बढ़ाए...

इस तरह के छंद एक खास तरह की संस्कृत में रचे गए थे जिसे वैदिक संस्कृत कहा जाता था। ये स्रोत पुरोहित परिवारों के लोगों को मौखिक रूप में सिखाए जाते थे।

➲ यज्ञ के उद्देश्यों की सूची बनाइए।

2.1 यज्ञों की परंपरा

चिंतन, धार्मिक विश्वास और व्यवहार की कई धाराएँ प्राचीन युग से ही चली आ रही थीं। पूर्व वैदिक परंपरा जिसकी जानकारी हमें 1500 से 1000 ईसा पूर्व में संकलित *ऋग्वेद* से मिलती है, वैसी ही एक प्राचीन परंपरा थी। *ऋग्वेद* अग्नि, इंद्र, सोम आदि कई देवताओं की स्तुति का संग्रह है। यज्ञों के समय इन स्रोतों का उच्चारण किया जाता था और लोग मवेशी, बेटे, स्वास्थ्य, लंबी आयु आदि के लिए प्रार्थना करते थे।

शुरू-शुरू में यज्ञ सामूहिक रूप से किए जाते थे। बाद में (लगभग 1000 ईसा पूर्व -500 ईसा पूर्व) कुछ यज्ञ घरों के मालिकों द्वारा किए जाते थे। राजसूय और अश्वमेध जैसे जटिल यज्ञ सरदार और राजा किया करते थे। इनके अनुष्ठान के लिए उन्हें ब्राह्मण पुरोहितों पर निर्भर रहना पड़ता था।

2.2 नए प्रश्न

उपनिषदों (छठी सदी ई.पू. से) में पाई गई विचारधाराओं से पता चलता है कि लोग जीवन का अर्थ, मृत्यु के बाद जीवन की संभावना और पुनर्जन्म के बारे में जानने के लिए उत्सुक थे। क्या पुनर्जन्म अतीत के

कर्मों के कारण होता था? ऐसे मुद्दों पर पुरज़ोर बहस होती थी। मनीषी परम यथार्थ की प्रकृति को समझने और अभिव्यक्त करने में लगे थे। वैदिक परंपरा से बाहर के कुछ दार्शनिक यह सवाल उठा रहे थे कि सत्य एक होता है या अनेक। लोग यज्ञों के महत्त्व के बारे में भी चिंतन करने लगे।

2.3 वाद-विवाद और चर्चाएँ

समकालीन बौद्ध ग्रंथों में हमें 64 संप्रदायों या चिंतन परंपराओं का उल्लेख मिलता है। इससे हमें जीवंत चर्चाओं और विवादों की एक झाँकी मिलती है। शिक्षक एक जगह से दूसरी जगह घूम-घूम कर अपने दर्शन या विश्व के विषय में अपनी समझ को लेकर एक-दूसरे से तथा सामान्य लोगों से तर्क-वितर्क करते थे। ये चर्चाएँ कुटागारशालाओं (शब्दार्थ- नुकीली छत वाली झोपड़ी) या ऐसे उपवनों में होती थीं जहाँ घुमक्कड़ मनीषी ठहरा करते थे। यदि एक शिक्षक अपने प्रतिद्वंद्वी को अपने तर्कों से समझा लेता था तो वह अपने अनुयायियों के साथ उसका शिष्य बन जाता था इसलिए किसी भी संप्रदाय के लिए समर्थन समय के साथ बढ़ता-घटता रहता था।

इनमें से कई शिक्षक जिनमें महावीर और बुद्ध शामिल हैं, वेदों के प्रभुत्व पर प्रश्न उठाते थे। उन्होंने यह भी माना कि जीवन के दु:खों से मुक्ति का प्रयास हर व्यक्ति स्वयं कर सकता था। यह समझ ब्राह्मणवाद से बिलकुल भिन्न थी। जैसा कि हमने देखा ब्राह्मणवाद यह मानता था कि किसी व्यक्ति का अस्तित्व उसकी जाति और लिंग से निर्धारित होता था।

स्रोत 2

उपनिषद की कुछ पंक्तियाँ

यहाँ पर संस्कृत भाषा में रचित लगभग छठी सदी ईसा पूर्व के *छांदोग्य उपनिषद* से दो श्लोक दिए गए हैं :

आत्मा की प्रकृति

मेरी यह आत्मा धान या यव या सरसों या बाजरे के बीज की गिरी से भी छोटी है। मन के अंदर छुपी मेरी यह आत्मा पृथ्वी से भी विशाल, क्षितिज से भी विस्तृत, स्वर्ग से भी बड़ी है और इन सभी लोकों से भी बड़ी है।

सच्चा यज्ञ

यह (पवन) जो बह रहा है, निश्चय ही एक यज्ञ है... बहते-बहते यह सबको पवित्र करता है; इसलिए यह वास्तव में यज्ञ है।

बौद्ध ग्रंथ किस प्रकार तैयार और संरक्षित किए जाते थे

बुद्ध (अन्य शिक्षकों की तरह) चर्चा और बातचीत करते हुए मौखिक शिक्षा देते थे। महिलाएँ और पुरुष (शायद बच्चे भी) इन प्रवचनों को सुनते थे और इन पर चर्चा करते थे। बुद्ध के किसी भी संभाषण को उनके जीवन काल में लिखा नहीं गया। उनकी मृत्यु के बाद (पाँचवीं-चौथी सदी ई.पू.) उनके शिष्यों ने 'ज्येष्ठों' या ज़्यादा वरिष्ठ श्रमणों की एक सभा वेसली (बिहार स्थित वैशाली का पालि भाषा में रूप) में बुलाई। वहाँ पर ही उनकी शिक्षाओं का संकलन किया गया। इन संग्रहों को *'त्रिपिटक'* (शब्दार्थ भिन्न प्रकार के ग्रंथों को रखने के लिए *'तीन टोकरियाँ'*) कहा जाता था। पहले उन्हें मौखिक रूप से ही संप्रेषित किया जाता था। बाद में लिखकर विषय और लंबाई के अनुसार वर्गीकरण किया गया।

विनय पिटक में संघ या बौद्ध मठों में रहने वाले लोगों के लिए नियमों का संग्रह था। बुद्ध की शिक्षाएँ *सुत्त पिटक* में रखी गईं और दर्शन से जुड़े विषय *अभिधम्म पिटक* में आए। हर पिटक के अंदर कई ग्रंथ होते थे। बाद के युगों में बौद्ध विद्वानों ने इन ग्रंथों पर टीकाएँ लिखीं।

जब बौद्ध धर्म श्रीलंका जैसे नए इलाकों में फैला *दीपवंश* (द्वीप का इतिहास) और *महावंश* (महान इतिहास) जैसे क्षेत्र-विशेष के बौद्ध इतिहास को लिखा गया। इनमें से कई रचनाओं में बुद्ध की जीवनी लिखी गई है। ज़्यादातर पुराने ग्रंथ पालि में हैं। बाद के युगों में संस्कृत में ग्रंथ लिखे गए।

जब बौद्ध धर्म पूर्व एशिया में फैला तब फा-शिएन और श्वैन त्सांग जैसे तीर्थयात्री बौद्ध ग्रंथों की खोज में चीन से भारत आए। ये पुस्तकें वे अपने देश ले गए जहाँ विद्वानों ने इनका अनुवाद किया। हिन्दुस्तान के बौद्ध शिक्षक भी दूर-दराज़ के देशों में गए। बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार करने के लिए वे कई पुस्तकें भी अपने साथ ले गए। कई सदियों तक ये पांडुलिपियाँ एशिया के भिन्न-भिन्न इलाकों में स्थित बौद्ध विहारों में संरक्षित थीं। पालि, संस्कृत, चीनी और तिब्बती भाषाओं में लिखे इन ग्रंथों से आधुनिक अनुवाद तैयार किए गए हैं।

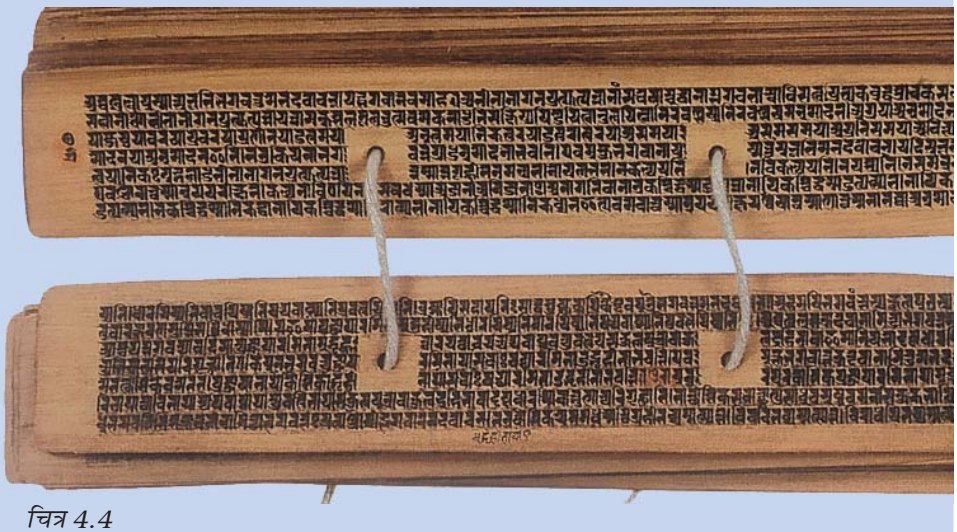

चित्र 4.4
संस्कृत में लिखी एक बौद्ध पांडुलिपि, लगभग 12वीं शताब्दी

स्रोत 3

नियतिवादी और भौतिकवादी

यहाँ हम *सुत्त पिटक* से लिया गया दृष्टांत दे रहे हैं। इसमें मगध के राजा अजातसत्तु और बुद्ध के बीच बातचीत का वर्णन किया गया है।

एक बार राजा अजातसत्तु बुद्ध के पास गए और उन्होंने मक्खलि गोसाल नामक एक अन्य शिक्षक की बातें बताईं :

"हालाँकि बुद्धिमान लोग यह विश्वास करते हैं कि इस सद्गुण से... इस तपस्या से मैं कर्म प्राप्ति करूँगा... मूर्ख उन्हीं कार्यों को करके धीरे-धीरे कर्म मुक्ति की उम्मीद करेगा। दोनों में से कोई कुछ नहीं कर सकता। सुख और दुख मानो पूर्व निर्धारित मात्रा में माप कर दिए गए हैं। इसे संसार में बदला नहीं जा सकता। इसे बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता। जैसे धागे का गोला फेंक देने पर लुढ़कते-लुढ़कते अपनी पूरी लंबाई तक खुलता जाता है उसी तरह मूर्ख और विद्वान दोनों ही पूर्व निर्धारित रास्ते से होते हुए दुःखों का निदान करेंगे।"

और अजीत केसकंबलिन् नामक दार्शनिक ने यह उपदेश दिया :

"हे राजन्! दान, यज्ञ या चढ़ावा जैसी कोई चीज़ नहीं होती... इस दुनिया या दूसरी दुनिया जैसी कोई चीज़ नहीं होती...

मनुष्य चार तत्वों से बना होता है। जब वह मरता है तब मिट्टी वाला अंश पृथ्वी में, जल वाला हिस्सा जल में, गर्मी वाला अंश आग में, साँस का अंश वायु में वापिस मिल जाता है और उसकी इंद्रियाँ अंतरिक्ष का हिस्सा बन जाती हैं...

दान देने की बात मूर्खों का सिद्धांत है, खोखला झूठ है... मूर्ख हो या विद्वान दोनों ही कट कर नष्ट हो जाते हैं। मृत्यु के बाद कोई नहीं बचता।"

प्रथम गद्यांश के उपदेशक आजीविक परंपरा के थे। उन्हें अक्सर नियतिवादी कहा जाता है-ऐसे लोग जो विश्वास करते थे कि सब कुछ पूर्व निर्धारित है। द्वितीय गद्यांश के उपदेशक लोकायत परंपरा के थे जिन्हें सामान्यतः भौतिकवादी कहा जाता है। इन दार्शनिक परंपराओं के ग्रंथ नष्ट हो गए हैं। इसलिए हमें अन्य परंपराओं से ही उनके बारे में जानकारी मिलती है।

➲ क्या इन लोगों को नियतिवादी या भौतिकवादी कहना आपको उचित लगता है?

➲ चर्चा कीजिए...

जब लिखित सामग्री उपलब्ध न हो अथवा किन्हीं वजहों से बच न पाई हो तो ऐसी स्थिति में विचारों और मान्यताओं के इतिहास का पुनर्निर्माण करने में क्या समस्याएँ सामने आती हैं?

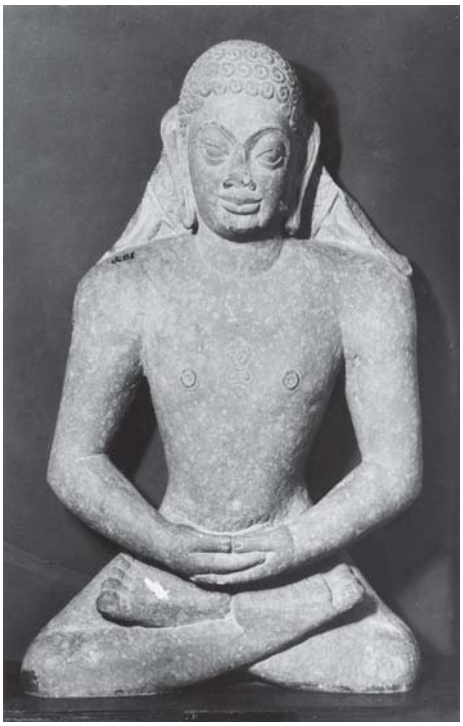

चित्र 4.5
मथुरा से प्राप्त तीर्थंकर की एक मूर्ति, लगभग तीसरी शताब्दी ई.

स्रोत 4

3. लौकिक सुखों से आगे

महावीर का संदेश

जैनों के मूल सिद्धांत छठी सदी ईसा पूर्व में वर्धमान महावीर के जन्म से पहले ही उत्तर भारत में प्रचलित थे। जैन परंपरा के अनुसार महावीर से पहले 23 शिक्षक हो चुके थे, उन्हें तीर्थंकर कहा जाता है : यानी कि वे महापुरुष जो पुरुषों और महिलाओं को जीवन की नदी के पार पहुँचाते हैं।

जैन दर्शन की सबसे महत्वपूर्ण अवधारणा यह है कि संपूर्ण विश्व प्राणवान है। यह माना जाता है कि पत्थर, चट्टान और जल में भी जीवन होता है। जीवों के प्रति अहिंसा – खासकर इनसानों, जानवरों, पेड़-पौधों और कीड़े-मकोड़ों को न मारना जैन दर्शन का केंद्र बिंदु है। वस्तुतः जैन अहिंसा के सिद्धांत ने संपूर्ण भारतीय चिंतन परंपरा को प्रभावित किया है। जैन मान्यता के अनुसार जन्म और पुनर्जन्म का चक्र कर्म के द्वारा निर्धारित होता है। कर्म के चक्र से मुक्ति के लिए त्याग और तपस्या की ज़रूरत होती है। यह संसार के त्याग से ही संभव हो पाता है। इसीलिए मुक्ति के लिए विहारों में निवास करना एक अनिवार्य नियम बन गया। जैन साधु और साध्वी पाँच व्रत करते थे : हत्या न करना, चोरी नहीं करना, झूठ न बोलना, ब्रह्मचर्य (अमृषा) और धन संग्रह न करना।

महल के बाहर की दुनिया

जैसे बुद्ध के उपदेशों को उनके शिष्यों ने संकलित किया वैसे ही महावीर के शिष्यों ने किया। अक्सर ये उपदेश कहानियों के रूप में प्रस्तुत किए जाते थे जो आम लोगों को आकर्षित करते थे। यह उदाहरण *उत्तराध्ययन सूत्र* नामक एक ग्रंथ से लिया गया है। इसमें कमलावती नामक एक महारानी अपने पति को संन्यास लेने के लिए समझा रही है :

> अगर संपूर्ण विश्व और वहाँ के सभी खज़ाने तुम्हारे हो जाएँ तब भी तुम्हें संतोष नहीं होगा, न ही यह सारा कुछ तुम्हें बचा पाएगा। हे राजन्! जब तुम्हारी मृत्यु होगी और जब सारा धन पीछे छूट जाएगा तब सिर्फ धर्म ही, और कुछ भी नहीं, तुम्हारी रक्षा करेगा। जैसे एक चिड़िया पिंजरे से नफ़रत करती है वैसे ही मैं इस संसार से नफ़रत करती हूँ। मैं बाल-बच्चे को जन्म न देकर निष्काम भाव से, बिना लाभ की कामना से और बिना द्वेष के एक साध्वी की तरह जीवन बिताऊँगी...
>
> जिन लोगों ने सुख का उपभोग करके उसे त्याग दिया है, वायु की तरह भ्रमण करते हैं, जहाँ मन करे स्वतंत्र उड़ते हुए पक्षियों की तरह जाते हैं...
>
> इस विशाल राज्य का परित्याग करो... इंद्रिय सुखों से नाता तोड़ो, निष्काम अपरिग्रही बनो, तत्पश्चात तेजमय हो घोर तपस्या करो...

➲ महारानी के द्वारा दिया गया कौन सा तर्क आपको सबसे ज़्यादा युक्तियुक्त लगता है?

3.1 जैन धर्म का विस्तार

धीरे-धीरे जैन धर्म भारत के कई हिस्सों में फैल गया। बौद्धों की तरह ही जैन विद्वानों ने प्राकृत, संस्कृत, तमिल जैसी अनेक भाषाओं में काफ़ी साहित्य का सृजन किया। सैकड़ों वर्षों से इन ग्रंथों की पांडुलिपियाँ मंदिरों से जुड़े पुस्तकालयों में संरक्षित हैं।

धार्मिक परंपराओं से जुड़ी हुई सबसे प्राचीन मूर्तियों में जैन तीर्थंकरों के उपासकों द्वारा बनवाई गई मूर्तियाँ भारतीय उपमहाद्वीप के कई हिस्सों में पाई गई हैं।

➲ चर्चा कीजिए...

क्या बीसवीं सदी में अहिंसा की कोई प्रासंगिकता है?

चित्र 4.6
चौदहवीं सदी के जैन ग्रंथ की पांडुलिपि का एक पन्ना

➲ क्या आप इसकी लिपि को पहचान सकते हैं?

4. बुद्ध और ज्ञान की खोज

बुद्ध उस युग के सबसे प्रभावशाली शिक्षकों में से एक थे। सैकड़ों वर्षों के दौरान उनके संदेश पूरे उपमहाद्वीप में और उसके बाद मध्य एशिया होते हुए चीन, कोरिया और जापान, श्रीलंका से समुद्र पार कर म्याँमार, थाइलैंड और इंडोनेशिया तक फैले।

हम बुद्ध की शिक्षाओं के बारे में कैसे जानते हैं? इनकी पुनर्रचना का आधार था बौद्ध ग्रंथों का बहुत परिश्रम से संपादन, अनुवाद और विश्लेषण किया जाना। इतिहासकारों ने उनके जीवन के बारे में चरित लेखन से जानकारी इकट्ठी की। इनमें से कई ग्रंथ बुद्ध के जीवन काल से लगभग सौ वर्षों के बाद लिखे गए। इनमें इस महान धर्मोपदेशक की याद को बनाए रखने की कोशिश की गई थी।

इन परंपराओं के अनुसार सिद्धार्थ (बुद्ध के बचपन का नाम) शाक्य कबीले के सरदार के बेटे थे। जीवन के कटु यथार्थों से दूर उन्हें महल की चारदीवारी के अंदर सब सुखों के बीच बड़ा किया गया। एक दिन

संतचरित्र किसी संत या धार्मिक नेता की जीवनी है। संतचरित्र संत की उपलब्धियों का गुणगान करते हैं, जो तथ्यात्मक रूप से पूरी तरह सही नहीं होते। ये इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि ये हमें उस परंपरा के अनुयायियों के विश्वासों के बारे में बताते हैं।

उन्होंने अपने रथकार को उन्हें शहर घुमाने के लिए मना लिया। बाहरी दुनिया की उनकी पहली यात्रा काफ़ी पीड़ादायक रही। एक वृद्ध व्यक्ति को, एक बीमार को और एक लाश को देखकर उन्हें गहरा सदमा पहुँचा। उसी क्षण उन्हें यह अनुभूति हुई कि मनुष्य के शरीर का क्षय और अंत निश्चित है। उन्होंने एक गृहत्याग किए संन्यासी को भी देखा उसे मानो बुढ़ापे, बीमारी और मृत्यु से कोई परेशानी नहीं थी और उसने शांति प्राप्त कर ली थी। सिद्धार्थ ने निश्चय किया कि वे भी संन्यास का रास्ता अपनाएँगे। कुछ समय के बाद महल त्याग कर वे अपने सत्य की खोज में निकल गए।

सिद्धार्थ ने साधना के कई मार्गों का अन्वेषण किया। इनमें एक था शरीर को अधिक से अधिक कष्ट देना जिसके चलते वे मरते-मरते बचे। इन अतिवादी तरीकों को त्यागकर, उन्होंने कई दिन तक ध्यान करते हुए अंततः ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद से उन्हें बुद्ध अथवा ज्ञानी व्यक्ति के नाम से जाना गया है। बाकी जीवन उन्होंने धर्म या सम्यक जीवनयापन की शिक्षा दी।

चित्र 4.7
अमरावती (गुंटूर ज़िला, आंध्र प्रदेश) में लगभग 200 ईसवी की एक मूर्ति जिसमें बुद्ध को महल से जाते हुए दिखाया गया है।

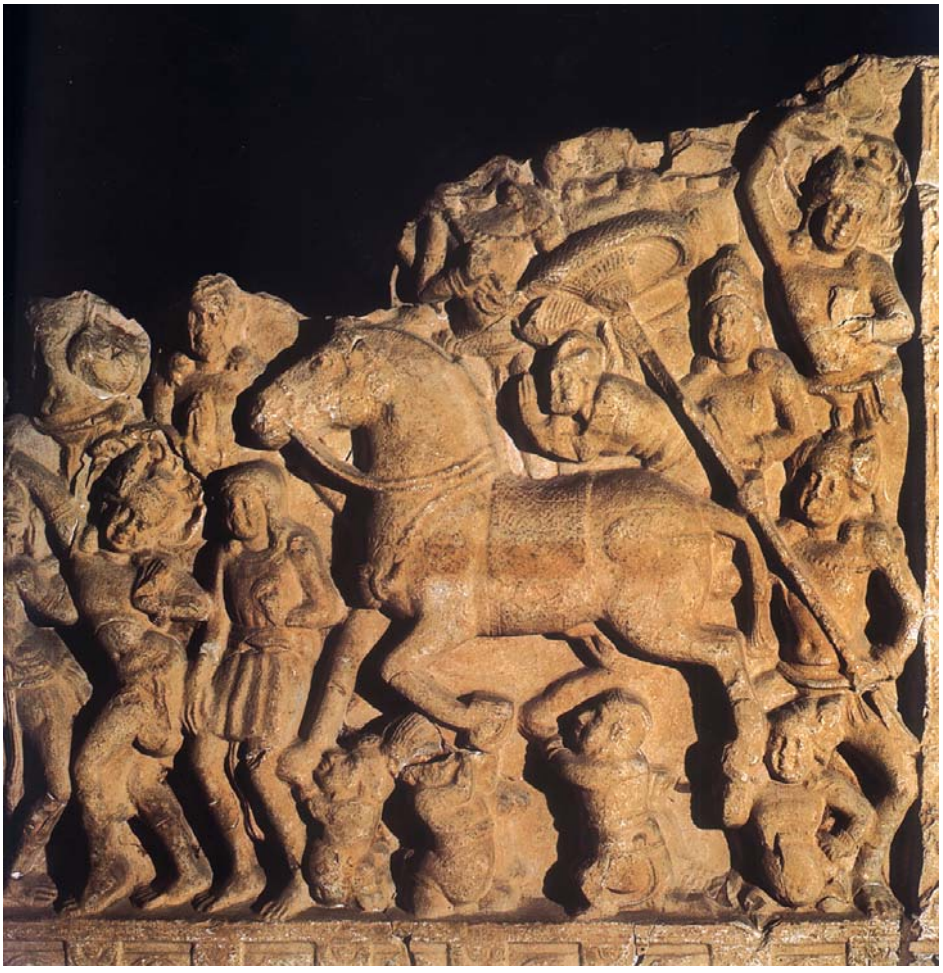

➲ चर्चा कीजिए...

यदि आप बुद्ध के जीवन के बारे में नहीं जानते तो क्या आप मूर्ति को देखकर समझ पाते कि उसमें क्या दिखाया गया है?

5. बुद्ध की शिक्षाएँ

बुद्ध की शिक्षाओं को *सुत्त पिटक* में दी गई कहानियों के आधार पर पुनर्निर्मित किया गया है। हालाँकि कुछ कहानियों में उनकी अलौकिक शक्तियों का वर्णन है, दूसरी कथाएँ दिखाती हैं कि अलौकिक शक्तियों की बजाय बुद्ध ने लोगों को विवेक और तर्क के आधार पर समझाने का प्रयास किया। उदाहरण के लिए, जब एक मरे हुए बच्चे की शोकमग्न माँ बुद्ध के पास आई तो उन्होंने बच्चे को जीवित करने के बजाय उस महिला को मृत्यु के अवश्यंभावी होने की बात समझायी। ये कथाएँ आम जनता की भाषा में रची गई थीं जिससे इन्हें आसानी से समझा जा सकता था।

बौद्ध दर्शन के अनुसार विश्व अनित्य है और लगातार बदल रहा है, यह आत्माविहीन (आत्मा) है क्योंकि यहाँ कुछ भी स्थायी या शाश्वत नहीं है। इस क्षणभंगुर दुनिया में दुख मनुष्य के जीवन का अंतर्निहित तत्व है। घोर तपस्या और विषयासक्ति के बीच मध्यम मार्ग अपनाकर मनुष्य दुनिया के दुखों से मुक्ति पा सकता है। बौद्ध धर्म की प्रारंभिक परंपराओं में भगवान का होना या न होना अप्रासंगिक था।

स्रोत 5

व्यवहार में बौद्ध धर्म

सुत्त पिटक से लिए गए इस उद्धरण में बुद्ध सिगल नाम के एक अमीर गृहपति को सलाह दे रहे हैं :

> मालिक को अपने नौकरों और कर्मचारियों की पाँच तरह से देखभाल करनी चाहिए... उनकी क्षमता के अनुसार उन्हें काम देकर, उन्हें भोजन और मज़दूरी देकर, बीमार पड़ने पर उनकी परिचर्या करके, उनके साथ सुस्वादु भोजन बाँटकर और समय-समय पर उन्हें छुट्टी देकर...
>
> कुल के लोगों को पाँच तरह से *श्रमणों* (जिन्होंने सांसारिक जीवन को त्याग दिया है) और ब्राह्मणों की देखभाल करनी चाहिए... कर्म, वचन और मन से अनुराग द्वारा, उनके स्वागत में हमेशा घर खुले रखकर और उनकी दिन-प्रतिदिन की ज़रूरतों की पूर्ति करके।

सिगल को माता-पिता, शिक्षक और पत्नी के साथ व्यवहार के लिए भी ऐसे ही उपदेश दिए गए हैं।

➲ आप सुझाव दीजिए कि माता-पिता, शिक्षकों और पत्नी के लिए किस तरह के निर्देश दिए गए होंगे।

➲ चर्चा कीजिए...

बुद्ध द्वारा सिगल को दी गई सलाह की तुलना असोक द्वारा उसकी प्रजा (अध्याय 2) को दी गई सलाह से कीजिए। क्या आपको कुछ समानताएँ और असमानताएँ नज़र आती हैं?

बुद्ध मानते थे कि समाज का निर्माण इनसानों ने किया था न कि ईश्वर ने। इसीलिए उन्होंने राजाओं और गृहपतियों (देखें अध्याय 2) को दयावान और आचारवान होने की सलाह दी। ऐसा माना जाता था कि व्यक्तिगत प्रयास से सामाजिक परिवेश को बदला जा सकता था।

बुद्ध ने जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति, आत्म-ज्ञान और निर्वाण के लिए व्यक्ति-केंद्रित हस्तक्षेप और सम्यक कर्म की कल्पना की। निर्वाण का मतलब था अहं और इच्छा का खत्म हो जाना जिससे गृहत्याग करने वालों के दुख के चक्र का अंत हो सकता था। बौद्ध परंपरा के अनुसार अपने शिष्यों के लिए उनका अंतिम निर्देश था, "तुम सब अपने लिए खुद ही ज्योति बनो क्योंकि तुम्हें खुद ही अपनी मुक्ति का रास्ता ढूँढ़ना है।"

6. बुद्ध के अनुयायी

धीरे-धीरे बुद्ध के शिष्यों का दल तैयार हो गया, इसलिए उन्होंने संघ की स्थापना की, ऐसे भिक्षुओं की एक संस्था जो धम्म के शिक्षक बन गए। ये श्रमण एक सादा जीवन बिताते थे। उनके पास जीवनयापन के लिए अत्यावश्यक चीज़ों के अलावा कुछ नहीं होता था। जैसे कि दिन में एक बार उपासकों से भोजन दान पाने के लिए वे एक कटोरा रखते थे। चूँकि वे दान पर निर्भर थे इसलिए उन्हें भिक्खु कहा जाता था।

शुरू-शुरू में सिर्फ़ पुरुष ही संघ में सम्मिलित हो सकते थे। बाद में महिलाओं को भी अनुमति मिली। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार बुद्ध के प्रिय शिष्य आनंद ने बुद्ध को समझाकर महिलाओं के संघ में आने की अनुमति प्राप्त की। बुद्ध की उपमाता महाप्रजापति गोतमी संघ में आने वाली पहली भिक्खुनी बनीं। कई स्त्रियाँ जो संघ में आईं, वे धम्म की उपदेशिकाएँ बन गईं। आगे चलकर वे *थेरी* बनी जिसका मतलब है ऐसी महिलाएँ जिन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया हो।

बुद्ध के अनुयायी कई सामाजिक वर्गों से आए। इनमें राजा, धनवान, गृहपति और सामान्य जन कर्मकार, दास, शिल्पी, सभी शामिल थे। एक बार संघ में आ जाने पर सभी को बराबर माना जाता था क्योंकि भिक्खु और भिक्खुनी बनने पर उन्हें अपनी पुरानी पहचान को त्याग देना पड़ता था। संघ की संचालन पद्धति गणों और संघों की परंपरा पर आधारित थी। इसके तहत लोग बातचीत के माध्यम से एकमत होने की कोशिश करते थे। अगर यह संभव नहीं होता था तो मतदान द्वारा निर्णय लिया जाता था।

स्रोत 6

थेरीगाथा

यह अनूठा बौद्ध ग्रंथ *सुत्त पिटक* का हिस्सा है। इसमें भिक्खुनियों द्वारा रचित छंदों का संकलन किया गया है। इससे महिलाओं के सामाजिक और आध्यात्मिक अनुभवों के बारे में अंतर्दृष्टि मिलती है। पुन्ना नाम की एक दासी अपने मालिक के घर के लिए प्रतिदिन सुबह नदी का पानी लाने जाती थी। वहाँ वह हर दिन एक ब्राह्मण को स्नान कर्म करते हुए देखती थी। एक दिन उसने ब्राह्मण से बात की। निम्नलिखित पद्य की रचना पुन्ना ने की थी जिसमें ब्राह्मण से उसकी बातचीत का वर्णन है :

मैं जल ले जाने वाली हूँ :
कितनी भी ठंड हो
मुझे पानी में उतरना ही है
सज़ा के डर से
या ऊँचे घरानों की स्त्रियों के कटु वाक्यों के डर से।
हे ब्राह्मण तुम्हें किसका डर है,
जिससे तुम जल में उतरते हो
(जबकि) तुम्हारे अंग ठंड से काँप रहे हैं?

ब्राह्मण बोले :
मैं बुराई को रोकने के लिए अच्छाई कर रहा हूँ;
बूढ़ा या बच्चा
जिसने भी कुछ बुरा किया हो
जल में स्नान करके मुक्त हो जाता है।

पुन्ना ने कहा :
यह किसने कहा है
कि पानी में नहाने से बुराई से मुक्ति मिलती है?...
वैसा हो तो सारे मेंढक और कछुए स्वर्ग जाएँगे
साथ में पानी के साँप और मगरमच्छ भी!
इसके बदले में वे कर्म न करें
जिनका डर
आपको पानी की ओर खींचता है।
हे ब्राह्मण, अब तो रुक जाओ!
अपने शरीर को ठंड से बचाओ...

➲ बुद्ध की कौन-सी शिक्षाएँ इस रचना में नज़र आती हैं?

चित्र 4.8
जल ले जाने वाली एक स्त्री, मथुरा, लगभग तीसरी शताब्दी ई.

स्रोत 7

भिक्षुओं और भिक्खुनियों के लिए नियम

ये नियम *विनय पिटक* में मिलते हैं :

जब कोई भिक्खु एक नया कंबल या गलीचा बनाएगा तो उसे इसका प्रयोग कम से कम छः वर्षों तक करना पड़ेगा। यदि छः वर्ष से कम अवधि में वह बिना भिक्खुओं की अनुमति के एक नया कंबल या गलीचा बनवाता है तो चाहे उसने अपने पुराने कंबल/गलीचे को छोड़ दिया हो या नहीं – नया कंबल या गलीचा उससे ले लिया जाएगा और इसके लिए उसे अपराध स्वीकरण करना होगा।

यदि कोई भिक्खु किसी गृहस्थ के घर जाता है और उसे टिकिया या पके अनाज का भोजन दिया जाता है तो यदि उसे इच्छा हो तो वह दो से तीन कटोरा भर ही स्वीकार कर सकता है। यदि वह इससे ज़्यादा स्वीकार करता है तो उसे अपना 'अपराध' स्वीकार करना होगा। दो या तीन कटोरे पकवान स्वीकार करने के बाद उसे इन्हें अन्य भिक्खुओं के साथ बाँटना होगा। यही सम्यक आचरण है।

यदि कोई भिक्खु जो संघ के किसी विहार में ठहरा हुआ है, प्रस्थान के पहले अपने द्वारा बिछाए गए या बिछवाए गए बिस्तरे को न ही समेटता है, न ही समेटवाता है, या यदि वह बिना विदाई लिए चला जाता है तो उसे अपराध स्वीकरण करना होगा।

➲ क्या आप बता सकते हैं कि ये नियम क्यों बने?

बुद्ध के जीवनकाल में और उनकी मृत्यु के बाद भी बौद्ध धर्म तेज़ी से फैला। इसका कारण यह था कि लोग समकालीन धार्मिक प्रथाओं से असंतुष्ट थे और उस युग में तेज़ी से हो रहे सामाजिक बदलावों ने उन्हें उलझनों में बाँध रखा था। बौद्ध शिक्षाओं में जन्म के आधार पर श्रेष्ठता की बजाय जिस तरह अच्छे आचरण और मूल्यों को महत्त्व दिया गया उससे महिलाएँ और पुरुष इस धर्म की तरफ़ आकर्षित हुए। खुद से छोटे और कमज़ोर लोगों की तरफ़ मित्रता और करुणा के भाव को महत्त्व देने के आदर्श काफ़ी लोगों को भाए।

➲ चर्चा कीजिए...

पुन्ना जैसी दासी संघ में क्यों जाना चाहती थी?

7. स्तूप

हमने देखा कि बौद्ध आदर्श और व्यवहार ब्राह्मण, जैन तथा कई अन्य परंपराओं के साथ संवाद और तर्क-वितर्क की प्रक्रिया से उभरे। इनमें से कई परंपराओं के विचार और आचार ग्रंथों में नहीं लिखे गए। इस तरह के मेलजोल को हम पवित्र स्थलों के उभरने की प्रक्रिया को देखकर भी समझ सकते हैं।

बहुत प्राचीन काल से ही लोग कुछ जगहों को पवित्र मानते थे। अक्सर जहाँ खास वनस्पति होती थी, अनूठी चट्टानें थीं या विस्मयकारी प्राकृतिक सौंदर्य था, वहाँ पवित्र स्थल बन जाते थे। ऐसे कुछ स्थलों पर एक छोटी-सी वेदी भी बनी रहती थीं जिन्हें कभी-कभी चैत्य कहा जाता था।

शवदाह के बाद शरीर के कुछ अवशेष टीलों पर सुरक्षित रख दिए जाते थे। अंतिम संस्कार से जुड़े ये टीले *चैत्य* के रूप में जाने गए।

बौद्ध साहित्य में कई चैत्यों की चर्चा है। इसमें बुद्ध के जीवन से जुड़ी जगहों का भी वर्णन है—जहाँ वे जन्मे थे (लुम्बिनी), जहाँ उन्होंने

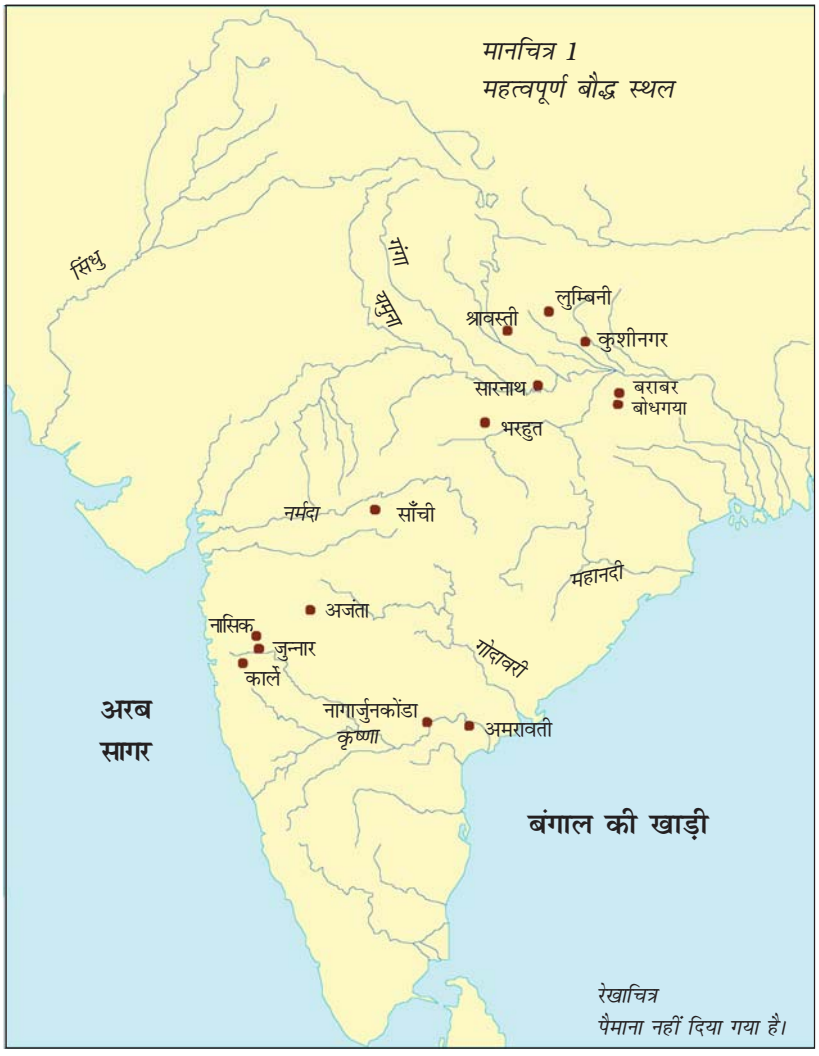

मानचित्र 1
महत्वपूर्ण बौद्ध स्थल

रेखाचित्र
पैमाना नहीं दिया गया है।

ज्ञान प्राप्त किया (बोधगया), जहाँ उन्होंने प्रथम उपदेश दिया (सारनाथ) और जहाँ उन्होंने निब्बान प्राप्त किया (कुशीनगर)। धीरे-धीरे ये सारी जगहें पवित्र स्थल बन गईं। हमें यह मालूम है कि बुद्ध के समय से लगभग दो सौ वर्षों बाद असोक ने लुम्बिनी की अपनी यात्रा की याद में एक स्तंभ बनवाया।

7.1 स्तूप क्यों बनाए जाते थे?

ऐसी कई अन्य जगहें थीं जिन्हें पवित्र माना जाता था। इन जगहों पर बुद्ध से जुड़े कुछ अवशेष जैसे उनकी अस्थियाँ या उनके द्वारा प्रयुक्त सामान गाड़ दिए गए थे। इन टीलों को स्तूप कहते थे।

स्तूप बनाने की परंपरा बुद्ध से पहले की रही होगी, लेकिन वह बौद्ध धर्म से जुड़ गई। चूँकि उनमें ऐसे अवशेष रहते थे जिन्हें पवित्र समझा जाता था, इसलिए समूचे स्तूप को ही बुद्ध और बौद्ध धर्म के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठा मिली। *अशोकावदान* नामक एक बौद्ध ग्रंथ के अनुसार असोक ने बुद्ध के अवशेषों के हिस्से हर महत्वपूर्ण शहर में बाँट कर उनके ऊपर स्तूप बनाने का आदेश दिया। ईसा पूर्व दूसरी सदी तक भरहुत, साँची और सारनाथ जैसी जगहों पर (मानचित्र 1) स्तूप बनाए जा चुके थे।

स्रोत 8

स्तूप क्यों बनाए जाते थे

यह उद्धरण *महापरिनिब्बान सुत्त* से लिया गया है जो *सुत्त पिटक* का हिस्सा है :

परिनिर्वाण से पूर्व आनंद ने पूछा:

भगवान हम तथागत (बुद्ध का दूसरा नाम) के अवशेषों का क्या करेंगे?

बुद्ध ने कहा, "तथागत के अवशेषों को विशेष आदर देकर खुद को मत रोको। धर्मोत्साही बनो, अपनी भलाई के लिए प्रयास करो।"

लेकिन विशेष आग्रह करने पर बुद्ध बोले :

"उन्हें तथागत के लिए चार महापथों के चौक पर *थूप* (स्तूप का पालि रूप) बनाना चाहिए। जो भी वहाँ धूप या माला चढ़ाएगा... या वहाँ सिर नवाएगा, या वहाँ पर हृदय में शांति लाएगा, उन सबके लिए वह चिर काल तक सुख और आनंद का कारण बनेगा।"

➲ चित्र 4.15 को देखकर क्या आप इनमें से कुछ रीति-रिवाज़ों को पहचान सकते हैं?

7.2 स्तूप कैसे बनाए गए

स्तूपों की वेदिकाओं और स्तंभों पर मिले अभिलेखों से इन्हें बनाने और सजाने के लिए दिए गए दान का पता चलता है। कुछ दान राजाओं के द्वारा दिए गए थे (जैसे सातवाहन वंश के राजा), तो कुछ दान शिल्पकारों और व्यापारियों की श्रेणियों द्वारा दिए गए। उदाहरण के लिए, साँची के एक तोरणद्वार का हिस्सा हाथी दाँत का काम करने वाले शिल्पकारों के दान से बनाया गया था। सैकड़ों महिलाओं और पुरुषों ने दान के अभिलेखों में अपना नाम बताया है। कभी-कभी वे अपने गाँव या शहर का नाम बताते हैं और कभी-कभी अपना पेशा और रिश्तेदारों के नाम भी बताते हैं। इन इमारतों को बनाने में भिक्खुओं और भिक्खुनियों ने भी दान दिया।

7.3 स्तूप की संरचना

स्तूप (संस्कृत अर्थ टीला) का जन्म एक गोलार्ध लिए हुए मिट्टी के टीले से हुआ जिसे बाद में *अंड* कहा गया। धीरे-धीरे इसकी संरचना ज़्यादा जटिल हो गई जिसमें कई चौकोर और गोल आकारों का संतुलन बनाया गया। *अंड* के ऊपर एक *हर्मिका* होती थी। यह छज्जे जैसा ढाँचा देवताओं के घर का प्रतीक था। *हर्मिका* से एक मस्तूल निकलता था जिसे *यष्टि* कहते थे जिस पर अक्सर एक *छत्री* लगी होती थी। टीले के

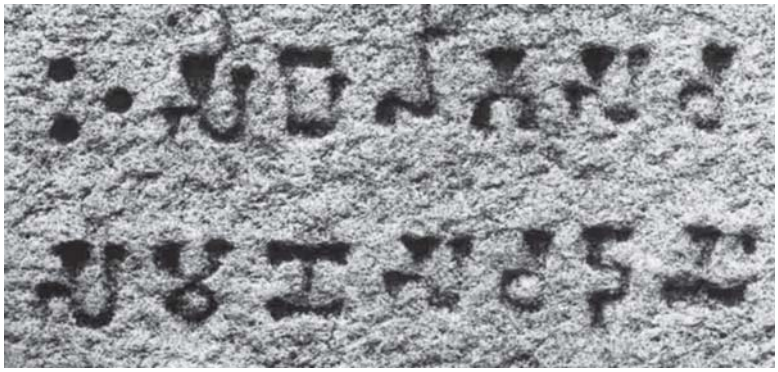

चित्र 4.9
साँची का एक दानात्मक अभिलेख
ऐसे सैकड़ों अभिलेख भरहुत और अमरावती में भी मिले हैं।

चारों ओर एक वेदिका होती थी जो पवित्र स्थल को सामान्य दुनिया से अलग करती थी।

साँची और भरहुत के प्रारंभिक स्तूप बिना अलंकरण के हैं सिवाए इसके कि उनमें पत्थर की वेदिकाएँ और तोरणद्वार हैं। ये पत्थर की वेदिकाएँ किसी बाँस के या काठ के घेरे के समान थीं और चारों दिशाओं में खड़े तोरणद्वार पर खूब नक्काशी की गई थी। उपासक पूर्वी तोरणद्वार से प्रवेश करके टीले को दाईं तरफ़ रखते हुए दक्षिणावर्त परिक्रमा करते थे, मानो वे आकाश में सूर्य के पथ का अनुकरण कर रहे हों। बाद में स्तूप के टीले पर भी अलंकरण और नक्काशी की जाने लगी। अमरावती और पेशावर (पाकिस्तान) में शाह जी की ढेरी में स्तूपों में ताख और मूर्तियाँ उत्कीर्ण करने की कला के काफ़ी उदाहरण मिलते हैं।

➲ चर्चा कीजिए...

साँची के महास्तूप के मापचित्र (चित्र 4.10 क) और छायाचित्र (चित्र 4.3) में क्या समानताएँ और फ़र्क हैं?

➲ इस इमारत की कौन-सी विशेषताएँ नक्शे में सबसे ज़्यादा स्पष्ट हैं? कौन-सी विशेषताएँ ऊर्ध्वस्थ परिप्रेक्ष्य से देखने पर ज़्यादा स्पष्ट होती हैं?

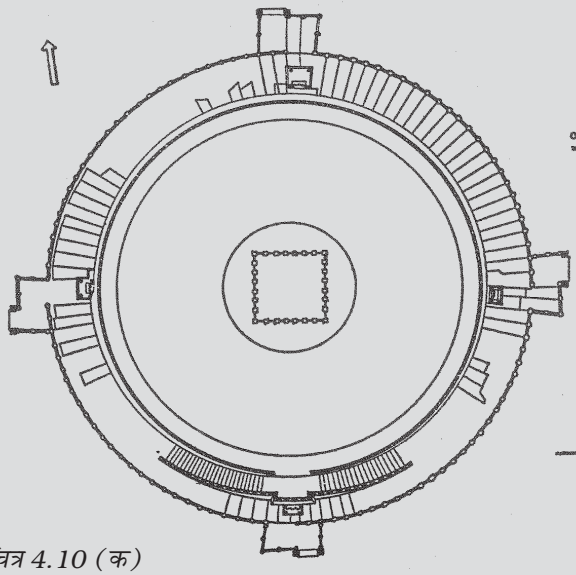

चित्र 4.10 (क)
साँची के महास्तूप की योजना
यह उस इमारत का समतलीय परिप्रेक्ष्य दिखाता है।

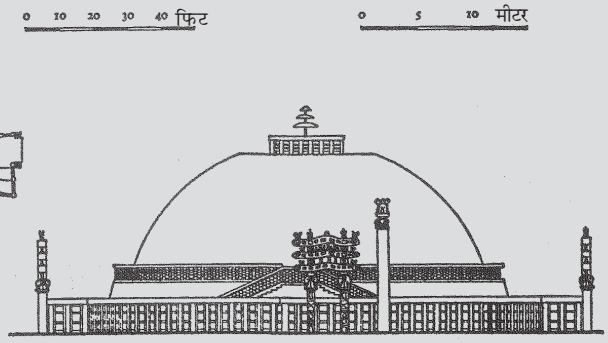

चित्र 10 (ख)
महास्तूप की ऊँचाई
ऊर्ध्वस्थ परिप्रेक्ष्य में

8. स्तूपों की 'खोज'

अमरावती और साँची की नियति

जैसा कि हमने देखा हर स्तूप का अपना इतिहास है। कुछ इतिहास हमें बताते हैं कि वे कैसे बने। साथ-साथ इनकी खोज का भी इतिहास है। अब हम इनकी खोज के इतिहास पर एक नज़र डालें। 1796 में एक स्थानीय राजा को जो मंदिर बनाना चाहते थे, अचानक अमरावती के स्तूप के अवशेष मिल गए। उन्होंने उसके पत्थरों के इस्तेमाल करने का निश्चय किया। उन्हें ऐसा लगा कि इस छोटी सी पहाड़ी में संभवत: कोई खज़ाना छुपा हो। कुछ वर्षों के बाद कॉलिन मेकेंज़ी नामक एक अंग्रेज़ अधिकारी इस इलाके से गुज़रे (अध्याय 7 भी देखिए)। हालाँकि उन्होंने कई मूर्तियाँ पाईं और उनका विस्तृत चित्रांकन भी किया, लेकिन उनकी रिपोर्टें कभी छपी नहीं।

चित्र 4.11
साँची का पूर्वी तोरणद्वार
सजीव मूर्तियों को देखिए।

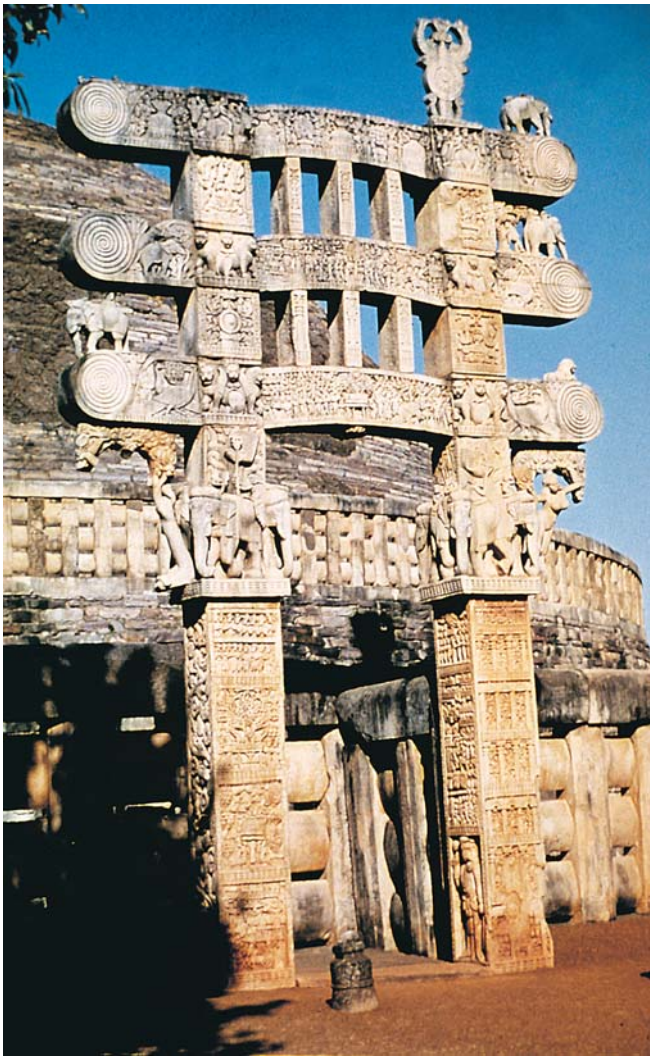

1854 में गुंटूर (आंध्र प्रदेश) के कमिश्नर ने अमरावती की यात्रा की। उन्होंने कई मूर्तियाँ और उत्कीर्ण पत्थर जमा किए और वे उन्हें मद्रास ले गए। (इन्हें उनके नाम पर एलियट संगमरमर के नाम से जाना जाता है)। उन्होंने पश्चिमी तोरणद्वार को भी खोज निकाला और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अमरावती का स्तूप बौद्धों का सबसे विशाल और शानदार स्तूप था। 1850 के दशक में अमरावती के उत्कीर्ण पत्थर अलग-अलग जगहों पर ले जाए जा रहे थे। कुछ पत्थर कलकत्ता में एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल पहुँचे, तो कुछ मद्रास में इंडिया ऑफिस। कुछ पत्थर लंदन तक पहुँच गए। कई अंग्रेज़ अधिकारियों के बागों में अमरावती की मूर्तियाँ पाना कोई असामान्य बात नहीं थी। वस्तुत: इस इलाके का हर नया अधिकारी यह कहकर कुछ मूर्तियाँ उठा ले जाता था कि उसके पहले के अधिकारियों ने भी ऐसा किया।

पुरातत्ववेत्ता एच.एच. कोल उन मुट्ठी भर लोगों में एक थे जो अलग सोचते थे। उन्होंने लिखा "इस देश की प्राचीन कलाकृतियों की लूट होने देना मुझे आत्मघाती और असमर्थनीय नीति लगती है।" वे मानते थे कि संग्रहालयों में मूर्तियों की प्लास्टर प्रतिकृतियाँ रखी जानी चाहिए जबकि असली कृतियाँ खोज की जगह पर ही

रखी जानी चाहिए। दुर्भाग्य से कोल अधिकारियों को अमरावती पर इस बात के लिए राज़ी नहीं कर पाए। लेकिन खोज की जगह पर ही संरक्षण की बात को साँची के लिए मान लिया गया।

साँची क्यों बच गया जबकि अमरावती नष्ट हो गया? शायद अमरावती की खोज थोड़ी पहले हो गई थी। तब तक विद्वान इस बात के महत्त्व को नहीं समझ पाए थे कि किसी पुरातात्विक अवशेष को उठाकर ले जाने की बजाय खोज की जगह पर ही संरक्षित करना कितना महत्वपूर्ण था। 1818 में जब साँची की खोज हुई, इसके तीन तोरणद्वार तब भी खड़े थे। चौथा वहीं पर गिरा हुआ था और टीला भी अच्छी हालत में था। तब भी यह सुझाव आया कि तोरणद्वारों को पेरिस या लंदन भेज दिया जाए। अंततः कई कारणों से साँची का स्तूप वहीं बना रहा और आज भी बना हुआ है जबकि अमरावती का महाचैत्य अब सिर्फ एक छोटा सा टीला है जिसका सारा गौरव नष्ट हो चुका है।

➲ चर्चा कीजिए...

खंड एक को दुबारा पढ़िए। कारण बताइए कि साँची क्यों बच गया।

चित्र 4.12
तोरण का एक हिस्सा
क्या आपको ऐसा लगता है कि साँची के तक्षक पटचित्र को खुलते हुए दर्शाना चाह रहे थे?

9. मूर्तिकला

हमने अभी-अभी पढ़ा है कि किस तरह से स्तूपों से मूर्तियों को यूरोप ले जाया गया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि जिन लोगों ने मूर्तियों को देखा उन्हें ये ख़ूबसूरत और मूल्यवान लगीं। इसलिए वे उन्हें अपने लिए रखना चाहते थे। आइए, हम इन मूर्तियों को ध्यान से देखें।

9.1 पत्थर में गढ़ी कथाएँ

आपने ऐसे घुमक्कड़ कथावाचकों को देखा होगा जो अपने साथ कपड़ों या कागज़ पर बने चित्रों (चारणचित्र) को लेकर घूमते हैं। जब वे कहानी कहते हैं तब वे इन चित्रों को दिखाते हैं।

चित्र 4.13 देखिए। पहली बार देखने पर तो इस मूर्तिकला अंश में फूस की झोंपड़ी और पेड़ों वाले ग्रामीण दृश्य का चित्रण दिखता है। परंतु वे कला इतिहासकार जिन्होंने साँची की इस मूर्तिकला का गहराई से अध्ययन किया है, इसे *वेसान्तर जातक* से लिया गया एक दृश्य बताते हैं। यह कहानी एक ऐसे दानी राजकुमार के बारे में है जिसने अपना सब कुछ एक ब्राह्मण को सौंप दिया और स्वयं अपनी पत्नी और बच्चों के

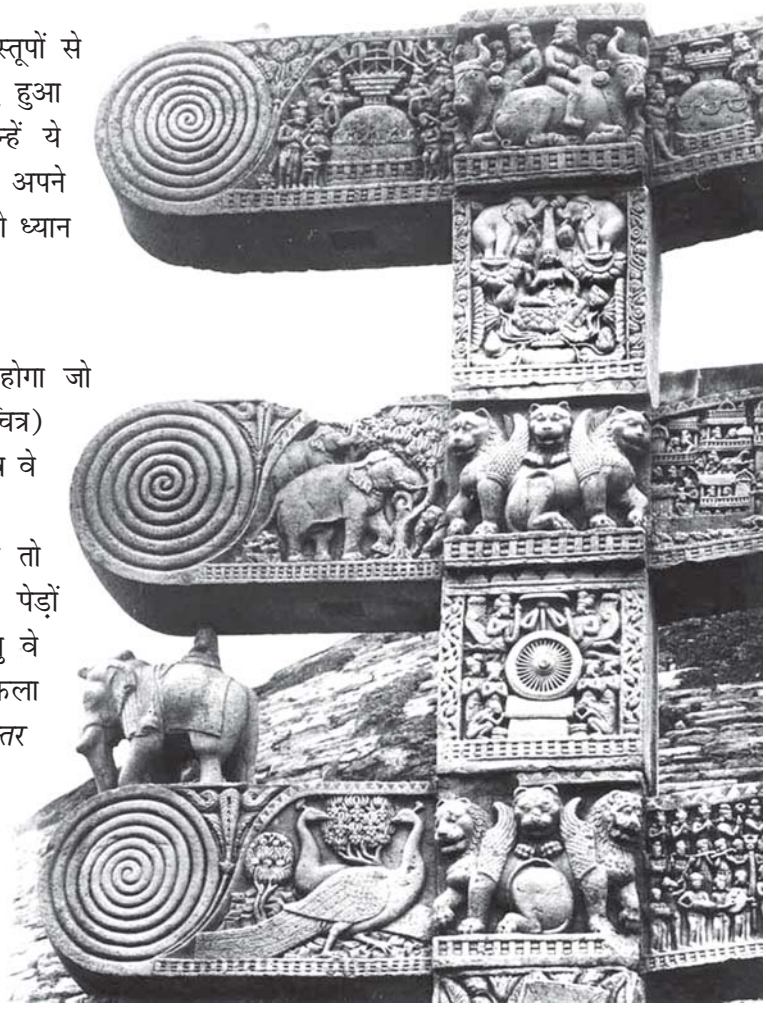

चित्र 4.13
उत्तरी तोरणद्वार का एक हिस्सा

साथ जंगल में रहने चला गया। जैसा कि इस उदाहरण से स्पष्ट है अक्सर इतिहासकार किसी मूर्तिकला की व्याख्या लिखित साक्ष्यों के साथ तुलना के द्वारा करते हैं।

9.2 उपासना के प्रतीक

बौद्ध मूर्तिकला को समझने के लिए कला इतिहासकारों को बुद्ध के चरित लेखन के बारे में समझ बनानी पड़ी। बौद्धचरित लेखन के अनुसार एक वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए बुद्ध को ज्ञान प्राप्ति हुई। कई प्रारंभिक मूर्तिकारों ने बुद्ध को मानव रूप में न दिखाकर उनकी उपस्थिति प्रतीकों के माध्यम से दर्शाने का प्रयास किया। उदाहरणत:, रिक्त स्थान (चित्र 4.14) बुद्ध के ध्यान की दशा तथा स्तूप (चित्र 4.15) *महापरिनिब्बान* के प्रतीक बन गए। चक्र का भी प्रतीक के रूप में प्राय: इस्तेमाल किया गया (चित्र 4.16)। यह बुद्ध द्वारा सारनाथ में दिए गए पहले उपदेश का प्रतीक था। जैसा कि स्पष्ट है ऐसी मूर्तिकला को अक्षरश: नहीं समझा जा सकता है। उदाहरणत:, पेड़ का तात्पर्य केवल एक पेड़ नहीं था वरन्

चित्र 4.14 (नीचे दाईं ओर)
बोधि वृक्ष की पूजा
चित्र में वृक्ष, आसन और उसके चारों ओर जन-समुदाय के चित्रण पर ध्यान दीजिए।
चित्र 4.15 (नीचे मध्य में)
स्तूप की पूजा
चित्र 4.16 (नीचे बाईं ओर)
धर्मचक्र प्रवर्तन

चित्र 4.17
तोरणद्वार पर एक स्त्री

वह बुद्ध के जीवन की एक घटना का प्रतीक था। ऐसे प्रतीकों को समझने के लिए यह ज़रूरी है कि इतिहासकार कलाकृतियों के निर्माताओं की परंपराओं को जानें।

9.3 लोक परंपराएँ

साँची में उत्कीर्णित बहुत सी अन्य मूर्तियाँ शायद बौद्ध मत से सीधी जुड़ी नहीं थीं। इनमें कुछ सुंदर स्त्रियाँ भी मूर्तियों में उत्कीर्णित हैं जो तोरणद्वार के किनारे एक पेड़ पकड़ कर झूलती हुई (चित्र 4.17) दिखती हैं। शुरू-शुरू में विद्वान इस मूर्ति के महत्त्व के बारे में थोड़े असमंजस में थे। इस मूर्ति का त्याग और तपस्या से कोई रिश्ता नज़र नहीं आता था लेकिन साहित्यिक परंपराओं के अध्ययन से वे समझ पाए कि यह संस्कृत भाषा में वर्णित *शालभंजिका* की मूर्ति है। लोक परंपरा में यह माना जाता था कि इस स्त्री द्वारा छुए जाने से वृक्षों में फूल खिल उठते थे और फल होने लगते थे। ऐसा लगता है कि यह एक शुभ प्रतीक माना जाता था और इस कारण स्तूप के अलंकरण में प्रयुक्त हुआ। *शालभंजिका* की मूर्ति से पता चलता है कि जो लोग बौद्ध धर्म में आए उन्होंने बुद्ध-पूर्व और बौद्ध धर्म से इतर दूसरे विश्वासों, प्रथाओं और धारणाओं से बौद्ध धर्म को समृद्ध किया। साँची की मूर्तियों में पाए गए कई प्रतीक या चिह्न निश्चय ही इन्हीं परंपराओं से उभरे थे। उदाहरण के लिए, जानवरों के कुछ बहुत ख़ूबसूरत उत्कीर्णन यहाँ पर पाए गए हैं। इन जानवरों में हाथी, घोड़े, बंदर और गाय-बैल शामिल हैं। हालाँकि साँची में जातकों से ली गई जानवरों की कई कहानियाँ हैं, ऐसा लगता है कि यहाँ पर लोगों को आकर्षित करने के लिए जानवरों का उत्कीर्णन किया गया था। साथ ही जानवरों को मनुष्यों के गुणों के प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। उदाहरण के लिए, हाथी शक्ति और ज्ञान के प्रतीक माने जाते थे।

चित्र 4.18
साँची में एक हाथी

इन प्रतीकों में कमल दल और हाथियों के बीच एक

चित्र 4.19
गजलक्ष्मी

अतीत से प्राप्त चित्र

पत्थर की कलाकृतियाँ लंबे समय तक सुरक्षित बच जाती हैं। इसलिए इतिहासकारों को यह आसानी से उपलब्ध हो जाता है। लेकिन अतीत में चित्रकारी जैसे संप्रेषण के दूसरे माध्यम भी इस्तेमाल किए जाते थे। उनमें जो सबसे अच्छी हालत में बचे हुए हैं वे गुफाओं की दीवारों पर बने चित्र हैं। इनमें अजंता (महाराष्ट्र) की चित्रकारी काफ़ी प्रसिद्ध है।

अजंता के चित्र जातकों की कथाएँ दिखाते हैं। इनमें राज दरबार का जीवन, शोभा यात्राएँ, काम करते हुए स्त्री-पुरुष और त्यौहार मनाने के चित्र दिखाए गए हैं। कलाकारों ने त्रिविम रूप देने के लिए आभाभेद तकनीक का प्रयोग किया। कुछ चित्र बिल्कुल स्वाभाविक और सजीव लगते हैं।

चित्र 4.20
अजंता से एक चित्र
बैठे हुए व्यक्ति और उनके सेवकों पर ग़ौर कीजिए।

चित्र 4.21
साँची में सर्प

महिला की मूर्ति प्रमुख है (चित्र 4.19)। ये हाथी उनके ऊपर जल छिड़क रहे हैं जैसे वे उनका अभिषेक कर रहे हों। जहाँ कुछ इतिहासकार उन्हें बुद्ध की माँ माया से जोड़ते हैं तो दूसरे इतिहासकार उन्हें एक लोकप्रिय देवी गजलक्ष्मी मानते हैं। गजलक्ष्मी सौभाग्य लाने वाली देवी थीं जिन्हें प्रायः हाथियों के साथ जोड़ा जाता है। यह भी संभव

है कि इन उत्कीर्णित मूर्तियों को देखने वाले उपासक इसे माया और गजलक्ष्मी दोनों से जोड़ते थे।

कई स्तंभों पर दिखाए गए सर्पों को भी देखिए (चित्र 4.21)। यह प्रतीक भी ऐसी लोक परंपराओं से लिया गया प्रतीत होता है जिनका ग्रंथों में हमेशा ज़िक्र नहीं होता था। दिलचस्प बात यह है कि कला पर लिखने वाले आधुनिक इतिहासकारों में एक शुरुआती इतिहासकार जेम्स फर्गुसन ने साँची को वृक्ष और सर्प पूजा का केंद्र माना था। वे बौद्ध साहित्य से अनभिज्ञ थे। तब तक ज़्यादातर बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद नहीं हुआ था। इसलिए उन्होंने सिर्फ़ उत्कीर्णित मूर्तियों का अध्ययन करके अपने निष्कर्ष निकाले थे।

➲ चर्चा कीजिए...

मूर्तिकला के लिए हड्डियों, मिट्टी और धातुओं का भी इस्तेमाल होता है। इनके विषय में पता कीजिए।

10. नयी धार्मिक परंपराएँ

10.1 महायान बौद्ध मत का विकास

ईसा की प्रथम सदी के बाद बौद्ध अवधारणाओं और व्यवहार में बदलाव नज़र आते हैं। प्रारंभिक बौद्ध मत में निब्बान के लिए व्यक्तिगत प्रयास को विशेष महत्त्व दिया गया था। बुद्ध को भी एक मनुष्य समझा जाता था जिन्होंने व्यक्तिगत प्रयास से प्रबोधन और निब्बान प्राप्त किया। परंतु धीरे-धीरे एक मुक्तिदाता की कल्पना उभरने लगी। यह विश्वास किया जाने लगा कि वे मुक्ति दिलवा सकते थे। साथ-साथ बोधिसत्त की अवधारणा भी उभरने लगी। बोधिसत्तों को परम करुणामय जीव माना गया जो अपने सत्कार्यों से पुण्य कमाते थे। लेकिन वे इस पुण्य का प्रयोग दुनिया को दुखों में छोड़ देने के लिए और निब्बान प्राप्ति के लिए नहीं करते थे। बल्कि वे इससे दूसरों की सहायता करते थे। बुद्ध और बोधिसत्तों की मूर्तियों की पूजा इस परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग बन गई।

चिंतन की इस नयी परंपरा को महायान के नाम से जाना गया। जिन लोगों ने इन विश्वासों को अपनाया उन्होंने पुरानी परंपरा को हीनयान नाम से संबोधित किया।

चित्र 4.22
पहली सदी की बुद्ध मूर्ति, मथुरा

हीनयान या थेरवाद?

महायान के अनुयायी दूसरी बौद्ध परंपराओं के समर्थकों को हीनयान के अनुयायी कहते थे। लेकिन, पुरातन परंपरा के अनुयायी खुद को थेरवादी कहते थे। इसका मतलब है वे लोग जिन्होंने पुराने, प्रतिष्ठित शिक्षकों (जिन्हें थेर कहते थे) के बताए रास्ते पर चलने वाले।

10.2 पौराणिक हिंदू धर्म का उदय

मुक्तिदाता की कल्पना सिर्फ बौद्ध धर्म तक सीमित नहीं थी। हम पाते हैं कि इसी तरह के विश्वास एक अलग ढंग से उन परंपराओं में भी विकसित हो रहे थे जिन्हें आज हिंदू धर्म के नाम से जाना जाता है। इसमें वैष्णव (वह हिंदू परंपरा जिसमें विष्णु को सबसे महत्वपूर्ण देवता माना जाता है) और शैव (वह संकल्पना जिसमें शिव परमेश्वर है) परंपराएँ शामिल हैं। इनके अंतर्गत एक विशेष देवता की पूजा को खास महत्त्व दिया जाता था। इस प्रकार की आराधना में उपासना और ईश्वर के बीच का रिश्ता प्रेम और समर्पण का रिश्ता माना जाता था। इसे भक्ति कहते हैं।

चित्र 4.23
विष्णु का वराह अवतार जिसमें उन्हें पृथ्वी देवी को बचाते हुए दिखाया गया है। (लगभग छठी सदी, एहोल, कर्नाटक)

➲ मूर्ति में दी गई आकृतियों के आपसी अनुपात में फ़र्क से क्या बात समझ में आती है?

वैष्णववाद में कई अवतारों के इर्द-गिर्द पूजा पद्धतियाँ विकसित हुईं। इस परंपरा के अंदर दस अवतारों की कल्पना है। यह माना जाता था कि पापियों के बढ़ते प्रभाव के चलते जब दुनिया में अव्यवस्था और नाश की स्थिति आ जाती थी तब विश्व की रक्षा के लिए भगवान अलग-अलग रूपों में अवतार लेते थे। संभवत: अलग-अलग अवतार देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में लोकप्रिय थे। इन सब स्थानीय देवताओं को विष्णु का रूप मान लेना एकीकृत धार्मिक परंपरा के निर्माण का एक महत्वपूर्ण तरीका था।

कई अवतारों को मूर्तियों के रूप में दिखाया गया है। दूसरे देवताओं की भी मूर्तियाँ बनीं। शिव को उनके प्रतीक लिंग के रूप में बनाया जाता था। लेकिन उन्हें कई बार मनुष्य के रूप में भी दिखाया गया है। ये सारे चित्रण देवताओं से जुड़ी हुई मिश्रित अवधारणाओं पर आधारित थे। उनकी खूबियों और प्रतीकों को उनके शिरोवस्त्र, आभूषण, आयुधों (हथियार और हाथ में धारण किए गए अन्य शुभ अस्त्र) और बैठने की शैली से इंगित किया जाता था।

इन मूर्तियों के अंकन का मतलब समझने के लिए इतिहासकारों को इनसे जुड़ी हुई कहानियों से परिचित होना पड़ता है। कई कहानियाँ प्रथम सहस्राब्दि के मध्य से ब्राह्मणों

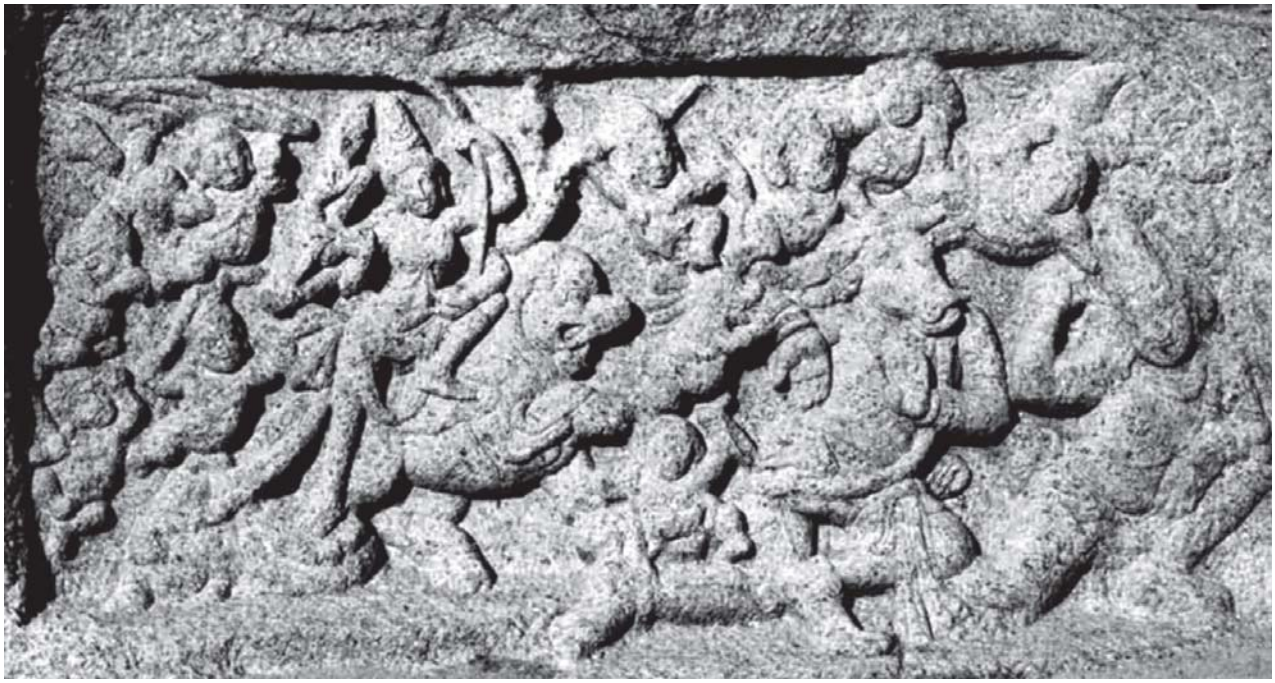

चित्र 4.24
महाबलीपुरम् (तमिलनाडु) में दुर्गा की एक मूर्ति (छठी सदी)

➲ कलाकारों ने किस प्रकार गति को दिखाने की कोशिश की है? इस मूर्ति में बताई कहानी के बारे में जानकारी इकट्ठी कीजिए।

द्वारा रचित पुराणों में पाई जाती हैं। इनमें बहुत से किस्से ऐसे हैं जो सैकड़ों वर्ष पहले रचने के बाद सुने-सुनाए जाते रहे थे। इनमें देवी-देवताओं की भी कहानियाँ हैं। सामान्यत: इन्हें संस्कृत श्लोकों में लिखा गया था। इन्हें ऊँची आवाज़ में पढ़ा जाता था जिसे कोई भी सुन सकता था। महिलाएँ और शूद्र जिन्हें वैदिक साहित्य पढ़ने-सुनने की अनुमति नहीं थी, पुराणों को सुन सकते थे।

पुराणों की ज़्यादातर कहानियाँ लोगों के आपसी मेल-मिलाप से विकसित हुईं। पुजारी, व्यापारी और सामान्य स्त्री-पुरुष एक से दूसरी जगह आते-जाते हुए अपने विश्वासों और अवधारणाओं का आदान-प्रदान करते थे। उदाहरण के लिए, हम यह जानते हैं कि वासुदेव-कृष्ण मथुरा इलाके के महत्वपूर्ण देवता थे। कई शताब्दियों के दौरान उनकी पूजा देश के दूसरे इलाकों में भी फैल गई।

10.3 मंदिरों का बनाया जाना

जिस समय साँची जैसी जगहों में स्तूप अपने विकसित रूप में आ गए थे उसी समय देवी-देवताओं की मूर्तियों को रखने के लिए सबसे पहले मंदिर भी बनाए गए। शुरू के मंदिर एक चौकोर कमरे के रूप में थे जिन्हें गर्भगृह कहा जाता था। इनमें एक दरवाज़ा होता था जिससे उपासक मूर्ति की पूजा करने के लिए भीतर प्रविष्ट हो सकता था। धीरे-धीरे गर्भगृह के ऊपर एक ऊँचा ढाँचा बनाया जाने लगा जिसे *शिखर* कहा

चित्र 4.25
एक मंदिर, देवगढ़ (उत्तर प्रदेश), पाँचवीं सदी

➲ गर्भगृह के प्रवेशद्वार और शिखर के अवशेषों को पहचानें।

जाता था। मंदिर की दीवारों पर अक्सर भित्ति चित्र उत्कीर्ण किए जाते थे। बाद के युगों में मंदिरों के स्थापत्य का काफ़ी विकास हुआ। अब मंदिरों के साथ विशाल सभास्थल, ऊँची दीवारें और तोरण भी जुड़ गए। जल आपूर्ति (देखिए अध्याय 7) का इंतज़ाम भी किया जाने लगा।

शुरू-शुरू के मंदिरों की एक खास बात यह थी कि इनमें से कुछ पहाड़ियों को काट कर खोखला करके कृत्रिम गुफाओं के रूप में बनाए गए थे। कृत्रिम गुफाएँ बनाने की परंपरा काफ़ी पुरानी थी (चित्र 4.27)।

चित्र 4.26
शेषनाग पर आराम करते विष्णु की मूर्ति, देवगढ़ (उत्तर प्रदेश), पाँचवीं सदी

सबसे प्राचीन कृत्रिम गुफाएँ ईसा पूर्व तीसरी सदी में असोक के आदेश से आजीविक संप्रदाय के संतों के लिए बनाई गई थीं।

यह परंपरा अलग-अलग चरणों में विकसित होती रही। इसका सबसे विकसित रूप हमें आठवीं सदी के कैलाशनाथ (शिव का एक नाम) के मंदिर में नज़र आता है जिसमें पूरी पहाड़ी काटकर उसे मंदिर का रूप दे दिया गया था।

एक ताम्रपत्र अभिलेख एलोरा के प्रमुख तक्षक द्वारा इसका निर्माण समाप्त करने के बाद उसके आश्चर्य को व्यक्त करता है "हे भगवान यह मैंने कैसे बनाया!"

चित्र 4.27
बराबर (बिहार) की गुफाएँ, लगभग तीसरी सदी ईसा पूर्व

चित्र 4.28
कैलाशनाथ मंदिर, एलोरा (महाराष्ट्र)
यह सारा ढाँचा एक चट्टान को काटकर तैयार किया गया है।

11. क्या हम सब कुछ देख-समझ सकते हैं?

अब तक आपको हमारे अतीत की समृद्ध दृश्य परंपराओं की एक झलक मिल चुकी है। ये परंपराएँ ईंट और पत्थर से निर्मित स्थापत्य कला, मूर्ति कला और चित्रकला के रूप में हमारे सामने आई हैं। हमने पाया कि समय के बहाव में बहुत कुछ नष्ट हो गया है। लेकिन जो बचा है और संरक्षित है वह हमें इन भव्य कलाकृतियों के निर्माताओं-कलाकारों, मूर्तिकारों, राजगीरों और वास्तुकारों की दृष्टि से परिचित कराता है। लेकिन क्या हम उनके संदेश को बिना दुविधा के अपने-आप समझ सकते हैं? क्या हम कभी यह पूरी तरह से समझ पाएँगे कि जो लोग इन प्रतिकृतियों को देखते और पूजते थे उनके लिए इनका क्या महत्त्व था?

11.1 अनजाने को समझने की कोशिश

यह स्मरणीय है कि यूरोप के विद्वानों ने उन्नीसवीं सदी में जब देवी-देवताओं की मूर्तियाँ देखीं तो वे उनकी पृष्ठभूमि और महत्त्व को नहीं समझ पाए। कई सिरों, हाथों वाली या मनुष्य और जानवर के रूपों

को मिलाकर बनाई गई मूर्तियाँ उन्हें विकृत लगती थीं और कई बार वे घृणा से भर जाते थे।

इन शुरू-शुरू के विद्वानों ने ऐसी अजीबोगरीब मूर्तियों की समझ बनाने के लिए उनकी तुलना एक ऐसी परंपरा से की जिससे वे परिचित थे। यह थी प्राचीन यूनान की कला परंपरा। हालाँकि वे प्रारंभिक भारतीय मूर्तिकला को यूनान की कला से निम्न स्तर का मानते थे, बुद्ध और बोधिसत्त की मूर्तियों की खोज से वे काफ़ी उत्साहित हुए। ऐसा इसलिए हुआ कि ये मूर्तियाँ यूनानी प्रतिमानों से प्रभावित थीं। ये मूर्तियाँ ज़्यादातर तक्षशिला और पेशावर जैसे उत्तर-पश्चिम के नगरों में मिली थीं। इन इलाकों में ईसा से दो सौ साल पहले भारतीय-यूनानी शासकों ने राज्य बनाए थे। ये मूर्तियाँ यूनानी मूर्तियों से काफ़ी मिलती-जुलती थीं। चूँकि ये विद्वान यूनानी परंपरा से परिचित थे, इसलिए उन्होंने इन्हें भारतीय मूर्ति कला का सर्वश्रेष्ठ नमूना माना। परिणामतः इन विद्वानों ने इस कला को समझने के लिए एक तरीका अपनाया जो हम सब अक्सर अपनाते हैं - परिचित चीज़ों के आधार पर अपरिचित चीज़ों को समझने का पैमाना तैयार करना।

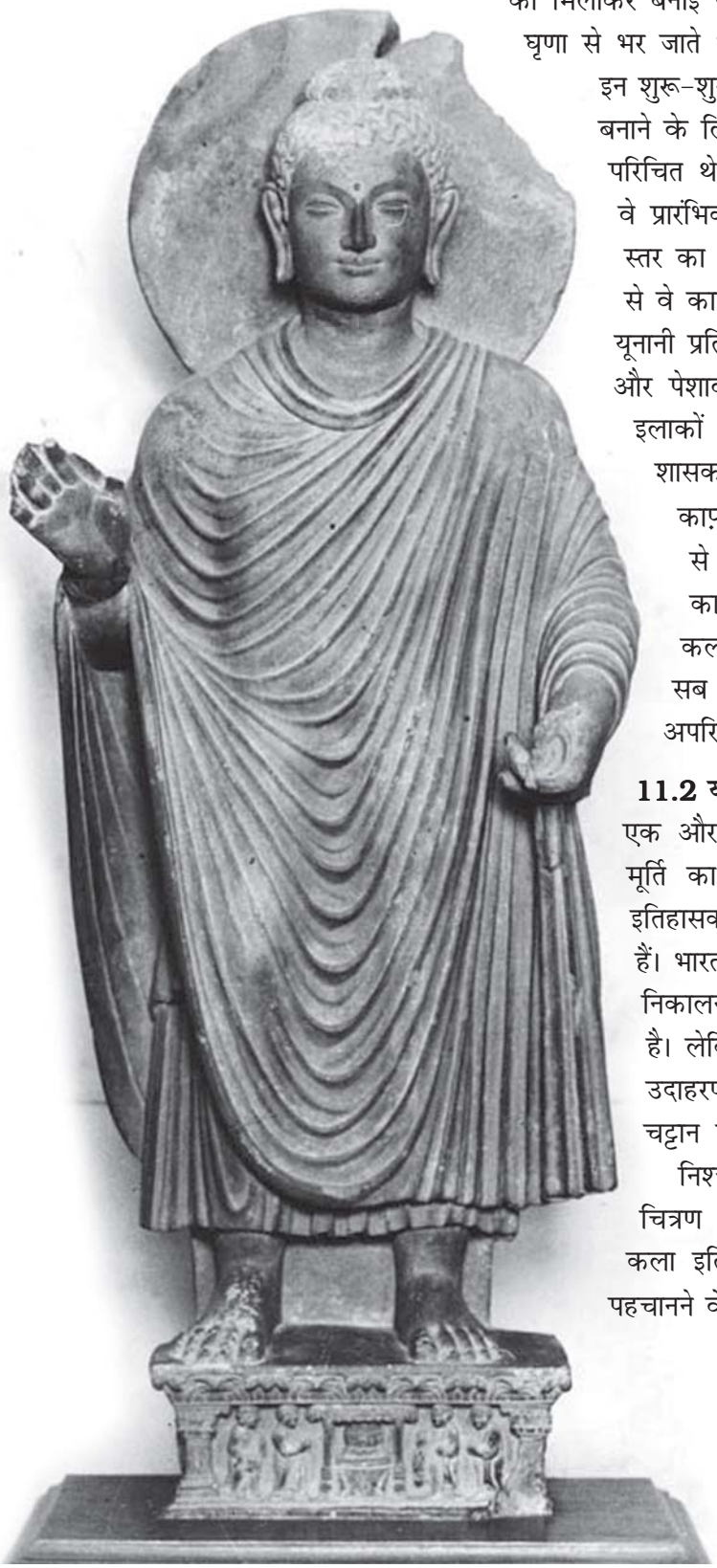

चित्र 4.29
गांधार का एक बोधिसत्त
उनके कपड़ों और केश विन्यास पर ध्यान दीजिए।

11.2 यदि लिखित और दृश्य का मेल न हो...

एक और समस्या पर नज़र डालिए। हमने पाया कि किसी मूर्ति का महत्त्व और संदर्भ समझने के लिए कला के इतिहासकार अक्सर लिखित ग्रंथों से जानकारी इकट्ठी करते हैं। भारतीय मूर्तियों की यूनानी मूर्तियों से तुलना कर निष्कर्ष निकालने की अपेक्षा यह निश्चय ही ज़्यादा बेहतर तरीका है। लेकिन यह बहुत आसान नहीं। इसका सबसे दिलचस्प उदाहरण है महाबलीपुरम (तमिलनाडु) में एक विशाल चट्टान पर उत्कीर्ण मूर्तियाँ।

निश्चय ही चित्र 4.30 में किसी कथा का सजीव चित्रण किया गया है। लेकिन यह कौन-सी कथा है? कला इतिहासकारों ने पुराणों के साहित्य में इस कथा को पहचानने के लिए काफ़ी खोजबीन की है। लेकिन उनमें काफ़ी

मतभेद हैं। कुछ का मानना है कि इसमें गंगा नदी के स्वर्ग से अवतरण का चित्रण है। चट्टान की सतह के मध्य प्राकृतिक दरार शायद नदी को दिखा रही है। यह कथा महाकाव्यों और पुराणों में वर्णित है। दूसरे विद्वान मानते हैं कि यहाँ पर दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए महाभारत में दी गई अर्जुन की तपस्या को दिखाया गया है। वे मूर्तियों के बीच एक साधु को केंद्र में रखे जाने की बात को महत्त्व देते हैं।

अंततः हमें यह याद रखना चाहिए कि बहुत से रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास और व्यवहार इमारतों, मूर्तियों या चित्रकला के द्वारा स्थायी दृश्य माध्यमों के रूप में दर्ज़ नहीं किए गए। इनमें दिन-प्रतिदिन और विशिष्ट अवसरों के रीति-रिवाज शामिल हैं। कई लोगों और समुदायों को चिरस्थायी विवरण रखने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई हो। संभव है कि धार्मिक गतिविधियों और दार्शनिक मान्यताओं की उनकी सक्रिय परंपरा रही हो। वस्तुतः हमने इस अध्याय में जिन शानदार उदाहरणों को चुना है वे एक विशाल ज्ञान राशि की मात्र ऊपरी परत हैं।

➲ चर्चा कीजिए...

आपने कोई भी धार्मिक अनुष्ठान देखा हो तो उसका वर्णन कीजिए। क्या इसे किसी रूप में हमेशा के लिए दर्ज़ किया जाता है?

चित्र 4.30
महाबलीपुरम् की एक मूर्ति

कालरेखा 1
महत्वपूर्ण धार्मिक बदलाव

लगभग 1500-1000 ई. पू.	प्रारंभिक वैदिक परंपराएँ
लगभग 1000-500 ई. पू.	उत्तर वैदिक परंपराएँ
लगभग छठी सदी ई. पू.	प्रारंभिक उपनिषद, जैन धर्म, बौद्ध धर्म
लगभग तीसरी सदी ई. पू.	आरंभिक स्तूप
लगभग दूसरी सदी ईसा पूर्व से आगे	महायान बौद्ध मत का विकास, वैष्णववाद, शैववाद और देवी पूजन परंपराएँ
लगभग तीसरी सदी ईसवी	सबसे पुराने मंदिर

कालरेखा 2
प्राचीन इमारतों और मूर्तियों की खोज और संरक्षण के महत्वपूर्ण चरण

उन्नीसवीं सदी	
1814	इंडियन म्यूज़ियम, कलकत्ता की स्थापना
1834	रामराजा लिखित *एसेज़ ऑन द आर्किटैक्चर ऑफ़ द हिंदूज़* का प्रकाशन; कनिंघम ने सारनाथ के स्तूप की छानबीन की
1835-1842	जेम्स फर्गुसन ने महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थलों का सर्वेक्षण किया
1851	गवर्नमेंट म्यूज़ियम, मद्रास की स्थापना
1854	अलेक्जैंडर कनिंघम ने *भिलसा टोप्स* लिखी जो साँची पर लिखी गई सबसे प्रारंभिक पुस्तकों में से एक है
1878	राजेंद्र लाल मित्र की पुस्तक, *बुद्ध गया : द हेरिटेज़ ऑफ़ शाक्य मुनि* का प्रकाशन
1880	एच.एच. कोल को प्राचीन इमारतों का संग्रहाध्यक्ष बनाया गया
1888	ट्रेज़र-ट्रोव एक्ट का बनाया जाना। इसके अनुसार सरकार पुरातात्विक महत्त्व की किसी भी चीज़ को हस्तगत कर सकती थी
बीसवीं सदी	
1914	जॉन मार्शल और अल्फ्रेड फूसे की द *मॉन्युमेंट्स ऑफ़ साँची* पुस्तक का प्रकाशन
1923	जॉन मार्शल की पुस्तक *कंजर्वेशन मैनुअल* का प्रकाशन
1955	प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली की नींव रखी
1989	साँची को एक विश्व कला दाय स्थान घोषित किया गया

उत्तर दीजिए (लगभग 100-150 शब्दों में)

1. क्या उपनिषदों के दार्शनिकों के विचार नियतिवादियों और भौतिकवादियों से भिन्न थे? अपने जवाब के पक्ष में तर्क दीजिए।

2. जैन धर्म की महत्वपूर्ण शिक्षाओं को संक्षेप में लिखिए।

3. साँची के स्तूप के संरक्षण में भोपाल की बेगमों की भूमिका की चर्चा कीजिए।

4. निम्नलिखित संक्षिप्त अभिलेख को पढ़िए और जवाब दीजिए :

   महाराजा हुविष्क (एक कुषाण शासक) के तैंतीसवें साल में गर्म मौसम के पहले महीने के आठवें दिन त्रिपिटक जानने वाले भिक्खु बल की शिष्या, त्रिपिटक जानने वाली बुद्धमिता के बहन की बेटी भिक्खुनी धनवती ने अपने माता-पिता के साथ मधुवनक में बोधिसत्त की मूर्ति स्थापित की।

(क) धनवती ने अपने अभिलेख की तारीख कैसे निश्चित की?

(ख) आपके अनुसार उन्होंने बोधिसत्त की मूर्ति क्यों स्थापित की?

(ग) वे अपने किन रिश्तेदारों का नाम लेती हैं?

(घ) वे कौन-से बौद्ध ग्रंथों को जानती थीं?

(ड.) उन्होंने ये पाठ किससे सीखे थे?

5. आपके अनुसार स्त्री-पुरुष संघ में क्यों जाते थे?

चित्र 4.31
साँची की एक मूर्ति

निम्नलिखित पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए (लगभग 500 शब्दों में)

6. साँची की मूर्तिकला को समझने में बौद्ध साहित्य के ज्ञान से कहाँ तक सहायता मिलती है?

7. चित्र 4.32 और 4.33 में साँची से लिए गए दो परिदृश्य दिए गए हैं। आपको इनमें क्या नज़र आता है? वास्तुकला, पेड़-पौधे, और जानवरों को ध्यान से देखकर तथा लोगों के काम-धंधों को पहचान कर यह बताइए कि इनमें से कौन से ग्रामीण और कौन से शहरी परिदृश्य हैं?

8. वैष्णववाद और शैववाद के उदय से जुड़ी वास्तुकला और मूर्तिकला के विकास की चर्चा कीजिए।

9. स्तूप क्यों और कैसे बनाए जाते थे? चर्चा कीजिए।

चित्र 4.33

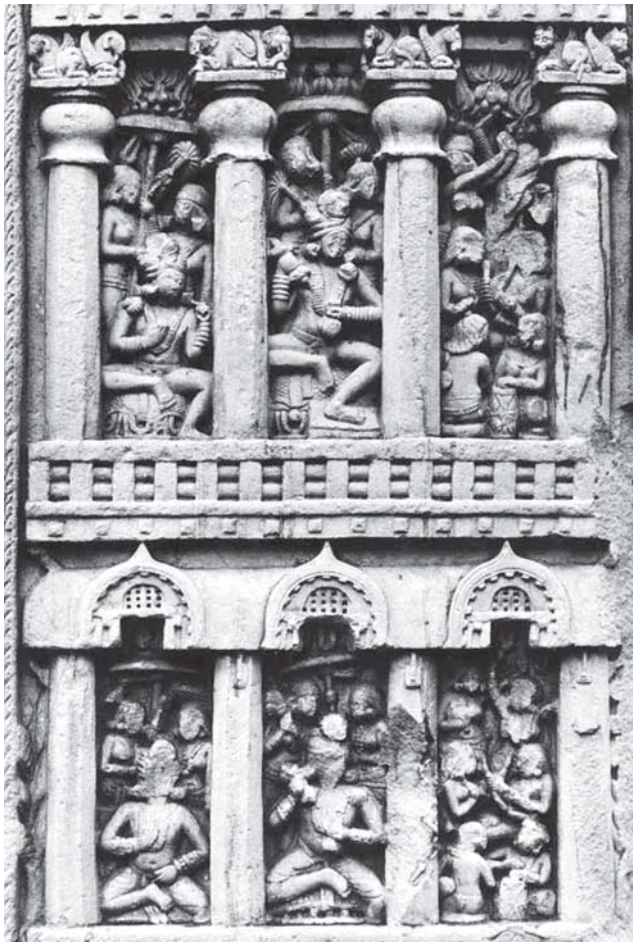

चित्र 4.32

मानचित्र कार्य

10. विश्व के रेखांकित मानचित्र पर उन इलाकों पर निशान लगाइए जहाँ बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ। उपमहाद्वीप से इन इलाकों को जोड़ने वाले जल और स्थल मार्गों को दिखाइए।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. इस अध्याय में चर्चित धार्मिक परंपराओं में से क्या कोई परंपरा आपके अड़ोस-पड़ोस में मानी जाती है? आज किन धार्मिक ग्रंथों का प्रयोग किया जाता है? उन्हें कैसे संरक्षित और संप्रेषित किया जाता है? क्या पूजा में मूर्तियों का प्रयोग होता है? यदि हाँ तो क्या ये मूर्तियाँ इस अध्याय में लिखी गई मूर्तियों से मिलती-जुलती हैं या अलग हैं? धार्मिक कृत्यों के लिए प्रयुक्त इमारतों की तुलना प्रारंभिक स्तूपों और मंदिरों से कीजिए।

12. इस अध्याय में वर्णित धार्मिक परंपराओं से जुड़े अलग-अलग काल और इलाकों की कम से कम पाँच मूर्तियों और चित्रों की तसवीरें इकट्ठी कीजिए। उनके शीर्षक हटाकर प्रत्येक तसवीर दो लोगों को दिखाइए और उन्हें इसके बारे में बताने को कहिए। उनके वर्णनों की तुलना करते हुए अपनी खोज की रिपोर्ट लिखिए।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

ए.एल. बाशम, 1985
द वंडर दैट वाज़ इंडिया,
रूपा, कलकत्ता।

एन.एन. भट्टाचार्य, 1996
इंडियन रिलिजियस हिस्टोरियोग्राफ़ी,
मुंशीराम मनोहरलाल,
नयी दिल्ली।

एम.के. धावलीकर, 2003
मॉन्युमेंटल लीगेसी ऑफ़ साँची,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,
नयी दिल्ली।

पॉल डुंडास, 1992
द जैनस्,
रूटलेज, लंदन।

गेविन फ्लड, 2004
इंट्रोडक्शन टू हिन्दुइज्म,
कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस,
कैंब्रिज।

रिचार्ड एफ. गोम्ब्रिच, 1988
थेरवाद बुद्धिज्म : ए सोशल हिस्ट्री फ्रॉम एंशियेंट बनारस टू मॉडर्न कोलंबो,
रूटलेज एंड केगन पॉल, लंदन।

बेंजामिन रॉलैंड, 1967
द आर्ट एंड आर्किटेक्चर ऑफ इंडिया : बुद्धिस्ट/हिंदू/जैन,
पेंग्विन बुक्स, हार्मन्ड्सवर्थ।

ज़्यादा जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं
http://dsal.uchicago.edu/images/aiis/

चित्रों हेतु श्रेय

विषय 1

चित्र 1.1, 1.2, 1.3, 1.4, 1.5, 1.6, 1.8, 1.11, 1.12, 1.13, 1.14, 1.15, 1.16, 1.20, 1.22, 1.23, 1.26, 1.28, 1.29, चित्र 1.30 अभ्यास कार्य

भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण तथा भारतीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

चित्र 1.7, 1.9, 1.10, 1.17, 1.18, 1.19, 1.21, 1.24:

प्रो.फ़ेसर ग्रेगोरी एल. पोशेल

चित्र 1.27:

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र, नयी दिल्ली

विषय 2

चित्र 2.1: अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंडियन स्टडीज़, गुड़गाँव

चित्र 2.2, 2.6: भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण

चित्र 2.3, 2.5, 2.10:

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र, नयी दिल्ली

चित्र 2.4, 2.7, 2.9, 2.12, 2.13: भारतीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

चित्र 2.8: वाइकीपीडिया

विषय 3

चित्र 3.1, 3.10: भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण

चित्र 3.3, 3.4, 3.5, 3.6, 3.7, 3.8, 3.9: भारतीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

विषय 4

चित्र 4.1, 4.5, 4.8, 4.9, 4.12, 4.13, 4.14, 4.15, 4.16, 4.17, 4.18, 4.19, 4.21, 4.22, 4.23, 4.24, 4.25, 4.26, 4.27, 4.29, 4.31, चित्र 4.32 और 33 अभ्यास कार्य में

अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंडियन स्टडीज़, गुड़गाँव

चित्र 4.2: वाइकीपीडिया

चित्र 4.3, 4.11, 4.28, 4.30:

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र, नयी दिल्ली

चित्र 4.4, 4.6, 4.7, 4.20: भारतीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय इतिहास

के कुछ विषय

भाग 2

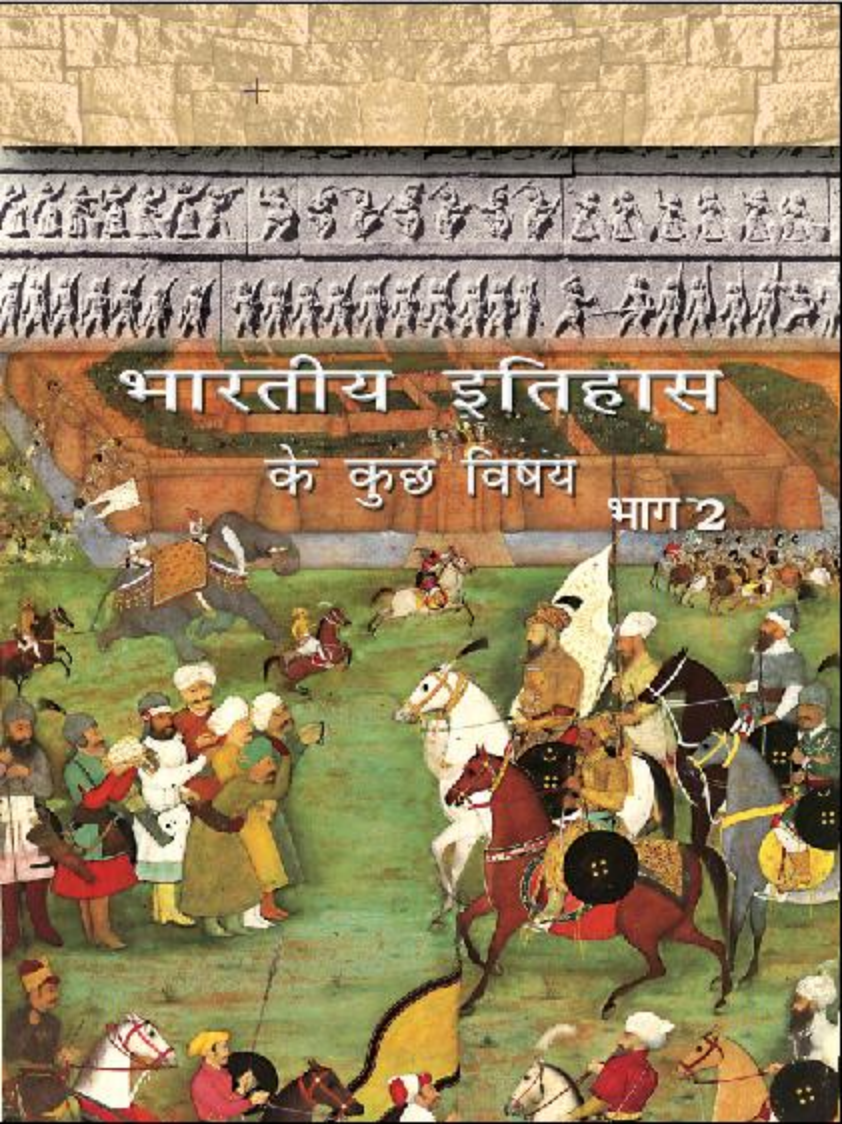

विषय सूची

भाग 2

विषय पाँच
यात्रियों के नज़रिए 115
समाज के बारे में उनकी समझ
(लगभग दसवीं से सत्रहवीं सदी तक)

विषय छः
भक्ति–सूफी परंपराएँ 140
धार्मिक विश्वासों में बदलाव और श्रद्धा ग्रंथ
(लगभग आठवीं से अठारहवीं सदी तक)

विषय सात
एक साम्राज्य की राजधानी : विजयनगर 170
(लगभग चौदहवीं से सोलहवीं सदी तक)

विषय आठ
किसान, ज़मींदार और राज्य 196
कृषि समाज और मुगल साम्राज्य
(लगभग सोलहवीं और सत्रहवीं सदी)

विषय नौ
शासक और विभिन्न इतिवृत्त 224
मुग़ल दरबार
(लगभग सोलहवीं और सत्रहवीं सदी)

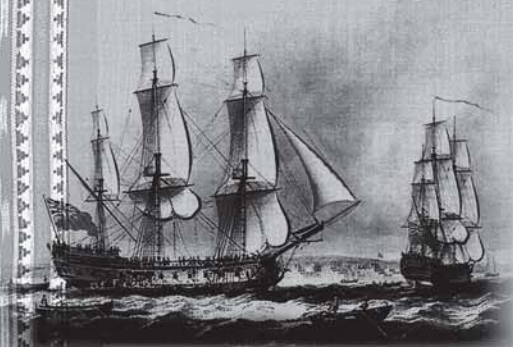

भाग 3*

विषय दस
उपनिवेशवाद और देहात
सरकारी अभिलेखों का अध्ययन

विषय ग्यारह
विद्रोही और राज
1857 का आंदोलन और उसके व्याख्यान

*भाग 3 इसी क्रम में होगा

विषय पाँच

यात्रियों के नज़रिए
समाज के बारे में उनकी समझ
(लगभग दसवीं से सत्रहवीं सदी तक)

महिलाओं और पुरुषों ने कार्य की तलाश में, प्राकृतिक आपदाओं से बचाव के लिए व्यापारियों, सैनिकों, पुरोहितों और तीर्थयात्रियों के रूप में या फिर साहस की भावना से प्रेरित होकर यात्राएँ की हैं। वे, जो किसी नए स्थान पर आते हैं अथवा बस जाते हैं, निश्चित रूप से एक ऐसी दुनिया को समक्ष पाते हैं जो भूदृश्य या भौतिक परिवेश के संदर्भ में और साथ ही लोगों की प्रथाओं, भाषाओं, आस्था तथा व्यवहार में भिन्न होती है। इनमें से कुछ इन भिन्नताओं के अनुरूप ढल जाते हैं और अन्य जो कुछ हद तक विशिष्ट होते हैं, इन्हें ध्यानपूर्वक अपने वृत्तांतों में लिख लेते हैं, जिनमें असामान्य तथा उल्लेखनीय बातों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। दुर्भाग्य से हमारे पास महिलाओं द्वारा छोड़े गए वृत्तांत लगभग न के बराबर हैं, हालाँकि हम यह जानते हैं कि वे भी यात्राएँ करती थीं। सुरक्षित मिले वृत्तांत अपनी विषयवस्तु के संदर्भ में अलग-अलग प्रकार के होते हैं। कुछ दरबार की गतिविधियों से संबंधित होते हैं, जबकि अन्य धार्मिक विषयों, या स्थापत्य के तत्वों और स्मारकों पर केंद्रित होते हैं। उदाहरण के लिए, पंद्रहवीं शताब्दी में विजयनगर शहर (अध्याय 7) के सबसे महत्त्वपूर्ण विवरणों में से एक, हेरात से आए एक राजनयिक अब्दुर रज़्ज़ाक समरकंदी से प्राप्त होता है।

चित्र 5.1 (क)
पान के पत्ते

कई बार यात्री सुदूर क्षेत्रों में नहीं जाते हैं। उदाहरण के लिए, मुग़ल साम्राज्य (अध्याय 8 और 9) में प्रशासनिक अधिकारी कभी-कभी साम्राज्य के भीतर ही भ्रमण करते थे और अपनी टिप्पणियाँ दर्ज करते थे। इनमें से कुछ अपने ही देश की लोकप्रिय प्रथाओं तथा जन-वार्ताओं और परंपराओं को समझना चाहते थे।

इस अध्याय में हम यह देखेंगे कि उपमहाद्वीप में आए यात्रियों द्वारा दिए गए सामाजिक जीवन के विवरणों के अध्ययन से किस प्रकार हम अपने अतीत के विषय में ज्ञान बढ़ा सकते हैं। इसके लिए हम तीन व्यक्तियों के वृत्तांतों पर ध्यान देंगे: अल-बिरूनी, जो ग्यारहवीं शताब्दी में उज़्बेकिस्तान आया था, इब्न बतूता (चौदहवीं शताब्दी), मोरक्को से तथा फ्रांसीसी यात्री फ्रांस्वा बर्नियर (सत्रहवीं शताब्दी)।

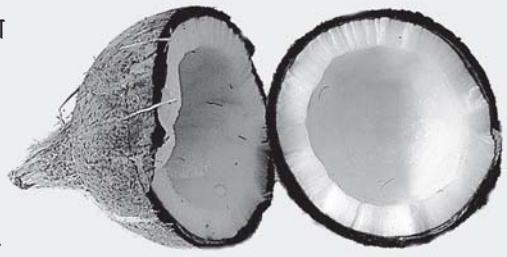

चित्र 5.1 (ख)
नारियल
कई यात्रियों ने नारियल तथा पान जैसी चीज़ों को असामान्य माना।

स्रोत 1

अल-बिरूनी के उद्देश्य

अल-बिरूनी ने अपने कार्य का वर्णन इस प्रकार किया:

उन लोगों के लिए सहायक जो उनसे (हिंदुओं) धार्मिक विषयों पर चर्चा करना चाहते हैं और ऐसे लोगों के लिए एक सूचना का संग्रह जो उनके साथ संबद्ध होना चाहते हैं।

➲ अल-बिरूनी की कृति का अंश पढ़िए (स्रोत 5) तथा चर्चा कीजिए कि क्या यह कृति इन उद्देश्यों को पूरा करती है।

ग्रंथों का अनुवाद, विचारों का आदान-प्रदान

कई भाषाओं में दक्षता हासिल करने के कारण अल-बिरूनी भाषाओं की तुलना तथा ग्रंथों का अनुवाद करने में सक्षम रहा। उसने कई संस्कृत कृतियों, जिनमें पतंजलि का व्याकरण पर ग्रंथ भी शामिल है, का अरबी में अनुवाद किया। अपने ब्राह्मण मित्रों के लिए उसने यूक्लिड (एक यूनानी गणितज्ञ) के कार्यों का संस्कृत में अनुवाद किया।

पूरी तरह से भिन्न सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आने के कारण ये लेखक दैनिक गतिविधियों तथा प्रथाओं के प्रति अधिक सावधान रहते थे। देशज लेखकों के लिए ये सभी विषय सामान्य थे जो वृत्तांतों में दर्ज करने योग्य नहीं थे। नज़रिये में यही भिन्नता ही यात्रा-वृत्तांतों को अधिक रोचक बनाती है। ये यात्री किसके लिए लिखते थे? जैसा कि हम देखेंगे, इस प्रश्न का उत्तर अलग-अलग दृष्टांतों में अलग था।

1. अल-बिरूनी तथा किताब-उल-हिन्द

1.1 *ख़्वारिज़्म से पंजाब तक*

अल-बिरूनी का जन्म आधुनिक उज़्बेकिस्तान में स्थित ख़्वारिज़्म में सन् 973 में हुआ था। ख़्वारिज़्म शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र था और अल-बिरूनी ने उस समय उपलब्ध सबसे अच्छी शिक्षा प्राप्त की थी। वह कई भाषाओं का ज्ञाता था जिनमें सीरियाई, फ़ारसी, हिब्रू तथा संस्कृत शामिल हैं। हालाँकि वह यूनानी भाषा का जानकार नहीं था पर फिर भी वह प्लेटो तथा अन्य यूनानी दार्शनिकों के कार्यों से पूरी तरह परिचित था जिन्हें उसने अरबी अनुवादों के माध्यम से पढ़ा था। सन् 1017 ई. में ख़्वारिज़्म पर आक्रमण के पश्चात सुल्तान महमूद यहाँ के कई विद्वानों तथा कवियों को अपने साथ अपनी राजधानी ग़ज़नी ले गया। अल-बिरूनी भी उनमें से एक था। वह बंधक के रूप में ग़ज़नी आया था पर धीरे-धीरे उसे यह शहर पसंद आने लगा और सत्तर वर्ष की आयु में अपनी मृत्यु तक उसने अपना बाकी जीवन यहीं बिताया।

ग़ज़नी में ही अल-बिरूनी की भारत के प्रति रुचि विकसित हुई। यह कोई असामान्य बात नहीं थी। आठवीं शताब्दी से ही संस्कृत में रचित खगोल-विज्ञान, गणित और चिकित्सा संबंधी कार्यों का अरबी भाषा में अनुवाद होने लगा था। पंजाब के ग़ज़नवी साम्राज्य का हिस्सा बन जाने के बाद स्थानीय लोगों से हुए संपर्कों ने आपसी विश्वास और समझ का वातावरण बनाने में मदद की। अल-बिरूनी ने ब्राह्मण पुरोहितों तथा विद्वानों के साथ कई वर्ष बिताए और संस्कृत, धर्म तथा दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया। हालाँकि उसका यात्रा-कार्यक्रम स्पष्ट नहीं है फिर भी प्रतीत होता है कि उसने पंजाब और उत्तर भारत के कई हिस्सों की यात्रा की थी।

उसके लिखने के समय यात्रा वृत्तांत अरबी साहित्य का एक मान्य हिस्सा बन चुके थे। ये वृत्तांत पश्चिम में सहारा रेगिस्तान से लेकर उत्तर में वोल्गा नदी तक फैले क्षेत्रों से संबंधित थे। इसलिए, हालाँकि

1500 ई. से पहले भारत में अल-बिरूनी को कुछ ही लोगों ने पढ़ा होगा, भारत से बाहर कई अन्य लोग संभवत: ऐसा कर चुके हैं।

1.2 *किताब-उल-हिन्द*

अरबी में लिखी गई अल-बिरूनी की कृति *किताब-उल-हिन्द* की भाषा सरल और स्पष्ट है। यह एक विस्तृत ग्रंथ है जो धर्म और दर्शन, त्योहारों, खगोल-विज्ञान, कीमिया, रीति-रिवाजों तथा प्रथाओं, सामाजिक-जीवन, भार-तौल तथा मापन विधियों, मूर्तिकला, कानून, मापतंत्र विज्ञान आदि विषयों के आधार पर अस्सी अध्यायों में विभाजित है।

सामान्यत: (हालाँकि हमेशा नहीं) अल-बिरूनी ने प्रत्येक अध्याय में एक विशिष्ट शैली का प्रयोग किया जिसमें आरंभ में एक प्रश्न होता था, फिर संस्कृतवादी परंपराओं पर आधारित वर्णन और अंत में अन्य संस्कृतियों के साथ एक तुलना। आज के कुछ विद्वानों का तर्क है कि इस लगभग ज्यामितीय संरचना, जो अपनी स्पष्टता तथा पूर्वानुमेयता के लिए उल्लेखनीय है, का एक मुख्य कारण अल-बिरूनी का गणित की ओर झुकाव था।

अल-बिरूनी जिसने लेखन में भी अरबी भाषा का प्रयोग किया था, ने संभवत: अपनी कृतियाँ उपमहाद्वीप के सीमांत क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए लिखी थीं। वह संस्कृत, पाली तथा प्राकृत ग्रंथों के अरबी भाषा में अनुवादों तथा रूपांतरणों से परिचित था-इनमें दंतकथाओं से लेकर खगोल-विज्ञान और चिकित्सा संबंधी कृतियाँ सभी शामिल थीं। पर साथ ही इन ग्रंथों की लेखन-सामग्री शैली के विषय में उसका दृष्टिकोण आलोचनात्मक था और निश्चित रूप से वह उनमें सुधार करना चाहता था।

मापतंत्र विज्ञान मापने के विज्ञान से संबंध रखता है।

हिंदू

"हिंदू" शब्द लगभग छठी-पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में प्रयुक्त होने वाले एक प्राचीन फ़ारसी शब्द, जिसका प्रयोग सिंधु नदी (Indus) के पूर्व के क्षेत्र के लिए होता था, से निकला था। अरबी लोगों ने फ़ारसी शब्द को जारी रखा और इस क्षेत्र को "अल-हिंद" तथा यहाँ के निवासियों को "हिंदी" कहा। कालांतर में तुर्कों ने सिंधु से पूर्व में रहने वाले लोगों को "हिंदू"; उनके निवास क्षेत्र को "हिंदुस्तान" तथा उनकी भाषा को "हिंदवी" का नाम दिया। इनमें से कोई भी शब्द लोगों की धार्मिक पहचान का द्योतक नहीं था। ऐसा बहुत बाद में हुआ था कि इस शब्द का धार्मिक संदर्भ में प्रयोग किया जाने लगा।

➲ चर्चा कीजिए...

यदि अल-बिरूनी इक्कीसवीं शताब्दी में रहता, तो वही भाषाएँ जानने पर भी उसे विश्व के किन क्षेत्रों में आसानी से समझा जा सकता था?

चित्र 5.2
तेरहवीं शताब्दी की अरबी पांडुलिपि का एक चित्र जिसमें छठी शताब्दी ईसा पूर्व एथेंस के राजनेता एवं कवि सोलोन को विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए दिखाया गया है।

सोलोन एवं उनके विद्यार्थियों के कपड़ों को ध्यान से देखिए।

➲ क्या ये कपड़े यूनानी हैं अथवा अरबी?

स्रोत 2

घोंसले से निकलता पक्षी

यह रिह्ला से लिया गया एक उद्धरण है:

अपने जन्म स्थान तैंजियर से मेरा प्रस्थान गुरुवार को हुआ... मैं अकेला ही निकल पड़ा, बिना किसी साथी यात्री... या कारवाँ के जिसकी टोली में मैं शामिल हो सकूँ, लेकिन अपने अंदर एक अधिप्रभावी आवेग और इन प्रसिद्ध पुण्यस्थानों को देखने की इच्छा जो लंबे समय से मेरे अंत:करण में थी, से प्रभावित होकर। इसलिए मैंने अपने प्रियजनों को छोड़ जाने के निश्चय को दृढ़ किया और अपने घर को ऐसे ही छोड़ दिया जैसे पक्षी अपने घोंसलों को छोड़ देते हैं... उस समय मेरी उम्र बाईस वर्ष थी।

इब्न बतूता 1354 में घर वापस पहुँचा, अपनी यात्रा आरंभ करने के लगभग तीस वर्ष बाद।

चित्र 5.3
डाकू यात्रियों पर हमला कर रहे हैं, सोलहवीं शताब्दी का मुग़ल चित्र

➲ आप डाकुओं को यात्रियों से कैसे अलग करेंगे?

2. इब्न बतूता का *रिह्ला*

2.1 *एक आरंभिक विश्व-यात्री*

इब्न बतूता द्वारा अरबी भाषा में लिखा गया उसका यात्रा वृत्तांत जिसे *रिह्ला* कहा जाता है, चौदहवीं शताब्दी में भारतीय उपमहाद्वीप के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन के विषय में बहुत ही प्रचुर तथा रोचक जानकारियाँ देता है। मोरक्को के इस यात्री का जन्म तैंजियर के सबसे सम्मानित तथा शिक्षित परिवारों में से एक, जो इस्लामी कानून अथवा *शरिया* पर अपनी विशेषज्ञता के लिए प्रसिद्ध था, में हुआ था। अपने परिवार की परंपरा के अनुसार इब्न बतूता ने कम उम्र में ही साहित्यिक तथा शास्त्ररूढ़ शिक्षा हासिल की।

अपनी श्रेणी के अन्य सदस्यों के विपरीत, इब्न बतूता पुस्तकों के स्थान पर यात्राओं से अर्जित अनुभव को ज्ञान का अधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत मानता था। उसे यात्राएँ करने का बहुत शौक था और वह नए-नए देशों और लोगों के विषय में जानने के लिए दूर-दूर के क्षेत्रों तक गया। 1332-33 में भारत के लिए प्रस्थान करने से पहले वह मक्का की तीर्थ यात्राएँ और सीरिया, इराक, फारस, यमन, ओमान तथा पूर्वी अफ्रीका के कई तटीय व्यापारिक बंदरगाहों की यात्राएँ कर चुका था।

मध्य एशिया के रास्ते होकर इब्न बतूता सन् 1333 में स्थलमार्ग से सिंध पहुँचा। उसने दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक के बारे में सुना था और कला और साहित्य के एक दयाशील संरक्षक के रूप में उसकी ख्याति से आकर्षित हो बतूता ने मुल्तान और उच्छ के रास्ते होकर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। सुल्तान उसकी विद्वता से प्रभावित हुआ और उसे दिल्ली का क़ाज़ी या न्यायाधीश नियुक्त किया। वह इस पद पर कई वर्षों तक रहा, पर फिर उसने विश्वास खो दिया और उसे कारागार में कैद कर दिया गया। बाद में सुल्तान और उसके बीच की गलतफहमी दूर होने के बाद उसे राजकीय सेवा में पुनर्स्थापित किया गया और 1342 ई. में मंगोल शासक के पास सुल्तान के दूत के रूप में चीन जाने का आदेश दिया गया।

अपनी नयी नियुक्ति के साथ इब्न बतूता मध्य भारत के रास्ते मालाबार तट की ओर बढ़ा। मालाबार से वह मालद्वीप गया जहाँ वह अठारह महीनों तक क़ाज़ी के पद पर रहा पर अंतत: उसने श्रीलंका जाने का निश्चय किया। बाद में एक बार फिर वह मालाबार तट तथा मालद्वीप गया और चीन जाने के अपने कार्य को दोबारा शुरू करने से पहले वह बंगाल तथा असम भी गया। वह जहाज से सुमात्रा गया और सुमात्रा से एक अन्य जहाज से चीनी बंदरगाह नगर

चित्र 5.4
नाव में यात्री, बंगाल के एक मंदिर की मृण मूर्तिकला।
(लगभग सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दियाँ)

➲ आपके मत में कुछ यात्रियों के हाथों में हथियार क्यों हैं?

जायतुन (जो आज क्वानझू के नाम से जाना जाता है) गया। उसने व्यापक रूप से चीन में यात्रा की और वह बीजिंग तक गया, लेकिन वहाँ लंबे समय तक नहीं ठहरा। 1347 में उसने वापस अपने घर जाने का निश्चय किया। चीन के विषय में उसके वृत्तांत की तुलना मार्को पोलो, जिसने तेरहवीं शताब्दी के अंत में वेनिस से चलकर चीन (और भारत की भी) की यात्रा की थी, के वृत्तांत से की जाती है।

इब्न बतूता ने नवीन संस्कृतियों, लोगों, आस्थाओं, मान्यताओं आदि के विषय में अपने अभिमत को सावधानी तथा कुशलतापूर्वक दर्ज किया। हमें यह ध्यान में रखना होगा कि यह विश्व-यात्री चौदहवीं शताब्दी में यात्राएँ कर रहा था, जब आज की तुलना में यात्रा करना अधिक कठिन तथा जोखिम भरा कार्य था। इब्न बतूता के अनुसार उसे मुल्तान से दिल्ली की यात्रा में चालीस और सिंध से दिल्ली की यात्रा में लगभग पचास दिन का समय लगा था। दौलताबाद से दिल्ली की दूरी चालीस, जबकि ग्वालियर से दिल्ली की दूरी दस दिन में तय की जा सकती थी।

एकाकी यात्री

लंबी यात्राओं में लुटेरे ही एकमात्र खतरा नहीं थे: यात्री गृहातुर हो सकता था और बीमार हो सकता था। यह *रिह्ला* से लिया गया एक उद्धरण है:

मुझे ज्वर ने जकड़ लिया था, और मैंने अपने आप को कमज़ोरी के कारण गिरने से बचाने के लिए पगड़ी के कपड़े को जीन से बाँध लिया... अंतत: हम ट्यूनिस शहर पहुँचे और वहाँ के निवासी शेख... और... क़ाज़ी के पुत्र का स्वागत करने के लिए बाहर आए। वे हर ओर एक दूसरे के लिए अभिवादन और प्रश्नों के साथ आगे आए, लेकिन उनमें से किसी ने भी मेरा अभिवादन नहीं किया क्योंकि वहाँ कोई भी ऐसा नहीं था जिससे मेरा परिचय हो। अपने एकाकीपन से मैं इतना उदास हुआ कि अपनी आँखों में आए आँसुओं को रोक नहीं सका, और बहुत रोया। पर एक तीर्थयात्री मेरी कुंठा का कारण जानकर मेरे पास आया और अभिवादन किया...।

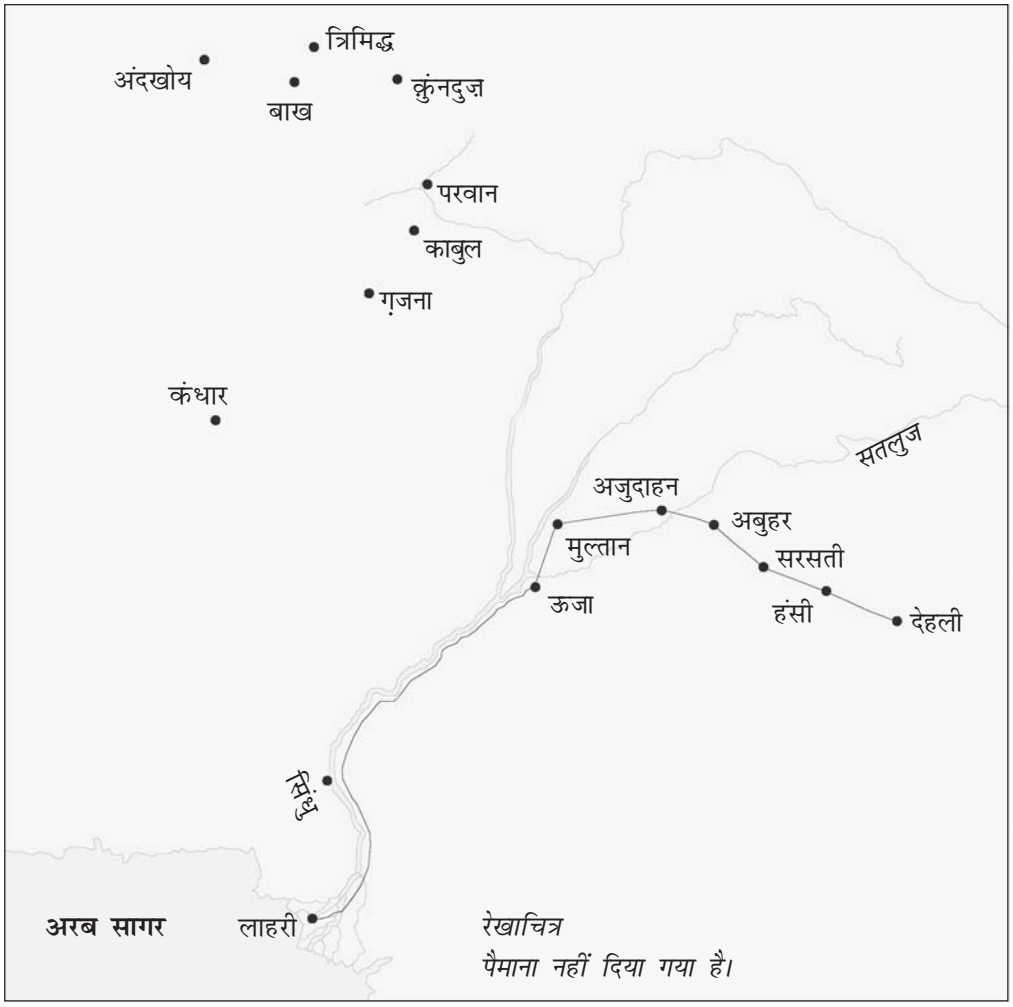

मानचित्र 1
अफ़गानिस्तान, सिंध और पंजाब में इब्न बतूता द्वारा भ्रमण किए गए स्थान। कई जगहों के नाम उस तरह से लिखे गए हैं जिस तरह से इब्न बतूता उन्हें जानता होगा।

यात्रा करना अधिक असुरक्षित भी था; इब्न बतूता ने कई बार डाकुओं के समूहों द्वारा किए गए आक्रमण झेले थे। यहाँ तक कि वह अपने साथियों के साथ कारवाँ में चलना पसंद करता था, पर इससे भी राजमार्गों के लुटेरों को रोका नहीं जा सका। मुल्तान से दिल्ली की यात्रा के दौरान उसके कारवाँ पर आक्रमण हुआ, और उसके कई साथी यात्रियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा: जो जीवित बचे, जिनमें इब्न बतूता भी शामिल था, बुरी तरह से घायल हो गए थे।

2.2 जिज्ञासाओं का उपभोग

जैसाकि हमने देखा है कि इब्न बतूता एक हठीला यात्री था जिसने उत्तर पश्चिमी अफ़्रीका में अपने निवास स्थान मोरक्को वापस जाने से पूर्व कई वर्ष उत्तरी अफ़्रीका, पश्चिम एशिया, मध्य एशिया के कुछ भाग (हो सकता है वह रूस भी गया हो), भारतीय उपमहाद्वीप तथा चीन की यात्रा की थी। जब वह वापस आया तो स्थानीय शासक ने निर्देश दिए कि उसकी कहानियों को दर्ज किया जाए।

स्रोत 3

शिक्षा तथा मनोरंजन

इब्न जुज़ाई जिसे इब्न बतूता के श्रुतलेखों को लिखने के लिए नियुक्त किया गया था, अपनी प्रस्तावना में लिखता है:

> (राजा के द्वारा) एक शालीन निर्देश दिया गया कि वे (इब्न बतूता) अपनी यात्रा में देखे गए शहरों का, तथा अपनी स्मृति में बैठ गई रोचक घटनाओं का एक वृत्तांत लिखवाएँ, और साथ ही विभिन्न देशों के शासकों में से जिनसे वे मिले, उनके महान साहित्यकारों के तथा उनके धर्मनिष्ठ संतों के विषय में बताएँ। तदनुसार उन्होंने इन सभी विषयों पर एक कथानक लिखवाया जिसने मस्तिष्क को मनोरंजन तथा कान और आँख को प्रसन्नता दी। साथ ही उन्होंने कई प्रकार के असाधारण विवरण जिनके प्रतिपादन से लाभप्रद उपदेश मिलते हैं, दिए तथा असाधारण चीज़ों के बारे में बताया जिनके संदर्भ से अभिरुचि जगी।

इब्न बतूता के पदचिह्नों पर

1400 से 1800 के बीच भारत आए यात्रियों ने फ़ारसी में कई यात्रा वृत्तांत लिखे। उसी समय भारत से मध्य एशिया, ईरान तथा ऑटोमन साम्राज्य की यात्रा करने वालों ने भी कभी-कभी अपने अनुभव लिखे। इन लेखकों ने अल-बिरूनी और इब्न बतूता के पदचिह्नों का अनुसरण किया। इनमें से कुछ ने इन पूर्ववर्ती लेखकों को पढ़ा भी था।

इनमें से सबसे प्रसिद्ध लेखकों में अब्दुर रज़्ज़ाक समरकंदी जिसने 1440 के दशक में दक्षिण भारत की यात्रा की थी, महमूद वली बल्खी, जिसने 1620 के दशक में व्यापक रूप से यात्राएँ की थीं तथा शेख़ अली हाज़िन जो 1740 के दशक में उत्तर भारत आया था, शामिल हैं। इनमें से कुछ लेखक भारत से सम्मोहित थे, और यहाँ तक कि उनमें से एक महमूद बल्ख़ी तो कुछ समय के लिए सन्यासी भी बन गया था। कुछ अन्य जैसे कि हाज़िन भारत से निराश हुए और यहाँ तक कि घृणा भी करने लगे। वे भारत में अपने लिए एक उत्सवीय स्वागत की आशा कर रहे थे। उनमें से अधिकांश ने भारत को अचंभों के देश के रूप में देखा।

चित्र 5.5
अठारहवीं शताब्दी का एक चित्र जिसमें यात्रियों को आग के आस-पास इकट्ठा हुआ दिखाया गया है।

➲ चर्चा कीजिए...

आपके विचार में अल-बिरूनी और इब्न बतूता के उद्देश्य किन मायनों में समान/भिन्न थे?

चित्र 5.6
सातवीं शताब्दी के एक चित्र में बर्नियर को यूरोपीय पोशाक में दर्शाया गया है।

चित्र 5.7
भारतीय पोशाक में तैवर्नियर का चित्र

3. फ्रांस्वा बर्नियर : एक विशिष्ट चिकित्सक

लगभग 1500 ई. में भारत में पुर्तगालियों के आगमन के पश्चात उनमें से कई लोगों ने भारतीय सामाजिक रीति-रिवाजों तथा धार्मिक प्रथाओं के विषय में विस्तृत वृत्तांत लिखे। उनमें से कुछ चुनिंदा लोगों, जैसे जेसुइट रॉबर्टो नोबिली, ने तो भारतीय ग्रंथों को यूरोपीय भाषाओं में अनुवादित भी किया।

सबसे प्रसिद्ध यूरोपीय लेखकों में एक नाम दुआर्ते बरबोसा का है जिसने दक्षिण भारत में व्यापार और समाज का एक विस्तृत विवरण लिखा। कालान्तर में 1600 ई. के बाद भारत में आने वाले डच, अंग्रेज़ तथा फ्रांसीसी यात्रियों की संख्या बढ़ने लगी थी। इनमें एक प्रसिद्ध नाम फ्रांसीसी जौहरी ज्यौं-बैप्टिस्ट तैवर्नियर का था जिसने कम से कम छह बार भारत की यात्रा की। वह विशेष रूप से भारत की व्यापारिक स्थितियों से बहुत प्रभावित था और उसने भारत की तुलना ईरान और ऑटोमन साम्राज्य से की। इनमें से कई यात्री जैसे इतालवी चिकित्सक मनूकी, कभी भी यूरोप वापस नहीं गए और भारत में ही बस गए।

फ्रांस का रहने वाला फ्रांस्वा बर्नियर एक चिकित्सक, राजनीतिक दार्शनिक तथा एक इतिहासकार था। कई और लोगों की तरह ही वह मुग़ल साम्राज्य में अवसरों की तलाश में आया था। वह 1656 से 1668 तक भारत में बारह वर्ष तक रहा और मुग़ल दरबार से नज़दीकी रूप से जुड़ा रहा-पहले सम्राट शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह के चिकित्सक के रूप में, और बाद में मुग़ल दरबार के एक आर्मीनियाई अमीर दानिशमंद ख़ान के साथ एक बुद्धिजीवी तथा वैज्ञानिक के रूप में।

3.1 "पूर्व" और "पश्चिम" की तुलना

बर्नियर ने देश के कई भागों की यात्रा की और जो देखा उसके विषय में विवरण लिखे। वह सामान्यत: भारत में जो देखता था उसकी तुलना यूरोपीय स्थिति से करता था। उसने अपनी प्रमुख कृति को फ्रांस के शासक लुई XIV को समर्पित किया था और उसके कई अन्य कार्य प्रभावशाली आधिकारियों और मंत्रियों को पत्रों के रूप में लिखे गए थे। लगभग प्रत्येक दृष्टांत में बर्नियर ने भारत की स्थिति को यूरोप में हुए विकास की तुलना में दयनीय बताया। जैसाकि हम देखेंगे उसका आकलन हमेशा सटीक नहीं था फिर भी जब उसके कार्य प्रकाशित हुए तो बर्नियर के वृत्तांत अत्यधिक प्रसिद्ध हुए।

स्रोत 4

मुग़ल सेना के साथ यात्रा

बर्नियर ने कई बार मुग़ल सेना के साथ यात्राएँ की। यहाँ सेना के कश्मीर कूच के संबंध में दिए गए विवरण से एक अंश दिया जा रहा है:

इस देश की प्रथा के अनुसार मुझसे दो अच्छे तुर्कमान घोड़े देखने की अपेक्षा की जाती है और मैं अपने साथ एक शक्तिशाली फ़ारसी ऊँट तथा चालक, अपने घोड़ों के लिए एक साईस, एक खानसामा तथा एक सेवक जो हाथ में पानी का पात्र लेकर मेरे घोड़े के आगे चलता है, भी रखता हूँ। मुझे हर उपयोगी वस्तु दी गई है जैसे औसत आकार का एक तंबू, एक दरी, चार बहुत कठोर पर हलके बेतों से बना एक छोटा बिस्तर, एक तकिया, एक बिछौना, भोजन के समय प्रयुक्त गोलाकार चमड़े के मेज़पोश, रँगे हुए कपड़ों के कुछ अंगौछे/नैपकिन, खाना बनाने के सामान से भरे तीन छोटे झोले जो सभी एक बड़े झोले में रखे हुए थे, और यह झोला भी एक लंबे-चौड़े तथा सुदृढ़ दुहरे बोरे अथवा चमड़े के पट्टों से बने जाल में रखा है। इसी तरह इस दुहरे बोरे में स्वामी और सेवकों की खाद्य सामग्री, साम्राज्य कपड़े तथा वस्त्र रखे गए हैं। मैंने ध्यानपूर्वक पाँच या छह दिनों के उपभोग के लिए बढ़िया चावल; सौंफ (एक प्रकार का शाक/पौधा) की सुगंध वाली मीठी रोटी, नींबू तथा चीनी का भंडार साथ रखा है। साथ ही मैं दही को टाँगने और पानी निकालने के लिए प्रयुक्त छोटे, लोहे के अंकुश वाला झोला लेना भी नहीं भूला हूँ। इस देश में नींबू के शरबत और दही से अधिक ताज़गी भरी वस्तु कोई नहीं मानी जाती।

➲ बर्नियर द्वारा दी गई सूची में कौन सी वस्तुएँ हैं जो आज आप यात्रा में साथ ले जाएँगे?

भारत के विषय में विचारों का निर्माण व प्रसार

भारत के विषय में विचारों का सृजन और प्रसार कर यूरोपीय यात्रियों के वृत्तांतों ने उनकी पुस्तकों के प्रकाशन और प्रसार के माध्यम से यूरोपीय लोगों के लिए भारत की एक छवि के सृजन में सहायता की। बाद में, 1750 के बाद, जब शेख इतिसमुद्दीन तथा मिर्ज़ा अबु तालिब जैसे भारतीयों ने यूरोप की यात्रा की तो उन्हें यूरोपीय लोगों की भारतीय समाज की छवि का सामना करना पड़ा और उन्होंने तथ्यों की अपनी अलग व्याख्या के माध्यम से इसे प्रभावित करने का प्रयास किया।

बर्नियर के कार्य फ्रांस में 1670-71 में प्रकाशित हुए थे, और अगले पाँच वर्षों के भीतर ही अंग्रेज़ी, डच, जर्मन तथा इतालवी भाषाओं में इनका अनुवाद हो गया। 1670 और 1725 के बीच उसका वृत्तांत फ्रांसीसी में आठ बार पुनर्मुद्रित हो चुका था और 1684 तक यह तीन बार अंग्रेज़ी में पुनर्मुद्रित हुआ था। यह अरबी और फ़ारसी वृत्तांतों जिनका प्रसार हस्तलिपियों के रूप में होता था और जो 1800 से पहले सामान्यत: प्रकाशित नहीं होते थे, के पूरी तरह विपरीत था।

➲ चर्चा कीजिए...

भारतीय भाषाओं में बहुत प्रचुर यात्रा वृत्तांत साहित्य उपलब्ध है। आप अपने घर में बोली जाने वाली भाषा के यात्री-लेखकों के विषय में पता कीजिए। किसी एक ऐसे वृत्तांत को पढ़िए और यात्री द्वारा देखे गए क्षेत्रों, उसने जो देखा और उसके द्वारा वृत्तांत लिखे जाने के कारणों पर टिप्पणी लिखिए।

विशाल पहुँच वाली एक भाषा

संस्कृत के विषय में अल-बिरूनी यह लिखता है:

> यदि आप इस कठिनाई (संस्कृत भाषा सीखने की) से पार पाना चाहते हैं तो यह आसान नहीं होगा क्योंकि अरबी भाषा की तरह ही, शब्दों तथा विभक्तियों, दोनों में ही इस भाषा की पहुँच बहुत विस्तृत है। इसमें एक ही वस्तु के लिए कई शब्द, मूल तथा व्युत्पन्न दोनों, प्रयुक्त होते हैं और एक ही शब्द का प्रयोग कई वस्तुओं के लिए होता है, जिन्हें भली प्रकार समझने के लिए विभिन्न विशेषक संकेतपदों के माध्यम से एक दूसरे से अलग किया जाना आवश्यक है।

ईश्वर ही जानता है!

यात्री हमेशा उन्हें बताई गई बातों पर विश्वास नहीं करते थे। अल-बिरूनी को जब ऐसी लकड़ी की मूर्ति की कहानी के बारे में पता चला जो तथाकथित रूप से 216,432 वर्षों तक अस्तित्व में रही, तो वह पूछता है:

> फिर लकड़ी इतने लंबे समय तक अस्तित्व में कैसे रही होगी, विशेष रूप से ऐसे स्थान पर जहाँ हवा और मिट्टी काफ़ी आर्द्र होती है? ईश्वर ही जानता है!

4. एक अपरिचित संसार की समझ अल-बिरूनी तथा संस्कृतवादी परंपरा

4.1 समझने में बाधाएँ और उन पर विजय

जैसा कि हमने देखा है, यात्रियों ने उपमहाद्वीप में जो भी देखा, सामान्यत: उसकी तुलना उन्होंने उन प्रथाओं से की जिनसे वे परिचित थे। प्रत्येक यात्री ने जो देखा उसे समझने के लिए एक अलग विधि अपनाई। उदाहरण के लिए, अल-बिरूनी अपने लिए निर्धारित उद्देश्य में निहित समस्याओं से परिचित था। उसने कई "अवरोधों" की चर्चा की है जो उसके अनुसार समझ में बाधक थे। इनमें से पहला अवरोध भाषा थी। उसके अनुसार संस्कृत, अरबी और फ़ारसी से इतनी भिन्न थी कि विचारों और सिद्धांतों को एक भाषा से दूसरी में अनुवादित करना आसान नहीं था।

उसके द्वारा चिह्नित दूसरा अवरोध धार्मिक अवस्था और प्रथा में भिन्नता थी। उसके अनुसार तीसरा अवरोध अभिमान था। यहाँ रोचक बात यह है कि इन समस्याओं की जानकारी होने पर भी, अल-बिरूनी लगभग पूरी तरह से ब्राह्मणों द्वारा रचित कृतियों पर आश्रित रहा। उसने भारतीय समाज को समझने के लिए अकसर वेदों, पुराणों, भगवद्गीता, पतंजलि की कृतियों तथा मनुस्मृति आदि से अंश उद्धृत किए।

4.2 अल-बिरूनी का जाति व्यवस्था का विवरण

अल-बिरूनी ने अन्य समुदायों में प्रतिरूपों की खोज के माध्यम से जाति व्यवस्था को समझने और व्याख्या करने का प्रयास किया। उसने लिखा कि प्राचीन फ़ारस में चार सामाजिक वर्गों को मान्यता थी: घुड़सवार और शासक वर्ग, भिक्षु, आनुष्ठानिक पुरोहित तथा चिकित्सक, खगोल शास्त्री तथा अन्य वैज्ञानिक और अंत में कृषक तथा शिल्पकार। दूसरे शब्दों में, वह यह दिखाना चाहता था कि ये सामाजिक वर्ग केवल भारत तक ही सीमित नहीं थे। इसके साथ ही, उसने यह दर्शाया कि इस्लाम में सभी लोगों को समान माना जाता था और उनमें भिन्नताएँ केवल धार्मिकता के पालन में थीं।

जाति व्यवस्था के संबंध में ब्राह्मणवादी व्याख्या को मानने के बावजूद, अल-बिरूनी ने अपवित्रता की मान्यता को अस्वीकार किया। उसने लिखा कि हर वह वस्तु जो अपवित्र हो जाती है, अपनी पवित्रता की मूल स्थिति को पुन: प्राप्त करने का प्रयास करती है और सफल होती है। सूर्य हवा को स्वच्छ करता है और समुद्र में नमक पानी को गंदा होने से बचाता है। अल-बिरूनी ज़ोर देकर कहता है कि यदि ऐसा

नहीं होता तो पृथ्वी पर जीवन असंभव होता। उसके अनुसार जाति व्यवस्था में सन्निहित अपवित्रता की अवधारणा प्रकृति के नियमों के विरुद्ध थी।

स्रोत 5

वर्ण व्यवस्था

अल-बिरूनी वर्ण व्यवस्था का इस प्रकार उल्लेख करता है:

सबसे ऊँची जाति ब्राह्मणों की है जिनके विषय में हिंदुओं के ग्रंथ हमें बताते हैं कि वे ब्रह्मन् के सिर से उत्पन्न हुए थे और क्योंकि ब्रह्म, प्रकृति नामक शक्ति का ही दूसरा नाम है, और सिर.... शरीर का सबसे ऊपरी भाग है, इसलिए ब्राह्मण पूरी प्रजाति के सबसे चुनिंदा भाग हैं। इसी कारण से हिंदू उन्हें मानव जाति में सबसे उत्तम मानते हैं।

अगली जाति क्षत्रियों की है जिनका सृजन, ऐसा कहा जाता है, ब्रह्मन् के कंधों और हाथों से हुआ था। उनका दर्जा ब्राह्मणों से अधिक नीचे नहीं है।

उनके पश्चात वैश्य आते हैं जिनका उद्भव ब्रह्मन् की जंघाओं से हुआ था।

शूद्र, जिनका सृजन उनके चरणों से हुआ था।

अंतिम दो वर्गों के बीच अधिक अंतर नहीं है। लेकिन इन वर्गों के बीच भिन्नता होने पर भी ये एक साथ एक ही शहरों और गाँवों में रहते हैं, समान घरों और आवासों में मिल-जुल कर।

➲ अल-बिरूनी ने जो लिखा उसकी तुलना अध्याय 3 स्रोत 6 से कीजिए। क्या आप कुछ समानताएँ और भिन्नताएँ देखते हैं? क्या आप को लगता है कि अल-बिरूनी भारतीय समाज के विषय में अपनी जानकारी और समझ के लिए केवल संस्कृत के ग्रंथों पर आश्रित रहा?

जैसाकि हमने देखा है, जाति व्यवस्था के विषय में अल-बिरूनी का विवरण उसके नियामक संस्कृत ग्रंथों के अध्ययन से पूरी तरह से गहनता से प्रभावित था। इन ग्रंथों में ब्राह्मणों के दृष्टिकोण से जाति व्यवस्था को संचालित करने वाले नियमों का प्रतिपादन किया गया था। लेकिन वास्तविक जीवन में यह व्यवस्था इतनी भी कड़ी नहीं थी। उदाहरण के लिए, अंत्यज (शाब्दिक रूप में व्यवस्था से परे) नामक श्रेणियों से सामान्यतया यह अपेक्षा की जाती थी कि वे किसानों और ज़मींदारों के लिए सस्ता श्रम उपलब्ध करें (अध्याय 8 भी देखिए)। दूसरे शब्दों में, हालाँकि ये अक्सर सामाजिक प्रताड़ना का शिकार होते थे, फिर भी इन्हें आर्थिक तंत्र में शामिल किया जाता था।

➲ चर्चा कीजिए...

एक अन्य क्षेत्र से आए यात्री के लिए स्थानीय क्षेत्र की भाषा का ज्ञान कितना आवश्यक है?

5. इब्न बतूता तथा अनजाने को जानने की उत्कंठा

जब चौदहवीं शताब्दी में इब्न बतूता दिल्ली आया था उस समय तक पूरा उपमहाद्वीप एक ऐसे वैश्विक संचार तंत्र का हिस्सा बन चुका था जो पूर्व में चीन से लेकर पश्चिम में उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीका तथा यूरोप तक फैला हुआ था। जैसाकि हमने देखा है, इब्न बतूता ने स्वयं इन क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर यात्राएँ की, पवित्र पूजास्थलों को देखा, विद्वान लोगों तथा शासकों के साथ समय बिताया, कई बार क़ाज़ी के पद पर रहा, तथा शहरी केन्द्रों की विश्ववादी संस्कृति का उपभोग किया जहाँ अरबी, फ़ारसी, तुर्की तथा अन्य भाषाएँ बोलने वाले लोग विचारों, सूचनाओं तथा उपाख्यानों का आदान-प्रदान करते थे। इनमें अपनी धर्मनिष्ठता के लिए प्रसिद्ध लोगों की, ऐसे राजाओं जो निर्दयी तथा दयावान दोनों हो सकते थे की, तथा समान्य पुरुषों और महिलाओं तथा उनके जीवन की कहानियाँ सम्मिलित थीं; जो भी कुछ अपरिचित था उसे विशेष रूप से रेखांकित किया जाता था। ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाता था कि श्रोता अथवा पाठक सुदूर पर सुगम्य देशों के वृत्तांतों से पूरी तरह प्रभावित हो सकें।

5.1 नारियल तथा पान

इब्न बतूता की चित्रण की विधियों के कुछ बेहतरीन उदाहरण उन तरीकों में मिलते हैं जिनसे वह नारियल और पान, दो ऐसी वानस्पतिक उपज जिनसे उसके पाठक पूरी तरह से अपरिचित थे, का वर्णन करता है।

स्रोत 6

मानव सिर जैसे गिरिदार फल

नारियल का वर्णन इब्न बतूता इस प्रकार करता है:

> ये वृक्ष स्वरूप से सबसे अनोखे तथा प्रकृति में सबसे विस्मयकारी वृक्षों में से एक हैं। ये हू-बहू खजूर के वृक्ष जैसे दिखते हैं। इनमें कोई अंतर नहीं है सिवाय एक अपवाद के – एक से काष्ठफल प्राप्त होता है और दूसरे से खजूर। नारियल के वृक्ष का फल मानव सिर से मेल खाता है क्योंकि इसमें भी मानो दो आँखें तथा एक मुख है और अंदर का भाग हरा होने पर मस्तिष्क जैसा दिखता है और इससे जुड़ा रेशा बालों जैसा दिखाई देता है। वे इससे रस्सी बनाते हैं। लोहे की कीलों के प्रयोग के बजाय इनसे जहाज़ को सिलते हैं। वे इससे बर्तनों के लिए रस्सी भी बनाते हैं।

➲ किस तरह की तुलनाओं से इब्न बतूता अपने पाठकों को ये बताने की कोशिश कर रहे हैं कि नारियल देखने में कैसे होते हैं?

नारियल कैसे होते हैं - अपने पाठकों को यह समझाने के लिए इब्न बतूता किस तरह की तुलनाएँ प्रस्तुत करता है? क्या ये तुलनाएँ वाजिब हैं? वो किस तरह से ये दिखाता है कि नारियल असाधारण फल है? बतूता का वर्णन कितना सटीक है?

स्रोत 7

पान

इब्न बतूता द्वारा दिया गया पान का वर्णन पढ़िए:

> पान एक ऐसा वृक्ष है जिसे अंगूर-लता की तरह ही उगाया जाता है;... पान का कोई फल नहीं होता और इसे केवल इसकी पत्तियों के लिए ही उगाया जाता है... इसे प्रयोग करने की विधि यह है कि इसे खाने से पहले सुपारी ली जाती है; यह जायफल जैसी ही होती है पर इसे तब तक तोड़ा जाता है जब तक इसके छोटे-छोटे टुकड़े नहीं हो जाते; और इन्हें मुँह में रख कर चबाया जाता है। इसके बाद पान की पत्तियों के साथ इन्हें चबाया जाता है।

➲ आपके विचार में इसने इब्न बतूता का ध्यान क्यों खींचा? क्या आप इस विवरण में कुछ और जोड़ना चाहेंगे?

5.2 इब्न बतूता और भारतीय शहर

इब्न बतूता ने उपमहाद्वीप के शहरों को उन लोगों के लिए व्यापक अवसरों से भरपूर पाया जिनके पास आवश्यक इच्छा, साधन तथा कौशल था। ये शहर घनी आबादी वाले तथा समृद्ध थे सिवाय कभी-कभी युद्धों तथा अभियानों से होने वाले विध्वंस के। इब्न बतूता के वृत्तांत से ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश शहरों में भीड़-भाड़ वाली सड़कें तथा चमक-दमक वाले और रंगीन बाज़ार थे जो विविध प्रकार की वस्तुओं से भरे रहते थे। इब्न बतूता दिल्ली को एक बड़ा शहर, विशाल आबादी वाला तथा भारत में सबसे बड़ा बताता है। दौलताबाद (महाराष्ट्र में) भी कम नहीं था और आकार में दिल्ली को चुनौती देता था।

स्रोत 8

➲ स्थापत्य के कौन से अभिलक्षणों पर इब्न बतूता ने ध्यान दिया?

चित्र 5.8 तथा 5.9 से इस वर्णन की तुलना कीजिए।

देहली

दिल्ली, जिसे तत्कालीन ग्रंथों में अक्सर देहली नाम से उद्धृत किया गया था, का वर्णन इब्न बतूता इस प्रकार करता है:

दिल्ली बड़े क्षेत्र में फैला घनी जनसंख्या वाला शहर है... शहर के चारों ओर बनी प्राचीर अतुलनीय है, दीवार की चौड़ाई ग्यारह हाथ (एक हाथ लगभग 20 इंच के बराबर) है; और इसके भीतर रात्रि के पहरेदार तथा द्वारपालों के कक्ष हैं। प्राचीरों के अंदर खाद्यसामग्री, हथियार, बारूद, प्रक्षेपास्त्र तथा घेरेबंदी में काम आने वाली मशीनों के संग्रह के लिए भंडारगृह बने हुए थे... प्राचीर के भीतरी भाग में घुड़सवार तथा पैदल सैनिक शहर के एक से दूसरे छोर तक आते-जाते हैं। प्राचीर में खिड़कियाँ बनी हैं जो शहर की ओर खुलती हैं और इन्हीं खिड़कियों के माध्यम से प्रकाश अंदर आता है। प्राचीर का निचला भाग पत्थर से बना है जबकि ऊपरी भाग ईंटों से। इसमें एक दूसरे के पास-पास बनी कई मीनारें हैं। इस शहर के अट्ठाईस द्वार हैं जिन्हें दरवाज़ा कहा जाता है, और इनमें से बदायूँ दरवाज़ा सबसे विशाल है; मांडवी दरवाज़े के भीतर एक अनाज मंडी है; गुल दरवाज़े की बगल में एक फलों का बगीचा है... इस (देहली शहर) में एक बेहतरीन क़ब्रगाह है जिसमें बनी क़ब्रों के ऊपर गुंबद बनाई गई है और जिन क़ब्रों पर गुंबद नहीं है उनमें निश्चित रूप से मेहराब है। क़ब्रगाह में कंदाकार चमेली तथा जंगली गुलाब जैसे फूल उगाए जाते हैं; और फूल सभी मौसमों में खिले रहते हैं।

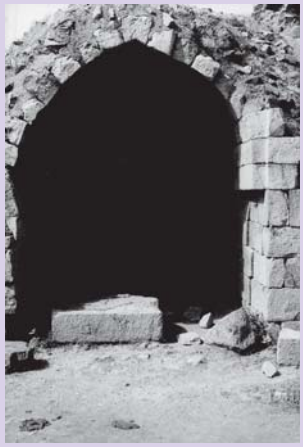

चित्र 5.8 (ऊपर)
तुग़लक़ाबाद, दिल्ली का एक मेहराब।

चित्र 5.9 (बाएँ)
बस्ती की किलेबंदी की दीवार का एक हिस्सा।

चित्र 5.10
इस तरह की इक़त बुनाई की अभिरचनाओं को उपमहाद्वीप तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के कई तटीय उत्पादन केंद्रों में अपनाया गया तथा उनमें सुधार किए गए।

➲ अपने वर्णन में इब्न बतूता ने इन गतिविधियों को उजागर क्यों किया?

बाज़ार मात्र आर्थिक विनिमय के स्थान ही नहीं थे बल्कि ये सामाजिक तथा आर्थिक गतिविधियों के केंद्र भी थे। अधिकांश बाज़ारों में एक मस्जिद तथा एक मंदिर होता था और उनमें से कम से कम कुछ में तो नर्तकों, संगीतकारों तथा गायकों के सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए स्थान भी चिह्नित थे।

हालाँकि इब्न बतूता की शहरों की समृद्धि का वर्णन करने में अधिक रुचि नहीं थी, इतिहासकारों ने उसके वृत्तांत का प्रयोग यह तर्क देने में किया है कि शहर अपनी संपत्ति का एक बड़ा भाग गाँवों से अधिशेष के अधिग्रहण से प्राप्त करते थे। इब्न बतूता ने पाया कि भारतीय कृषि के इतना अधिक उत्पादनकारी होने का कारण मिट्टी का उपजाऊपन था, जो किसानों के लिए वर्ष में दो फसलें उगाना संभव करता था। उसने यह भी ध्यान दिया कि उपमहाद्वीप व्यापार तथा वाणिज्य के अंतर एशियाई तंत्रों से भली-भाँति जुड़ा हुआ था। भारतीय माल की मध्य तथा दक्षिण-पूर्व एशिया, दोनों में बहुत माँग थी जिससे शिल्पकारों तथा व्यापारियों को भारी मुनाफ़ा होता था। भारतीय कपड़ों, विशेषरूप से सूती कपड़ा, महीन मलमल, रेशम, ज़री तथा साटन की अत्यधिक माँग थी। इब्न बतूता हमें बताता है कि महीन मलमल की कई किस्में इतनी अधिक मँहगी थीं कि उन्हें अमीर वर्ग के तथा बहुत धनाढ्य लोग ही पहन सकते थे।

स्रोत 9

बाज़ार में संगीत

यहाँ इब्न बतूता द्वारा दौलताबाद के विवरण से एक अंश दिया जा रहा है:

> दौलताबाद में पुरुष और महिला गायकों के लिए एक बाज़ार है जिसे *ताराबबाद* कहते हैं। यह सबसे विशाल और सुंदर बाज़ारों में से एक है। यहाँ बहुत सी दुकानें हैं और प्रत्येक दुकान में एक ऐसा दरवाज़ा है जो मालिक के आवास में खुलता है... दुकानों को कालीनों से सजाया गया है और दुकान के मध्य में झूला है जिस पर गायिका बैठती है। वह सभी प्रकार की भव्य वस्तुओं से सजी होती है और उसकी सेविकाएँ उसे झूला झुलाती हैं। बाज़ार के मध्य में एक विशाल गुंबद खड़ा है जिसमें कालीन बिछाए गए हैं और सजाया गया है इसमें प्रत्येक गुरुवार सुबह की इबादत के बाद संगीतकारों के प्रमुख, अपने सेवकों और दासों के साथ स्थान ग्रहण करते हैं। गायिकाएँ एक के बाद एक झुंडों में उनके समक्ष आकर सूर्यास्त का गीत गाती और नाचती हैं जिसके पश्चात वे चले जाते हैं। इस बाज़ार में इबादत के लिए मस्जिदें बनी हुई हैं... हिंदू शासकों में से एक... जब भी बाज़ार से गुजरता था, गुंबद में उतर कर आता था और गायिकाएँ उसके समक्ष गान प्रस्तुत करती थी। यहाँ तक कि कई मुस्लिम शासक भी ऐसा ही करते थे। आपके विचार में इब्न बतूता ने अपने विवरण में इन गतिविधियों को रेखांकित क्यों किया?

5.3. संचार की एक अनूठी प्रणाली

व्यापारियों को प्रोत्साहित करने के लिए राज्य विशेष उपाय करता था। लगभग सभी व्यापारिक मार्गों पर सराय तथा विश्राम गृह स्थापित किए गए थे। इब्न बतूता डाक प्रणाली की कार्यकुशलता देखकर चकित हुआ। इससे व्यापारियों के लिए न केवल लंबी दूरी तक सूचना भेजना और उधार प्रेषित करना संभव हुआ बल्कि अल्प सूचना पर माल भेजना भी। डाक प्रणाली इतनी कुशल थी कि जहाँ सिंध से दिल्ली की यात्रा में पचास दिन लगते थे वहीं गुप्तचरों की खबरें सुलतान तक इस डाक व्यवस्था के माध्यम से मात्र पाँच दिनों में पहुँच जाती थीं।

स्रोत 10

घोड़े पर और पैदल

डाक व्यवस्था का वर्णन इब्न बतूता इस प्रकार करता है:

भारत में दो प्रकार की डाक व्यवस्था है। अश्व डाक व्यवस्था जिसे *उलुक* कहा जाता है, हर चार मील की दूरी पर स्थापित राजकीय घोड़ों द्वारा चालित होती है। पैदल डाक व्यवस्था के प्रति मील तीन अवस्थान होते हैं; इसे *दावा* कहा जाता है, और यह एक मील का एक-तिहाई होता है... अब, हर तीन मील पर घनी आबादी वाला एक गाँव होता है जिसके बाहर तीन मंडप होते हैं जिनमें लोग कार्य आरंभ के लिए तैयार बैठे रहते हैं। उनमें से प्रत्येक के पास दो हाथ लंबी एक छड़ होती है जिसके ऊपर ताँबे की घंटियाँ लगी होती हैं। जब संदेशवाहक शहर से यात्रा आरंभ करता है तो एक हाथ में पत्र तथा दूसरे में घंटियों सहित छड़ लिए वह क्षमतानुसार तेज़ भागता है। जब मंडप में बैठे लोग घंटियों की आवाज़ सुनते हैं तो वे तैयार हो जाते हैं। जैसे ही संदेशवाहक उनके पास पहुँचता है, उनमें से एक उससे पत्र लेता है और वह छड़ हिलाते हुए पूरी ताकत से दौड़ता है, जब तक वह अगले दावा तक नहीं पहुँच जाता। पत्र के अपने गंतव्य स्थान तक पहुँचने तक यही प्रक्रिया चलती रहती है। यह पैदल डाक व्यवस्था अश्व डाक व्यवस्था से अधिक-तीव्र होती है; और इसका प्रयोग अकसर खुरासान के फलों के परिवहन के लिए होता है, जिन्हें भारत में बहुत पसंद किया जाता है।

➲ क्या आपको लगता है कि पैदल डाक व्यवस्था पूरे उपमहाद्वीप में संचालित की जाती होगी?

➲ चर्चा कीजिए...

इब्न बतूता लोगों के लिए ऐसी वस्तुओं और स्थितियों के वर्णन की समस्या को कैसे हल करता था, जिनसे वे अनभिज्ञ थे और जिन्हें उन्होंने अनुभव नहीं किया था?

एक विचित्र देश?

1440 के दशक में लिखा गया अब्दुर रज़्ज़ाक़ का यात्रा वृत्तांत संवेगों और अवबोधनों का एक रोचक मिश्रण है। एक ओर केरल में कालीकट (आधुनिक कोज़ीकोड), बंदरगाह पर उसने जो देखा उसे प्रशंसनीय नहीं माना, "यहाँ ऐसे लोग बसे हुए थे जिनकी कल्पना मैने कभी भी नहीं की थी।" इन लोगों को उसने एक 'विचित्र देश' बताया। कालांतर में अपनी भारत यात्रा के दौरान वह मंगलौर आया, और पश्चिमी घाट को पार किया। यहाँ उसने एक मंदिर देखा जिसने उसे प्रशंसा से भर दिया–

> मंगलौर से नौ मील के भीतर ही, मैंने एक ऐसा पूजा-स्थल देखा जो पूरे विश्व में अतुलनीय है। यह वर्गाकार था जिसकी प्रत्येक भुजा लगभग दस गज, ऊँचाई पाँच गज़ थी और जो चार द्वार-मंडपों के साथ, पूरी तरह से ढले हुए काँसे से ढँका हुआ था। प्रवेशद्वार के द्वार-मंडप में सोने की बनी एक मूर्ति थी जो मानव आकृति जैसी तथा आदमकद थी। इसकी दोनों आँखों में काले रंग के माणिक इतनी चतुराई से लगाए गए थे कि प्रतीत होता था मानो वह देख सकती हों। इस शिल्प और कारीगरी के क्या कहने!

6. बर्नियर तथा "अपविकसित" पूर्व

जहाँ इब्न बतूता ने हर उस चीज़ का वर्णन करने का निश्चय किया जिसने उसे अपने अनूठेपन के कारण प्रभावित और उत्सुक किया, वहीं बर्नियर एक भिन्न बुद्धिजीवी परंपरा से संबंधित था। उसने भारत में जो भी देखा, वह उसकी सामान्य रूप से यूरोप और विशेष रूप से फ्रांस में व्याप्त स्थितियों से तुलना तथा भिन्नता को उजागर करने के प्रति अधिक चिंतित था, विशेष रूप से वे स्थितियाँ जिन्हें उसने अवसादकारी पाया। उसका विचार नीति-निर्माताओं तथा बुद्धिजीवी वर्ग को प्रभावित करने का था ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे ऐसे निर्णय ले सकें जिन्हें वह ''सही'' मानता था।

बर्नियर के ग्रंथ *ट्रैवल्स इन द मुग़ल एम्पायर* अपने गहन प्रेक्षण, आलोचनात्मक अंतर्दृष्टि तथा गहन चिंतन के लिए उल्लेखनीय है। उसके वृत्तांत में की गई चर्चाओं में मुग़लों के इतिहास को एक प्रकार के वैश्विक ढाँचे में स्थापित करने का प्रयास किया गया है। वह निरंतर मुग़लकालीन भारत की तुलना तत्कालीन यूरोप से करता रहा, सामान्यतया यूरोप की श्रेष्ठता को रेखांकित करते हुए। उसका भारत का चित्रण द्वि-विपरीतता के नमूने पर आधारित है, जहाँ भारत को यूरोप के प्रतिलोम के रूप में दिखाया गया है, या फिर यूरोप का ''विपरीत'' जैसा कि कुछ इतिहासकार परिभाषित करते हैं। उसने जो भिन्नताएँ महसूस कीं उन्हें भी पदानुक्रम के अनुसार क्रमबद्ध किया, जिससे भारत, पश्चिमी दुनिया को निम्न कोटि का प्रतीत हो।

6.1 भूमि स्वामित्व का प्रश्न

बर्नियर के अनुसार भारत और यूरोप के बीच मूल भिन्नताओं में से एक भारत में निजी भूस्वामित्व का अभाव था। उसका निजी स्वामित्व के गुणों में दृढ़ विश्वास था और उसने भूमि पर राजकीय स्वामित्व को राज्य तथा उसके निवासियों, दोनों के लिए हानिकारक माना। उसे यह लगा कि मुग़ल साम्राज्य में सम्राट सारी भूमि का स्वामी था जो इसे अपने अमीरों के बीच बाँटता था, और इसके अर्थव्यवस्था और समाज के लिए अनर्थकारी परिणाम होते थे। इस प्रकार का अवबोधन बर्नियर तक ही सीमित नहीं था बल्कि सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी के अधिकांश यात्रियों के वृत्तांतों में मिलता है।

राजकीय भूस्वामित्व के कारण, बर्नियर तर्क देता है, भूधारक अपने बच्चों को भूमि नहीं दे सकते थे। इसलिए वे उत्पादन के स्तर को बनाए रखने और उसमें बढ़ोत्तरी के लिए दूरगामी निवेश के प्रति उदासीन थे।

व्यापक गरीबी

पेलसर्ट नामक एक डच यात्री ने सत्रहवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में उपमहाद्वीप की यात्रा की थी। बर्नियर की ही तरह वह भी लोगों में व्यापक गरीबी देखकर अचंभित था। लोग "इतनी अधिक तथा दुखद गरीबी" में रहते हैं कि "इनके जीवन को मात्र नितांत अभाव के घर तथा कठोर कष्ट दुर्भाग्य के आवास के रूप में चित्रित अथवा ठीक प्रकार से वर्णित किया जा सकता है।" राज्य को उत्तरदायी ठहराते हुए, वह कहता है: "कृषकों को इतना अधिक निचोड़ा जाता है कि पेट भरने के लिए उनके पास सूखी रोटी भी मुश्किल से बचती है।"

इस प्रकार, निजी भूस्वामित्व के अभाव ने ''बेहतर'' भूधारकों के वर्ग के उदय (जैसा कि पश्चिमी यूरोप में) को रोका जो भूमि के रखरखाव व बेहतरी के प्रति सजग रहते। इसी के चलते कृषि का समान रूप से विनाश, किसानों का असीम उत्पीड़न तथा समाज के सभी वर्गों के जीवन स्तर में अनवरत पतन की स्थिति उत्पन्न हुई है, सिवाय शासक वर्ग के।

स्रोत 11

ग़रीब किसान

यहाँ बर्नियर द्वारा ग्रामीण अंचल में कृषकों के विषय में दिए गए विवरण से एक उद्धरण दिया जा रहा है:

> हिंदुस्तान के साम्राज्य के विशाल ग्रामीण अंचलों में से कई केवल रेतीली भूमियाँ या बंजर पर्वत ही हैं। यहाँ की खेती अच्छी नहीं है और इन इलाकों की आबादी भी कम है। यहाँ तक कि कृषियोग्य भूमि का एक बड़ा हिस्सा भी श्रमिकों के अभाव में कृषि विहीन रह जाता है; इनमें से कई श्रमिक गवर्नरों द्वारा किए गए बुरे व्यवहार के फलस्वरूप मर जाते हैं। गरीब लोग जब अपने लोभी स्वामियों की माँगों को पूरा करने में असमर्थ हो जाते हैं तो उन्हें न केवल जीवन-निर्वहन के साधनों से वंचित कर दिया जाता है, बल्कि उन्हें अपने बच्चों से भी हाथ धोना पड़ता है, जिन्हें दास बना कर ले जाया जाता है। इस प्रकार ऐसा होता है कि इस अत्यंत निरंकुशता से हताश हो किसान गाँव छोड़कर चले जाते हैं।

इस उद्धरण में बर्नियर राज्य और समाज से संबंधित यूरोप में प्रचलित तत्कालीन विवादों में भाग ले रहा था, और उसका प्रयास था कि मुग़ल कालीन भारत से संबंधित उसका विवरण यूरोप में उन लोगों के लिए एक चेतावनी का कार्य करेगा जो निजी स्वामित्व की "अच्छाइयों" को स्वीकार नहीं करते थे।

➲ बर्नियर के अनुसार उपमहाद्वीप में किसानों को किन-किन समस्याओं से जूझना पड़ता था? क्या आपको लगता है कि उसका विवरण उसके पक्ष को सुदृढ़ करने में सहायक होता?

इसी के विस्तार के रूप में बर्नियर भारतीय समाज को दरिद्र लोगों के समरूप जनसमूह से बना वर्णित करता है, जो एक बहुत अमीर तथा शक्तिशाली शासक वर्ग, जो अल्पसंख्यक होते हैं, के द्वारा अधीन बनाया जाता है। गरीबों में सबसे गरीब तथा अमीरों में सबसे अमीर व्यक्ति के बीच नाममात्र को भी कोई सामाजिक समूह या वर्ग नहीं था। बर्नियर बहुत विश्वास से कहता है, "भारत में मध्य की स्थिति के लोग नहीं है।"

चित्र 5.11
उन्नसवीं शताब्दी के ऐसे चित्रों ने अपरिवर्तनशील ग्रामीण समाज की धारणा को दृढ़ता प्रदान की।

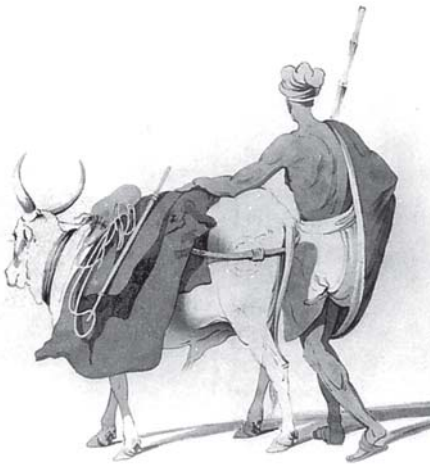

स्रोत 12

यूरोप के लिए एक चेतावनी

बर्नियर चेतावनी देता है कि यदि यूरोपीय शासकों ने मुग़ल ढाँचे का अनुसरण किया तो :

> उनके राज्य इस प्रकार अच्छी तरह से जुते और बसे हुए, इतनी अच्छी तरह से निर्मित, इतने समृद्ध, इतने सुशिष्ट तथा फलते-फूलते नहीं रह जाएँगे जैसा कि हम उन्हें देखते हैं। दूसरी दृष्टि से हमारे शासक अमीर और शक्तिशाली हैं; और हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि उनकी और बेहतर और राजसी ढंग से सेवा हो। वे जल्द ही रेगिस्तान तथा निर्जन स्थानों के, भिखारियों तथा क्रूर लोगों के राजा बनकर रह जाएँगे जैसे कि वे जिनके विषय में मैंने वर्णन किया है। (मुग़ल शासक)
>
> ... हम उन महान शहरों और नगरों को खराब हवा के कारण न रहने योग्य अवस्था में पाएँगे, तथा विनाश की स्थिति में, जिनके जीर्णोद्धार की किसी को चिंता नहीं है, व्यक्त टीले और झाड़ियों अथवा घातक दलदल से भरे हुए खेत, जैसा कि पहले ही बताया गया है।

➲ बर्नियर सर्वनाश के दृश्य का चित्रण किस प्रकार करता है? जब आप अध्याय 8 तथा 9 पढ़ लें, तब आप इस विवरण पर फिर आइएगा और फिर इसका आकलन कीजिएगा।

तो बर्नियर ने मुग़ल साम्राज्य को इस रूप में देखा–इसका राजा "भिखारियों और क्रूर लोगों" का राजा था; इसके शहर और नगर विनष्ट तथा "खराब हवा" से दूषित थे; और इसके खेत "झाड़ीदार" तथा "घातक दलदल" से भरे हुए थे और इसका मात्र एक ही कारण था–राजकीय भूस्वामित्व।

आश्चर्य की बात यह है कि एक भी सरकारी मुग़ल दस्तावेज़ यह इंगित नहीं करता कि राज्य ही भूमि का एकमात्र स्वामी था। उदाहरण के लिए, सोलहवीं शताब्दी में अकबर के काल का सरकारी इतिहासकार अबुल फ़ज़्ल भूमि राजस्व को 'राजत्व का पारिश्रमिक' बताता है जो राजा द्वारा अपनी प्रजा को सुरक्षा प्रदान करने के बदले की गई माँग प्रतीत होती है न कि अपने स्वामित्व वाली भूमि पर लगान। ऐसा संभव है कि यूरोपीय यात्री ऐसी माँगों को लगान मानते थे क्योंकि भूमि राजस्व की माँग अकसर बहुत अधिक होती थी। लेकिन असल में यह न तो लगान था, न ही भूमिकर, बल्कि उपज पर लगने वाला कर था (अधिक जानकारी के लिए अध्याय 8 देखिए)।

बर्नियर के विवरणों ने अठारहवीं शताब्दी से पश्चिमी विचारकों को प्रभावित किया। उदाहरण के लिए, फ्रांसीसी दार्शनिक मॉन्टेस्क्यू ने उसके वृत्तांत का प्रयोग प्राच्य निरंकुशवाद के सिद्धांत को विकसित करने में किया, जिसके अनुसार एशिया (प्राच्य अथवा पूर्व) में शासक अपनी प्रजा के ऊपर निर्बाध प्रभुत्व का उपभोग करते थे, जिसे दासता और गरीबी की स्थितियों में रखा जाता था। इस तर्क का आधार यह था कि सारी भूमि पर राजा का स्वामित्व होता था तथा निजी संपत्ति अस्तित्व में नहीं थी। इस दृष्टिकोण के अनुसार राजा और उसके अमीर वर्ग को छोड़ प्रत्येक व्यक्ति मुश्किल से गुजर-बसर कर पाता था।

उन्नीसवीं शताब्दी में कार्ल मार्क्स ने इस विचार को एशियाई उत्पादन शैली के सिद्धांत के रूप में और आगे बढ़ाया। उसने यह तर्क दिया कि भारत (तथा अन्य एशियाई देशों) में उपनिवेशवाद से पहले अधिशेष का अधिग्रहण राज्य द्वारा होता था। इससे एक ऐसे समाज का उद्भव हुआ जो बड़ी संख्या में स्वायत्त तथा (आंतरिक रूप से) समतावादी ग्रामीण समुदायों से बना था। इन ग्रामीण समुदायों पर राजकीय दरबार का नियंत्रण होता था और जब तक अधिशेष की आपूर्ति निर्विघ्न रूप से जारी रहती थी, इनकी स्वायत्तता का सम्मान किया जाता था। यह एक निष्क्रिय प्रणाली मानी जाती थी।

परंतु, जैसा कि हम देखेंगे (अध्याय 8) ग्रामीण समाज का यह चित्रण सच्चाई से बहुत दूर था। बल्कि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में ग्रामीण समाज में चारित्रिक रूप से बड़े पैमाने पर सामाजिक और आर्थिक विभेद था। एक ओर बड़े ज़मींदार थे जो भूमि पर उच्चाधिकारों का उपभोग करते थे और दूसरी ओर "अस्पृश्य" भूमिविहीन श्रमिक (बलाहार)। इन दोनों

के बीच में बड़ा किसान था जो किराए के श्रम का प्रयोग करता था और माल उत्पादन में संलग्न रहता था; साथ ही अपेक्षाकृत छोटे किसान भी थे जो मुश्किल से ही निर्वहन लायक उत्पादन कर पाते थे।

6.3 एक अधिक जटिल सामाजिक सच्चाई

हालाँकि मुग़ल राज्य को निरंकुश रूप देने की तन्मयता स्पष्ट है, लेकिन उसके विवरण कभी-कभी एक अधिक जटिल सामाजिक सच्चाई की ओर इशारा करते हैं। उदाहरण के लिए वह कहता है कि शिल्पकारों के पास अपने उत्पादों को बेहतर बनाने का कोई प्रोत्साहन नहीं था क्योंकि मुनाफ़े का अधिग्रहण राज्य द्वारा कर लिया जाता था। इसलिए उत्पादन हर जगह पतनोन्मुख था। साथ ही वह यह भी मानता है कि पूरे विश्व से बड़ी मात्रा में बहुमूल्य धातुएँ भारत में आती थीं क्योंकि उत्पादों का सोने और चाँदी के बदले निर्यात होता था। वह एक समृद्ध व्यापारिक समुदाय जो लंबी दूरी के विनिमय से संलग्न था, के अस्तित्व को भी रेखांकित करता है।

स्रोत 13

एक भिन्न सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य

बर्नियर के वृत्तांत से लिए गए इस उद्धरण को पढ़िए जिसमें कृषि तथा शिल्प-उत्पादन दोनों का विवरण दिया गया है:

> यह ध्यान देना आवश्यक है कि इस देश के विस्तृत भू-भाग का अधिकांश भाग अत्यधिक उपजाऊ है; उदाहरण के लिए, बंगाल का विशाल राज्य जो मिस्र से न केवल चावल, मकई तथा जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में, बल्कि उन अनगिनत वाणिज्यिक वस्तुओं के संदर्भ में, जो मिस्र में भी नहीं उगाई जातीं, जैसे रेशम, कपास तथा नील कहीं आगे हैं। भारत के कई ऐसे भाग भी हैं जहाँ जनसंख्या पर्याप्त है और भूमि पर खेती अच्छी होती है; और जहाँ एक शिल्पकार जो हालाँकि मूल रूप से आलसी होता है, आवश्यकता से या किसी अन्य कारण से अपने आप को गलीचों, ज़री, कसीदाकारी कढ़ाई, सोने और चाँदी के वस्त्रों, तथा विभिन्न प्रकार के रेशम तथा सूती वस्त्रों, जो देश में भी प्रयोग होते हैं और विदेश में निर्यात किए जाते हैं, के निर्माण का कार्य करने के लिए बाध्य हो जाता है।
>
> यह भी नहीं भूलना चाहिए कि पूरे विश्व के सभी भागों में संचलन के पश्चात सोना और चाँदी भारत में आकर कुछ हद तक खो जाता है।

➲ इस उद्धरण में दिया गया विवरण स्रोत 11 में दिए गए विवरण से किन मायनों में भिन्न है?

चित्र 5.12
सोने का चम्मच जिसमें पन्ने एवं माणिक जड़े हुए हैं। मुग़लकालीन शिल्पकारों की ख़ास दक्षता का यह अच्छा उदाहरण है।

स्रोत 14

राजकीय कारखाने

संभवत: बर्नियर एकमात्र ऐसा इतिहासकार है जो राजकीय कारखानों की कार्यप्रणाली का विस्तृत विवरण प्रदान करता है:

> कई स्थानों पर बड़े कक्ष दिखाई देते हैं जिन्हें कारखाना अथवा शिल्पकारों की कार्यशाला कहते हैं। एक कक्ष में कसीदाकार एक मास्टर के निरीक्षण में व्यस्तता से कार्यरत रहते हैं। एक अन्य में आप सुनारों को देखते हैं; तीसरे में, चित्रकार; चौथे में, प्रलाक्षा रस का रोगन लगाने वाले; पाँचवें में बढ़ई, खरादी, दर्जी तथा जूते बनाने वाले; छठे में रेशम, जरी तथा महीन मलमल का काम करने वाले...
>
> शिल्पकार अपने कारखानों में हर रोज़ सुबह आते हैं जहाँ वे पूरे दिन कार्यरत रहते हैं; और शाम को अपने-अपने घर चले जाते हैं। इसी निश्चेष्ट नियमित ढंग से उनका समय बीतता जाता है; कोई भी जीवन की उन स्थितियों में सुधार करने का इच्छुक नहीं है जिनमें वह पैदा हुआ था।

➲ बर्नियर इस विचार को किस प्रकार प्रेषित करता है कि हालाँकि हर तरफ़ बहुत सक्रियता है पर उन्नति बहुत कम?

सत्रहवीं शताब्दी में जनसंख्या का लगभग पंद्रह प्रतिशत भाग नगरों में रहता था। यह औसतन उसी समय पश्चिमी यूरोप की नगरीय जनसंख्या के अनुपात से अधिक था। इतने पर भी, बर्नियर मुग़लकालीन शहरों को "शिविर नगर" कहता है, जिससे उसका आशय उन नगरों से था जो अपने अस्तित्व और बने रहने के लिए राजकीय शिविर पर निर्भर थे। उसका विश्वास था कि ये राजकीय दरबार के आगमन के साथ अस्तित्व में आते थे और इसके कहीं और चले जाने के बाद तेज़ी से पतनोन्मुख हो जाते थे। उसने यह भी सुझाया कि इनकी सामाजिक और आर्थिक नीव व्यवहार्य नहीं होती थी और ये राजकीय प्रश्रय पर आश्रित रहते थे।

भूस्वामित्व के प्रश्न की तरह ही बर्नियर एक अतिसरलीकृत चित्रण प्रस्तुत कर रहा था। वास्तव में सभी प्रकार के नगर अस्तित्व में थे: उत्पादन केंद्र, व्यापारिक नगर, बंदरगाह नगर, धार्मिक केंद्र, तीर्थ स्थान आदि। इनका अस्तित्व समृद्ध व्यापारिक समुदायों तथा व्यवसायिक वर्गों के अस्तित्व का सूचक है।

व्यापारी अक्सर मज़बूत सामुदायिक अथवा बंधुत्व के संबंधों से जुड़े होते थे और अपनी जाति तथा व्यावसायिक संस्थाओं के माध्यम से संगठित रहते थे। पश्चिमी भारत में ऐसे समूहों को महाजन कहा जाता था और उनके मुखिया को सेठ। अहमदाबाद जैसे शहरी केंद्रों में सभी महाजनों का सामूहिक प्रतिनिधित्व व्यापारिक समुदाय के मुखिया द्वारा होता था जिसे नगर सेठ कहा जाता था।

अन्य शहरी समूहों में व्यावसायिक वर्ग जैसे चिकित्सक (हकीम अथवा वैद्य), अध्यापक (पंडित या मुल्ला), अधिवक्ता (वकील), चित्रकार, वास्तुविद, संगीतकार, सुलेखक आदि सम्मिलित थे। जहाँ कई राजकीय प्रश्रय पर आश्रित थे, कई अन्य संरक्षकों या भीड़भाड़ वाले बाज़ार में आम लोगों की सेवा द्वारा जीवनयापन करते थे।

➲ चर्चा कीजिए...

आपके विचार में बर्नियर जैसे विद्वानों ने भारत की यूरोप से तुलना क्यों की?

7. महिलाएँ : दासियाँ, सती तथा श्रमिक

जिन यात्रियों ने अपने लिखित वृत्तांत छोड़े वे सामान्यतया पुरुष थे जिन्हें उपमहाद्वीप में महिलाओं की स्थिति का विषय रुचिकर और कभी-कभी जिज्ञासापूर्ण लगता था। कभी-कभी वे सामाजिक पक्षपात को "सामान्य" परिस्थिति मान लेते थे। उदाहरण के लिए, बाज़ारों में दास किसी भी अन्य वस्तु की तरह खुले आम बेचे जाते थे और नियमित रूप से भेंटस्वरूप दिए जाते थे। जब इब्न बतूता सिंध पहुँचा तो उसने सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक के लिए भेंटस्वरूप "घोड़े, ऊँट तथा दास" खरीदे। जब वह मुल्तान पहुँचा तो उसने गवर्नर को "किशमिश के बादाम के साथ एक दास और घोड़ा" भेंट के रूप में दिए। इब्न बतूता बताता है कि मुहम्मद बिन तुग़लक नसीरुद्दीन नामक धर्मोपदेशक के प्रवचन से इतना प्रसन्न हुआ कि उसे "एक लाख टके (मुद्रा) तथा दो सौ दास" दे दिए।

इब्न बतूता के विवरण से प्रतीत होता है कि दासों में काफ़ी विभेद था। सुल्तान की सेवा में कार्यरत कुछ दासियाँ संगीत और गायन में निपुण थीं, और इब्न बतूता सुल्तान की बहन की शादी के अवसर पर उनके प्रदर्शन से खूब आनंदित हुआ। सुल्तान अपने अमीरों पर नज़र रखने के लिए दासियों को भी नियुक्त करता था।

दासों को सामान्यत: घरेलू श्रम के लिए ही इस्तेमाल किया जाता था, और इब्न बतूता ने इनकी सेवाओं को, पालकी या डोले में पुरुषों और महिलाओं को ले जाने में विशेष रूप से अपरिहार्य पाया। दासों की कीमत, विशेष रूप से उन दासियों की, जिनकी आवश्यकता घरेलू श्रम के लिए थी, बहुत कम होती थी और अधिकांश परिवार जो उन्हें रख पाने में समर्थ थे, कम से कम एक या दो को तो रखते ही थे।

सभी समकालीन यूरोपीय यात्रियों तथा लेखकों के लिए, महिलाओं से किया जाने वाला बर्ताव अकसर पश्चिमी तथा पूर्वी समाजों के बीच भिन्नता का एक महत्त्वपूर्ण संकेतक माना जाता था। इसलिए यह आश्चर्यजनक बात नहीं है कि बर्नियर ने सती प्रथा को विस्तृत विवरण के लिए चुना। उसने लिखा कि हालाँकि कुछ महिलाएँ प्रसन्नता से मृत्यु को गले लगा लेती थीं, अन्य को मरने के लिए बाध्य किया जाता था।

लेकिन महिलाओं का जीवन सती प्रथा के अलावा कई और चीज़ों के चारों ओर घूमता था। उनका श्रम कृषि तथा कृषि के

स्रोत 15

दासियाँ

इब्न बतूता हमें बताता है:

> यह सम्राट की आदत है... हर बड़े या छोटे अमीर के साथ अपने दासों में से एक को रखने की जो उसके अमीरों की मुखबिरी करता है। वह महिला सफाई कर्मचारियों को भी नियुक्त करता है जो बिना बताए घर में दाखिल हो जाती हैं: और दासियों के पास जो भी जानकारी होती है, वे उन्हें दे देती हैं।
>
> अधिकांश दासियों को हमलों और अभियानों के दौरान बलपूर्वक प्राप्त किया जाता था।

स्रोत 16

सती बालिका

यह संभवत: बर्नियर के वृत्तांत के सबसे मार्मिक विवरणों में से एक है:

> लाहौर में मैंने एक बहुत ही सुंदर अल्पवयस्क विधवा जिसकी आयु मेरे विचार में बारह वर्ष से अधिक नहीं थी, की बलि होते हुए देखी। उस भयानक नर्क की ओर जाते हुए वह असहाय छोटी बच्ची जीवित से अधिक मृत प्रतीत हो रही थी; उसके मस्तिष्क की व्यथा का वर्णन नहीं किया जा सकता; वह काँपते हुए बुरी तरह से रो रही थी; लेकिन तीन या चार ब्राह्मण, एक बूढ़ी औरत, जिसने उसे अपनी आस्तीन के नीचे दबाया हुआ था, की सहायता से उस अनिच्छुक पीड़िता को जबरन घातक स्थल की ओर ले गए, उसे लकड़ियों पर बैठाया, उसके हाथ और पैर बाँध दिए ताकि वह भाग न जाए और इस स्थिति में उस मासूम प्राणी को ज़िन्दा जला दिया गया। मैं अपनी भावनाओं को दबाने में और उनके कोलाहलपूर्ण तथा व्यर्थ के क्रोध को बाहर आने से रोकने में असमर्थ था...

अलावा होने वाले उत्पादन, दोनों में महत्त्वपूर्ण था। व्यापारिक परिवारों से आने वाली महिलाएँ व्यापारिक गतिविधियों में हिस्सा लेती थीं, यहाँ तक कि कभी-कभी वाणिज्यिक विवादों को अदालत के सामने भी ले जाती थीं। अतः यह असंभाव्य लगता है कि महिलाओं को उनके घरों के खास स्थानों तक परिसीमित कर रखा जाता था।

➲ चर्चा कीजिए

आपके विचार में सामान्य महिला श्रमिकों के जीवन ने इब्न बतूता और बर्नियर जैसे यात्रियों का ध्यान अपनी ओर क्यों नहीं खींचा?

आपने देखा होगा कि यात्री वृत्तांत इन शताब्दियों में पुरुषों और महिलाओं के जीवन की एक रोचक झाँकी प्रस्तुत करते हैं। इन वृत्तांतों से हम बहुत सी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, पर इनमें सामाजिक जीवन के कई आयाम अनछुए रह जाते हैं, या फिर एक दृष्टिकोण विशेष से देखे जाते हैं जिन्हें इन वृत्तांतों को पढ़ते हुए ध्यान में रखना आवश्यक है।

साथ ही उपमहाद्वीप के पुरुषों (और संभवतः महिलाओं) के अनुभव और प्रेक्षण अपेक्षाकृत अज्ञात हैं जिन्होंने समुद्रों और पर्वतों को पार किया और उपमहाद्वीप से परे क्षेत्रों में साहसिक यात्राएँ कीं। उन्होंने क्या देखा और सुना? सुदूर क्षेत्रों के लोगों के साथ उनके संबंध किस प्रकार ढले। वे किन भाषाओं का प्रयोग करते थे? उम्मीद है कि इन पर और अन्य प्रश्नों पर आने वाले वर्षों में इतिहासकार योजनापूर्ण तरीके से ध्यान केंद्रित करेंगे।

चित्र 5.13
मथुरा से मूर्ति का एक नमूना जिसमें यात्री दर्शाए गए हैं।

➲ यहाँ यातायात के कौन-कौन से साधन अपनाए गए हैं?

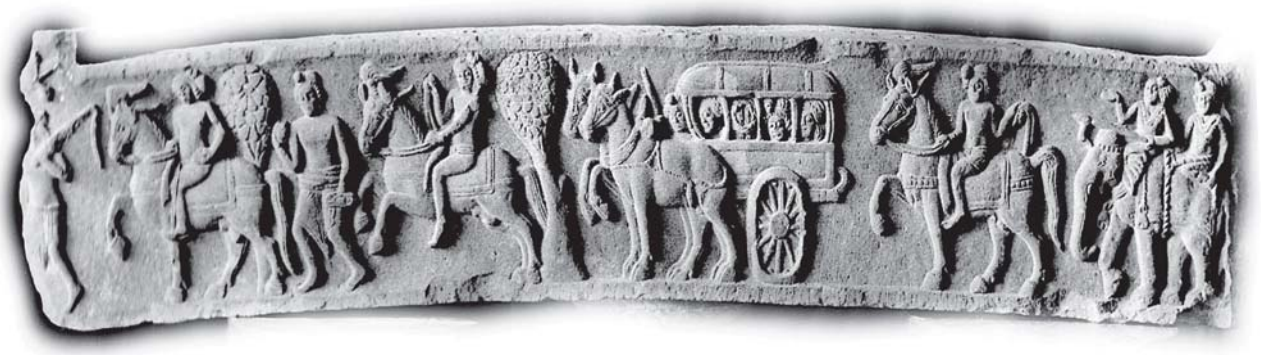

काल-रेखा
कुछ यात्री जिन्होंने वृत्तांत छोड़े

दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दियाँ	
973–1048	मोहम्मद इब्न अहमद अबू रेहान अल बिरूनी (उज़बेकिस्तान से)
तेरहवीं शताब्दी	
1254–1323	मार्को पोलो (इटली से)
चौदहवीं शताब्दी	
1304–77	इब्न बतूता (मोरक्को से)
पंद्रहवीं शताब्दी	
1413–82	अब्द अल-रज़्ज़ाक कमाल अल-दिन इब्न इस्हाक़ अल-समरक़ंदी (समरक़ंद से)
1466–72 (भारत में बिताए वर्ष)	अफानासी निकितिच निकितिन (पंद्रहवी शताब्दी, रूस से)
सोलहवीं शताब्दी	
1518 (भारत की यात्रा)	दूरते बारबोसा, मृत्यु 1521 (पुर्तगाल से)
1562 (मृत्यु का वर्ष)	सयदी अली रेइस (तुर्की से)
1536–1600	अंतोनियो मानसेरेते (स्पेन से)
सत्रहवीं शताब्दी	
1626–31 (भारत में बिताए वर्ष)	महमूद वली बलख़ी (बल्ख़ से)
1600–67	पीटर मुंडी (इंग्लैंड से)
1605–89	ज्यौं बैप्टिस्ट तैवर्नियर (फ्रांस से)
1620–88	फ्रांस्वा बर्नीयर (फ्रांस से)

नोट : जहाँ कोई अन्य संकेत नहीं है तिथियाँ यात्री के जीवन काल को बता रही हैं।

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. *किताब-उल-हिन्द* पर एक लेख लिखिए।
2. इब्न बतूता और बर्नियर ने जिन दृष्टिकोणों से भारत में अपनी यात्राओं के वृत्तांत लिखे थे, उनकी तुलना कीजिए तथा अंतर बताइए।
3. बर्नियर के वृत्तांत से उभरने वाले शहरी केंद्रों के चित्र पर चर्चा कीजिए।
4. इब्न बतूता द्वारा दास प्रथा के संबंध में दिए गए साक्ष्यों का विवेचन कीजिए।
5. सती प्रथा के कौन से तत्वों ने बर्नियर का ध्यान अपनी ओर खींचा?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250-300 शब्दों में)

6. जाति व्यवस्था के संबंध में अल-बिरूनी की व्याख्या पर चर्चा कीजिए।
7. क्या आपको लगता है कि समकालीन शहरी केंद्रों में जीवन-शैली की सही जानकारी प्राप्त करने में इब्न बतूता का वृत्तांत सहायक है? अपने उत्तर के कारण दीजिए।
8. चर्चा कीजिए कि बर्नियर का वृत्तांत किस सीमा तक इतिहासकारों को समकालीन ग्रामीण समाज को पुनर्निर्मित करने में सक्षम करता है?
9. यह बर्नियर से लिया गया एक उद्धरण है:

> ऐसे लोगों द्वारा तैयार सुंदर शिल्पकारीगरी के बहुत उदाहरण हैं, जिनके पास औज़ारों का अभाव है, और जिनके विषय में यह भी नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने किसी निपुण कारीगर से कार्य सीखा है। कभी-कभी वे यूरोप में तैयार वस्तुओं की इतनी निपुणता से नकल करते हैं कि असली और नकली के बीच अंतर कर पाना मुश्किल हो जाता है। अन्य वस्तुओं में, भारतीय लोग बेहतरीन बंदूकें, और ऐसे सुंदर स्वर्णाभूषण बनाते हैं कि संदेह होता है कि कोई यूरोपीय स्वर्णकार कारीगरी के इन उत्कृष्ट नमूनों से बेहतर बना सकता है। मैं अकसर इनके चित्रों की सुंदरता, मृदुलता तथा सूक्ष्मता से आकर्षित हुआ हूँ।

उसके द्वारा अलिखित शिल्प कार्यों को सूचीबद्ध कीजिए तथा इसकी तुलना अध्याय में वर्णित शिल्प गतिविधियों से कीजिए।

मानचित्र कार्य

10. विश्व के सीमारेखा मानचित्र पर उन देशों को चिह्नित कीजिए जिनकी यात्रा इब्न बतूता ने की थी। कौन-कौन से समुद्रों को उसने पार किया होगा?

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. अपने ऐसे किसी बड़े संबंधी (माता/पिता/दादा-दादी तथा नाना-नानी/चाचा/चाची) का साक्षात्कार कीजिए जिन्होंने आपके नगर अथवा गाँव के बाहर यात्राएँ की हों। पता कीजिए (क) वे कहाँ गए थे (ख) उन्होंने यात्रा कैसे की (ग) उन्हें कितना समय लगा (घ) उन्होंने यात्रा क्यों की (ङ) क्या उन्होंने किसी कठिनाई का सामना किया। ऐसी समानताओं और भिन्नताओं को सूचीबद्ध कीजिए जो उन्होंने अपने रहने के स्थान और यात्रा किए गए स्थानों के बीच देखीं, विशेष रूप से भाषा, पहनावा, खानपान, रीति-रिवाज, इमारतों, सड़कों तथा पुरुषों और महिलाओं की जीवन-शैली के संदर्भ में। अपने द्वारा हासिल जानकारियों पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

12. इस अध्याय में उल्लिखित यात्रियों में से एक के जीवन तथा कृतियों के विषय में और अधिक जानकारी हासिल कीजिए। उनकी यात्राओं पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए विशेष रूप से इस बात पर जोर देते हुए कि उन्होंने समाज का कैसा विवरण किया है तथा इनकी तुलना अध्याय में दिए गए उद्धरणों से कीजिए।

चित्र 5.14
इस चित्र में आराम करते हुए यात्रियों को दिखाया गया है

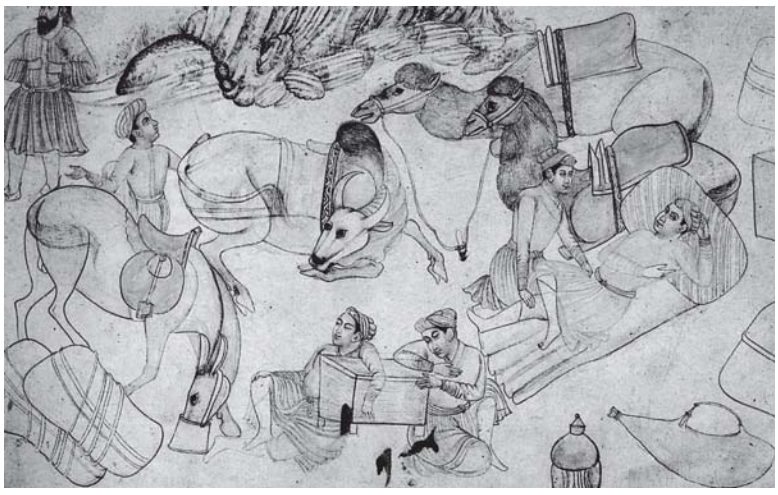

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए:

मुज़फ्फर आलम एंड संजय सुब्रमण्यम 2006, *इंडो-पर्सियन ट्रैवेल्स इन दि एज ऑफ डिस्कवरीज़,* 1400-1800 कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

कैथरीन अशर एंड सिंथिया टालबोट 2006, *इंडिया बिफोर यूरोप,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

फ्रांस्वा बर्नियर, *ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर* 1656-1668 ई., लो प्राइस पब्लिकेशंस, न्यू दिल्ली

एच.ए.आर. गिब्ब (संपा.), 1993 *दि ट्रैवेल्स ऑफ इब्न बतूता* मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली

मुशीरुल हसन (संपा.), 2005 *वेस्टवर्ड बाउंड: ट्रैवेल्स ऑफ मिर्ज़ा अबू तालिब,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली

एच. के. कौल (संपा.), 1997 *ट्रैवेलर्स इंडिया-एन एंथोलाजी* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस न्यू दिल्ली

ज्यौं बैप्टिस्ट तैवर्नियर, 1993, *ट्रैवेल्स इन इंडिया,* मुंशीराम मनोहरलाल दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं
www.edumaritime.org

विषय छः

भक्ति–सूफ़ी परंपराएँ

धार्मिक विश्वासों में बदलाव और श्रद्धा ग्रंथ (लगभग आठवीं से अठारहवीं सदी तक)

अध्याय चार में हमने पढ़ा कि प्रथम सहस्राब्दी के मध्य तक आते-आते भारतीय उपमहाद्वीप का परिवेश धार्मिक इमारतों – स्तूप, विहार और मंदिरों में चिह्नित हो गया। यदि यह इमारतें किसी विशेष धार्मिक विश्वासों और आचरणों का प्रतीक हैं, वहीं अन्य धार्मिक विश्वासों का पुनर्निर्माण हम साहित्यिक परंपरा जैसे पुराणों के आधार पर भी कर सकते हैं जिनका वर्तमान स्वरूप लगभग उसी समय बनना आरंभ हो गया था। इसके अलावा ऐसे धार्मिक विश्वास भी हैं जो साहित्यिक और दृष्टिक दोनों ही दस्तावेज़ों में अत्यंत धूमिल हैं।

इस काल के नूतन साहित्यिक स्रोतों में संत कवियों की रचनाएँ हैं जिनमें उन्होंने जनसाधारण की क्षेत्रीय भाषाओं में मौखिक रूप से अपने को व्यक्त किया था। यह रचनाएँ जो अधिकतर संगीतबद्ध हैं संतों के अनुयायियों द्वारा उनकी मृत्यु के उपरांत संकलित की गईं। ये परंपराएँ प्रवाहमान थीं–अनुयायियों की कई पीढ़ियों ने मूल संदेश का न केवल विस्तार किया अपितु उन विचारों को, जो भिन्न राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में संदिग्ध व अनावश्यक लगे, उन्हें या तो परिवर्तित कर दिया अथवा त्याग दिया। इन स्रोतों का मूल्यांकन इतिहासकारों के लिए एक चुनौती है।

इतिहासकार इन संत कवियों के अनुयायियों (जो उनके संप्रदाय से थे) द्वारा लिखी गई उनकी जीवनियों का भी इस्तेमाल करते हैं। हालाँकि यह जीवनियाँ अक्षरश: सत्य नहीं हैं तथापि इनसे यह ज्ञात होता है कि अनुयायी इन पथ-प्रदर्शक स्त्री पुरुषों के जीवन को किस तरह से देखते थे।

जैसाकि हम देखेंगे कि ये स्रोत एक क्रियात्मक और विविध दृश्य योजना को समझने की अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। आइए अब हम इसके कुछ मूल तत्वों को बारीकी से देखते हैं।

चित्र 6.1
मणिक्वचक्कार की बारहवीं शताब्दी की कांस्य मूर्ति। ये शिव के अनुयायी थे और तमिल में भक्तिगान की रचना करते थे।

1. धार्मिक विश्वासों और आचरणों की गंगा-जमुनी बनावट

संभवत: इस काल की सबसे प्रभावी विशिष्टता यह है कि साहित्य और मूर्तिकला दोनों में ही अनेक तरह के देवी-देवता अधिकाधिक दृष्टिगत होते हैं। एक स्तर पर यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि विष्णु, शिव और देवी, जिन्हें अनेक रूपों में व्यक्त किया गया था, की आराधना की परिपाटी न केवल चलती रही अपितु और अधिक विस्तृत हुई।

1.1 पूजा प्रणालियों का समन्वय

वे इतिहासकार जो इस विकास को समझने का प्रयास करते हैं, उनका सुझाव है कि यहाँ कम से कम दो प्रक्रियाएँ कार्यरत थीं। एक प्रक्रिया ब्राह्मणीय विचारधारा के प्रचार की थी। इसका प्रसार पौराणिक ग्रंथों की रचना, संकलन और परिरक्षण द्वारा हुआ। ये ग्रंथ सरल संस्कृत छंदों में थे जो वैदिक विद्या से विहीन स्त्रियों और शूद्रों द्वारा भी ग्राह्य थे। इसी काल की एक अन्य प्रक्रिया थी स्त्री, शूद्रों व अन्य सामाजिक वर्गों की आस्थाओं और आचरणों को ब्राह्मणों द्वारा स्वीकृत किया जाना और उसे एक नया रूप प्रदान करना। वस्तुत: समाजशास्त्रियों का यह मानना है कि समूचे उपमहाद्वीप में अनेक धार्मिक विचारधाराएँ और पद्धतियाँ "महान" संस्कृत-पौराणिक परिपाटी तथा "लघु" परंपरा के बीच हुए अविरल संवाद का परिणाम हैं।

इस प्रक्रिया का सबसे विशिष्ट उदाहरण पुरी, उड़ीसा में मिलता है जहाँ मुख्य देवता को बारहवीं शताब्दी तक आते-आते जगन्नाथ (शाब्दिक अर्थ में संपूर्ण विश्व का स्वामी), विष्णु के एक स्वरूप के रूप में प्रस्तुत किया गया।

"महान" और "लघु" परंपराएँ

"महान" और "लघु" जैसे शब्द बीसवीं शताब्दी के समाजशास्त्री राबर्ट रेडफील्ड द्वारा एक कृषक समाज के सांस्कृतिक आचरणों का वर्णन करने के लिए मुद्रित किए गए। इस समाजशास्त्री ने देखा कि किसान उन कर्मकांडों और पद्धतियों का अनुकरण करते थे जिनका समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग जैसे पुरोहित और राजा द्वारा पालन किया जाता था। इन कर्मकांडों को रेडफील्ड ने "महान" परंपरा की संज्ञा दी। साथ ही कृषक समुदाय अन्य लोकाचारों का भी पालन करते थे जो इस महान परिपाटी से सर्वथा भिन्न थे। उसने इन्हें "लघु" परंपरा के नाम से अभिहित किया। रेडफील्ड ने यह भी देखा कि महान और लघु दोनों ही परंपराओं में समय के साथ हुए पारस्परिक आदान-प्रदान के कारण परिवर्तन हुए।

हालाँकि विद्वान इन प्रक्रियाओं और वर्गीकरण के महत्व से इनकार नहीं करते तथापि वे इन शब्दों में जो पदसोपानात्मक स्वर उभर कर आता है उसकी अवमानना करते हैं। इसे लक्षित करने का एक तरीका है इन शब्दों को उद्धरण चिह्न के साथ प्रस्तुत करना जैसे "लघु" और "महान"।

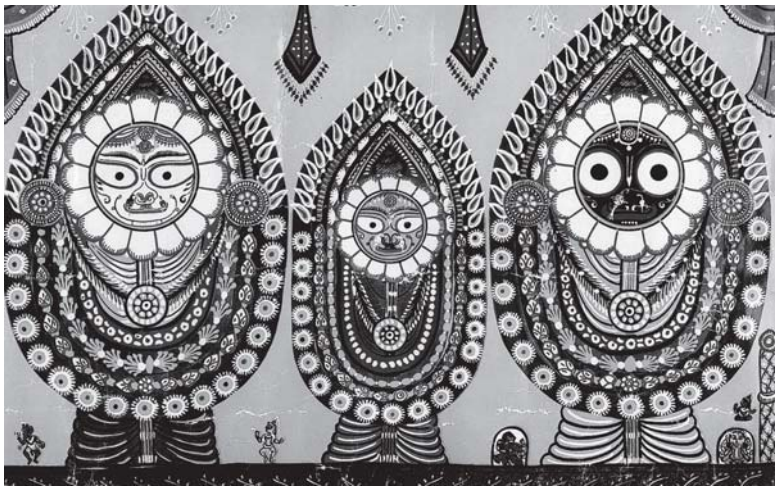

चित्र 6.2
यह आकृति (दाहिने) जगन्नाथ की है जो अपनी बहन सुभद्रा (मध्य) और भाई बलराम (बाएँ) के साथ हैं।

यदि चित्र 6.2 की चित्र 4.26 (अध्याय चार) से तुलना की जाए तो हम देखेंगे कि देवता को बहुत भिन्न तरीके से प्रस्तुत किया गया है। इस उदाहरण में एक स्थानीय देवता को जिसकी प्रतिमा को पहले और आज भी लकड़ी से स्थानीय जनजाति के विशेषज्ञों द्वारा गढ़ा जाता है, विष्णु के रूप में प्रस्तुत किया गया है। विष्णु का यह रूप देश के अन्य भागों में मिलने वाले स्वरूपों से सर्वथा भिन्न था।

समन्वय के ऐसे उदाहरण देवी संप्रदायों में भी मिलते हैं। देवी की उपासना अधिकतर सिंदूर से पोते गए पत्थर के रूप में ही की जाती थी। इन स्थानीय देवियों को पौराणिक परंपरा के भीतर मुख्य देवताओं की पत्नी के रूप में मान्यता दी गई–कभी वह लक्ष्मी के रूप में विष्णु की पत्नी बनीं और कभी शिव की पत्नी पार्वती के रूप में सामने आईं।

1.2 भेद और संघर्ष

चित्र 6.3
बौद्ध देवी, मारिची की मूर्ति (लगभग दसवीं शताब्दी, बिहार)। यह विभिन्न धार्मिक विश्वासों और क्रियाकलापों के एकीकरण की प्रक्रिया का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

अधिकाशंत: देवी की आराधना पद्धति को तांत्रिक नाम से जाना जाता है। तांत्रिक पूजा पद्धति उपमहाद्वीप के कई भागों में प्रचलित थी–इसके अंतर्गत स्त्री और पुरुष दोनों ही शामिल हो सकते थे। इसके अतिरिक्त कर्मकांडीय संदर्भ में वर्ग और वर्ण के भेद की अवहेलना की जाती थी। इस पद्धति के विचारों ने शैव और बौद्ध दर्शन को भी प्रभावित किया खासतौर से उपमहाद्वीप के पूर्वी, उत्तरी और दक्षिणी भागों में। आगामी सहस्राब्दी में इन समस्त विश्वासों और आचारों का वर्गीकरण "हिंदू" के रूप में हुआ। यदि हम वैदिक और पौराणिक परंपरा के बीच तुलना करें तो यह विषमता और अधिक स्पष्ट रूप से उभर कर आती है। वैदिक देवकुल के अग्नि, इंद्र और सोम जैसे देवता पूरी तरह गौण हो गए और साहित्य व मूर्तिकला दोनों में ही उनका निरूपण नहीं दिखता। हालाँकि वैदिक मंत्रों में विष्णु, शिव और देवी की झलक मिलती है, इसकी तुलना इनके विशद, पौराणिक मिथकों से कदापि नहीं की जा सकती। किंतु इन असंगतियों के बावजूद वेदों को प्रामाणिक माना जाता रहा।

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि कभी संघर्ष की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती थी। वैदिक परिपाटी के प्रशंसक उन सभी आचारों की निंदा करते थे जो ईश्वर की उपासना के लिए मंत्रों के उच्चारण के साथ यज्ञों के संपादन से परे थे। इसके विपरीत, वे लोग थे जो तांत्रिक आराधना में लगे थे और वैदिक सत्ता की अवहेलना करते थे। इसके अलावा भक्त अपने इष्टदेव विष्णु या शिव को भी कई बार सर्वोच्च प्रक्षेपित करते थे। अन्य परंपराओं जैसे बौद्ध अथवा जैन धर्म से भी संबंध अकसर तनावपूर्ण हो जाते थे। यद्यपि स्पष्ट द्वंद्व कम दिखाई पड़ते थे।

भक्ति परंपरा को हमें इसी संदर्भ में रखकर देखना होगा। हम जिस काल विशेष पर गौर कर रहे हैं उससे पूर्व लगभग एक हज़ार वर्ष पुरानी भक्तिपूर्ण उपासना की परिपाटी रही है। इस समय भक्ति प्रदर्शन में, मंदिरों में इष्टदेव की आराधना से लेकर उपासकों का प्रेमभाव में तल्लीन हो जाना, दिखाई पड़ता है। भक्ति रचनाओं का उच्चारण अथवा गाया जाना इस उपासना पद्धति के अंश थे। वैष्णव और शैव संप्रदायों पर तो यह कथन विशेष रूप से लागू होता है।

➲ चर्चा कीजिए...

अपने शहर या गाँव में पूजित देवी-देवताओं के नाम और उनके चित्रण पर विचार कीजिए। उनकी उपासना से जुड़े अनुष्ठानों की व्याख्या कीजिए।

2. उपासना की कविताएँ

प्रारंभिक भक्ति परंपरा

आराधना के तरीकों के क्रमिक विकास के दौरान बहुत बार संत कवि ऐसे नेता के रूप में उभरे जिनके आस-पास भक्तजनों के एक पूरे समुदाय का गठन हो गया। यद्यपि बहुत सी भक्ति परंपराओं में ब्राह्मण, देवताओं और भक्तजन के बीच महत्वपूर्ण बिचौलिए बने रहे तथापि इन परंपराओं ने स्त्रियों और "निम्न वर्णों" को भी स्वीकृति व स्थान दिया। भक्ति परंपरा की एक और विशेषता इसकी विविधता है।

दूसरे स्तर पर, धर्म के इतिहासकार भक्ति परंपरा को दो मुख्य वर्गों में बाँटते हैं : सगुण (विशेषण सहित) और निर्गुण (विशेषण विहीन)। प्रथम वर्ग में शिव, विष्णु तथा उनके अवतार व देवियों की आराधना आती है, जिनकी मूर्त रूप में अवधारणा हुई। निर्गुण भक्ति परंपरा में अमूर्त, निराकार ईश्वर की उपासना की जाती थी।

2.1 तमिलनाडु के अलवार और नयनार संत

प्रारंभिक भक्ति आंदोलन (लगभग छठी शताब्दी) अलवारों (विष्णु भक्ति में तन्मय) और नयनारों (शिवभक्त) के नेतृत्व में हुआ। वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते हुए तमिल में अपने ईष्ट की स्तुति में भजन गाते थे।

अपनी यात्राओं के दौरान अलवार और नयनार संतों ने कुछ पावन स्थलों को अपने इष्ट का निवासस्थल घोषित किया। इन्हीं स्थलों पर बाद में विशाल मंदिरों का निर्माण हुआ और वे तीर्थस्थल माने गए। संत-कवियों के भजनों को इन मंदिरों में अनुष्ठानों के समय गाया जाता था और साथ ही इन संतों की प्रतिमा की भी पूजा की जाती थी।

स्रोत 1

चतुर्वेदी (चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण) और "अस्पृश्य"

यह उद्धरण तोंदराडिप्पोडि नामक एक ब्राह्मण अलवार के काव्य से लिया गया है:

चतुर्वेदी जो अजनबी हैं और तुम्हारी सेवा के प्रति निष्ठा नहीं रखते, उनसे भी ज़्यादा आप (हे विष्णु) उन "दासों" को पसंद करते हैं, जो आपके चरणों से प्रेम रखते हैं, चाहे वे वर्ण-व्यवस्था के परे हों।

➲ क्या आपको लगता है कि तोंदराडिप्पोडि जाति व्यवस्था के विरोधी थे?

स्रोत 2

शास्त्र या भक्ति

यह छंद अप्पार नामक नयनार संत की रचना है :

हे धूर्तजन, जो तुम शास्त्र को उद्धृत करते हो
तुम्हारा गोत्र और कुल भला किस काम का?
तुम केवल मारपेरू के स्वामी (शिव जो तमिलनाडु के तंजावुर जिले के मारपेरू में बसते हैं।) को अपना एकमात्र आश्रयदाता मानकर नतमस्तक हो।

➲ क्या ब्राह्मणों के प्रति तोंदराडिप्पोडि और अप्पार के विचारों में समानता है अथवा नहीं?

2.2 जाति के प्रति दृष्टिकोण

कुछ इतिहासकारों का यह मानना है कि अलवार और नयनार संतों ने जाति प्रथा व ब्राह्मणों की प्रभुता के विरोध में आवाज़ उठाई। कुछ हद तक यह बात सत्य प्रतीत होती है क्योंकि भक्ति संत विविध समुदायों से थे जैसे ब्राह्मण, शिल्पकार, किसान और कुछ तो उन जातियों से आए थे जिन्हें "अस्पृश्य" माना जाता था।

अलवार और नयनार संतों की रचनाओं को वेद जितना महत्त्वपूर्ण बताकर इस परंपरा को सम्मानित किया गया। उदाहरणस्वरूप, अलवार संतों के एक मुख्य काव्य संकलन *नलयिरादिव्यप्रबंधम्* का वर्णन तमिल वेद के रूप में किया जाता था। इस तरह इस ग्रंथ का महत्व संस्कृत के चारों वेदों जितना बताया गया जो ब्राह्मणों द्वारा पोषित थे।

2.3 स्त्री भक्त

संभवत: इस परंपरा की सबसे बड़ी विशिष्टता इसमें स्त्रियों की उपस्थिति थी। उदाहरणत: अंडाल नामक अलवार स्त्री के भक्ति गीत व्यापक स्तर पर गाए जाते थे (और आज भी गाए जाते हैं)। अंडाल स्वयं को विष्णु की प्रेयसी मानकर अपनी प्रेमभावना को छंदों में व्यक्त करती थीं। एक और स्त्री शिवभक्त करइक्काल अम्मइयार ने अपने उद्देश्य प्राप्ति हेतु घोर तपस्या का मार्ग अपनाया। नयनार परंपरा में उसकी रचनाओं को सुरक्षित किया गया। हालाँकि इन स्त्रियों ने अपने सामाजिक कर्तव्यों का परित्याग किया। वह किसी वैकल्पिक व्यवस्था अथवा भिक्षुणी समुदाय की सदस्या नहीं बनीं। इन स्त्रियों की जीवन पद्धति और इनकी रचनाओं ने पितृसत्तात्मक आदर्शों को चुनौती दी।

भक्ति साहित्य का संकलन

दसवीं शताब्दी तक आते-आते बारह अलवारों की रचनाओं का एक संकलन कर लिया गया जो *नलयिरादिव्यप्रबंधम्* ("चार हज़ार पावन रचनाएँ") के नाम से जाना जाता है। दसवीं शताब्दी में ही अप्पार संबंदर और सुंदरार की कविताएँ *तवरम* नामक संकलन में रखी गईं जिसमें कविताओं का संगीत के आधार पर वर्गीकरण हुआ।

स्रोत 3

एक राक्षसी?

यह उद्धरण कराइक्काल अम्मइयार की कविता से लिया गया है, जहाँ वे स्वयं का वर्णन कर रही हैं:

राक्षसी, फूली हुई नाड़ियों वाली
बाहर निकली आँखें, सफेद दाँत और भीतर धँसा उदर
लाल केश और आगे निकले दाँत,
लंबी पिंडली की नली जो टखनों तक फैली हुई है।
वन में विचरते समय चीखना और
क्रंदन यह अलंकटु का वन है,
जो हमारे पिता (शिव) का घर है।
वह नृत्य करते हैं..... उनके जटाजूट आठों ओर बिखर जाते हैं।
उनके अंग शांत हैं।

➲ उन उपायों की सूची बनाइए जिन उपायों से कराइक्काल अम्मइयार अपने आप को प्रस्तुत करती हैं। किस भाँति यह उपाय स्त्री सौंदर्य की पारंपरिक अवधारणा से भिन्न हैं।

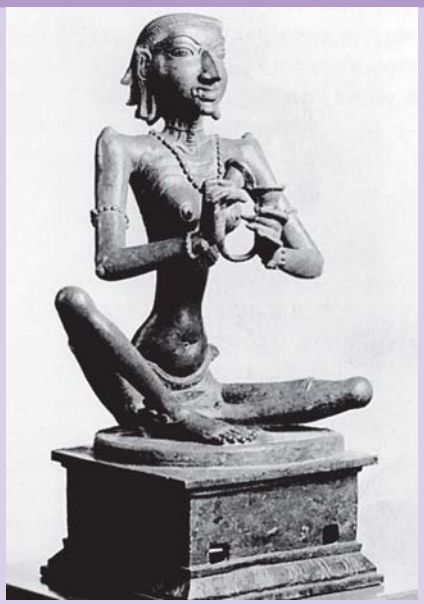

चित्र 6.4
कराइक्काल अम्मइयार की बारहवीं शताब्दी में निर्मित कांस्य-मूर्ति

2.4 राज्य के साथ संबंध

अध्याय 2 में हमने पढ़ा कि तमिल क्षेत्र में प्रथम सहस्राब्दी ईसवी के आरंभ में कई महत्त्वपूर्ण सरदारियाँ थीं। इसी सहस्राब्दी के उत्तरार्ध में राज्य का उद्भव और विकास हुआ जिसमें पल्लव और पांड्य राज्य (छठी से नवीं शताब्दी ईसवी) शामिल थे। हालाँकि बौद्ध और जैन धर्म इस क्षेत्र में कई शताब्दियों से मौजूद थे और उन्हें व्यापारी व शिल्पी वर्ग का प्रश्रय हासिल था। इन धर्मों को राजकीय संरक्षण और अनुदान यदा-कदा ही हासिल होता था।

एक रोचक बात यह है कि तमिल भक्ति रचनाओं की एक मुख्य विषयवस्तु बौद्ध और जैन धर्म के प्रति उनका विरोध है। विरोध का स्वर नयनार संतों की रचनाओं में विशेष रूप से उभर कर आता है। इतिहासकारों ने इस विरोध की व्याख्या करते हुए यह सुझाव दिया है कि परस्पर विरोधी धार्मिक समुदायों में राजकीय अनुदान को लेकर प्रतिस्पर्धा थी। यह स्पष्ट है कि शक्तिशाली चोल (नवीं से तेरहवीं शताब्दी) सम्राटों ने ब्राह्मणीय और भक्ति परंपरा को समर्थन दिया तथा विष्णु और शिव के मंदिरों के निर्माण के लिए भूमि-अनुदान दिए।

चिदम्बरम, तंजावुर और गंगैकोडाचोलपुरम के विशाल शिव मंदिर चोल सम्राटों की मदद से ही निर्मित हुए। इसी काल में कांस्य में ढाली गई शिव की प्रतिमाओं का भी निर्माण हुआ। स्पष्ट है कि नयनार संतों का दर्शन शिल्पकारों के लिए प्रेरणा बना।

नयनार और अलवार संत वेल्लाल कृषकों द्वारा सम्मानित होते थे इसलिए आश्चर्य नहीं कि शासकों ने भी उनका समर्थन पाने का प्रयास किया। उदाहरणत: चोल सम्राटों ने दैवीय समर्थन पाने का दावा किया और अपनी सत्ता के प्रदर्शन के लिए सुंदर मंदिरों का निर्माण कराया जिनमें पत्थर और धातु से बनी मूर्तियाँ सुसज्जित थीं। इस तरह इन लोकप्रिय संत-कवियों की परिकल्पना को, जो जन-भाषाओं में गीत रचते व गाते थे, मूर्त रूप प्रदान किया गया।

चित्र 6.5
नटराज के रूप में शिव

इन सम्राटों ने तमिल भाषा के शैव भजनों का गायन इन मंदिरों में प्रचलित किया। उन्होंने ऐसे भजनों का संकलन एक ग्रंथ (*तवरम*) के रूप में करने का भी ज़िम्मा उठाया। 945 ईसवी के एक अभिलेख से पता चलता है कि चोल सम्राट परांतक प्रथम ने संत कवि अप्पार संबंदर और सुंदरार की धातु प्रतिमाएँ एक शिव मंदिर में स्थापित करवाईं। इन मूर्तियों को उत्सव में एक जुलूस में निकाला जाता था।

➲ चर्चा कीजिए...

आपको क्यों लगता है कि शासक भक्तों से अपने संबंध को दर्शाने के लिए उत्सुक थे?

3. कर्नाटक की वीरशैव परंपरा

बारहवीं शताब्दी में कर्नाटक में एक नवीन आंदोलन का उद्भव हुआ जिसका नेतृत्व बासवन्ना (1106-68) नामक एक ब्राह्मण ने किया। बासवन्ना प्रारंभ में जैन मत को मानने वाले थे और चालुक्य राजा के दरबार में मंत्री थे। इनके अनुयायी वीरशैव (शिव के वीर) व लिंगायत (लिंग धारण करने वाले) कहलाए।

आज भी लिंगायत समुदाय का इस क्षेत्र में महत्त्व है। वे शिव की आराधना लिंग के रूप में करते हैं। इस समुदाय के पुरुष वाम स्कंध पर

चाँदी के एक पिटारे में एक लघु लिंग को धारण करते हैं। जिन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है उनमें जंगम अर्थात यायावर भिक्षु शामिल हैं। लिंगायतों का विश्वास है कि मृत्योपरांत भक्त शिव में लीन हो जाएँगे तथा इस संसार में पुनः नहीं लौटेंगे। धर्मशास्त्र में बताए गए श्राद्ध संस्कार का वे पालन नहीं करते और अपने मृतकों को विधिपूर्वक दफनाते हैं।

लिंगायतों ने जाति की अवधारणा और कुछ समुदायों के "दूषित" होने की ब्राह्मणीय अवधारणा का विरोध किया। पुनर्जन्म के सिद्धांत पर भी उन्होंने प्रश्नवाचक चिह्न लगाया। इन सब कारणों से ब्राह्मणीय सामाजिक व्यवस्था में जिन समुदायों को गौण स्थान मिला था वे लिंगायतों के अनुयायी हो गए। धर्मशास्त्रों में जिन आचारों को अस्वीकार किया गया था जैसे वयस्क विवाह और विधवा पुनर्विवाह, लिंगायतों ने उन्हें मान्यता प्रदान की। वीरशैव परंपरा की व्युत्पत्ति उन वचनों से है जो कन्नड़ भाषा में उन स्त्री पुरुषों द्वारा रचे गए जो इस आंदोलन में शामिल हुए।

नए धार्मिक विकास

मध्यवर्ती शताब्दियों में 2 मुख्य विकास देखने में आए। एक ओर तो तमिल भक्तों (खासतौर से वैष्णव) के विचारों को संस्कृत परंपरा में समाहित कर लिया गया जिसका परिणाम सर्वाधिक प्रसिद्ध पुराणों में से एक भागवत पुराण की रचना थी। दूसरे, तेहरवीं शताब्दी में भक्ति परंपरा का विकास महाराष्ट्र में हुआ।

4. उत्तरी भारत में धार्मिक उफ़ान

इसी काल में उत्तरी भारत में विष्णु और शिव जैसे देवताओं की उपासना मंदिरों में की जाती थी जिन्हें शासकों की सहायता से निर्मित किया जाता था। किंतु इतिहासकारों को अलवार और नयनार संतों की रचनाओं जैसा कोई ग्रंथ चौहदवीं शताब्दी तक उत्तरी भारत से प्राप्त नहीं हुआ। इस भिन्नता की क्या वजह हो सकती है?

कुछ इतिहासकारों का मत है कि उत्तरी भारत में यह वह काल था जब अनेक राजपूत राज्यों का उद्भव हुआ। इन सभी राज्यों में ब्राह्मणों का महत्त्वपूर्ण स्थान था और वे ऐहिक तथा आनुष्ठानिक दोनों ही कार्य करते थे। उनकी इस प्रभुसत्ता को सीधे चुनौती देने का प्रयास शायद ही किसी ने किया।

इसी समय वे धार्मिक नेता जो रूढ़िवादी ब्राह्मणीय साँचे के बाहर थे, उनके प्रभाव में विस्तार हो रहा था। ऐसे नेताओं में नाथ, जोगी और सिद्ध शामिल थे। उनमें से बहुत से लोग शिल्पी समुदाय के थे जिनमें जुलाहे शामिल थे। संयोजित दस्तकारी उत्पादन के विकास के साथ उनका महत्त्व

स्रोत 4

अनुष्ठान और यथार्थ संसार

यह बासवन्ना द्वारा रचित एक वचन है:

जब वे एक पत्थर से बने सर्प को देखते हैं तो उस पर दूध चढ़ाते हैं

यदि असली साँप आ जाए तो कहते हैं "मारो-मारो"।

देवता के उस सेवक को, जो भोजन परसने पर खा सकता है वे कहते हैं "चले जाओ! चले जाओ।"

किन्तु ईश्वर की प्रतिमा को जो खा नहीं सकती, वे व्यंजन परोसते हैं।

➲ अनुष्ठानों के प्रति बासवन्ना के रवैये की व्याख्या कीजिए। वे किस तरह श्रोता को अपनी बात समझाने का प्रयत्न करते हैं।

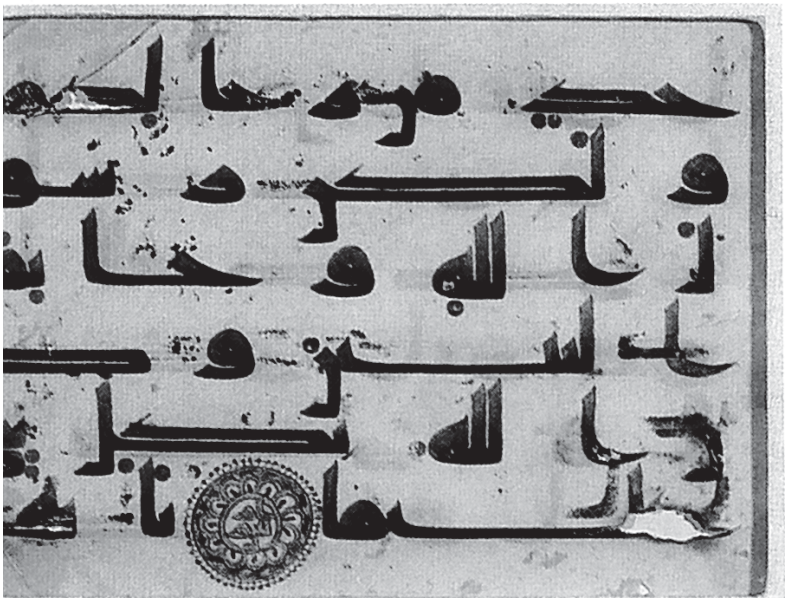

चित्र 6.6
कुरान शरीफ़ के एक पृष्ठ का हिस्सा। यह आठवीं अथवा नवीं शताब्दी की किसी पांडुलिपि से लिया गया है।

बढ़ रहा था। नगरीय केंद्रों के विस्तार तथा मध्य व पश्चिमी एशिया के साथ व्यापार के प्रसार के साथ ही इन दस्तकारी की वस्तुओं की माँग बढ़ी।

अनेक नवीन धार्मिक नेताओं ने वेदों की सत्ता को चुनौती दी और अपने विचार आम लोगों की भाषा में सामने रखे। समय के साथ यह भाषाएँ उस रूप में विकसित हुईं जिस तरह आज भी प्रयोग में लाई जाती हैं। अपनी लोकप्रियता के बावजूद नवीन धार्मिक नेता विशिष्ट शासक वर्ग का प्रश्रय हासिल करने की स्थिति में नहीं थे।

इस स्थिति में एक नवीन तत्व भारत में तुर्कों का आगमन था जिसकी पराकाष्ठा दिल्ली सल्तनत (तेरहवीं शताब्दी) की स्थापना में हुई। सल्तनत की स्थापना से राजपूत राज्यों का और उनसे जुड़े ब्राह्मणों का पराभव हुआ। इन परिवर्तनों का प्रभाव संस्कृति और धर्म पर भी पड़ा। सूफ़ियों का आगमन (अनुभाग 6) इन परिवर्तनों का एक महत्त्वपूर्ण अंग था।

5. दुशाले के नए ताने-बाने : इस्लामी परंपराएँ

जिस तरह उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्र एक दूसरे से पृथक नहीं थे उसी भांति समुद्र और पहाड़ों के परे के क्षेत्रों से भी संपर्क शताब्दियों से बना रहा। प्रथम सहस्राब्दी ईसवी में अरब व्यापारी समुद्र के रास्ते पश्चिमी भारत के बंदरगाहों तक आए। इसी समय मध्य एशिया से लोग देश के उत्तर-पश्चिम प्रांतों में आकर बस गए। सातवीं शताब्दी में इस्लाम के उद्भव के बाद ये क्षेत्र उस संसार का हिस्सा बन गए जिसे अकसर इस्लामी विश्व कहा जाता है।

5.1 शासकों और शासितों के धार्मिक विश्वास

उलमा (आलिम का बहुवचन) इस्लाम धर्म के ज्ञाता थे। इस परिपाटी के संरक्षक होने के नाते वे धार्मिक, कानूनी और अध्यापन संबंधी ज़िम्मेदारी निभाते थे।

इन संपर्कों को समझने की एक धुरी यह है कि विशिष्ट शासक वर्ग के धर्म पर दृष्टि डाली जाए। 711 ईसवी में मुहम्मद बिन कासिम नाम के एक अरब सेनापति ने सिंध को विजित कर लिया और उसे खलीफ़ा के क्षेत्र में शामिल कर लिया। बाद में (लगभग तेरहवीं शताब्दी ईसवी) तुर्क और अफगानों ने दिल्ली सल्तनत की नींव रखी। समय के साथ दक्कन और अन्य भागों में भी सल्तनत की सीमा का प्रसार हुआ। बहुत से क्षेत्रों में इस्लाम शासकों का स्वीकृत धर्म था। यह स्थिति सोलहवीं शताब्दी में मुगल सल्तनत की स्थापना के साथ भी बरकरार रही। अठारहवीं शताब्दी में जो क्षेत्रीय राज्य उभर कर आए उनमें से कई राज्यों के शासक भी इस्लाम धर्म को मानने वाले थे।

सैद्धांतिक रूप से मुसलमान शासकों को उलमा के मार्गदर्शन पर चलना होता था। उलमा से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे शासन में शरिया का अमल सुनिश्चित करवाएँगे। किंतु उपमहाद्वीप में स्थिति जटिल थी क्योंकि बड़ी जनसंख्या इस्लाम धर्म को मानने वाली नहीं थी।

इस संदर्भ में *ज़िम्मी* (व्युत्पत्ति अरबी शब्द *ज़िम्मा* से) अर्थात संरक्षित श्रेणी का प्रादुर्भाव हुआ। ज़िम्मी वे लोग थे जो उद्घटित धर्मग्रंथ को मानने वाले थे जैसे इस्लामी शासकों के क्षेत्र में रहने वाले यहूदी और ईसाई। ये लोग *जज़िया* नामक कर चुका कर मुसलमान शासकों द्वारा संरक्षण दिए जाने के अधिकारी हो जाते थे। भारत में इसके अंतर्गत हिंदुओं को भी शामिल कर लिया गया। जैसा आप देखेंगे (अध्याय 9), मुगल शासक अपने आपको न केवल मुसलमानों का अपितु सारे समुदायों का बादशाह मानते थे।

वास्तव में शासक शासितों की तरफ़ काफ़ी लचीली नीति अपनाते थे। उदाहरणत:, बहुत से शासकों ने भूमि अनुदान व कर की छूट हिंदू, जैन, पारसी, ईसाई और यहूदी धर्मसंस्थाओं को दी तथा साथ ही गैर-मुसलमान धार्मिक नेताओं के प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त किया। ऐसे अनुदान, अनेक मुगल बादशाहों जिनमें अकबर और औरंगज़ेब शामिल थे, द्वारा दिए गए।

स्रोत 5

खम्बात का गिरजाघर

यह उद्धरण उस फ़रमान (बादशाह के हुक्मनामे) का अंश है जिसे 1598 में अकबर ने जारी किया :

> हमारे बुलंद और मुकद्दस (पवित्र) ज़ेहन में पहुँचा है कि यीशु की मुकद्दस जमात के पादरी खम्बायत गुजरात के शहर में इबादत के लिए (गिरजाघर) एक इमारत की तामीर (निर्माण) करना चाहते हैं; इसलिए यह शाही फ़रमान.... जारी किया जा रहा है.... खम्बायत के महानुभाव किसी भी तरह उनके रास्ते में न आएँ और उन्हें गिरजाघर की तामीर करने दें जिससे वे अपनी इबादत कर सकें। यह ज़रूरी है कि बादशाह के इस फ़रमान की हर तरह से तामील (पालन) हो।

➲ वे कौन लोग थे जिनकी तरफ़ से अकबर को अपने फ़रमान की बेअदबी का अंदेशा था?

शरिया

शरिया मुसलमान समुदाय को निर्देशित करने वाला कानून है। यह कुरान शरीफ़ और हदीस पर आधारित है। हदीस का अर्थ है पैगम्बर साहब से जुड़ी परंपराएँ जिनके अंतर्गत उनके स्मृत शब्द और क्रियाकलाप भी आते हैं।

जब अरब क्षेत्र से बाहर इस्लाम का प्रसार हुआ जहाँ के आचार-व्यवहार भिन्न थे तो क़ियास (सदृशता के आधार पर तर्क) और इजमा (समुदाय की सहमति) को भी कानून का स्रोत माना जाने लगा। इस तरह शरिया, कुरान, हदीस, क़ियास और इजमा से उद्भूत हुआ।

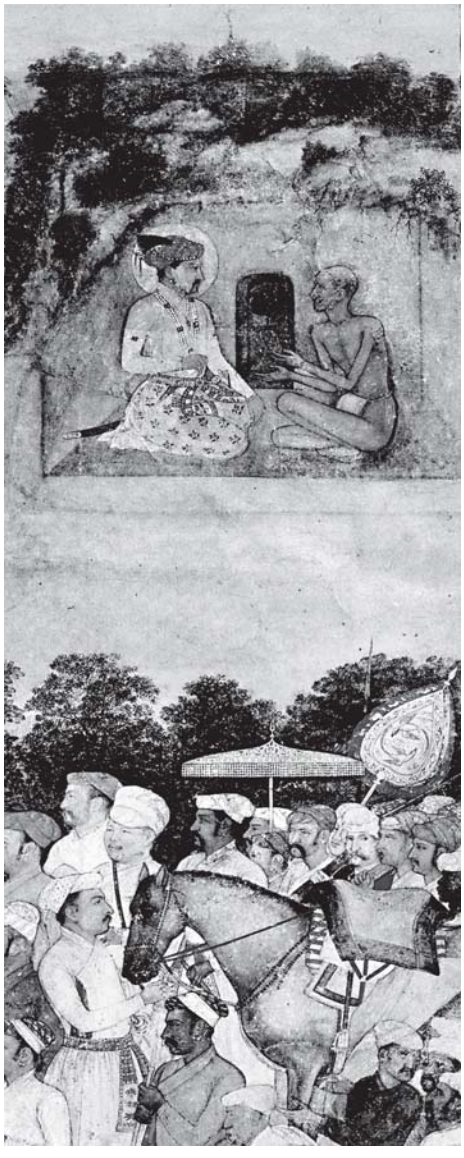

चित्र 6.7
बादशाह जहाँगीर तथा एक जोगी को दर्शाता हुआ मुगल चित्र।

स्रोत 6

जोगी के प्रति श्रद्धा

यह उद्धरण 1661–62 में औरंगज़ेब द्वारा एक जोगी को लिखे पत्र का अंश है :

बुलंद मकाम शिवमूरत गुरु आनंद नाथ जियो!

जनाब-ए-मुहतरम (श्रद्धेय) अमन और खुशी से हमेशा श्री शिव जियो की पनाह में रहें!

पोषाक के लिए वस्त्र और पच्चीस रुपए की रकम जो भेंट के तौर पर भेजी गई है आप तक पहुँचेगी... जनाब-ए-मुहतरम आप हमें लिख सकते हैं जब भी हमारी मदद की ज़रूरत हो।

➲ जोगी द्वारा वंदनीय देवता की पहचान कीजिए। जोगी के प्रति बादशाह के रवैये का वर्णन कीजिए।

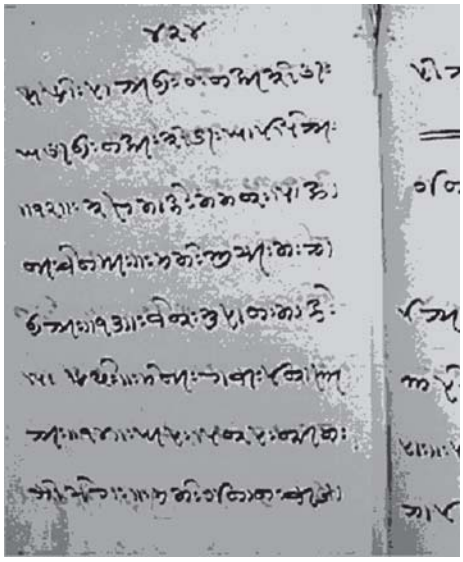

चित्र 6.8
एक खोजकी पाण्डुलिपि।
खोजकी लिपि में लिपिबद्ध करने से पहले जीनन का मौखिक प्रेषण होता था। खोजकी लिपि स्थानीय लंडा (व्यापारियों की संक्षिप्त लिपि) से निकली है। पंजाब, सिंध और गुजरात के खोजा लोग, सभी लंडा का प्रयोग करते थे।

5.2 लोक प्रचलन में इस्लाम

इस्लाम के आगमन के बाद जो परिवर्तन हुए वे शासक वर्ग तक ही सीमित नहीं थे, अपितु पूरे उपमहाद्वीप में दूरदराज़ तक और विभिन्न सामाजिक समुदायों–किसान, शिल्पी, योद्धा, व्यापारी के बीच फैल गए। जिन्होंने इस्लाम धर्म कबूल किया उन्होंने सैद्धांतिक रूप से इसकी पाँच मुख्य 'बातें' मानीं : अल्लाह एकमात्र ईश्वर है; पैगम्बर मोहम्मद उनके दूत (शाहद) हैं; दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ी जानी चाहिए; खैरात (ज़कात) बाँटनी चाहिए; रमज़ान के महीने में रोज़ा रखना चाहिए और हज के लिए मक्का जाना चाहिए।

किंतु इन सार्वभौमिक तत्वों में अकसर सांप्रदायिक (शिया, सुन्नी) वजहों से तथा स्थानीय लोकाचारों के प्रभाव की वजह से भी धर्मांतरित लोगों के व्यवहारों में भिन्नता देखने में आती थी। उदाहरणत:, खोजा इस्माइली (शिया) समुदाय के लोगों ने कुरान के विचारों की अभिव्यक्ति के लिए देशी साहित्यिक विधा का सहारा लिया। *जीनन* (व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द ज्ञान से) नाम से भक्ति गीत, जो राग में निबद्ध थे, पंजाबी, मुल्तानी, सिंधी, कच्छी, हिंदी और गुजराती में दैनिक प्रार्थना के दौरान गाए जाते थे।

इसके अलावा अरब मुसलमान व्यापारी जो मालाबार तट (केरल) के किनारे बसे, उन्होंने न केवल स्थानीय मलयालम भाषा को अपनाया अपितु स्थानीय आचारों जैसे *मातृकुलीयता* (अध्याय 3) और *मातृगृहता* को भी अपनाया।

एक सार्वभौमिक धर्म के स्थानीय आचारों के संग जटिल मिश्रण का सर्वोत्तम उदाहरण संभवत: मस्जिदों की स्थापत्य कला में दृष्टिगोचर होता है। मस्जिदों के कुछ स्थापत्य संबंधी तत्व सार्वभौमिक थे–जैसे

मातृगृहता वह परिपाटी है जहाँ स्त्रियाँ विवाह के बाद अपने मायके में ही अपनी संतान के साथ रहती हैं और उनके पति उनके साथ आकर रह सकते हैं।

चित्र 6.9
केरल में तेहरवीं शताब्दी की एक मस्जिद। इसके शिखर के आकार की छत पर गौर कीजिए।

इमारत का मक्का की तरफ़ अनुस्थापन जो *मेहराब* (प्रार्थना का आला) और मिनबार (व्यासपीठ) की स्थापना से लक्षित होता था। बहुत से तत्व ऐसे थे जिनमें भिन्नता देखने में आती है जैसे छत और निर्माण का सामान। (देखिए चित्र 6.9, 6.10 और 6.11)

चित्र 6.10
ईंटों की बनी अतिया मस्जिद, 1609, ज़िला मैमनसिंग, बांग्लादेश।

5.3 समुदायों के नाम

हम अधिकतर हिंदू और मुसलमान जैसे शब्दों को धार्मिक समुदायों का निश्चित द्योतक मान लेते हैं। किंतु सच तो यह है कि इन शब्दों का बहुत समय तक कोई प्रचलन नहीं था। जिन इतिहासकारों ने आठवीं से चौहदवीं शताब्दी के मध्य संस्कृत ग्रंथों और अभिलेखों का अध्ययन किया है वे इस तथ्य को उजागर करते हैं कि इनमें मुसलमान, शब्द का शायद ही कहीं प्रयोग हुआ हो। इसके विपरीत लोगों का वर्गीकरण उनके जन्मस्थान के आधार पर किया जाता था। इस तरह तुर्की मुसलमानों को तुरुष्क कहा गया। तजाकिस्तान से आए लोगों को ताजिक और फारस के लोगों को पारसीक नाम से संबोधित किया गया। यदा-कदा अन्य लोगों को दिए गए नामों को नए प्रवासियों के साथ भी जोड़ा गया। उदाहरणत:, तुर्क और अफ़गानों को शक (अध्याय 2 व 3) और यवन (ग्रीक लोगों के लिए प्रयुक्त) भी कहा गया।

इन प्रवासी समुदायों के लिए एक अधिक सामान्य शब्द म्लेच्छ था जो इस बात की ओर इंगित करता है कि वह वर्ण नियमों का पालन नहीं

चित्र 6.11
श्रीनगर की झेलम नदी के किनारे बनी शाह हमदान मस्जिद कश्मीर की सभी मस्जिदों में 'मुकुट का नगीना' समझी जाती है।
इसका निर्माण 1395 में हुआ और यह कश्मीरी लकड़ी की स्थापत्य कला का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसके शिखर और नक्काशीदार छज्जे पर गौर कीजिए। यह पेपरमैशी से सजाई गई है।

करते थे और ऐसी भाषाएँ बोलते थे जो संस्कृत से नहीं उपजी थीं। हालाँकि ऐसे शब्दों में हीनभावना निहित थी किंतु उन्हें एक ऐसे विशिष्ट मुसलमान धार्मिक समुदाय के लिए शायद ही प्रयुक्त किया जाता था जो हिंदू समुदाय के विपक्ष में हों। जैसाकि हमने अध्याय 5 में देखा कि 'हिंदू' शब्द अनेक तरह से इस्तेमाल किया जाता था और उसे धार्मिक समुदाय के एकमात्र अर्थ में सीमित नहीं किया जा सकता।

➲ चर्चा कीजिए...

अपने गाँव अथवा शहर की मस्जिद की स्थापत्य कला के बारे में जानकारी हासिल कीजिए। इसे बनाने में किस तरह की सामग्री का इस्तेमाल हुआ है? क्या यह सामग्री स्थानीय स्तर पर मिलती है? क्या इसके कुछ विशिष्ट स्थापत्य लक्षण हैं?

6. सूफ़ीमत का विकास

इस्लाम की आरंभिक शताब्दियों में धार्मिक और राजनीतिक संस्था के रूप में खिलाफ़त की बढ़ती विषयशक्ति के विरुद्ध कुछ आध्यात्मिक लोगों का रहस्यवाद और वैराग्य की ओर झुकाव बढ़ा, इन्हें सूफ़ी कहा जाने लगा। इन लोगों ने रूढ़िवादी परिभाषाओं तथा धर्माचार्यों द्वारा की गई कुरान और *सुन्ना* (पैगम्बर के व्यवहार) की बौद्धिक व्याख्या की आलोचना की। इसके विपरीत उन्होंने मुक्ति की प्राप्ति के लिए ईश्वर की भक्ति और उनके आदेशों के पालन पर बल दिया। उन्होंने पैगम्बर मोहम्मद को इंसान-ए-कामिल बताते हुए उनका अनुसरण करने की सीख दी। सूफ़ियों ने कुरान की व्याख्या अपने निजी अनुभवों के आधार पर की।

6.1 ख़ानक़ाह और सिलसिला

ग्यारहवीं शताब्दी तक आते-आते सूफ़ीवाद एक पूर्ण विकसित आंदोलन था जिसका सूफ़ी और कुरान से जुड़ा अपना साहित्य था। संस्थागत दृष्टि से सूफ़ी अपने को एक संगठित समुदाय-ख़ानक़ाह (फारसी) के इर्द-गिर्द स्थापित करते थे। ख़ानक़ाह का नियंत्रण शेख (अरबी), पीर अथवा मुर्शीद (फारसी) के हाथ में था। वे अनुयायियों (मुरीदों) की भरती करते थे और अपने वारिस (खलीफ़ा) की नियुक्ति करते थे। आध्यात्मिक व्यवहार के नियम निर्धारित करने के अलावा ख़ानक़ाह में रहने वालों के बीच के संबंध और शेख व जनसामान्य के बीच के रिश्तों की सीमा भी नियत करते थे।

सूफ़ीवाद और तसव्वुफ़

सूफ़ीवाद उन्नीसवीं शताब्दी में मुद्रित एक अंग्रेज़ी शब्द है। इस सूफ़ीवाद के लिए इस्लामी ग्रंथों में जिस शब्द का इस्तेमाल होता है वह है *तसव्वुफ़*। कुछ विद्वानों के अनुसार यह शब्द 'सूफ़' से निकलता है जिसका अर्थ ऊन है। यह उस खुरदुरे ऊनी कपड़े की ओर इशारा करता है जिसे सूफ़ी पहनते थे। अन्य विद्वान इस शब्द की व्युत्पत्ति 'सफ़ा' से मानते हैं जिसका अर्थ है साफ़। यह भी संभव है कि यह शब्द 'सफ़ा' से निकला हो जो पैगम्बर की मस्जिद के बाहर एक चबूतरा था जहाँ निकट अनुयायियों की मंडली धर्म के बारे में जानने के लिए इकट्ठी होती थी।

बारहवीं शताब्दी के आसपास इस्लामी दुनिया में सूफ़ी सिलसिलों का गठन होने लगा। सिलसिला का शाब्दिक अर्थ है जंज़ीर जो शेख और मुरीद के बीच एक निरंतर रिश्ते की द्योतक है, जिसकी पहली अटूट कड़ी पैगम्बर मोहम्मद से जुड़ी है। इस कड़ी के द्वारा आध्यात्मिक शक्ति और आशीर्वाद मुरीदों तक पहुँचता था। दीक्षा के विशिष्ट अनुष्ठान विकसित किए गए जिसमें दीक्षित को निष्ठा का वचन देना होता था, और सिर मुँड़ाकर थेगड़ी लगे वस्त्र धारण करने पड़ते थे।

पीर की मृत्यु के बाद उसकी दरगाह (फारसी में इसका अर्थ दरबार) उसके मुरीदों के लिए भक्ति का स्थल बन जाती थी। इस तरह पीर की दरगाह पर ज़ियारत के लिए जाने की, खासतौर से उनकी बरसी के अवसर पर, परिपाटी चल निकली। इस परिपाटी को *उर्स* (विवाह, मायने पीर की आत्मा का ईश्वर से मिलन) कहा जाता था क्योंकि लोगों का मानना था कि मृत्यु के बाद पीर ईश्वर से एकीभूत हो जाते हैं और इस तरह पहले के बजाय उनके अधिक करीब हो जाते हैं। लोग आध्यात्मिक और ऐहिक कामनाओं की पूर्ति के लिए उनका आशीर्वाद लेने जाते थे। इस तरह शेख का वली के रूप में आदर करने की परिपाटी शुरू हुई।

6.2 ख़ानक़ाह के बाहर

कुछ रहस्यवादियों ने सूफ़ी सिद्धांतों की मौलिक व्याख्या के आधार पर नवीन आंदोलनों की नींव रखी। ख़ानक़ाह का तिरस्कार करके यह रहस्यवादी, फकीर की ज़िंदगी बिताते थे। निर्धनता और ब्रह्मचर्य को उन्होंने गौरव प्रदान किया। इन्हें विभिन्न नामों से जाना जाता था– कलंदर, मदारी, मलंग, हैदरी इत्यादि। शरिया की अवहेलना करने के कारण उन्हें बे-शरिया कहा जाता था। इस तरह उन्हें शरिया का पालन करने वाले (बा-शरिया) सूफ़ियों से अलग करके देखा जाता था।

7. उपमहाद्वीप में चिश्ती सिलसिला

बारहवीं शताब्दी के अंत में भारत आने वाले सूफ़ी समुदायों में चिश्ती सबसे अधिक प्रभावशाली रहे। इसका कारण यह था कि उन्होंने न केवल अपने आपको स्थानीय परिवेश में अच्छी तरह ढाला अपितु भारतीय भक्ति परंपरा की कई विशिष्टताओं को भी अपनाया।

7.1 चिश्ती ख़ानक़ाह में जीवन

ख़ानक़ाह सामाजिक जीवन का केंद्र बिंदु था। हमें शेख निज़ामुद्दीन औलिया (चौदहवीं शताब्दी) की ख़ानक़ाह के बारे में पता है जो उस समय के दिल्ली शहर की बाहरी सीमा पर यमुना नदी के किनारे ग़ियासपुर में था। यहाँ कई छोटे-छोटे कमरे और एक बड़ा हाल (जमातख़ाना) था जहाँ सहवासी और अतिथि रहते, और उपासना करते थे। सहवासियों में शेख का अपना परिवार, सेवक और अनुयायी थे।

सिलसिलों के नाम

ज़्यादातर सूफ़ी वंश उन्हें स्थापित करने वालों के नाम पर पड़े। उदाहरणत:, कादरी सिलसिला शेख अब्दुल कादिर जिलानी के नाम पर पड़ा। कुछ अन्य सिलसिलों का नामकरण उनके जन्मस्थान पर हुआ जैसे चिश्ती नाम मध्य अफगानिस्तान के चिश्ती शहर से लिया गया।

वली (बहुवचन औलिया) अर्थात ईश्वर का मित्र वह सूफ़ी जो अल्लाह के नज़दीक होने का दावा करता था और उनसे मिली बरकत से करामात करने की शक्ति रखता था।

➲ चर्चा कीजिए...

क्या आपके गाँव अथवा शहर में ख़ानक़ाह या दरगाह है? मालूम कीजिए इनकी स्थापना कब हुई थी तथा इनके संग कौन से क्रियाकलाप जुड़े हुए हैं? क्या ऐसे अन्य स्थान हैं जहाँ धार्मिक स्त्री और पुरुष मिलते और रहते हैं?

शेख एक छोटे कमरे में छत पर रहते थे जहाँ वह मेहमानों से सुबह-शाम मिला करते थे। आँगन एक गलियारे से घिरा होता था और ख़ानक़ाह को चारों ओर से दीवार घेरे रहती थी। एक बार मंगोल आक्रमण के समय पड़ोसी क्षेत्र के लोगों ने ख़ानक़ाह में शरण ली।

चिश्ती सिलसिला के मुख्य उपदेशक

सूफ़ी	मृत्यु का वर्ष	दरगाह का स्थान
शेख मुइनुद्दीन चिश्ती	1235	अजमेर (राजस्थान)
ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी	1235	दिल्ली
शेख फरीदुद्दीन गंज-ए-शकर	1265	अजोधन (पाकिस्तान)
शेख निज़ामुद्दीन औलिया	1325	दिल्ली
शेख नसीरुद्दीन चिराग-ए-देहली	1356	दिल्ली

दाता गंज बख्श की कहानी

1039 ईसवी में अबुल हसन अल हुजविरी जो अफगानिस्तान के शहर गज़नी के निकट हुजविर के रहने वाले थे, उन्हें तुर्की सेना के एक कैदी के रूप में सिंधु नदी पार करनी पड़ी। वह लाहौर में बस गए और फारसी में उन्होंने एक किताब लिखी *कश्फ-उल-महजुब* (परदे वाले की बेपर्दगी) जिसमें तसव्वुफ़ के मायने और इसका पालन करने वाले सूफ़ियों के बारे में बताया गया था।

हुजविरी की 1073 में मृत्यु हो गई और उन्हें लाहौर में दफ़नाया गया। सुल्तान महमूद गज़नी के पोते ने उनकी मज़ार पर दरगाह बनवाई। यह दरगाह उनकी बरसी के अवसर पर उनके अनुयायियों के लिए तीर्थ स्थल बन गई।

आज भी हुजविरी दाता गंज बख्श के रूप में आदरणीय हैं और उनकी दरगाह को दाता दरबार यानी देने वाले की दरगाह कहा जाता है।

यहाँ एक सामुदायिक रसोई (लंगर) *फ़ुतूह* (बिना माँगी खैर) पर चलती थी। सुबह से देर रात तक सब तबके के लोग–सिपाही, गुलाम, गायक, व्यापारी, कवि, राहगीर, धनी और निर्धन, हिंदू जोगी और कलंदर यहाँ अनुयायी बनने, इबादत करने, ताबीज़ लेने अथवा विभिन्न मसलों पर शेख की मध्यस्थता के लिए आते थे। कुछ अन्य मिलने वालों में अमीर हसन सिजज़ी और अमीर खुसरो जैसे कवि तथा दरबारी इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी जैसे लोग शामिल थे। इन सभी लोगों ने शेख के बारे में लिखा। शेख के सामने झुकना, मिलने वालों को पानी पिलाना, दीक्षितों के सर का मुंडन तथा यौगिक व्यायाम आदि व्यवहार इस तथ्य के घोतक हैं कि स्थानीय परंपराओं को आत्मसात करने का प्रयत्न किया गया।

शेख निज़ामुद्दीन ने कई आध्यात्मिक वारिसों का चुनाव किया और उन्हें उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में ख़ानक़ाह स्थापित करने के लिए नियुक्त किया। इस वजह से चिश्तियों के उपदेश, व्यवहार और संस्थाएँ तथा शेख का यश चारों ओर फैल गया। उनकी तथा उनके आध्यात्मिक पूर्वजों की दरगाह पर अनेक तीर्थयात्री आने लगे।

7.2 चिश्ती उपासना : ज़ियारत और कव्वाली

सूफ़ी संतों की दरगाह पर की गई ज़ियारत सारे इस्लामी संसार में प्रचलित है। इस अवसर पर संत के आध्यात्मिक आशीर्वाद यानी बरकत की कामना की जाती है। पिछले सात सौ सालों से अलग-अलग संप्रदायों, वर्गों और समुदायों के लोग पाँच महान चिश्ती संतों की दरगाह पर अपनी आस्था प्रकट करते रहे हैं (ऊपर दिया गया चार्ट देखिए) इनमें सबसे अधिक पूजनीय दरगाह ख़्वाजा मुइनुद्दीन की है जिन्हें 'ग़रीब नवाज़' कहा जाता है।

ख़्वाजा मुइनुद्दीन की दरगाह का सबसे पहला किताबी ज़िक्र चौदहवीं शताब्दी का है। यह दरगाह शेख की सदाचारिता और धर्मनिष्ठा तथा उनके आध्यात्मिक वारिसों की महानता और राजसी मेहमानों द्वारा दिए गए प्रश्रय के कारण लोकप्रिय थी। मुहम्मद बिन तुगलक (1324–51) पहला सुल्तान था जो इस दरगाह पर आया था किंतु शेख की मज़ार पर सबसे पहली इमारत मालवा के सुल्तान गियासुद्दीन खलजी ने पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बनवाई। चूँकि यह दरगाह दिल्ली और गुजरात को जोड़ने वाले व्यापारिक मार्ग पर थी अत: अनेक यात्री यहाँ आते थे।

सोलहवीं शताब्दी तक आते-आते अजमेर की यह दरगाह बहुत ही लोकप्रिय हो गई थी। इस दरगाह को जानने वाले तीर्थयात्रियों के भजनों ने ही अकबर को यहाँ आने के लिए प्रेरित किया। अकबर यहाँ चौदह बार आया कभी तो साल में दो-तीन बार, कभी नयी जीत के लिए आशीर्वाद लेने अथवा संकल्प की पूर्ति पर या फिर पुत्रों के जन्म पर।

चित्र 6.12
शेख निज़ामुद्दीन औलिया और उनके शिष्य अमीर खुसरो का सत्रहवीं शताब्दी का एक चित्र।

➲ यह बताइए कि कलाकार शेख साहब और उनके शिष्य में कैसे फर्क डालता है?

चित्र 6.13
अजमेर की तीर्थ यात्रा पर बादशाह जहाँगीर का स्वागत करते हुए शेख। मनोहर नामक कलाकार का चित्र, लगभग 1615

➲ चित्र में कलाकार के हस्ताक्षर ढूँढ़िए।

मुल्क का चिराग

प्रत्येक सूफी दरगाह के कुछ विशिष्ट लक्षण होते थे। अठारहवीं शताब्दी में दक्कन के दरगाह कुली खान ने शेख नसीरुद्दीन चिराग-ए-देहली की दरगाह के बारे में मुरक्का-ए-देहली (दिल्ली की अलबम) में लिखा कि–

> शेख सिर्फ देहली के ही चिराग नहीं अपितु सारे मुल्क के चिराग हैं। लोगों का हुजूम यहाँ आता है खासतौर से इतवार के रोज़। दीवाली के महीने में दिल्ली की सारी आबादी दरगाह पर उमड़ आती है और हौज़ के पास तम्बू गाड़ कर वे कई दिनों तक यहाँ रहते हैं। पुराने रोगों को ठीक करने के लिए वे यहाँ नहाते हैं। हिंदू और मुसलमान एक ही भावना से आते हैं। सुबह से शाम तक लोग आते हैं और पेड़ की छाँव में हँसी-खुशी में समय बिताते हैं।

स्रोत 7

मुगल शहज़ादी जहाँआरा की तीर्थयात्रा 1643

निम्नलिखित गद्यांश जहाँआरा द्वारा रचित शेख मुइनुद्दीन चिश्ती की जीवनी *मुनिस-अल-अखाह* (यानी आत्मा का विश्वस्त) से लिया गया है।

> अल्लाहताला की तारीफ़ के बाद.... यह फकीरा जहाँआरा... राजधानी आगरा से अपने पिता (बादशाह शाहजहाँ) के संग पाक और बेजोड़ अजमेर के लिए निकली.... मैं इस बात के लिए वायदापरस्त थी कि हर रोज़ और हर मुकाम पर मैं दो बार की अख़्तियारी नमाज़ अदा करूँगी... बहुत दिन... मैं रात को बाघ के चमड़े पर नहीं सोई और अपने पैर मुकद्दस दरगाह की तरफ नहीं फैलाए, न ही मैंने अपनी पीठ उनकी तरफ की। मैं पेड़ के नीचे दिन गुज़ारती थी।
>
> वीरवार को रमज़ान के मुकद्दस महीने के चौथे रोज़ मुझे चिराग और इतर में डूबे दरगाह की ज़ियारत की खुशी हासिल हुई... चूँकि दिन की रोशनी की एक छड़ी बाकी थी मैं दरगाह के भीतर गई और अपने जर्द चेहरे को उसकी चौखट की धूल से रगड़ा। दरवाज़े से मुकद्दस दरगाह तक मैं नंगे पाँव वहाँ की ज़मीन को चूमती हुई गई। गुम्बद के भीतर रोशनी से भरी दरगाह में मैंने मज़ार के चारों ओर सात फेरे लिए। आख़िर में अपने हाथों से मुकद्दस दरगाह पर मैंने सबसे उम्दा इतर छिड़का। चूँकि गुलाबी दुपट्टा जो मेरे सिर पर था, मैं उतार चुकी थी इसलिए उसे मैंने मुकद्दस मज़ार के ऊपर रखा।...

➲ जहाँआरा कौन सी चेष्टाओं का ज़िक्र करती हैं जो शेख के प्रति उसकी भक्ति को दर्शाते हैं। दरगाह की खासियत को वह किस तरह दर्शाती है?

उन्होंने यह परंपरा 1580 तक बनाए रखी। प्रत्येक यात्रा पर बादशाह दान-भेंट दिया करते थे, जिनके ब्योरे शाही दस्तावेज़ों में दर्ज हैं। उदाहरण के लिए, 1568 में उन्होंने तीर्थयात्रियों के लिए खाना पकाने हेतु एक विशाल देग़ दरगाह को भेंट की। उन्होंने दरगाह के अहाते में एक मस्जिद भी बनवाई।

नाच और संगीत भी ज़ियारत का हिस्सा थे, खासतौर से कव्वालों द्वारा प्रस्तुत रहस्यवादी गुणगान जिससे परमानंद की भावना को उभारा जा सके। सूफ़ी संत ज़िक्र (ईश्वर का नाम-जाप) या फिर समा (श्रवण करना) यानी आध्यात्मिक संगीत की महफिल के द्वारा ईश्वर की उपासना में विश्वास रखते थे। चिश्ती उपासना पद्धति में सभा का महत्त्व इस तथ्य की पुष्टि करता है कि चिश्ती स्थानीय भक्ति परंपरा से जुड़ें।

7.3 भाषा और संपर्क

न केवल सभा में चिश्तियों ने स्थानीय भाषा को अपनाया अपितु दिल्ली में चिश्ती सिलसिले के लोग हिंदवी में बातचीत करते थे। बाबा फरीद ने भी क्षेत्रीय भाषा में काव्य रचना की जो *गुरु ग्रंथ साहिब* में संकलित है। कुछ और सूफियों ने लंबी कविताएँ मसनवी लिखीं जहाँ ईश्वर के प्रति प्रेम को मानवीय प्रेम के रूपक के द्वारा अभिव्यक्त किया गया। उदाहरणत: मलिक मोहम्मद जायसी का प्रेमाख्यान *पद्मावत* पद्मिनी और चित्तौड़ के राजा रतनसेन की प्रेम कथा के इर्द-गिर्द घूमता है। उनकी आज़माइश प्रतीक है आत्मा की परमात्मा तक पहुँचने की यात्रा का। अक्सर ख़ानक़ाहों में *समा* के दौरान ऐसे काव्यों का वाचन होता था।

सूफी कविता की एक भिन्न विधा की रचना बीजापुर कर्नाटक के आसपास हुई। यह दक्खनी (उर्दू का रूप) में लिखी छोटी कविताएँ थीं जो सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दियों में इस क्षेत्र में बसने वाले चिश्ती संतों द्वारा रची गई थीं। ये रचनाएँ संभवत: औरतों द्वारा घर का काम जैसे चक्की पीसते और चरखा कातते हुए गाई जाती थीं। कुछ और रचनाएँ *लोरीनामा* और *शादीनामा* के रूप में लिखी गईं। यह संभव है कि इस क्षेत्र के सूफी यहाँ पहले से चलती आई भक्ति परंपरा से प्रभावित हुए।

स्रोत 8

चरखानामा

यह गीत चरखे के चलने की धुन पर आधारित है :

जैसे आप रुई लेते हैं,
आप *ज़िक्र-ए-जाली* करें।
जैसे आप रुई को धुनते हैं,
आप *ज़िक्र-ए-कल्बी* करें।
जैसे आप धागे को फिरकी पर लपेटते हैं,
आप *ज़िक्र-ए-आइनी* करें।
ज़िक्र पेट से छाती तक उच्चारित किया जाए।
उसे धागे की तरह गले से उतारें
स्वास के धागे एक-एक गिनें, बहन
चौबीस हज़ार तक गिनें
सुबह-शाम ऐसा करें
और इसे तोहफे में अपने पीर को पेश करें।

अमीर खुसरो और *कौल*

अमीर खुसरो (1253-1323) महान कवि, संगीतज्ञ तथा शेख निज़ामुद्दीन औलिया के अनुयायी थे। उन्होंने *कौल* (अरबी शब्द जिसका अर्थ है कहावत) का प्रचलन करके चिश्ती *समा* को एक विशिष्ट आकार दिया। कौल को कव्वाली के शुरू और आखिर में गाया जाता था। इसके बाद सूफी कविता का पाठ होता था जो फारसी, हिंदवी अथवा उर्दू में होती थी और कभी-कभी इन तीनों ही भाषाओं के शब्द इसमें मौजूद होते थे। शेख निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह पर गाने वाले कव्वाल अपने गायन की शुरुआत कौल से करते हैं। उपमहाद्वीप की सभी दरगाहों पर कव्वाली गाई जाती है।

चित्र 6.14
निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह की कव्वाली

➲ इस गाने के विचार और अभिव्यक्ति के तरीके जहाँआरा की *ज़ियारत* (स्रोत 7) में वर्णित विचारों और अभिव्यक्ति के तरीकों से कैसे समान और भिन्न हैं?

लिंगायतों द्वारा लिखे गए कन्नड़ के *वचन* और पंढरपुर के संतों द्वारा लिखे मराठी के *अभंगों* ने भी उन पर अपना प्रभाव छोड़ा। इस माध्यम से इस्लाम दक्कन के गाँवों में जगह पाने में सफल हुआ।

7.4 सूफ़ी और राज्य

चिश्ती संप्रदाय की एक और विशेषता संयम और सादगी का जीवन था जिसमें सत्ता से दूर रहने पर बल दिया जाता था। किंतु इसका मतलब यह नहीं था कि राजनीतिक सत्ता से अलगाव का भाव रखा जाए। सत्ताधारी विशिष्ट वर्ग अगर बिना माँगे अनुदान या भेंट देता था तो सूफी संत उसे स्वीकार करते थे। सुल्तानों ने ख़ानक़ाहों को कर मुक्त (इनाम) भूमि अनुदान में दी और दान संबंधी न्यास स्थापित किए।

चिश्ती धन और सामान के रूप में दान स्वीकार करते थे किंतु इनको सँजोने के बजाय खाने, कपड़े, रहने की व्यवस्था और अनुष्ठानों जैसे *समा* की महफिलों पर पूरी तरह खर्च कर देते थे। इस तरह शेख के नैतिक अधिकार की पुष्टि होती थी और आम लोगों का उनकी ओर झुकाव बढ़ता था। सूफ़ी संतों की धर्मनिष्ठा, विद्वता और लोगों द्वारा उनकी चमत्कारी शक्ति में विश्वास उनकी लोकप्रियता का कारण था। इन वजहों से शासक भी उनका समर्थन हासिल करना चाहते थे।

शासक न केवल सूफ़ी संतों से संपर्क रखना चाहते थे अपितु उनके समर्थन के भी कायल थे। जब तुर्कों ने दिल्ली सल्तनत की स्थापना की तो *उलमा* द्वारा *शरिया* लागू किए जाने की माँग को ठुकरा दिया। सुल्तान जानते थे कि उनकी अधिकांश प्रजा इस्लाम धर्म मानने वाली नहीं है। ऐसे समय सुल्तानों ने सूफ़ी संतों का सहारा लिया जो अपनी आध्यात्मिक सत्ता को अल्लाह से उद्भूत मानते थे और उलमा द्वारा शरिया की व्याख्या पर निर्भर नहीं थे।

यह भी माना जाता था कि औलिया मध्यस्थ के रूप में ईश्वर से लोगों की ऐहिक और आध्यात्मिक दशा में सुधार लाने का कार्य करते हैं। शायद इसलिए शासक अपनी कब्र सूफ़ी दरगाहों और ख़ानक़ाहों के नज़दीक बनाना चाहते थे।

सुल्तानों और सूफ़ियों के बीच तनाव के उदाहरण भी मौजूद हैं। अपनी सत्ता का दावा करने के लिए दोनों ही कुछ आचारों पर बल देते थे जैसे झुक कर प्रणाम और कदम चूमना। कभी-कभी सूफ़ी शेखों को आडंबरपूर्ण पदवी से संबोधित किया जाता था। उदाहरणत:, शेख निज़ामुद्दीन औलिया के अनुयायी उन्हें *सुल्तान-उल-मशेख* (अर्थात शेखों में सुल्तान) कह कर संबोधित करते थे।

सूफ़ी और राज्य

कुछ अन्य सूफ़ी भी, जैसे कि दिल्ली सल्तनत के युग में सुहरावर्दी और मुग़लयुगीन नक्शबंदी, राज्य से जुड़े रहे। लेकिन उनके जुड़ाव के तरीके चिश्तियों से भिन्न थे। कभी-कभी सूफ़ी दरबारी पद भी स्वीकार कर लेते थे।

स्रोत 9

शाही भेंट अस्वीकार

यह उद्धरण सूफ़ी ग्रंथ से है जो शेख निज़ामुद्दीन औलिया की ख़ानक़ाह में 313 में हुई घटना का वर्णन करता है :

मेरी (अमीर हसन सिजज़ी) अच्छी किस्मत थी कि मैं उनके (निज़ामुद्दीन औलिया) कदम चूम सका... इस समय एक स्थानीय शासक ने दो बगीचे और बहुत सी ज़मीन का पट्टा शेख साहब को भेजा है। साथ ही इनके रखरखाव के लिए औज़ार व आवश्यक वस्तुएँ भेजी हैं। शासक ने यह भी साफ किया है कि वह बगीचों और ज़मीन पर अपना हक कहते हैं: "इस ज़मीन, खेत और बगीचे का मुझे क्या करना है?... हमारे कोई भी आध्यात्मिक गुरु ने इस तरह का काम नहीं किया।"

फिर उन्होंने एक उचित कहानी सुनाई "...सुल्तान ग़ियासुद्दीन जो उस समय उलुग़ ख़ान के नाम से जाने जाते थे, शेख फ़रीदुद्दीन से मिलने आए। उन्होंने शेख को कुछ धनराशि और चार गाँवों का पêा भेंट किया। धन दरवेशों के लिए था और ज़मीन शेख के अपने इस्तेमाल के लिए थी। मुस्कुराते हुए शेख-अल-इस्लाम (फ़रीदुद्दीन) ने कहा: मुझे धन दे दो मैं इसे दरवेशों में बाँट दूँगा, पर जहाँ तक ज़मीन के पट्टे का सवाल है उसे उन लोगों को दे दो जिन्हें उनकी कामना है....।"

➲ चर्चा कीजिए...

धार्मिक और राजनीतिक नेताओं में टकराव के संभावित स्रोत क्या-क्या हैं?

➲ सूफ़ियों और राज्य के बीच संबंध का कौन सा पहलू इस कहानी से स्पष्ट होता है? यह किस्सा हमें शेख और उनके अनुयायियों के बीच संपर्क के तरीकों के बारे में क्या बताता है?

चित्र 6.15
अकबर की राजधानी फतेहपुर सीकरी में बाबा फरीद के वंशज, शेख सलीम चिश्ती की दरगाह। यह दरगाह चिश्तियों और मुग़ल राज्य के घनिष्ठ संबंधों का प्रतीक थी।

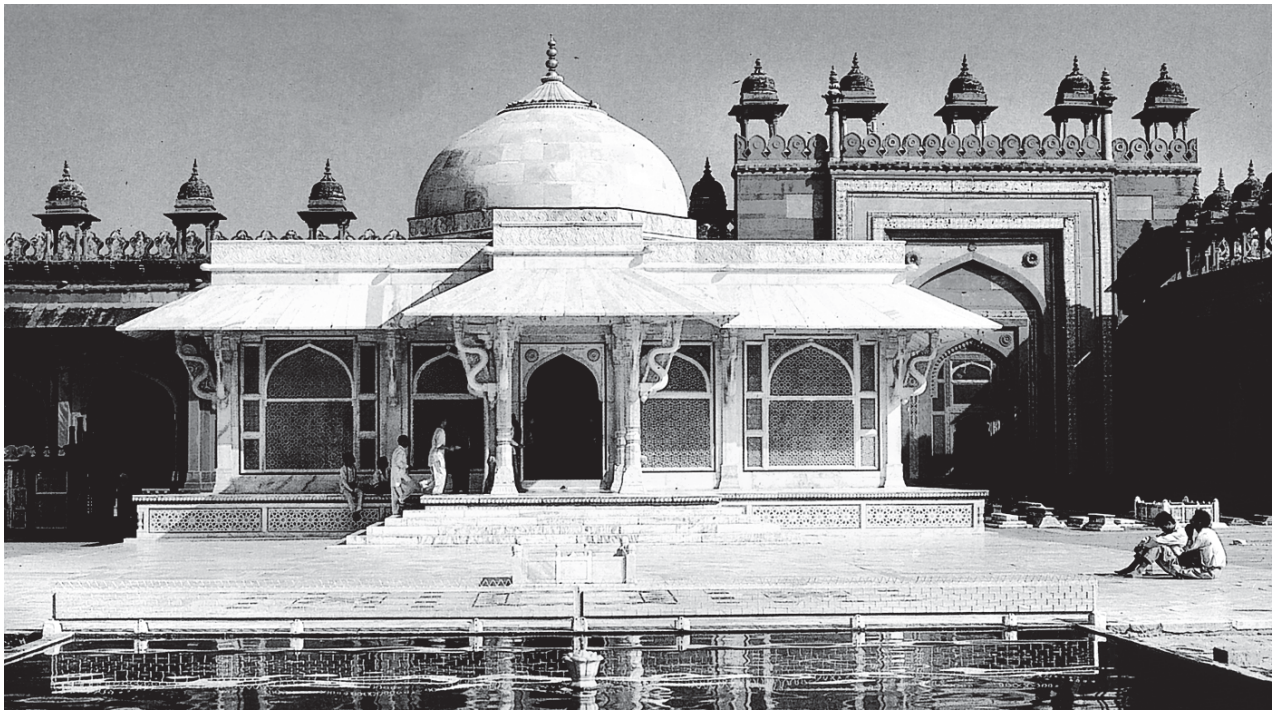

स्रोत 10

एक ईश्वर

यह रचना कबीर की मानी जाती है:

हे भाई यह बताओ, किस तरह हो सकता है
कि संसार के एक नहीं दो स्वामी हों?
किसने तुम्हें भ्रमित किया है?
ईश्वर को अनेक नामों से पुकारा जाता है: जैसे अल्लाह, राम, करीम, केशव, हरि तथा हज़रत।
विभिन्नताएँ तो केवल शब्दों में हैं जिनका आविष्कार हम स्वयं करते हैं।
कबीर कहते हैं दोनों ही भुलावे में हैं।
इनमें से कोई एक राम को प्राप्त नहीं कर सकता।
एक बकरे को मारता है और दूसरा गाय को।
वे पूरा जीवन विवादों में ही गँवा देते हैं।

➲ विभिन्न समुदायों के ईश्वर के बीच पार्थक्य के खिलाफ़ कबीर किस तरह की दलील पेश करते हैं?

8. नवीन भक्ति पंथ उत्तरी भारत में संवाद और असहमति

अनेक संत कवियों ने नवीन सामाजिक परिस्थितियों, विचारों और संस्थाओं के साथ स्पष्ट और सांकेतिक दोनों किस्म के संवाद कायम किए। इस काल के तीन प्रमुख और प्रभावकारी व्यक्तियों पर दृष्टिपात कर हम देखेंगे कि इन संवादों को किस भाँति अभिव्यक्ति मिली।

8.1 दैवीय वस्त्र की बुनाई : कबीर

कबीर (लगभग चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी) इस पृष्ठभूमि में उभरने वाले संत कवियों में अप्रतिम थे। इतिहासकारों ने उनके जीवन और काल का अध्ययन उनके काव्य और बाद में लिखी गई जीवनियों के आधार पर किया है। यह प्रक्रिया कई वजहों से चुनौतीपूर्ण रही है।

कबीर की बानी तीन विशिष्ट किंतु परस्पर व्याप्त परिपाटियों में संकलित है। *कबीर बीजक* कबीर पंथियों द्वारा वाराणसी तथा उत्तर प्रदेश के अन्य स्थानों पर संरक्षित है। *कबीर ग्रंथावली* का संबंध राजस्थान के दादू पंथियों से है। इसके अतिरिक्त कबीर के कई पद *आदि ग्रंथ साहिब* (देखिए अनुभाग 8.2) में संकलित हैं। लगभग सभी पांडुलिपि संकलन कबीर की मृत्यु के बहुत बाद में किए गए। उन्नीसवीं शताब्दी में उनके पद संग्रहों को बंगाल, गुजरात और महाराष्ट्र जैसे क्षेत्रों में मुद्रांकित किया गया।

कबीर की रचनाएँ अनेक भाषाओं और बोलियों में मिलती हैं। इनमें से कुछ निर्गुण कवियों की खास बोली संत भाषा में हैं। कुछ रचनाएँ जिन्हें उलटबाँसी (उलटी कही उक्तियाँ) के नाम से जाना जाता है, इस प्रकार से लिखी गई कि उनके रोज़मर्रा के अर्थ को उलट दिया गया। इन उलटबाँसी रचनाओं का तात्पर्य परम सत्य के स्वरूप को समझने की मुश्किल दर्शाता है। "केवल ज फूल्या फूल बिन" और "समंदरि लागि आगि" जैसी अभिव्यंजनाएँ कबीर की रहस्यवादी अनुभूतियों को दर्शाती हैं।

कबीर बानी की एक और विशिष्टता यह है कि उन्होंने परम सत्य को वर्णित करने के लिए अनेक परिपाटियों का सहारा लिया। इस्लामी दर्शन की तरह वे इस सत्य को अल्लाह, खुदा, हज़रत और पीर कहते हैं। वेदांत दर्शन से प्रभावित वे सत्य को अलख (अदृश्य), निराकार, ब्रह्मन् और आत्मन् कह कर भी संबोधित करते हैं। कबीर कुछ और शब्द-पदों का इस्तेमाल करते हैं जैसे *शब्द* और *शून्य*, यह अभिव्यंजनाएँ योगी परंपरा से ली गई हैं।

विविध और कभी तो विरोधात्मक विचार इन पदों में व्यंजित होते हैं। कुछ कविताएँ इस्लामी दर्शन के एकेश्वरवाद और मूर्तिभंजन का समर्थन करते हुए हिंदू धर्म के बहुदेववाद और मूर्तिपूजा का खंडन करती हैं। अन्य कविताएँ *ज़िक्र* और *इश्क* के सूफ़ी सिद्धांतों का इस्तेमाल 'नाम सिमरन' की हिंदू परंपरा की अभिव्यक्ति करने के लिए करती हैं।

क्या ये सभी कविताएँ कबीर द्वारा रची गईं? यह कहना मुश्किल है। विद्वान पदों की भाषा शैली और विषयवस्तु के आधार पर यह स्थापित करने की कोशिश करते हैं कि कौन से पद कबीर के हैं। कबीर की समृद्ध परंपरा इस तथ्य की द्योतक है कि कबीर पहले और आज भी उन लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं जो सत्य की खोज में रूढ़िवादी,

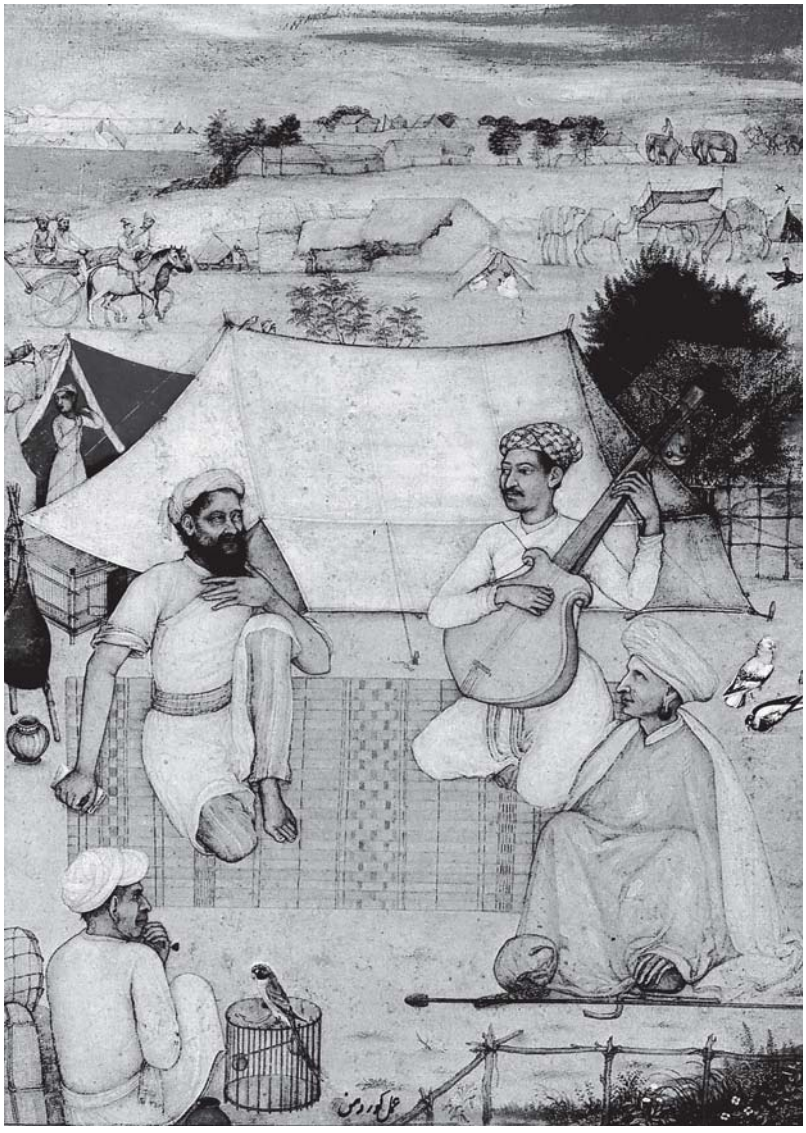

चित्र 6.16
राह-चलते संगीतकार, सत्रहवीं शताब्दी का एक मुग़ल चित्र। यह संभव है कि ऐसे गायक संतों की रचनाओं को गाते थे।

धार्मिक, सामाजिक संस्थाओं, विचारों और व्यवहारों को प्रश्नवाचक दृष्टि से देखते हैं।

कबीर के विचार संभवत: अवध प्रदेश (उत्तर प्रदेश) की सूफ़ी और योगी परंपरा के साथ हुए संवाद और विवाद के माध्यम से घनीभूत हुए। कबीर की विरासत पर उन अनेक गुटों ने दावा किया जो उन्हें याद करते थे और आज भी कर रहे हैं।

यह तथ्य इस बात से उजागर होता है कि इस विषय पर आज भी विवाद है कि वह जन्म से हिंदू थे अथवा मुसलमान और यह विवाद अनेक संत जीवनियों में उभर कर आते हैं जो सत्रहवीं शताब्दी यानी उनकी मृत्यु के 200 वर्ष बाद से लिखी गईं।

वैष्णव परंपरा की जीवनियों में कबीर (कबीर का अरबी में अर्थ है महान) को जन्म से हिंदू कबीरदास बताया गया है। किंतु उनका पालन गरीब मुसलमान परिवार में हुआ जो जुलाहे थे और कुछ समय पहले ही इस्लाम धर्म के अनुयायी बने थे। इन जीवनियों में यह भी कहा जाता है कि कबीर को भक्ति का मार्ग दिखाने वाले गुरु रामानंद थे।

किंतु कबीर के पद, *गुरु* और *सतगुरु* संबोधन का इस्तेमाल किसी विशेष व्यक्ति के संदर्भ में नहीं करते। इतिहासकारों का यह भी मानना है कि कबीर और रामानंद का समकालीन होना मुश्किल प्रतीत होता है जब तक कि उन्हें बहुत ही लंबी आयु न दे दी जाए। अत: वे परंपराएँ जो दोनों को जोड़ती हैं, स्वीकार नहीं की जा सकतीं। किंतु उनसे यह अवश्य पता चलता है कि कबीर की विरासत बाद की पीढ़ी के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण थी।

8.2 बाबा गुरु नानक और पवित्र शब्द

बाबा गुरु नानक (1469–1539) का जन्म एक हिंदू व्यापारी परिवार में हुआ। उनका जन्मस्थल मुख्यत: इस्लाम धर्मावलंबी पंजाब का ननकाना गाँव था जो रावी नदी के पास था। उन्होंने फारसी पढ़ी और लेखाकार के कार्य का प्रशिक्षण प्राप्त किया। उनका विवाह छोटी आयु में हो गया था किंतु वह अपना अधिक समय सूफ़ी और भक्त संतों के बीच गुज़ारते थे। उन्होंने दूर-दराज़ की यात्राएँ भी कीं।

बाबा गुरु नानक का संदेश उनके भजनों और उपदेशों में निहित है। इनसे पता लगता है कि उन्होंने निर्गुण भक्ति का प्रचार किया। धर्म के सभी बाहरी आडंबरों को उन्होंने अस्वीकार किया जैसे यज्ञ, आनुष्ठानिक स्नान, मूर्ति पूजा व कठोर तप। हिन्दू और मुसलमानों के धर्मग्रंथों को भी उन्होंने नकारा। बाबा गुरू नानक के लिए परम पूर्ण *रब* का कोई लिंग या आकार नहीं था। उन्होंने इस रब की उपासना के लिए एक सरल

उपाय बताया और वह था उनका निरंतर स्मरण व नाम का जाप। उन्होंने अपने विचार पंजाबी भाषा में *शबद* के माध्यम से सामने रखे। बाबा गुरु नानक यह शबद अलग-अलग रागों में गाते थे और उनका सेवक मरदाना रबाब बजाकर उनका साथ देता था।

बाबा गुरु नानक ने अपने अनुयायियों को एक समुदाय में संगठित किया। सामुदायिक उपासना (संगत) के नियम निर्धारित किए जहाँ सामूहिक रूप से पाठ होता था। उन्होंने अपने अनुयायी अंगद को अपने बाद गुरुपद पर आसीन किया; इस परिपाटी का पालन 200 वर्षों तक होता रहा।

ऐसा प्रतीत होता है कि बाबा गुरु नानक किसी नवीन धर्म की संस्थापना नहीं करना चाहते थे, किंतु उनकी मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों ने अपने आचार-व्यवहार को सुगठित कर अपने को हिंदू और मुसलमान दोनों से पृथक चिह्नित किया। पाँचवें गुरु अर्जन देव जी ने बाबा गुरु नानक तथा उनके चार उत्तराधिकारियों, बाबा फरीद, रविदास और कबीर की बानी को *आदि ग्रंथ साहिब* में संकलित किया। इन को "गुरबानी" कहा जाता है और ये अनेक भाषाओं में रचे गए। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दसवें गुरु गोबिन्द सिंह जी ने नवें गुरु तेग बहादुर की रचनाओं को भी इसमें शामिल किया और इस ग्रंथ को *गुरु ग्रंथ साहिब* कहा गया। गुरु गोबिन्द सिंह ने खालसा पंथ (पवित्रों की सेना) की नींव डाली और उनके पाँच प्रतीकों का वर्णन किया : बिना कटे केश, कृपाण, कच्छ, कंघा और लोहे का कड़ा। गुरु गोबिन्द सिंह के नेतृत्व में समुदाय एक सामाजिक, धार्मिक और सैन्य बल के रूप में संगठित होकर सामने आया।

8.3 मीराबाई, भक्तिमय राजकुमारी

मीराबाई (लगभग पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी) संभवत: भक्ति परंपरा की सबसे सुप्रसिद्ध कवयित्री हैं। उनकी जीवनी उनके लिखे भजनों के आधार पर संकलित की गई है जो शताब्दियों तक मौखिक रूप से संप्रेषित होते रहे। मीराबाई मारवाड़ के मेड़ता जिले की एक राजपूत राजकुमारी थीं जिनका विवाह उनकी इच्छा के विरुद्ध मेवाड़ के सिसोदिया कुल में कर दिया गया। उन्होंने अपने पति की आज्ञा की अवहेलना करते हुए पत्नी और माँ के परंपरागत दायित्वों को निभाने से इनकार किया और विष्णु के अवतार कृष्ण को अपना एकमात्र पति स्वीकार किया। उनके ससुराल वालों ने उन्हें विष देने का प्रयत्न किया। किन्तु वह राजभवन से निकल कर एक घुमक्कड़ गायिका बन गईं।

चित्र 6.17
पंद्रहवीं शताब्दी की तमिलनाडु से प्राप्त पत्थर की मूर्ति। यहाँ कृष्ण को बाँसुरी बजाते दिखाया गया है। मीराबाई कृष्ण के इसी रूप को पूजती थीं।

स्रोत 11

कृष्ण के प्रति प्रेम

यह मीराबाई द्वारा रचित एक गीत का अंश है:

अगर-चंदण की चिता बणाऊँ, अपणै हाथ जला जा।
जल-बल भयी भसम की ढेरी, अपणै अंग लगा जा।
मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा।।

एक और पद में वह कहती हैं:

राणों जी मेवाड़ो म्हारो काँई करसी,
म्हे तो गोबिंद रा गुण गास्याँ।
राणों जी रूससी गाँव रखासी, हरी रूस्याँ कुमलास्या।।

➲ यह उद्धरण राणा के प्रति मीराबाई के रुख के बारे में क्या बताता है?

उन्होंने अंतर्मन की भावप्रवणता को व्यक्त करने वाले अनेक गीतों की रचना की।

कुछ परंपराओं के अनुसार मीरा के गुरु रैदास थे जो एक चर्मकार थे। इससे पता चलता है कि मीरा ने जातिवादी समाज की रूढ़ियों का उल्लंघन किया। ऐसा माना जाता है कि अपने पति के राजमहल के ऐश्वर्य को त्याग कर उन्होंने विधवा के सफ़ेद वस्त्र अथवा संन्यासिनी के जोगिया वस्त्र धारण किए।

हालाँकि मीराबाई के आसपास अनुयायियों का जमघट नहीं लगा और उन्होंने किसी निजी मंडली की नींव नहीं डाली किंतु फिर भी वह शताब्दियों से प्रेरणा का स्रोत रही हैं। उनके रचित पद आज भी स्त्रियों और पुरुषों द्वारा गाए जाते हैं। खासतौर से गुजरात व राजस्थान के गरीब लोगों द्वारा जिन्हें "नीच जाति" का समझा जाता है।

शंकरदेव

पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में असम में शंकरदेव वैष्णव धर्म के मुख्य प्रचारक के रूप में उभरे। उनके उपदेशों को 'भगवती धर्म' कह कर संबोधित किया जाता है क्योंकि वे भगवद् गीता और भागवत पुराण पर आधारित थे। ये उपदेश सर्वोच्च देवता विष्णु के प्रति पूर्ण समर्पण भाव पर केंद्रित थे। शंकरदेव ने भक्ति के लिए नाम कीर्तन और श्रद्धावान भक्तों के सत्संग में ईश्वर के नाम उच्चारण पर बल दिया। उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार के लिए सत्र या मठ तथा नामघर जैसे प्रार्थनागृह की स्थापना को बढ़ावा दिया। इस क्षेत्र में ये संस्थाएँ और आचार आज भी पनप रहे हैं। शंकरदेव की प्रमुख काव्य रचनाओं में *कीर्तनघोष* भी है।

➲ चर्चा कीजिए...

आपको क्यों लगता है कबीर, बाबा गुरु नानक और मीराबाई इक्कीसवीं शताब्दी में भी महत्त्वपूर्ण हैं?

9. धार्मिक परंपराओं के इतिहासों का पुनर्निर्माण

हमने देखा कि इतिहासकार धार्मिक परंपरा के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए अनेक स्रोतों का उपयोग करते हैं – जैसे मूर्तिकला, स्थापत्य,

सूफ़ी परंपरा के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए विभिन्न स्रोत

सूफ़ी ख़ानक़ाहों के आसपास अनेक ग्रंथों की रचना हुई जिनमें शामिल हैं:

1. सूफ़ी विचारों और आचारों पर प्रबंध पुस्तिका *कश्फ-उल-महजुब* इस विधा का एक उदाहरण है। यह पुस्तक अली बिन उस्मान हुजविरी (मृत्यु 1071) द्वारा लिखी गई। साहित्य इतिहासकारों को यह जानने में मदद करता है कि उपमहाद्वीप के बाहर की परंपराओं ने भारत में सूफ़ी चिंतन को किस तरह प्रभावित किया।
2. *मुलफ़ुज़ात (सूफ़ी संतों की बातचीत):* *मुलफ़ुज़ात* पर एक आरंभिक ग्रंथ *फवाइद-अल-फुआद* है। यह शेख निज़ामुद्दीन औलिया की बातचीत पर आधारित एक संग्रह है जिसका संकलन प्रसिद्ध फ़ारसी कवि अमीर हसन सिजज़ी देहलवी ने किया। स्रोत 9 में इस ग्रंथ से लिया एक अंश उद्धृत है। मुलफुज़ात का संकलन विभिन्न सूफ़ी सिलसिलों के शेखों की अनुमति से हुआ। इनका उद्देश्य मुख्यत: उपदेशात्मक था। उपमहाद्वीप के अनेक भागों से जिसमें दक्कन शामिल है, अनेक उदाहरण इस तरह के मिलते हैं। कई शताब्दियों तक इनका संकलन होता रहा।
3. *मक्तुबात* (लिखे हुए पत्रों का संकलन): ये वे पत्र थे जो सूफ़ी संतों द्वारा अपने अनुयायियों और सहयोगियों को लिखे गए। इन पत्रों से धार्मिक सत्य के बारे में शेख के अनुभवों का वर्णन मिलता है जिसे वह अन्य लोगों के साथ बाँटना चाहते थे। वह इन पत्रों में अपने अनुयायियों के लौकिक और आध्यात्मिक जीवन, उनकी आकांक्षाओं और मुश्किलों पर भी टिप्पणी करते थे। विद्वान बहुधा सत्रहवीं शताब्दी के नक्शबंदी सिलसिले के शेख अहमद सरहिंदी (मृत्यु 1624) के लिखे *मक्तुबात-ए-इमाम रब्बानी* पर चर्चा करते हैं। इस शेख की विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन वे बादशाह अकबर की उदारवादी और असांप्रदायिक विचारधारा से करते हैं।
4. *तज़किरा* (सूफ़ी संतों की जीवनियों का स्मरण): भारत में लिखा पहला सूफ़ी तज़किरा मीर खुर्द किरमानी का *सियार-उल-औलिया* है। यह तज़किरा मुख्यत: चिश्ती संतों के बारे में था। सबसे प्रसिद्ध तज़किरा अब्दुल हक मुहाद्दिस देहलवी (मृत्यु 1642) का *अख्बार-उल-अखयार* है। तज़किरा के लेखकों का मुख्य उद्देश्य अपने सिलसिले की प्रधानता स्थापित करना और साथ ही अपनी आध्यात्मिक वंशावली की महिमा का बखान करना था। तज़किरे के बहुत से वर्णन अद्‌भुत और अविश्वसनीय हैं किंतु फिर भी वे इतिहासकारों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं और सूफ़ी परंपरा के स्वरूप को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं।

यह याद रखने योग्य है कि प्रत्येक परिपाटी जिसका ज़िक्र इस अध्याय में हुआ है उससे अनेक साहित्यिक और मौखिक संदेश जुड़े हुए हैं। इनमें से कुछ को सुरक्षित किया गया। बहुत सी सूचनाएँ ऐसी थी जिनमें संप्रेषण के दौरान संशोधन हो गया, व कुछ संदेश ऐसे भी थे जो हमेशा के लिए विस्मृत हो गए।

धर्मगुरुओं से जुड़ी कहानियाँ, दैवीय स्वरूप को समझने को उत्सुक स्त्री और पुरुषों द्वारा लिखी गई काव्य रचनाएँ आदि।

जैसा हमने देखा (अध्याय 1 और 4) मूर्तिकला और स्थापत्यकला का हम इस उद्देश्य के लिए तभी इस्तेमाल कर सकते हैं जब हम उसके संदर्भ को अच्छी तरह समझें अर्थात इन आकृतियों और इमारतों को बनाने और उनका इस्तेमाल करने वालों के विचारों, आस्थाओं और आचारों की हमें समझ हो।

धार्मिक विश्वासों से संबंधित साहित्यिक परंपराओं के बारे में क्या कहा जा सकता है? यदि हम इस अध्याय में वर्णित स्रोतों पर दृष्टिपात करें तो हम देखेंगे कि उनमें काफ़ी विविधता है, और वे कई भाषाओं व शैलियों में लिखे गए हैं। कुछ स्रोत सरल, स्पष्ट भाषा में हैं जैसे कि बसवन्ना के वचन जबकि कुछ अन्य अलंकृत फ़ारसी में लिखे गए मुग़ल सम्राटों के फरमानों का रूप धारण कर लेते हैं। प्रत्येक किस्म के मूल-पाठ को समझने के लिए तरह-तरह का कौशल चाहिए: कई भाषाओं की जानकारी, लेकिन इसके अलावा इतिहासकार को प्रत्येक विधि की शैली व शैलियों में सूक्ष्म अंतरों को भी पहचानना पड़ता है।

लगभग सभी धार्मिक परिपाटियाँ आज भी पनप रही हैं। परिपाटी की यह निरन्तरता इतिहासकारों के लिए लाभदायक सिद्ध होती है क्योंकि वे सामयिक आचार-व्यवहार की तुलना उस परिपाटी से कर सकते हैं जिसका वर्णन साहित्य और पुरानी चित्रकला में मिलता है और साथ ही उस परम्परा में आए परिवर्तनों की रूपरेखा भी तैयार कर सकते हैं किंतु चूँकि ये परंपराएँ आज भी लोगों के जीवन का हिस्सा हैं। लोगों के लिए यह मानना आसान नहीं होता कि समय के साथ संभवत: इन परिपाटियों में बदलाव आया होगा। इतिहासकारों के लिए चुनौती यह है कि वे इस तथ्य की ओर जागरूक हों कि धार्मिक परंपराएँ भी अन्य परंपराओं की तरह परिवर्तनशील हैं।

काल-रेखा

भारतीय उपमहाद्वीप के कुछ मुख्य धार्मिक शिक्षक

लगभग 500-800 ई.पू.	तमिलनाडु में अप्पार, संबंदर, सुंदरमूर्ति
लगभग 800-900 ईसवी	तमिलनाडु में नम्मलवर, मणिक्वचक्कार, अंडाल, तोंदराडिप्पोडी
लगभग 1000-1100 ईसवी	पंजाब में अल हुजविरी, दाता गंज बक्श; तमिलनाडु में रामानुजाचार्य
लगभग 1100-1200 ईसवी	कर्नाटक में बसवन्ना
लगभग 1200-1300 ईसवी	महाराष्ट्र में ज्ञानदेव मुक्ताबाई; राजस्थान में ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती; पंजाब में बहादुद्दीन जकारिया और फरीदुद्दीन गंज-ए-शकर; दिल्ली में कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी
लगभग 1300-1400 ईसवी	कश्मीर में लाल देद; सिंध में लाल शाहबाज़ कलंदर; दिल्ली में निज़ामुद्दीन औलिया; उत्तर प्रदेश में रामानंद; महाराष्ट्र में चोखमेला; बिहार में शराफुद्दीन याह्या मनेरी
लगभग 1400-1500 ईसवी	उत्तर प्रदेश में कबीर, रैदास, सूरदास; पंजाब में बाबा गुरु नानक; गुजरात में बल्लभाचार्य; ग्वालियर में अबदुल्ला सत्तारी; गुजरात में मुहम्मद शाह आलम; गुलबर्गा में मीर सैयद मौहम्मद गेसू दराज़; असम में शंकरदेव; महाराष्ट्र में तुकाराम
लगभग 1500-1600 ईसवी	बंगाल में श्री चैतन्य; राजस्थान में मीराबाई; उत्तर प्रदेश में शेख अब्दुल कुद्दस गंगोही, मलिक मौहम्मद जायसी, तुलसीदास
लगभग 1600-1700 ईसवी	हरियाणा में शेख अहमद सरहिंदी; पंजाब में मियाँ मीर

नोट : यह कालावधियाँ इन शिक्षकों के अनुमानित काल को इंगित करती हैं।

उत्तर दीजिए (लगभग 100-150 शब्दों में)

1. उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए कि संप्रदाय के समन्वय से इतिहासकार क्या अर्थ निकालते हैं?
2. किस हद तक उपमहाद्वीप में पाई जाने वाली मस्जिदों का स्थापत्य स्थानीय परिपाटी और सार्वभौमिक आदर्शों का सम्मिश्रण है?
3. *बे शरिया* और *बा शरिया* सूफी परंपरा के बीच एकरूपता और अंतर, दोनों को स्पष्ट कीजिए।
4. चर्चा कीजिए कि अलवार, नयनार और वीरशैवों ने किस प्रकार जाति प्रथा की आलोचना प्रस्तुत की?
5. कबीर अथवा बाबा गुरु नानक के मुख्य उपदेशों का वर्णन कीजिए। इन उपदेशों का किस तरह संप्रेषण हुआ।

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250-300 शब्दों में)

6. सूफ़ी मत के मुख्य धार्मिक विश्वासों और आचारों की व्याख्या कीजिए।
7. क्यों और किस तरह शासकों ने नयनार और सूफ़ी संतों से अपने संबंध बनाने का प्रयास किया?
8. उदाहरण सहित विश्लेषण कीजिए कि क्यों भक्ति और सूफ़ी चिंतकों ने अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया?
9. इस अध्याय में प्रयुक्त किन्हीं पाँच स्रोतों का अध्ययन कीजिए और उनमें निहित सामाजिक व धार्मिक विचारों पर चर्चा कीजिए।

मानचित्र कार्य

10. भारत के एक मानचित्र पर, 3 सूफ़ी स्थल और 3 वे स्थल जो मंदिरों (विष्णु, शिव तथा देवी से जुड़ा एक मंदिर) से संबद्ध हैं, निर्दिष्ट कीजिए।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. इस अध्याय में वर्णित किन्हीं 2 धार्मिक उपदेशकों/चिंतकों/संतों का चयन कीजिए और उनके जीवन व उपदेशों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कीजिए। इनके समय, कार्यक्षेत्र और मुख्य विचारों के बारे में एक विवरण तैयार कीजिए। हमें इनके बारे में कैसे जानकारी मिलती है और हमें क्यों लगता है कि वे महत्त्वपूर्ण हैं।

12. इस अध्याय में वर्णित सूफ़ी व देव स्थलों से संबद्ध तीर्थयात्रा के आचारों के बारे में अधिक जानकारी हासिल कीजिए। क्या यह यात्राएँ अभी भी की जाती हैं? इन स्थानों पर कौन लोग और कब-कब जाते हैं? वे यहाँ क्यों जाते हैं? इन तीर्थयात्राओं से जुड़ी गतिविधियाँ कौन सी हैं?

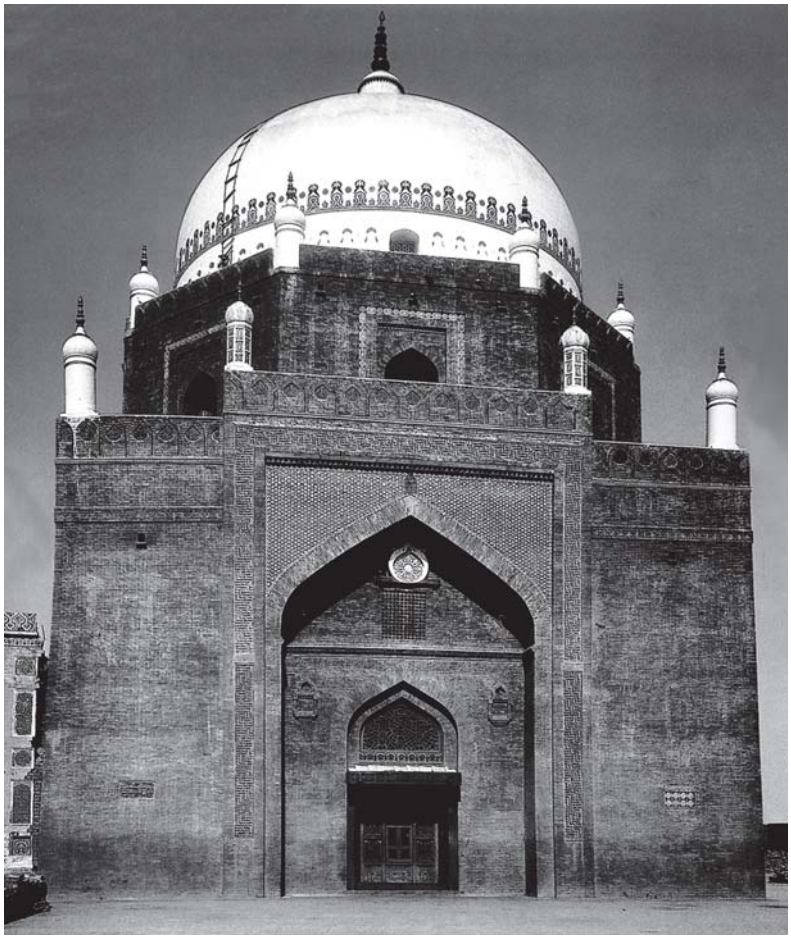

चित्र 6.18
शेख़ बहाउद्दीन ज़कारिया की दरगाह, मुल्तान (पाकिस्तान)

याद आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए:

रिचर्ड एम. ऐटन (संपा.) 2003
इंडियाज़ इसलामिक ट्रेडिशन्स,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
न्यू दिल्ली

जॉन स्ट्रेटन हावले, 2005
थ्री भक्ति वाइसिस
मीराबाई, सूरदास एंड कबीर इन देयर टाइम्स एंड अवर्स,
ऑक्सफोर्ड यूनिवसिटी प्रेस
न्यू दिल्ली

डेविड एन. लोरेंज (संपा.), 2004
रिलिजियस मूवमेंट्स इन
साउथ एशिया 600–1800,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
न्यू दिल्ली

ए.के. रामानुजन, 1981
हाइम्स फॉर दि ड्राउनिंग,
पेंगुइन, न्यू दिल्ली

एन्नेमरी शिमेल, 1975
मिस्टीकल डाइमेंशन्स ऑफ इसलाम,
यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ कारोलीना
प्रेस, चैपल हिल

डेविड स्मिथ, 1998
द डांस ऑफ शिवा: रिलिजन आर्ट एंड पोइट्री इन साउथ इंडिया
कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली

कारलोटे वोडेविले, 1997
ए वीवर नेम्ड कबीर,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
न्यू दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाईट देख सकते हैं
http:/www.alif-india.com

विषय सात

एक साम्राज्य की राजधानी: विजयनगर

(लगभग चौदहवीं से सोलहवीं सदी तक)

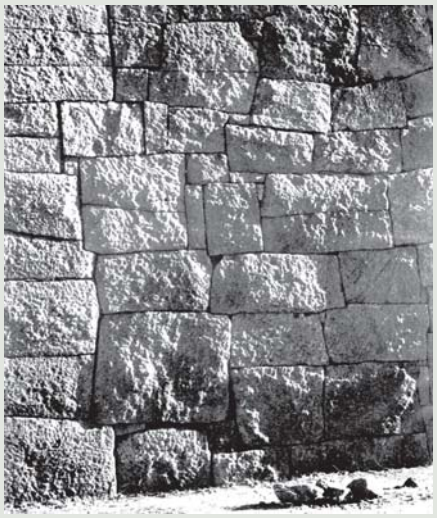

चित्र 7.1
विजयनगर के शहर के चारों ओर बनाई गई पत्थर की दीवार का एक भाग

विजयनगर अथवा "विजय का शहर" एक शहर और एक साम्राज्य, दोनों के लिए प्रयुक्त नाम था। इस साम्राज्य की स्थापना चौदहवीं शताब्दी में की गई थी। अपने चरमोत्कर्ष पर यह उत्तर में कृष्णा नदी से लेकर प्रायद्वीप के सुदूर दक्षिण तक फैला हुआ था। 1565 में इस पर आक्रमण कर इसे लूटा गया और बाद में यह उजड़ गया। हालाँकि सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दियों तक यह पूरी तरह से विनष्ट हो गया था, पर फिर भी कृष्णा-तुंगभद्रा दोआब क्षेत्र के निवासियों की स्मृतियों में यह जीवित रहा। उन्होंने इसे हम्पी नाम से याद रखा। इस नाम का आविर्भाव यहाँ की स्थानीय मातृदेवी पम्पादेवी के नाम से हुआ था। इन मौखिक परंपराओं के साथ-साथ पुरातात्विक खोजों, स्थापत्य के नमूनों, अभिलेखों तथा अन्य दस्तावेज़ों ने विजयनगर साम्राज्य को पुनः खोजने में विद्वानों की सहायता की।

1. हम्पी की खोज

हम्पी के भग्नावशेष 1800 ई. में एक अभियंता तथा पुराविद कर्नल कॉलिन मैकेन्जी द्वारा प्रकाश में लाए गए थे। मैकेन्जी, जो ईस्ट इण्डिया कंपनी में कार्यरत थे, ने इस स्थान का पहला सर्वेक्षण मानचित्र तैयार किया। उनके द्वारा हासिल शुरुआती जानकारियाँ विरुपाक्ष मंदिर तथा पम्पादेवी के पूजास्थल के पुरोहितों की स्मृतियों पर आधारित थीं। कालान्तर में 1856 ई. से छाया चित्रकारों ने यहाँ के भवनों के चित्र संकलित करने आरंभ किए जिससे शोधकर्ता उनका अध्ययन कर पाए। 1836 से ही अभिलेखकर्ताओं ने यहाँ और हम्पी के अन्य मंदिरों से कई दर्जन अभिलेखों को इकट्ठा करना आरंभ कर दिया। इस शहर तथा साम्राज्य के इतिहास के पुनर्निर्माण के प्रयास में इतिहासकारों ने इन स्रोतों का विदेशी यात्रियों के वृत्तांतों तथा तेलुगु, कन्नड़, तमिल और संस्कृत में लिखे गए साहित्य से मिलान किया।

स्रोत 1

कॉलिन मैकेन्जी

1754 ई. में जन्मे कॉलिन मैकेन्जी ने एक अभियंता, सर्वेक्षक, तथा मानचित्रकार के रूप में प्रसिद्धि हासिल की। 1815 में उन्हें भारत का पहला सर्वेयर जनरल बनाया गया और 1821 में अपनी मृत्यु तक वे इस पद पर बने रहे। भारत के अतीत को बेहतर ढंग से समझने और उपनिवेश के प्रशासन को आसान बनाने के लिए उन्होंने इतिहास से संबंधित स्थानीय परंपराओं का संकलन तथा ऐतिहासिक स्थलों का सर्वेक्षण करना आरंभ किया। वे कहते है, "ब्रिटिश प्रशासन के सुप्रभाव में आने से पहले दक्षिण भारत खराब प्रबंधन की दुर्गति से लंबे समय तक जूझता रहा।" विजयनगर के अध्ययन से मैकेन्जी को यह विश्वास हो गया कि कंपनी, "स्थानीय लोगों के अलग-अलग कबीलों, जो इस समय भी जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा थे, को अब भी प्रभावित करने वाले इनमें से कई संस्थाओं, कानूनों तथा रीति-रिवाज़ों के विषय में बहुत महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ" हासिल कर सकती थी।

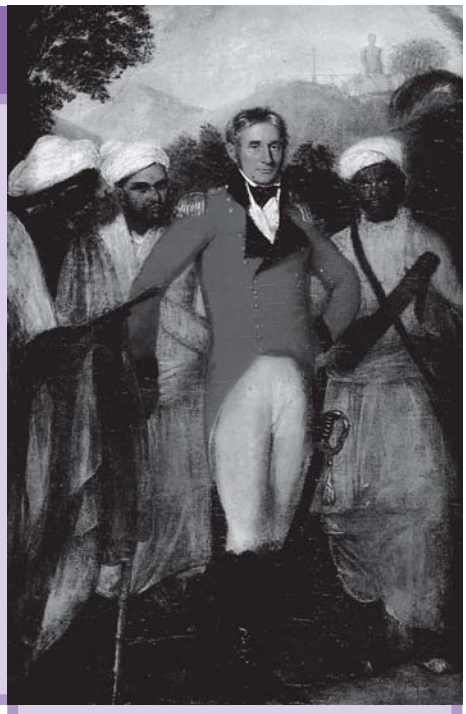

चित्र 7.2
मैकेन्जी और उनके सहायक
यह चित्रकार थॉमस हिकी द्वारा बनाए गए तैलचित्र का किसी अज्ञात चित्रकार द्वारा बनाया गया प्रतिरूप है। यह लगभग 1825 ई. का है और रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड के संकलन से संबद्ध है। मैकेन्जी के बायीं ओर दूरबीन थामे उनका चपरासी स्निाजी और दायीं ओर उनके ब्राह्मण सहायक हैं- एक जैन पंडित (दायीं ओर) और उनके पीछे तेलुगु ब्राह्मण कावलेरी वेन्तक लच्छमैया।

➲ मैकेन्जी और उनके देशज सूचनादाताओं को चित्रकार ने किस प्रकार चित्रित किया है? उनके तथा उनके सूचनादाताओं के विषय में दर्शकों पर किस प्रकार के विचार डालने का प्रयास किया गया है?

2. राय, नायक तथा सुलतान

परंपरा और अभिलेखीय साक्ष्यों के अनुसार विजयनगर साम्राज्य की स्थापना दो भाइयों–हरिहर और बुक्का–द्वारा 1336 में की गई थी। इस साम्राज्य की अस्थिर सीमाओं में अलग-अलग भाषाएँ बोलने वाले तथा अलग-अलग धार्मिक परंपराओं को मानने वाले लोग रहते थे।

अपनी उत्तरी सीमाओं पर विजयनगर शासकों ने अपने समकालीन राजाओं, जिनमें दक्कन के सुलतान तथा उड़ीसा के गजपति शासक शामिल थे, उर्वर नदी घाटियों तथा लाभकारी विदेशी व्यापार से उत्पन्न संपदा पर अधिकार के लिए संघर्ष किया। साथ ही इन राज्यों के बीच संपर्क से विचारों का आदान-प्रदान, विशेष रूप से स्थापत्य के क्षेत्र में, होने लगा। विजयनगर के शासकों ने अवधारणाओं और भवन निर्माण की तकनीकों को ग्रहण किया जिन्हें उन्होंने आगे और विकसित किया।

इस साम्राज्य के कई भागों ने पहले शक्तिशाली राज्यों जैसे तमिलनाडु में चोलों और कर्नाटक में होयसालों के राज्य का विकास

कर्नाटक साम्राज्यमु

जहाँ इतिहासकार विजयनगर साम्राज्य शब्द का प्रयोग करते हैं वहीं समकालीन लोगों ने उसे *कर्नाटक साम्राज्यमु* की संज्ञा दी।

चित्र 7.3
तंजावुर में बृहदेश्वर मंदिर का गोपुरम्
अथवा प्रवेशद्वार

देखा था। इन क्षेत्रों के शासक वर्ग ने विशाल मंदिरों जैसे तंजावुर के बृहदेश्वर मंदिर तथा बेलूर के चन्नकेशव मंदिर को संरक्षण प्रदान किया था। विजयनगर के शासकों, जो अपने आप को *राय* कहते थे, ने इन परंपराओं को आगे बढ़ाया और जैसे कि हम देखेंगे, उन्हें नयी ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

2.1 शासक और व्यापारी

चूँकि इस काल में युद्धकला प्रभावशाली अश्वसेना पर आधारित होती थी, इसलिए प्रतिस्पर्धी राज्यों के लिए अरब तथा मध्य एशिया से घोड़ों का आयात बहुत महत्त्वपूर्ण था। यह व्यापार आरंभिक चरणों में अरब व्यापरियों द्वारा नियंत्रित था। व्यापारियों के स्थानीय समूह, जिन्हें *कुदिरई चेट्टी* अथवा घोड़ों के व्यापारी कहा जाता था, भी इन विनिमयों में भाग लेते थे। 1498 ई. से कुछ और लोग पटल पर उभर कर आए। ये पुर्तगाली थे जो उपमहाद्वीप के पश्चिमी तट पर आए और व्यापारिक तथा सामरिक केंद्र स्थापित करने का प्रयास करने लगे। उनकी बेहतर सामरिक तकनीक, विशेष रूप से बंदूकों के प्रयोग ने उन्हें इस काल की उलझी हुई राजनीति में एक महत्त्वपूर्ण शक्ति बनकर उभरने में सहायता की।

विजयनगर भी मसालों, वस्त्रों तथा रत्नों के अपने बाज़ारों के लिए प्रसिद्ध था। ऐसे शहरों के लिए व्यापार एक प्रतिष्ठा का मानक माना जाता था। यहाँ की समृद्ध जनता मँहगी विदेशी वस्तुओं की माँग करती थी विशेष रूप से रत्नों और आभूषणों की। दूसरी ओर व्यापार से प्राप्त राजस्व राज्य की समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान देता था।

हाथी, घोड़े और लोग

गजपति का शाब्दिक अर्थ हाथियों का स्वामी होता है। पंद्रहवीं शताब्दी में उड़ीसा के एक शक्तिशाली शासक वंश का यही नाम था। विजयनगर की लोक प्रचलित परंपराओं में दक्कन के सुल्तानों को अश्वपति या घोड़ों के स्वामी तथा *रायों* को *नरपति* या लोगों के स्वामी की संज्ञा दी गई है।

2.2 राज्य का चरमोत्कर्ष तथा पतन

राजनीति में सत्ता के दावेदारों में शासकीय वंश के सदस्य तथा सैनिक कमांडर शामिल थे। पहले राजवंश, जो संगम वंश कहलाता था, ने 1485 तक नियंत्रण रखा। उन्हें सुलुवों ने उखाड़ फेंका, जो सैनिक कमांडर थे और वे 1503 तक सत्ता में रहे। इसके बाद तुलुवों ने उनका स्थान लिया। कृष्णदेव राय तुलुव वंश से ही संबद्ध था।

कृष्णदेव राय के शासन की चारित्रिक विशेषता विस्तार और दृढ़ीकरण था। इसी काल में तुंगभद्रा और कृष्णा नदियों के बीच का क्षेत्र (रायचूर दोआब) हासिल किया गया (1512), उड़ीसा के शासकों का दमन किया गया (1514) तथा बीजापुर के सुल्तान को बुरी तरह पराजित किया गया था (1520)। हालाँकि राज्य हमेशा सामरिक रूप से तैयार रहता था, लेकिन फिर भी यह अतुलनीय शांति और समृद्धि की स्थितियों में फला-फूला। कुछ बेहतरीन मंदिरों के निर्माण तथा कई महत्त्वपूर्ण दक्षिण भारतीय मंदिरों में भव्य *गोपुरमों* को जोड़ने का श्रेय कृष्णदेव को ही जाता है। उसने अपनी माँ के नाम पर विजयनगर के समीप ही नगलपुरम् नामक उपनगर की स्थापना भी की थी। विजयनगर के संदर्भ में सबसे विस्तृत विवरण कृष्णदेव राय के या उसके तुरंत बाद के कालों से प्राप्त होते हैं।

कृष्णदेव की मृत्यु के पश्चात 1529 में राजकीय ढाँचे में तनाव उत्पन्न होने लगा। उसके उत्तराधिकारियों को विद्रोही नायकों या सेनापतियों से चुनौती का सामना करना पड़ा। 1542 तक केंद्र पर नियंत्रण एक अन्य राजकीय वंश, अराविदु के हाथों में चला गया, जो सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक सत्ता पर काबिज़ रहे। पहले की ही तरह इस काल में भी विजयनगर शासकों और साथ ही दक्कन सल्तनतों के शासकों की सामरिक महत्त्वाकांक्षाओं के चलते समीकरण बदलते रहे। अंततः यह स्थिति विजयनगर के विरुद्ध दक्कन सल्तनतों के बीच मैत्री-समझौते के रूप में परिणत हुई। 1565 में विजयनगर की सेना प्रधानमंत्री रामराय के नेतृत्व में राक्षसी-तांगड़ी (जिसे तालीकोटा के नाम से भी जाना जाता है) के युद्ध में उतरी जहाँ उसे बीजापुर, अहमदनगर तथा गोलकुण्डा की संयुक्त सेनाओं द्वारा करारी शिकस्त मिली। विजयी सेनाओं ने विजयनगर शहर पर धावा बोलकर उसे लूटा। कुछ ही वर्षों के भीतर यह शहर पूरी तरह से उजड़ गया। अब साम्राज्य का केंद्र पूर्व की ओर स्थानांतरित हो गया जहाँ अराविदु राजवंश ने पेनुकोण्डा से और बाद में चन्द्रगिरी (तिरुपति के समीप) से शासन किया।

स्रोत 2

राजा और व्यापारी

विजयनगर के सबसे प्रसिद्ध शासक कृष्णदेव राय (शासनकाल 1509-29) ने शासनकला के विषय में *अमुक्तमल्यद* नामक तेलुगु भाषा में एक कृति लिखी। व्यापारियों के विषय में उसने लिखा:

> एक राजा को अपने बन्दरगाहों को सुधारना चाहिए और वाणिज्य को इस प्रकार प्रोत्साहित करना चाहिए कि घोड़ों, हाथियों, रत्नों, चंदन, मोती तथा अन्य वस्तुओं का खुले तौर पर आयात किया जा सके... उसे प्रबंध करना चाहिए कि उन विदेशी नाविकों जिन्हें तूफानों, बीमारी या थकान के कारण उनके देश में उतरना पड़ता है, की भली-भाँति देखभाल की जा सके... सुदूर देशों के व्यापारियों, जो हाथियों और अच्छे घोड़ों का आयात करते हैं, को रोज बैठक में बुलाकर, तोहफ़े देकर तथा उचित मुनाफे की स्वीकृति देकर अपने साथ संबद्ध करना चाहिए। ऐसा करने पर ये वस्तुएँ कभी भी तुम्हारे दुश्मनों तक नहीं पहुँचेंगी।

➲ आपके विचार में राजा व्यापार को प्रोत्साहित करने का इच्छुक क्यों था? इन विनिमयों से किन समूहों को लाभ पहुँचा होगा?

मानचित्र 1
दक्षिण भारत, लगभग चौदहवीं–अठारहवीं शताब्दी।

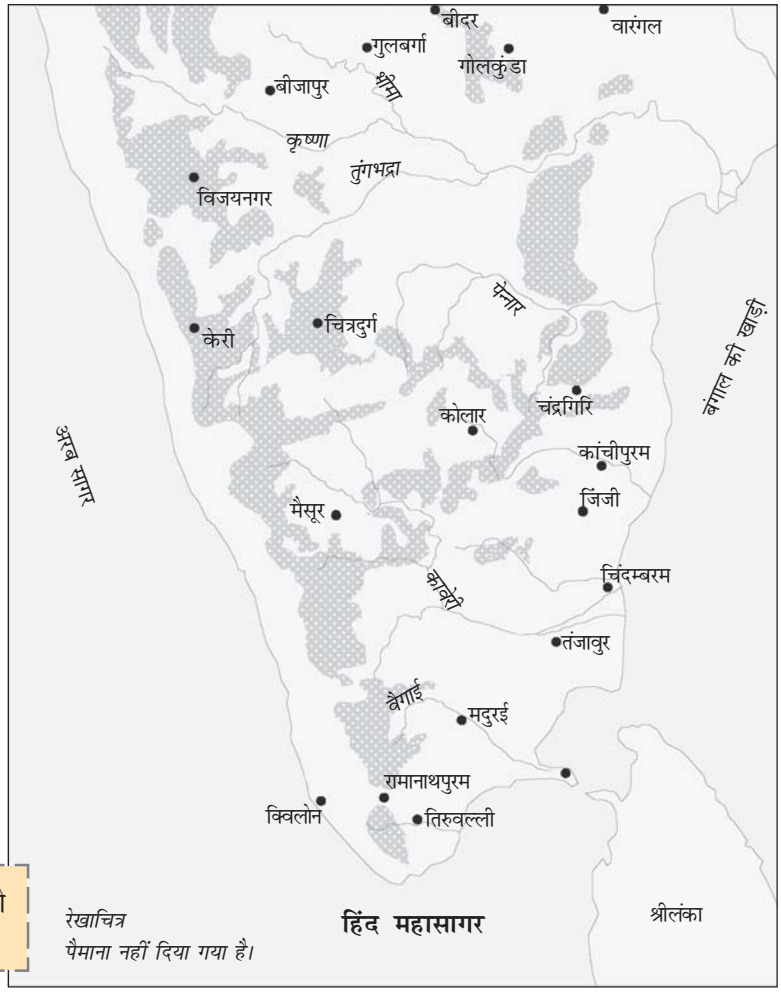

रेखाचित्र
पैमाना नहीं दिया गया है।

➲ उन आधुनिक राज्यों को चिह्नित कीजिए जो विजयनगर साम्राज्य का भाग थे।

हालाँकि विजयनगर शहर के विध्वंस के लिए सुल्तानों की सेनाएँ उत्तरदायी थीं, फिर भी सुलतानों और *रायों* के संबंध धार्मिक भिन्नताएँ होने पर भी हमेशा या अपरिहार्य रूप से शत्रुतापूर्ण नहीं रहते थे। उदाहरण के लिए कृष्णदेव राय ने सल्तनतों में सत्ता के कई दावेदारों का समर्थन किया और "यवन राज्य की स्थापना करने वाला" विरुद धारण करके गौरव महसूस किया। इसी प्रकार, बीजापुर के सुल्तान ने कृष्णदेव राय की मृत्यु के पश्चात विजयनगर में उत्तराधिकार के विवाद को सुलझाने के लिए हस्तक्षेप किया। वास्तव में विजयनगर शासक और सल्तनतें दोनों ही एक-दूसरे के स्थायित्व को निश्चित करने की इच्छुक थीं। यह रामराय की जोखिम भरी नीति थी, जिसके अनुसार उसने एक सुलतान को दूसरे के विरुद्ध करने की कोशिश की किंतु वे सुल्तान एक हो गए और उन्होंने उसे निर्णायक रूप से पराजित कर किया।

यवन संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका प्रयोग यूनानियों तथा उत्तर-पश्चिम से उपमहाद्वीप में आनेवाले अन्य लोगों के लिए किया जाता था।

2.3 *राय* तथा *नायक*

साम्राज्य में शक्ति का प्रयोग करने वालों में सेना प्रमुख होते थे जो समान्यत: किलों पर नियंत्रण रखते थे और जिनके पास सशस्त्र समर्थक होते थे। ये प्रमुख आमतौर पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक भ्रमणशील रहते थे और कई बार बसने के लिए उपजाऊ भूमि की तलाश में किसान भी उनका साथ देते थे। इन प्रमुखों को *नायक* कहते थे और ये आमतौर पर तेलुगु या कन्नड़ भाषा बोलते थे। कई नायकों ने विजयनगर शासक की प्रभुसत्ता के आगे समर्पण किया था पर ये अक्सर विद्रोह कर देते थे और इन्हें सैनिक कार्रवाई के माध्यम से ही वश में किया जाता था।

अमर-नायक प्रणाली विजयनगर साम्राज्य की एक प्रमुख राजनीतिक खोज थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रणाली के कई तत्त्व दिल्ली सल्तनत की *इक्ता* प्रणाली से लिए गए थे।

अमर-नायक सैनिक कमांडर थे जिन्हें *राय* द्वारा प्रशासन के लिए राज्य-क्षेत्र दिये जाते थे। वे किसानों, शिल्पकर्मियों तथा व्यापारियों से भू राजस्व तथा अन्य कर वसूल करते थे। वे राजस्व का कुछ भाग व्यक्तिगत उपयोग तथा घोड़ों और हाथियों के निर्धारित दल के रख-रखाव के लिए अपने पास रख लेते थे। ये दल विजयनगर शासकों को एक प्रभावी सैनिक शक्ति प्रदान करने में सहायक होते थे जिसकी मदद से उन्होंने पूरे दक्षिणी प्रायद्वीप को अपने नियंत्रण में किया। राजस्व का कुछ भाग मन्दिरों तथा सिंचाई के साधनों के रख-रखाव के लिए खर्च किया जाता था।

अमर-नायक राजा को वर्ष में एक बार भेंट भेजा करते थे और अपनी स्वामिभक्ति प्रकट करने के लिए राजकीय दरबार में उपहारों के साथ स्वयं उपस्थित हुआ करते थे। राजा कभी-कभी उन्हें एक से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित कर उन पर अपना नियंत्रण दर्शाता था पर सत्रहवीं शताब्दी में इनमें से कई नायकों ने अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए। इस कारण केंद्रीय राजकीय ढाँचे का विघटन तेजी से होने लगा।

अमर शब्द का आविर्भाव मान्यतानुसार संस्कृत शब्द *समर* से हुआ है जिसका अर्थ है लड़ाई या युद्ध। यह फ़ारसी शब्द *अमीर* से भी मिलता-जुलता है जिसका अर्थ है– ऊँचे पद का कुलीन व्यक्ति।

➲ चर्चा कीजिए...

मानचित्र 1 पर चन्द्रगिरी, मदुरई, इक्केरी, तंजावुर तथा मैसूर को चिह्नित कीजिए, ये सभी *नायक* शक्ति के केंद्र थे। यह भी चर्चा कीजिए कि नदियों और पहाड़ों ने किन मायनों में विजयनगर के साथ संचार को सरल अथवा बाधित किया।

3. विजयनगर : राजधानी तथा उसके परिप्रदेश

अब हम उस समय के सबसे प्रसिद्ध शहरों में से एक विजयनगर की ओर रुख़ करते हैं। अधिकांश राजधानियों की तरह ही यह भी एक विशिष्ट भौतिक रूपरेखा तथा स्थापत्य शैली से अभिलक्षित थी।

चित्र 7.4
विजयनगर का नक्शा

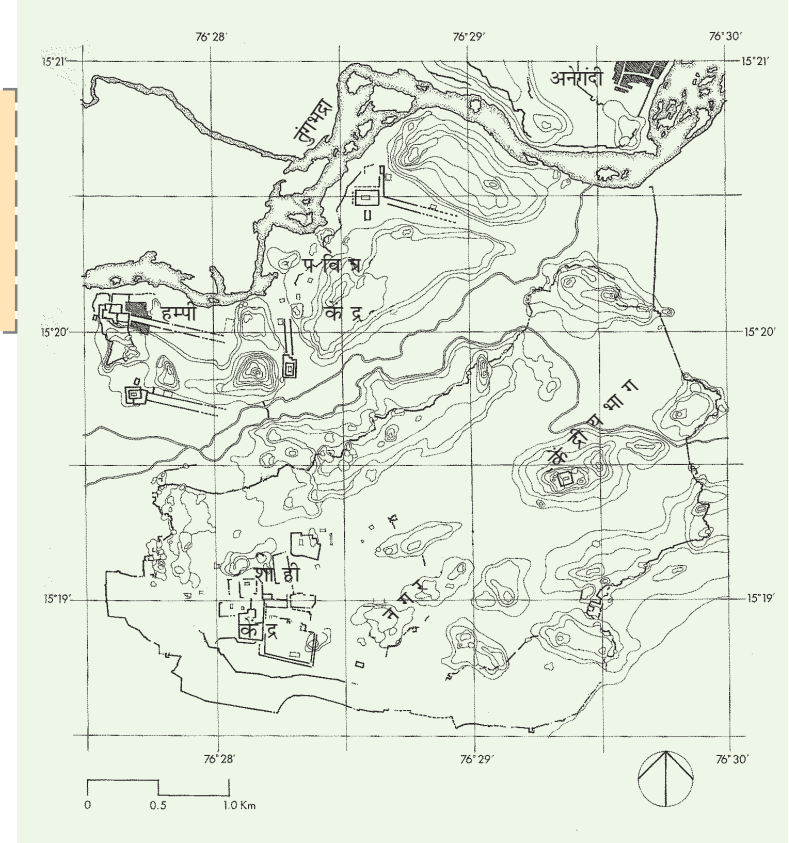

➲ नक्शे पर बने तीन अंचलों को पहचानिए। मध्यभाग को ध्यान से देखिए। क्या आप नदियों से जुड़ती हुई नहरों को देख सकते हैं? आप कितनी किलेबन्द दीवारों को देख सकते हैं। क्या धार्मिक केंद्र किलेबन्द था?

शहर के विषय में खोज

विजयनगर के राजाओं तथा उनके नायकों के बड़ी संख्या में अभिलेख मिले हैं जिनमें मन्दिरों को दिए जानेवाले दानों का उल्लेख तथा महत्त्वपूर्ण घटनाओं का विवरण है। कई यात्रियों ने शहर की यात्रा की और इसके बारे में लिखा। इनमें सबसे उल्लेखनीय वृत्तांत निकोलो दे कॉन्ती नामक इतालवी व्यापारी, अब्दुर रज़्ज़ाक नामक फ़ारस के राजा का दूत, अफ़ानासी निकितिन नामक रूस का एक व्यापारी, जिन सभी ने पंद्रहवीं शताब्दी में शहर की यात्रा की थी, और दुआर्ते बरबोसा, डोमिंगो पेस तथा पुर्तगाल का फर्नावो नूनिज़, जो सभी सोलहवीं शताब्दी में आए थे, के हैं।

स्रोत 3

विशाल, फैला हुआ शहर

यह डोमिंगो पेस द्वारा लिखे गए विजयनगर शहर के वर्णन से लिया गया एक उद्धरण है:

> इस शहर का परिमाप मैं यहाँ नहीं लिख रहा हूँ क्योंकि यह एक स्थान से पूरी तरह नहीं देखा जा सकता, पर मैं एक पहाड़ पर चढ़ा जहाँ से मैं इसका एक बड़ा भाग देख पाया। मैं इसे पूरी तरह से नहीं देख पाया क्योंकि यह कई पर्वत शृंखलाओं के बीच स्थित है। वहाँ से मैंने जो देखा वह मुझे रोम जितना विशाल प्रतीत हुआ, और देखने में अत्यंत सुन्दर; इसमें पेड़ों के कई उपवन हैं, आवासों के बगीचों में, तथा पानी की कई नालियाँ जो इसमें आती हैं, तथा कई स्थानों पर झीलें हैं; तथा राजा के महल के समीप ही खजूर के पेड़ों का बगीचा तथा अन्य फल प्रदान करने वाले वृक्ष थे।

➲ क्या आप आज किसी शहर में ये अभिलक्षण देख सकते हैं? आपके विचार में पेस ने उद्यानों तथा जल-स्रोतों को विशेष-उल्लेख के लिए क्यों चुना?

3.1 जल-संपदा

विजयनगर की भौगोलिक स्थिति के विषय में सबसे चौंकाने वाला तथ्य तुंगभद्रा नदी द्वारा यहाँ निर्मित एक प्राकृतिक कुण्ड है। यह नदी उत्तर-पूर्व दिशा में बहती है। आस-पास का भूदृश्य रमणीय ग्रेनाइट की पहाड़ियों से परिपूर्ण है जो शहर के चारों ओर करधनी का निर्माण करती सी प्रतीत होती हैं। इन पहाड़ियों से कई जल-धाराएँ आकर नदी से मिलती हैं।

लगभग सभी धाराओं के साथ-साथ बाँध बनाकर अलग-अलग आकारों के हौज़ बनाए गए थे। चूँकि यह प्रायद्वीप के सबसे शुष्क क्षेत्रों में से एक था इसलिए पानी के संचयन और इसे शहर तक ले जाने के व्यापक प्रबंध करना आवश्यक था। ऐसे सबसे महत्त्वपूर्ण हौजों में एक का निर्माण पंद्रहवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में हुआ जिसे आज कमलपुरम् जलाशय कहा जाता है। इस हौज़ के पानी से न केवल आस-पास के खेतों को सींचा जाता था बल्कि इसे एक नहर के माध्यम से "राजकीय केंद्र" तक भी ले जाया गया था।

सबसे महत्त्वपूर्ण जल संबंधी संरचनाओं में से एक, हिरिया नहर को आज भी भग्नावशेषों के बीच देखा जा सकता है। इस नहर में तुंगभद्रा पर बने बाँध से पानी लाया जाता था और इसे "धार्मिक केंद्र" से "शहरी केंद्र" को अलग करने वाली घाटी को सिंचित करने में प्रयोग किया जाता था। संभवत: इसका निर्माण संगम वंश के राजाओं द्वारा करवाया गया था।

3.2 क़िलेबंदियाँ तथा सड़कें

इससे पहले कि हम शहर के विभिन्न भागों का गहन परीक्षण करें, हम उन विशाल क़िलेबंदी की दीवारों पर नज़र डालते हैं जिनसे उन्हें घेरा गया था। पंद्रहवीं शताब्दी में फ़ारस के शासक द्वारा कालीकट (कोज़ीकोड) भेजा गया दूत अब्दुर रज़्ज़ाक क़िलेबंदी से बहुत प्रभावित हुआ और उसने दुर्गों की सात पंक्तियों का उल्लेख किया। इनसे न केवल शहर को बल्कि कृषि में प्रयुक्त आसपास के क्षेत्र तथा जंगलों को भी घेरा गया था। सबसे बाहरी दीवार शहर के चारों ओर बनी पहाड़ियों को आपस में जोड़ती थी। यह विशाल राजगिरी संरचना थोड़ी सी शुण्डाकार थी। गारे या जोड़ने के लिए किसी भी वस्तु का निर्माण में कहीं भी प्रयोग नहीं किया गया था। पत्थर के टुकड़े फानाकार थे, जिसके कारण वे अपने स्थान पर टिके रहते थे। दीवारों के अंदर का भाग मिट्टी और मलवे के मिश्रण से बना हुआ था। वर्गाकार तथा आयताकार बुर्ज़ बाहर की ओर निकले हुए थे।

इस क़िलेबंदी की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इससे खेतों को भी घेरा गया था। अब्दुर रज़्ज़ाक लिखता है कि, "पहली, दूसरी और

स्रोत 4

हौज़ों/जलाशयों का निर्माण किस प्रकार होता था?

कृष्णदेव राय द्वारा बनवाए गए जलाशय के विषय में पेस लिखता है:

> राजा ने एक जलाशय बनवाया... दो पहाड़ियों के मुख-विबर पर जिससे दोनों में से किसी पहाड़ी से आने वाला सारा जल वहाँ इकट्ठा हो, इसके अलावा जल 9 मील (लगभग 15 किमी) से भी अधिक की दूरी से पाइपों से आता है जो बाहरी शृंखला के निचले हिस्से के साथ-साथ बनाए गए थे। यह जल एक झील से लाया जाता है जो छलकाव से खुद एक छोटी नदी में मिलती है। जलाशय में तीन विशाल स्तंभ बने हैं जिन पर खूबसूरती से चित्र उकेरे गए हैं; ये ऊपरी भाग में कुछ पाइपों से जुड़े हुए हैं जिनसे ये अपने बगीचों तथा धान के खेतों की सिंचाई के पानी लाते हैं। इस जलाशय को बनाने के लिए इस राजा ने एक पूरी पहाड़ी को तुड़वा दिया... जलाशय में मैंने इतने लोगों को कार्य करते देखा कि वहाँ पन्द्रह से बीस हज़ार आदमी थे, चीटियों की तरह...

चित्र 7.5
राजकीय केंद्र की ओर जाती एक कृत्रिम जल प्रणाली

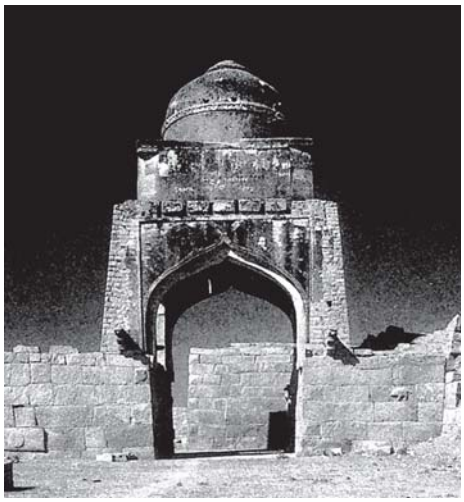

चित्र 7.6
क़िलेबंद दीवार में बना एक प्रवेशद्वार

➲ इन दो प्रवेश-द्वारों के बीच समानताओं तथा विभिन्नताओं का वर्णन कीजिए। आपके विचार में विजयनगर के शासकों ने इण्डो-इस्लामी स्थापत्य के तत्त्वों को क्यों अपनाया?

चित्र 7.7
एक गोपुरम्

तीसरी दीवारों के बीच जुते हुए खेत, बग़ीचे तथा आवास हैं"। और पेस कहता है: "इस पहली परिधि से शहर में प्रवेश करने तक की दूरी बहुत है, जिसमें खेत हैं जहाँ वे धान उगाते हैं और कई उद्यान हैं और बहुत जल जो दो झीलों से लाया जाता है।" इन कथनों की आज के पुरातत्त्वविदों द्वारा पुष्टि की गई है, जिन्होंने धार्मिक केंद्र तथा नगरीय केंद्र के बीच एक कृषि क्षेत्र के साक्ष्य खोज निकाले हैं। यह क्षेत्र एक व्यापक नहर प्रणाली के माध्यम से सींचा जाता था, जिसमें तुंगभद्रा से जल लाया जाता था।

आपके विचार में कृषि-क्षेत्रों को क़िलेबंद भूभाग में क्यों समाहित किया जाता था? अक्सर मध्यकालीन घेराबंदियों का मुख्य उद्देश्य प्रतिपक्ष को खाद्य सामग्री से वंचित कर समर्पण के लिए बाध्य करना होता था। ये घेराबंदियाँ कई महीनों और यहाँ तक कि वर्षों तक चल सकती थीं। आम तौर पर शासक ऐसी परिस्थितियों से निपटने के लिए क़िलेबंद क्षेत्रों के भीतर ही विशाल अन्नागारों का निर्माण करवाते थे। विजयनगर के शासकों ने पूरे कृषि भूभाग को बचाने के लिए एक अधिक मँहगी तथा व्यापक नीति को अपनाया।

दूसरी क़िलेबंदी नगरीय केंद्र के आंतरिक भाग के चारों ओर बनी हुई थी, और तीसरी से शासकीय केंद्र को घेरा गया था जिसमें महत्त्वपूर्ण इमारतों के प्रत्येक समूह को अपनी ऊँची दीवारों से घेरा गया था।

दुर्ग में प्रवेश के लिए अच्छी तरह सुरक्षित प्रवेशद्वार थे जो शहर को मुख्य सड़कों से जोड़ते थे। प्रवेशद्वार विशिष्ट स्थापत्य के नमूने थे जो अकसर उन संरचनाओं को परिभाषित करते थे जिनमें प्रवेश को वे नियंत्रित करते थे। क़िलेबंद बस्ती में जाने के लिए बने प्रवेशद्वार पर बनी मेहराब और साथ ही द्वार के ऊपर बनी गुंबद (चित्र 7.6) तुर्की सुल्तानों द्वारा प्रवर्तित स्थापत्य के चारित्रिक तत्त्व माने जाते हैं। कला-इतिहासकार इस शैली को इंडो-इस्लामिक (हिंद-इस्लामी) कहते हैं क्योंकि इसका विकास विभिन्न क्षेत्रों की स्थानीय स्थापत्य की परंपराओं के साथ संपर्क से हुआ।

पुरातत्वविदों ने शहर के अंदर की तथा वहाँ से बाहर जाने वाली सड़कों का अध्ययन किया है। इनकी पहचान प्रवेशद्वारों से होकर जाने वाले रास्तों के अनुरेखण तथा फर्श वाली सड़कों की खोजों से की गई है। सड़कें सामान्यत: पहाड़ी भूभाग से बचकर घाटियों से होकर ही इधर-उधर घूमती थीं। सबसे महत्त्वपूर्ण सड़कों में से कई मंदिर के प्रवेशद्वारों से आगे बढ़ी हुई थीं और इनके दोनों ओर बाज़ार थे।

3.3 शहरी केंद्र

शहरी केंद्र की ओर जाने वाली सड़कों पर चलें तो सामान्य लोगों के आवासों के अपेक्षाकृत कम पुरातात्विक साक्ष्य हैं। पुरातत्वविदों ने कुछ

स्थानों, जिनमें शहरी केंद्र का उत्तर-पूर्वी कोना भी शामिल है, में परिष्कृत चीनी मिट्टी पायी है और उनका यह सुझाव है कि हो सकता है इन स्थानों में अमीर व्यापारी रहते हों। यह मुस्लिम रिहायशी मुहल्ला भी था। यहाँ स्थित मक़बरों तथा मस्जिदों के विशिष्ट कार्य हैं, फिर भी उनका स्थापत्य हम्पी में मिले मन्दिरों के मण्डपों के स्थापत्य से मिलता जुलता है।

सामान्य लोगों के आवासों, जो अब अस्तित्व में नहीं हैं, का सोलहवीं शताब्दी का पुर्तगाली यात्री बरबोसा कुछ इस प्रकार वर्णन करता है: "लोगों के अन्य आवास छप्पर के हैं, पर फिर भी सुदृढ़ हैं, और व्यवसाय के आधार पर कई खुले स्थानों वाली लंबी गलियों में व्यवस्थित हैं।"

क्षेत्र-सर्वेक्षण इंगित करते हैं कि इस पूरे क्षेत्र में बहुत से पूजा स्थल और छोटे मन्दिर थे जो विविध प्रकार के संप्रदायों, जो संभवत: विभिन्न समुदायों द्वारा संरक्षित थे, के प्रचलन की ओर संकेत करते हैं। सर्वेक्षणों से यह भी इंगित होता है कि कुएँ, बरसात के पानी वाले जलाशय और साथ ही मन्दिरों के जलाशय संभवत: सामान्य नगर निवासियों के लिए पानी के स्रोत का कार्य करते थे।

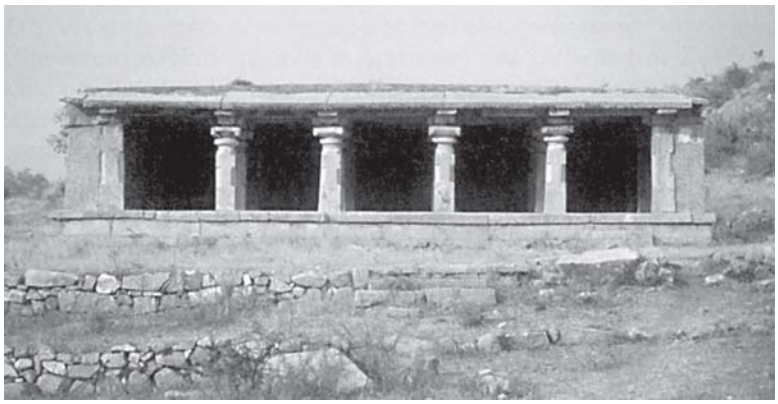

4. राजकीय केंद्र

राजकीय केंद्र बस्ती के दक्षिण-पश्चिमी भाग में स्थित था। हालाँकि इसे राजकीय केंद्र की संज्ञा दी गई है, पर इसमें 60 से भी अधिक मन्दिर सम्मिलित थे। स्पष्टत: मन्दिरों और संप्रदायों को प्रश्रय देना शासकों के लिए महत्त्वपूर्ण था जो इन देव-स्थलों में प्रतिष्ठित देवी-देवताओं से संबंध के माध्यम से अपनी सत्ता को स्थापित करने तथा वैधता प्रदान करने का प्रयास कर रहे थे।

लगभग तीस संरचनाओं की पहचान महलों के रूप में की गई है। ये अपेक्षाकृत बड़ी संरचनाएँ हैं जो आनुष्ठानिक कार्यों से संबद्ध नहीं होती।

चित्र 7.8
उत्खनित पटरी का एक भाग

चित्र 7.9
चीनी मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े

➲ आपके विचार में ये टुकड़े मूलत: किस प्रकार के बर्तनों का हिस्सा थे?

चित्र 7.10
विजयनगर में एक मस्जिद

➲ क्या इस मस्जिद में इण्डो-इस्लामी स्थापत्य के चारित्रिक तत्व विद्यमान हैं?

➲ चर्चा कीजिए...

विजयनगर की रूपरेखा की तुलना अपने नगर या गाँव की रूपरेखा से कीजिए।

विजय का एक भवन?

सभा मंडप तथा महानवमी डिब्बा जिसे पेस, संयुक्त रूप से "विजय का भवन" की संज्ञा देता है, के विषय में वह लिखता है:

> इन संरचनाओं में एक के ऊपर एक, दो मंच हैं, सुंदरता से चित्रित... ऊपरी मंच पर... इस विजय के भवन में राजा ने कपड़े से बना एक कमरा बनवाया है... जहाँ मूर्ति का एक पूजा स्थल है... और एक अन्य में बीच में एक चबूतरा रखा हुआ है, जिस पर राज्य का सिंहासन खड़ा हुआ है, (मुकुट तथा राजकीय पायल)...

चित्र 7.11
महानवमी डिब्बा

चित्र 7.12
महानवमी डिब्बा पर उत्कीर्णित चित्र

➲ क्या आप इन चित्रों के विषयों को पहचान सकते हैं?

इन संरचनाओं तथा मंदिरों के बीच एक अंतर यह था कि मंदिर पूरी तरह से राजगिरी से निर्मित थे जबकि धर्मेतर भवनों की अधिरचना विकारी वस्तुओं से बनाई गई थी।

4.1 महानवमी डिब्बा

इस क्षेत्र की कुछ अधिक विशिष्ट संरचनाओं का नामकरण भवनों के आकार और साथ ही उनके कार्यों के आधार पर किया गया है। "राजा का भवन" नामक संरचना अंत:क्षेत्र में सबसे विशाल है परंतु इसके राजकीय आवास होने का कोई निश्चित साक्ष्य नहीं मिला है। इसके दो सबसे प्रभावशाली मंच हैं, जिन्हें सामान्यत: "सभा मंडप" तथा "महानवमी डिब्बा" कहा जाता है। पूरा क्षेत्र ऊँची दोहरी दीवारों से घिरा है और इनके बीच में एक गली है। सभा मंडप एक ऊँचा मंच है जिसमें पास-पास तथा निश्चित दूरी पर लकड़ी के स्तंभों के लिए छेद बने हुए हैं। इसमें दूसरी मंज़िल, जो इन स्तंभों पर टिकी थी, तक जाने के लिए सीढ़ी बनी हुई थी। स्तंभों के एक दूसरे से बहुत पास-पास होने से बहुत कम खुला स्थान बचता होगा और इसलिए यह स्पष्ट नहीं है कि यह मंडप किस प्रयोजन के लिए बनाया गया था।

शहर के सबसे ऊँचे स्थानों में से एक पर स्थित "महानवमी डिब्बा" एक विशालकाय मंच है जो लगभग 11000 वर्ग फीट के आधार से 40 फीट की ऊँचाई तक जाता है। ऐसे साक्ष्य मिले हैं जिनसे पता चलता है कि इस पर एक लकड़ी की संरचना बनी थी। मंच का आधार उभारदार उत्कीर्णन से पटा पड़ा है (चित्र 7.12)।

इस संरचना से जुड़े अनुष्ठान, संभवत: सितंबर तथा अक्टूबर के शरद मासों में मनाए जाने वाले दस दिन के हिंदू त्यौहार, जिसे दशहरा (उत्तर भारत), दुर्गा पूजा (बंगाल में) तथा नवरात्री या महानवमी (प्रायद्वीपीय भारत में) नामों से जाना जाता है, के महानवमी (शाब्दिक अर्थ, महान नवाँ

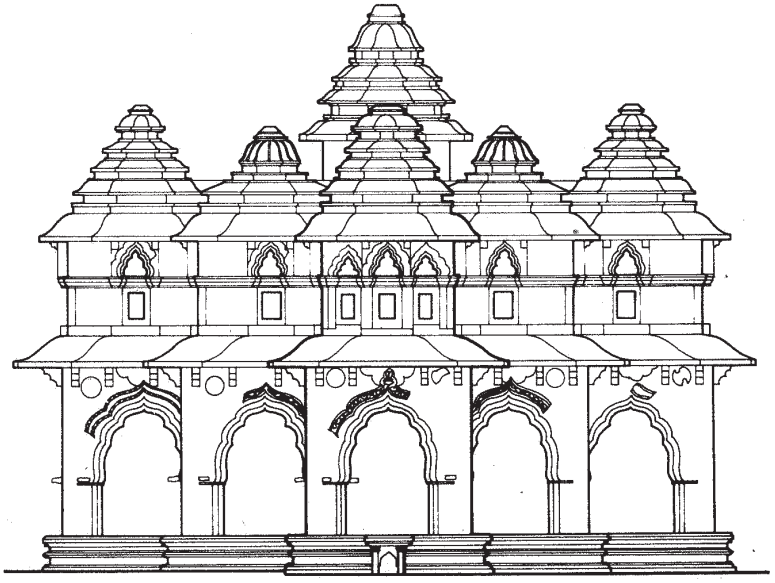

चित्र 7.13
कमल महल का एक खड़ा रेखाचित्र
खड़ा रेखाचित्र किसी वस्तु अथवा संरचना का ऊर्ध्व अवलोकन होता है। यह हमें उन अभिलक्षणों के विषय में जानकारी देता है जो एक छाया-चित्र में नहीं देखे जा सकते। मेहराबों को ध्यान से देखिए। ये संभवत: इण्डो-इस्लामी तकनीकों से प्रभावित थीं।

➲ चित्र 7.13 तथा 7.15 की तुलना कीजिए तथा उन अभिलक्षणों की सूची बनाइये जो दोनों में हैं, और साथ ही उनकी भी जो इनमें से केवल एक में ही देखे जा सकते हैं। चित्र 7.14 में बनी मेहराब की तुलना चित्र 7.6 में बनी मेहराब से कीजिए। कमल महल में नौ मीनारें थीं- बीच में एक ऊँची, तथा आठ उसकी भुजाओं के साथ-साथ। छाया-चित्र तथा खड़े रेखाचित्र में आप कितनी-कितनी मीनारें देख पाते हैं। यदि आप कमल महल का फिर से नामकरण करते तो इसे क्या कहते?

दिवस) के अवसर पर निष्पादित किए जाते थे। इस अवसर पर विजयनगर शासक अपने रुतबे, ताक़त तथा अधिराज्य का प्रदर्शन करते थे।

इस अवसर पर होने वाले धर्मानुष्ठानों में मूर्ति की पूजा, राज्य के अश्व की पूजा, तथा भैंसों और अन्य जानवरों की बलि सम्मिलित थी। नृत्य, कुश्ती प्रतिस्पर्धा तथा साज़ लगे घोड़ों, हाथियों तथा रथों और सैनिकों की शोभायात्रा और साथ ही प्रमुख नायकों और अधीनस्थ राजाओं द्वारा राजा और उसके अतिथियों को दी जाने वाली औपचारिक भेंट इस अवसर के प्रमुख आकर्षण थे। इन उत्सवों के गहन सांकेतिक अर्थ थे। त्यौहार के अंतिम दिन राजा अपनी तथा अपने नायकों की सेना का खुले मैदान में आयोजित भव्य समारोह में निरीक्षण करता था। इस अवसर पर नायक, राजा के लिए बड़ी मात्रा में भेंट तथा साथ ही नियत कर भी लाते थे।

क्या "महानवमी डिब्बा" जो आज अस्तित्व में है, वह इस विस्तृत अनुष्ठान का केंद्र था? विद्वानों का मानना है कि संरचना के चारों ओर का स्थान सशस्त्र आदमियों, औरतों तथा बड़ी संख्या में जानवरों की शोभायात्रा के लिए पर्याप्त नहीं था। राजकीय केंद्र में स्थित कई और संरचनाओं की तरह यह भी एक पहेली बना हुआ है।

4.2 राजकीय केंद्र में स्थित अन्य भवन

राजकीय केंद्र के सबसे सुंदर भवनों में एक लोटस (कमल) महल है, जिसका यह नामकरण उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेज़ यात्रियों ने किया था। हालाँकि यह नाम निश्चित रूप से रोमांचक है, लेकिन इतिहासकार इस बारे में निश्चित नहीं हैं कि यह भवन किस कार्य के लिए बना था। एक

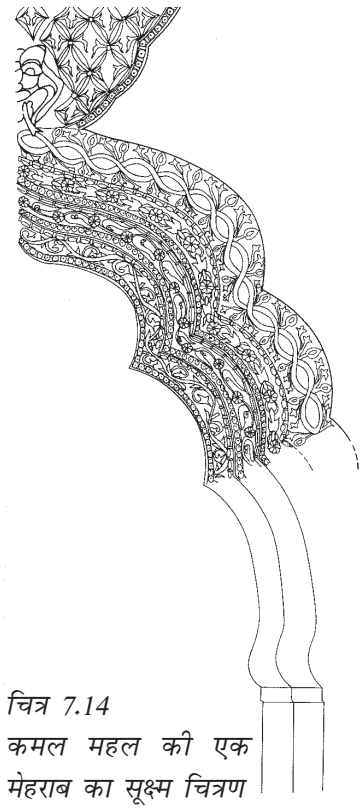

चित्र 7.14
कमल महल की एक मेहराब का सूक्ष्म चित्रण

चित्र 7.15
कमल महल की एक तसवीर

➲ चित्र 7.16(क) तथा 7.16(ख) की तुलना चित्र 7.17 से कीजिए। प्रत्येक में दिखाई देने वाले अभिलक्षणों की सूची बनाइए।
क्या आपको लगता है कि ये वास्तव में हाथियों के अस्तबल थे?

सुझाव, जो मैकेन्ज़ी द्वारा बनाए गए मानचित्र से मिलता है, यह है कि यह परिषदीय सदन था जहाँ राजा अपने परामर्शदाताओं से मिलता था।

हालाँकि अधिकांश मन्दिर धार्मिक केंद्र में स्थित थे, लेकिन राजकीय केंद्र में भी कई थे। इनमें से, एक अत्यंत दर्शनीय को हज़ार राम मन्दिर

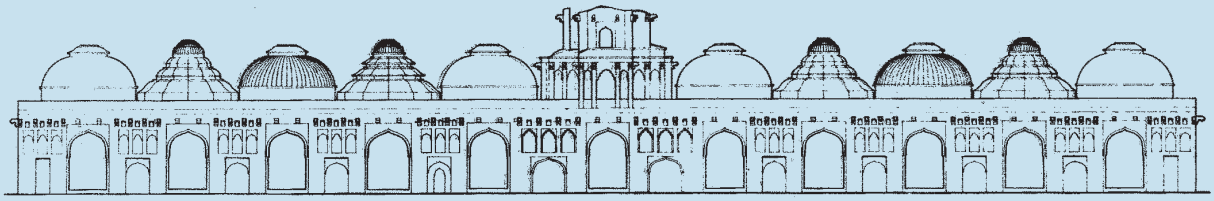

चित्र 7.16(क) "हाथियों के अस्तबल" का खड़ा रेखाचित्र

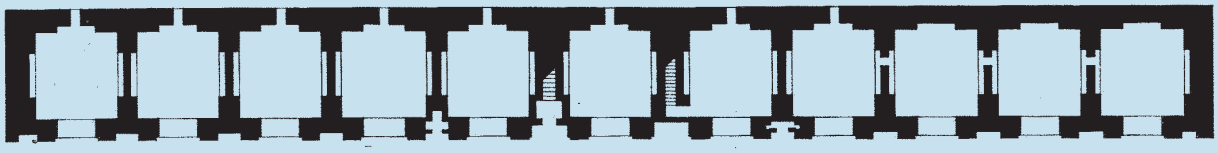

चित्र 17.16(ख) "हाथियों के अस्तबल" का नक्शा। नक्शा एक संरचना का समस्तरी अवलोकन देता है।

चित्र 7.17 कमल महल के समीप स्थित "हाथियों का अस्तबल"

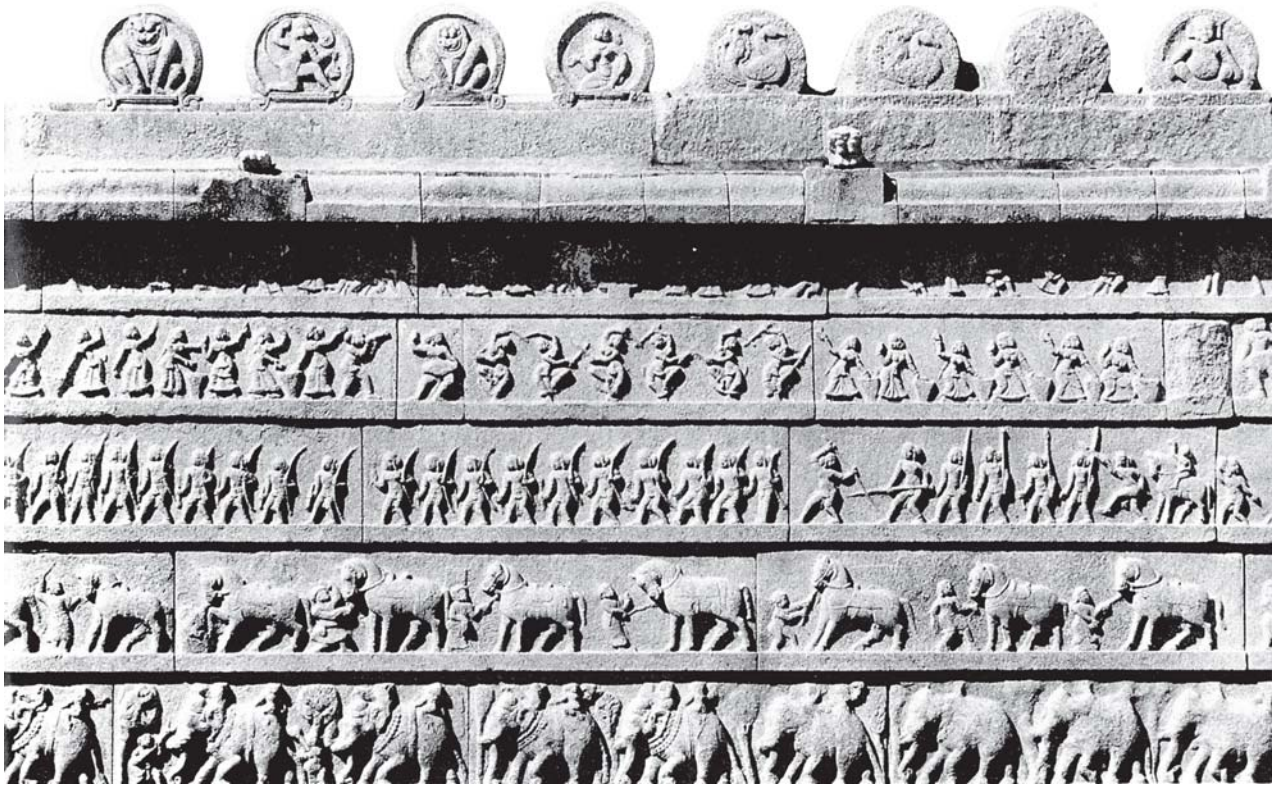

चित्र 7.18
हज़ार राम मन्दिर की दीवारों पर मूर्तिकला

➲ क्या आप नृत्य के दृश्यांशों को पहचान सकते हैं। आपके विचार में हाथियों और घोड़ों को पटलों पर क्यों चित्रित किया गया था?

कहा जाता है। संभवत: इसका प्रयोग केवल राजा और उनके परिवार द्वारा ही किया जाता था। बीच के देवस्थल की मूर्तियाँ अब नहीं हैं; लेकिन दीवारों पर बनाए गए पटल मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। इनमें मन्दिर की आंतरिक दीवारों पर उत्कीर्णित रामायण से लिए गए कुछ दृश्यांश सम्मिलित हैं।

शहर पर आक्रमण के पश्चात विजयनगर की कई संरचनाएँ विनष्ट हो गई थीं, पर नायकों ने महलनुमा संरचनाओं के निर्माण की परंपरा को जारी रखा। इनमें से कई भवन आज भी अस्तित्व में हैं।

चित्र 7.19
मदुरई के सभा मण्डप का आंतरिक भाग मेहराबों को ध्यान से देखिए।

➲ चर्चा कीजिए...

नायको ने विजयनगर के शासकों की भवन निर्माण परंपराओं को जारी क्यों रखा?

5. धार्मिक केंद्र

5.1 राजधानी का चयन

अब हम तुंगभद्रा नदी के तट से लगे शहर के चट्टानी उत्तरी भाग की ओर ध्यान केन्द्रित करते हैं। स्थानीय मान्यताओं के अनुसार ये पहाड़ियाँ रामायण में उल्लिखित बाली और सुग्रीव के वानर राज्य की रक्षा करती थीं। अन्य मान्यताओं के अनुसार स्थानीय मातृदेवी पम्पादेवी ने इन पहाड़ियों में विरुपाक्ष, जो राज्य के संरक्षक देवता तथा शिव का एक रूप माने जाते हैं, से विवाह के लिए तप किया था। आज तक यह विवाह विरुपाक्ष मन्दिर में हर वर्ष धूम-धाम से आयोजित किया जाता है। इन पहाड़ियों में विजयनगर साम्राज्य के पूर्वकालिक जैन मन्दिर भी मिले हैं। दूसरे शब्दों में, यह क्षेत्र कई-धार्मिक मान्यताओं से संबद्ध था।

इस क्षेत्र में मन्दिर निर्माण का एक लंबा इतिहास रहा है जो पल्लव, चालुक्य, होयसाल तथा चोल वशों तक जाता है। आमतौर पर शासक अपने आप को ईश्वर से जोड़ने के लिए मन्दिर निर्माण को प्रोत्साहन देते थे–अकसर देवता को व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप से राजा से जोड़ा जाता था। मन्दिर शिक्षा के केंद्रों के रूप में भी कार्य करते थे। शासक और अन्य लोग मन्दिर के रख-रखाव के लिए भूमि या अन्य संपदा दान में देते थे। अतएव, मन्दिर महत्त्वपूर्ण धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक केंद्रों के रूप में विकसित हुए। शासकों के दृष्टिकोण से मन्दिरों का निर्माण, मरम्मत तथा रखरखाव, अपनी सत्ता, संपत्ति तथा निष्ठा के लिए समर्थन तथा मान्यता के महत्त्वपूर्ण माध्यम थे।

यह संभव है कि विजयनगर के स्थान का चयन वहाँ विरुपाक्ष तथा पम्पादेवी के मन्दिरों के अस्तित्व से प्रेरित था। यहाँ तक कि विजयनगर के शासक भगवान विरुपाक्ष की ओर से शासन करने का दावा करते थे। सभी राजकीय आदेशों पर सामान्यतया कन्नड़ लिपि में "श्री विरुपाक्ष" शब्द अंकित होता था। शासक देवताओं से अपने गहन संबंधों के संकेतक के रूप में विरुद्ध "हिन्दू सूरतराणा" का प्रयोग भी करते थे। यह अरबी भाषा के शब्द सुल्तान जिसका अर्थ है राजा, का संस्कृत अनुवाद था और शाब्दिक रूप में इसका अर्थ था हिंदू सुलतान।

विजयनगर के शासकों ने पूर्वकालिक परंपराओं को अपनाया, उनमें नवीनता लाई और उन्हें आगे विकसित किया। अब राजकीय प्रतिकृति मूर्तियाँ मन्दिरों में प्रदर्शित की जाने लगीं और राजा की मन्दिरों की यात्राओं को महत्त्वपूर्ण राजकीय अवसर माना जाने लगा जिन पर साम्राज्य के महत्त्वपूर्ण नायक भी उसके साथ जाते थे।

चित्र 7.20
आकाश से लिया गया विरुपाक्ष मन्दिर का दृश्य

5.2 गोपुरम् और मण्डप

मन्दिर स्थापत्य के संदर्भ में इस समय तक कई नए तत्व प्रकाश में आते हैं। इनमें विशाल स्तर पर बनाई गई संरचनाएँ जो राजकीय सत्ता की द्योतक थीं, शामिल हैं। इनका सबसे अच्छा उदाहरण राय गोपुरम् (चित्र 7.7) अथवा राजकीय प्रवेशद्वारा थे जो अकसर केंद्रीय देवालयों की मीनारों को बौना प्रतीत कराते थे और जो लंबी दूरी से ही मन्दिर

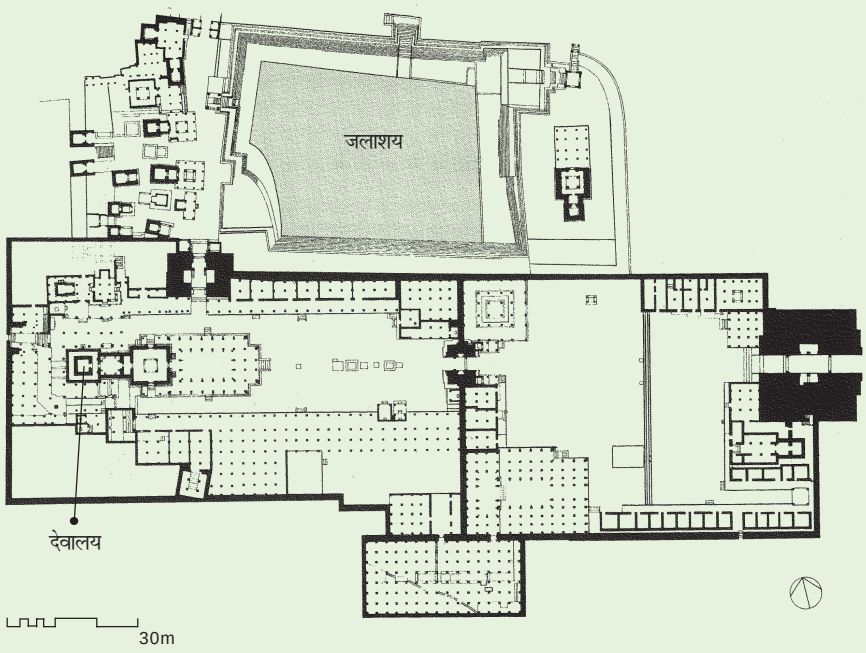

चित्र 7.21
विरुपाक्ष मन्दिर का नक्शा
अधिकांश वर्गाकार संरचनाएँ देवस्थल हैं। दो प्रमुख प्रवेश द्वारों को काले रंग से भरा गया है। प्रत्येक छोटा बिंदु एक स्तंभ को दर्शाता है। वर्गाकार या आयताकार ढाँचे में व्यवस्थित स्तंभों की पंक्तियाँ प्रमुख सभागारों, मण्डपों तथा बरामदों को विभाजित करती प्रतीत होती हैं।

➲ नक्शे में दिए गए स्केल का प्रयोग कर मुख्य गोपुरम् से केंद्रीय देवालय की दूरी नापिए। जलाशय से देवालय तक जाने के लिए सबसे आसान मार्ग कौन सा रहा होगा?

चित्र 7.22
दैवीय विवाहों के आयोजन में प्रयुक्त होने वाला एक कल्याण मंडप

चित्र 7.23
मूर्तियों वाले स्तम्भ का एक रेखाचित्र

➲ स्तंभ पर आप जो देख रहे हैं उसका वर्णन कीजिए।

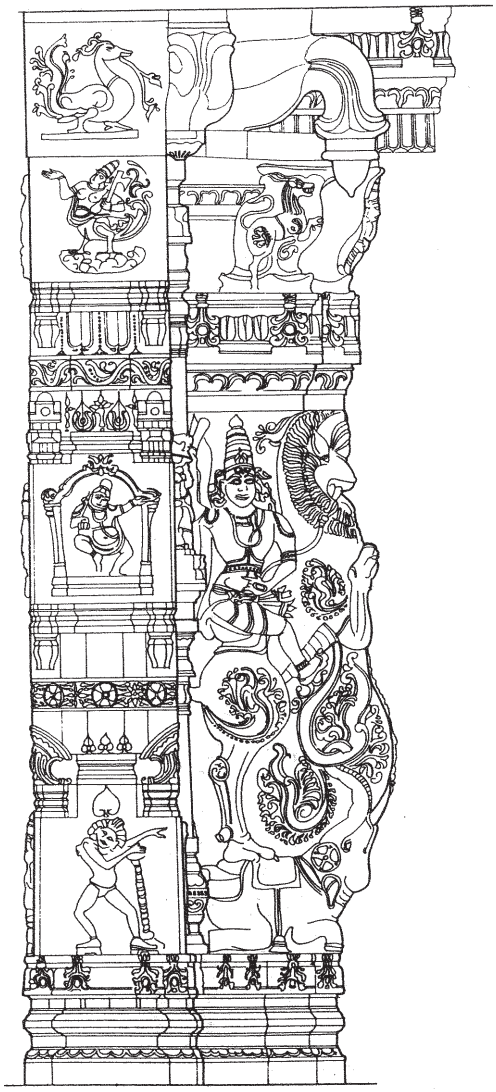

के होने का संकेत देते थे। ये संभवत: शासकों की ताकत की याद भी दिलाते थे, जो इतनी ऊँची मीनारों के निर्माण के लिए आवश्यक साधन, तकनीक तथा कौशल जुटाने में सक्षम थे। अन्य विशिष्ट अभिलक्षणों में मण्डप तथा लंबे स्तंभों वाले गलियारे, जो अकसर मंदिर परिसर में स्थित देवस्थलों के चारों ओर बने थे, सम्मिलित हैं। अब हम दो मन्दिरों को और सूक्ष्मता से देखते हैं–विरुपाक्ष मन्दिर तथा विट्ठल मन्दिर।

विरुपाक्ष मन्दिर का निर्माण कई शताब्दियों में हुआ था। हालाँकि अभिलेखों से पता चलता है कि सबसे प्राचीन मन्दिर नवीं-दसवीं शताब्दियों का था, विजयनगर साम्राज्य की स्थापना के बाद इसे कहीं अधिक बड़ा किया गया था। मुख्य मन्दिर के सामने बना मण्डप कृष्णदेव राय ने अपने राज्यारोहण के उपलक्ष्य में बनवाया था। इसे सूक्ष्मता से उत्कीर्णित स्तंभों से सजाया गया था। पूर्वी गोपुरम् के निर्माण का श्रेय भी उसे ही दिया जाता है। इन परिवर्धनों का अर्थ था कि केंद्रीय देवालय पूरे परिसर के एक छोटे भाग तक सीमित रह गया था।

मन्दिर के सभागारों का प्रयोग विविध प्रकार के कार्यों के लिए होता था। इनमें से कुछ ऐसे थे जिनमें देवताओं की मूर्तियाँ संगीत, नृत्य और नाटकों के विशेष कार्यक्रमों को देखने के लिए रखी जाती थीं। अन्य सभागारों का प्रयोग देवी-देवताओं के विवाह के उत्सव पर आनंद मनाने और कुछ अन्य का प्रयोग देवी-देवताओं को झूला झुलाने के लिए होता था। इन अवसरों पर विशिष्ट मूर्तियों का प्रयोग होता था छोटे केंद्रीय देवालयों में स्थापित मूर्तियों से भिन्न होती थीं।

दूसरा देवस्थल, विट्ठल मन्दिर, भी रोचक है। यहाँ के प्रमुख देवता विट्ठल थे जो सामान्यतः महाराष्ट्र में पूजे जाने वाले विष्णु के एक रूप

चित्र 7.24
विट्ठल मन्दिर का रथ

➲ क्या आपको लगता है कि वास्तव में इस प्रकार के रथ बनाए जाते होंगे?

चित्र 7.25
जिंजी का झूलता मण्डप

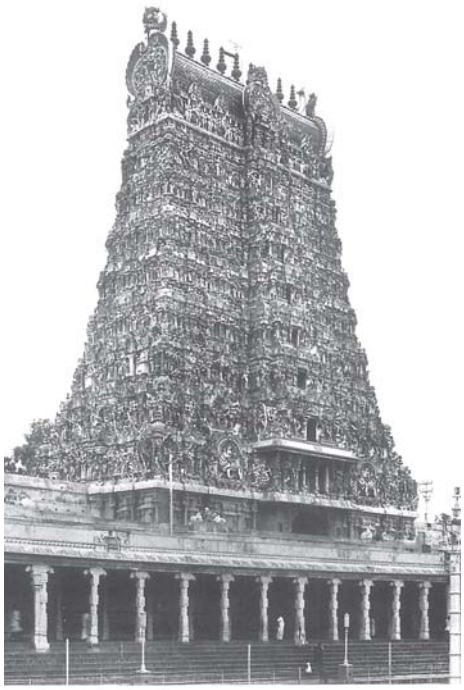

चित्र 7.26
मदुरई के नायकों द्वारा बनवाया गया एक गोपुरम्

हैं। इस देवता की पूजा को कर्नाटक में आरंभ करना उन माध्यमों का द्योतक है जिनसे एक साम्राज्यिक संस्कृति के निर्माण के लिए विजयनगर के शासकों ने अलग-अलग परंपराओं को आत्मसात किया। अन्य मन्दिरों की तरह ही इस मन्दिर में भी कई सभागार तथा रथ के आकार का एक अनूठा मन्दिर भी है (चित्र 7.24)।

मन्दिर परिसरों की एक चारित्रिक विशेषता रथ गलियाँ हैं जो मन्दिर के गोपुरम् से सीधी रेखा में जाती हैं। इन गलियों का फर्श पत्थर के टुकड़ों से बनाया गया था और इनके दोनों ओर स्तंभ वाले मण्डप थे जिनमें व्यापारी अपनी दुकानें लगाया करते थे।

जिस प्रकार नायकों ने क़िलेबन्दी की परंपराओं को जारी रखा तथा और अधिक व्यापक बनाया, ठीक वैसा ही उन्होंने मन्दिर निर्माण की परंपराओं के संदर्भ में भी किया। यहाँ तक कि कुछ सबसे दर्शनीय गोपुरमों का निर्माण भी स्थानीय नायकों द्वारा किया गया था।

➲ चर्चा कीजिए...

आनुष्ठानिक स्थापत्य की पूर्ववर्ती परंपराओं को विजयनगर के शासकों ने कैसे और क्यों अपनाया तथा रूपान्तरित किया?

6. महलों, मन्दिरों तथा बाज़ारों का अंकन

हमने विजयनगर के विषय में जानकारी के भण्डार का विश्लेषण किया है - फोटोग्राफ, नक्शे, संरचनाओं के खड़े रेखाचित्र तथा मूर्तियाँ। यह सब कैसे खोजा गया? मैकेन्ज़ी द्वारा किए गए आरंभिक सर्वेक्षणों के बाद यात्रा वृत्तांतों और अभिलेखों से मिली जानकारी को एक साथ जोड़ा गया। बीसवीं शताब्दी में इस स्थान का संरक्षण भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण तथा कर्नाटक पुरातात्विक एवं संग्रहालय विभाग द्वारा किया गया। 1976 में हम्पी को राष्ट्रीय महत्त्व के स्थल के रूप में मान्यता मिली। तदोपरांत 1980 के दशक के आरंभ में विविध प्रकार के अभिलेखन प्रयोग से, व्यापक तथा गहन सर्वेक्षणों के माध्यम से, विजयनगर से मिले भौतिक अवशेषों के सूक्ष्मता से प्रलेखन की एक महत्त्वपूर्ण परियोजना का शुभारंभ किया गया। लगभग बीस वर्षों के काल में पूरे विश्व के दर्जनों विद्वानों ने इस जानकारी को इकट्ठा और संरक्षित करने का कार्य किया।

इस विशद प्रक्रिया के सिर्फ़ एक हिस्से को बारीकी से देखते हैं। यह है मानचित्र निर्माण। इसका पहला चरण यह था कि संपूर्ण क्षेत्र को 25

वर्गाकार भागों में बाँटा गया और प्रत्येक वर्ग को वर्णमाला के एक अक्षर से इंगित किया गया। फिर इन छोटे वर्गों को पुनः और भी छोटे वर्गों के समूहों में बाँटा गया। लेकिन इतना काफ़ी नहीं था : आगे फिर छोटे वर्गों को और छोटी इकाइयों में बाँटा गया।

जैसा कि आप देख सकते हैं, ये गहन सर्वेक्षण बहुत परिश्रम से किए गए थे, और इनसे हज़ारों संरचनाओं के अंशों–छोटे देवस्थलों और आवासों से लेकर विशाल मन्दिरों तक–को पुनः उजागर किया गया। उनका प्रलेखन भी किया गया। इस सबके कारण सड़कों, रास्तों और बाज़ारों आदि के अवशेषों को पुनः प्राप्त किया जा सका है। इन सभी की स्थिति की पहचान स्तंभ आधारों तथा मंचों के माध्यम से की गई है–एक समय जो बाज़ार, जीवंत थे, उनका बस अब यही कुछ बचा है।

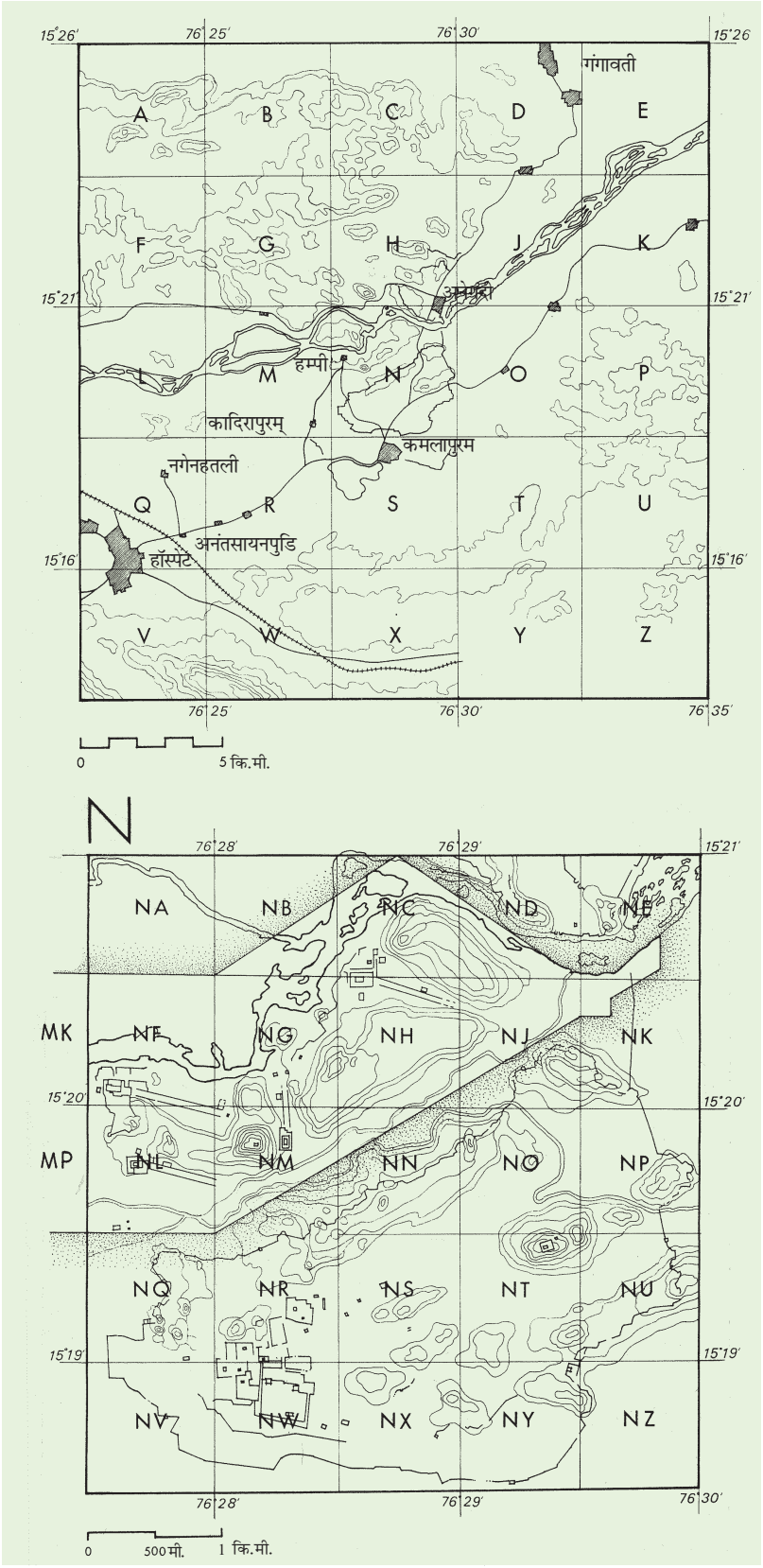

चित्र 7.27
विजयनगर स्थल का विस्तृत मानचित्र (ऊपर दाएँ)

➲ अंग्रेजी वर्णमाला का कौन सा अक्षर प्रयोग नहीं किया गया था? मानचित्र में दिए गए पैमाने का प्रयोग करते हुए किसी एक छोटे वर्ग की लंबाई नापिए।

चित्र 7.28
चित्र 7.27 का वर्ग N (दाएँ)

➲ इस मानचित्र में कौन सा पैमाना प्रयोग किया गया है?

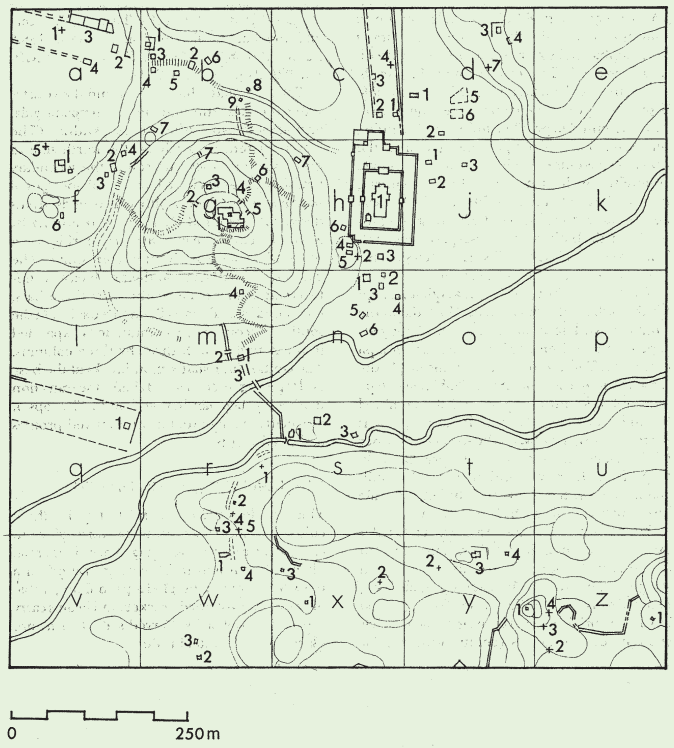

चित्र 7.29
चित्र 7.28 का वर्ग NM

➲ किसी एक मन्दिर को पहचानिए। दीवारों, एक केंद्रीय देवालय, तथा मन्दिर तक जाने वाले रास्तों के अवशेषों को खोजिए। मानचित्र पर उन वर्गों को नाम दीजिए जिनमें मन्दिर का नक्शा स्थित है।

जॉन एम. फ्रिट्ज़, जॉर्ज मिशेल तथा एम. एस. नागराज राव जिन्होंने इस स्थान पर वर्षों तक कार्य किया, ने जो लिखा वह याद रखना महत्त्वपूर्ण है: "विजयनगर के स्मारकों के अपने अध्ययन में हमें नष्ट हो चुकी लकड़ी की वस्तुओं–स्तंभ, टेक (ब्रेकेट), धरन, भीतरी छत, लटकते हुए छज्जों के अंदरूनी भाग तथा मीनारों–की एक पूरी श्रेणी की कल्पना करनी पड़ती है जो प्लास्टर से सजाए और संभवत: चटकीले रंगों से चित्रित थे।"

हालाँकि लकड़ी की संरचनाएँ अब नहीं हैं और केवल पत्थर की संरचनाएँ अस्तित्व में हैं, यात्रियों द्वारा पीछे छोड़े गए विवरण उस समय के स्पंदन से पूर्ण जीवन के कुछ आयामों को पुनर्निर्मित करने में सहायक होते हैं।

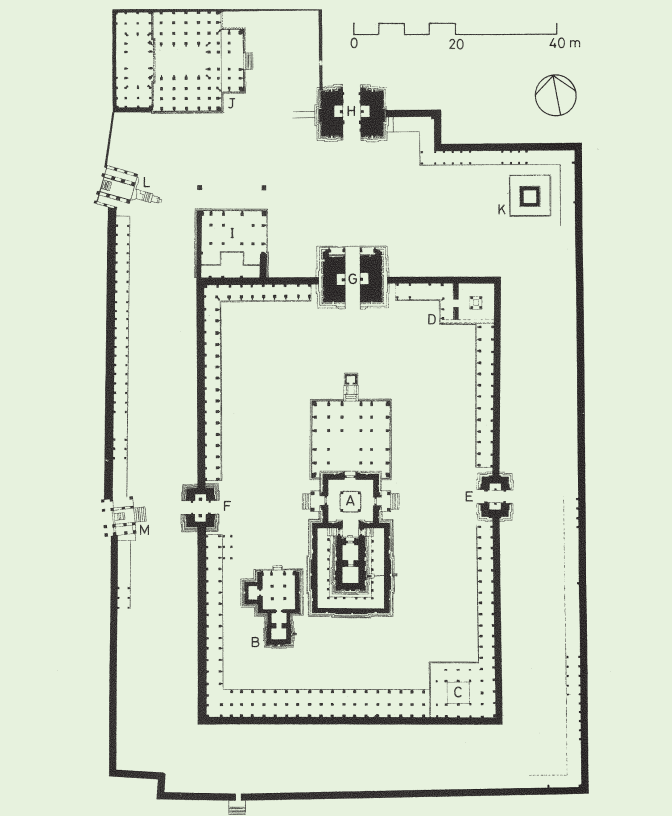

चित्र 7.30
चित्र 7.29 के मन्दिर का नक्शा

➲ गोपुरम्, सभागारों, स्तंभावलियों तथा केंद्रीय देवालय को पहचानिए। बाहरी प्रवेशद्वार से केंद्रीय देवालय तक पहुँचने के लिए आप किन भागों से होकर गुज़रेंगे।

स्रोत 5

बाज़ार

पेस बाज़ार का एक सजीव विवरण देता है:

> आगे जाने पर एक चौड़ी और सुंदर गली पाते हैं... इस गली में कई व्यापारी रहते हैं और वहाँ आप सभी प्रकार के माणिक्य, और हीरे, और पन्ने, और मोती, और छोटे मोती, और वस्त्र, और पृथ्वी पर होने वाली हर वस्तु जिसे आप खरीदना चाहेंगे, पाएँगे। फिर हर शाम को आप एक मेला देख सकते हैं जहाँ से कई सामान्य घोड़े तथा टट्टू और कई तुरंज और नींबू और संतरे और अंगूर और उद्यान में उगने वाली हर प्रकार की वस्तुएँ और लकड़ी मिलती है: इस गली में आप हर वस्तु पा सकते हैं।

और सामान्य रूप से वह शहर का वर्णन "विश्व के सबसे अच्छे संभरण वाले शहर" के रूप में करता है जहाँ बाज़ार "चावल, गेहूँ, अनाज, भारतीय मकई और कुछ मात्रा में जौ तथा सेम, मूँग, दालें, काला चना जैसे खाद्य पदार्थों से भरे रहते थे" जो सभी सस्ते दामों पर तथा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहते थे। फर्नाओ नूनिज़ के अनुसार विजयनगर के बाज़ार "प्रचुर मात्रा में फलों, अंगूरों और संतरों, नींबू, अनार, कटहल तथा आम से भरे रहते थे और सभी बहुत सस्ते।" बाज़ारों में मांस भी बड़ी मात्रा में बिकता था। नूनिज़ उल्लेख करता है कि "भेड़-बकरी का मांस, सूअर, मृगमांस, तीतर-मांस, खरगोश, कबूतर, बटेर और सभी प्रकार के पक्षी, चिड़ियाँ, चूहे तथा बिल्लियाँ और छिपकलियाँ" बिसनग (विजयनगर) के बाज़ारों में बिकती थीं।

7. उत्तरों की खोज में प्रश्न

सुरक्षित भवन हमें उन तरीकों के विषय में बताते हैं जिनसे स्थानों को व्यवस्थित किया गया और उन्हें प्रयोग में लाया गया। वह हमें यह भी बताते हैं कि किन वस्तुओं और तकनीकों से उनका निर्माण किया गया और कैसे किया गया। उदाहरण के लिए, किसी शहर की क़िलेबंदी के अध्ययन से हम उसकी प्रतिरक्षण आवश्यकताओं और सामरिक तैयारी को समझ सकते हैं। यदि हम उनकी अन्य स्थानों के भवनों से तुलना करें तो भवन हमें विचारों के फैलाव और सांस्कृतिक प्रभावों के बारे में भी बताते हैं। वे उन विचारों को ज़ाहिर करते हैं जो निर्माणकर्ता या प्रश्रयदाता व्यक्त करना चाहते थे। वे अकसर ऐसे चिह्नों से परिपूर्ण रहते हैं जो उनके सांस्कृतिक संदर्भ का परिणाम होते हैं। इन्हें हम समझ सकते हैं जब हम अन्य स्रोतों, जैसे साहित्य, अभिलेखों तथा लोकप्रचलित परंपराओं से मिली जानकारी को संयोजित करें।

कृष्णदेव राय

परिदृश्य की कुछ समस्याओं को पुनः याद करने के लिए तमिलनाडु में चिदम्बरम के मन्दिर के गोपुरम् में रखी कृष्णदेव राय की इस सुंदर प्रतिमा को देखिए।

स्वाभाविक है कि शासक इसी रूप में अपने आप को प्रस्तुत करना चाहता था।

और पेस राजा का वर्णन कुछ इस प्रकार करता है:
मझला कद, गोरा रंग और अच्छी काठी, कुछ मोटा, राजा के चेहरे पर चेचक के दाग़ हैं।

चित्र 7.31

स्थापत्य तत्वों के परीक्षण हमें यह नहीं बताते कि सामान्य पुरुष, महिलाएँ तथा बच्चे जो शहर और उसके आसपास के क्षेत्र में रहने वाली जनसंख्या का एक बड़ा भाग थे, इन प्रभावशाली भवनों के विषय में क्या सोचते थे। क्या उनकी शाही केंद्र अथवा धार्मिक केंद्र के किसी भी भाग में पहुँच हो सकती थी? क्या वे मूर्ति के सामने से तेज़ी से निकल जाते अथवा देखने के लिए रुकते, सोचते और उसके जटिल प्रतीक चित्रण को समझने का प्रयास करते? और वे लोग जिन्होंने इन विशाल निर्माण परियोजनाओं पर कार्य किया था, इन उद्यमों के विषय में क्या सोचते थे जिसके लिए उन्होंने अपना श्रम दान दिया था?

हालाँकि, क्या निर्माण करना है, स्थान, कौन-सा माल प्रयोग करना है और किस शैली का अनुसरण करना है, ये सभी निर्णय शासक लेते थे, पर इतने विशाल उद्यमों के लिए आवश्यक विशिष्ट ज्ञान किसके पास था? भवनों के नक्शे कौन बनाता था? राजगीर, पत्थर काटने वाले, मूर्तिकार जो वास्तविक निर्माण कार्य करते थे, कहाँ से आते थे? क्या उन्हें युद्ध के दौरान पड़ोसी क्षेत्रों से बंदी बनाया जाता था? उन्हें किस प्रकार के वेतन मिलते थे? निर्माण गतिविधियों का अधीक्षण कौन करता था? निर्माण के लिए कच्चा माल कैसे और कहाँ से लाया जाता था? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर हम भवनों या उनके अवशेषों को देखने मात्र से नहीं दे सकते। संभवतः अन्य स्रोतों के प्रयोग से जारी शोध कुछ और संकेत दे सकें।

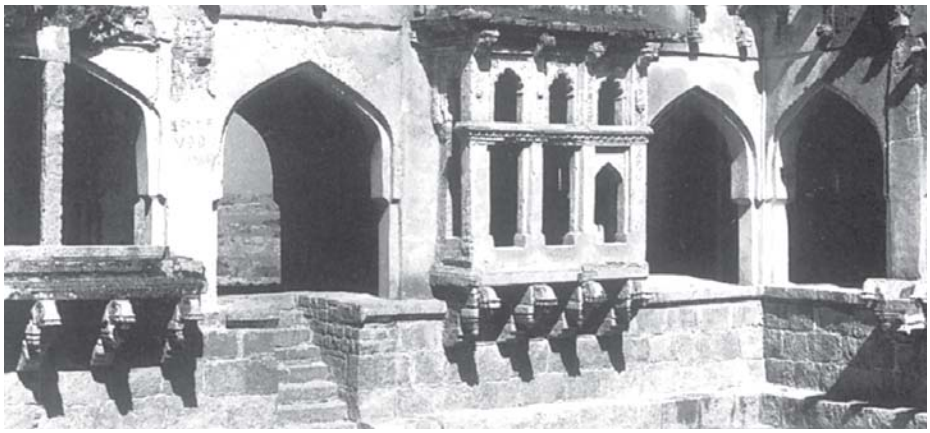

चित्र 7.32
रानी का स्नानघर नामक संरचना का एक भाग

काल-रेखा 1
महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन

लगभग 1200-1300 ईसवी	दिल्ली सल्तनत की स्थापना (1206)
लगभग 1300-1400 ईसवी	विजयनगर साम्राज्य की स्थापना (1336?); बहमनी राज्य की स्थापना (1347); जौनपुर, कश्मीर और मदुरई में सल्तनतें
लगभग 1400-1500 ईसवी	उड़ीसा के गजपति राज्य की स्थापना (1435); गुजरात और मालवा की सल्तनतों की स्थापना; अहमदाबाद, बीजापुर तथा बेरार सल्तनतों का उदय (1490)
लगभग 1500-1600 ईसवी	पुर्तगालियों द्वारा गोवा पर विजय (1510); बहमनी राज्य का विनाश; गोलकुंडा की सल्तनत का उदय (1518); बाबर द्वारा मुगल साम्राज्य की स्थापना (1526)

नोट : प्रश्नचिह्न अनिश्चित तिथि की ओर संकेत करता है।

काल-रेखा 2
विजयनगर की खोज व संरक्षण की मुख्य घटनाएँ

1800	कॉलिन मैकेन्जी द्वारा विजयनगर की यात्रा
1856	अलेक्जैंडर ग्रनिलो ने हम्पी के पुरातात्विक अवशेषों के पहले विस्तृत चित्र लिए
1876	पुरास्थल की मंदिर की दीवारों के अभिलेखों का जे.एफ. फ्लीट द्वारा प्रलेखन आरंभ
1902	जॉन मार्शल के अधीन संरक्षण कार्य आरंभ
1986	हम्पी को यूनेस्को द्वारा विश्व पुरातत्व स्थल घोषित किया जाना

उत्तर दीजिए (लगभग 100-150 शब्दों में)

1. पिछली दो शताब्दियों में हम्पी के भवनावशेषों के अध्ययन में कौन-सी पद्धतियों का प्रयोग किया गया है? आपके अनुसार यह पद्धतियाँ विरुपाक्ष मन्दिर के पुरोहितों द्वारा प्रदान की गई जानकारी का किस प्रकार पूरक रहीं?
2. विजयनगर की जल-आवश्यकताओं को किस प्रकार पूरा किया जाता था?
3. शहर के क़िलेबंद क्षेत्र में कृषि क्षेत्र को रखने के आपके विचार में क्या फ़ायदे और नुकसान थे?
4. आपके विचार में महानवमी डिब्बा से संबद्ध अनुष्ठानों का क्या महत्त्व था?
5. चित्र 7.33 विरुपाक्ष मन्दिर के एक अन्य स्तंभ का रेखाचित्र है। क्या आप कोई पुष्प-विषयक रूपांकन देखते हैं? किन जानवरों को दिखाया गया है? आपके विचार में उन्हें क्यों चित्रित किया गया है? मानव आकृतियों का वर्णन कीजिए।

चित्र 7.33

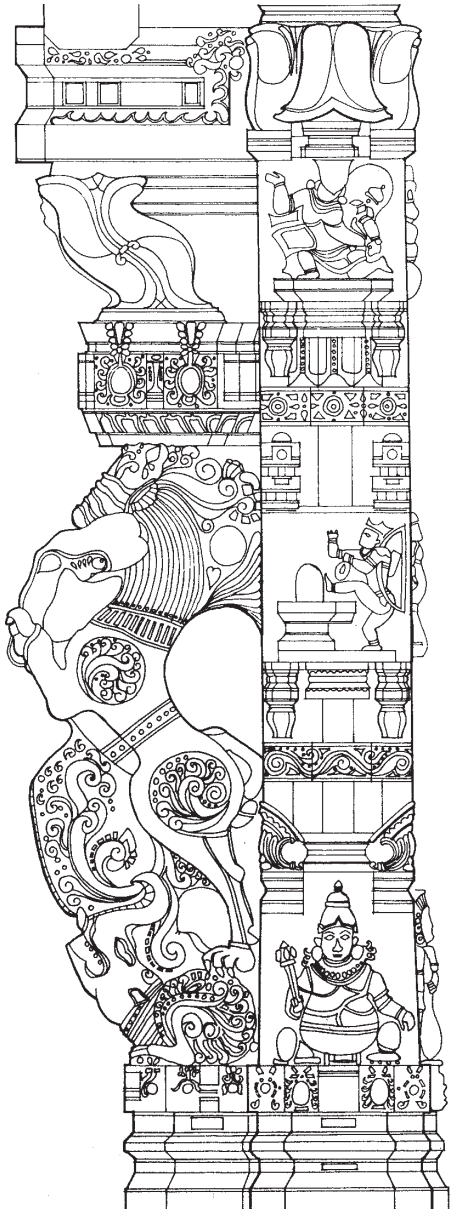

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250-300 शब्दों में)

6. "शाही केंद्र" शब्द शहर के जिस भाग के लिए प्रयोग किए गए हैं, क्या वे उस भाग का सही वर्णन करते हैं।
7. कमल महल और हाथियों के अस्तबल जैसे भवनों का स्थापत्य हमें उनके बनवाने वाले शासकों के विषय में क्या बताता है?
8. स्थापत्य की कौन-कौन-सी परंपराओं ने विजयनगर के वास्तुविदों को प्रेरित किया? उन्होंने इन परंपराओं में किस प्रकार बदलाव किए?
9. अध्याय के विभिन्न विवरणों से आप विजयनगर के सामान्य लोगों के जीवन की क्या छवि पाते हैं?

मानचित्र कार्य

10. विश्व के सीमारेखा मानचित्र पर इटली, पुर्तगाल, ईरान तथा रूस को सन्निकटता से अंकित कीजिए। उन मार्गों को पहचानिए जिनका प्रयोग पृ. 176 पर उल्लिखित यात्रियों ने विजयनगर पहुँचने के लिए किया था।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. भारतीय उपमहाद्वीप के किसी एक ऐसे प्रमुख शहर के विषय में और जानकारी हासिल कीजिए जो लगभग चौदहवीं-सत्रहवीं शताब्दियों में फला-फूला। शहर के स्थापत्य का वर्णन कीजिए। क्या कोई ऐसे लक्षण हैं जो इनके राजनीतिक केंद्र होने की ओर संकेत करें? क्या ऐसे भवन हैं जो आनुष्ठानिक रूप से महत्त्वपूर्ण हों? कौन-से ऐसे लक्षण हैं जो शहरी भाग को आस-पास के क्षेत्रों से विभाजित करते हैं?

12. अपने आस-पास के किसी धार्मिक भवन को देखिए। रेखाचित्र के माध्यम से छत, स्तंभों, मेहराबों, यदि हों तो, गलियारों, रास्तों, सभागारों, प्रवेशद्वारों, जलआपूर्ति आदि का वर्णन कीजिए। इन सभी की तुलना विरुपाक्ष मन्दिर के अभिलक्षणों से कीजिए। वर्णन कीजिए कि भवन का हर भाग किस प्रयोग में लाया जाता था। इसके इतिहास के विषय में पता कीजिए।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए:

बसुंधरा फिलियोजट, 2006 (पुनर्मुद्रण)
विजयनगर
नेशनल बुक ट्रस्ट, न्यू दिल्ली

जॉर्ज मिशैल, 1995
ऑर्किटैक्चर एंड आर्ट ऑफ सदर्न इंडिया
कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
कैम्ब्रिज

के.ए. नीलकंठ शास्त्री, 1955
ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
न्यू दिल्ली

बर्टन स्टीन, 1989
विजयनगर (द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉल्यूम 1, पार्ट 2)
फाउंडेशन बुक्स, न्यू दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं
http://www.museum.upenn.edu/new/kresearch/Exp_Rese_Disc/Asia/vrp/HTML/Vijay_Hist.shtml

विषय आठ

किसान, ज़मींदार और राज्य

कृषि समाज और मुग़ल साम्राज्य

(लगभग सोलहवीं और सत्रहवीं सदी)

चित्र 8.1
एक ग्रामीण दृश्य
सत्रहवीं शताब्दी के एक मुग़ल चित्र का ब्योरा

सोलहवीं-सत्रहवीं सदी के दौरान हिंदुस्तान में करीब-करीब 85 फ़ीसदी लोग गाँवों में रहते थे। छोटे खेतिहर और भूमिहर संभ्रांत दोनों ही कृषि उत्पादन से जुड़े थे और दोनों ही फ़सल के हिस्सों के दावेदार थे। इससे उनके बीच सहयोग, प्रतियोगिता और संघर्ष के रिश्ते बने। खेती से जुड़े इन तमाम रिश्तों के ताने-बाने से गाँव का समाज बनता था।

इसी समय कई बाहरी ताकतें भी ग्रामीण दुनिया में दाखिल हुईं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण मुग़ल राज्य था जो अपनी आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा कृषि उत्पादन से उगाहता था। राज्य के नुमाइंदे – राजस्व निर्धारित करने वाले, राजस्व वसूली करने वाले, हिसाब रखने वाले – ग्रामीण समाज पर काबू रखने की कोशिश करते थे। वे तसल्ली करना चाहते थे कि खेतों की जुताई हो और राज्य को उपज से अपने हिस्से का कर समय पर मिल जाए। चूँकि कई फ़सलें बिक्री के लिए उगाई जाती थीं, इसलिए व्यापार, मुद्रा और बाज़ार भी गाँवों में घुस आए और इससे खेती वाले इलाके शहर से जुड़ गए।

1. किसान और कृषि उत्पादन

खेतिहर समाज की बुनियादी इकाई गाँव थी जिसमें किसान रहते थे। किसान साल भर अलग-अलग मौसम में वो तमाम काम करते थे जिससे फ़सल की पैदावार होती थी – जैसे कि ज़मीन की जुताई, बीज बोना और फ़सल पकने पर उसकी कटाई। इसके अलावा वे उन वस्तुओं के उत्पादन में भी शरीक़ होते थे जो कृषि-आधारित थीं जैसे कि शक्कर, तेल इत्यादि।

लेकिन सिर्फ़ मैदानी इलाकों में बसे किसानों की खेती ही ग्रामीण भारत की ख़ासियत नहीं थी। कई ऐसे क्षेत्र भी थे – जैसे कि सूखी ज़मीन के विशाल हिस्सों से पहाड़ियों वाले इलाके – जहाँ उस तरह की खेती नहीं हो सकती थी जैसी कि ज़्यादा उपजाऊ ज़मीनों पर। इसके अलावा, भूखंड का एक बहुत बड़ा हिस्सा जंगलों से घिरा था। जब हम

कृषि समाज की बात करते हैं तब हमें इन भौगोलिक विविधताओं का ख़्याल रखना चाहिए।

1.1 स्रोतों की तलाश

चूँकि किसान अपने बारे में खुद नहीं लिखा करते थे इसलिए ग्रामीण समाज के क्रियाकलापों की जानकारी हमें उन लोगों से नहीं मिलती जो खेतों में काम करते थे। नतीजतन, सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों के कृषि इतिहास को समझने के लिए हमारे मुख्य स्रोत वे ऐतिहासिक ग्रंथ व दस्तावेज़ हैं जो मुग़ल दरबार की निगरानी में लिखे गए थे (देखिए अध्याय 9)।

सबसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथों में एक था *आइन-ए-अकबरी* (संक्षेप में *आइन*, देखिए अनुभाग 8) जिसे अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फ़ज़्ल ने लिखा था। खेतों की नियमित जुताई की तसल्ली करने के लिए, राज्य के नुमाइंदों द्वारा करों की उगाही के लिए और राज्य व ग्रामीण सत्तापोशों यानी कि ज़मींदारों के बीच के रिश्तों के नियमन के लिए जो इंतज़ाम राज्य ने किए थे, उसका लेखा-जोखा इस ग्रंथ में बड़ी सावधानी से पेश किया गया है।

आइन का मुख्य उद्देश्य अकबर के सम्राज्य का एक ऐसा खाका पेश करना था जहाँ एक मज़बूत सत्ताधारी वर्ग सामाजिक मेल-जोल बना कर रखता था। *आइन* के लेखक के मुताबिक, मुग़ल राज्य के खिलाफ़ कोई बगावत या किसी भी किस्म की स्वायत्त सत्ता की दावेदारी का असफल होना पहले ही तय था। दूसरे शब्दों में, किसानों के बारे में जो कुछ हमें *आइन* से पता चलता है वह सत्ता के ऊँचे गलियारों का नज़रिया है।

खुशकिस्मती से *आइन* की जानकारी के साथ-साथ हम उन स्रोतों का भी इस्तेमाल कर सकते हैं जो मुग़लों की राजधानी से दूर के इलाकों में लिखे गए थे। इनमें सत्रहवीं व अठारहवीं सदियों के गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान से मिलने वाले वे दस्तावेज़ शामिल हैं जो सरकार की आमदनी की विस्तृत जानकारी देते हैं। इसके अलावा, ईस्ट इंडिया कंपनी के बहुत सारे दस्तावेज़ भी हैं जो पूर्वी भारत में कृषि-संबंधों का उपयोगी खाका पेश करते हैं। ये सभी स्रोत किसानों, ज़मींदारों और राज्य के बीच तने झगड़ों को दर्ज करते हैं। लगे हाथ, ये स्रोत यह समझने में हमारी मदद करते हैं कि किसान राज्य को किस नज़रिये से देखते थे और राज्य से उन्हें कैसे न्याय की उम्मीद थी।

1.2 किसान और उनकी ज़मीन

मुग़ल काल के भारतीय-फ़ारसी स्रोत किसान के लिए आमतौर पर *रैयत* (बहुवचन, *रिआया*) या *मुज़रियान* शब्द का इस्तेमाल करते थे। साथ ही, हमें किसान या आसामी जैसे शब्द भी मिलते हैं। सत्रहवीं सदी के स्रोत

स्रोत 1

किसान बस्तियों का बसना-उजड़ना

यह हिंदुस्तानी कृषि समाज की एक ख़ासियत थी और इस ख़ासियत ने मुग़ल शासक बाबर की तेज़ निगाहों को इतना चौंकाया कि उसने इसे अपने संस्मरण *बाबरनामा* में नोट किया:

> हिंदुस्तान में बस्तियाँ और गाँव, दरअसल शहर के शहर, एक लमहे में ही वीरान भी हो जाते हैं और बस भी जाते हैं। वर्षों से आबाद किसी बड़े शहर के बाशिंदे उसे छोड़कर चले जाते हैं, तो वे ये काम कुछ इस तरह करते हैं कि डेढ़ दिनों के अंदर उनका हर नामोनिशान (वहाँ से) मिट जाता है। दूसरी ओर, अगर वे किसी जगह पर बसना चाहते हैं तो उन्हें पानी के रास्ते खोदने की ज़रूरत नहीं होती क्योंकि उनकी सारी फ़सलें बारिश के पानी में उगती हैं, और चूँकि हिंदुस्तान की आबादी बेशुमार है, लोग उमड़ते चले आते हैं। वे एक सरोवर या कुआँ बना लेते हैं; उन्हें घर बनाने या दीवार खड़ी करने की भी ज़रूरत नहीं होती... खस की घास बहुतायात में पाई जाती हैं, जंगल अपार हैं, झोंपड़ियाँ बनाई जाती हैं, और यकायक एक गाँव या शहर खड़ा हो जाता है!

➲ कृषि जीवन के उन पहलुओं का विवरण दीजिए जो बाबर को उत्तर भारत के इलाके की ख़ासियत लगी।

दो किस्म के किसानों की चर्चा करते हैं – *खुद-काश्त* व *पाहि-काश्त*। पहले किस्म के किसान वे थे जो उन्हीं गाँवों में रहते थे जिनमें उनकी ज़मीन थीं। दूसरे (पाहि-काश्त) वे खेतिहर थे जो दूसरे गाँवों से ठेके पर खेती करने आते थे। लोग अपनी मर्ज़ी से भी पाहि-काश्त बनते थे (मसलन, अगर करों की शर्तें किसी दूसरे गाँव में बेहतर मिलें) और मजबूरन भी (मसलन, अकाल या भुखमरी के बाद आर्थिक परेशानी से)।

उत्तर भारत के एक औसत किसान के पास शायद ही कभी एक जोड़ी बैल और दो हल से ज़्यादा कुछ होता था; ज़्यादातर के पास इससे भी कम। गुजरात में जिन किसानों के पास 6 एकड़ के करीब ज़मीन थी वे समृद्ध माने जाते थे; दूसरी तरफ़, बंगाल में एक औसत किसान की ज़मीन की ऊपरी सीमा 5 एकड थी; 10 एकड़ ज़मीन वाली आसामी को अमीर समझा जाता था। खेती व्यक्तिगत मिल्कियत के सिद्धांत पर आधारित थी। किसानों की ज़मीन उसी तरह खरीदी और बेची जाती थी जैसे दूसरे संपत्ति मालिकों की।

उन्नीसवीं सदी के दिल्ली-आगरा इलाके में किसानों की मिल्कियत का यह विवरण सत्रहवीं सदी पर भी उतना ही लागू होता है:

> हल जोतने वाले खेतिहर किसान हर ज़मीन की हदों पर मिट्टी, ईंट और काँटों से पहचान के लिए निशान लगाते हैं, और ज़मीन के ऐसे हज़ारों टुकड़े किसी भी गाँव में देखे जा सकते हैं।

1.3 सिंचाई और तकनीक

ज़मीन की बहुतायत, मजदूरों की मौजूदगी, और किसानों की गतिशीलता की वजह से कृषि का लगातार विस्तार हुआ। चूँकि खेती का प्राथमिक उद्देश्य लोगों का पेट भरना था, इसलिए रोज़मर्रा के खाने की जरूरतें जैसे चावल, गेहूँ, ज्वार इत्यादि फ़सलें सबसे ज़्यादा उगाई जाती थीं। जिन इलाकों में प्रति वर्ष 40 इंच या उससे ज़्यादा बारिश होती थी, वहाँ कमोबेश चावल की खेती होती थी। कम और कमतर बारिश वाले इलाकों में क्रमश: गेहूँ व ज्वार-बाजरे की खेती ज़्यादा प्रचलित थी।

मानसून भारतीय कृषि की रीढ़ था, जैसा कि आज भी है। लेकिन कुछ ऐसी फ़सलें भी थीं जिनके लिए अतिरिक्त पानी की ज़रूरत थी। इनके लिए सिंचाई के कृत्रिम उपाय बनाने पड़े।

स्रोत 2

पेड़ों और खेतों की सिंचाई

यह *बाबरनामा* से लिया गया एक अंश है जो सिंचाई के उन उपकरणों के बारे में बताता है जो इस बादशाह ने उत्तर भारत में देखे:

हिंदुस्तान के मुल्क का ज़्यादातर हिस्सा मैदानी ज़मीन पर बसा हुआ है। हालांकि यहाँ शहर और खेती लायक ज़मीन की बहुतायत है, लेकिन कहीं भी बहते पानी (का इंतज़ाम) नहीं... वे इसलिए... कि फ़सल उगाने या बागानों के लिए पानी की बिलकुल ज़रूरत नहीं है। शरद ऋतु की फ़सलें बारिश के पानी से ही पैदा हो जाती हैं; और ये हैरानगी की बात है कि बसंत ऋतु की फ़सलें तो तब भी पैदा हो जाती हैं जब बारिश बिलकुल ही नहीं होती। (फिर भी) छोटे पेड़ों तक बालटियों या रहट के ज़रिये पानी पहुँचाया जाता है...

लाहौर, दीपालपुर (दोनों ही आज के पाकिस्तान में) और ऐसी दूसरी जगहों पर लोग रहट के ज़रिये सिंचाई करते हैं। वे रस्सी के दो गोलाकार फ़ंदे बनाते हैं जो कुएँ की गहराई के मुताबिक लंबे होते हैं। इन फ़ंदों में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर वे लकड़ी के गुटके लगाते हैं और इन गुटकों पर घड़े बाँध देते हैं। लकड़ी के गुटकों और घड़ों से बँधी इन रस्सियों को कुएँ के ऊपर पहियों से लटकाया जाता है। पहिये की धुरी पर एक और पहिया। इस अंतिम पहिये को बैल के ज़रिये घुमाया जाता है; इस पहिये के दाँत पास के दूसरे पहिये के दाँतों को जकड़ लेते हैं और इस तरह घड़ों वाला पहिया घूमने लगता है। घड़ों से जहाँ पानी गिरता है, वहाँ एक संकरा नाला खोद दिया जाता है और इस तरीके से हर जगह पानी पहुँचाया जाता है।

आगरा, चाँदवर और बयाना (आज के उत्तर प्रदेश में) में और ऐसे अन्य इलाकों में भी, लोगबाग बालटियों से सिंचाई करते हैं। कुएँ के किनारे पर वे लकड़ी के कन्ने गाड़ देते हैं, इन कन्नों के बीच बेलन टिकाते हैं, एक बड़ी बालटी में रस्सी बाँधते हैं, रस्सी को बेलन पर लपेटते हैं और इसके दूसरे छोर को बैल से बाँध देते हैं। एक शख़्स को बैल हाँकना पड़ता है, दूसरा बालटी से पानी निकालता है।

➲ सिंचाई के जिन साधनों का ज़िक्र बाबर ने किया है उनकी तुलना विजयनगर की सिंचाई (अध्याय 7) व्यवस्था से कीजिए। सिंचाई की इन दोनों अलग-अलग प्रणालियों में किस-किस तरह के संसाधनों की ज़रूरत पड़ती होगी? इनमें से किन-किन प्रणालियों में कृषि तकनीक में सुधार के लिए किसानों की भागेदारी ज़रूरी होती होगी?

चित्र 8.2
रहट की संरचना

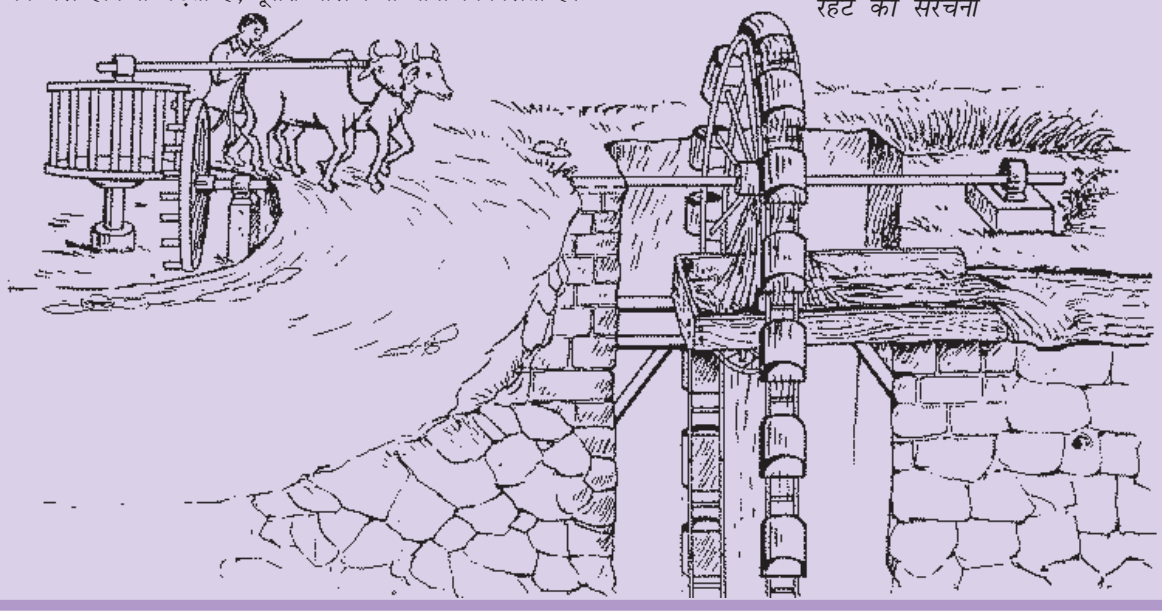

सिंचाई कार्यों को राज्य की मदद भी मिलती थी। मसलन, उत्तर भारत में राज्य ने कई नयी नहरें व नाले खुदवाए और कई पुरानी नहरों की मरम्मत करवाई, जैसे कि शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान पंजाब में *शाह नहर* ।

वैसे तो खेती मेहनतकशी का काम था लेकिन किसान ऐसी तकनीकों का इस्तेमाल भी करते थे जो अकसर पशुबल पर आधारित होती थीं। ऐसा एक उदाहरण लकड़ी के उस हलके हल का दिया जा सकता है जिसको एक छोर पर लोहे की नुकीली धार या फाल लगाकर आसानी से बनाया जा सकता था। ऐसे हल मिट्टी को बहुत गहरे नहीं खोदते थे जिसके कारण तेज़ गर्मी के महीनों में नमी बची रहती थी। बैलों के जोड़े के सहारे खींचे जाने वाले बरमे का इस्तेमाल बीज बोने के लिए किया जाता था। लेकिन बीजों को हाथ से छिड़क कर बोने का रिवाज ज़्यादा प्रचलित था। मिट्टी की गुड़ाई और साथ-साथ निराई के लिए लकड़ी के मूठ वाले लोहे के पतले धार काम में लाए जाते थे।

1.4 फ़सलों की भरमार

मौसम के दो मुख्य चक्रों के दौरान खेती की जाती थी: एक खरीफ़ (पतझड़ में) और दूसरी रबी (वसंत में)। यानी सूखे इलाकों और बंजर ज़मीन को छोड़ दें तो ज़्यादातर जगहों पर साल में कम से कम दो फ़सलें होती थीं। जहाँ बारिश या सिंचाई के अन्य साधन हर वक्त मौजूद थे वहाँ तो साल में तीन फ़सलें भी उगाई जाती थीं। इस वजह से पैदावार में भारी विविधता पाई जाती थी। उदाहरण के तौर पर, *आइन* हमें बताती है कि दोनों मौसम मिलाकर, मुग़ल प्रांत आगरा में 39 किस्म की फ़सलें उगाई जाती थीं जबकि दिल्ली प्रांत में 43 फ़सलों की पैदावार होती थी। बंगाल में सिर्फ चावल की 50 किस्में पैदा होती थीं।

हालाँकि दैनिक आहार की खेती पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता था मगर इसका मतलब यह नहीं था कि मध्यकालीन भारत में खेती सिर्फ़ गुज़ारा करने के लिए की जाती थी। स्रोतों में हमें अकसर जिन्स-ए-कामिल (सर्वोत्तम फ़सलें) जैसे लफ़्ज़ मिलते हैं। मुग़ल राज्य भी किसानों को ऐसी फ़सलों की खेती करने के लिए बढ़ावा देता था क्योंकि इनसे राज्य को ज़्यादा कर मिलता था। कपास और गन्ने जैसी फ़सलें बेहतरीन जिन्स-ए-कामिल थीं। मध्य भारत और दक्कनी पठार में फैले हुए ज़मीन के बड़े-बड़े टुकड़ों पर कपास उगाई जाती थी, जबकि बंगाल अपनी चीनी के लिए मशहूर था। तिलहन (जैसे सरसों) और दलहन भी नकदी फ़सलों में आती थीं। इससे पता चलता है कि एक औसत किसान की ज़मीन पर किस तरह पेट भरने के लिए होने वाले उत्पादन और व्यापार के लिए किए जाने वाले उत्पादन एक दूसरे से जुड़े हुए थे।

तम्बाकू का प्रसार

यह पौधा सबसे पहले दक्कन पहुँचा और वहाँ से सत्रहवीं सदी के शुरुआती वर्षों में इसे उत्तर भारत लाया गया। *आइन* उत्तर भारत की फ़सलों की सूची में तम्बाकू का ज़िक्र नहीं करती है। अकबर और उसके अभिजातों ने 1604 ई. में पहली बार तम्बाकू देखा। ऐसा लगता है कि इसी समय तम्बाकू का धूम्रपान (हुक्के या चिलम में) करने की लत ने ज़ोर पकड़ा। जहाँगीर इस बुरी आदत के फैलने से इतना चिंतित हुआ कि उसने इस पर पाबंदी लगा दी। यह पाबंदी पूरी तरह से बेअसर साबित हुई क्योंकि हम जानते हैं कि सत्रहवीं सदी के अंत तक, तम्बाकू पूरे भारत में खेती, व्यापार और उपयोग की मुख्य वस्तुओं में से एक था।

कृषि की समृद्धि और आबादी की बढ़ोतरी

कृषि उत्पादन के ऐसे विविध और लचीले तरीक़ों का एक बड़ा नतीजा यह निकला कि आबादी धीर-धीरे बढ़ने लगी। आर्थिक इतिहासकारों की गणना के मुताबिक, समय-समय पर होने वाली भूखमरी और महामारी के बावजूद, 1600 से 1700 के बीच भारत की आबादी लगभग 5 करोड़ बढ़ गई। 200 वर्षों में यह करीब-करीब 33 फीसदी बढ़ोतरी थी।

सत्रहवीं सदी में दुनिया के अलग-अलग हिस्सों से कई नयी फ़सलें भारतीय उपमहाद्वीप पहुँचीं। मसलन, मक्का भारत में अफ्रीका और स्पेन के रास्ते आया और सत्रहवीं सदी तक इसकी गिनती पश्चिम भारत की मुख्य फ़सलों में होने लगी। टमाटर, आलू और मिर्च जैसी सब्ज़ियाँ नयी दुनिया से लाई गईं। इसी तरह अनानास और पपीता जैसे फल वहीं से आए।

2. ग्रामीण समुदाय

ऊपर लिखी बातों से ज़हिर है कि कृषि उत्पादन में किसानों की पुरज़ोर भागीदारी और पहल होती थी। इससे मुग़ल समाज के कृषि संबंधों पर क्या असर पड़ता था? यह पता करने के लिए आइए, हम समाज के उन समूहों पर एक नज़र डालें जो खेती के विस्तार में शरीक होते थे। साथ ही हम उनके बीच के रिश्तों और झगड़ों पर भी गौर करेंगे।

हम पहले देख चुके हैं कि किसान की अपनी ज़मीन पर व्यक्तिगत मिल्कियत होती थी। साथ ही जहाँ तक उनके सामाजिक अस्तित्व का सवाल है, कई मायनों में वे एक सामूहिक ग्रामीण समुदाय का हिस्सा थे। इस समुदाय के तीन घटक थे - खेतिहर किसान, पंचायत और गाँव का मुखिया (मुक़द्दम या मंडल)।

2.1 जाति और ग्रामीण माहौल

जाति और जाति जैसे अन्य भेदभावों की वजह से खेतिहर किसान कई तरह के समूहों में बँटे थे। खेतों की जुताई करने वालों में एक बड़ी तादाद ऐसे लोगों की थी जो नीच समझे जाने वाले कामों में लगे थे, या फिर खेतों में मज़दूरी करते थे।

हालाँकि खेती लायक ज़मीन की कमी नहीं थी, फिर भी कुछ जाति के लोगों को सिर्फ नीच समझे जाने वाले काम ही दिए जाते थे। इस तरह वे ग़रीब रहने के लिए मजबूर थे। जनगणना तो उस वक्त नहीं होती थी, पर जो थोड़े बहुत आँकड़े और तथ्य हमारे पास हैं उनसे पता चलता है कि गाँव की आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसे ही समूहों का था। इनके पास संसाधन सबसे कम थे और ये जाति व्यवस्था की पाबंदियों से बँधे थे। इनकी हालत कमोबेश

➲ चर्चा कीजिए...

इस अनुभाग में खेती संबंधी जिन क्रियाकलापों और तकनीकों की चर्चा हुई है उनमें से कौन-कौन सी अध्याय 2 में वर्णित तकनीकों और क्रियाकलापों से मिलती-जुलती हैं और कौन कौन सी भिन्न हैं?

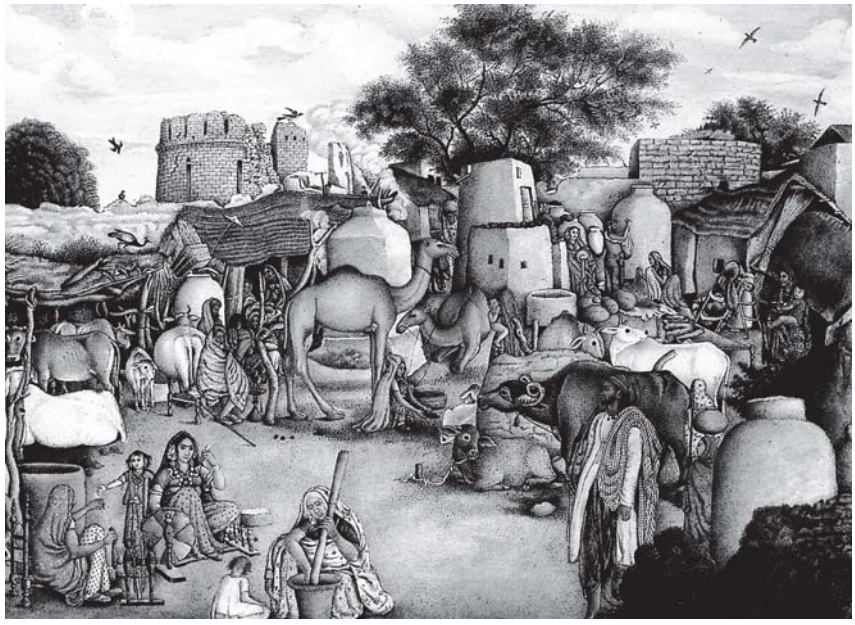

चित्र 8.3
आरंभिक उन्नीसवीं शताब्दी का एक चित्र जिसमें पंजाब के एक गाँव को दिखाया गया है।

➲ चित्र में महिलाएँ और पुरुष क्या-क्या करते दिखाए गए हैं? गाँव की वास्तुकला का भी वर्णन कीजिए।

वैसी ही थी जैसी कि आधुनिक भारत में दलितों की। दूसरे संप्रदायों में भी ऐसे भेदभाव फैलने लगे थे। मुसलमान समुदायों में हलालख़ोरान जैसे 'नीच' कामों से जुड़े समूह गाँव की हदों के बाहर ही रह सकते थे; इसी तरह बिहार में मल्लाहज़ादाओं (शाब्दिक अर्थ, नाविकों के पुत्र), की तुलना दासों से की जा सकती थी।

समाज के निचले तबकों में जाति, गरीबी और सामाजिक हैसियत के बीच सीधा रिश्ता था। ऐसा बीच के समूहों में नहीं था। सत्रहवीं सदी में माड़वाड़ में लिखी गई एक किताब राजपूतों की चर्चा किसानों के रूप में करती है। इस किताब के मुताबिक जाट भी किसान थे लेकिन जाति व्यवस्था में उनकी जगह राजपूतों के मुक़ाबले नीची थी। सत्रहवीं सदी में राजपूत होने का दावा वृंदावन (उत्तर प्रदेश) के इलाके में गौरव समुदाय ने भी किया, बावजूद इसके कि वे ज़मीन की जुताई के काम में लगे थे। पशुपालन और बागबानी में बढ़ते मुनाफ़े की वजह से अहीर, गुज्जर और माली जैसी जातियाँ सामाजिक सीढ़ी में ऊपर उठीं। पूर्वी इलाकों में, पशुपालक और मछुआरी जातियाँ, जैसे सदगोप व कैवर्त भी किसानों की सी सामाजिक स्थिति पाने लगीं।

2.2 पंचायतें और मुखिया

गाँव की पंचायत में बुज़ुर्गों का जमावड़ा होता था। आमतौर पर वे गाँव के महत्त्वपूर्ण लोग हुआ करते थे जिनके पास अपनी संपत्ति के पुश्तैनी अधिकार होते थे। जिन गाँवों में कई जातियों के लोग रहते थे, वहाँ अकसर पंचायत में भी विविधता पाई जाती थी। यह एक ऐसा अल्पतंत्र था जिसमें गाँव के अलग-अलग संप्रदायों और जातियों की नुमाइंदगी होती थी। फिर भी इसकी संभावना कम ही है कि छोटे-मोटे और "नीच" काम करने वाले खेतिहर मज़दूरों के लिए इसमें कोई जगह होती होगी। पंचायत का फ़ैसला गाँव में सबको मानना पड़ता था।

पंचायत का सरदार एक मुखिया होता था जिसे मुक़द्दम या मंडल कहते थे। कुछ स्रोतों से ऐसा लगता है कि मुखिया का चुनाव गाँव के बुज़ुर्गों की आम सहमति से होता था और इस चुनाव के बाद उन्हें इसकी मंज़ूरी ज़मींदार से लेनी पड़ती थी। मुखिया अपने ओहदे पर तभी तक बना रहता था जब तक गाँव के बुज़ुर्गों को उस पर भरोसा था। ऐसा नहीं होने पर बुज़ुर्ग उसे बर्ख़ास्त कर सकते थे। गाँव के आमदनी व खर्चे का हिसाब-किताब अपनी निगरानी में बनवाना मुखिया का मुख्य काम था और इसमें पंचायत का पटवारी उसकी मदद करता था।

पंचायत का खर्चा गाँव के उस आम ख़ज़ाने से चलता था जिसमें हर व्यक्ति अपना योगदान देता था। इस ख़ज़ाने से उन कर अधिकारियों की ख़ातिरदारी का ख़र्चा भी किया जाता था जो समय-समय पर गाँव

भ्रष्ट मंडल

मंडल अकसर अपने ओहदे का ग़लत इस्तेमाल करते थे। मुख्यतः उन पर ये आरोप था कि वे पटवारी के साथ मिलकर हिसाब-किताब में हेरा-फेरी करते थे, और यह भी कि वे अपनी ज़मीन पर कर का आकलन कम करके, अतिरिक्त बोझ छोटे किसानों पर डाल देते थे।

का दौरा किया करते थे। दूसरी ओर, इस कोष का इस्तेमाल बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदाओं से निपटने के लिए भी होता था और ऐसे सामुदायिक कार्यों के लिए भी जो किसान खुद नहीं कर सकते थे, जैसे कि मिट्टी के छोटे-मोटे बाँध बनाना या नहर खोदना।

पंचायत का एक बड़ा काम यह तसल्ली करना था कि गाँव में रहने वाले अलग-अलग समुदायों के लोग अपनी जाति की हदों के अंदर रहें। पूर्वी भारत में सभी शादियाँ मंडल की मौजूदगी में होती थीं। यूँ कहा जा सकता है कि "जाति की अवहेलना रोकने के लिए" लोगों के आचरण पर नज़र रखना गाँव के मुखिया की ज़िम्मेदारियों में से एक था।

चित्र 8.4
प्रारंभिक उन्नीसवीं शताब्दी का चित्र जिसमें गाँव के बुज़ुर्ग कर अधिकारियों से मिल रहे हैं।

➲ चित्रकार ने गाँव के बुज़ुर्गों और कर अधिकारियों में फ़र्क कैसे डाला है?

पंचायतों को जुर्माना लगाने और समुदाय से निष्कासित करने जैसे ज़्यादा गंभीर दंड देने के अधिकार थे। समुदाय से बाहर निकालना एक कड़ा कदम था जो एक सीमित समय के लिए लागू किया जाता था। इसके तहत दंडित व्यक्ति को (दिए हुए समय के लिए) गाँव छोड़ना पड़ता था। इस दौरान वह अपनी जाति और पेशे से हाथ धो बैठता था। ऐसी नीतियों का मकसद जातिगत रिवाजों की अवहेलना रोकना था।

ग्राम पंचायत के अलावा गाँव में हर जाति की अपनी पंचायत होती थी। समाज में ये पंचायतें काफ़ी ताकतवर होती थीं। राजस्थान में जाति पंचायतें अलग-अलग जातियों के लोगों के बीच दीवानी के झगड़ों का निपटारा करती थीं। वे ज़मीन से जुड़े दावेदारियों के झगड़े सुलझाती थीं; यह तय करती थीं कि शादियाँ जातिगत मानदंडों के मुताबिक हो रही हैं या नहीं, और यह भी कि गाँव के आयोजन में किसको किसके ऊपर तरजीह दी जाएगी। कर्मकांडीय वर्चस्व किस क्रम में होगा। फ़ौजदारी न्याय को छोड़ दें तो ज़्यादातर मामलों में राज्य जाति पंचायत के फ़ैसलों को मानता था।

पश्चिम भारत – ख़ासकर राजस्थान और महाराष्ट्र जैसे प्रांतों – के संकलित दस्तावेज़ों में ऐसी कई अर्ज़ियाँ हैं जिनमें पंचायत से "ऊँची" जातियों या राज्य के अधिकारियों के ख़िलाफ़ ज़बरन कर उगाही या बेगार वसूली की शिकायत की गई है। आमतौर पर यह अर्ज़ियाँ ग्रामीण समुदाय के सबसे निचले तबके के लोग लगाते थे। अकसर

सामूहिक तौर पर भी ऐसी अर्ज़ियाँ दी जाती थीं। इनमें किसी जाति या संप्रदाय विशेष के लोग संभ्रांत समूहों की उन माँगों के ख़िलाफ़ अपना विरोध जताते थे जिन्हें वे नैतिक दृष्टि से अवैध मानते थे। उनमें एक थी बहुत ज़्यादा कर की माँग क्योंकि इससे किसानों का दैनिक गुज़ारा ही जोखिम में पड़ जाता था, ख़ासकर सूखे या ऐसी दूसरी विपदाओं के दौरान। उनकी नज़रों में ज़िंदा रहने के लिए न्यूनतम बुनियादी साधन उनका परंपरागत रिवाजी हक़ था। वे समझते थे कि ग्राम पंचायत को इसकी सुनवाई करनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि राज्य अपना नैतिक फ़र्ज़ अदा करे और न्याय करे। "निचली जाति" के किसानों और राज्य के अधिकारियों या स्थानीय ज़मींदारों के बीच झगड़ों में पंचायत के फ़ैसले अलग-अलग मामलों में अलग-अलग हो सकते थे। अत्यधिक कर की माँगों के मामले में पंचायत अकसर समझौते का सुझाव देती थी। जहाँ समझौते नहीं हो पाते थे, वहाँ किसान विरोध के ज़्यादा उग्र रास्ते अपनाते थे, जैसे कि गाँव छोड़कर भाग जाना। जोतने लायक खाली ज़मीन अपेक्षाकृत आसानी से उपलब्ध थी जबकि श्रम को लेकर प्रतियोगिता थी। इस वजह से, गाँव छोड़कर भाग जाना खेतिहरों के हाथ में एक बड़ा प्रभावी हथियार था।

चित्र 8.5
कपड़ा उत्पादन को दर्शाती सत्रहवीं शताब्दी की एक चित्रकारी

➲ चित्र में दर्शायी गई गतिविधियों का वर्णन कीजिए।

2.3 ग्रामीण दस्तकार

अलग-अलग तरह के उत्पादन कार्य में जुटे लोगों के बीच फैले लेन-देन के रिश्ते गाँव का एक और रोचक पहलू था। अंग्रेज़ी शासन के शुरुआती वर्षों में किए गए गाँवों के सर्वेक्षण और मराठाओं के दस्तावेज़ बताते हैं कि गाँवों में दस्तकार काफ़ी अच्छी तादाद में रहते थे। कहीं-कहीं तो कुल घरों के 25 फ़ीसदी घर दस्तकारों के थे।

कभी-कभी किसानों और दस्ताकारों के बीच फ़र्क करना मुश्किल होता था क्योंकि कई ऐसे समूह थे जो दोनों किस्म के काम करते थे। खेतिहर और उसके परिवार के सदस्य कई तरह की वस्तुओं के उत्पादन में शिरकत करते थे।

मसलन–रँगरेज़ी, कपड़े पर छपाई, मिट्टी के बरतनों को पकाना, खेती के औज़ारों को बनाना या उनकी मरम्मत करना। उन महीनों में जब उनके पास खेती के काम से फ़ुरसत होती–जैसे कि बुआई और सुहाई के बीच या सुहाई और कटाई के बीच–उस समय ये खेतिहर दस्तकारी का काम करते थे।

कुम्हार, लोहार, बढ़ई, नाई, यहाँ तक कि सुनार जैसे ग्रामीण दस्तकार भी अपनी सेवाएँ गाँव के लोगों को देते थे जिसके बदले गाँव वाले उन्हें अलग-अलग तरीक़ों से उन सेवाओं की अदायगी करते थे। आमतौर पर या तो उन्हें फ़सल का एक हिस्सा दे दिया जाता था या फिर गाँव की ज़मीन का एक टुकड़ा, शायद कोई ऐसी ज़मीन जो खेती लायक होने के बावजूद बेकार पड़ी थी। अदायगी की सूरत क्या होगी ये शायद पंचायत ही तय करती थी। महाराष्ट्र में ऐसी ज़मीन दस्तकारों की *मीरास* या *वतन* बन गई जिस पर दस्तकारों का पुश्तैनी अधिकार होता था।

यही व्यवस्था कभी-कभी थोड़े बदले हुए रूप में भी पायी जाती थी जहाँ दस्तकार और हरेक खेतिहर परिवार परस्पर बातचीत करके अदायगी की किसी एक व्यवस्था पर राज़ी होते थे। ऐसे में आमतौर पर वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय होता था। उदाहरण के तौर पर, अठारहवीं सदी के स्रोत बताते हैं कि बंगाल में ज़मींदार उनकी सेवाओं के बदले लोहारों, बढ़ई और सुनारों तक को "रोज़ का भत्ता और खाने के लिए नकदी देते थे।" इस व्यवस्था को जजमानी कहते थे, हालांकि यह शब्द सोलहवीं व सत्रहवीं सदी में बहुत इस्तेमाल नहीं होता था। ये सबूत मज़ेदार हैं क्योंकि इनसे पता चलता है कि गाँव के छोटे स्तर पर फ़ेर-बदल के रिश्ते कितने पेचीदा थे। ऐसा नहीं है कि नकद अदायगी का चलन बिलकुल ही नदारद था।

2.4 एक "छोटा गणराज्य"?

ग्रामीण समुदाय की अहमियत को हम कैसे समझें? उन्नीसवीं सदी के कुछ अंग्रेज़ अफ़सरों ने भारतीय गाँवों को एक ऐसे "छोटे गणराज्य" के रूप में देखा जहाँ लोग सामूहिक स्तर पर भाईचारे के साथ संसाधनों और श्रम का बँटवारा करते थे। लेकिन ऐसा नहीं लगता कि गाँव में सामाजिक बराबरी थी। संपत्ति की व्यक्तिगत मिल्कियत होती थी, साथ ही जाति और जेंडर (सामाजिक लिंग) के नाम पर समाज में गहरी विषमताएँ थीं। कुछ ताकतवर लोग गाँव के मसलों पर फ़ैसले लेते थे और कमज़ोर वर्गों का शोषण करते थे। न्याय करने का अधिकार भी उन्हीं को मिला हुआ था।

इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि गाँवों और शहरों के बीच होने वाले व्यापार की वजह से गाँवों में भी नकद के रिश्ते फैल चुके थे।

गाँव में मुद्रा

सत्रहवीं सदी में फ्रांसीसी यात्री ज्यां बैप्टिस्ट तैवर्नियर को यह बात उल्लेखनीय लगी कि "भारत में वे गाँव बहुत ही छोटे कहे जाएँगे जिनमें मुद्रा की फेर बदल करने वाले, जिन्हें *सराफ़* कहते हैं, न हों। एक बैंकर की तरह *सराफ़* हवाला भुगतान करते हैं (और) अपनी मर्ज़ी के मुताबिक पैसे के मुकाबले रुपये की कीमत बढ़ा देते हैं और कौड़ियों के मुकाबले पैसे की।

चित्र 8.6
सराफ़ अपने काम में लगा हुआ है।

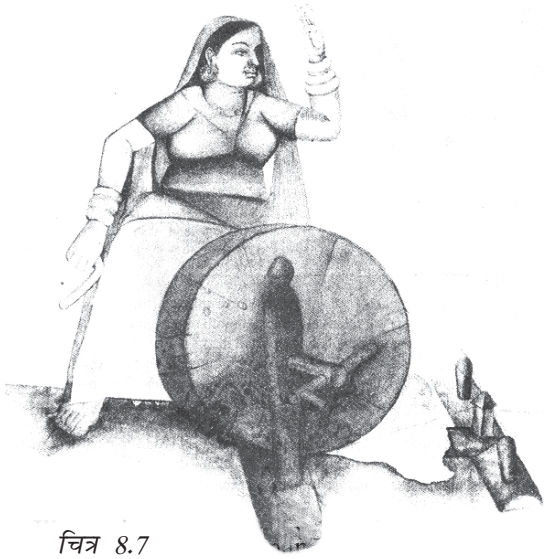

चित्र 8.7
सूत कातती महिला

मुग़लों के केंद्रीय इलाकों में कर की गणना और वसूली भी नकद में की जाती थी। जो दस्तकार निर्यात के लिए उत्पादन करते थे, उन्हें उनकी मज़दूरी या पूर्व भुगतान भी नकद में ही मिलता था। इसी तरह कपास, रेशम या नील जैसी व्यापारिक फ़सलें पैदा करने वालों का भुगतान भी नकदी ही होता था।

➲ चर्चा कीजिए...

इस अनुभाग में जिन पंचायतों का ज़िक्र किया गया है, वे आपके मुताबिक किस तरह से आज की ग्राम पंचायतों से मिलती-जुलती थीं अथवा भिन्न थीं?

3. कृषि समाज में महिलाएँ

जैसा कि शायद कई समाजों में आपने गौर किया होगा, उत्पादन की प्रक्रिया में मर्द और महिलाएँ खास किस्म की भूमिकाएँ अदा करते हैं। जिस संदर्भ में हम बात कर रहे हैं, वहाँ महिलाएँ और मर्द कंधे से कंधा मिलाकर खेतों में काम करते थे। मर्द खेत जोतते थे व हल चलाते थे और महिलाएँ बुआई, निराई और कटाई के साथ-साथ पकी हुई फ़सल का दाना निकालने का काम करती थीं। जब छोटी-छोटी ग्रामीण इकाइयों का और किसान की व्यक्तिगत खेती का विकास हुआ—जो कि मध्यकालीन भारतीय कृषि की ख़ासियत थी—तब घर-परिवार के संसाधन और श्रम, उत्पादन की बुनियाद बने। स्वाभाविक तौर पर, ऐसे में लिंग बोध के आधार पर आमतौर पर किया जाने वाला फ़र्क (घर के लिए महिलाएँ और बाहर के लिए मर्द) मुमकिन नहीं था। फिर भी महिलाओं की जैव वैज्ञानिक क्रियाओं को लेकर लोगों के मन में पूर्वाग्रह बने रहे। मसलन पश्चिमी भारत में, राजस्वला महिलाओं को हल या कुम्हार का चाक छूने की इजाज़त नहीं थी; इसी तरह बंगाल में अपने मासिक-धर्म के समय महिलाएँ पान के बगान में नहीं घुस सकती थीं।

सूत कातने, बरतन बनाने के लिए मिट्टी को साफ़ करने और गूँधने, और कपड़ों पर कढ़ाई जैसे दस्तकारी के काम उत्पादन के ऐसे पहलू थे जो महिलाओं के श्रम पर निर्भर थे। किसी वस्तु का जितना वाणिज्यीकरण होता था, उसके उत्पादन के लिए महिलाओं के श्रम की उतनी ही माँग होती थी। दरअसल, किसान और दस्तकार महिलाएँ ज़रूरत पड़ने पर न सिर्फ़ खेतों में काम करती थीं बल्कि नियोक्ताओं के घरों पर भी जाती थीं और बाज़ारों में भी।

चूँकि समाज श्रम पर निर्भर था, इसलिए बच्चे पैदा करने की अपनी क़ाबिलियत की वजह से महिलाओं को महत्त्वपूर्ण संसाधन के रूप में देखा जाता था। फिर भी शादी-शुदा महिलाओं की कमी थी क्योंकि कुपोषण, बार-बार माँ बनने और प्रसव के वक़्त मौत की वजह से महिलाओं में मृत्युदर बहुत ज़्यादा था। इससे किसान और दस्तकार समाज में ऐसे सामाजिक रिवाज पैदा हुए जो संभ्रांत समूहों से बहुत अलग थे। कई ग्रामीण संप्रदायों में शादी के लिए ''दुलहन की कीमत'' अदा करने की ज़रूरत होती थी, न कि दहेज की। तलाकशुदा महिलाएँ और विधवाएँ दोनों ही कानूनन शादी कर सकती थीं।

महिलाओं की प्रजनन शक्ति को इतनी अहमियत दी जाती थी कि उस पर काबू खोने का बड़ा डर था। स्थापित रिवाजों के मुताबिक घर का मुखिया मर्द होता था। इस तरह महिला पर परिवार और समुदाय के मर्दों द्वारा पुरज़ोर काबू रखा जाता था। बेवफ़ाई के शक पर ही महिलाओं को भयानक दंड दिए जा सकते थे।

राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र आदि पश्चिमी भारत के इलाकों से मिले दस्तावेज़ों में ऐसी दरख्वास्त मिली हैं जो महिलाओं ने न्याय और मुआवज़े की उम्मीद से ग्राम पंचायत को भेजी थीं। पत्नियाँ अपने पतियों की बेवफ़ाई का विरोध करती दिखाई देती हैं या फिर गृहस्थी के मर्द पर ये आरोप लगातीं कि वे पत्नी और बच्चों की अनदेखी करता है। मर्दों की बेवफ़ाई हमेशा दंडित नहीं होती थी; लेकिन राज्य और ''ऊँची'' जाति के लोग अकसर ये सुनश्चित करने की कोशिश करते कि परिवार के भरण-पोषण का इंतज़ाम हो जाए। ज़्यादातर, जब महिलाएँ पंचायत को दरख्वास्त देतीं, उनके नाम दस्तावेज़ों में दर्ज नहीं किए जाते: दरख्वास्त करने वाली का हवाला गृहस्थी के मर्द/मुखिया की माँ, बहन या पत्नी के रूप में दिया जाता था।

भूमिहर भद्रजनों में महिलाओं को पुश्तैनी संपत्ति का हक़ मिला हुआ था। पंजाब से ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ महिलाएँ (विधवा महिलाएँ भी) पुश्तैनी संपत्ति के विक्रेता के रूप में ग्रामीण ज़मीन के बाज़ार में सक्रिय हिस्सेदारी रखती थीं। हिंदू और मुसलमान महिलाओं को ज़मींदारी उत्तराधिकार में मिलती थी जिसे बेचने अथवा गिरवी रखने के लिए वे स्वतंत्र थीं। बंगाल में भी महिला ज़मींदार पाई जाती थीं। अठारहवीं सदी की सबसे बड़ी और मशहूर ज़मींदारियों में से एक थी राजशाही की ज़मींदारी जिसकी कर्ता-धर्ता एक स्त्री थी।

➲ चर्चा कीजिए...

क्या आपके प्रांत में कृषि भूमि पर महिलाओं और मर्दों की पहुँच में कोई फ़र्क है?

चित्र 8.8 (क)
फ़तेहपुर सीकरी का निर्माण।
महिलाएँ पत्थर तोड़ रही हैं।

चित्र 8.8 (ख)
बोझा ढोती महिलाएँ।
आस-पास के दूसरे गाँवों से आने वाली महिलाएँ अकसर ऐसे निर्माण-स्थलों पर काम करती थीं।

4 जंगल और कबीले

4.1 बसे हुए गाँवों के परे

ग्रामीण भारत में, बसे हुए लोगों की खेती के अलावा भी बहुत कुछ था। उत्तर और उत्तर-पश्चिमी भारत की गहरी खेती वाले प्रदेशों को छोड़ दें तो ज़मीन के विशाल हिस्से जंगल या झाड़ियों (खरबंदी) से घिरे थे। ऐसे इलाके झारखंड सहित पूरे पूर्वी भारत, मध्य भारत, उत्तरी क्षेत्र (जिसमें भारत-नेपाल की सीमावर्ती इलाके की तराई शामिल हैं), दक्षिणी भारत का पश्चिमी घाट और दक्कन के पठारों में फैले हुए थे। हालाँकि इस काल में अखिल भारतीय स्तर पर जंगलों के फैलाव का औसत निकालना लगभग असंभव है, फिर भी समसामयिक स्रोतों से मिली जानकारी के आधार पर ये अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि यह औसत करीब-करीब 40 फ़ीसदी था।

समसामयिक रचनाएँ जंगल में रहने वालों के लिए जंगली शब्द का इस्तेमाल करती है। लेकिन जंगली होने का मतलब सभ्यता का न होना बिलकुल नहीं था, वैसे आजकल इस शब्द का प्रचलित अर्थ यही है। उन दिनों इस शब्द का इस्तेमाल ऐसे लोगों के लिए होता था जिनका गुज़ारा जंगल के उत्पादों, शिकार और स्थानांतरीय खेती से होता था। ये काम मौसम के मुताबिक होते थे। उदाहरण के तौर पर भीलों में, बसंत के मौसम में जंगल के उत्पाद इकट्ठा किए जाते, गर्मियों में मछली पकड़ी जाती, मानसून के महीनों मे खेती की जाती, और शरद व जाड़े के महीनों में शिकार किया जाता था। यह सिलसिला लगातार गतिशीलता की बुनियाद पर खड़ा था और इस बुनियाद को मज़बूत भी करता था। लगातार एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहना इन जंगलों में रहने वाले कबीलों की एक खासियत थी।

जहाँ तक राज्य का सवाल है, उसके लिए जंगल उलट फेर वाला इलाका था : बदमाशों को शरण देने वाला अड्डा (मवास)। एक बार फिर हम बाबर की ओर देखते हैं जो कहता है कि जंगल एक ऐसा रक्षाकवच था "जिसके पीछे परग़ना के लोग कड़े विद्रोही हो जाते थे और कर अदा करने से मुकर जाते थे।"

चित्र 8.9
नीलगाय का शिकार करते हुए शाहजहाँ का चित्र (बादशाहनामा से)

➲ आप इस चित्र में जो देखते हैं उसका वर्णन कीजिए। इसमें ऐसा कौन सा सांकेतिक तत्व है जो शिकार और एक आदर्श न्याय व्यवस्था को जोड़ता है?

4.2 जंगलों में घुसपैठ

जंगल में बाहरी ताकतें कई तरह से घुसती थीं, मसलन, राज्य को सेना के लिए हाथियों की जरूरत होती थी। इसलिए, जंगलवासियों से ली जाने वाली पेशकश में अकसर हाथी भी शामिल होते थे।

मुग़ल राजनीतिक विचारधारा में, गरीबों और अमीरों सहित सबके लिए, न्याय करने का राज्य के गहरे सरोकार का एक लक्षण था – शिकार अभियान। दरबारी इतिहासकारों की मानें, तो शिकार अभियान के नाम पर बादशाह अपने विशाल साम्राज्य के कोने-कोने का दौरा करता था और इस तरह अलग-अलग इलाकों के लोगों की समस्याओं और शिकायतों पर व्यक्तिगत रूप से गौर करता था। दरबारी कलाकारों के चित्रों में शिकार का विषय बार-बार आता था। इन चित्रों में चित्रकार अकसर छोटा-सा एक ऐसा दृश्य डाल देते थे जो सद्भावनापूर्ण शासन का संकेत देता था।

परगना मुग़ल प्रांतों में एक प्रशासनिक प्रमंडल था।

पेशकश मुग़ल राज्य के द्वारा ली जाने वाली एक तरह की भेंट थी।

स्रोत 3

कृषि बस्तियों के लिए जंगलों का सफ़ाया

यह सोलहवीं सदी में मुकुंदराम चक्रवर्ती की लिखी एक बंगाली कविता *चंडीमंगल* का एक अंश है। कविता के नायक, कालकेतु ने जंगल खाली करवा के, एक साम्राज्य की स्थापना की :

ख़बर मिलते ही, परदेसी आने लगे तमाम जगहों से।
फिर कालकेतु ने ख़रीद कर बाँटे उनमें
भारी भरकम चाकू, कुल्हाड़ी, और भाले-बरछे।
उत्तर से आए दास
सैकड़ों उमड़ते हुए।
हुए चकित देखकर कालकेतु को
जिसने दी सुपारी एक-एक को।
दक्खिन से आए फ़सल कटाई वाले
एक उद्यमी के साथ पाँच सौ।
पश्चिम से आया ज़फ़र मियाँ
साथ में बाईस हज़ार लोग।
हाथों में सुलेमानी मोती की माला
जपते हुए पीर ओ पैग़म्बर का नाम।
जंगलों को हटाने के बाद
उन्होंने बसाए बाज़ार।
सैकड़ों सैकड़ों की तादाद में बिदेसी
जंगलों को (जैसे) खा लिए, और घुस आए वहाँ।
कुल्हाड़ियों की आवाज़ सुनकर
शेर डर गए और दहाड़ते हुए भाग निकले।

➲ यह पंद्याश जंगल में घुसपैठ के कौन से रूपों को उजागर करता है? इसके संदेश की तुलना चित्र 8.9 में दिये गए लघु चित्र से कीजिए। जंगल में रहने वाले लोगों के अनुसार पंद्याश में किन्हें "बिदेसी" बताया गया है?

स्त्रोत 4

पहाड़ी कबीलों और मैदानों के बीच व्यापार, लगभग 1595

अवध सूबे (आज के उत्तर प्रदेश का हिस्सा) के मैदानी इलाकों और पहाड़ी कबीलों के बीच होने वाले लेन-देन के बारे में अबुल फ़ज़्ल ने कुछ इस तरह लिखा है:

उत्तर के पहाड़ों से इंसानों, मोटे-मोटे घोड़ों और बकरों की पीठ पर लादकर बेशुमार सामान ले जाए जाते हैं, जैसे कि सोना, ताँबा, शीशा, कस्तूरी, सुरागाय (याक) की पूँछ, शहद, चुक (संतरे के रस और नींबू के रस को साथ उबालकर बनाया जाने वाला एक अम्ल), अनार दाना, अदरख, लंबी मिर्च, मजीठ (जिससे लाल रंग बनाया जाता है) की जड़ें, सुहागा, ज़दवार (हल्दी जैसी एक जड़), मोम, ऊनी कपड़े, लकड़ी के सामान, चील, बाज़, काले बाज़, मर्लिन (बाज़ पक्षी की ही एक किस्म), और अन्य वस्तुएँ। इसके बदले, वे सफ़ेद और रंगीन कपड़े, कहरुबा (एक पीला-भूरा धातु जिससे गहने बनाए जाते थे), नमक, हींग, गहने और शीशे व मिट्टी के बरतन वापिस ले जाते हैं।

➲ इस अनुच्छेद में परिवहन के कौन से तरीक़ों का ज़िक्र किया गया है? आपके मुताबिक, इनका इस्तेमाल क्यों किया जाता था? मैदानों से जो सामान पहाड़ ले जाए जाते थे, उनमें से हर एक वस्तु किस काम में लाई जाती होगी, इसका खुलासा कीजिए।

वाणिज्यिक खेती का असर, बाहरी कारक के रूप में, जंगलवासियों की ज़िंदगी पर भी पड़ता था। जंगल के उत्पाद—जैसे शहद, मधुमोम और लाक की बहुत माँग थी। लाक जैसी कुछ वस्तुएँ तो सत्रहवीं सदी में भारत से समुद्र पार होने वाले निर्यात की मुख्य वस्तुएँ थीं। हाथी भी पकड़े और बेचे जाते थे। व्यापार के तहत वस्तुओं की अदला-बदली भी होती थी। कुछ कबीले भारत और अफ़ग़ानिस्तान के बीच होने वाले ज़मीनी व्यापार में लगे थे, जैसे पंजाब का लोहानी कबीला। वे पंजाब के गाँवों और शहरों के बीच होने वाले व्यापार में भी शिरकत करते थे।

चित्र 8.10
सूफ़ी गायक को सुनते हुए एक किसान और एक शिकारी।

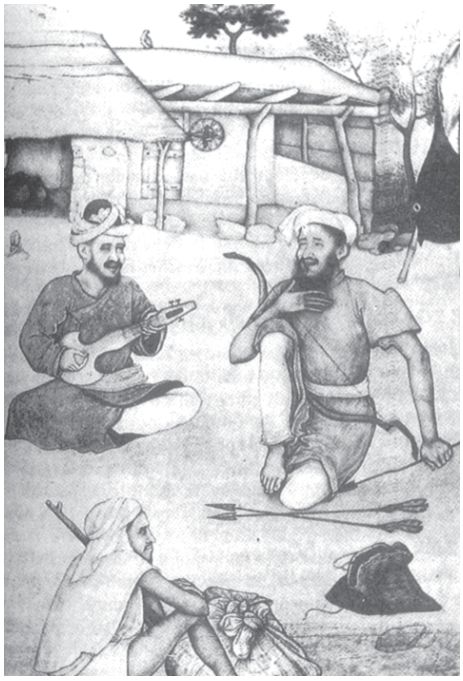

सामाजिक कारणों से भी जंगलवासियों के जीवन में बदलाव आए। कबीलों के भी सरदार होते थे, बहुत कुछ ग्रामीण समुदाय के "बड़े आदमियों" की तरह। कई कबीलों के सरदार ज़मींदार बन गए, कुछ तो राजा भी हो गये। ऐसे में उन्हें सेना खड़ी करने की ज़रूरत हुई। उन्होंने अपने ही खानदान के लोगों को सेना में भर्ती किया; या फिर अपने ही भाई-बंधुओं से सैन्य सेवा की माँग की। सिंध इलाके की कबीलाई सेनाओं में 6000 घुड़सवार और 7000 पैदल सिपाही होते थे। असम में, अहोम राजाओं के अपने *पायक* होते थे। ये वे लोग थे जिन्हें ज़मीन के बदले सैनिक सेवा देनी पड़ती थी। अहोम राजाओं ने जंगली हाथी पकड़ने पर अपने एकाधिकार का ऐलान भी कर रखा था।

हालाँकि कबीलाई व्यवस्था से राजतांत्रिक प्रणाली की तरफ़ संक्रमण बहुत पहले ही शुरू हो चुका था, लेकिन ऐसा लगता है कि सोलहवीं सदी में

आकर ही यह प्रक्रिया पूरी तरह विकसित हुई। इसकी जानकारी हमें उत्तर-पूर्वी इलाकों में कबीलाई राज्यों के बारे में *आइन* की बातों से मिलती है। उदाहरण के तौर पर, सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में कोच राजाओं ने पड़ोसी कबीलों के साथ एक के बाद एक युद्ध किया और उन पर अपना कब्ज़ा जमा लिया।

जंगल के इलाकों में नए सांस्कृतिक प्रभावों के विस्तार की भी शुरुआत हुई। कुछ इतिहासकारों ने तो दरअसल यह भी सुझाया है कि नए बसे इलाकों के खेतिहर समुदायों ने जिस तरह धीरे-धीरे इस्लाम को अपनाया उसमें सूफ़ी संतों (पीर) ने एक बड़ी भूमिका अदा की थी (अध्याय 6 भी देखिए)।

➲ चर्चा कीजिए...

पता कीजिए कि आपके प्रांत में किन क्षेत्रों को आजकल जंगल वाले इलाके के रूप में पहचाना जाता है? क्या इन इलाकों में आज ज़िंदगियाँ बदल रही हैं? इन बदलावों की वजहें वही हैं जिनका ज़िक्र हमने इस अनुभाग में किया है या उनसे अलग?

5. ज़मींदार

मुग़ल भारत में कृषि संबंधों की हमारी दास्तान तब तक अधूरी रहेगी जब तक गाँवों में रहने वाले एक ऐसे तबके की बात न कर लें जिनकी कमाई तो खेती से आती थी लेकिन जो कृषि उत्पादन में सीधे हिस्सेदारी नहीं करते थे। ये ज़मींदार थे जो अपनी ज़मीन के मालिक होते थे और जिन्हें ग्रामीण समाज में ऊँची हैसियत की वजह से कुछ खास सामाजिक और आर्थिक सुविधाएँ मिली हुई थीं। ज़मींदारों की बढ़ी हुई हैसियत के पीछे एक कारण जाति था; दूसरा कारण यह था कि वे लोग राज्य को कुछ खास किस्म की सेवाएँ (ख़िदमत) देते थे।

ज़मींदारों की समृद्धि की वजह थी उनकी विस्तृत व्यक्तिगत ज़मीन। इन्हें *मिल्कियत* कहते थे, यानी संपत्ति। मिल्कियत ज़मीन पर ज़मींदार के निजी इस्तेमाल के लिए खेती होती थी। अकसर इन ज़मीनों पर दिहाड़ी के मज़दूर या पराधीन मज़दूर काम करते थे। ज़मींदार अपनी मर्ज़ी के मुताबिक इन ज़मीनों को बेच सकते थे, किसी और के नाम कर सकते थे या उन्हें गिरवी रख सकते थे।

ज़मींदारों की ताकत इस बात से भी आती थी कि वे अकसर राज्य की ओर से कर वसूल कर सकते थे। इसके बदले उन्हें वित्तीय मुआवज़ा मिलता था। सैनिक संसाधन उनकी ताकत का एक और ज़रिया था। ज़्यादातर ज़मींदारों के पास अपने किले भी थे और अपनी सैनिक टुकड़ियाँ भी जिसमें घुड़सवारों, तोपखाने और पैदल सिपाहियों के जत्थे होते थे।

इस तरह, अगर हम मुग़लकालीन गाँवों में सामाजिक संबंधों की कल्पना एक पिरामिड के रूप में करें, तो ज़मींदार इसके संकरे शीर्ष का

हिस्सा थे। अबुल फ़ज़्ल इस ओर इशारा करता है कि "ऊँची जाति" के ब्राह्मण-राजपूत गठबंधन ने ग्रामीण समाज पर पहले ही अपना ठोस नियंत्रण बना रखा था। इसमें तथाकथित मध्यम जातियों की भी ख़ासी नुमाइंदगी थी जैसा कि हमने पहले देखा है, और इसी तरह कई मुसलमान ज़मींदारों की भी।

समसामयिक दस्तावेज़ों से ऐसा लगता है कि जंग में जीत ज़मींदारों की उत्पत्ति का संभावित स्रोत रहा होगा। अकसर, ज़मींदारी फैलाने का एक तरीक़ा था ताकतवर सैनिक सरदारों द्वारा कमज़ोर लोगों को बेदखल करना। मगर इसकी संभावना कम ही है कि किसी ज़मींदार को इतने आक्रामक रुख की इजाज़त राज्य देता हो जब तक कि एक राज्यादेश (सनद) के ज़रिये इसकी पुष्टि पहले ही नहीं कर दी गई हो।

इससे भी महत्त्वपूर्ण थी ज़मींदारी को पुख्ता करने की धीमी प्रक्रिया। स्रोतों में इसके दस्तावेज़ भी शामिल हैं। ये कई तरीक़े से किया जा सकता था: नयी ज़मीनों को बसाकर (जंगल-बारी), अधिकारों के हस्तांतरण के ज़रिये, राज्य के आदेश से, या फिर खरीद कर। यही वे प्रक्रियाएँ थीं जिनके ज़रिये अपेक्षाकृत "निचली" जातियों के लोग भी ज़मींदारों के दर्जे में दाखिल हो सकते थे, क्योंकि इस काल में ज़मींदारी धड़ल्ले से खरीदी और बेची जाती थी।

कई कारणों ने मिलकर परिवार या वंश पर आधारित ज़मींदारियों को पुख्ता होने का मौका दिया। मसलन, राजपूतों और जाटों ने ऐसी रणनीति अपनाकर उत्तर भारत में ज़मीन की बड़ी-बड़ी पट्टियों पर अपना नियंत्रण पुख्ता किया। इसी तरह मध्य और दक्षिण-पश्चिम बंगाल में किसान-पशुचारियों (जैसे, सदगोप) ने ताकतवर ज़मींदारियाँ खड़ी कीं।

ज़मींदारों ने खेती लायक ज़मींनों को बसाने में अगुआई की और खेतिहरों को खेती के साजो-सामान व उधार देकर उन्हें वहाँ बसने में भी मदद की। ज़मींदारी की खरीद-फ़रोख्त से गाँवों के मौद्रीकरण की प्रक्रिया में तेज़ी आई। इसके अलावा, ज़मींदार अपनी मिल्कियत की ज़मीनों की फ़सल भी बेचते थे। ऐसे सबूत हैं जो दिखाते हैं कि ज़मींदार अकसर बाज़ार (हाट) स्थापित करते थे जहाँ किसान भी अपनी फ़सलें बेचने आते थे।

हालाँकि इसमें कोई शक नहीं कि ज़मींदार शोषण करने वाला तबका था, लेकिन किसानों से उनके रिश्तों में पारस्परिकता, पैतृकवाद और संरक्षण का पुट था। दो पहलू इस बात की पुष्टि करते हैं। एक तो ये कि भक्ति संतों ने जहाँ बड़ी बेबाकी से जातिगत और दूसरी किस्मों के

एक समांतर सैनिक बल!

आइन के मुताबिक, मुग़ल भारत में ज़मींदारों की मिली-जुली सैनिक शक्ति इस प्रकार थी : 384,558 घुड़सवार; 4,277,057 पैदल; 1863 हाथी; 4260 तोप; और 4,500 नाव।

अत्याचारों की निंदा की (अध्याय 6 भी देखिए), वहीं उन्होंने ज़मींदारों को (या फिर, दिलचस्प बात है, साहूकारों को) किसानों के शोषक या उन पर अत्याचार करने वाले के रूप में नहीं दिखाया। आमतौर पर राज्य का राजस्व अधिकारी ही उनके ग़ुस्से का निशाना बना। दूसरे, सत्रहवीं सदी में भारी संख्या में कृषि विद्रोह हुए और उनमें राज्य के ख़िलाफ़ ज़मींदारों को अकसर किसानों का समर्थन मिला।

➲ चर्चा कीजिए...

आज़ादी के बाद भारत में ज़मींदारी व्यवस्था ख़त्म कर दी गई। इस अनुभाग को पढ़िए और उन कारणों की पहचान कीजिए जिनकी वजह से ऐसा किया गया।

6. भू-राजस्व प्रणाली

ज़मीन से मिलने वाला राजस्व मुग़ल साम्राज्य की आर्थिक बुनियाद थी। इस कारण से, कृषि उत्पादन पर नियंत्रण रखने के लिए और तेज़ी से फैलते साम्राज्य के तमाम इलाक़ों में राजस्व आकलन व वसूली के लिए यह ज़रूरी था कि राज्य एक प्रशासनिक तंत्र खड़ा करे। दीवान, जिसके दफ़्तर पर पूरे राज्य की वित्तीय व्यवस्था के देख-रेख की ज़िम्मेदारी थी, इस तंत्र में शामिल था। इस तरह हिसाब रखने वाले और राजस्व अधिकारी खेती की दुनिया में दाखिल हुए और कृषि संबंधों को शक्ल देने में एक निर्णायक ताकत के रूप में उभरे।

लोगों पर कर का बोझ निर्धारित करने से पहले मुग़ल राज्य ने ज़मीन और उस पर होने वाले उत्पादन के बारे में खास किस्म की सूचनाएँ इकट्ठा करने की कोशिश की। भू-राजस्व के इंतज़ामात में दो चरण थे : पहला, कर निर्धारण और दूसरा, वास्तविक वसूली। *जमा* निर्धारित रक़म थी और *हासिल* सचमुच वसूली गई रक़म। *अमील-गुज़ार* या राजस्व वसूली करने वाले के कामों की सूची में अकबर ने यह हुक्म दिया कि जहाँ उसे (अमील-गुज़ार को) कोशिश करनी चाहिए कि खेतिहर नक़द भुगतान करे, वहीं फ़सलों में भुगतान का विकल्प भी खुला रहे। राजस्व निर्धारित करते समय राज्य अपना हिस्सा ज़्यादा से ज़्यादा रखने की कोशिश करता था। मगर स्थानीय हालात की वजह से कभी-कभी सचमुच में इतनी वसूली कर पाना संभव नहीं हो पाता था।

हर प्रांत में जुती हुई ज़मीन और जोतने लायक ज़मीन दोनों की नपाई की गई। अकबर के शासन काल में अबुल फ़ज़्ल ने *आइन* में ऐसी ज़मीनों के सभी आंकड़ों को संकलित किया। उसके बाद के बादशाहों के शासनकाल में भी ज़मीन की नपाई के प्रयास जारी रहे। मसलन, 1665 ई. में, औरंगज़ेब ने अपने राजस्व कर्मचारियों को स्पष्ट निर्देश दिया कि हर गाँव में खेतिहरों की संख्या का सालाना हिसाब रखा जाए (स्रोत 7)। इसके बावजूद सभी इलाक़ों की नपाई सफलतापूर्वक नहीं हुई। जैसाकि हमने देखा है, उपमहाद्वीप के कई बड़े हिस्से जंगलों से घिरे हुए थे और इनकी नपाई नहीं हुई।

अमीन एक मुलाज़िम था जिसकी ज़िम्मेवारी यह सुनिश्चित करना था कि प्रांतों में राजकीय नियम कानूनों का पालन हो रहा है।

स्रोत 5

अकबर के शासन में भूमि का वर्गीकरण

आइन में वर्गीकरण के मापदंड की निम्नलिखित सूची दी गई है:

अकबर बादशाह ने अपनी गहरी दूरदर्शिता के साथ ज़मींनों का वर्गीकरण किया और हरेक (वर्ग की ज़मीन) के लिए अलग-अलग राजस्व निर्धारित किया। *पोलज* वह ज़मीन है जिसमें एक के बाद एक हर फ़सल की सालाना खेती होती है और जिसे कभी खाली नहीं छोड़ा जाता है। *परौती* वह ज़मीन है जिस पर कुछ दिनों के लिए खेती रोक दी जाती है ताकि वह अपनी खोयी ताकत वापस पा सके। *चचर* वह ज़मीन है जो तीन या चार वर्षों तक खाली रहती है। *बंजर* वह ज़मीन है जिस पर पाँच या उससे ज़्यादा वर्षों से खेती नहीं की गई हो। पहले दो प्रकार की ज़मीन की तीन किस्में हैं, अच्छी, मध्यम और खराब। वे हर किस्म की ज़मीन के उत्पाद को जोड़ देते हैं, और इसका तीसरा हिस्सा मध्यम उत्पाद माना जाता है, जिसका एक-तिहाई हिस्सा शाही शुल्क माना जाता है।

➲ अपने अधीन इलाक़ों में ज़मीन का वर्गीकरण करते वक़्त मुग़ल राज्य ने किन सिद्धांतों का पालन किया? राजस्व निर्धारण किस प्रकार किया जाता था?

मानचित्र 1
मुग़ल साम्राज्य का विस्तार

➲ भू-राजस्व की वसूली पर साम्राज्य के विस्तार का क्या प्रभाव पड़ा?

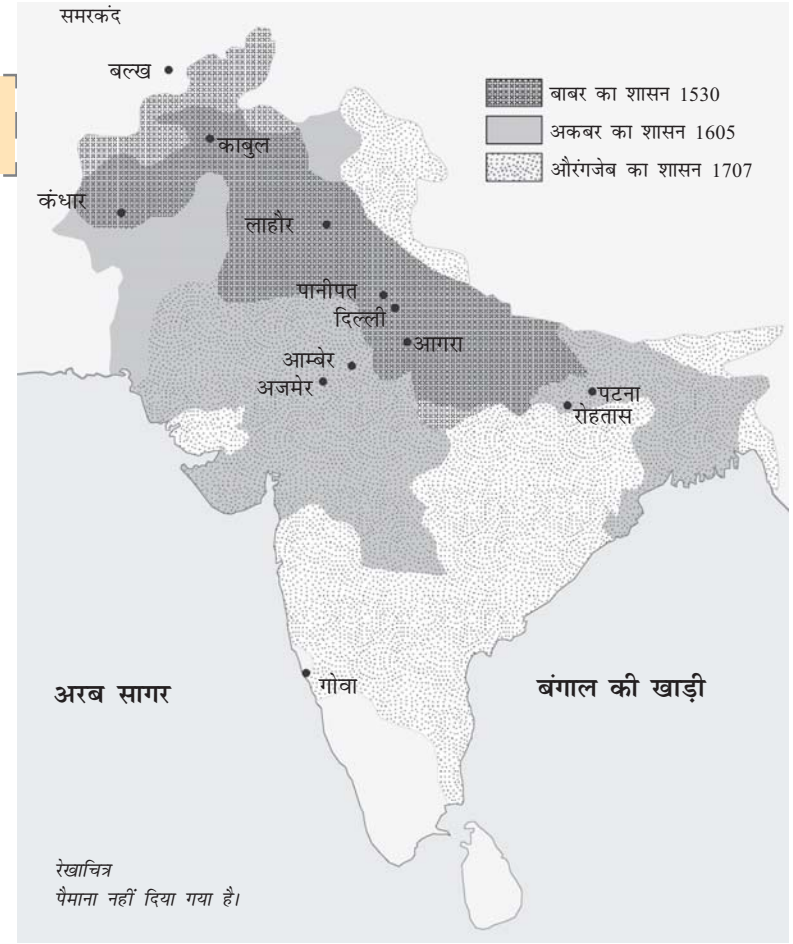

मनसबदारी व्यवस्था

मुग़ल प्रशासनिक व्यवस्था के शीर्ष पर एक सैनिक-नौकरशाही तंत्र (मनसबदारी) था जिस पर राज्य के सैनिक व नागरिक मामलों की ज़िम्मेदारी थी। कुछ मनसबदारों को नक़दी भुगतान किया जाता था, जब कि उनमें से ज़्यादातर को साम्राज्य के अलग-अलग हिस्सों में राजस्व के आबंटन के ज़रिये भुगतान किया जाता था। समय-समय पर उनका तबादला किया जाता था। अध्याय 9 देखिए।

स्रोत 6

नक़द या जीन्स ?

आइन से यह एक और अनुच्छेद है:

अमील-गुज़ार सिर्फ़ नक़द लेने की आदत न डाले बल्कि फ़सल भी लेने के लिए तैयार रहे। यह बाद वाला तरीक़ा कई तरह से काम में लाया जा सकता है। पहला, *कणकुत:* हिंदी ज़ुबान में *कण* का मतलब है, अनाज, और *कुत*, अंदाज़ा ..... अगर कोई शक हो, तो फ़सल को तीन अलग-अलग पुलिंदों में काटना चाहिए– अच्छा, मध्यम और बदतर, और इस तरह शक दूर करना चाहिए। अकसर अंदाज़ से किया गया ज़मीन का आकलन भी पर्याप्त रूप से सही नतीजा देता है। दूसरा, बटाई जिसे *भाओली* भी कहते हैं (में), फ़सल काट कर जमा कर लेते हैं, और फ़िर सभी पक्षों की मौजूदगी में व रज़ामंदी में बँटवारा करते हैं। लेकिन इसमें कई समझदार निरीक्षकों की ज़रूरत पड़ती है; वर्ना दुष्ट-बुद्धि और मक्कार धोखेबाज़ी की नीयत रखते हैं। तीसरे, खेत बटाई जब वे बीज बोने के बाद खेत बाँट लेते हैं। चौथे, लाँग बटाई; फ़सल काटने के बाद, वे उसका ढ़ेर बना लेते हैं और फिर उसे अपने में बाँट लेते हैं, और हरेक (पक्ष) अपना हिस्सा घर ले जाता है और उससे मुनाफ़ा कमाता है।

➲ राजस्व निर्धारण व वसूली की हरेक प्रणाली में खेतिहरों पर क्या फ़र्क पड़ता होगा?

स्रोत 7

जमा

1665 ई. में अपने राजस्व अधिकारी को औरंगज़ेब के द्वारा दिये गए हुक्म का एक अंश :

वे परगनाओं के अमीनों को निर्देश दें कि वे हर गाँव, हर किसान (आसामीवार) के बावत खेती के मौजूदा हालात (मौजूदात) पता करें, और बारीकी से उनकी जाँच करने के बाद सरकार के वित्तीय हितों (किफ़ायत) व किसानों के कल्याण को ध्यान में रखते हुए *जमा* निर्धारित करें।

➲आपकी राय में बादशाह ने विस्तृत सर्वेक्षण पर क्यों ज़ोर दिया?

➲ चर्चा कीजिए...

क्या आप मुग़लों की भू-राजस्व प्रणाली को एक लचीली व्यवस्था मानेंगे?

7 चाँदी का बहाव

मुग़ल साम्राज्य एशिया के उन बड़े साम्राज्यों में एक था जो सोलहवीं व सत्रहवीं सदी में सत्ता और संसाधनों पर अपनी पकड़ मज़बूत बनाने में कामयाब रहे। ये साम्राज्य थे–मिंग (चीन में), सफ़ावी (ईरान में), और ऑटोमन (तुर्की में)। इन साम्राज्यों की राजनीतिक स्थिरता ने चीन से लेकर भूमध्य सागर तक ज़मीनी व्यापार का जीवंत जाल बिछाने में मदद की। खोजी यात्राओं से, और 'नयी दुनिया' के खुलने से यूरोप के साथ एशिया के, खास कर भारत के, व्यापार में भारी विस्तार हुआ। इस वजह से भारत के समुद्र-पार व्यापार में एक ओर भौगोलिक विविधता आई तो दूसरी ओर कई नयी वस्तुओं का व्यापार भी शुरू हो गया। लगातार बढ़ते व्यापार के

चित्र 8.11
अकबर द्वारा जारी किए गए चाँदी के रुपये की दोनों तरफ़ें

चित्र 8.12
औरंगज़ेब द्वारा जारी किया गया चाँदी का रुपया

साथ, भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओं का भुगतान करने के लिए एशिया में भारी मात्रा में चाँदी आई। इस चाँदी का एक बड़ा हिस्सा भारत की तरफ़ खिंच गया। यह भारत के लिए अच्छा था क्योंकि यहाँ चाँदी के प्राकृतिक संसाधन नहीं थे। नतीजतन, सोलहवीं से अठारहवीं सदी के बीच भारत में धातु मुद्रा–खास कर चाँदी के रुपयों–की उपलब्धि में अच्छी स्थिरता बनी रही। इसके साथ ही एक तरफ़ तो अर्थव्यवस्था में मुद्रा संचार और सिक्कों की ढलाई में अभूतपूर्व विस्तार हुआ, दूसरी तरफ़ मुग़ल राज्य को नकदी कर उगाहने में आसानी हुई।

इटली के एक मुसाफ़िर जोवान्नी कारेरी, जो लगभगर 1690 ई. में भारत से होकर गुज़रा था, ने इस बात का बड़ा सजीव चित्र पेश किया है कि किस तरह चाँदी तमाम दुनिया से होकर भारत पहुँचती थी। उसी से हमें यह भी पता चलता है कि सत्रहवीं सदी के भारत में बड़ी अद्‌भुत मात्रा में नकद और वस्तुओं का आदान-प्रदान हो रहा था।

चित्र 8.13
यूरोपीय बाज़ारों की माँगों को पूरा करने के लिए भारतीय उपमहाद्वीप के वस्त्र उत्पादन का एक उदाहरण

➲ चर्चा कीजिए...

पता लगाइए कि वर्तमान में आपके राज्य में कृषि उत्पादन पर कर लगाए जाते हैं या नहीं। आज की राज्य सरकारों की राजकोषीय नीतियों और मुग़ल राजकोषीय नीतियों में समानताओं और भिन्नताओं को समझाइए।

स्रोत 8

भारत में चाँदी कैसे आई?

जोवान्नी कारेरी के लेख (बर्नियर के लेख पर आधारित) के निम्नलिखित अंश से हमें पता चलता है कि मुग़ल साम्राज्य में कितनी भारी मात्रा में बाहर से धन आ रहा था:

(मुग़ल) साम्राज्य की धन-संपत्ति का अंदाज़ा लगाने के लिए पाठक इस बात पर गौर करें कि दुनिया भर में बिचरने वाला सारा सोना-चाँदी आखिरकार यहीं पहुँच जाता है। ये सब जानते हैं कि इसका बहुत बड़ा हिस्सा अमेरिका से आता है, और यूरोप के कई राज्यों से होते हुए, (इसका) थोड़ा-सा हिस्सा कई तरह की वस्तुओं के लिए तुर्की में जाता है; और थोड़ा-सा हिस्सा रेशम के लिए स्मिरना होते हुए फ़ारस पहुँचता है। अब चूँकि तुर्की लोग कॉफ़ी से अलग नहीं रह सकते, जो कि ओमान और अरबिया से आती है..... (और) न ही फ़ारस, अरबिया और तुर्की (के लोग) भारत की वस्तुओं के बिना रह सकते हैं। (वे) मुद्रा की विशाल मात्रा लाल सागर पर बेबल मंडेल के पास स्थित मोचा भेजते हैं; (इसी तरह वे ये मुद्राएँ) फ़ारस की खाड़ी पर स्थित बसरा भेजते हैं;.... बाद में ये (सारी संपत्ति) जहाज़ों से इन्दोस्तान (हिंदुस्तान) भेज दी जाती है। भारतीय जहाज़ों के अलावा जो डच, अंग्रेज़ी और पुर्तगाली जहाज़ हर साल इंदोस्तान की वस्तुएँ लेकर पेगू, तानस्सेरी (म्यांमार के हिस्से), स्याम (थाइलैंड), सीलोन (श्रीलंका)... मालदीव के टापू, मोज़ाम्बीक़ और अन्य जगहें ले जाते हैं, (इन्हीं जहाज़ों को) निश्चित तौर पर बहुत सारा सोना-चाँदी इन देशों से लेकर वहाँ (हिंदुस्तान) पहुँचाना पड़ता है। वो सब कुछ, जो डच लोग जापान की खानों से हासिल करते हैं, देर-सवेर इंदोस्तान (को) चला जाता है; और यहाँ से यूरोप को जाने वाली सारी वस्तुएँ, चाहे वो फ्रांस जाएँ या इंग्लैंड या पुर्तगाल, सभी नकद में खरीदी जाती हैं, जो (नकद) वहीं (हिंदुस्तान में) रह जाता है।

8. अबुल फ़ज़्ल की *आइन-ए-अकबरी*

आइन-ए-अकबरी आँकड़ों के वर्गीकरण के एक बहुत बड़े ऐतिहासिक और प्रशासनिक परियोजना का नतीजा थी जिसका ज़िम्मा बादशाह अकबर के हुक्म पर अबुल फ़ज़्ल ने उठाया था। अकबर के शासन के बयालीसवें वर्ष, 1598 ई. में, पाँच संशोधनों के बाद, इसे पूरा किया गया। *आइन* इतिहास लिखने के एक ऐसे बृहत्तर परियोजना का हिस्सा थी जिसकी पहल अकबर ने की थी। इस परियोजना का परिणाम था *अकबरनामा* जिसे तीन जिल्दों में रचा गया। पहली दो जिल्दों ने ऐतिहासिक दास्तान पेश की। इन हिस्सों पर हम अध्याय 9 में ज़्यादा करीबी नज़र डालेंगे। तीसरी जिल्द, *आइन-ए-अकबरी,* को शाही नियम कानून के सारांश और साम्राज्य के एक राजपत्र की सूरत में संकलित किया गया था।

आइन कई मसलों पर विस्तार से चर्चा करती है : दरबार, प्रशासन और सेना का संगठन; राजस्व के स्रोत और अकबरी साम्राज्य के प्रांतों का भूगोल; और लोगों के साहित्यिक, सांस्कृतिक व धार्मिक रिवाज। अकबर की सरकार के तमाम विभागों और प्रांतों (सूबों) के बारे में

चित्र 8.14
अबुल फ़ज़्ल अपने आश्रयदाता को अकबरनामा की पांडुलिपि पेश कर रहे हैं

विस्तार से जानकारी देने के अलावा, *आइन* इन सूबों के बारे में *पेचीदे* और आँकड़ेबद्ध सूचनाएँ बड़ी बारीकी के साथ देती है।

इन सूचनाओं को इकट्ठा करके, उन्हें सिलसिलेवार तरीक़े से संकलित करना एक महत्त्वपूर्ण शाही कवायद थी। इसने बादशाह को साम्राज्य के तमाम इलाकों में प्रचलित रिवाजों और पेशों की जानकारी दी। इस तरह हमारे लिए *आइन* अकबर के शासन के दौरान मुग़ल साम्राज्य के बारे में सूचनाओं की खान है। फिर भी यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि *आइन* का नज़रिया क्षेत्रों के बारे में केंद्र का नज़रिया है, या यूँ कहें कि समाज के शीर्ष से देखी हुई समाज की तसवीर।

आइन पाँच भागों (*दफ्तर*) का संकलन है जिसके पहले तीन भाग प्रशासन का विवरण देते हैं। *मंज़िल-आबादी* के नाम से पहली किताब शाही घर-परिवार और उसके रख-रखाव से ताल्लुक रखती है। दूसरा भाग, *सिपह-आबादी* सैनिक व नागरिक प्रशासन और नौकरों की व्यवस्था के बारे में है। इस भाग में शाही अफ़सरों (मनसबदार), विद्वानों, कवियों और कलाकारों की संक्षिप्त जीवनियाँ शामिल हैं।

तीसरा, *मुल्क-आबादी*, वह भाग है जो साम्राज्य व प्रांतों के वित्तीय पहलुओं तथा राजस्व की दरों के आँकड़ों की विस्तृत जानकारी देने के बाद "बारह प्रांतों का बयान" देता है। इस खंड में सांख्यिकी सूचनाएँ तफ़सील से दी गई हैं, जिसमें सूबों और उनकी तमाम प्रशासनिक व वित्तीय इकाइयों (सरकार, परगना और महल) के भौगोलिक, स्थलाकृतिक और आर्थिक रेखाचित्र भी शामिल हैं। इसी खंड में हर प्रांत और उसकी अलग-अलग इकाइयों की कुल मापी गई ज़मीन और निर्धारित राजस्व (*जमा*) भी दी गई हैं।

सूबा स्तर की विस्तृत जानकारी देने के बाद, *आइन* हमें *सूबों* के नीचे की इकाई *सरकारों* के बारे में विस्तार से बताती है। ये सूचनाएँ तालिकाबद्ध तरीके से दी गई हैं, जहाँ हर तालिका में आठ ख़ाने हैं जो हमें निम्नलिखित सूचनाएँ देते हैं : (1) *परगनात/महल;* (2) *क़िला;* (3) *अराज़ी* और *जमीन-ए-पाईमूद* (मापे गए इलाके); (4) *नकदी* (नक़द निर्धारित राजस्व); (5) *सुयूरग़ाल* (दान में दिया गया राजस्व अनुदान); (6) ज़मींदार; ख़ाने 7 और 8 में ज़मींदारों की जातियाँ और उनके घुड़सवार, पैदल सिपाही *(प्यादा)* व हाथी *(फ़ील)* सहित उनके फ़ौज की जानकारी दी गई है। *मुल्क-आबादी* उत्तर भारत के कृषि समाज का विस्तृत, आकर्षक व पेचीदा चित्र पेश करती है। चौथी और पाँचवीं किताबें *(दफ्तर)* भारत के लोगों के मज़हबी, साहित्यिक और सांस्कृतिक रीति-रिवाजों से ताल्लुक रखती हैं; इनके आखिर में अकबर के "शुभ वचनों" का एक संग्रह भी है।

स्रोत 9

"खुशकिस्मती के गुलाब बाग की सिंचाई"

नीचे दिये गए अंश में अबुल फ़ज़्ल ने बड़े साफ़ तौर पर ये खुलासा किया है कि उसने कैसे और किनसे अपनी सूचनाएँ हासिल कीं:

...अबुल फ़ज़्ल, वल्द मुबारक... को यह शानदार हुक्म दिया गया, "शानदार घटनाओं और राज्य-क्षेत्र अधीन करने वाली हमारी फ़तहों की दास्तान ईमानदारी के कलम से लिखो..."। तसल्ली से, मैंने काफ़ी खोजबीन और मिहनत करके महामहिम की गतिविधियों के सबूत और दस्तावेज़ इकट्ठे किए और बहुत समय तक राज्य के मुलाज़िमों व शाही परिवार के सदस्यों के साथ जवाब तलब किया। मैंने सच बोलने वाले समझदार बुज़ुर्गों और फ़ुर्तीले दिमाग वाले, सत्यकर्मी जवानों दोनों (की बातों) को परखा, और उनके बयानों को लिखित रूप से दर्ज किया। सूबों को शाही हुक्म जारी किया गया कि पुराने मुलाज़िमों में जिस किसी को बीते वक्त की घटनाएँ याद हों, पूरे विश्वास के साथ या मामूली शक के साथ (भी), वे अपने संस्मरण को लिखें और उसे दरबार भेज दें, (फिर) उस पाक-मौजूदगी के कक्ष से एक और हुक्म रौशन हुआ; वो ये, कि जो सामग्री जमा की जाए... उसे शाही मौजूदगी में पढ़कर सुनाया जाए, और बाद में जो कुछ भी लिखा जाना हो, उसे उस महान किताब में परिशिष्ट की शक्ल में जोड़ दिया जाए, और ये कि ऐसे ब्योरे जो जाँच-पड़ताल की बारीकियों की वजह से, या मामले की बारीकियों की वजह से, उसी समय अंजाम तक नहीं लाए जा सके, उन्हें मैं बाद में दर्ज करूँ।

ईश्वरी अध्यादेश का खुलासा करने वाले इस शाही हुक्म (की वजह) से अपनी गुप्त फ़िक्र से राहत पाकर, मैंने ऐसे कच्चे प्रारूप लिखने की शुरुआत की, जिसमें शैली या विन्यास की खूबसूरती नहीं थी। मैंने इलाही संवत के उन्नीसवें साल से - जब महामहिम की दानिशमंद अक्ल से दस्तावेज़ दफ़्तर स्थापित किया गया था - घटनाओं का इतिहासवृत्त हासिल किया, और उसके भरे-पूरे पन्नों से मैंने कई मामलों का ब्योरा पाया। काफ़ी तकलीफ़ें उठाकर उन सभी हुक्मों की मूल प्रति या नकल हासिल की गई जो राज्याभिषेक से लेकर आज तक सूबों को जारी किए गए थे। काफ़ी दिक्कतों का सामना करते हुए, मैंने उनमें से कई रिपोर्टों को भी शामिल किया जो साम्राज्य के विभिन्न मामलों या दूसरे देशों में घटी घटनाओं के बारे में थीं और जिन्हें ऊँचे अफ़सरों और मंत्रियों ने भेजा था। और जवाबतलब व खोजबीन के तंत्र से मेरी मिहनतपसंद रूह संतृप्त हो गई। बड़ी कर्मठता के साथ मैंने वे कच्चे मसौदे व ज्ञापनपत्र भी हासिल किए जो जानकार और दूरदर्शी लोगों ने लिखे थे। इन तरीकों से खुशकिस्मती के इस गुलाब बाग *(अकबरनामा)* को सींचने और नमी देने के लिए मैंने हौज़ बनाया।

➲ उन सभी स्रोतों की सूची बनाएँ जिनका इस्तेमाल अबुल फ़ज़्ल ने अपनी किताब पूरी करने के लिए किया। कृषि संबंधों को समझने के लिए इनमें से कौन से स्रोत सबसे उपयोगी होते? आपके मुताबिक किस हद तक अबुल फ़ज़्ल की किताब अकबर से उसके रिश्ते से प्रभावित हुई होगी?

आइन का अनुवाद

आइन की अहमियत की वजह से, कई विद्वानों ने इसका अनुवाद किया। हेनरी ब्लॉकमेन ने इसे संपादित किया और कलकत्ता (आज का कोलकाता) के एशियाटिक सोसाइटी ने अपनी बिब्लियोथिका श्रृंखला में इसे छापा। इस किताब का तीन खंडों में अंग्रेज़ी अनुवाद भी किया गया। पहले खंड का मानक अंग्रेज़ी अनुवाद ब्लॉकमेन का है (कलकत्ता, 1873), बाकी के दो खंडों के अनुवाद एच. एस. जैरेट ने किए (कलकत्ता, 1891 और 1894)।

हालाँकि बादशाह अकबर के शासन की सहूलियत के लिए *आइन* को आधिकारिक तौर पर विस्तृत सूचनाएँ जमा करने के लिए प्रायोजित किया गया था, फिर भी यह किताब आधिकारिक दस्तावेज़ों की महज नकल से कहीं बढ़ कर थी। हम जानते हैं कि इसकी पांडुलिपि को लेखक द्वारा पाँच बार संशोधित किया गया। इससे ऐसा लगता है कि प्रामाणिकता की खोज में अबुल फ़ज़्ल काफ़ी सावधानी बरत रहे थे। उदाहरण के तौर पर, मौखिक बयानों को तथ्य के रूप में किताब में शामिल करने से पहले, अन्य स्रोतों से उसकी असलियत और सच्चाई की पुष्टि करने की कोशिश की जाती थी। सांख्यिकी वाले खंडों में सभी आँकड़ों को अंकों के साथ शब्दों में भी लिखा गया ताकि बाद की प्रतियों में नकल की गलतियाँ कम से कम हों।

फिर भी जिन इतिहासकारों ने ध्यान से *आइन* का अध्ययन किया, वे बताते हैं कि यह ग्रंथ पूरी तरह समस्याओं से परे नहीं है। जोड़ करने में कई ग़लतियाँ पाई गई हैं। ऐसा माना जाता है कि या तो ये अंकगणित की छोटी-मोटी चूक है या फिर नकल उतारने के दौरान अबुल फ़ज़्ल के सहयोगियों की भूल। आमतौर पर ये ग़लतियाँ मामूली हैं और एक व्यापक स्तर पर किताबों के आंकड़ों की सच्चाई को कम नहीं करतीं।

आइन की एक और सीमा यह है कि इसके संख्यात्मक आँकड़ों में विषमताएँ हैं। सभी सूबों से आँकड़े एक ही शक्ल में नहीं एकत्रित किए गए। मसलन, जहाँ कई सूबों के लिए ज़मींदारों की जाति के मुतलिक विस्तृत सूचनाएँ संकलित की गईं, वहीं बंगाल और उड़ीसा के लिए ऐसी सूचनाएँ मौजूद नहीं हैं। इसी तरह, जहाँ सूबों से लिए गए राजकोषीय आँकड़े बड़ी तफ़सील से दिए गए हैं, वहीं उन्हीं इलाकों से कीमतों और मज़दूरी जैसे इतने ही महत्त्वपूर्ण मापदंड इतने अच्छे से दर्ज़ नहीं किए गए हैं। कीमतों और मज़दूरी की दरों की जो विस्तृत सूची *आइन* में दी भी गई है वह साम्राज्य की राजधानी आगरा या उसके इर्द-गिर्द के इलाकों से ली गई है। ज़ाहिर है कि देश के बाकी हिस्सों के लिए इन आँकड़ों की प्रासंगिकता सीमित है।

इन सीमाओं के बावजूद, आइन अपने समय के लिए एक असामान्य व अनोखा दस्तावेज़ है। मुग़ल साम्राज्य के गठन और उसकी संरचना को मंत्र-मुग्ध करने वाली झलकियाँ दिखाकर और उसके बाशिंदों व उत्पादों के बारे में सांख्यिकीय आँकड़े देकर, अबुल फ़ज़्ल मध्यकालीन इतिहासकारों की अब तक प्रचलित परंपराओं से कहीं आगे निकल गए और यह निश्चित तौर पर एक बड़ी उपलब्धि थी। गौरतलब है कि मध्यकालीन भारत में अबुल फ़ज़्ल से पहले के इतिहासकार ज़्यादातर राजनीतिक वारदातों के बारे में ही लिखते थे-जंग, फ़तह, सियासी साज़िशें, या

वंशीय उथल-पुथल। देश, उसके लोग या उत्पादों का ज़िक्र गाहे बगाहे प्रसंगवश ही आता था और वह भी एक ऐसे लेख "साज-सज्जा" के रूप में जिसकी दिशा मूलत: राजनीतिक होती थी।

भारत के लोगों और मुग़ल साम्राज्य के बारे में विस्तृत सूचनाएँ दर्ज करके *आइन* ने स्थापित परंपराओं को पीछे छोड़ दिया और इस तरह सत्रहवीं सदी के मुहाने पर भारत के अध्ययन के लिए एक संदर्भ बिंदु बन गया। जहाँ तक कृषि संबंधों का सवाल है, *आइन* के सांख्यिकीय सबूतों की अहमियत चुनौतियों के परे है। लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण, लोगों, उनके पेशों और व्यवसायों, साम्राज्य की व्यवस्था और उसके उच्चाधिकारियों के बारे में जो सूचनाएँ यह ग्रंथ मुहैया कराता है, उनकी मदद से इतिहासकार समकालीन भारत के सामाजिक ताने-बाने का इतिहास पुन: रचते हैं।

काल रेखा
मुग़ल साम्राज्य के इतिहास के मुख्य पड़ाव

1526	दिल्ली के सुलतान, इब्राहिम लोदी को पानीपत में हराकर बाबर पहला मुग़ल बादशाह बनता है
1530–40	हुमायूँ के शासन का पहला चरण
1540–55	शेरशाह से हार कर हुमायूँ सफ़ावी दरबार में प्रवासी बन कर रहता है
1555–56	हुमायूँ खोये हुए राज्य को फिर से हासिल करता है
1556–1605	अकबर का शासन काल
1605–27	जहाँगीर का शासन काल
1628–58	शाहजहाँ का शासन काल
1658–1707	औरंगज़ेब का शासन काल
1739	नादिरशाह भारत पर आक्रमण करता है और दिल्ली को लूटता है
1761	अहमद शाह अब्दाली पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों को हराता है
1765	बंगाल के दीवानी अधिकार ईस्ट इंडिया कंपनी को सौंप दिये जाते हैं
1857	अंतिम मुग़ल बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र को अंग्रेज़ गद्दी से हटा देते हैं और देश निकाला देकर रंगून (आज का यांगोन, म्यांमार में) भेज देते हैं।

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. कृषि इतिहास लिखने के लिए *आइन* को स्रोत के रूप में इस्तेमाल करने में कौन सी समस्याएँ हैं? इतिहासकार इन समस्याओं से कैसे निपटते हैं?
2. सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में कृषि उत्पादन को किस हद तक महज़ गुज़ारे के लिए खेती कह सकते हैं? अपने उत्तर के कारण स्पष्ट कीजिए।
3. कृषि उत्पादन में महिलाओं की भूमिका का विवरण दीजिए।
4. विचाराधीन काल में मौद्रिक कारोबार की अहमियत की विवेचना उदाहरण देकर कीजिए।
5. उन सूबतों की जाँच कीजिए जो ये सुझाते हैं कि मुग़ल राजकोषीय व्यवस्था के लिए भू-राजस्व बहुत महत्त्वपूर्ण था।

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250-300 शब्दों में)

6. आपके मुताबिक कृषि समाज में सामाजिक व आर्थिक संबंधों को प्रभावित करने में जाति किस हद तक एक कारक थी?
7. सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में जंगल वासियों की ज़िंदगी किस तरह बदल गई?
8. मुग़ल भारत में ज़मींदारों की भूमिका की जाँच कीजिए।
9. पंचायत और गाँव का मुखिया किस तरह से ग्रामीण समाज का नियमन करते थे? विवेचना कीजिए।

चित्र 8.15
सुनारों को दर्शाते हुए सत्रहवीं शताब्दी का चित्र

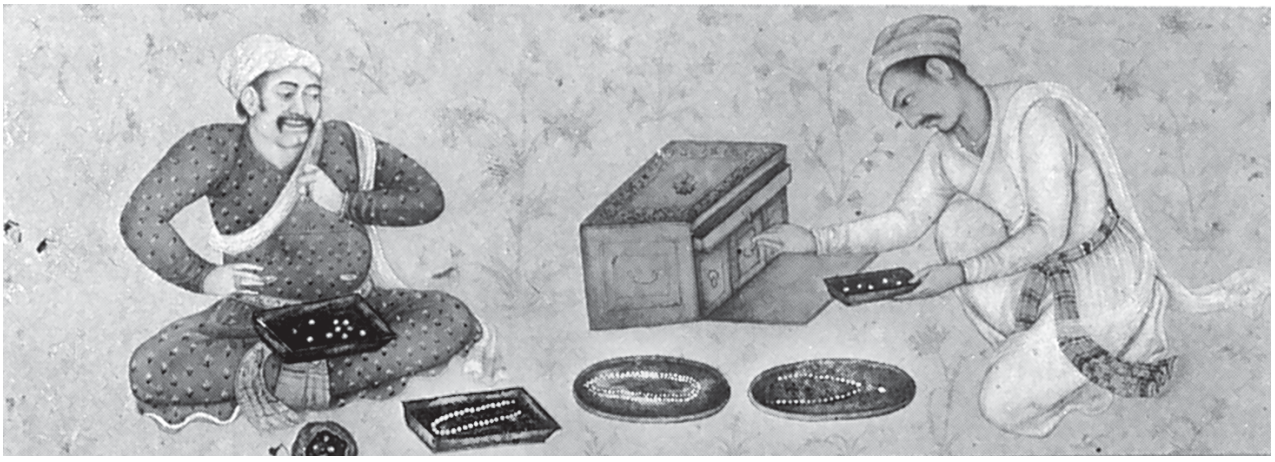

मानचित्र कार्य

10. विश्व के बहिर्रेखा वाले नक्शे पर उन इलाकों को दिखाएँ जिनका मुग़ल साम्राज्य के साथ आर्थिक संपर्क था। इन इलाकों के साथ यातायात-मार्गों को भी दिखाएँ।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. पड़ोस के एक गाँव का दौरा कीजिए। पता कीजिए कि वहाँ कितने लोग रहते हैं, कौन सी फ़सलें उगाई जाती हैं, कौन से जानवर पाले जाते हैं, कौन से दस्तकार समूह रहते हैं, महिलाएँ ज़मीन की मालिक हैं या नहीं, और वहाँ की पंचायत किस तरह काम करती है। जो आपने सोलहवीं-सत्रहवीं सदी के बारे में सीखा है उससे इस सूचना की तुलना करते हुए, समानताएँ नोट कीजिए। परिवर्तन और निरंतरता दोनों की व्याख्या कीजिए।

12. *आइन* का एक छोटा सा अंश चुन लीजिए (10 से 12 पृष्ठ, दी गई वेबसाइट पर उपलब्ध)। इसे ध्यान से पढ़िए और इस बात का ब्योरा दीजिए कि इसका इस्तेमाल एक इतिहासकार किस तरह से कर सकता है?

चित्र 8.16
मिठाई बेचती हुई महिला

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए:

सुमित गुहा, 1999
एनवायरनमेंट एंड एथिनीसिटी इन इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

इरफान हबीब, 1999
द अग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुग़ल इंडिया 1556-1707 (सेकंड एडिशन), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली

डब्ल्यू.एच. मोरलेंड, 1983 (पुनर्मुद्रण)
इंडिया एट द डेथ ऑफ अकबर: एन इकोनॉमिक स्टडी
ओरियंटल, न्यू दिल्ली

तपन रायचौधरी एंड इरफान हबीब (संपा.), 2004, *द कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वोल्यूम 1,* ओरियंट लोंगमैन, न्यू दिल्ली

डीटमर रोथरमंड, 1993
एन इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया–फ्रॉम प्री-कोलोनियल टाइम्स टू 1991, राउटलेज, लंदन

संजय सुब्रह्मण्यम (संपा.), 1994
मनी एंड दि मार्केट इन इंडिया 1100-1700
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
न्यू दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं
http://persian.packhum.orgpersianindex.jsp?serv=pf&file=00702053&ct=0

विषय नौ

शासक और इतिवृत्त:
मुग़ल दरबार
(लगभग सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियाँ)

मुग़ल साम्राज्य के शासक स्वयं को एक विशाल और विजातीय जनता पर शासन के लिए, नियुक्त मानते थे। हालाँकि असलियत में राजनीतिक परिस्थितियाँ इस भव्य दृष्टि को सीमाबद्ध कर देती थीं फिर भी ऐसी दृष्टि सदैव महत्त्वपूर्ण रही। इस दृष्टि के प्रचार-प्रसार का एक तरीका राजवंशीय इतिहास लिखना-लिखवाना था। मुग़ल राजाओं ने दरबारी इतिहासकारों को विवरणों के लेखन का कार्य सौंपा। इन विवरणों में बादशाह के समय की घटनाओं का लेखा-जोखा दिया गया। इसके अतिरिक्त उनके लेखकों ने शासकों को अपने क्षेत्र के शासन में मदद के लिए उपमहाद्वीप के अन्य क्षेत्रों से ढेरों जानकारियाँ इकट्ठी कीं।

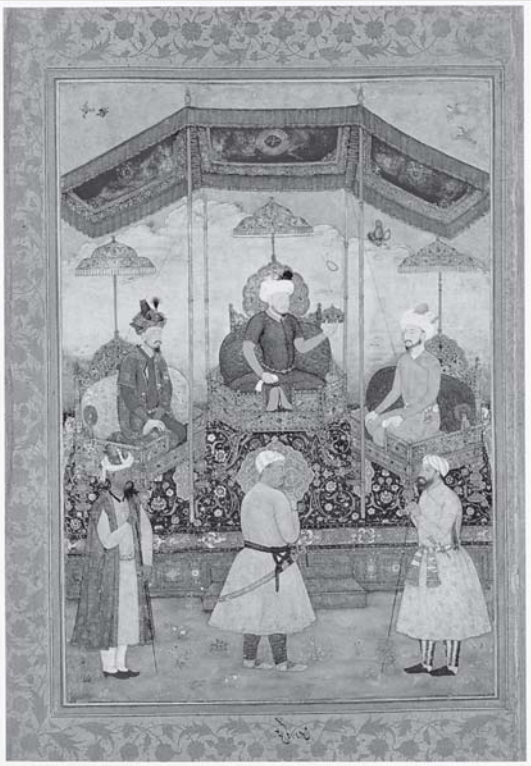

चित्र 9.1
बाबर को राजवंशीय मुकुट सौंपता तैमूर, गोवर्धन द्वारा लगभग 1630 में चित्रित

अंग्रेज़ी में लिखने वाले आधुनिक इतिहासकारों ने मूल-पाठ की इस शैली को क्रॉनिकल्स (इतिवृत्त/इतिहास) नाम दिया। ये इतिवृत्त घटनाओं का अनवरत कालानुक्रमिक विवरण प्रस्तुत करते हैं। मुग़लों का इतिहास लिखने के इच्छुक किसी भी विद्वान के लिए ये इतिवृत्त अपरिहार्य स्रोत हैं। एक ओर तो ये इतिवृत्त मुग़ल राज्य की संस्थाओं के बारे में तथ्यात्मक सूचनाओं का ख़ज़ाना थे, जिन्हें दरबार से घनिष्ठ रूप से जुड़े व्यक्तियों द्वारा काफ़ी मेहनत से एकत्रित एवं वर्गीकृत किया गया था। दूसरी ओर इन मूल-पाठों का उद्देश्य उन आशयों को संप्रेषित करना था जिन्हें मुग़ल शासक अपने क्षेत्र में लागू करना चाहते थे। अत: ये इतिवृत्त हमें इस बात की एक झलक देते हैं कि कैसे शाही विचारधाराएँ रची तथा प्रचारित की जाती थीं। यह अध्याय मुग़ल साम्राज्य के इस समृद्ध और लुभावने आयाम की कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालेगा।

1. मुग़ल शासक और उनका साम्राज्य

मुग़ल नाम मंगोल से व्युत्पन्न हुआ है। यद्यपि आज यह नाम एक साम्राज्य की भव्यता का अहसास कराता है लेकिन राजवंश के शासकों ने स्वयं के लिए यह नाम नहीं चुना था। उन्होंने अपने को तैमूरी कहा क्योंकि पितृपक्ष से वे तुर्की शासक तिमूर के वंशज थे। पहला मुग़ल शासक बाबर मातृपक्ष से चंगेज़ खाँ का संबंधी था। वह तुर्की बोलता था और उसने मंगोलों का उपहास करते हुए उन्हें बर्बर गिरोह के रूप में उल्लिखित किया है।

सोलहवीं शताब्दी के दौरान यूरोपियों ने परिवार की इस शाखा के भारतीय शासकों का वर्णन करने के लिए मुग़ल शब्द का प्रयोग किया। सोलहवीं शताब्दी से ही इस शब्द का निरंतर प्रयोग होता रहा है। यहाँ तक कि रडयार्ड किपलिंग की *जंगल बुक* के युवा नायक *मोगली* का नाम भी इससे व्युत्पन्न हुआ है।

मुग़लों व स्थानीय सरदारों के बीच राजनीतिक-मैत्रियों के ज़रिए तथा विजयों के ज़रिए भारत के विविध क्षेत्रीय राज्यों को मिलाकर साम्राज्य की रचना की गई। साम्राज्य के संस्थापक ज़हीरुद्दीन बाबर को उसके मध्य एशियाई स्वदेश फरगाना से प्रतिद्वंद्वी उज़बेकों ने भगा दिया था। उसने सबसे पहले स्वयं को काबुल में स्थापित किया और फिर 1526 में अपने दल के सदस्यों की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए क्षेत्रों और संसाधनों की खोज में वह भारतीय उपमहाद्वीप में और आगे की ओर बढ़ा।

इसके उत्तराधिकारी नसीरुद्दीन हुमायूँ (1530-40, 1555-56) ने साम्राज्य की सीमाओं में विस्तार किया किंतु वह अफ़गान नेता शेरशाह सूर से पराजित हो गया जिसने उसे ईरान के सफ़ावी शासक के दरबार में निर्वासित होने को बाध्य कर दिया। 1555 में हुमायूँ ने सूरों को पराजित कर दिया किंतु एक वर्ष बाद ही उसकी मृत्यु हो गई।

कई लोग जलालुद्दीन अकबर (1556-1605) को मुग़ल बादशाहों में महानतम मानते हैं क्योंकि उसने न केवल अपने साम्राज्य का विस्तार ही किया बल्कि इसे अपने समय का विशालतम, दृढ़तम और सबसे समृद्ध राज्य बनाकर सुदृढ़ भी किया। अकबर हिंदुकुश पर्वत तक अपने साम्राज्य की सीमाओं के विस्तार में सफल हुआ और उसने ईरान के सफ़ावियों और तूरान (मध्य एशिया) के उज़बेकों की विस्तारवादी योजनाओं पर लगाम लगाए रखी। अकबर के बाद जहाँगीर (1605-27), शाहजहाँ (1628-58) और औरंगज़ेब (1658-1707) के रूप में भिन्न-भिन्न व्यक्तित्वों वाले तीन बहुत योग्य उत्तराधिकारी हुए। इनके अधीन क्षेत्रीय विस्तार जारी रहा यद्यपि इसकी गति काफ़ी धीमी रही। तीनों शासकों ने शासन के विविध यंत्रों को बनाए रखा और उन्हें सुदृढ़ किया।

चित्र 9.2
हुमायूँ की पत्नी नादिरा का, राजस्थान के रेगिस्तान को पार करते दिखाता हुआ, अठारहवीं शताब्दी का चित्रण

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के दौरान शाही संस्थाओं के ढाँचे का निर्माण हुआ। इनके अंतर्गत प्रशासन और कराधान के प्रभावशाली तरीके शामिल थे। मुग़ल शक्ति का सुस्पष्ट केंद्र दरबार था। यहाँ राजनीतिक संबंध गढ़े जाते थे, साथ ही श्रेणियाँ और हैसियतें परिभाषित की जाती थीं। मुग़लों द्वारा शुरू की गई राजनीतिक व्यवस्था सैन्य शक्ति और उपमहाद्वीप की भिन्न-भिन्न परंपराओं को समायोजित करने की चेतन नीति के संयोजन पर आधारित थी।

1707 के बाद औरंगज़ेब की मृत्योपरांत राजवंश की शक्ति घट गई। दिल्ली, आगरा अथवा लाहौर जैसे भिन्न राजधानी नगरों से नियंत्रित एक विशाल साम्राज्य तंत्र की जगह क्षेत्रीय शक्तियों ने अधिक स्वायत्तता अर्जित कर ली। फिर भी सांकेतिक रूप में ही सही पर मुग़ल शासक की प्रतिष्ठा ने अभी अपनी आभा नहीं खोई थी। 1857 में इस वंश के अंतिम वंशज बहादुरशाह ज़फर द्वितीय को अंग्रेज़ों ने उखाड़ फेंका।

➲ चर्चा कीजिए...

पता लगाने की कोशिश कीजिए कि आप जिस राज्य में रहते हैं क्या वह मुग़ल साम्राज्य का भाग था? क्या साम्राज्य स्थापित होने के परिणामस्वरूप उस क्षेत्र में किसी तरह के परिवर्तन हुए थे? अगर आपका राज्य इस साम्राज्य का हिस्सा नहीं था तो समकालीन क्षेत्रीय शासकों, उनके उद्भव और उनकी नीतियों के बारे में और जानकारी प्राप्त कीजिए। वे किस प्रकार के विवरण का लेखा-जोखा रखते थे?

2. इतिवृत्तों की रचना

मुग़ल बादशाहों द्वारा तैयार करवाए गए इतिवृत्त साम्राज्य और उसके दरबार के अध्ययन के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। ये इतिवृत्त इस साम्राज्य के अंतर्गत आने वाले सभी लोगों के सामने एक प्रबुद्ध राज्य के दर्शन की प्रायोजना के उद्देश्य से लिखे गए थे। इसी तरह इनका उद्देश्य उन लोगों को, जिन्होंने मुग़ल शासन का विरोध किया था, यह बताना भी था कि उनके सारे विरोधों का असफल होना नियत है। शासक यह भी सुनिश्चित कर लेना चाहते थे कि भावी पीढ़ियों के लिए उनके शासन का विवरण उपलब्ध रहे।

मुग़ल इतिवृत्तों के लेखक निरपवाद रूप से दरबारी ही रहे। उन्होंने जो इतिहास लिखे उनके केंद्रबिंदु में थीं शासक पर केंद्रित घटनाएँ, शासक का परिवार, दरबार व अभिजात, युद्ध और प्रशासनिक व्यवस्थाएँ। अकबर, शाहजहाँ और आलमगीर (मुग़ल शासक औरंगज़ेब की एक पदवी) की कहानियों पर आधारित इतिवृत्तों के शीर्षक *अकबरनामा*, *शाहजहाँनामा*, *आलमगीरनामा* यह संकेत करते हैं कि इनके लेखकों की निगाह में साम्राज्य व दरबार का इतिहास और बादशाह का इतिहास एक ही था।

2.1 तुर्की से फ़ारसी की ओर

मुग़ल दरबारी इतिहास फ़ारसी भाषा में लिखे गए थे। दिल्ली के सुल्तानों के काल में उत्तर भारतीय भाषाओं विशेषकर हिंदवी व इसकी क्षेत्रीय भिन्नताओं के साथ फ़ारसी, दरबार और साहित्यिक रचनाओं की भाषा के रूप में, खूब पुष्पित-पल्लवित हुई। चूँकि मुग़ल चग़ताई मूल के थे

चग़ताई तुर्क स्वयं को चंगेज़ खाँ के सबसे बड़े पुत्र का वंशज मानते थे।

अत: तुर्की उनकी मातृभाषा थी। इनके पहले शासक बाबर ने कविताएँ और अपने संस्मरण इसी भाषा में लिखे थे।

अकबर ने सोच-समझकर फ़ारसी को दरबार की मुख्य भाषा बनाया। संभवतया ईरान के साथ सांस्कृतिक और बौद्धिक संपर्कों के साथ-साथ मुग़ल दरबार में पद पाने को इच्छुक ईरानी और मध्य एशियाई प्रवासियों ने बादशाह को इस भाषा को अपनाए जाने के लिए प्रेरित किया होगा। फ़ारसी को दरबार की भाषा का ऊँचा स्थान दिया गया तथा उन लोगों को शक्ति व प्रतिष्ठा प्रदान की गई जिनकी इस भाषा पर अच्छी पकड़ थी। राजा, शाही परिवार के लोग और दरबार के विशिष्ट सदस्य यह भाषा बोलते थे। कुछ और आगे यह सभी स्तरों के प्रशासन की भाषा बन गई जिससे लेखाकारों, लिपिकों तथा अन्य अधिकारियों ने भी इसे सीख लिया।

जहाँ-जहाँ फ़ारसी प्रत्यक्ष प्रयोग में नहीं थी, वहाँ भी राजस्थानी, मराठी और यहाँ तक कि तमिल में शासकीय लेखों की भाषा को इसकी शब्दावली और मुहावरों ने व्यापक रूप से प्रभावित किया था। चूँकि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के दौरान फ़ारसी का प्रयोग करने वाले लोग उपमहाद्वीप के कई अलग-अलग क्षेत्रों से आए थे और वे अन्य भारतीय भाषाएँ भी बोलते थे अत: स्थानीय मुहावरों को समाविष्ट करने से फ़ारसी का भी भारतीयकरण हो गया था। फ़ारसी के हिंदवी के साथ पारस्परिक संपर्क से उर्दू के रूप में एक नयी भाषा निकल कर आई।

अकबरनामा जैसे मुग़ल इतिहास फ़ारसी में लिखे गए थे जबकि अन्य जैसे बाबर के संस्मरणों का *बाबरनामा* के नाम से तुर्की से फ़ारसी में अनुवाद किया गया था। मुग़ल बादशाहों ने *महाभारत* और *रामायण* जैसे संस्कृत ग्रंथों को फ़ारसी में अनुवादित किए जाने का आदेश दिया। महाभारत का अनुवाद *रज़्मनामा* (युद्धों की पुस्तक) के रूप में हुआ।

2.2 पांडुलिपियों की रचना

मुग़ल भारत की सभी पुस्तकें पांडुलिपियों के रूप में थीं अर्थात् वे हाथ से लिखी होती थीं। पांडुलिपि रचना का मुख्य केंद्र शाही किताबख़ाना था। हालाँकि किताबख़ाना शब्द पुस्तकालय के रूप में अनुवादित किया जा सकता है, यह दरअसल एक लिपिघर था अर्थात ऐसी जगह जहाँ बादशाह की पांडुलिपियों का संग्रह रखा जाता तथा नयी पांडुलिपियों की रचना की जाती थी।

पांडुलिपियों की रचना में विविध प्रकार के कार्य करने वाले बहुत लोग शामिल होते थे। कागज़ बनाने वालों की पांडुलिपि के पन्ने तैयार करने, सुलेखकों की पाठ की नकल तैयार करने, कोफ़्तगरों की पृष्ठों को चमकाने के लिए, चित्रकारों की पाठ से दृश्यों को चित्रित करने के लिए और जिल्दसाज़ों की प्रत्येक पन्ने को इकट्ठा कर उसे अलंकृत आवरण

लिखित शब्द की उड़ान

अबुल फ़ज़्ल के शब्दों में :

लिखित शब्द विगत युगों की बुद्धिमत्ता को मूर्त रूप दे सकता है और इस तरह वह बौद्धिक प्रगति का साधन बन सकता है। उच्चारित शब्द उनके दिलो-दिमाग में जाता है जो उसे सुनने के लिए उपस्थित होता है। लिखित शब्द न केवल पास रहने वाले लोगों बल्कि दूर स्थित लोगों को भी समझदारी सिखाता है। अगर लिखित शब्द न हो तो उच्चारित शब्द तो बहुत जल्दी ही मर जाएगा और हमारे पास उन लोगों की कोई निशानी नहीं रह जाएगी जो दिवंगत हो चुके हैं। सामान्य समझ के लोग तो अक्षरों को एक गहरी आकृति मात्र मानते हैं पर गहराई से देखने वाले लोगों को इनमें एक प्रज्ञा दीप (चिराग-ए-शिनासाई) नज़र आता है। अपने में हज़ारों किरणों को लिए होने के बावजूद लिखित शब्द काला दिखता है अथवा इस ढंग से कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा प्रकाश है जिस पर एक तिल है जो इसे बुरी नज़र से बचाता है। खत या पत्र समझदारी की तसवीर है; विचारों की दुनिया से निकाला हुआ ख़ाका है; दिन को लाने वाली गहरी रोशनी है; ज्ञान से भरा हुआ घना बादल है। पत्र मौन होते हैं फिर भी वे बोलते हैं; स्थिर होते हैं फिर भी वे सफ़र करते हैं; पन्ने पर फैले हुए, फिर भी ऊपर की ओर उड़ान भरते हैं।

चित्र 9.3

नस्तलिक़ शैली में लिखा हुआ एक पन्ना, जिसे अकबर के दरबार के सबसे अच्छे सुलेखकों में से एक काश्मीर के मुहम्मद हुसैन (लगभग 1575–1605) द्वारा तैयार किया गया था। इसके अक्षरों के विशुद्ध समानुपातिक घुमाव की कदरदानी में इसको 'ज़रीन क़लम' (सोने की क़लम) के खिताब से नवाज़ा गया। सुलेखक ने पृष्ठ के निचले भाग पर अपने हस्ताक्षर किए हैं। इस पृष्ठ का लगभग एक चौथाई हिस्सा इसी में प्रयुक्त हो गया है।

में बैठाने के लिए आवश्यकता होती थी। तैयार पांडुलिपि को एक बहुमूल्य वस्तु, बौद्धिक संपदा और सौंदर्य के कार्य के रूप में देखा जाता था। इस तरह के सौंदर्य को अस्तित्व में लाकर इन पांडुलिपियों के संरक्षक मुग़ल बादशाह अपनी शक्ति को दर्शा रहे थे।

इसी तरह इन पांडुलिपियों की वास्तविक रचना में शामिल कुछ लोगों को भी पदवियों और पुरस्कारों के रूप में पहचान मिली। इनमें सुलेखकों और चित्रकारों को तो उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा मिली जबकि अन्य, जैसे कागज़ बनाने वाले अथवा जिल्दसाज़ गुमनाम कारीगर ही रह गए।

सुलेखन अर्थात् हाथ से लिखने की कला अत्यंत महत्त्वपूर्ण कौशल मानी जाती थी। इसका प्रयोग भिन्न-भिन्न शैलियों में होता था। *नस्तलिक* अकबर की पसंदीदा शैली थी। यह एक ऐसी तरल शैली थी जिसे लंबे सपाट प्रवाही ढंग से लिखा जाता था। इसे 5 से 10 मिलीमीटर की नोक वाले छँटे हुए सरकंडे, जिसे कलम कहा जाता है, के टुकड़े से स्याही में डुबोकर लिखा जाता है। सामान्यतया कलम की नोक में बीच में छोटा सा चीरा लगा दिया जाता था ताकि वह स्याही आसानी से सोख ले।

➲ चर्चा कीजिए...

आज तैयार होने वाली पुस्तकें किन मायनों में मुग़ल इतिवृत्तों की रचना के तरीकों से भिन्न अथवा समान हैं?

3. रंगीन चित्र

जैसा कि हमने पिछले अनुभाग में पढ़ा, मुग़ल पांडुलिपियों की रचना में चित्रकार भी शामिल थे। एक मुग़ल बादशाह के शासन की घटनाओं का विवरण देने वाले इतिहासों में लिखित पाठ के साथ ही उन घटनाओं को चित्रों के माध्यम से दृश्य रूप में भी वर्णित किया जाता था। जब किसी पुस्तक में घटनाओं अथवा विषयों को दृश्य रूप में व्यक्त किया जाना होता था तो सुलेखक उसके आसपास के पृष्ठों को खाली छोड़ देते थे। चित्रकार शब्दों में वर्णित विषय को अलग से चित्र रूप में उतारकर वहाँ संलग्न कर देते थे। ये लघुचित्र होते थे जिन्हें पांडुलिपि के पृष्ठों पर आसानी से लगाया और देखा जा सकता था।

चित्रों को न केवल किसी पुस्तक के सौंदर्य को बढ़ावा देने वाला बल्कि उन्हें तो, लिखित माध्यम से राजा और राजा की शक्ति के विषय में जो बात कही न जा सकी हों, ऐसे विचारों के संप्रेषण का भी एक सशक्त माध्यम माना जाता था। इतिहासकार अबुल फज़्ल ने चित्रकारी का एक 'जादुई कला' के रूप में वर्णन किया है। उसकी राय में यह कला किसी निर्जीव वस्तु को भी इस रूप में प्रस्तुत कर सकती है कि जैसे उसमें जीवन हो।

बादशाह, उसके दरबार तथा उसमें हिस्सा लेने वाले लोगों का चित्रण करने वाले चित्रों की रचना को लेकर शासकों और मुसलमान रूढ़िवादी वर्ग के प्रतिनिधियों अर्थात उलमा के बीच निरंतर तनाव बना रहा। उलमा ने कुरान के साथ-साथ हदीस, जिसमें पैगम्बर मुहम्मद के जीवन से एक ऐसा ही प्रसंग वर्णित है, में प्रतिष्ठापित मानव रूपों के चित्रण पर इस्लामी प्रतिबंध का आह्वान किया। इस प्रसंग में पैगम्बर साहब को प्राकृतिक तरीके से जीवित रूपों के चित्रण की मनाही करते हुए उल्लिखित किया गया है क्योंकि ऐसा करने से यह लगता था कि कलाकार रचना की शक्ति को अपने हाथ में लेने की कोशिश कर रहा है। यह एक ऐसा कार्य था जो केवल ईश्वर का ही था।

चित्र 9.4
एक मुग़ल किताबखाना

➲ इस लघुचित्र में चित्रित मुग़ल पांडुलिपि की रचना में संलग्न अलग-अलग कार्यों की पहचान कीजिए।

स्रोत 1

तसवीर की प्रशंसा में

अबुल फज़्ल चित्रकारी को बहुत सम्मान देता था :

> किसी भी चीज़ का उसके जैसा ही रेखांकन बनाना तसवीर कहलाता है। अपनी युवावस्था के एकदम शुरुआती दिनों से ही महामहिम ने इस कला में अपनी अभिरुचि व्यक्त की है। वे इसे अध्ययन और मनोरंजन दोनों का ही साधन मानते हुए इस कला को हर संभव प्रोत्साहन देते हैं। चित्रकारों की एक बड़ी संख्या इस कार्य में लगाई गई है। हर हफ़्ते शाही कार्यशाला के अनेक निरीक्षक और लिपिक बादशाह के सामने प्रत्येक कलाकार का कार्य प्रस्तुत करते हैं और महामहिम प्रदर्शित उत्कृष्टता के आधार पर ईनाम देते तथा कलाकारों के मासिक वेतन में वृद्धि करते हैं... अब सर्वाधिक उत्कृष्ट चित्रकार मिलने लगे हैं और बिहज़ाद जैसे चित्रकारों की अत्युत्तम कलाकृतियों को तो उन यूरोपीय चित्रकारों के उत्कृष्ट कार्यों के समकक्ष ही रखा जा सकता है जिन्होंने विश्व में व्यापक ख्याति अर्जित कर ली है। ब्योरे की सूक्ष्मता, परिपूर्णता और प्रस्तुतीकरण की निर्भीकता जो अब चित्रों में दिखाई पड़ती है, वह अतुलनीय है। यहाँ तक कि निर्जीव वस्तुएँ भी प्राणवान प्रतीत होती हैं। सौ से अधिक चित्रकार इस कला के प्रसिद्ध कलाकार हो गए हैं। हिंदू कलाकारों के लिए यह बात ख़ासतौर पर सही है। उनके चित्र वस्तुओं की हमारी परिकल्पना से कहीं परे हैं। वस्तुत: पूरे विश्व में कुछ लोग ही उनके समान पाए जा सकते हैं।

➲ अबुल फज़्ल चित्रकला को महत्त्वपूर्ण क्यों मानता है? वह इस कला को वैध कैसे ठहराता है?

किंतु समय के साथ *शरिया* की व्याख्याओं में भी बदलाव आया। विभिन्न सामाजिक समूहों ने इस्लामी परंपरा के ढाँचे की अलग-अलग तरीकों से व्याख्या की। प्रायः प्रत्येक समूह ने इस परंपरा की ऐसी व्याख्या प्रतिपादित की जो उनकी राजनीतिक आवश्यकताओं से सबसे ज़्यादा मेल खाती थी। जिन शताब्दियों के दौरान साम्राज्य निर्माण हो रहा था उस समय कई एशियाई क्षेत्रों के शासकों ने नियमित रूप से कलाकारों को उनके चित्र तथा उनके राज्य के जीवन के दृश्य चित्रित करने के लिए नियुक्त किया। उदाहरण के लिए, ईरान के सफ़ावी राजाओं ने दरबार में स्थापित कार्यशालाओं में प्रशिक्षित उत्कृष्ट कलाकारों को संरक्षण प्रदान किया। बिहज़ाद जैसे चित्रकारों के नाम ने सफ़ावी दरबार की सांस्कृतिक प्रसिद्धि को चारों ओर फैलाने में बहुत योगदान दिया।

ईरान से भी कलाकार मुग़लकालीन भारत आने में सफल हुए। कुछ को मुग़ल दरबार में लाया गया जैसे मीर सैय्यद अली और अब्दुस समद को बादशाह हुमायूँ को दिल्ली तक साथ देने के लिए कहा गया। अन्य ने संरक्षण और प्रतिष्ठा के अवसरों की तलाश में प्रवास किया। बादशाह और रूढ़िवादी मुसलमान विचाराधारा के प्रवक्ताओं के बीच जीवधारियों के दृश्य निरूपण पर मुग़ल दरबार में तनाव बना हुआ था। अकबर का दरबारी इतिहासकार अबुल फज़्ल बादशाह को यह कहते हुए उद्धृत करता है, "कई लोग ऐसे हैं जो चित्रकला से घृणा करते हैं पर मैं ऐसे व्यक्तियों को नापसंद करता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि कलाकार के पास खुदा को पहचानने का बेजोड़ तरीका है। चूँकि कहीं न कहीं उसे यह महसूस होता है कि खुदा की रचना को वह जीवन नहीं दे सकता..."

➲ चर्चा कीजिए...

चित्रकार के साहित्यिक और कलात्मक रचना प्रदर्शन (चित्र 9.4) की तुलना अबुल फ़ज़्ल की साहित्यिक और कलात्मक रचना-शक्ति से कीजिए (स्रोत 1)।

4. *अकबरनामा* और *बादशाहनामा*

महत्त्वपूर्ण चित्रित मुग़ल इतिहासों में सर्वाधिक ज्ञात *अकबरनामा* और *बादशाहनामा* (राजा का इतिहास) है। प्रत्येक पांडुलिपि में औसतन 150 पूरे अथवा दोहरे पृष्ठों पर लड़ाई, घेराबंदी, शिकार, इमारत-निर्माण, दरबारी दृश्य आदि के चित्र हैं।

अकबरनामा के लेखक अबुल फज़्ल का पालन-पोषण मुग़ल राजधानी आगरा में हुआ। वह अरबी, फारसी, यूनानी दर्शन और सूफ़ीवाद में पर्याप्त निष्णात था। इससे भी अधिक वह एक प्रभावशाली विवादी तथा स्वतंत्र चिंतक था जिसने लगातार दकियानूसी उलमा के विचारों का विरोध किया। इन गुणों से अकबर बहुत प्रभावित हुआ। उसने अबुल फज़्ल को अपने सलाहकार और अपनी नीतियों के प्रवक्ता के रूप में बहुत उपर्युक्त पाया। बादशाह का एक मुख्य उद्देश्य राज्य को धार्मिक रूढ़िवादियों के नियंत्रण से मुक्त करना था। दरबारी इतिहासकार के रूप में अबुल फज़्ल ने अकबर के शासन से जुड़े विचारों को न केवल आकार दिया बल्कि उनको स्पष्ट रूप से व्यक्त भी किया।

1589 में शुरू कर अबुल फज़्ल ने *अकबरनामा* पर तेरह वर्षों तक कार्य किया और इस दौरान कई बार उसने प्रारूप में सुधार किए। यह इतिहास घटनाओं के वास्तविक विवरणों (*वाक़ई*), शासकीय दस्तावेज़ों तथा जानकार व्यक्तियों के मौखिक प्रमाणों जैसे विभिन्न प्रकार के साक्ष्यों पर आधारित है।

अकबरनामा को तीन जिल्दों में विभाजित किया गया है जिनमें से प्रथम दो इतिहास हैं। तीसरी जिल्द *आइन-ए-अकबरी* है। पहली जिल्द में आदम से लेकर अकबर के जीवन के एक खगोलीय कालचक्र तक (30 वर्ष) का मानव-जाति का इतिहास है। दूसरी ज़िल्द अकबर के 46वें शासन वर्ष (1601) पर ख़त्म होती है। अगले ही वर्ष अबुल फ़ज़्ल राजकुमार सलीम द्वारा तैयार किए गए षड्यंत्र का शिकार हुआ और सलीम के सहापराधी बीर सिंह बुंदेला द्वारा उसकी हत्या कर दी गई।

अकबरनामा का लेखन राजनीतिक रूप से महत्त्वपूर्ण घटनाओं के समय के साथ विवरण देने के पारंपरिक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किया गया। इसके साथ ही तिथियों और समय के साथ होने वाले बदलावों के उल्लेख के बिना ही अकबर के साम्राज्य के भौगोलिक, सामाजिक, प्रशासनिक और सांस्कृतिक सभी पक्षों का विवरण प्रस्तुत करने के अभिनव तरीके से भी इसका लेखन हुआ। *आइन-ए-अकबरी* में मुग़ल साम्राज्य को हिंदुओं, जैनों, बौद्धों और मुसलमानों की भिन्न-भिन्न आबादी वाले तथा एक मिश्रित संस्कृति वाले साम्राज्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

अबुल फ़ज़्ल की भाषा बहुत अलंकृत थी और चूँकि इस भाषा के पाठों को ऊँची आवाज़ में पढ़ा जाता था अत: इस भाषा में लय तथा कथन-शैली को बहुत महत्त्व दिया जाता था। इस भारतीय-फ़ारसी शैली को दरबार में संरक्षण मिला।

अबुल फज़्ल का एक शिष्य अब्दुल हमीद लाहौरी *बादशाहनामा* के लेखक के रूप में जाना जाता है। इसकी योग्यताओं के बारे में सुनकर बादशाह शाहजहाँ ने उसे *अकबरनामा* के नमूने पर अपने शासन का इतिहास लिखने के लिए नियुक्त किया। *बादशाहनामा* भी सरकारी इतिहास है। इसकी तीन जिल्दें (*दफ़्तर*) हैं और प्रत्येक जिल्द दस चंद्र वर्षों का ब्योरा देती है। लाहौरी ने बादशाह के शासन (1627-47) के पहले दो दशकों पर पहला व दूसरा दफ़्तर लिखा। इन जिल्दों में बाद में शाहजहाँ के वज़ीर सादुल्लाह खाँ ने सुधार किया। बुढ़ापे की अशक्तताओं की वजह से लाहौरी तीसरे दशक के बारे में न लिख सका जिसे बाद में इतिहासकार वारिस ने लिखा।

औपनिवेशिक काल के दौरान अंग्रेज़ प्रशासकों ने अपने साम्राज्य के लोगों और संस्कृतियों (जिन पर वे लंबा शासन करना चाहते थे), को

ऐतिहासिक विवरण समयवार विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करता है जबकि *एककालिक* विवरण एक ख़ास समय की स्थिति का वर्णन करता है।

बादशाहनामा का सफ़र

मुग़लों के अधीन बहुमूल्य पांडुलिपियों की भेंट एक स्थापित राजनयिक प्रथा थी। इसी का अनुकरण करते हुए अवध नवाब ने 1799 में जार्ज तृतीय को सचित्र *बादशाहनामा* भेंट में दिया। तभी से यह विंडिसर कासल के अंग्रेज़ी शाही संग्रहों में सुरक्षित है।

1994 में हुए संरक्षण कार्य में बँधी हुई पांडुलिपि को अलग-अलग करना आवश्यक हो गया। इसी की वजह से चित्रों को प्रदर्शित करना संभव हुआ और 1997 में पहली बार *बादशाहनामा* के चित्र नयी दिल्ली, लंदन और वाशिंगटन में हुई प्रदर्शनियों में दिखाए गए।

बेहतर ढंग से समझने के लिए भारतीय इतिहास का अध्ययन तथा उपमहाद्वीप के बारे में ज्ञान का अभिलेखागार स्थापित करना शुरू किया। 1784 में सर विलियम जोन्स द्वारा स्थापित एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल ने कई भारतीय पांडुलिपियों के संपादन, प्रकाशन और अनुवाद का ज़िम्मा अपने ऊपर ले लिया।

अकबरनामा और *बादशाहनामा* के संपादित पाठान्तर सबसे पहले एशियाटिक सोसाइटी द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी में प्रकाशित किए गए। वर्षों की कड़ी मेहनत के बाद बीसवीं शताब्दी के आरंभ में हेनरी बेवरिज द्वारा *अकबरनामा* का अंग्रेज़ी अनुवाद किया गया। *बादशाहनामा* के केवल कुछ ही अंशों का अभी तक अंग्रेज़ी में अनुवाद हुआ है, इसका मूल पाठ अपने संपूर्ण रूप में आज भी अनुवाद किए जाने की प्रतीक्षा में है।

➲ चर्चा कीजिए...

पता लगाने की कोशिश कीजिए कि क्या आपके कस्बे अथवा गाँव में पांडुलिपियों को चित्रित करने की परंपरा रही है? इन पांडुलिपियों को कौन तैयार करता था? इन पांडुलिपियों में किन विषयों पर विचार किया गया था? इन्हें कैसे सुरक्षित रखा जाता था?

5. आदर्श राज्य

5.1 एक दैवीय प्रकाश

दरबारी इतिहासकारों ने कई साक्ष्यों का हवाला देते हुए यह दिखाया कि मुग़ल राजाओं को सीधे ईश्वर से शक्ति मिली थी। उनके द्वारा वर्णित दंतकथाओं में से एक मंगोल रानी अलानकुआ की कहानी है जो अपने शिविर में आराम करते समय सूर्य की एक किरण द्वारा गर्भवती हुई थी। उसके द्वारा जन्म लेने वाली संतान पर इस दैवीय प्रकाश का प्रभाव था। इस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह प्रकाश हस्तांतरित होता रहा।

ईश्वर (*फर-ए-इज़ादी*) से निःसृत प्रकाश को ग्रहण करने वाली चीज़ों के पदानुक्रम में मुग़ल राजत्व को अबुल फज़्ल ने सबसे ऊँचे स्थान पर रखा। इस विषय में वह प्रसिद्ध ईरानी सूफ़ी शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी (1191 में मृत) के विचारों से प्रभावित था जिसने सर्वप्रथम इस प्रकार का विचार प्रस्तुत किया था। इस विचार के अनुसार एक पदानुक्रम के तहत यह दैवीय प्रकाश राजा में संप्रेषित होता था जिसके बाद राजा अपनी प्रजा के लिए आध्यात्मिक मार्गदर्शन का स्रोत बन जाता था।

इतिवृत्तों के विवरणों का साथ देने वाले चित्रों ने इन विचारों को इस तरीके से संप्रेषित किया कि उन्होंने देखने वालों के मन-मस्तिष्क पर

प्रकाश के विचार का संप्रेषण

सुहरावर्दी दर्शन के मूल में प्लेटो की *रिपब्लिक* है जहाँ ईश्वर को सूर्य के प्रतीक द्वारा निरूपित किया गया है। सुहरावर्दी की रचनाओं को इस्लामी दुनिया में व्यापक रूप से पढ़ा जाता था। शेख मुबारक ने इसका अध्ययन किया था। इसके बारे में उसने अपने पुत्रों फैज़ी और अबुल फज़्ल को बताया जो उसके संरक्षण में प्रशिक्षित हुए थे।

चित्र 9.5
अबुल हसन द्वारा बनाए गए इस चित्र में जहाँगीर को देदीप्यमान कपड़ों और आभूषणों में अपने पिता अकबर के चित्र को हाथ में लिए दिखाया गया है।

अकबर की पोशाक सफ़ेद है। सफ़ेद रंग को सूफ़ी परंपराओं में प्रबुद्ध जीव से जोड़ा गया है। वह एक गोलक अर्पित कर रहा है जो राजवंशीय सत्ता का प्रतीक है। मुग़ल साम्राज्य में ऐसा कोई कानून नहीं था जो निर्धारित करे कि बादशाह के पुत्रों में से कौन सा पुत्र सिंहासन का उत्तराधिकारी होगा। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक राजवंशीय परिवर्तन का निर्णय भ्रातृघातक युद्ध से होने लगा। अकबर के शासन के अंतिम भाग में शहज़ादे सलीम ने अपने पिता के खिलाफ़ विद्रोह कर दिया लेकिन बाद में उसे माफ कर दिया गया।

➲ यह चित्र पिता-पुत्र के बीच के संबंध को कैसे चित्रित करता है? आपको क्यों लगता है कि मुग़ल कलाकारों ने निरंतर बादशाहों को गहरी अथवा फीकी पृष्ठभूमि के साथ चित्रित किया है? इस चित्र में प्रकाश के कौन से स्रोत हैं?

स्थायी प्रभाव डाला। सत्रहवीं शताब्दी से मुग़ल कलाकारों ने बादशाहों को प्रभामंडल के साथ चित्रित करना शुरू किया। ईश्वर के प्रकाश के प्रतीक रूप इन प्रभामंडलों को उन्होंने ईसा और वर्जिन मेरी के यूरोपीय चित्रों में देखा था।

5.2 सुलह-ए-कुल : एकीकरण का एक स्रोत

मुग़ल इतिवृत्त साम्राज्य को हिंदुओं, जैनों, ज़रतुश्तियों और मुसलमानों जैसे अनेक भिन्न-भिन्न नृजातीय और धार्मिक समुदायों को समाविष्ट किए हुए साम्राज्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। सभी तरह की शांति और स्थायित्व के स्रोत रूप में बादशाह सभी धार्मिक और नृजातीय समूहों से ऊपर होता था, इनके बीच मध्यस्थता करता था, तथा यह सुनिश्चित करता था कि न्याय और शांति बनी रहे। अबुल फज़्ल सुलह-ए-कुल (पूर्ण शांति) के आदर्श को प्रबुद्ध शासन की आधारशिला बताता है। *सुलह-ए-कुल* में यूँ तो सभी धर्मों और मतों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता थी किंतु उसकी एक शर्त थी कि वे राज्य-सत्ता को क्षति नहीं पहुँचाएँगे अथवा आपस में नहीं लड़ेंगे।

सुलह-ए-कुल का आदर्श राज्य नीतियों के ज़रिए लागू किया गया। मुग़लों के अधीन अभिजात-वर्ग मिश्रित किस्म का था—अर्थात उसमें ईरानी, तूरानी, अफ़गानी, राजपूत, दक्खनी सभी शामिल थे। इन सबको दिए गए पद और पुरस्कार पूरी तरह से राजा के प्रति उनकी सेवा और

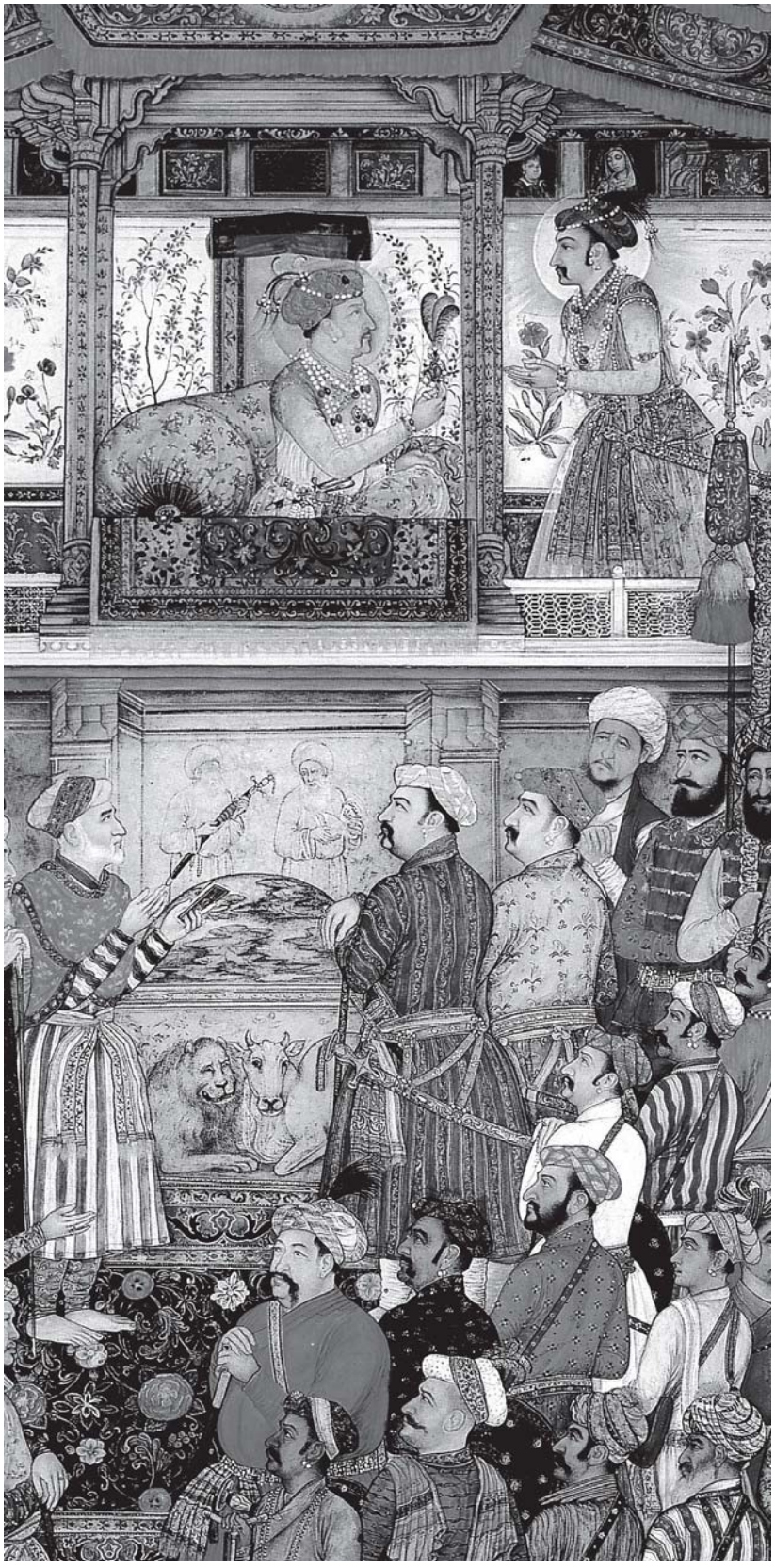

निष्ठा पर आधारित थे। इसके अलावा, अकबर ने 1563 में तीर्थयात्रा कर तथा 1564 में जज़िया को समाप्त कर दिया क्योंकि यह दोनों कर धार्मिक पक्षपात पर आधारित थे। साम्राज्य के अधिकारियों को प्रशासन में *सुलह-ए-कुल* के नियम का अनुपालन करने के लिए निर्देश दे दिए गए।

सभी मुग़ल बादशाहों ने उपासना-स्थलों के निर्माण व रख-रखाव के लिए अनुदान दिए। यहाँ तक कि युद्ध के दौरान जब मंदिरों को नष्ट कर दिया जाता था तो बाद में उनकी मरम्मत के लिए अनुदान जारी किए जाते थे। ऐसा हमें शाहजहाँ और औरंगज़ेब के शासन में पता चलता है, हालाँकि औरंगज़ेब के शासनकाल में गैर-मुसलमान प्रजा पर जज़िया फिर से लगा दिया गया।

5.3 सामाजिक अनुबंध के रूप में न्यायपूर्ण प्रभुसत्ता

अबुल फज़्ल ने प्रभुसत्ता को एक सामाजिक अनुबंध के रूप में परिभाषित किया है। वह कहता है कि बादशाह अपनी प्रजा के चार सत्त्वों की रक्षा करता है- जीवन (*जन*), धन (*माल*), सम्मान (*नामस*) और विश्वास (*दीन*) और इसके बदले में वह आज्ञापालन तथा संसाधनों में हिस्से की माँग करता है। केवल न्यायपूर्ण संप्रभु ही शक्ति और दैवीय मार्गदर्शन के साथ इस अनुबंध का सम्मान कर पाते थे।

चित्र 9.6
बादशाहनामा से एक दृश्य
कलाकार पयाग द्वारा लगभग 1640 में चित्रित
इस चित्र में जहाँगीर शहज़ादे खुर्रम को पगड़ी में लगाई जाने वाली मणि दे रहा है।

चित्र 9.7

अबुल हसन नामक एक कलाकार द्वारा बनाए गए चित्र में दरिद्रता की आकृति को मारते हुए जहाँगीर। कलाकार ने यहाँ लक्ष्य को गहरे बादल के आवरण में दिखाकर यह बताने की चेष्टा की है कि यह कोई वास्तविक व्यक्ति नहीं बल्कि एक अमूर्त लक्षण को प्रतीक के रूप में दिखाता एक मानवीय रूप है। कला और साहित्य में मानवीकरण के इस ढंग को रूपक-कथा कहा जाता है। न्याय की ज़ंजीर को स्वर्ग से उतरते हुए दिखाया गया है।

जहाँगीर ने अपने संस्मरणों में न्याय की ज़ंजीर को इस प्रकार वर्णित किया है:

> राज्यारोहण के बाद मैंने जो पहला आदेश दिया वह न्याय की जंज़ीर को लगाने का था ताकि न्याय के प्रशासन में संलग्न लोगों से यदि देर हो जाए अथवा वे न्याय चाहने वाले लोगों के विषय में मिथ्याचार का व्यवहार करें तो उत्पीड़ित व्यक्ति इस ज़ंजीर के पास आ सके और इसे हिला सके और उसकी ओर ध्यान आकर्षित हो सके। इस ज़ंजीर को शुद्ध सोने से बनाया गया था। यह 30 गज़ लम्बी थी तथा इसमें 60 घंटियाँ लगी हुई थीं।

➲ इस चित्र के प्रतीकों की पहचान कर उनकी व्याख्या कीजिए और इस चित्र का सार प्रस्तुत कीजिए।

न्याय के विचार के दृश्य रूप में निरूपण हेतु अनेक प्रतीकों की रचना की गई। न्याय के विचार को मुग़ल राजतंत्र में सर्वोत्तम सद्गुण माना गया। कलाकारों द्वारा प्रयुक्त सर्वाधिक पसंदीदा प्रतीकों में से एक था एक दूसरे के साथ चिपटकर शांतिपूर्वक बैठे हुए शेर और बकरी (या फिर गाय)। इसका उद्देश्य राज्य को एक ऐसे क्षेत्र के रूप में दिखाना था जहाँ दुर्बल तथा सबल सभी परस्पर सद्भाव से रह सकते थे। सचित्र *बादशाहनामा* के दरबारी दृश्यों में ऐसे प्रतीक का अंकन बादशाह के सिंहासन के ठीक नीचे एक आले में हुआ है (चित्र 9.6 देखिए)।

➲ चर्चा कीजिए...

मुग़ल साम्राज्य में न्याय को राजतंत्र का इतना महत्त्वपूर्ण सद्गुण क्यों माना जाता था?

6 राजधानियाँ और दरबार

6.1 राजधानी नगर

मुग़ल साम्राज्य का हृदय-स्थल उसका राजधानी नगर था, जहाँ दरबार लगता था। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के दौरान मुग़लों की राजधानियाँ बड़ी तेज़ी से स्थानांतरित होने लगीं। हालाँकि बाबर ने लोदियों की राजधानी आगरा पर अधिकार कर लिया था तथापि उसके शासन के चार वर्षों के दौरान राजसी दरबार भिन्न-भिन्न स्थान पर लगाए जाते रहे। 1560 के दशक में अकबर ने आगरा के किले का निर्माण करवाया। इसे आसपास के क्षेत्रों की खदानों से लाए गए लाल बलुआ पत्थर से बनाया गया था।

1570 के दशक में उसने फतेहपुर सीकरी में एक नयी राजधानी बनाने का निर्णय लिया। इस निर्णय का एक कारण यह हो सकता है कि सीकरी अजमेर को जाने वाली सीधी सड़क पर स्थित था, जहाँ शेख मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह उस समय तक एक महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल बन चुकी थी। मुग़ल बादशाहों के चिश्ती सिलसिले के सूफ़ियों के साथ घनिष्ठ संबंध बने। अकबर ने सीकरी में जुम्मा मस्जिद के बगल में ही शेख सलीम चिश्ती के लिए सफेद संगमरमर का एक मकबरा बनाने का आदेश दिया। विशाल मेहराबी प्रवेशद्वार (बुलंद दरवाज़ा) के निर्माण का उद्देश्य वहाँ आने वाले लोगों को गुजरात में मुग़ल विजय की याद दिलाना था। 1585 में उत्तर-पश्चिम को और अधिक नियंत्रण में लाने के लिए राजधानी को लाहौर स्थानांतरित कर दिया गया और इस तरह तेरह वर्षों तक अकबर ने इस सीमा पर गहरी चौकसी बनाए रखी।

चित्र 9.8
बुलंद दरवाज़ा, फतहपुर सीकरी

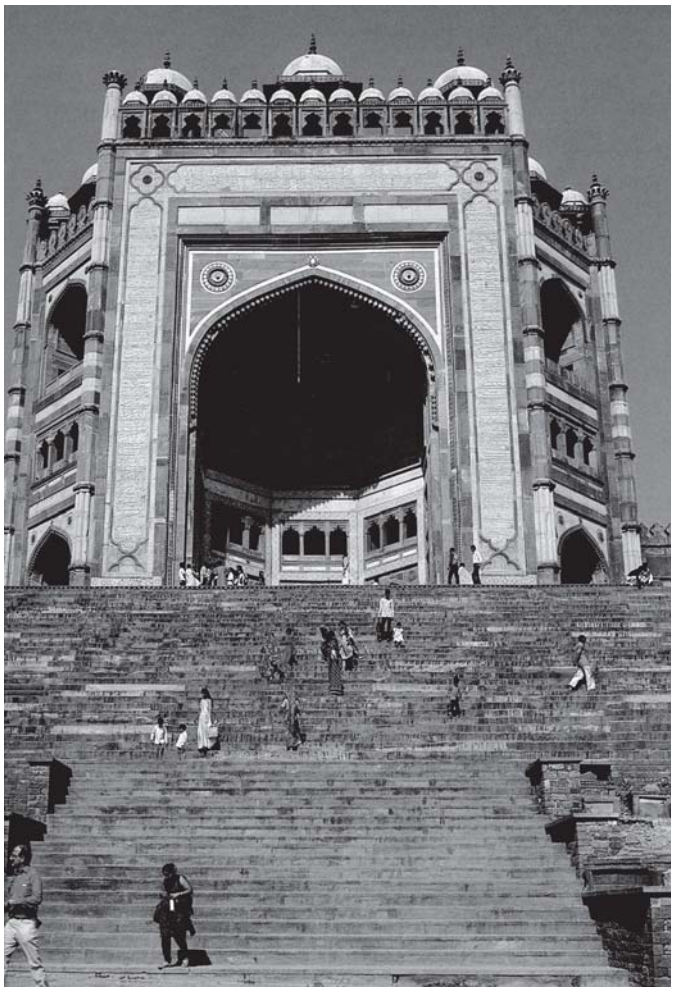

शाहजहाँ ने विवेकपूर्ण राजकोषीय नीतियों को आगे बढ़ाया तथा इमारत निर्माण के अपने शौक को पूरा करने के लिए पर्याप्त धन इकट्ठा कर लिया। जैसाकि आपने पहले के शासकों के संदर्भ में देखा, राजतंत्रीय संस्कृतियों में इमारत निर्माण-कार्य राजवंशीय सत्ता, धन तथा प्रतिष्ठा का सर्वाधिक स्पष्ट और ठोस प्रतीक था। मुसलमान शासकों के संदर्भ में इसे धर्मनिष्ठा के एक कार्य के रूप में भी देखा जाता था।

1648 में दरबार, सेना व राजसी ख़ानदान आगरा से नयी निर्मित शाही राजधानी शाहजहाँनाबाद चले गए। दिल्ली के प्राचीन रिहायशी नगर में शाहजहाँनाबाद एक नयी और शाही आबादी थी। यहाँ लाल किला,

जामा मस्जिद, चाँदनी चौक के बाज़ार की वृक्ष वीथि और अभिजात-वर्ग के बड़े-बड़े घर थे। शाहजहाँ का यह नया शहर विशाल एवं भव्य राजतंत्र की ज़्यादा औपचारिक कल्पना को व्यक्त करता था।

6.2 मुग़ल दरबार

शासक पर केंद्रित दरबार की भौतिक व्यवस्था ने शासक के अस्तित्व को समाज के हृदय के रूप में प्रदर्शित किया। इसका केंद्रबिंदु इस प्रकार राजसिंहासन अथवा तख़्त था जिसने संप्रभु के कार्यों को भौतिक स्वरूप प्रदान किया था। इसे एक ऐसे स्तंभ के रूप में देखा जाता था जिस पर धरती टिकी हुई थी। सहस्राब्दियों से भारत में राजतंत्र का प्रतीक रही छतरी, शासक की कांति को सूर्य की कांति से पृथक करने वाली मानी जाती थी।

इतिवृत्तों ने मुग़ल संभ्रांत वर्गों के बीच हैसियत को निर्धारित करने वाले नियमों को बड़ी सुस्पष्टता से सामने रखा है। दरबार में किसी की हैसियत इस बात से निर्धारित होती थी कि वह शासक के कितना पास और दूर बैठा है। किसी भी दरबारी को शासक द्वारा दिया गया स्थान बादशाह की नज़र में उसकी महत्ता का प्रतीक था। एक बार जब बादशाह सिंहासन पर बैठ जाता था तो किसी को भी अपनी जगह से कहीं और जाने की अनुमति नहीं थी और न ही कोई अनुमति के बिना दरबार से बाहर जा

स्रोत 2

दरबार-ए-अकबरी

अबुल फज़्ल अकबर के दरबार का बड़ा सजीव विवरण देते हुए कहता है :

> जब भी महामहिम (अकबर) दरबार लगाते हैं तो एक विशाल ढोल पीटा जाता है और साथ-साथ अल्लाह का गुणगान होता है। इस तरह सभी वर्गों के लोगों को सूचना मिल जाती है। महामहिम के पुत्र, पौत्र, दरबारी और वे सभी जिन्हें दरबार में प्रवेश की अनुमति थी, हाज़िर होते हैं और कोर्निश कर अपने स्थान पर खड़े रहते हैं। ख्यातिप्राप्त विद्वज्जन तथा विशिष्ट कौशलों में निपुण व्यक्ति आदर व्यक्त करते हैं; तथा न्याय अधिकारी अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं। महामहिम अपनी सामान्य अंतर्दृष्टि के आधार पर आदेश देते हैं और सभी मामलों को संतोषजनक ढंग से निपटाते हैं। इस पूरे समय के दौरान विभिन्न देशों से आए तलवारिये व पहलवान अपने को तैयार रखते हैं और महिला तथा पुरुष गायक अपनी बारी की प्रतीक्षा में रहते हैं। चतुर बाज़ीगर और मज़ाकिया कलाबाज़ भी अपने कौशल और दक्षता का प्रदर्शन करने को उत्सुक हैं।

➲ दरबार में होने वाली मुख्य गतिविधियों का वर्णन कीजिए।

कोर्निश औपचारिक अभिवादन का एक ऐसा तरीका था जिसमें दरबारी दाएँ हाथ की तलहथी को ललाट पर रखकर आगे की ओर सिर झुकाते थे। यह इस बात का प्रतीक था कि कोर्निश करने वाला व्यक्ति अपने इंद्रिय और मन के स्थल को हाथ लगाते हुए झुककर विनम्रता के साथ शाही दरबार में अपने को प्रस्तुत कर रहा है।

सकता था। दरबारी समाज में सामाजिक नियंत्रण का व्यवहार दरबार में मान्य संबोधन, शिष्टाचार तथा बोलने के ध्यानपूर्वक निर्धारित किए गए नियमों द्वारा होता था। शिष्टाचार का ज़रा सा भी उल्लंघन होने पर ध्यान दिया जाता था और उस व्यक्ति को तुरंत ही दंडित किया जाता था।

शासक को किए गए अभिवादन के तरीके से पदानुक्रम में उस व्यक्ति की हैसियत का पता चलता था जैसे जिस व्यक्ति के सामने ज़्यादा झुककर अभिवादन किया जाता था, उस व्यक्ति की हैसियत ज़्यादा ऊँची मानी जाती थी। आत्मनिवेदन का उच्चतम रूप *सिजदा* या दंडवत लेटना था। शाहजहाँ के शासनकाल में इन तरीकों के स्थान पर चार *तसलीम* तथा *जमींबोसी* (ज़मीन चूमना) के तरीके अपनाए गए।

मुग़ल दरबार में राजनयिक दूतों संबंधी नयाचारों में भी ऐसी ही सुस्पष्टता थी। मुग़ल बादशाह के समक्ष प्रस्तुत होने वाले राजदूत से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अभिवादन के मान्य रूपों में से एक—या तो बहुत झुककर अथवा ज़मीन को चूमकर अथवा फ़ारसी रिवाज के मुताबिक छाती के सामने हाथ बाँधकर—तरीके से अभिवादन करेगा। जेम्स-I के अंग्रेज़ दूत टॉमस रो ने यूरोपीय रिवाज के अनुसार जहाँगीर के सामने केवल झुककर अभिवादन किया और इसके बाद बैठने के लिए कुर्सी का आग्रह कर पुनः दरबार को अचंभित कर दिया।

बादशाह अपने दिन की शुरुआत सूर्योदय के समय कुछ व्यक्तिगत धार्मिक प्रार्थनाओं से करता था और इसके बाद वह पूर्व की ओर मुँह किए एक छोटे छज्जे अर्थात झरोखे में आता था। इसके नीचे लोगों की भीड़ (सैनिक, व्यापारी, शिल्पकार, किसान, बीमार बच्चों के साथ औरतें) बादशाह की एक झलक पाने के लिए इंतज़ार करती थी। अकबर द्वारा शुरू की गई झरोखा दर्शन की प्रथा का उद्देश्य जन विश्वास के रूप में शाही सत्ता की स्वीकृति को और विस्तार देना था।

अभिवादन का *चार तसलीम* तरीका दाएँ हाथ को ज़मीन पर रखने से शुरू होता है। इसमें तलहथी ऊपर की ओर होती है। इसके बाद हाथ को धीरे-धीरे उठाते हुए व्यक्ति खड़ा होता है तथा तलहथी को सिर के ऊपर रखता है। ऐसी तसलीम चार बार की जाती है। तसलीम का शाब्दिक अर्थ आत्मनिवेदन है।

शब-ए-बारात हिजरी कैलेंडर के आठवें महीने अर्थात चौदहवें सावन को पड़ने वाली पूर्णचंद्र रात्रि है। भारतीय उपमहाद्वीप में प्रार्थनाओं और आतिशबाज़ियों के खेल द्वारा इस दिन को मनाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि इस रात मुसलमानों के लिए आगे आने वाले वर्ष का भाग्य निर्धारित होता है और पाप माफ़ कर दिए जाते हैं।

रत्नजड़ित सिंहासन

आगरा महल के सार्वजनिक सभा भवन में रखे शाहजहाँ के रत्नजड़ित सिंहासन (*तख़्त-ए-मुरस्सा*) के बारे में *बादशाहनामा* में लिखा है:

सिंहासन की भव्य संरचना में एक छतरी है जो द्वादशकोणीय स्तंभों पर टिकी हुई है। इसकी ऊँचाई सीढ़ियों से गुंबद तक पाँच क्यूबिट (लगभग 10 फुट) है। अपने राज्यारोहण के समय महामहिम ने यह आदेश दिया कि 86 लाख रुपए के रत्न तथा बहुमूल्य पत्थर और एक लाख तोला सोना जिसकी कीमत चौदह लाख रुपए है, से इसे सजाया जाना चाहिए। सिंहासन की साज-सज्जा में सात वर्ष लग गए। इसकी सजावट में प्रयुक्त हुए बहुमूल्य पत्थरों में रूबी था जिसकी कीमत एक लाख रुपए थी और जिसे शाह अब्बास सफ़ावी ने दिवंगत बादशाह जहाँगीर को भेजा था। इस रूबी पर महान बादशाह तिमूर साहिब-ए किरान, मिर्ज़ा शाहरूख, मिर्ज़ा उलुग बेग और शाह अब्बास के साथ-साथ अकबर, जहाँगीर और स्वयं महामहिम के नाम अंकित थे।

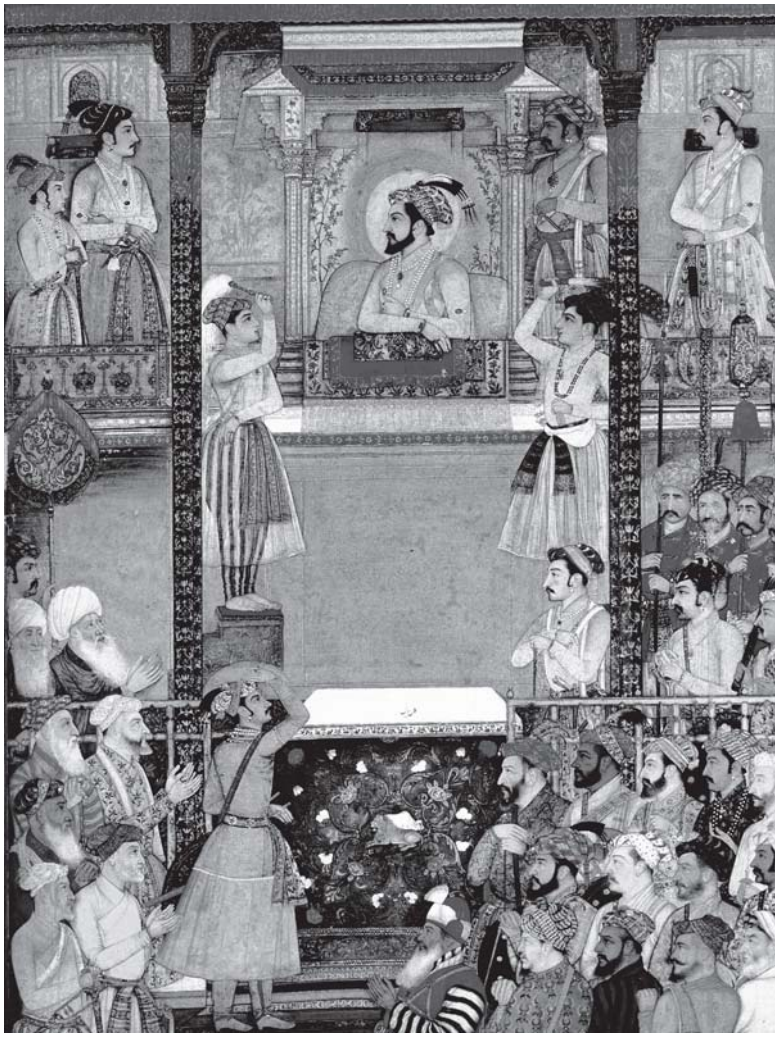

चित्र 9.9
आगरा में विवाह से पूर्व शहज़ादे औरंगज़ेब का सम्मान करते हुए शाहजहाँ। बादशाहनामा में पयाग द्वारा की गई चित्रकारी।

➲ बादशाह की पहचान कीजिए

औरंगज़ेब को एक पीला जामा (ऊपरी वस्त्र) तथा छोटे-छोटे बौरों वाले हरे जैकेट में दिखाया गया है। वह कहाँ है और पिता के प्रति उसकी भाव-भंगिमा से क्या पता चलता है? दरबारियों को कैसे दिखाया गया है? क्या आप बाईं ओर बड़ी पगड़ियों वाली आकृतियों का पता लगा सकते हैं? ये विद्वानों के चित्रण हैं।

झरोखे में एक घंटा बिताने के बाद बादशाह अपनी सरकार के प्राथमिक कार्यों के संचालन हेतु सार्वजनिक सभा भवन (*दीवान-ए आम*) में आता था। वहाँ राज्य के अधिकारी रिपोर्ट प्रस्तुत करते तथा निवेदन करते थे। दो घंटे बाद बादशाह *दीवान-ए-ख़ास* में निजी सभाएँ और गोपनीय मुद्दों पर चर्चा करता था। राज्य के वरिष्ठ मंत्री उसके सामने अपनी याचिकाएँ प्रस्तुत करते थे और कर अधिकारी हिसाब का ब्योरा देते थे। कभी-कभी बादशाह उच्च प्रतिष्ठित कलाकारों के कार्यों अथवा वास्तुकारों (*मिमार*) के द्वारा बनाए गए इमारतों के नक्शों को देखता था।

सिंहासनारोहण की वर्षगाँठ, ईद, शब-ए-बारात तथा होली जैसे कुछ विशिष्ट अवसरों पर दरबार का माहौल जीवंत हो उठता था। सजे हुए डिब्बों में रखी सुगंधित मोमबत्तियाँ और महल की दीवारों पर लटक रहे रंग-बिरंगे बंदनवार आने वालों पर आश्चर्यजनक प्रभाव छोड़ते थे। मुग़ल शासक वर्ष में तीन मुख्य त्यौहार मनाया करते थे : सूर्यवर्ष और चंद्रवर्ष के अनुसार शासक का जन्मदिन और वसंतागमन पर फ़ारसी नववर्ष

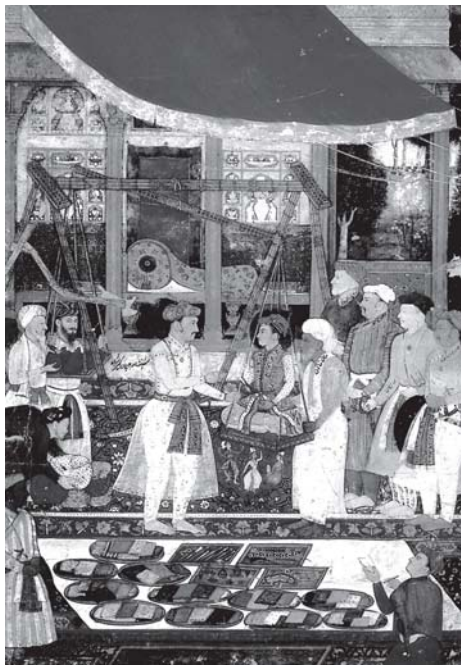

चित्र *9.10*
जश्न-ए-वज़्न अथवा तुलादान समारोह में शहज़ादे खुर्रम को बहुमूल्य धातुओं से तौला जाना (जहाँगीर के संस्मरणों से)

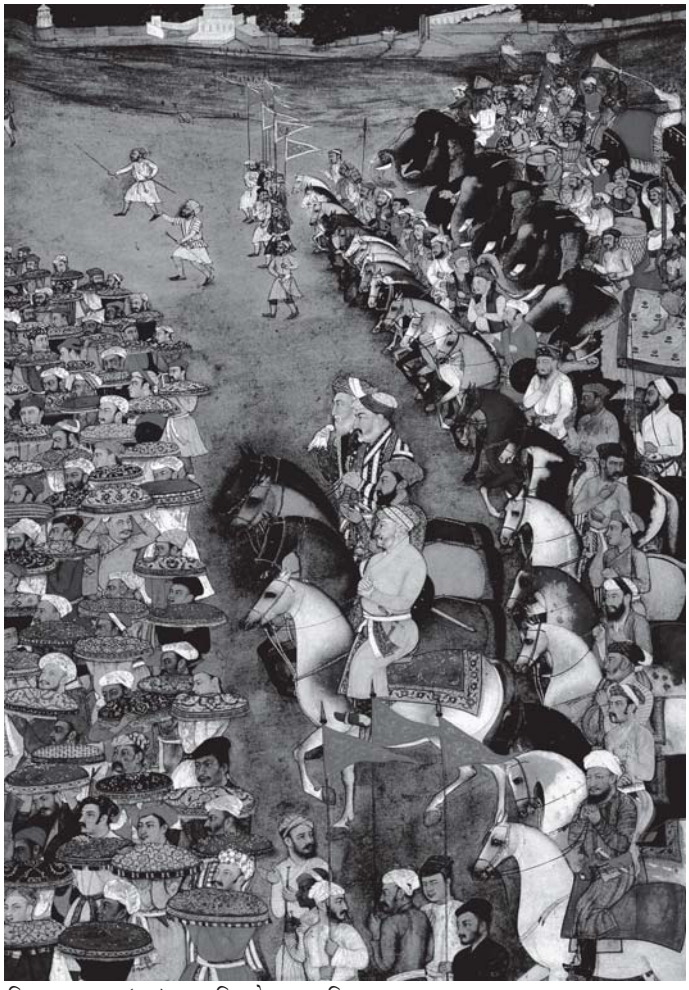

चित्र 9.11 (क) दाराशिकोह का विवाह

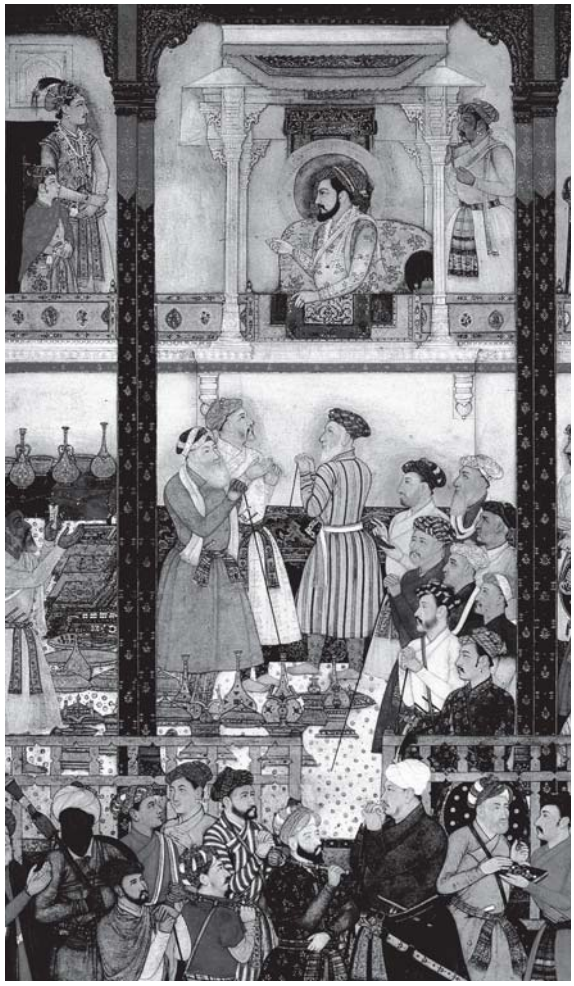

चित्र 9.11 (ख)

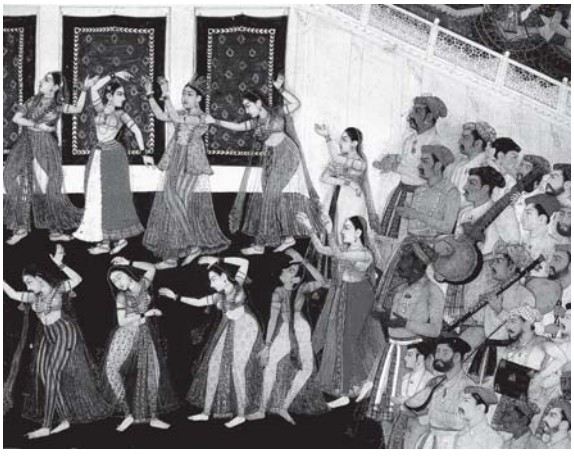

चित्र 9.11 (ग)

➲ चित्र में आप जो देख रहे हैं उसका वर्णन कीजिए।

शाही परिवारों में विवाहों का आयोजन काफ़ी खर्चीला होता था। 1633 में दाराशिकोह और नादिरा (राजकुमार परवेज़ की पुत्री) के विवाह की व्यवस्था राजकुमारी जहाँआरा और दिवंगत महारानी मुमताज़ महल की प्रमुख नौकरानी सती उन निसाखानुम द्वारा की गई। शादी के उपहारों के प्रदर्शन की व्यवस्था दीवान-ए-आम में की गई थी। बादशाह तथा हरम की स्त्रियाँ दोपहर में इसे देखने के लिए आईं तथा शाम के समय अभिजात यहाँ आए। दुलहन की माँ ने भी इसी तरह उसी विशाल कक्ष में उपहारों को सजाया था। शाहजहाँ इन्हें देखने के लिए वहाँ गया। हिनाबंदी (मेंहदी लगाना) की रस्म दीवान-ए-ख़ास में अदा की गई। दरबार में उपस्थित व्यक्तियों के बीच पान, इलायची तथा मेवे बाँटे गए। विवाह पर कुल 32 लाख रुपए खर्च हुए थे जिसमें 6 लाख रुपए शाही खज़ाने से, 16 लाख रुपए जहाँआरा (मुमताज़ महल द्वारा आरंभ में अलग से रखे गए रुपयों को मिलाते हुए) और शेष दुलहन की माँ द्वारा दिए गए थे। *बादशाहनामा* से लिए गए इन चित्रों में इस अवसर से जुड़ी कुछ गतिविधियों को दिखाया गया है।

'नौरोज़'। जन्मदिन पर शासक को विभिन्न वस्तुओं से तौला जाता था तथा बाद में ये वस्तुएँ दान में बाँट दी जाती थीं।

6.3 पदवियाँ, उपहार और भेंट

राज्याभिषेक के समय अथवा किसी शत्रु पर विजय के बाद मुग़ल बादशाह विशाल पदवियाँ ग्रहण करते थे। उद्घोषकों (*नक़ीब*) द्वारा जब इन गुंजायमान और लयबद्ध पदवियों की घोषणा की जाती थी तो वे सभा में विस्मय का माहौल बना देती थीं। मुग़ल सिक्कों पर राजसी नयाचार के साथ शासनरत बादशाह की पूरी पदवी होती थी।

योग्य व्यक्तियों को पदवियाँ देना मुग़ल राज्यतंत्र का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष था। दरबारी पदानुक्रम में किसी व्यक्ति की उन्नति को उसके द्वारा धारण की जानेवाली पदवियों से जाना जा सकता था। उच्चतम मंत्रियों में से एक को दी जाने वाली आसफ खाँ की पदवी का उद्भव पैगम्बर शासक सुलेमान के कल्पित मंत्री से हुआ था। औरगज़ेब ने अपने दो उच्च पदस्थ अभिजातों जयसिंह और जसवंत सिंह को मिर्ज़ा राजा की पदवी प्रदान की। पदवियाँ या तो अर्जित की जा सकती थीं अथवा इन्हें पाने के लिए पैसे दिए जा सकते थे। मीर ख़ान ने अपने नाम में अलिफ़ अर्थात 'अ' अक्षर लगाकर उसे अमीर ख़ान करने के लिए औरंगज़ेब को एक लाख रुपए देने का प्रस्ताव किया।

अन्य पुरस्कारों में सम्मान का जामा (*ख़िल्लत*) भी शामिल था जिसे पहले कभी न कभी बादशाह द्वारा पहना गया हुआ होता था। इसलिए यह समझा जाता था कि वह बादशाह के आशीर्वाद का प्रतीक है। *सरप्पा* ('सर से पाँव तक') एक अन्य उपहार था। इस उपहार के तीन हिस्से हुआ करते थे : जामा, पगड़ी और पटका। बादशाह द्वारा अकसर रत्नजड़ित आभूषण भी उपहार के रूप में दिए जाते थे। बहुत ख़ास परिस्थितियों में बादशाह कमल की मंजरियों वाला रत्नजड़ित गहनों का सेट (*पद्म मुरस्सा*) भी उपहार में प्रदान करता था।

एक दरबारी बादशाह के पास कभी खाली हाथ नहीं जाता था। वह या तो *नज़्र* के रूप में थोड़ा धन या पेशकश के रूप में मोटी रकम बादशाह को पेश करता था। राजनयिक संबंधों में उपहारों को सम्मान और आदर का प्रतीक माना जाता था। राजदूत प्रतिद्वंद्वी राजनीतिक शक्तियों के बीच संधि और संबंधों के ज़रिए समझौता करवाने के महत्त्वपूर्ण कार्य का संपादन करते थे। ऐसी परिस्थितियों में उपहारों की महत्त्वपूर्ण प्रतीकात्मक भूमिका होती थी। टॉमस रो को इस बात से बहुत निराशा हुई थी कि उसने आसफ ख़ाँ को जो अँगूठी भेंट की थी, वह उसे केवल इसलिए वापस कर दी गई कि वह क्यों मात्र चार सौ रुपए मूल्य की थी।

चित्र 9.12
पगड़ी रखने के काम आने वाला एक मुग़लकालीन डिब्बा

➲ चर्चा कीजिए...

क्या मुग़लों से जुड़े कुछ रिवाजों और व्यवहारों का अनुपालन आज के राजनेता करते हैं?

7. शाही परिवार

'हरम' शब्द का प्रयोग प्रायः मुग़लों की घरेलू दुनिया की ओर संकेत करने के लिए होता है। यह शब्द फ़ारसी से निकला है जिसका तात्पर्य है 'पवित्र स्थान'। मुग़ल परिवार में बादशाह की पत्नियाँ और उपपत्नियाँ, उसके नज़दीकी और दूर के रिश्तेदार (माता, सौतेली व उपमाताएँ, बहन, पुत्री, बहू, चाची-मौसी, बच्चे आदि) व महिला परिचारिकाएँ तथा गुलाम होते थे। बहुविवाह प्रथा भारतीय उपमहाद्वीप में विशेषकर शासक वर्गों में व्यापक रूप से प्रचलित थी।

राजपूत कुलों एवं मुग़लों, दोनों के लिए विवाह राजनीतिक संबंध बनाने व मैत्री-संबंध स्थापित करने का एक तरीका थे। विवाह में पुत्री को भेंटस्वरूप दिए जाने के साथ प्रायः एक क्षेत्र भी उपहार में दे दिया जाता था। इससे विभिन्न शासक वर्गों के बीच पदानुक्रमिक संबंधों की निरंतरता सुनिश्चित हो जाती थी। इस तरह के विवाह और उनके फलस्वरूप विकसित संबंधों के कारण ही मुग़ल बंधुता के एक व्यापक तंत्र का निर्माण कर सके। इससे वे महत्त्वपूर्ण वर्गों से जुड़े और उन्हें एक बृहद साम्राज्य को इकट्ठा रखने में मदद मिली।

मुग़ल परिवार में शाही परिवारों से आने वाली स्त्रियों (*बेगमों*) और अन्य स्त्रियों (*अगहा*), जिनका जन्म कुलीन परिवार में नहीं हुआ था, में अंतर रखा जाता था। दहेज (*मेहर*) के रूप में अच्छा-ख़ासा नकद और बहुमूल्य वस्तुएँ लेने के बाद विवाह करके आई बेगमों को अपने पतियों से स्वाभाविक रूप से *अगहाओं* की तुलना में अधिक ऊँचा दर्जा और सम्मान मिलता था। राजतंत्र से जुड़े महिलाओं के पदानुक्रम में उपत्नियों (*अगाचा*) की स्थिति सबसे निम्न थी। इन सभी को नकद मासिक भत्ता तथा अपने-अपने दर्जे के हिसाब से उपहार मिलते थे। वंश आधारित पारिवारिक ढाँचा पूरी तरह स्थायी नहीं था। यदि पति की इच्छा हो और उसके पास पहले से ही चार पत्नियाँ न हों तो अगहा और अगाचा भी बेगम की स्थिति पा सकती थीं। प्रेम तथा मातृत्व ऐसी स्त्रियों को विधिसम्मत विवाहित पत्नियों के दर्जे तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे।

पत्नियों के अतिरिक्त मुग़ल परिवार में अनेक महिला तथा पुरुष गुलाम होते थे। वे साधारण से साधारण कार्य से लेकर कौशल, निपुणता तथा बुद्धिमता के अलग-अलग कार्यों का संपादन करते थे। गुलाम हिजड़े (*ख़्वाजासर*) परिवार के अंदर और बाहर के जीवन में रक्षक, नौकर और व्यापार में दिलचस्पी लेने वाली महिलाओं के एजेंट होते थे।

नूरजहाँ के बाद मुग़ल रानियों और राजकुमारियों ने महत्त्वपूर्ण वित्तीय स्रोतों पर नियंत्रण रखना शुरू कर दिया। शाहजहाँ की पुत्रियों, जहाँआरा

चित्र 9.13
फतेहपुर सीकरी में आंतरिक कमरों का एक हिस्सा।

और रोशनआरा, को ऊँचे शाही मनसबदारों के समान वार्षिक आय होती थी। इसके अतिरिक्त जहाँआरा को सूरत के बंदरगाह नगर जो कि विदेशी व्यापार का एक लाभप्रद केंद्र था, से राजस्व प्राप्त होता था।

संसाधनों पर नियंत्रण ने मुग़ल परिवार की महत्त्वपूर्ण स्त्रियों को इमारतों व बागों के निर्माण का अधिकार दे दिया। जहाँआरा ने शाहजहाँ की नयी राजधानी शाहजहाँनाबाद (दिल्ली) की कई वास्तुकलात्मक परियोजनाओं में हिस्सा लिया। इनमें से आँगन व बाग के साथ एक दोमंजिली भव्य कारवाँसराय थी। शाहजहाँनाबाद के हृदय स्थल चाँदनी चौक की रूपरेखा जहाँआरा द्वारा बनाई गई थी।

गुलबदन बेगम द्वारा लिखी गई एक रोचक पुस्तक *हुमायूँनामा* से हमें मुग़लों की घरेलू दुनिया की एक झलक मिलती है। गुलबदन बेगम बाबर की पुत्री, हूमायूँ की बहन तथा अकबर की चाची थी। गुलबदन स्वयं तुर्की तथा फ़ारसी में धाराप्रवाह लिख सकती थी। जब अकबर ने अबुल फज़्ल को अपने शासन का इतिहास लिखने के लिए नियुक्त किया तो उसने अपनी चाची से बाबर और हुमायूँ के समय के अपने पहले संस्मरणों को लिपिबद्ध करने का आग्रह किया ताकि अबुल फज़्ल उनका लाभ उठाकर अपनी कृति को पूरा कर सके।

गुलबदन ने जो लिखा वह मुग़ल बादशाहों की प्रशस्ति नहीं थी बल्कि उसने राजाओं और राजकुमारों के बीच चलने वाले संघर्षों और तनावों के साथ ही इनमें से कुछ संघर्षों को सुलझाने में परिवार की उम्रदराज़ स्त्रियों की महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं के बारे में विस्तार से लिखा।

8. शाही नौकरशाही

8.1 भर्ती की प्रक्रिया तथा पद

मुग़ल इतिहास विशेषकर *अकबरनामा* ने साम्राज्य की ऐसी कल्पना दी जिसमें क्रिया और सत्ता लगभग पूरी तरह से एकमात्र बादशाह में निहित

➲ इस चित्र के प्रत्येक हिस्से में जिन गतिविधियों का चित्रण कलाकार ने किया है उसका वर्णन कीजिए। अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा संपादित किए जा रहे कार्यों के आधार पर आप इस दृश्य के शाही प्रतिष्ठान के सदस्यों को पहचानने की कोशिश कीजिए।

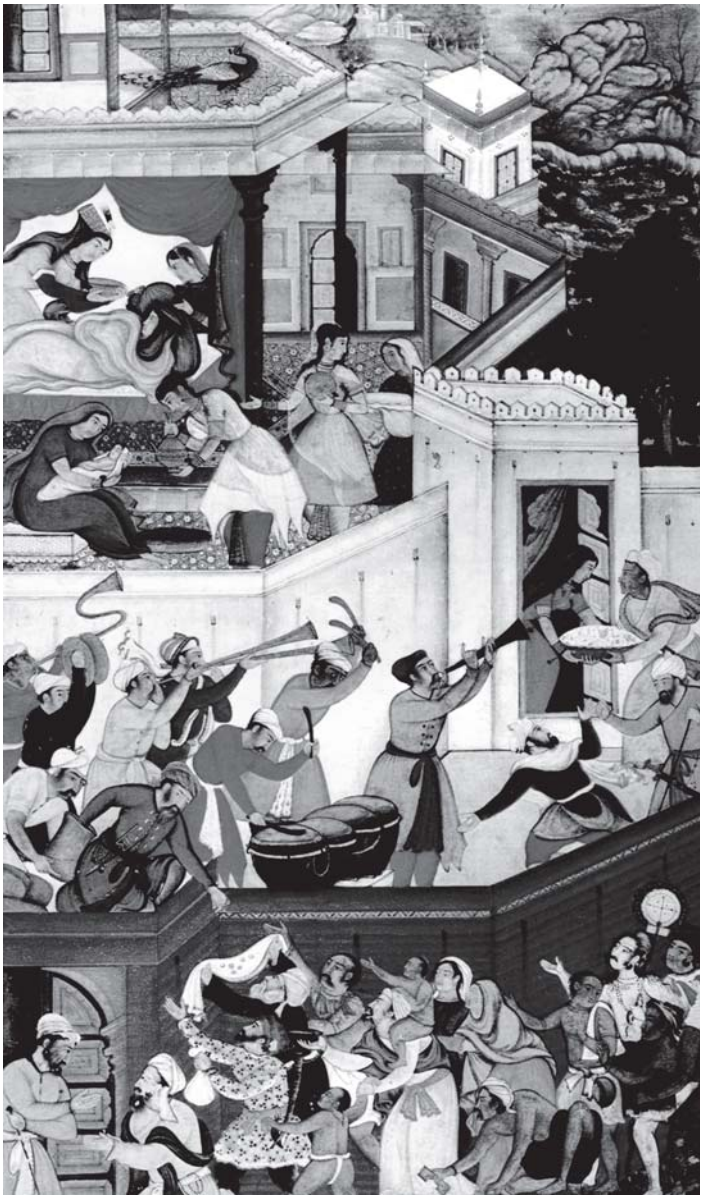

चित्र 9.14
फतेहपुर सीकरी में शहज़ादे सलीम का जन्म, अकबरनामा, *रामदास द्वारा चित्रित*

होती है जबकि शेष राज्य को बादशाह के आदेशों का अनुपालन करते हुए प्रदर्शित किया गया है। किंतु मुग़ल राज्य-तंत्र के बारे में इन इतिहासों से प्राप्त समृद्ध जानकारी को हम ध्यान से देखें तो हम उन तरीकों को समझ सकते हैं जिनसे कई भिन्न-भिन्न प्रकार की संस्थाओं पर आधारित शाही संगठन प्रभावशाली ढंग से कार्य करने में सक्षम हुआ। मुग़ल राज्य का एक महत्त्वपूर्ण स्तंभ इसके अधिकारियों का दल था जिसे इतिहासकार सामूहिक रूप से अभिजात-वर्ग भी कहते हैं।

अभिजात-वर्ग में भर्ती विभिन्न नृ-जातीय तथा धार्मिक समूहों से होती थी। इससे यह सुनिश्चित हो जाता था कि कोई भी दल इतना बड़ा न हो कि वह राज्य की सत्ता को चुनौती दे सके। मुग़लों के अधिकारी-वर्ग को गुलदस्ते के रूप में वर्णित किया जाता था जो वफ़ादारी से बादशाह के साथ जुड़े हुए थे। साम्राज्य के निर्माण के आरंभिक चरण से ही तूरानी और ईरानी अभिजात अकबर की शाही सेवा में उपस्थित थे। इनमें से कुछ हुमायूँ के साथ भारत चले आए थे। कुछ अन्य बाद में मुग़ल दरबार में आए थे।

1560 से आगे भारतीय मूल के दो शासकीय समूहों—राजपूतों व भारतीय मुसलमानों (शेखज़ादाओं) ने शाही सेवा में प्रवेश किया। इनमें नियुक्त होने वाला प्रथम व्यक्ति एक राजपूत मुखिया अंबेर का राजा भारमल कछवाहा था जिसकी पुत्री से अकबर का विवाह हुआ था। शिक्षा

मुग़ल अभिजात-वर्ग

चंद्रभान ब्राह्मण ने शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान लिखी अपनी पुस्तक *चार चमन* (चार बाग़) में मुग़ल अभिजात-वर्ग का इस प्रकार वर्णन किया है:

> विभिन्न जातियों (अरब, ईरानी, तुर्की, ताजिक, कुर्द, ततार, रूसी, अबिसीनियाई इत्यादि) और देशों (तुर्की, मिस्र, सीरिया, इराक, अरब, ईरान, खुरासान, तूरान) के लोगों, वस्तुतः सभी समाजों से विभिन्न समूहों और श्रेणियों के लोगों को शाही दरबार में आश्रय प्राप्त हुआ। भारत से विभिन्न समूहों, ज्ञान और शिल्प में निपुण व्यक्तियों के साथ-साथ योद्धाओं, उदाहरण के लिए बुखारी और भक्करी, विशुद्ध वंशों के सैय्यद, अभिजात वंश के शेखज़ादा, लोधी, रोहिल्ला, युसुफज़ई जैसी अफ़गान जनजातियों, राणा, राजा, राव व रायाँ अर्थात, राठौर, सिसोदिया, कछवाहा, हाड़, गौड़, चौहान, पँवार, भादुरिया, सोलंकी, बुंदेला, शेखावत नाम से संबोधित की जाने वाली राजपूत जातियों व घक्कर, खोकर, बलूची और अन्य सभी भारतीय जनजातियाँ जो तलवार चलाती थीं व 100 से 7000 ज़ात के मनसब, घास के मैदानों और पर्वतीय भागों से भू-स्वामी, कर्नाटक, बंगाल, असम, उदयपुर, श्रीनगर, कुमायूँ, तिब्बत व किश्तवाड़ इत्यादि क्षेत्रों से सभी जनजातियों और समूहों को शाही दरबार को चूमने (में आने) अथवा रोज़गार पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

और लेखाशास्त्र की ओर झुकाव वाले हिंदू जातियों के सदस्यों को भी पदोन्नत किया जाता था। इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण अकबर के वित्तमंत्री टोडरमल का है जो खत्री जाति का था।

जहाँगीर के शासन में ईरानियों को उच्च पद प्राप्त हुए। जहाँगीर की राजनीतिक रूप से प्रभावशाली रानी नूरजहाँ (1645) ईरानी थी। औरंगज़ेब ने राजपूतों को उच्च पदों पर नियुक्त किया। फिर भी शासन में अधिकारियों के समूह में मराठे अच्छी खासी संख्या में थे।

सभी सरकारी अधिकारियों के दर्जे और पदों में दो तरह के संख्या-विषयक ओहदे होते थे : 'ज़ात' शाही पदानुक्रम में अधिकारी (*मनसबदार*) के पद और वेतन का सूचक था और 'सवार' यह सूचित करता था कि उससे सेवा में कितने घुड़सवार रखना अपेक्षित था। सत्रहवीं शताब्दी में 1,000 या उससे ऊपर ज़ात वाले मनसबदार अभिजात (*उमरा* जो कि *अमीर* का बहुवचन है) कहे गए।

सैन्य अभियानों में ये अभिजात अपनी सेनाओं के साथ भाग लेते थे तथा प्रांतों में वे साम्राज्य के अधिकारियों के रूप में भी कार्य करते थे। प्रत्येक सैन्य कमांडर घुड़सवारों को भर्ती करता था, उन्हें हथियारों आदि से लैस करता था और उन्हें प्रशिक्षण देता था। घुड़सवारी फ़ौज मुग़ल फ़ौज का अपरिहार्य अंग थी। घुड़सवार सिपाही शाही निशान से पार्श्वभाग में दागे गए उत्कृष्ट श्रेणी के घोड़े रखते थे। निम्नतम ओहदों के अधिकारियों को छोड़कर बादशाह स्वयं सभी अधिकारियों के ओहदों, पदवियों और अधिकारिक नियुक्तियों के बदलाव का पुनरीक्षण करता था। मनसब प्रथा की शुरुआत करने वाले अकबर ने अपने अभिजात-वर्ग के कुछ लोगों को शिष्य (*मुरीद*) की तरह मानते हुए उनके साथ आध्यात्मिक रिश्ते भी कायम किए।

अभिजात-वर्ग के सदस्यों के लिए शाही सेवा शक्ति, धन तथा उच्चतम प्रतिष्ठा प्राप्त करने का एक ज़रिया थी। सेवा में आने का इच्छुक व्यक्ति एक अभिजात के ज़रिए याचिका देता था जो बादशाह के सामने तजवीज़ प्रस्तुत करता था। अगर याचिकाकर्ता को सुयोग्य माना जाता था तो उसे मनसब प्रदान किया जाता था। मीरबख़्शी (उच्चतम वेतनदाता) खुले दरबार में बादशाह के दाएँ ओर खड़ा होता था तथा नियुक्ति और पदोन्नति के सभी उम्मीदवारों को प्रस्तुत करता था जबकि उसका कार्यालय उसकी मुहर व हस्ताक्षर के साथ-साथ बादशाह की मुहर व हस्ताक्षर वाले आदेश तैयार करता था। केंद्र में दो अन्य महत्त्वपूर्ण मंत्री थे : *दीवान-ए-आला* (वित्तमंत्री) और *सद्र-उस-सुदुर* (*मदद-ए-माश* अथवा अनुदान का मंत्री और स्थानीय न्यायाधीशों अथवा काज़ियों की नियुक्ति का प्रभारी)। ये तीनों मंत्री कभी-कभी इकट्ठे एक सलाहकार निकाय के रूप में काम करते थे लेकिन ये एक दूसरे से

स्रोत 3

दरबार में अभिजात

अकबर के दरबार में ठहरा हुआ जेसुइट पादरी फादर एंटोनियो मान्सेरेट उल्लेख करता है :

> सत्ता के बेधड़क उपयोग से उच्च अभिजातों को रोकने के लिए राजा उन्हें दरबार में बुलाता है और निरंकुश आदेश देता है जैसे कि वे उसके दास हों। इन आदेशों का पालन उन अभिजातों के उच्च ओहदे और हैसियत से मेल नहीं खाता था।

➲ फादर मान्सेरेट की टिप्पणी मुग़ल बादशाह व उनके अधिकारियों के बीच संबंध के बारे में क्या संकेत देती है?

तजवीज़ एक अभिजात द्वारा बादशाह के सामने प्रस्तुत की जाने वाली ऐसी याचिका थी जिसमें किसी उम्मीदवार को मनसबदार के रूप में नियुक्त करने की सिफ़ारिश की जाती थी।

स्वतंत्र होते थे। अकबर ने इन तथा अन्य सलाहकारों के साथ मिलकर साम्राज्य की प्रशासनिक, राजकोषीय व मौद्रिक संस्थाओं को आकार प्रदान किया।

दरबार में नियुक्त (*तैनात-ए-रकाब*) अभिजातों का एक ऐसा सुरक्षित दल था जिसे किसी भी प्रांत या सैन्य अभियान में प्रतिनियुक्त किया जा सकता था। वे प्रतिदिन दो बार सुबह व शाम को सार्वजनिक सभा-भवन में बादशाह के प्रति आत्मनिवेदन करने के कर्तव्य से बँधे थे। दिन-रात बादशाह और उसके घराने की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी भी वे उठाते थे।

8.2 सूचना तथा साम्राज्य

सटीक और विस्तृत आलेख तैयार करना मुग़ल प्रशासन के लिए मुख्य रूप से महत्त्वपूर्ण था। मीर बख़्शी दरबारी लेखकों (वाकिया नवीस) के समूह का निरीक्षण करता था। ये लेखक ही दरबार में प्रस्तुत किए जाने वाले सभी अर्ज़ियों व दस्तावेज़ों तथा सभी शासकीय आदेशों (*फ़रमान*) का आलेख तैयार करते थे। इसके अतिरिक्त अभिजातों और क्षेत्रीय शासकों के प्रतिनिधि (वकील) दरबार की बैठकों (*पहर*) की तिथि और समय के साथ "उच्च दरबार से समाचार" (*अख़बारात-ए-दरबार-ए-मुअल्ला*) शीर्षक के अंतर्गत दरबार की सभी कार्यवाहियों का विवरण तैयार करते थे। अख़बारात में हर तरह की सूचनाएँ होती हैं जैसे दरबार में उपस्थिति, पदों और पदवियों का दान, राजनयिक शिष्टमंडलों, ग्रहण किए गए उपहारों अथवा किसी अधिकारी के स्वास्थ्य के विषय में बादशाह द्वारा की गई पूछताछ। राजाओं और अभिजातों के सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन का इतिहास लिखने के लिए यह सूचनाएँ बहुत उपयोगी होती हैं।

समाचार वृत्तांत और महत्त्वपूर्ण शासकीय दस्तावेज़ शाही डाक के ज़रिए मुग़ल शासन के अधीन क्षेत्रों में एक छोर से दूसरे छोर तक जाते थे। बाँस के डिब्बों में लपेटकर रखे कागज़ों को लेकर हरकारों (*कसीद* अथवा *पथमार*) के दल दिन-रात दौड़ते रहते थे। काफ़ी दूर स्थित प्रांतीय राजधानियों से भी वृत्तांत बादशाह को कुछ ही दिनों में मिल जाया करते थे। राजधानी से बाहर तैनात अभिजातों के प्रतिनिधि अथवा राजपूत राजकुमार तथा अधीनस्थ शासक बड़े मनोयोग से इन उद्घोषणाओं की नकल तैयार करते थे व संदेशवाहकों के ज़रिए अपनी टिप्पणियाँ अपने स्वामियों के पास भेज देते थे। सार्वजनिक समाचार के लिए पूरा साम्राज्य आश्चर्यजनक रूप से तीव्र सूचना तंत्र से जुड़ा हुआ था।

8.3 केंद्र से परे : प्रांतीय प्रशासन

केंद्र में स्थापित कार्यों के विभाजन को प्रांतों (*सूबों*) में दुहराया गया था। यहाँ भी केंद्र के समान मंत्रियों के अनुरूप अधीनस्थ (*दीवान, बख़्शी* और *सद्र*) होते थे। प्रांतीय शासन का प्रमुख गवर्नर (*सूबेदार*) होता था जो सीधा बादशाह को प्रतिवेदन प्रस्तुत करता था।

प्रत्येक *सूबा* कई *सरकारों* में बँटा हुआ था। अकसर सरकार की सीमाएँ फ़ौजदारों के नीचे आने वाले क्षेत्रों की सीमाओं से मेल खाती थीं। इन इलाकों में फ़ौजदारों को विशाल घुड़सवार फ़ौज और तोपचियों के साथ रखा जाता था। *परगना* (उप-ज़िला) स्तर पर स्थानीय प्रशासन की देख-रेख तीन अर्ध-वंशानुगत अधिकारियों, कानूनगो (राजस्व आलेख का रखवाला), चौधरी (राजस्व संग्रह का प्रभारी) और काज़ी द्वारा की जाती थी।

शासन के प्रत्येक विभाग के पास लिपिकों का एक बड़ा सहायक समूह, लेखाकार, लेखा-परीक्षक, संदेशवाहक और अन्य कर्मचारी होते थे जो तकनीकी रूप से दक्ष अधिकारी थे। ये मानकीकृत नियमों और प्रक्रियाओं के अनुसार कार्य करते तथा प्रचुर संख्या में लिखित आदेश व वृत्तांत तैयार करते थे। सर्वत्र फ़ारसी को शासन की भाषा बना दिया गया लेकिन ग्राम-लेखा के लिए स्थानीय भाषाओं का प्रयोग होता था।

मुग़ल इतिहासकारों ने प्रायः बादशाह और उसके दरबार को ग्राम स्तर तक के संपूर्ण प्रशासनिक तंत्र का नियंत्रण करते हुए प्रदर्शित किया है। पर जैसा कि आपने देखा (अध्याय 8), इस प्रक्रिया का तनावमुक्त रहना असंभव सा ही था। स्थानीय ज़मींदारों और मुग़ल साम्राज्य के प्रतिनिधियों के बीच के संबंध कई बार संसाधनों और सत्ता के बँटवारों को लेकर संघर्ष का रूप ले लेते थे। ज़मींदार प्रायः राज्य के खिलाफ़ किसानों का समर्थन संघटित करने में सफल हो जाते थे।

➲ चर्चा कीजिए...

अध्याय 8 का अनुभाग 2 पुनः पढ़िए। गाँवों में बादशाह की उपस्थिति को किस हद तक महसूस किया गया होगा, इस पर चर्चा कीजिए।

9. सीमाओं के परे

इतिवृत्तों के लेखकों ने मुग़ल बादशाहों द्वारा धारण की गई कई गुंजायमान पदवियों को सूचीबद्ध किया है। इनके अंतर्गत शहंशाह (राजाओं का राजा) जैसी सामान्य पदवियाँ अथवा जहाँगीर (विश्व पर कब्ज़ा करने वाला), अथवा शाहजहाँ (विश्व का राजा) जैसे अलग-अलग राजाओं द्वारा अपनाई गई ख़ास उपाधियाँ शामिल थीं। मुग़ल बादशाहों के अविजित क्षेत्रीय व राजनीतिक नियंत्रण के दावों को दुहराने के लिए इतिहासकार प्राय: इन पदवियों और उनके अर्थों का हवाला देते थे। लेकिन यही समसामयिक इतिहास पड़ोसी राजनीतिक शक्तियों के साथ राजनयिक रिश्तों और संघर्ष का विवरण देते हैं जिसमें प्रतिस्पर्धी क्षेत्रीय हितों की वजह से कुछ तनाव और राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता का पता चलता है।

चित्र 9.15
कंधार की घेराबंदी

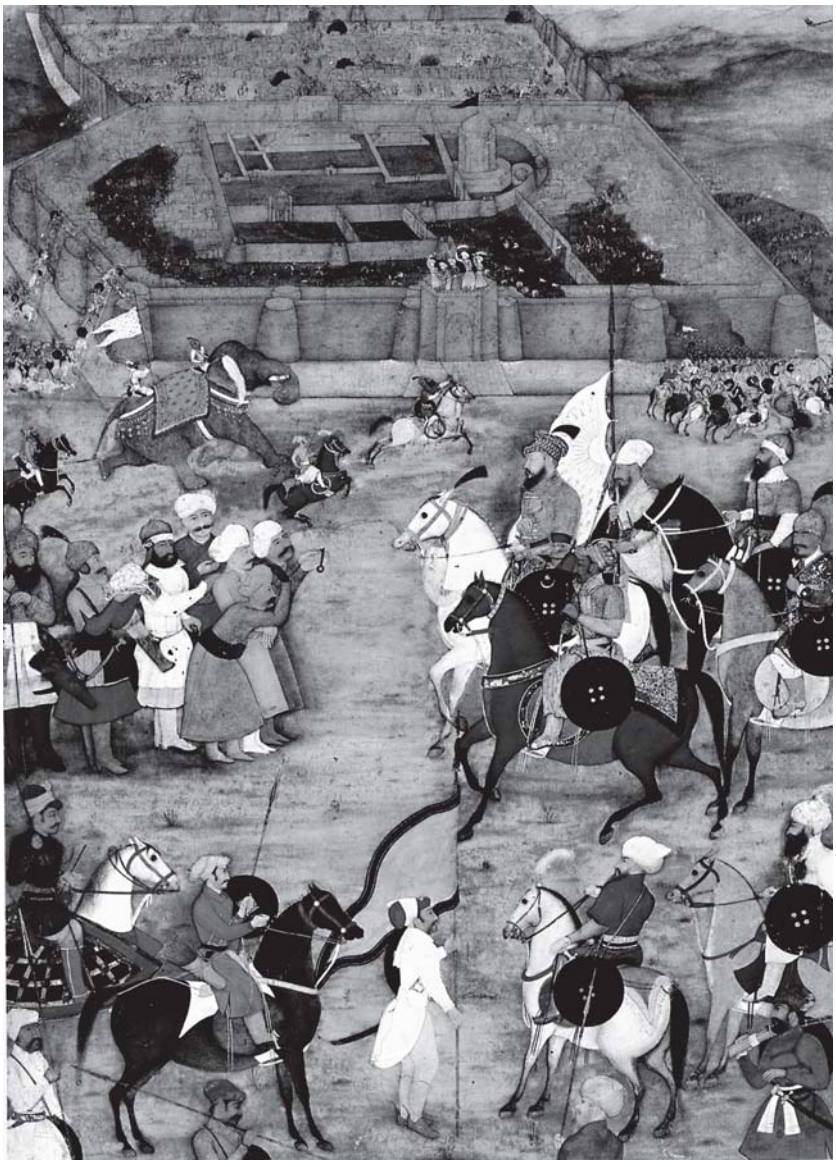

9.1 सफ़ावी और कंधार

मुग़ल राजाओं तथा ईरान व तूरान के पड़ोसी देशों के राजनीतिक व राजनयिक रिश्ते अफ़गानिस्तान को ईरान व मध्य एशिया के क्षेत्रों से पृथक करने वाले हिंदूकुश पर्वतों द्वारा निर्धारित सीमा के नियंत्रण पर निर्भर करते थे। भारतीय उपमहाद्वीप में आने को इच्छुक सभी विजेताओं को उत्तर भारत तक पहुँचने के लिए हिंदूकुश को पार करना होता था। मुग़ल नीति का यह निरंतर प्रयास रहा कि सामरिक महत्त्व की चौकियों विशेषकर काबुल व कंधार पर नियंत्रण के द्वारा इस संभावित खतरे से बचाव किया जा सके।

कंधार सफ़ावियों और मुग़लों के बीच झगड़े की जड़ था। यह किला-नगर आरंभ में हुमायूँ के अधिकार में था जिसे 1595 में अकबर द्वारा पुन: जीत लिया गया। यद्यपि सफ़ावी दरबार ने मुग़लों के साथ अपने राजनयिक संबंध बनाए रखे तथापि कंधार पर यह दावा करता रहा। 1613 में जहाँगीर ने शाह

चित्र 9.16
जहाँगीर का स्वप्न
इस लघुचित्र के अभिलेख से पता चलता है कि जहाँगीर ने हाल ही में देखे गए एक स्वप्न को अबुल हसन से चित्र में उतारने के लिए कहा। अबुल हसन ने इस दृश्य में दो शासकों- जहाँगीर व सफ़ावी शाह अब्बास को मित्रवत् गले लगाते हुए प्रदर्शित करते हुए चित्र बनाया। दोनों ही राजाओं का चित्रण उनकी पारंपरिक पोशाकों में किया गया है। शाह की आकृति 1613 में मुग़ल राजदूत वर्ग के साथ ईरान गए बिशनदास द्वारा बनाए गए चित्रों पर आधारित है। इससे इस दृश्य को, जोकि काल्पनिक है क्योंकि दोनों शासक कभी आपस में नहीं मिले, एक तरीके की प्रामाणिकता मिली।

चित्र को ध्यान से देखिए। जहाँगीर और शाह अब्बास के संबंध को किस तरह दर्शाया गया है? इनके शरीर की बनावट तथा हाव-भाव की तुलना कीजिए। जानवरों का क्या अभिप्राय है? चित्र में मानचित्र क्या सूचित करता है?

अब्बास के दरबार में कंधार को मुग़ल अधिकार में रहने देने की वकालत करने के लिए एक राजनयिक दूत भेजा लेकिन यह शिष्टमंडल अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ। 1622 की शीत ऋतु में एक फ़ारसी सेना ने कंधार पर घेरा डाल दिया। मुग़ल रक्षक सेना पूरी तरह से तैयार नहीं थी। अत: वह पराजित हुई और उसे किला तथा नगर सफ़ावियों को सौंपने पड़े।

9.2 ऑटोमन साम्राज्य : तीर्थयात्रा और व्यापार

ऑटोमन साम्राज्य के साथ मुग़लों ने अपने संबंध इस हिसाब से बनाए कि वे ऑटोमन नियंत्रण वाले क्षेत्रों में व्यापारियों व तीर्थयात्रियों के स्वतंत्र आवागमन को बरकरार रखवा सकें। यह हिजाज़ अर्थात ऑटोमन अरब के उस हिस्से के लिए विशेष रूप से सत्य था जहाँ मक्का और मदीना के महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल स्थित थे। इस क्षेत्र के साथ अपने संबंधों में मुग़ल बादशाह आमतौर पर धर्म एवं वाणिज्य के मुद्दों को मिलाने की कोशिश करता था। वह लाल सागर के बंदरगाह अदन और मोखा को बहुमूल्य वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन देता था और इनकी बिक्री से अर्जित आय को उस इलाके के धर्मस्थलों व फ़कीरों में दान में बाँट देता था। हालाँकि औरंगज़ेब को जब अरब भेजे जाने वाले धन के दुरुपयोग

का पता चला तो उसने भारत में उसके वितरण का समर्थन किया क्योंकि उसका मानना था कि "यह भी वैसा ही ईश्वर का घर है जैसा कि मक्का।"

9.3 मुग़ल दरबार में जेसुइट धर्म प्रचारक

यूरोप को भारत के बारे में जानकारी जेसुइट धर्म प्रचारकों, यात्रियों, व्यापारियों और राजनयिकों के विवरणों से हुई। मुग़ल दरबार के यूरोपीय विवरणों में जेसुइट वृत्तांत सबसे पुराने वृत्तांत हैं। पंद्रहवीं शताब्दी के अंत में भारत तक एक सीधे समुद्री मार्ग की खोज का अनुसरण करते हुए पुर्तगाली व्यापारियों ने तटीय नगरों में व्यापारिक केंद्रों का जाल स्थापित किया। पुर्तगाली राजा भी सोसाइटी ऑफ़ जीसस (जेसुइट) के धर्मप्रचारकों की मदद से ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार में रुचि रखता था। सोलहवीं शताब्दी के दौरान भारत आने वाले जेसुइट शिष्टमंडल व्यापार और साम्राज्य निर्माण की इस प्रक्रिया का हिस्सा थे।

अकबर ईसाई धर्म के विषय में जानने को बहुत उत्सुक था। उसने जेसुइट पादरियों को आमंत्रित करने के लिए एक दूतमंडल गोवा भेजा। पहला जेसुइट शिष्टमंडल फतेहपुर सीकरी के मुग़ल दरबार में 1580 में पहुँचा और वह वहाँ लगभग दो वर्ष रहा। इन जेसुइट लोगों ने ईसाई धर्म के विषय में अकबर से बात की और इसके सद्गुणों के विषय में उलमा से उनका वाद-विवाद हुआ। लाहौर के मुग़ल दरबार में दो और शिष्टमंडल 1591 और 1595 में भेजे गए।

जेसुइट विवरण व्यक्तिगत प्रेक्षणों पर आधारित हैं और वे बादशाह के चरित्र और सोच पर गहरा प्रकाश डालते हैं। सार्वजनिक सभाओं में जेसुइट लोगों को अकबर के सिंहासन के काफ़ी नज़दीक स्थान दिया जाता था। वे उसके साथ अभियानों में जाते, उसके बच्चों को शिक्षा देते तथा उसके फुरसत के समय में वे अकसर उसके साथ होते थे। जेसुइट विवरण मुग़लकाल के राज्य अधिकारियों और सामान्य जन-जीवन के बारे में फारसी इतिहासों में दी गई सूचना की पुष्टि करते हैं।

स्रोत 4

बादशाह तक सुलभ पहुँच

पहले जेसुइट शिष्टमंडल का एक सदस्य मान्सेरेट अपने अनुभवों का विवरण लिखते हुए कहता है :

> उससे (अकबर से) भेंट करने की इच्छा रखने वाले लोगों के लिए उसकी पहुँच कितनी सुलभ है इसके बारे में अतिशयोक्ति करना बहुत कठिन है। लगभग प्रत्येक दिन वह ऐसा अवसर निकालता है कि कोई भी आम आदमी अथवा अभिजात उससे मिल सके और बातचीत कर सके। उससे जो भी बात करने आता है उन सभी के प्रति कठोर न होकर वह स्वयं को मधुरभाषी और मिलनसार दिखाने का प्रयास करता है। उसे उसकी प्रजा के दिलो-दिमाग से जोड़ने में इस शिष्टाचार और भद्रता का बड़ा असाधारण प्रभाव है।

➲ स्रोत 2 के साथ इस विवरण की तुलना कीजिए।

➲ चर्चा कीजिए...

वे कौन-कौन से मुद्दे और सरोकार थे जिन्होंने मुग़ल शासकों के उनके समसामायिकों के साथ संबंधों को निर्धारित किया?

10. औपचारिक धर्म पर प्रश्न उठाना

जेसुइट शिष्टमंडल के सदस्यों के प्रति अकबर ने जो उच्च आदर प्रदर्शित किया उससे वे बहुत प्रभावित हुए। ईसाई धर्म सिद्धांतों में बादशाह की स्पष्ट दिलचस्पी की व्याख्या उन्होंने अपने मत में बादशाह के धर्म-परिवर्तन के संकेत रूप में की। इसे पश्चिमी यूरोप में हावी धार्मिक असहिष्णुता के माहौल के प्रकाश में समझा जा सकता है। मान्सेरेट ने टिप्पणी की कि, "राजा ने इस बात की बहुत कम परवाह की कि सभी को उसके धर्म के अनुपालन की अनुमति देकर उसने वास्तव में सबका तिरस्कार किया।"

धार्मिक ज्ञान के लिए अकबर की तलाश ने फतेहपुर सीकरी के इबादतखाने में विद्वान मुसलमानों, हिंदुओं, जैनों, पारसियों और ईसाइयों के बीच अंतर-धर्मीय वाद-विवादों को जन्म दिया। अकबर के धार्मिक विचार, विभिन्न धर्मों व संप्रदायों के विद्वानों से प्रश्न पूछने और उनके धर्म-सिद्धांतों के बारे में जानकारी इकट्ठा करने से, परिपक्व हुए। धीरे-धीरे वह धर्मों को समझने के रूढ़िवादी तरीकों से दूर प्रकाश और सूर्य पर केंद्रित दैवीय उपासना के स्व-कल्पित विभिन्नदर्शन ग्राही रूप की ओर बढ़ा। हमने देखा कि अकबर और अबुल फज़्ल ने प्रकाश के दर्शन का सृजन किया और राजा की छवि तथा राज्य की विचारधारा को आकार देने में इसका प्रयोग किया। इसमें दैवीय रूप से प्रेरित व्यक्ति का अपने लोगों पर सर्वोच्च प्रभुत्व तथा अपने शत्रुओं पर पूर्ण नियंत्रण होता है।

चित्र 9.17
दरबार में धार्मिक वाद-विवाद। पार्दे रुडोल्फ एक्वाविवा पहले जेसुइट शिष्टमंडल का नेता था। उसका नाम चित्र के ऊपरी भाग पर लिखा है।

हरम में होम

यहाँ अब्दुल कादिर बदायूँनी के *मुन्तख़ाब-उत-तवारीख* से एक अंश दिया गया है। एक धर्मविज्ञानी और दरबारी बदायूँनी अपने नियोक्ता की नीतियों का आलोचक था और अपनी पुस्तक की विषयवस्तु को वह सार्वजनिक नहीं करना चाहता था।

> युवावस्था के आरंभ से ही महामहिम अपनी पत्नियों अर्थात हिंद के राजाओं की पुत्रियों के सम्मान में *हरम* में *होम* का आयोजन कर रहे थे। यह ऐसी धर्मक्रिया है जो अग्नि-पूजा (*आतिश-परस्ती*) से व्युत्पन्न हुई है। परंतु अपने 25वें शासन वर्ष (1578) के नए वर्ष पर उसने सार्वजनिक रूप से सूर्य और अग्नि को दंडवत् प्रणाम किया। शाम को चिराग और मोमबत्तियाँ जलाए जाने पर सारे दरबार को आदरपूर्वक उठना पड़ा।

ये विचार दरबारी इतिहासकारों के परिप्रेक्ष्य से संगति रखते थे। ये इतिहासकार हमें उन प्रक्रियाओं का बोध कराते हैं जिनके द्वारा मुग़ल शासक बड़े प्रभावशाली तरीके से ऐसी विजातीय जनता को एक शाही संरचना के अंतर्गत सम्मिलित कर सके। भौगोलिक विस्तार और राजनीतिक नियंत्रण के व्यापक रूप से ह्रास के बाद भी लगभग डेढ़ शताब्दी तक इस राजवंश का नाम भारतीय उपमहाद्वीप में वैध रहा।

चित्र 9.18
ईरान के प्रवासी कलाकारों द्वारा मुल्तान के मकबरे से लाई गई नीली टाइलें।

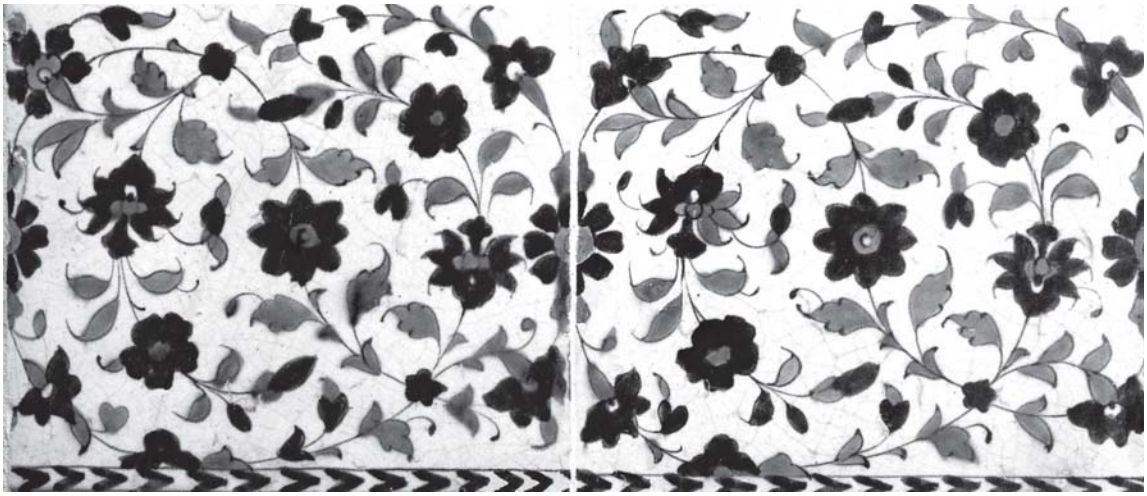

काल-रेखा

कुछ प्रमुख मुग़ल इतिवृत्त तथा संस्मरण

लगभग 1530	बाबर के संस्मरणों की पाण्डुलिपि का तिमूरियों के पारिवारिक संग्रह का हिस्सा बनना। तुर्की भाषा में लिखे गए यह संस्मरण किसी तरह एक तूफ़ान से बचा लिए गए।
लगभग 1587	गुलबदन बेगम द्वारा *हुमायूँनामा* के लेखन की शुरुआत
1589	बाबर के संस्मरणों का *बाबरनामा* के रूप में फ़ारसी में अनुवाद
1589–1602	अबुल फज़्ल द्वारा *अकबरनामा* पर कार्य करना
1605–22	जहाँगीर द्वारा *जहाँगीरनामा* नाम से अपना संस्मरण लिखना
1639–47	लाहौरी द्वारा *बादशाहनामा* के पहले दो *दफ़्तरों* का लेखन
लगभग 1650	मुहम्मद वारिस द्वारा शाहजहाँ के शासन के तीसरे दशक के इतिवृत्त लेखन की शुरुआत
1668	मुहम्मद काज़िम द्वारा औरंगज़ेब के शासन के पहले दस वर्षों के इतिहास का *आलमगीरनामा* के नाम से संकलन

उत्तर दीजिए (लगभग 100-150 शब्दों में)

1. मुग़ल दरबार में पांडुलिपि तैयार करने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
2. मुग़ल दरबार से जुड़े दैनिक-कर्म और विशेष उत्सवों के दिनों ने किस तरह से बादशाह की सत्ता के भाव को प्रतिपादित किया होगा?
3. मुग़ल साम्राज्य में शाही परिवार की स्त्रियों द्वारा निभाई गई भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
4. वे कौन से मुद्दे थे जिन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप से बाहर क्षेत्रों के प्रति मुग़ल नीतियों व विचारों को आकार प्रदान किया?
5. मुग़ल प्रांतीय प्रशासन के मुख्य अभिलक्षणों की चर्चा कीजिए। केंद्र किस तरह से प्रांतों पर नियंत्रण रखता था?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250-300 शब्दों)

6. उदाहरण सहित मुग़ल इतिहासों के विशिष्ट अभिलक्षणों की चर्चा कीजिए।
7. इस अध्याय में दी गई दृश्य-साम्रगी किस हद तक अबुल फज़्ल द्वारा किए गए 'तसवीर' के वर्णन (स्रोत 1) से मेल खाती है?
8. मुग़ल अभिजात वर्ग के विशिष्ट अभिलक्षण क्या थे? बादशाह के साथ उनके संबंध किस तरह बने।
9. राजत्व के मुग़ल आदर्श का निर्माण करने वाले तत्वों की पहचान कीजिए।

चित्र 9.19
कई मुग़ल पांडुलिपियों में चिड़ियों का अंकन हुआ था।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए:

बैम्बर गैसकोइने, 1971,
दि ग्रेट मुगल्स,
जोनाथन केप लिमिटेड, लंदन

शीरीन मूसवी, 2006 (पुनर्मुद्रित)
एपिसोड्स इन दि लाइफ ऑफ़ अकबर
नेशनल बुक ट्रस्ट,
न्यू दिल्ली

हरबंस मुखिया, 2004
दि मुगल्स ऑफ़ इंडिया, ब्लैकवेल,
ऑक्सफोर्ड

जॉन एफ. रिचर्ड्स, 1996

दि मुग़ल एम्पायर
(दि न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री *ऑफ़* इंडिया,
वोल्यूम-1)
कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

एन्नेमेरी शीमेल, 2005
दि एम्पायर ऑफ़ दि ग्रेट मुगल्स: हिस्ट्री, आर्ट एंड कल्चर,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं।
www.mughalgardens.org

मानचित्र कार्य

10. विश्व मानचित्र के एक रेखाचित्र पर उन क्षेत्रों को अंकित कीजिए जिनसे मुग़लों के राजनीतिक व सांस्कृतिक संबंध थे?

परियोजना (कोई एक)

11. किसी मुग़ल इतिवृत्त के विषय में और जानकारी ढूँढ़िए। इसके लेखक, भाषा, शैली और विषयवस्तु का वर्णन करते हुए एक वृत्तांत तैयार कीजिए। आपके द्वारा चयनित इतिहास की व्याख्या में प्रयुक्त कम-से-कम दो चित्रों का, बादशाह की शक्ति को इंगित करने वाले संकेतों पर ध्यान केंद्रित करते हुए, वर्णन कीजिए?

12. राज्यपद के आदर्शों, दरबारी रिवाजों और शाही सेवा में भर्ती की विधियों पर ध्यान केंद्रित करते हुए व समानताओं और विभिन्नताओं पर प्रकाश डालते हुए मुग़ल दरबार और प्रशासन की वर्तमान भारतीय शासन व्यवस्था से तुलना कर एक वृत्तांत तैयार कीजिए।

चित्र 9.20
एक पेड़ पर गिलहरियों को दर्शाती एक मुग़ल चित्रकारी

चित्रों के लिए श्रेय

विषय 5

चित्र 5.1: Ritu Topa.

चित्र 5.2 : Henri Stierlin, *The Cultural History of the Arabs,* Aurum Press, London, 1981.

चित्र 5.4, 5.13: FICCI, *Footprints of Enterprise: Indian Business Through the Ages,* Oxford University Press, New Delhi, 1999.

चित्र 5.5: Calcutta Art Gallery, printed in E.B. Havell, *The Art Heritage of India,* D.B. Taraporevala Sons & Co., Bombay, 1964.

चित्र 5.6, 5.7, 5.12: Bamber Gascoigne, *The Great Moghuls,* Jonathan Cape Ltd., London, 1971.

चित्र 5.8, 5.9: Sunil Kumar.

चित्र 5.10: Rosemary Crill, *Indian Ikat Textiles,* Weatherhill, London, 1998.

चित्र 5.11, 5.14: C.A. Bayly (ed). *An Illustrated History of Modern India, 1600-1947,* Oxford University Press, Bombay, 1991.

विषय 6

चित्र 6.1: Susan L. Huntington, *The Art of Ancient India,* Weatherhill, New York, 1993.

चित्र 6.3, 6.17: Jim Masselos, Jackie Menzies and Pratapaditya Pal, *Dancing to the Flute: Music and Dance in Indian Art,* The Art Gallery of New South Wales, Sydney, Australia, 1997.

चित्र 6.4, 6.5: Benjamin Rowland, *The Art and Architecture of India,* Penguin, Harmondsworth, 1970.

चित्र 6.6: Henri Stierlin, *The Cultural History of the Arabs,* Aurum Press, London, 1981.

चित्र 6.8: http:èkèkwww.us.iis.ac.ukèkview_article.aspèkContentID=104228

चित्र 6.9: http:èkèkwww.thekkepuram.ourfamily.comèkmiskal.htm

चित्र 6.10: http:èkèka bangladesh.comèkbanglapediaèkImagesèkA_0350A.JPG

चित्र 6.11: foziaqazi@kashmirvision.com

चित्र 6.12: Stuart Cary Welch, *Indian Art and Culture 1300-1900,* The Metropolitan Museum of Art, New York, 1985.

चित्र 6.13: Bamber Gascoigne, *The Great Moghuls,* Jonathan Cape Ltd., London, 1971.

चित्र 6.15: CCRT.

चित्र 6.16: C. A. Bayly (ed). *An Illustrated History of Modern India, 1600-1947,* Oxford University Press, Bombay, 1991.

चित्र 6.18: Ahmad Nabi Khan, *Islamic Architecture in Pakistan,* National Hijra Council, Islamabad, 1990.

विषय 7

चित्र 7.1, 7.11, 7.12, 7.14, 7.15, 7.16, 7.18: Vasundhara Filliozat and George Michell (eds), *The Splendours of Vijayanagara,* Marg Publications, Bombay, 1981.

चित्र 7.2: C.A. Bayly (ed). *An Illustrated History of Modern India, 1600-1947,* Oxford University Press, Bombay, 1991.

चित्र 7.3: Susan L. Huntington, *The Art of Ancient India,* Weatherhill, New York, 1993.

चित्र 7.4, 7.6, 7.7, 7.20, 7. 23, 7.26, 7.27, 7.32: George Michell, *Architecture and Art of South India,* Cambridge University Press, Cambridge, 1995.

चित्र 7.5, 7.8, 7.9, 7.21 http:èkèkwww.museum.upenn.eduèknewèk researchèkExp_Rese_DiscèkAsiaèkvrpèkHTMLèkVijay_Hist.shtml

चित्र 7.10: Catherine B. Asher and Cynthia Talbot. *India Before Europe,* Cambridge University Press, Cambridge, 2006.

चित्र 7.17, 7.22, 7.24, 7.28, 7.29, 7.30, 7.31, 7.33: George Michell and M.B.Wagoner, *Vijayanagara: Architectural Inventory of the Sacred Centre,* Munshiram Manoharlal, New Delhi.

चित्र 7.25: CCRT.

विषय 8

चित्र 8.1, 8.9: Milo Cleveland Beach and Ebba Koch, *King of the World,* Sackler Gallery, New York, 1997.

चित्र 8.3: India Office Library, printed in C.A. Bailey (ed). *An Illustrated History of Modern India, 1600-1947,* Oxford University Press, Bombay, 1991.

चित्र 8.4: Harvard University Art Museum, printed in Stuart Cary Welch, *Indian Art and Culture 1300-1900,* The Metropolitan Museum of Art, New York, 1985.

चित्र 8.6, 8.11, 8.12, 8.14: C.A. Bayly (ed). *An Illustrated History of Modern India, 1600-1947,* Oxford University Press, Bombay, 1991.

चित्र 8.13, 8.15: Bamber Gascoigne, *The Great Moghuls*, Jonathan Cape Ltd., London, 1971.

विषय 9

चित्र 9.1, 9.2, 9.12, 9.13, 9.19: Bamber Gascoigne, *The Great Moghuls,* Jonathan Cape, London, 1971.

चित्र 9.3, 9.4, 9.17: Michael Brand and Glenn D. Lowry, *Akbar's India,* New York, 1986.

चित्र 9.5, 9.15: Amina Okada, *Indian Miniatures of the Mughal Court.*

चित्र 9.6, 9.7: *The Jahangirnama* (tr. Wheeler Thackston)

चित्र 9.8: Photograph Friedrich Huneke.

चित्र 9.9, 9.11 a, b, c : Milo Cleveland Beach and Ebba Koch, *King of the World,* Sackler Gallery, New York, 1997.

चित्र 9.10, 9.16, 9.20: Stuart Carey Welch, *Imperial Mughal Painting,* George Braziller, New York, 1978.

चित्र 9.14: Geeti Sen, *Paintings from the Akbarnama.*

चित्र 9.18: Hermann Forkl et al. (eds), *Die Gärten des Islam.*

अध्याय दस

उपनिवेशवाद और देहात

सरकारी अभिलेखों का अध्ययन

इस अध्याय में आप यह देखेंगे कि औपनिवेशिक शासन का अर्थ उन लोगों के लिए क्या था जो देहात में रहते थे। इस अध्याय के माध्यम से आप बंगाल के ज़मींदारों से मिलेंगे, उन राजमहल की पहाड़ियों की यात्रा करेंगे जहाँ पहाड़िया और संथाल लोग रहते थे और फिर वहाँ से दक्कन की ओर आगे बढ़ेंगे। आप यह देखेंगे कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने देहात में अपना राज कैसे स्थापित किया था, अपनी राजस्व नीतियों को कैसे कार्यान्वित किया था, भिन्न-भिन्न वर्गों के लोगों के लिए इन नीतियों का क्या मतलब था और उन्होंने रोजमर्रा की ज़िंदगी को कैसे बदल दिया था।

राज्य यानी सरकार द्वारा लागू किए गए क़ानूनों के जनसाधारण के लिए अनेक परिणाम होते हैं : वे कुछ हद तक यह निर्धारित करते हैं कि उन क़ानूनों के परिणामस्वरूप कौन पहले से अधिक धनवान बनते हैं और कौन ग़रीब हो जाते हैं; किसे नयी ज़मीन मिल जाती है और कौन अपनी उस ज़मीन को खो बैठता है जिस पर वह रहता और गुज़र-बसर करता था; किसानों को जब पैसे की ज़रूरत पड़ती है तब वे कहाँ, किसके पास जाते हैं; आप यह भी देखेंगे कि लोग क़ानूनों का पालन करने के लिए मजबूर होते हुए भी ऐसे क़ानून का विरोध करने से भी नहीं हिचकते थे जिसे वे अन्यायपूर्ण समझते थे। ऐसा करते समय लोग यह भी स्पष्ट करने का प्रयत्न करते थे कि क़ानून किस प्रकार लागू किए जाने चाहिए, और इस प्रकार वे उनके परिणामों में कुछ फेर-बदल कर देते थे।

आप उन स्रोतों के बारे में भी जान पाएँगे जो हमें इन इतिहासों के बारे में बताते हैं साथ ही इन समस्याओं के बारे में भी जो इतिहासकारों के सामने इस संबंध में उपस्थित होती हैं। आप राजस्व अभिलेखों और सर्वेक्षणों, पत्र-पत्रिकाओं तथा सर्वेक्षकों एवं यात्रियों द्वारा छोड़े गए विवरणों और जाँच आयोगों द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्टों के बारे में भी पढ़ेंगे।

चित्र 10.1
कपास गाँव से मंडी ले जाई जा रही है। यह चित्र 20 अप्रैल 1861 के 'लंदन न्यूज' में प्रकाशित हुआ था।

1. बंगाल और वहाँ के ज़मींदार

जैसा कि आप जानते हैं, औपनिवेशिक शासन सर्वप्रथम बंगाल में स्थापित किया गया था। यही वह प्रांत था जहाँ पर सबसे पहले ग्रामीण समाज को पुनर्व्यवस्थित करने और भूमि संबंधी अधिकारों की नयी व्यवस्था तथा एक नयी राजस्व प्रणाली स्थापित करने के प्रयत्न किए गए थे। आइए, यह देखें कि कंपनी शासन के प्रारंभिक वर्षों में बंगाल में क्या हुआ।

1.1 बर्दवान में की गई नीलामी की एक घटना

सन् 1797 में बर्दवान (आज के बर्द्धमान) में एक नीलामी की गई। यह एक बड़ी सार्वजनिक घटना थी। बर्दवान के राजा द्वारा धारित अनेक महाल (भूसंपदाएँ) बेचे जा रहे थे। सन् 1793 में इस्तमरारी बंदोबस्त लागू हो गया था। ईस्ट इंडिया कंपनी ने राजस्व की राशि निश्चित कर दी थी जो प्रत्येक ज़मींदार को अदा करनी होती थी। जो ज़मींदार अपनी निश्चित राशि नहीं चुका पाते थे उनसे राजस्व वसूल करने के लिए उनकी संपदाएँ नीलाम कर दी जाती थीं। चूँकि बर्दवान के राजा पर राजस्व की बड़ी भारी रकम बकाया थी, इसलिए उसकी संपदाएँ नीलाम की जाने वाली थीं।

'राजा' शब्द का प्रयोग अकसर शक्तिशाली ज़मींदारों के लिए किया जाता था।

नीलामी में बोली लगाने के लिए अनेक ख़रीददार आए थे और संपदाएँ (महाल) सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को बेच दी गईं। लेकिन कलेक्टर को तुरंत ही इस सारी कहानी में एक अजीब पेंच दिखाई दे गया। उसे जानने में आया कि उनमें से अनेक ख़रीददार, राजा के अपने ही नौकर या एजेंट थे और उन्होंने राजा की ओर से ही ज़मीनों को ख़रीदा था। नीलामी में 95 प्रतिशत से अधिक बिक्री फ़र्जी थी। वैसे तो राजा की ज़मीनें खुलेतौर पर बेच दी गई थीं पर उनकी ज़मींदारी का नियंत्रण उसी के हाथों में रहा था।

राजा कंपनी को राजस्व क्यों नहीं अदा कर पाया था? नीलामी में ख़रीददार कौन थे? यह कहानी उस समय पूर्वी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में क्या हो रहा था, इसके बारे में हमें क्या बताती है?

चित्र 10.2
बर्दवान के राजा का डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता स्थित राजमहल
19वीं शताब्दी के अंतिम दशकों तक बंगाल के बहुत से धनी ज़मींदारों ने अपने लिए सुंदर विशाल स्तंभों वाले राजमहल बनवा लिए थे जिनमें नृत्यकक्ष, बड़े-बड़े मैदान, शानदार प्रवेश द्वार थे।

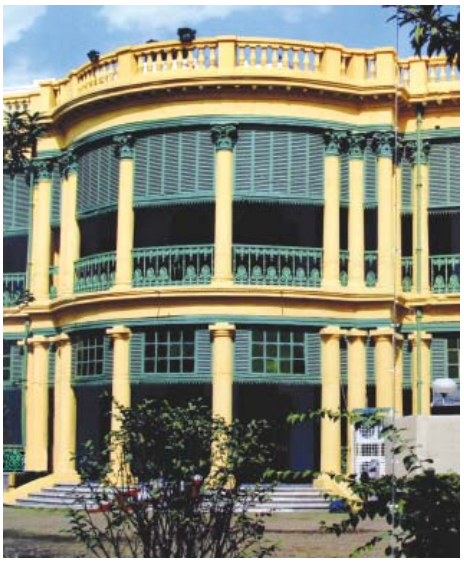

1.2 अदा न किए गए राजस्व की समस्या

अकेले बर्दवान राज की ज़मीनें ही ऐसी संपदाएँ नहीं थीं जो अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में बेची गई थीं। इस्तमरारी बंदोबस्त लागू किए जाने के बाद 75 प्रतिशत से अधिक ज़मींदारियाँ हस्तांतरित कर दी गई थीं।

ब्रिटिश अधिकारी यह आशा करते थे कि इस्तमरारी बंदोबस्त लागू किए जाने से वे सभी समस्याएँ हल हो जाएँगी जो बंगाल की विजय के समय से ही उनके समक्ष उपस्थित हो रही थीं। 1770 के दशक तक आते-आते, बंगाल की ग्रामीण अर्थव्यवस्था संकट के दौर से गुजरने लगी थी क्योंकि बार-बार अकाल पड़ रहे थे और खेती की पैदावार घटती जा रही थी। अधिकारी लोग ऐसा सोचते थे कि खेती, व्यापार और राज्य के राजस्व संसाधन सब तभी विकसित किए जा सकेंगे जब कृषि में निवेश

को प्रोत्साहन दिया जाएगा और ऐसा तभी किया जा सकेगा जब संपत्ति के अधिकार प्राप्त कर लिए जाएँगे और राजस्व माँग की दरों को स्थायी रूप से तय कर दिया जाएगा। यदि राज्य (सरकार) की राजस्व माँग स्थायी रूप से निर्धारित कर दी गई तो कंपनी राजस्व की नियमित प्राप्ति की आशा कर सकेगी और उद्यमकर्ता भी अपने पूँजी-निवेश से एक निश्चित लाभ कमाने की उम्मीद रख सकेंगे, क्योंकि राज्य अपने दावे में वृद्धि करके लाभ की राशि नहीं छीन सकेगा। अधिकारियों को यह आशा थी कि इस प्रक्रिया से छोटे किसानों (योमॅन) और धनी भूस्वामियों का एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो जाएगा जिसके पास कृषि में सुधार करने के लिए पूँजी और उद्यम दोनों होंगे। उन्हें यह भी उम्मीद थी कि ब्रिटिश शासन से पालन-पोषण और प्रोत्साहन पाकर, यह वर्ग कंपनी के प्रति वफ़ादार बना रहेगा।

लेकिन समस्या यह पता लगाने की थी कि वे कौन से व्यक्ति हैं जो कृषि में सुधार करने के साथ-साथ राज्य को निर्धारित राजस्व अदा करने का ठेका ले सकेंगे। कंपनी के अधिकारियों के बीच परस्पर लंबे वाद-विवाद के बाद, बंगाल के राजाओं और ताल्लुकदारों के साथ इस्तमरारी बंदोबस्त लागू किया गया। अब उन्हें ज़मींदारों के रूप में वर्गीकृत किया गया और उन्हें सदा के लिए एक निर्धारित राजस्व माँग को अदा करना था। इस परिभाषा के अनुसार, ज़मींदार गाँव में भू-स्वामी नहीं था, बल्कि वह राज्य का राजस्व समाहर्ता यानी (संग्राहक) मात्र था।

ज़मींदारों के नीचे अनेक (कभी-कभी तो 400 तक) गाँव होते थे। कंपनी के हिसाब से, एक ज़मींदारी के भीतर आने वाले गाँव मिलाकर एक राजस्व संपदा का रूप ले लेते थे। कंपनी समस्त संपदा पर कुल माँग निर्धारित करती थी। तदोपरांत, ज़मींदार यह निर्धारित करता था कि भिन्न-भिन्न गाँवों से राजस्व की कितनी-कितनी माँग पूरी करनी होगी, और फिर ज़मींदार उन गाँवों से निर्धारित राजस्व राशि इकट्ठी करता था। ज़मींदार से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह कंपनी को नियमित रूप से राजस्व राशि अदा करेगा और यदि वह ऐसा नहीं करेगा वो उसकी संपदा नीलाम की जा सकेगी।

चित्र 10.3
चार्ल्स कार्नवालिस (1738-1805) का 1785 में थॉमस गेन्सबोरो द्वारा चित्रित चित्र।
अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कार्नवालिस ब्रिटिश सेना का कमांडर था। जब 1793 में बंगाल में इस्तमरारी बंदोबस्त लागू किया गया, उस समय कार्नवालिस बंगाल का गवर्नर जनरल था।

1.3 राजस्व राशि के भुगतान में ज़मींदार क्यों चूक करते थे?

कंपनी के अधिकारियों का यह सोचना था कि राजस्व माँग निर्धारित किए जाने से ज़मींदारों में सुरक्षा का भाव उत्पन्न होगा, और वे अपने निवेश पर प्रतिफल प्राप्ति की आशा से प्रेरित होकर अपनी संपदाओं में सुधार करने के लिए प्रोत्साहित होंगे। किंतु इस्तमरारी बंदोबस्त के बाद, कुछ प्रारंभिक दशकों में ज़मींदार अपनी राजस्व माँग को अदा करने में बराबर कोताही करते रहे, जिसके परिणामस्वरूप राजस्व की बकाया रकमें बढ़ती गईं।

'ताल्लुक़दार' का शब्दिक अर्थ है वह व्यक्ति जिसके साथ ताल्लुक़ यानी संबंध हो। आगे चलकर ताल्लुक़ का अर्थ क्षेत्रीय इकाई हो गया।

ज़मींदारों की इस असफलता के कई कारण थे। पहला : प्रारंभिक माँगें बहुत ऊँची थीं, क्योंकि ऐसा महसूस किया गया था कि यदि माँग को आने वाले संपूर्ण समय के लिए निर्धारित किया जा रहा है तो आगे चलकर कीमतों में बढ़ोतरी होने और खेती का विस्तार होने से आय में वृद्धि हो जाने पर भी कंपनी उस वृद्धि में अपने हिस्से का दावा कभी नहीं कर सकेगी। इस प्रत्याशित हानि को कम-से-कम स्तर पर रखने के लिए, कंपनी ने राजस्व माँग को ऊँचे स्तर पर रखा, और इसके लिए दलील दी कि ज्यों-ज्यों कृषि के उत्पादन में वृद्धि होती जाएगी और कीमतें बढ़ती जाएँगी, ज़मींदारों का बोझ शनैः शनैः कम होता जाएगा।

दूसरा : यह ऊँची माँग 1790 के दशक में लागू की गई थी जब कृषि की उपज की कीमतें नीची थीं, जिससे रैयत (किसानों) के लिए, ज़मींदार को उनकी देय राशियाँ चुकाना मुश्किल था। जब ज़मींदार स्वयं किसानों से राजस्व इकट्ठा नहीं कर सकता था तो वह आगे कंपनी को अपनी निर्धारित राजस्व राशि कैसे अदा कर सकता था? तीसरा : राजस्व असमान था, फ़सल अच्छी हो या ख़राब राजस्व का ठीक समय पर भुगतान ज़रूरी था। वस्तुतः सूर्यास्त विधि (कानून) के अनुसार, यदि निश्चित तारीख़ को सूर्य अस्त होने तक भुगतान नहीं आता था तो ज़मींदारी को नीलाम किया जा सकता था। चौथा : इस्तमरारी बंदोबस्त ने प्रारंभ में ज़मींदार की शक्ति को रैयत से राजस्व इकट्ठा करने और अपनी ज़मींदारी का प्रबंध करने तक ही सीमित कर दिया था।

'*रैयत*' शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ों के विवरणों में किसानों के लिए किया जाता था (अध्याय-8)। बंगाल में रैयत ज़मीन को खुद काश्त नहीं करते थे, बल्कि 'शिकमी-रैयत' को आगे पट्टे पर दे दिया करते थे।

कंपनी ज़मींदारों को पूरा महत्त्व तो देती थी पर वह उन्हें नियंत्रित तथा विनियमित करना, उनकी सत्ता को अपने वश में रखना और उनकी स्वायत्तता को सीमित करना भी चाहती थी। फलस्वरूप ज़मींदारों की सैन्य-टुकड़ियों को भंग कर दिया गया, सीमा शुल्क समाप्त कर दिया गया और उनकी कचहरियों को कंपनी द्वारा नियुक्त कलेक्टर की देखरेख में रख दिया गया। ज़मींदारों से स्थानीय न्याय और स्थानीय पुलिस की व्यवस्था करने की शक्ति छीन ली गई। समय के साथ-साथ, कलेक्टर का कार्यालय सत्ता के एक विकल्पी केंद्र के रूप में उभर आया और ज़मींदार के अधिकार को पूरी तरह सीमित एवं प्रतिबंधित कर दिया गया। एक मामले में तो यहाँ तक हुआ कि जब राजा राजस्व का भुगतान नहीं कर सका तो एक कंपनी अधिकारी को तुरंत इस स्पष्ट अनुदेश के साथ उसकी ज़मींदारी में भेज दिया गया कि "ज़िले का पूरा कार्यभार अपने हाथ में ले लो और राजा तथा उसके अधिकारियों के संपूर्ण प्रभाव और प्राधिकार को ख़त्म कर देने के लिए सर्वाधिक प्रभावशाली क़दम उठाओ।"

राजस्व इकट्ठा करने के समय, ज़मींदार का एक अधिकारी जिसे आमतौर *पर अमला* कहते थे, गाँव में आता था। लेकिन राजस्व संग्रहण एक परिवार्षिक समस्या थी। कभी-कभी तो खराब फ़सल और नीची

कीमतों के कारण किसानों के लिए अपनी देय राशियों का भुगतान करना बहुत कठिन हो जाता था और कभी-कभी ऐसा भी होता था कि रैयत जान बूझकर भुगतान में देरी कर देते थे। धनवान रैयत और गाँव के मुखिया – *जोतदार और मंडल* – ज़मींदार को परेशानी में देखकर बहुत खुश होते थे। क्योंकि ज़मींदार आसानी से उन पर अपनी ताकत का इस्तेमाल नहीं कर सकता था। ज़मींदार बाक़ीदारों पर मुक़दमा तो चला सकता था, मगर न्यायिक प्रक्रिया लंबी होती थी। 1798 में अकेले बर्दवान ज़िले में ही राजस्व भुगतान के बक़ाया से संबंधित 30,000 से अधिक वाद लंबित थे।

1.4 जोतदारों का उदय

अठारहवीं शताब्दी के अंत में जहाँ एक ओर अनेक ज़मींदार संकट की स्थिति से गुजर रहे थे, वहीं दूसरी ओर धनी किसानों के कुछ समूह गाँवों में अपनी स्थिति मज़बूत करते जा रहे थे। फ्रांसिस बुकानन के उत्तरी बंगाल के दिनाजपुर जिले के सर्वेक्षण में हमें धनी किसानों के इस वर्ग का, जिन्हें 'जोतदार' कहा जाता था, विशद विवरण देखने को मिलता है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों तक आते-आते, जोतदारों ने ज़मीन के बड़े-बड़े रकबे, जो कभी-कभी तो कई हज़ार एकड़ में फैले थे, अर्जित कर लिए थे। स्थानीय व्यापार और साहूकार के कारोबार पर भी उनका नियंत्रण था और इस प्रकार वे उस क्षेत्र के ग़रीब काश्तकारों पर व्यापक शक्ति का प्रयोग करते थे। उनकी ज़मीन का काफ़ी बड़ा भाग बटाईदारों (अधियारों या बरगादारों) के माध्यम से जोता जाता था, जो खुद अपने हल लाते थे, खेत में मेहनत करते थे और फ़सल के बाद उपज का आधा हिस्सा जोतदारों को दे देते थे।

गाँवों में, जोतोदारों की शक्ति, ज़मींदारों की ताक़त की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होती थी। ज़मींदार के विपरीत जो शहरी इलाक़ों में रहते थे, जोतदार गाँवों में ही रहते थे और ग़रीब ग्रामवासियों के काफ़ी बड़े वर्ग पर सीधे अपने नियंत्रण का प्रयोग करते थे। ज़मींदारों द्वारा गाँव की *जमा* (लगान) को बढ़ाने के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों का वे घोर प्रतिरोध करते थे; ज़मींदारी अधिकारियों को अपने कर्तव्यों का पालन करने से रोकते थे; जो रैयत उन पर निर्भर रहते थे उन्हें वे अपने पक्ष में एकजुट रखते थे और ज़मींदार को राजस्व के भुगतान में जान-बूझकर देरी करा देते थे। सच तो यह है कि जब राजस्व का भुगतान न किए जाने पर ज़मींदार की

चित्र 10.4
बंगाल के गाँव का दृश्य; जॉर्ज चिनरी द्वारा 1820 में चित्रित।
चिनरी भारत में 23 वर्ष (1802-25) तक रहा था। उस दौरान उसने अनेक चित्र बनाए थे जिनमें आम लोगों के जनजीवन से संबंधित चित्र, भूदृश्यों के चित्र, विशिष्ट व्यक्तियों तथा विशाल भवनों के चित्र शामिल थे। नीचे दी गई आकृति में ग्रामीण बंगाल के एक घर का चित्र दिया गया है; उन दिनों जोतदार और साहूकार लोग ऐसे ही घरों में रहा करते थे।

स्रोत 1

दिनाजपुर के जोतदार

बुकानन ने बताया है कि उत्तरी बंगाल के दिनाजपुर ज़िले के जोतदार किस प्रकार ज़मींदार के अनुशासन का प्रतिरोध और उसकी शक्ति की अवहेलना किया करते थे :

> भूस्वामी इस वर्ग के लोगों को पसंद नहीं करते थे, लेकिन यह स्पष्ट है कि इन लोगों का होना बहुत ज़रूरी था क्योंकि इनके बिना, ज़रूरतमंद काश्तकारों को पैसा उधार कौन देता...
>
> *जोतदार,* जो बड़ी-बड़ी ज़मीनें जोतते हैं, बहुत ही हठीले और जिद्दी हैं और यह जानते हैं कि ज़मींदारों का उन पर कोई वश नहीं चलता। वे तो अपने राजस्व के रूप में कुछ थोड़े से रुपये ही दे देते हैं और लगभग हर किस्त में कुछ-न-कुछ बक़ाया रक़म रह जाती है। उनके पास उनके पट्टे की हकदारी से ज़्यादा ज़मीनें हैं। ज़मींदार की रक़म के कारण, अगर अधिकारी उन्हें कचहरी में बुलाते थे और उन्हें डराने-धमकाने के लिए घंटे-दो-घंटे कचहरी में रोक लेते हैं तो वे तुरंत उनकी शिकायत करने के लिए फ़ौजदारी थाना (पुलिस थाना) या मुन्सिफ़ की कचहरी में पहुँच जाते हैं और कहते हैं कि ज़मींदार के कारिंदों ने उनका अपमान किया है। इस प्रकार राजस्व की बक़ाया रक़मों के मामलें बढ़ते जाते हैं और जोतदार छोटे-छोटे रैयत को राजस्व न देने के लिए भड़काते रहते हैं...

➲ यह बताइए कि *जोतदार* ज़मींदारों की सत्ता का किस प्रकार प्रतिरोध किया करते थे।

ज़मींदारी को नीलाम किया जाता था तो अकसर जोतदार ही उन ज़मीनों को ख़रीद लेते थे।

उत्तरी बंगाल में जोतदार सबसे अधिक शक्तिशाली थे, हालांकि धनी किसान और गाँव के मुखिया लोग भी बंगाल के अन्य भागों के देहाती इलाक़ों में प्रभावशाली बनकर उभर रहे थे। कुछ जगहों पर उन्हें '*हवलदार*' कहा जाता था और कुछ अन्य स्थानों पर वे *गाँटीदार* (Gantidars) या '*मंडल*' कहलाते थे। उनके उदय से ज़मींदारों के अधिकार का कमज़ोर पड़ना अवश्यंभावी था।

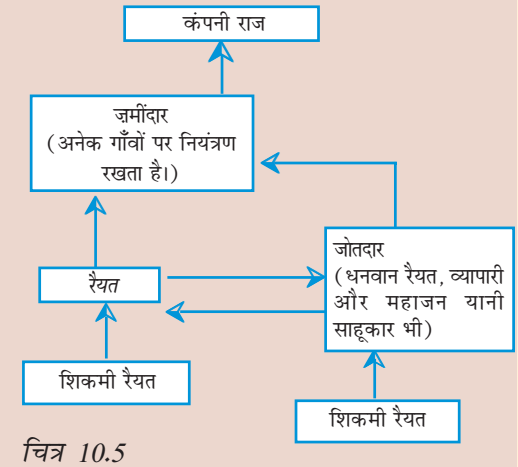

चित्र 10.5
ग्रामीण बंगाल में शक्ति के धारक

- ज़मींदार (क) कंपनी को राजस्व अदा करने के लिए, (ख) गाँवों पर राजस्व संबंधी माँग (जमा) निर्धारित करने के लिए जिम्मेदार थे।
- गाँव का प्रत्येक छोटा या बड़ा रैयत, ज़मींदार को लगान अदा करता था।
- *जोतदार अन्य रैयतों को उधार देते थे और अपनी उपज बेचते थे।*
- *रैयत कुछ ज़मीन खुद जोतते थे और बाकी ज़मीन शिकमी रैयत को लगान पर दे देते थे।*
- शिकमी रैयत, रैयतों को लगान देते थे।

➲ चित्र 10.5 के साथ दिए गए पाठ को सावधानीपूर्वक पढ़िए और तीर के निशानों के साथ-साथ उपयुक्त स्थलों पर ये शब्द भरिए : लगान, राजस्व, ब्याज, उधार (ऋण), उपज।

1.5 ज़मींदारों की ओर से प्रतिरोध

किंतु, ग्रामीण क्षेत्रों में ज़मींदारों की सत्ता समाप्त नहीं हुई। राजस्व की अत्यधिक माँग और अपनी भू-संपदा की संभावित नीलामी की समस्या से निपटने के लिए ज़मींदारों ने इन दबावों से उबरने के रास्ते निकाल लिए। नए संदर्भों में नयी रणनीतियाँ बना ली गईं।

फ़र्जी बिक्री एक ऐसी ही तरक़ीब थी। इसमें कई तरह के हथकंडे अपनाए जाते थे। बर्दवान के राजा ने पहले तो अपनी ज़मींदारी का कुछ हिस्सा अपनी माता को दे दिया क्योंकि कंपनी ने यह निर्णय ले रखा था कि स्त्रियों की संपति को नहीं छीना जाएगा। फिर दूसरे क़दम के तौर पर उसके एजेंटों ने नीलामी की प्रक्रिया में जोड़-तोड़ किया। कंपनी की राजस्व माँग को जान-बूझकर रोक लिया गया और भुगतान न की गई बक़ाया राशि बढ़ती गई। जब भू-संपदा का कुछ हिस्सा नीलाम किया गया तो ज़मींदार के आदमियों ने ही अन्य ख़रीददारों के मुक़ाबले ऊँची-ऊँची बोलियाँ लगाकर संपत्ति को ख़रीद लिया। आगे चलकर उन्होंने ख़रीद की राशि को अदा करने से इनकार कर दिया, इसलिए

उस भूसंपदा को फिर से बेचना पड़ा। एक बार फिर ज़मींदार के एजेंटों ने ही उसे ख़रीद लिया और फिर एक बार ख़रीद की रक़म नहीं अदा की गई और इसलिए एक बार फिर नीलामी करनी पड़ी। यह प्रक्रिया बार-बार दोहराई जाती रही और अंततोगत्वा राज और नीलामी के समय बोली लगाने वाले थक गए। जब किसी ने भी बोली नहीं लगाई तो उस संपदा को नीची क़ीमत पर फिर ज़मींदार को ही बेचना पड़ा। ज़मींदार कभी भी राजस्व की पूरी माँग नहीं अदा करता था; इस प्रकार कंपनी कभी-कभार ही किसी मामले में इकट्ठी हुई बकाया राजस्व की राशियों को वसूल कर पाती थी।

ऐसे सौदे बड़े पैमाने पर हुए। सन् 1793 से 1801 के बीच, बंगाल की चार बड़ी ज़मींदारियों ने, जिनमें बर्दवान की ज़मींदारी भी एक थी, अनेक *बेनामी* ख़रीददारियाँ कीं जिनसे कुल मिलाकर 30 लाख रुपये की प्राप्ति हुई। नीलामियों में की गई कुल बिक्रियों में से 15 प्रतिशत सौदे नक़ली थे।

ज़मींदार लोग और भी कई तरीकों से अपनी ज़मींदारी को छिनने से बचा लेते थे। जब कोई बाहरी व्यक्ति नीलामी में कोई ज़मीन ख़रीद लेते थे तभी उन्हें हर मामले में उसका क़ब्ज़ा नहीं मिलता था। कभी-कभी तो पुराने ज़मींदार के 'लठियाल' नए ख़रीददार के लोगों को मारपीटकर भगा देते थे और कभी-कभी तो ऐसा भी होता था कि पुराने रैयत बाहरी लोगों को यानी नए ख़रीददार के लोगों को ज़मीन में घुसने ही नहीं देते थे। वे अपने आपको पुराने ज़मींदार से जुड़ा हुआ महसूस करते थे और उसी के प्रति वफ़ादार बने रहते थे और यह मानते थे कि पुराना ज़मींदार ही उनका अन्नदाता है और वे उसकी प्रजा हैं। ज़मींदारी की बिक्री से उनके तादात्म्य और गौरव को धक्का पहुँचता था। इसलिए ज़मींदार आसानी से विस्थापित नहीं किए जा सकते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में कीमतों में मंदी की स्थिति समाप्त हो गई। इसलिए, जो ज़मींदार 1790 के दशक की तकलीफ़ों को झेलने में सफल हो गए, उन्होंने अपनी सत्ता को सुदृढ़ बना लिया। राजस्व के भुगतान संबंधी नियमों को भी कुछ लचीला बना दिया गया। फलस्वरूप गाँवों पर ज़मींदार की सत्ता और अधिक मज़बूत हो गई लेकिन आगे चलकर 1930 के दशक की घोर मंदी की हालत में अंततः ज़मींदारों का भट्ठा बैठ गया और *जोतदारों* ने देहात में अपने पाँव मज़बूत कर लिए।

चित्र 10.6
महाराजा मेहताब चंद (1820-79)।
जब इस्तमरारी बंदोबस्त लागू किया गया था, तब तेजचंद, बर्दवान का राजा था। उसके बाद, मेहताबचंद के शासन में बर्दवान की ज़मींदारी काफ़ी फली-फूली। मेहताबचंद ने संथालों के विद्रोह और 1857 के विद्रोह के दौरान अंग्रेजी हुकूमत का साथ दिया था।

1.6 पाँचवीं रिपोर्ट

हम जिन परिवर्तनों पर चर्चा कर रहे हैं उनमें से बहुत से परिवर्तनों का विस्तृत विवरण एक रिपोर्ट में दिया गया है जो सन् 1813 में ब्रिटिश संसद में पेश की गई थी। यह उन रिपोर्टों में से पाँचवीं रिपोर्ट थी जो भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन तथा क्रियाकलापों के विषय में तैयार की गई थी। अक्सर 'पाँचवीं रिपोर्ट' के नाम से उल्लिखित यह रिपोर्ट 1,002 पृष्ठों में थी। इसके 800 से अधिक पृष्ठ परिशिष्टों के थे जिनमें ज़मींदारों और रैयतों की अर्जियाँ, भिन्न-भिन्न जिलों के

कलेक्टरों की रिपोर्टें, राजस्व विवरणियों से संबंधित सांख्यिकीय तालिकाएँ और अधिकारियों द्वारा बंगाल और मद्रास के राजस्व तथा न्यायिक प्रशासन पर लिखित टिप्पणियाँ शामिल की गई थीं।

कंपनी ने 1760 के दशक के मध्य में जब से बंगाल में अपने आपको स्थापित किया था तभी से इंग्लैण्ड में उसके क्रियाकलापों पर बारीकी से नज़र रखी जाने लगी थी और उन पर चर्चा की जाती थी। ब्रिटेन में बहुत से ऐसे समूह भी थे जो भारत तथा चीन के साथ व्यापार पर ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार का विरोध करते थे। वे चाहते थे कि उस शाही फरमान को रद्द कर दिया जाए जिसके तहत इस कंपनी को यह एकाधिकार दिया गया था। ऐसे निजी व्यापारियों की संख्या बढ़ती जा रही थी जो भारत के साथ होने वाले व्यापार में हिस्सा लेना चाहते थे और ब्रिटेन के उद्योगपति ब्रिटिश विनिर्माताओं के लिए भारत का बाज़ार खुलवाने के लिए उत्सुक थे। कई राजनीतिक समूहों का तो यह कहना था कि बंगाल पर मिली विजय का लाभ केवल ईस्ट इंडिया कंपनी को ही मिल रहा है, संपूर्ण ब्रिटिश राष्ट्र को नहीं। कंपनी के कुशासन और अव्यवस्थित प्रशासन के विषय में प्राप्त सूचना पर ब्रिटेन में गरमागरम बहस छिड़ गई और कंपनी के अधिकारियों के लोभ-लालच और भ्रष्टाचार की घटनाओं को ब्रिटेन के समाचारपत्रों में व्यापक रूप से उछाला गया। ब्रिटिश संसद ने भारत में कंपनी के शासन को विनियमित और नियंत्रित करने के लिए अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में अनेक अधिनियम पारित किए। कंपनी को बाध्य किया गया कि वह भारत के प्रशासन के विषय में नियमित रूप से अपनी रिपोर्ट भेजा करे और कंपनी के कामकाज की जाँच करने के लिए कई समितियाँ नियुक्त

बेनामी का शाब्दिक अर्थ 'गुमनाम' है, हिंदी तथा कुछ अन्य भारतीय भाषाओं में इस शब्द का प्रयोग ऐसे सौदों के लिए किया जाता है जो किसी फ़र्जी या अपेक्षाकृत महत्त्वहीन व्यक्ति के नाम से किए जाते हैं और उनमें असली फ़ायदा पाने वाले व्यक्ति का नाम नहीं दिया जाता।

लठियाल, का शाब्दिक अर्थ है वह व्यक्ति जिसके पास लाठी या डंडा हो। ये ज़मींदार के लठैत यानी डंडेबाज पक्षधर होते थे।

चित्र 10.7
अंडुल राजमहल
ऐसे राजमहल एक युगांत को दर्शाने वाले अवशेष हैं। ज़मींदारों के रहन-सहन की पतनोन्मुख वैभवशाली जीवन शैली पर बनी सत्यजीत राय की प्रसिद्ध फिल्म '*जलशाघर*' की शूटिंग इसी अंडुल राजमहल में की गई थी।

की गईं। 'पाँचवीं रिपोर्ट' एक ऐसी ही रिपोर्ट है जो एक प्रवर समिति द्वारा तैयार की गई थी। यह रिपोर्ट भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के स्वरूप पर ब्रिटिश संसद में गंभीर वाद-विवाद का आधार बनी।

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में ग्रामीण बंगाल में क्या हुआ इसके बारे में हमारी अवधारणा लगभग डेढ़ शताब्दी तक इस पाँचवीं रिपोर्ट के आधार पर ही बनती-सुधरती रही। पाँचवीं रिपोर्ट में उपलब्ध साक्ष्य बहुमूल्य हैं। लेकिन ऐसी की सरकारी रिपोर्टों को सावधानीपूर्वक पढ़ना और समझना चाहिए। हमें यह जानने की ज़रूरत है कि ये रिपोर्ट किसने और किस उद्देश्य से लिखी। वास्तव में आधुनिक शोधों से पता चलता है कि पाँचवीं रिपोर्ट में दिए गए तर्कों और साक्ष्यों को बिना किसी आलोचना के स्वीकार नहीं किया जा सकता।

शोधकर्ताओं ने ग्रामीण बंगाल में औपनिवेशिक शासन के बारे में लिखने के लिए बंगाल के अनेक ज़मींदारों के अभिलेखागारों तथा ज़िलों के स्थानीय अभिलेखों की सावधानीपूर्वक जाँच की है। उनसे पता चलता है कि पाँचवीं रिपोर्ट लिखने वाले कंपनी के कुप्रशासन की आलोचना करने पर तुले हुए थे इसलिए पाँचवीं रिपोर्ट में परंपरागत ज़मींदारी सत्ता के पतन का वर्णन अतिरंजित है और जिस पैमाने पर ज़मींदार लोग अपनी ज़मीनें खोते जा रहे थे उसके बारे में भी बढ़ा-चढ़ा कर कहा गया है। जैसा कि हमने देखा है, जब जमींदारियाँ नीलाम की जाती थीं, तब भी ज़मींदार नए-नए हथकंडे अपनाकर अपनी ज़मींदारी को बचा लेते थे और बहुत कम मामलों में विस्थापित होते थे।

स्रोत 2

पाँचवीं रिपोर्ट से उद्धृत

ज़मींदारों की हालत और ज़मीनों की नीलामी के बारे में पाँचवीं रिपोर्ट में कहा गया है :

> राजस्व समय पर नहीं वसूल किया जाता था और काफ़ी हद तक ज़मीनें समय-समय पर नीलामी पर बेचने के लिए रखी जाती थीं। स्थानीय वर्ष 1203, तदनुसार सन् 1796-97 में बिक्री के लिए विज्ञापित ज़मीन की निर्धारित राशि (जुम्मा) 28,70,061 सिक्का रु. थी और वह वास्तव में 17,90,416 रु. में बेची गई और 14,18,756 रु. की राशि जुम्मा के रूप में प्राप्त हुई। स्थानीय संवत 1204, तदनुसार सन् 1797-98 में 26,66,191 सिक्का रु. के लिए ज़मीन विज्ञापित की गई, 22,74,076 सिक्का रु॰ की ज़मीन बेची गई और क्रय राशि 21,47,580 सिक्का रु. थी। बाकीदारों में कुछ लोग देश के बहुत पुराने परिवारों में से थे। ये थे : नदिया, राजशाही, विशनपुर (सभी बंगाल के ज़िले) आदि के राजा...। साल दर साल उनकी जागीरों के टूटते जाने से उनकी हालत बिगड़ गई। उन्हें ग़रीबी और बरबादी का सामना करना पड़ा और कुछ मामलों में तो सार्वजनिक निर्धारण की राशि को यथावत बनाए रखने के लिए राजस्व अधिकारियों को भी काफ़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं।

➲ जिस लहज़े में साक्ष्य अभिलिखित किया गया है, उससे आप रिपोर्ट में वर्णित तथ्यों के प्रति रिपोर्ट लिखने वाले के रुख़ के बारे में क्या सोचते हैं? आंकड़ों के ज़रिये रिपोर्ट में क्या दर्शाने की कोशिश की गई है? क्या इन दो वर्षों के आंकड़ों से आपके विचार से, किसी भी समस्या के बारे में दीर्घकालीन निष्कर्ष निकालना संभव होगा?

➲ चर्चा कीजिए...

आपने ज़मींदारों के हाल के बारे में अभी जो कुछ पढ़ा है उसकी तुलना अध्याय-8 में दिए गए विवरण से कीजिए।

2. कुदाल और हल

आइए अब हम अपना ध्यान बंगाल की गीली ज़मीनों से हटाकर सूखे अंचलों पर और स्थायी कृषि के क्षेत्र से हटाकर झूम कृषि के क्षेत्र पर केंद्रित करें। आप उन परिवर्तनों को देखेंगे जो कृषक अर्थव्यवस्था की सीमाओं के बाहर की ओर विस्तार होने से आए, जिससे राजमहल की पहाड़ियों के इलाक़े में स्थित जंगल और चरागाह उस अर्थव्यवस्था में समा गए। आप यह भी देखेंगे कि इन परिवर्तनों के कारण इस क्षेत्र के भीतर तरह-तरह के झगड़े-झंझट कैसे उत्पन्न हुए।

2.1 राजमहल की पहाड़ियों में

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में, बुकानन ने राजमहल की पहाड़ियों का दौरा किया था। उसके वर्णन के अनुसार ये पहाड़ियाँ अभेद्य लगती थीं। यह एक ऐसा ख़तरनाक इलाक़ा था जहाँ बहुत कम यात्री जाने की हिम्मत करते थे। बुकानन जहाँ कहीं भी गया, वहाँ उसने निवासियों के व्यवहार को शत्रुतापूर्ण पाया। वे लोग कंपनी के अधिकारियों के प्रति आशंकित थे और उनसे बातचीत करने को तैयार नहीं थे। कई उदाहरणों में तो वे अपने घर-बार और गाँव छोड़कर भाग गए थे।

ये पहाड़ी लोग कौन थे? वे बुकानन के दौरे के प्रति इतने आशंकित क्यों थे? बुकानन की पत्रिका में हमें उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में इन लोगों की जो तरस खाने वाली हालत थी उसकी झलक मिलती है। उन स्थानों के बारे में उसने डायरी लिखी थी, जहाँ-जहाँ उसने भ्रमण किया था, लोगों से मुलाक़ात की थी और उनके रीति-रिवाज़ों को देखा था। यह पत्रिका हमारे मस्तिष्क में अनेक प्रश्न खड़े करती है। किंतु यह हमेशा हमें उत्तर देने में सहायक नहीं होती है। उसकी यह डायरी समय के केवल एक क्षण-विशेष के बारे में ही बतलाती है, लोगों तथा स्थानों के लंबे इतिहास के बारे में नहीं बतलाती। ऐसे लंबे इतिहास के लिए इतिहासकारों को अन्य रिकार्डों की ओर मुड़ना होगा।

यदि हम अठारहवीं शताब्दी के परवर्ती दशकों के राजस्व अभिलेखों पर दृष्टिपात करें तो हम जान लेंगे कि इन पहाड़ी लोगों को पहाड़िया क्यों कहा जाता था। वे राजमहल की पहाड़ियों के इर्द-गिर्द रहा करते थे। वे जंगल की उपज से अपनी गुजर-बसर करते थे और झूम खेती किया करते थे। वे जंगल के छोटे-से हिस्से में झाड़ियों को काटकर और घास-फूँस को जलाकर ज़मीन साफ़ कर लेते थे और राख की पोटाश से उपजाऊ बनी ज़मीन पर ये पहाड़िया लोग अपने खाने के लिए तरह-तरह की दालें और ज्वार-बाजरा उगा लेते थे। वे अपने कुदाल से ज़मीन को थोड़ा खुरच लेते थे, कुछ वर्षों तक उस साफ़ की गई ज़मीन में खेती करते थे और फिर उसे कुछ वर्षों के लिए परती छोड़ कर नए इलाक़े में चले जाते थे जिससे कि उस ज़मीन में खोई हुई उर्वरता फिर से उत्पन्न हो जाती थी।

बुकानन कौन था?

फ़्रांसिस बुकानन एक चिकित्सक था जो भारत आया और बंगाल चिकित्सा सेवा में (1794 से 1815 तक) कार्य किया। कुछ वर्षों तक, वह भारत के गवर्नर जनरल लार्ड बेलेज़्ली का शल्य-चिकित्सक रहा। कलकत्ता (वर्तमान में कोलकत्ता) के अपने प्रवास के दौरान उसने कलकत्ता में एक चिड़ियाघर की स्थापना की, जो कलकत्ता अलीपुर चिड़ियाघर कहलाया। वे थोड़े समय के लिए वानस्पतिक उद्यान के प्रभारी रहे। बंगाल सरकार के अनुरोध पर उन्होंने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार क्षेत्र में आने वाली भूमि का विस्तृत सर्वेक्षण किया। 1815 में वह बीमार हो गए और इंग्लैण्ड चले गए। अपनी माता की मृत्यु के पश्चात् वे उनकी जायदाद के वारिस बने और उन्होंने उनके वंश के नाम 'हैमितटन' को अपना लिया। इसलिए उन्हें अकसर बुकानन-हैमितटन भी कहा जाता है।

उन जंगलों से पहाड़िया लोग खाने के लिए *महुआ* के फूल इकट्ठे करते थे, बेचने के लिए रेशम के कोया और राल और काठकोयला बनाने के लिए लकड़ियाँ इकट्ठी करते थे। पेड़ों के नीचे जो छोटे-छोटे पौधे उग आते थे या परती ज़मीन पर जो घास-फूँस की हरी चादर-सी बिछ जाती थी वह पशुओं के लिए चरागाह बन जाती थी।

चित्र 10.8

राजमहल की पहाड़ियों में स्थित एक पहाड़ी गाँव का चित्र जो 1782 में विलियय होजेज द्वारा चित्रित किया गया था।

विलियम होजेज एक ब्रिटिश कलाकार था जो कैप्टेन कुक के साथ उसकी प्रशांत महासागर की दूसरी समुद्र यात्रा (1772-75) के दौरान प्रशांत क्षेत्र में गया था और वहाँ से भारत आया था। 1781 में वह भागलपुर के कलेक्टर ऑगस्टस क्लीवलैंड का मित्र बन गया था। क्लीवलैंड के निमंत्रण पर होजेज 1782 में उसके साथ जंगल महालों के भ्रमण पर गया था। वहाँ होजेज ने कई एक्वाटिंट तैयार किए थे। उस समय के अनेक चित्रकारों की तरह होजेज ने भी बड़े सुंदर-सुंदर रमणीय दृश्यों की खोज की थी। उस समय के चित्रोपम दृश्यों के खोजी कलाकार स्वच्छंदतावाद की विचारधारा से प्रेरित थे; इस विचारधारा के अंतर्गत प्रकृति की पूजा की जाती थी और उसके सौंदर्य एवं शक्ति की प्रशंसा की जाती थी। रूमानी कलाकार यह महसूस करते थे कि प्रकृति से संलाप संबंध बनाने के लिए यह आवश्यक है कि कलाकार प्रकृति के निकट संपर्क में आए, अपने ग्राम गीतों में प्रकृति का चित्रण करे, आधुनिक कृत्रिम सभ्यता से दूषित न हो, अज्ञात भूदृश्यों को खोजे और छाया एवं प्रकाश के अलौकिक आनन्द का लाभ उठाए। प्रकृति के इन्हीं रहस्यों की खोज में ही होजेज ने राजमहल की पहाड़ियों का भ्रमण किया था। उसे समतल-सपाट भूखंड नीरस लगे, जबकि विविधतापूर्ण, ऊँची-नीची, उबड़-खाबड़ ज़मीन में सुंदरता के दर्शन हुए। औपनिवशिक अधिकारी जिन भूदृश्यों को भयंकर तथा उजाड़, उपद्रवी जंगली लोगों का निवास स्थल मानते थे, वे दृश्य होजेज की चित्रकारी में मनमोहक और रमणीय दिखाई देते हैं।

➲ ऊपर दिए गए चित्र को देखिए और यह पता लगाइए कि होजेज ने राजमहल की पहाड़ियों को किसलिए रमणीय माना था।

एक्वाटिंट (ताम्रपट्टोत्कीर्णन) एक ऐसी तसवीर होती है जो ताम्रपट्टी में अम्ल की सहायता से चित्र के रूप में कटाई करके छापी जाती है।

शिकारियों, झूम खेती करने वालों, खाद्य बटोरने वालों, काठकोयला बनाने वालों, रेशम के कीड़े पालने वालों के रूप में पहाड़िया लोगों की ज़िंदगी इस प्रकार जंगल से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई थी। वे इमली के पेड़ों के बीच बनी अपनी झोपड़ियों में रहते थे और आम के पेड़ों की छाँह में आराम करते थे। वे पूरे प्रदेश को अपनी निजी भूमि मानते थे और यह भूमि उनकी पहचान और जीवन का आधार थी। वे बाहरी लोगों के प्रवेश का प्रतिरोध करते थे। उनके मुखिया लोग अपने समूह में एकता बनाए रखते थे, आपसी लड़ाई-झगड़े निपटा देते थे और अन्य जनजातियों तथा मैदानी लोगों के साथ लड़ाई छिड़ने पर अपनी जनजाति का नेतृत्व करते थे।

चित्र 10.9
विलियम होजेज द्वारा चित्रित जंगल प्रदेश का एक दृश्य।
यहाँ आप जंगल से ढकी हुई नीची पहाड़ियाँ, और ऊँची चोटियाँ भी देख सकते हैं जो कहीं भी वास्तव में 2000 फुट से ऊँची नहीं हैं। बीच में खड़ी दुरूह पहाड़ियाँ दिखलाकर होजेज उनकी दुर्गमता पर बल देना चाहता है।

➲ चित्र 10.8 और 10.9 को देखिए। इन चित्रों द्वारा जनजातीय मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबंधों को किस प्रकार दर्शाया गया है; वर्णन कीजिए।

इन पहाड़ियों को अपना मूलाधार बनाकर, पहाड़िया लोग बराबर उन मैदानों पर आक्रमण करते रहते थे जहाँ किसान एक स्थान पर बस कर अपनी खेती-बाड़ी किया करते थे। पहाड़ियों द्वारा ये आक्रमण ज़्यादातर अपने आपको विशेष रूप से अभाव या अकाल के वर्षों में जीवित रखने के लिए किए जाते थे। साथ ही, ये हमले मैदानों में बसे हुए समुदायों पर अपनी ताक़त दिखलाने का भी एक तरीक़ा था। इसके अलावा, ऐसे आक्रमण बाहरी लोगों के साथ अपने राजनीतिक संबंध बनाने के लिए भी किए जाते थे। मैदानों में रहने वाले ज़मींदारों को अकसर इन पहाड़ी मुखियाओं को नियमित रूप से ख़िराज देकर उनसे शांति ख़रीदनी पड़ती थी। इसी प्रकार, व्यापारी लोग भी इन पहाड़ियों द्वारा नियंत्रित रास्तों का इस्तेमाल करने की अनुमति प्राप्त करने हेतु उन्हें कुछ पथकर दिया करते थे। जब ऐसा पथकर पहाड़िया मुखियाओं को मिल जाता था तो वे व्यापारियों की रक्षा करते थे और यह भी आश्वासन देते थे कि कोई भी उनके माल को नहीं लूटेगा।

इस प्रकार कुछ ले-देकर की गई शांति संधि अधिक लंबे समय तक नहीं चली। यह अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में उस समय भंग हो गई जब स्थिर खेती के क्षेत्र की सीमाएँ आक्रामक रीति से पूर्वी भारत में बढ़ाई जाने लगीं। अंग्रेज़ों ने जंगलों की कटाई-सफ़ाई के काम को प्रोत्साहित किया और ज़मींदारों तथा जोतदारों ने परती भूमि को धान के खेतों में बदल दिया। अंग्रेज़ों के लिए स्थायी कृषि का विस्तार आवश्यक था क्योंकि उससे राजस्व के स्रोतों में वृद्धि हो सकती थी, निर्यात के लिए फ़सल पैदा हो सकती थी और एक स्थायी, सुव्यवस्थित समाज की स्थापना हो सकती थी। वे जंगलों को उजाड़ मानते थे और वनवासियों

को असभ्य, बर्बर, उपद्रवी और क्रूर समझते थे जिन पर शासन करना उनके लिए कठिन था। इसलिए उन्होंने यही महसूस किया कि जंगलों का सफ़ाया करके, वहाँ स्थायी कृषि स्थापित करनी होगी और जंगली लोगों को पालतू व सभ्य बनाना होगा; उनसे शिकार का काम छुड़वाना होगा और खेती का धंधा अपनाने के लिए उन्हें राज़ी करना होगा।

ज्यों-ज्यों स्थायी कृषि का विस्तार होता गया, जंगलों तथा चरागाहों का क्षेत्र संकुचित होता गया। इससे पहाड़ी लोगों तथा स्थायी खेतीहरों के बीच झगड़ा तेज़ हो गया। पहाड़ी लोग पहले से अधिक नियमित रूप से बसे हुए गाँवों पर हमले बोलने लगे और ग्रामवासियों से अनाज और पशु छीन-झपट कर ले जाने लगे। औपनिवेशिक अधिकारियों ने उत्तेजित होकर इन पहाड़ियों पर काबू की भरसक कोशिशें कीं परंतु उनके लिए ऐसा करना आसान नहीं था।

1770 के दशक में ब्रिटिश अधिकारियों ने इन पहाड़ियों को निर्मूल कर देने की क्रूर नीति अपना ली और उनका शिकार और संहार करने लगे। तदोपरांत, 1780 के दशक में भागलपुर के कलेक्टर ऑगस्टस क्लीवलैंड ने शांति स्थापना की नीति प्रस्तावित की जिसके अनुसार पहाड़िया मुखियाओं को एक वार्षिक भत्ता दिया जाना था और बदले में उन्हें अपने आदमियों का चाल-चलन ठीक रखने की जिम्मेदारी लेनी थी। उनसे यह भी आशा की गई थी कि वे अपनी बस्तियों में व्यवस्था बनाए रखेंगे और अपने लोगों को अनुशासन में रखेंगे। लेकिन बहुत से पहाड़िया मुखियाओं ने भत्ता लेने से मना कर दिया। जिन्होंने इसे स्वीकार किया उनमें से अधिकांश अपने समुदाय में अपनी सत्ता खो बैठे। औपनिवेशिक सरकार के वेतनभोगी बन जाने से उन्हें अधीनस्थ कर्मचारी या वैतनिक मुखिया माना जाने लगा।

जब शांति स्थापना के लिए अभियान चल रहे थे तभी पहाड़िया लोग अपने आपको शत्रुतापूर्ण सैन्यबलों से बचाने के लिए और बाहरी लोगों से लड़ाई चालू रखने के लिए पहाड़ों के भीतरी भागों में चले गए। इसलिए जब 1810-11 की सर्दियों में बुकानन ने इस क्षेत्र की यात्रा की थी तो यह स्वाभाविक ही था कि पहाड़िया लोग बुकानन को संदेह और अविश्वास की दृष्टि से देखते। शांति स्थापना के अभियानों के अनुभव और क्रूरतापूर्ण दमन की यादों के कारण उनके मन में यह धारणा बन गई थी कि उनके इलाक़े में ब्रिटिश लोगों की घुसपैठ का क्या असर होने वाला है। उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि प्रत्येक गोरा आदमी एक ऐसी शक्ति का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो उनसे उनके जंगल और ज़मीन छीन कर उनकी जीवन शैली और जीवित रहने के साधनों को नष्ट करने पर उतारू हैं।

वस्तुत: इन्हीं दिनों उन्हें एक नए खतरे की सूचनाएँ मिलने लगी थीं और वह था संथाल लोगों का आगमन। संथाल लोग वहाँ के जंगलों का सफ़ाया करते हुए, इमारती लकड़ी को काटते हुए, ज़मीन जोतते हुए और चावल तथा कपास उगाते हुए उस इलाक़े में बड़ी संख्या में घुसे चले आ रहे थे। चूँकि संथाल बाशिंदों ने निचली पहाड़ियों पर अपना क़ब्ज़ा

जमा लिया था, इसलिए पहाड़ियों को राजमहल की पहाड़ियों में और भीतर की ओर पीछे हटना पड़ा। पहाड़िया लोग अपनी झूम खेती के लिए कुदाल का प्रयोग करते थे; इसलिए यदि कुदाल को पहाड़िया जीवन का प्रतीक माना जाए तो हल को नए बाशिंदों (संथालों) की शक्ति का प्रतिनिधि मानना होगा। हल और कुदाल के बीच की यह लड़ाई बहुत लंबी चली।

2.2 संथाल : अगुआ बाशिंदे

सन् 1810 के अंत में, बुकानन ने गंजुरिया पहाड़, जो कि राजमहल शृंखलाओं का एक भाग था, को पार किया और आगे के चट्टानी प्रदेश के बीच से निकलकर वह एक गाँव में पहुँच गया। वैसे तो यह एक पुराना गाँव था पर उसके आस-पास की ज़मीन खेती करने के लिए अभी-अभी साफ़ की गई थी। वहाँ के भूदृश्य को देखकर उसे पता चला कि 'मानव श्रम के समुचित प्रयोग से' उस क्षेत्र की तो काया ही पलट गई है। उसने लिखा, "गंजुरिया में अभी-अभी काफ़ी जुताई की गई है जिससे यह पता चलता है कि इसे कितने शानदर इलाक़े में बदला जा सकता है। मैं सोचता हूँ, इसकी सुंदरता और समृद्धि विश्व के किसी भी क्षेत्र जैसी विकसित की जा सकती है। यहाँ की ज़मीन अलबत्ता चट्टानी है लेकिन बहुत ही ज़्यादा बढ़िया है और बुकानन ने उतनी बढ़िया तंबाकू और सरसों और कहीं नहीं देखीं। पूछने पर उसे पता चला कि वहाँ संथालों ने कृषि क्षेत्र की सीमाएँ काफ़ी बढ़ा ली थीं। वे इस इलाक़े में 1800 के आस-पास आए थे, उन्होंने वहाँ रहने वाले पहाड़ी लोगों को नीचे के ढालों पर भगा दिया, जंगलों का सफ़ाया किया और फिर वहाँ बस गए।

संथाल लोग राजमहल की पहाड़ियों में कैसे पहुँचे? संथाल 1780 के दशक के आस-पास बंगाल में आने लगे थे। ज़मींदार लोग खेती के लिए नयी भूमि तैयार करने और खेती का विस्तार करने के लिए उन्हें भाड़े पर रखते थे और ब्रिटिश अधिकारियों ने उन्हें जंगल महालों में बसने का

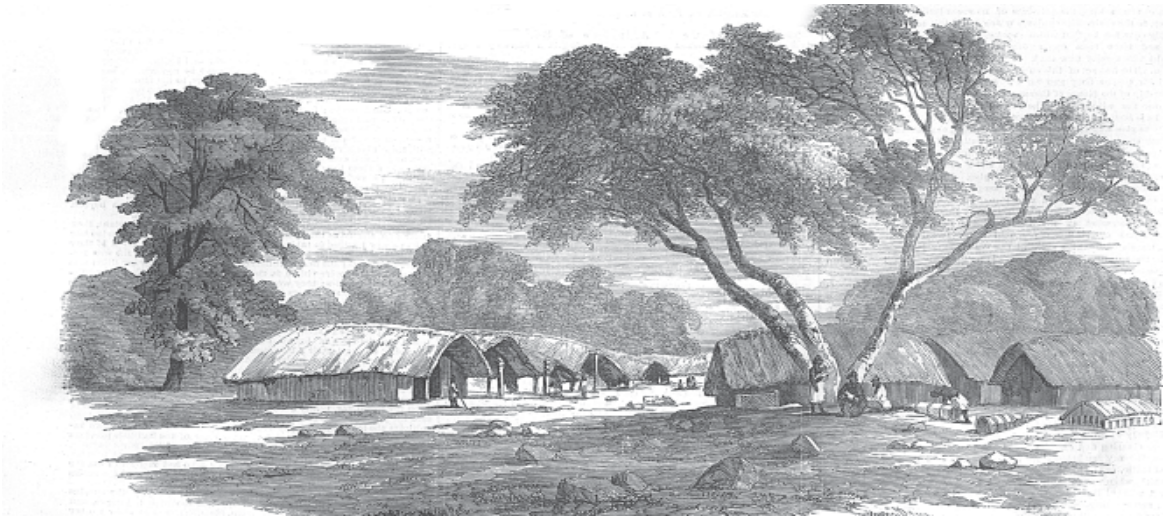

चित्र 10.10
संथाल प्रदेश में स्थित एक पहाड़ी ग्राम, 23 फ़रवरी 1856 के 'लंदन न्यूज' में प्रकाशित चित्र।
राजमहल की निचली पहाड़ियों में स्थित गाँव का यह चित्र 1850 के दशक के प्रारंभ में वाल्टरशेरबिल द्वारा चित्रित किया गया था। यह गाँव शांतिपूर्ण, नीरव और रमणीय प्रतीत होता है। बाहरी दुनिया का इस पर कोई असर हुआ प्रतीत नहीं होता।

➲ चित्र 10.12 से इस संथाल गाँव के चित्र की तुलना कीजिए।

निमंत्रण दिया। जब ब्रिटिश लोग पहाड़ियों को अपने बस में करके स्थायी कृषि के लिए एक स्थान पर बसाने में असफल रहे तो उनका ध्यान संथालों की ओर गया। पहाड़िया लोग जंगल काटने के लिए हल को हाथ लगाने को तैयार नहीं थे और अब भी उपद्रवी व्यवहार करते थे। जबकि, इसके विपरीत, संथाल आदर्श बाशिंदे प्रतीत हुए, क्योंकि उन्हें जंगलों का सफ़ाया करने में कोई हिचक नहीं थी और वे भूमि को पूरी ताक़त लगाकर जोतते थे।

संथालों को ज़मीनें देकर राजमहल की तलहटी में बसने के लिए तैयार कर लिया गया। 1832 तक, ज़मीन के एक काफ़ी बड़े इलाक़े को दामिन-इ-कोह के रूप में सीमांकित कर दिया गया। इसे संथालों की भूमि घोषित कर दिया गया। उन्हें इस इलाके के भीतर रहना था, हल चलाकर खेती करनी थी और स्थायी किसान बनना था। संथालों को दी जाने वाली भूमि के अनुदान-पत्र में यह शर्त थी कि उनको दी गई भूमि के कम-से-कम दसवें भाग को साफ़ करके पहले दस वर्षों के भीतर जोतना था। इस पूरे क्षेत्र का सर्वेक्षण करके उसका नक्शा तैयार किया गया। इसके चारों ओर खंबे गाड़कर इसकी परिसीमा निर्धारित कर दी गई और इसे मैदानी इलाके के स्थायी कृषकों की दुनिया से और पहाड़िया लोगों की पहाड़ियों से अलग कर दिया गया।

दामिन-इ-कोह के सीमांकन के बाद, संथालों की बस्तियाँ बड़ी तेज़ी से बढ़ीं, संथालों के गाँवों की संख्या जो 1838 में 40 थी, तेज़ी से बढ़कर 1851 तक 1,473 तक पहुँच गई। इसी अवधि में, संथालों की जनसंख्या जो केवल 3,000 थी, बढ़कर 82,000 से भी अधिक हो गई। जैसे-जैसे खेती का विस्तार होता गया, वैसे-वैसे कंपनी की तिजोरियों में राजस्व राशि में वृद्धि होती गई।

उन्नीसवीं शताब्दी के संथाल गीतों और मिथकों में उनकी यात्रा के लंबे इतिहास का बार-बार उल्लेख किया गया है: उनमें कहा गया है कि संथाल लोग अपने लिए बसने योग्य स्थान की खोज में बराबर बिना थके चलते ही रहते थे। अब यहाँ दामिन-इ-कोह में आकर मानो उनकी इस यात्रा को पूर्ण विराम लग गया।

जब संथाल राजमहल की पहाड़ियों पर बसे तो पहले पहाड़िया लोगों ने इसका प्रतिरोध किया पर अंततोगत्वा वे इन पहाड़ियों में भीतर की ओर चले जाने के लिए मजबूर कर दिए गए। उन्हें निचली पहाड़ियों तथा घाटियों में नीचे की ओर आने से रोक दिया गया और ऊपरी पहाड़ियों के चट्टानी और अधिक बंजर इलाकों तथा भीतरी शुष्क भागों तक सीमित कर दिया गया। इससे उनके रहन-सहन तथा जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ा और आगे चलकर वे गरीब हो गए। झूम खेती नयी-से-नयी ज़मीनें खोजने और भूमि की प्राकृतिक उर्वरता का उपयोग करने की क्षमता पर निर्भर रहती है। अब सर्वाधिक उर्वर ज़मीनें उनके लिए दुर्लभ हो गईं क्योंकि वे अब दामिन का हिस्सा बन

चुकी थीं। इसलिए पहाड़िया लोग खेती के अपने तरीके (झूम खेती) को आगे सफलतापूर्वक नहीं चला सके। जब इस क्षेत्र के जंगल खेती के लिए साफ़ कर दिए गए तो पहाड़िया शिकारियों को भी समस्याओं का सामना करना पड़ा। इसके विपरीत संथाल लोगों ने अपनी पहले वाली खानबदोश ज़िंदगी को छोड़ दिया था। अब वे एक जगह बस गए थे और बाज़ार के लिए कई तरह के वाणिज्यिक फ़सलों की खेती करने लगे थे और व्यापारियों तथा साहूकारों के साथ लेन-देन करने लगे थे।

चित्र 10.11
सिधू मांझी, संथाल विद्रोह का नेता

किंतु, संथालों ने भी जल्दी ही यह समझ लिया कि उन्होंने जिस भूमि पर खेती करनी शुरू की थी वह उनके हाथों से निकलती जा रही है। संथालों ने जिस ज़मीन को साफ़ करके खेती शुरू की थी उस पर सरकार (राज्य) भारी कर लगा रही थी, साहूकार (दिकू) लोग बहुत ऊँची दर पर ब्याज लगा रहे थे और कर्ज़ अदा न किए जाने की सूरत में ज़मीन पर ही कब्ज़ा कर रहे थे, और ज़मींदार लोग दामिन इलाके पर अपने नियंत्रण का दावा कर रहे थे।

1850 के दशक तक, संथाल लोग यह महसूस करने लगे थे कि अपने लिए एक आदर्श संसार का निर्माण करने के लिए, जहाँ उनका अपना शासन हो, ज़मींदारों, साहूकारों और औपनिवेशिक राज के

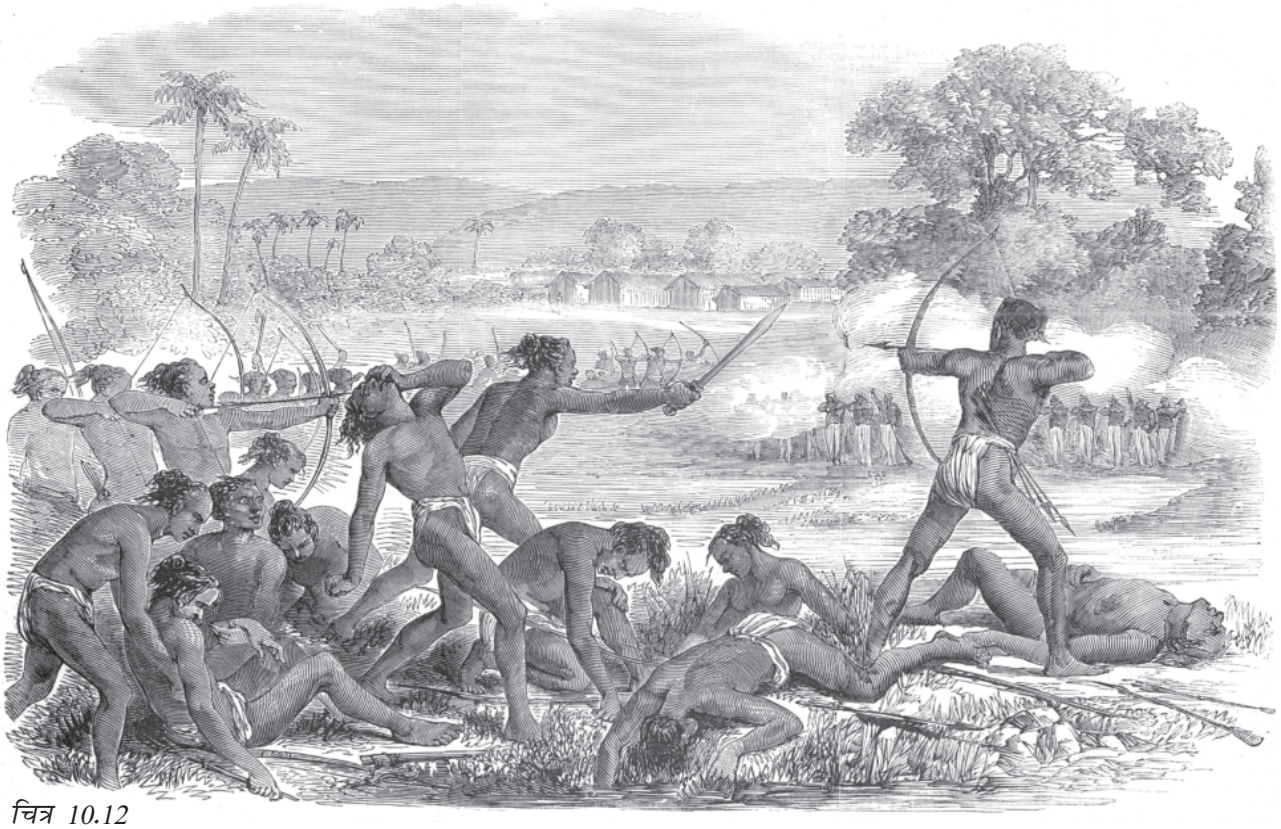

चित्र 10.12
संथाल, ब्रिटिश राज के सिपाहियों से युद्ध करते हुए। 23 फ़रवरी 1856 के *इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़* में प्रकाशित चित्र। इस विद्रोह ने संथालों के प्रति ब्रिटिश धारणा को बदल दिया। जो गाँव पहले नीरव एवं शांत दिखाई देते थे (चित्र 10.10) अब नृशंस एवं बर्बरतापूर्ण कृत्यों के स्थान बन गए।

➲ कल्पना कीजिए कि आप 'इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़' के पाठक हैं। चित्र 10.12, 10.13 और 10.14 में चित्रित दृश्यों के प्रति आपकी प्रतिक्रिया क्या होगी? इन चित्रों से आपके मन में संथालों की क्या-क्या छवि बनती है?

चित्र 10.13

संथालों के गाँव जल रहे हैं। 23 फ़रवरी 1856 के *इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़* में प्रकाशित चित्र। विद्रोह कुचल दिए जाने के बाद, इलाके की छानबीन की गई, संदिग्ध व्यक्तियों को पकड़ लिया गया और गाँवों को आग लगा दी गई। जलते हुए गाँवों के चित्र ब्रिटेन में आम जनता को दिखाए गए, गर्वपूर्वक यह दर्शाने के लिए कि ब्रिटिश कितने शक्तिशाली हैं और उनमें विद्रोह को कुचल डालने और औपनिवेशिक व्यवस्था को थोपने की कितनी अधिक योग्यता है।

चित्र 10.14

संथाल कैदियों को ले जाया जा रहा है। इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़, 1856

ध्यान दीजिए कि ऐसे चित्र किस प्रकार के राजनीतिक संदेश देते हैं। आप देख सकते हैं कि चित्र के बीचों-बीच ब्रिटिश अधिकारी विजयगर्वित होकर किस शान से हाथी पर सवार हैं। घोड़े पर बैठा हुआ एक अधिकारी हुक्का गुड़गुड़ा रहा है; यह तसवीर यह दिखलाती है कि परेशानी का समय ख़त्म हो गया है, विद्रोह कुचल दिया गया है। विद्रोही अब जंज़ीरों से बँधे जेल ले जाए जा रहे हैं कंपनी के सिपाही उन्हें चारों ओर से घेरे हुए है। इस तरह की तसवीरें, जिनमें ब्रिटिश हुकूमत को अजेय दर्शाया गया है, ब्रिटिश जनता को अपनी ताक़त के बारे में आश्वस्त करने के लिए पर्याप्त थीं।

स्रोत 3

संथालों के बारे में बुकानन के विचार

नयी ज़मीनें साफ़ करने में वे बहुत होशियार होते हैं लेकिन नीचता से रहते हैं। उनकी झोपड़ियों में कोई बाड़ नहीं होती और दीवारें सीधी खड़ी की गई छोटी-छोटी सटी हुई लकड़ियों की बनी होती हैं जिन पर भीतर की ओर लेप (पलस्तर) लगा होता है। झोपड़ियाँ छोटी और मैली-कुचैली होती हैं; उनकी छत सपाट होती हैं, उनमें उभार बहुत कम होता है।

स्रोत 4

कडुया के पास की चट्टानें

बुकानन की पत्रिका निम्नलिखित ऐसे प्रेक्षणों से भरी पड़ी है:

आगे लगभग एक मील चलने के बाद में (मैं) चट्टानों के एक शिलाफलक पर आ गया; जिसका कोई यह एक छोटा दानेदार ग्रेनाइट है जिसमें लाल-लाल फेल्डस्पार, क्वार्ट्ज़ और काला अबरक लगा है... वहाँ से आधा मील से अधिक की दूरी पर मैं एक अन्य चट्टान पर आया वह भी स्तरहीन थी और उसमें बारीक दानों वाला ग्रेनाइट था जिसमें पीला-सा फेल्डस्पार, सफ़ेद-सा क्वार्ट्ज और काल, अबरक था।

विरुद्ध विद्रोह करने का समय अब आ गया है। 1855-56 के संथाल विद्रोह के बाद संथाल परगने का निर्माण कर दिया गया, जिसके लिए 5,500 वर्गमील का क्षेत्र भागलपुर और बीरभूम जिलों में से लिया गया। औपनिवेशिक राज को आशा थी कि संथालों के लिए नया परगना बनाने और उसमें कुछ विशेष क़ानून लागू करने से संथाल लोग संतुष्ट हो जाएँगे।

2.3 बुकानन का विवरण

हम बुकानन के विवरण को अपनी जानकारी का आधार मान रहे हैं। लेकिन उसकी रिपोर्टों को पढ़ते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वह ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का एक कर्मचारी था। उसकी यात्राएँ केवल भूदृश्यों के प्यार और अज्ञात की खोज से ही प्रेरित नहीं थीं। वह नक्शा नवीसों, सर्वेक्षकों, पालकी उठाने वालों कुलियों आदि के बड़े दल के साथ सर्वत्र यात्रा करता था। उसकी यात्राओं का खर्च ईस्ट इंडिया कंपनी उठाती थी क्योंकि उसे उन सूचनाओं की आवश्यकता थी जो बुकानन प्रत्याशित रूप से इकट्ठी करता था। बुकानन को यह साफ़-साफ़ हिदायत दी जाती थी कि उसे क्या देखना, खोजना और लिखना है। वह जब भी अपने लोगों की फ़ौज के साथ किसी गाँव में आता तो उसे तत्काल सरकार के एक एजेंट के रूप में ही देखा जाता था।

जब कंपनी ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ बना लिया और अपने व्यवसाय का विकास कर लिया तो वह उन प्राकृतिक साधनों की खोज में जुट गई जिन पर कब्जा करके उनका मनचाहा उपयोग कर सकती थी। उसने परिदृश्यों तथा राजस्व स्रोतों का सर्वेक्षण किया, खोज यात्राएँ आयोजित कीं, और जानकारी इकट्ठी करने के लिए अपने भूविज्ञानियों, भूगोलवेत्ताओं, वनस्पति विज्ञानियों और चिकित्सकों को भेजा। निस्संदेह असाधारण प्रेक्षण शक्ति का धनी बुकानन ऐसा ही एक व्यक्ति था। बुकानन जहाँ कहीं भी गया, वहाँ उसने पत्थरों तथा चट्टानों और वहाँ की भूमि के भिन्न-भिन्न स्तरों तथा परतों को ध्यानपूर्वक देखा। उसने वाणिज्यिक दृष्टि से मूल्यवान पत्थरों तथा खनिजों को खोजने की कोशिश की; उसने लौह खनिज और अबरक, ग्रेनाइट तथा साल्टपीटर से संबंधित सभी स्थानों का पता लगाया। उसने सावधानीपूर्वक नमक बनाने और कच्चा लोहा निकालने की स्थानीय पद्धतियों का निरीक्षण किया।

जब बुकानन किसी भूदृश्य के बारे में लिखता था तो वह अकसर इतना ही नहीं लिखता था कि उसने क्या देखा है और भूदृश्य कैसा था, बल्कि वह यह भी लिखता था कि उसमें फेरबदल करके उसे अधिक उत्पादक कैसे बनाया जा सकता है– वहाँ कौन-सी फ़सलें बोई जा सकती हैं, कौन-से पेड़ काटे जा सकते हैं और कौन-से उगाए जा सकते हैं और हमें यह भी याद रखना होगा कि उसकी सूक्ष्म दृष्टि और प्राथमिकताएँ स्थानीय निवासियों से भिन्न होती थीं: क्या आवश्यक है इस बारे में उसका आकलन कंपनी के वाणिज्यिक

सरोकारों से और प्रगति के संबंध में आधुनिक पाश्चात्य विचारधारा से निर्धारित होता था। वह अनिवार्य रूप से वनवासियों की जीवन-शैली का आलोचक था और यह महसूस करता था कि वनों को कृषि भूमि में बदलना ही होगा।

स्रोत 5

वनों की बटाई और स्थायी कृषि के बारे में

निचली राजमहल की पहाड़ियों में एक गाँव से गुजरते हुए, बुकानन ने लिखा:
इस प्रदेश का दृश्य बहुत ही बढ़िया है; यहाँ की खेती विशेष रूप से, घुमावदार संकरी घाटियों में धान की फ़सल, बिखरे हुए पेड़ों के साथ साफ़ की गई जमीन, और चट्टानी पहाड़ियाँ सभी अपने आप में पूर्ण हैं, कमी है तो बस इस क्षेत्र में कुछ प्रगति की और विस्तृत तथा उन्नत खेती की, जिनके लिए यह प्रदेश अत्यंत संवेदनशील है। यहाँ लकड़ी की जगह टसर और लाख के लिए आवश्यकतानुसार बड़े-बड़े बागान लगाए जा सकते हैं; बाक़ी जंगल को भी साफ़ किया जा सकता है, और जो भाग इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त न हो वहाँ पनई ताड़ और महुआ के पेड़ लगाए जा सकते हैं।

➲ चर्चा कीजिए...

बुकानन का वर्णन विकास के संबंध में उसके विचारों के बारे में क्या बतलाता है? उद्धरणों से उदाहरण देते हुए अपनी दलील पेश कीजिए। यदि आप एक पहाड़िया वनवासी होते तो उसके इन विचारों के प्रति आपकी प्रतिक्रिया क्या होती?

3. देहात में विद्रोह

बम्बई दक्कन

आप पढ़ चुके हैं कि औपनिवेशिक बंगाल के किसानों और ज़मींदारों और राजमहल की पहाड़ियों के पहाड़िया और संथाल लोगों के जीवन में किस प्रकार परिवर्तन आ रहा था। आइए अब पश्चिम भारत और परवर्ती अवधि पर दृष्टिपात करें और पता लगाएँ कि बम्बई दक्कन के देहाती क्षेत्र में क्या हो रहा था।

ऐसे परिवर्तनों का पता लगाने का एक तरीक़ा है वहाँ के किसान विद्रोह पर ध्यान केंद्रित करना। ऐसे नाजुक दौर में विद्रोही अपना ग़ुस्सा और प्रकोपोन्माद दिखलाते हैं; वे जिसे अन्याय और अपने दु:ख-दर्द का कारण समझते हैं उनके खिलाफ़ आवाज़ बुलंद करते हैं। यदि हम उनकी नाराज़गी के आधारभूत कारणों को जानने का प्रयत्न करते हैं और उनके ग़ुस्से की परतें उधेड़ने लगते हैं तो हम उनके जीवन और अनुभव की झलक देख पाते हैं जो अन्यथा हमसे छिपी रहती है। विद्रोहों के बारे में ऐसे अभिलेख भी उपलब्ध होते हैं, जिनका इतिहासकार अवलोकन कर सकते हैं। विद्रोहियों की करतूतों से उत्तेजित होकर और पुन: व्यवस्था स्थापित करने की उत्कट इच्छा से, राज्य के प्राधिकारी केवल विद्रोह को ही दबाने का प्रयत्न नहीं करते, बल्कि वे उसे जानने-बूझने की कोशिश करते हैं और उसके कारणों की भी जाँचा करते हैं जिससे कि नीतियाँ निर्धारित की जा सकें और शांति की स्थापना हो सके। ऐसी जाँच-पड़ताल से साक्ष्य उत्पन्न होता है जिसके बारे में इतिहासकार शोध कर सकें।

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, भारत के विभिन्न प्रांतों के किसानों ने साहूकारों और अनाज के व्यापारियों के विरुद्ध अनेक विद्रोह किए। ऐसा ही एक दक्कन में 1875 में हुआ।

3.1 लेखा बहियाँ जला दी गईं

यह आंदोलन पूना (आधुनिक पुणे) जिले के एक बड़े गाँव सूपा में शुरू हुआ। सूपा एक विपणन केंद्र (मंडी) था जहाँ अनेक व्यापारी और साहूकार रहते थे। 12 मई 1875 को, आसपास के ग्रामीण इलाकों के रैयत (किसान) इकट्ठे हो गए, उन्होंने साहूकारों से उनके बही-खातों और ऋणबंधों की माँग करते हुए उन पर हमला बोल दिया। उन्होंने उनके बही-खाते जला दिए, अनाज की दुकानें लूट लीं और कुछ मामलों में तो साहूकारों के घरों को भी आग लगा दी।

पूना से यह विद्रोह अहमदनगर में फैल गया। फिर अगले दो महीनों में यहाँ और भी आग फैल गई और 6,500 वर्ग किलोमीटर का इलाका इनकी चपेट में आ गया। तीस से अधिक गाँव इससे कुप्रभावित हुए। सब जगह विद्रोह का स्वरूप एकसमान ही था: साहूकारों पर हमला किया गया, बही-खाते जला दिए गए और ऋणबंध नष्ट कर दिए गए। किसानों के हमलों से घबराकर साहूकार गाँव छोड़कर भाग गए, अधिकतर मामलों में वे अपनी संपत्ति और धन-दौलत भी वहीं पीछे छोड़ गए।

जब विद्रोह फैला तो ब्रिटिश अधिकारियों की आँखों के सामने 1857 का गदर दृश्य आ गया (अध्याय 11 भी देखिए)। विद्रोही किसानों के गाँवों में पुलिस थाने स्थापित किए गए। जल्दी से सेनाएँ बुला ली गईं। 95 व्यक्तियों को गिरफ़्तार कर लिया गया और उनमें से बहुतों को दंडित दिया गया। लेकिन देहात को काबू करने में कई महीने लग गए।

स्रोत 6

उस दिन सूपा में

16 मई 1875 को, पूना के जिला मजिस्ट्रेट ने पुलिस आयुक्त को लिखा:

शनिवार दिनांक 15 मई को सूपा में आने पर मुझे इस उपद्रव का पता चला। एक साहूकार का घर पूरी तरह जला दिया गया; लगभग एक दर्जन मकानों को तोड़ दिया गया और उनमें घुसकर वहाँ के सारे सामान को आग लगा दी गई। खाते पत्र, बांड, अनाज, देहाती कपड़ा, सड़कों पर लाकर जला दिया गया, जहाँ राख़ के ढेर अब भी देखे जा सकते हैं।

मुख्य कांस्टेबल ने 50 लोगों को गिरफ्तार किया। लगभग 2000 रु. का चोरी का माल छुड़ा लिया गया। अनुमानत: 25,000 रु. से अधिक की हानि हुई। साहूकारों का दावा है कि 1 लाख रु. से ज़्यादा का नुक़सान हुआ है

दक्कन दंगा आयोग

साहूकार ऐसा व्यक्ति होता था जो पैसा उधार देता था और साथ ही व्यापार भी करता था।

स्रोत 7

समाचारपत्र में छपी रिपोर्ट

'रैयत और साहूकार' शीर्षक नामक निम्नलिखित रिपोर्ट 6 जून 1876 के 'नेटिव ओपीनियन' नामक समाचार पत्र में छपी और उसे मुंबई के नेटिव न्यूज़पेपर्स की रिपोर्ट में यथावत उद्धृत किया गया (हिंदी अनुवाद प्रस्तुत है):

"वे (रैयत) सर्वप्रथम अपने गाँवों की सीमाओं पर यह देखने के लिए जासूसी करते हैं कि क्या कोई सरकारी अधिकारी आ रहा है और अपराधियों को समय रहते उनके आने की सूचना दे देते हैं। फिर वे एक झुंड बनाकर अपने ऋणदाताओं के घर जाते हैं और उनसे उनके ऋणपत्र और अन्य दस्तावेज़ माँगते हैं और इनकार करने पर ऋणदाताओं पर हमला करके छीन लेते हैं। यदि ऐसी किसी घटना के समय कोई सरकारी अधिकारी उन गाँवों की ओर आता हुआ दिखाई दे जाता है तो गुप्तचर अपराधियों को इसकी ख़बर पहुँचा देते हैं और अपराधी समय रहते ही तितर-बितर हो जाते हैं"।

➲ लेखक द्वारा प्रयुक्त भाषा या शब्दावली से अकसर उसके पूर्वाग्रहों का पता चल जाता है, स्रोत 7 को सावधानीपूर्वक पढ़िए और उन शब्दों को छाँटिए जिनसे लेखक के पूर्वाग्रहों का पता चलता है। चर्चा कीजिए कि उस इलाके का रैयत उसी स्थिति का किन शब्दों में वर्णन करता होगा।

ऋणपत्र और दस्तावेज़ क्यों जलाए गए थे? यह विद्रोह क्यों हुआ? इससे हमें दक्कन के देहात के बारे में और वहाँ औपनिवेशिक शासन में हुए कृषि या भूमि संबंधी परिवर्तनों के बारे में क्या पता चलता है? आइए उन्नीसवीं शताब्दी में हुए परिवर्तनों के लंबे इतिहास पर दृष्टिपात करें।

3.2 एक नयी राजस्व प्रणाली

जैसे-जैसे ब्रिटिश शासन बंगाल से भारत के अन्य भागों में फैलता गया वहाँ भी राजस्व की नयी प्रणालियाँ लागू कर दी गईं। इस्तमरारी बंदोबस्त को बंगाल से बाहर बिरले ही लागू किया गया।

ऐसा क्यों किया गया? इसका एक कारण तो यह था कि 1810 के बाद खेती की क़ीमतें बढ़ गईं, जिससे उपज के मूल्य में वृद्धि हुई और बंगाल के ज़मींदारों की आमदनी में इज़ाफ़ा हो गया। चूँकि राजस्व की माँग इस्तमरारी बंदोबस्त के तहत तय की गई थी, इसलिए औपनिवेशिक सरकार इस बढ़ी हुई आय में अपने हिस्से का कोई दावा नहीं कर सकती थी। अपने वित्तीय संसाधनों को बढ़ाने की उत्कट इच्छा से, औपनिवेशिक सरकार को अपने भू-राजस्व को अधिक से अधिक बढ़ाने के तरीक़ों पर विचार करना पड़ा। इसलिए उन्नीसवीं शताब्दी में औपनिवेशिक शासन में शामिल किए गए प्रदेशों में राजस्व बंदोबस्त किए गए।

अन्य भी कई कारण थे। जब अधिकारी नीतियाँ निर्धारित करते हैं तो उनकी विचारधारा उन आर्थिक सिद्धांतों से अत्यधिक प्रभावित रहती है जिनसे वे अधिकारी पहले से परिचित होते हैं। 1820 के दशक तक इंग्लैंड में डेविड रिकार्डो एक जाने-माने अर्थशास्त्री के रूप में विख्यात थे। औपनिवेशिक अधिकारियों ने अपने महाविद्यालयी जीवन में रिकार्डो के विचारों का अध्ययन किया था। महाराष्ट्र में जब ब्रिटिश अधिकारियों ने 1820 के दशक में प्रारंभिक बंदोबस्त की शर्तें करने का काम हाथ में लिया तो वे इन्हीं में से कुछ विचारों के अनुसार कार्रवाई करने लगे।

रिकार्डो के विचारों के अनुसार भूस्वामी को उस समय लागू 'औसत लगानों' को प्राप्त करने का ही हक़ होना चाहिए। जब भूमि से 'औसत लगान' से अधिक प्राप्ति होने लगे तो भूस्वामी को अधिशेष आय होगी जिस पर सरकार को कर लगाने की आवश्यकता होगी। यदि कर नहीं लगाया गया तो किसान किरायाजीवी में बदल जाएँगे और उनकी अधिशेष आय का भूमि के सुधार में उत्पादक रीति से निवेश नहीं होगा। भारत में अनेक ब्रिटिश अधिकारियों ने सोचा कि बंगाल के इतिहास ने रिकार्डो के सिद्धांत की पुष्टि कर दी है। वहाँ ज़मींदार लोग किरायाजीवियों के रूप में बदल गए प्रतीत हुए क्योंकि उन्होंने अपनी ज़मीनें पट्टे पर दे दीं और किराये की आमदनी पर निर्भर रहने लगे। इसलिए ब्रिटिश अधिकारियों के विचार से अब यह आवश्यक था कि एक भिन्न राजस्व प्रणाली अपनाई जाए।

किरायाजीवी शब्द ऐसे लोगों का द्योतक है जो अपनी संपत्ति के किराए की आय पर जीवनयापन करते हैं।

जो राजस्व प्रणाली बम्बई दक्कन में लागू की गई उसे रैयतवाड़ी कहा जाता है। बंगाल में लागू की गई प्रणाली के विपरीत, इस प्रणाली के

अंतर्गत राजस्व की राशि सीधे रैयत के साथ तय की जाती थी। भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमि से होने वाली औसत आय का अनुमान लगा लिया जाता था। रैयत की राजस्व अदा करने की क्षमता का आकलन कर लिया जाता था और सरकार के हिस्से के रूप में उसका एक अनुपात निर्धारित कर दिया जाता था। हर 30 साल के बाद ज़मीनों का फिर से सर्वेक्षण किया जाता था और राजस्व की दर तदनुसार बढ़ा दी जाती थी। इसलिए राजस्व की माँग अब चिरस्थायी नहीं रही थी।

3.3 राजस्व की माँग और किसान का कर्ज़

बम्बई दक्कन में पहला राजस्व बंदोबस्त 1820 के दशक में किया गया। माँगा गया राजस्व इतना अधिक था कि बहुत से स्थानों पर किसान अपने गाँव छोड़कर नए क्षेत्रों में चले गए। जिन इलाकों की ज़मीन घटिया किस्म की थी और वर्षा भी कम ज़्यादा होती थी, खास तौर पर समस्या और भी विकट थी। जब वर्षा नहीं होती थी और फ़सल खराब होती थी तो किसानों के लिए राजस्व अदा करना असंभव हो जाता था। फिर भी, राजस्व इकट्ठा करने वाले प्रभारी कलेक्टर अपनी कार्यकुशलता को प्रदर्शित करने और अपने बड़े अधिकारियों को प्रसन्न करने के लिए अत्यंत उत्कट रहते थे। इसलिए वे अत्यंत कठोरतापूर्वक राजस्व वसूल करने का प्रयत्न करते थे। जब कोई किसान अपना राजस्व नहीं दे पाता था तो उसकी फ़सलें ज़ब्त कर ली जाती थीं और समूचे गाँव पर जुर्माना ठोक दिया जाता था।

1830 के दशक तक आते-आते यह समस्या और भी गंभीर हो गई। सन् 1832 के बाद कृषि उत्पादों की क़ीमतों में तेज़ी से गिरावट आई और लगभग डेढ़ दशक तक इस स्थिति में कोई सुधार नहीं आया। इसके परिणामस्वरूप किसानों की आय में और भी गिरावट आई। इसी दौरान, 1832-34 के वर्षों में देहाती इलाके अकाल की चपेट में आकर बरबाद हो गए। दक्कन का एक-तिहाई पशुधन मौत के मुँह में चला गया और आधी मानव जनसंख्या भी काल का ग्रास बन गई। और जो बचे, उनके पास भी उस संकट का सामना करने के लिए खाद्यान्न नहीं था। राजस्व की बकाया राशियाँ आसमान को छूने लगीं।

ऐसे समय में किसान लोग कैसे जीवित रहे? उन्होंने राजस्व कैसे अदा किया, अपनी जरूरत की चीज़ों को कैसे जुटाया, अपने हल-बैल कैसे खरीदे अथवा बच्चों की शादियाँ कैसे कीं?

यह सब करने के लिए पैसा उधार लेने के अलावा उनके पास और कोई चारा नहीं था। ऋणदाता से पैसा उधार लेकर ही राजस्व चुकाया जा सकता था लेकिन यदि रैयत ने एक बार ऋण ले लिया तो उसे वापस करना उसके लिए कठिन हो गया। कर्ज़ बढ़ता गया, उधार की राशियाँ बकाया रहती गईं और ऋणदाताओं पर किसानों की निर्भरता बढ़ती गई। अब स्थिति यहाँ तक बिगड़ गई थी कि किसानों को अपनी रोज़मर्रा की जरूरतों को खरीदने और अपने उत्पादन के खर्च को पूरा करने के लिए भी कर्ज़े लेने पड़ते थे। 1840 के दशक तक, अधिकारियों को भी इस

बात का साक्ष्य मिलने लगा था कि सभी जगह के किसान कर्ज़ के बोझ के तले भयंकर रूप से दबे जा रहे थे।

1840 के दशक के मध्य में एक विशेष प्रकार के आर्थिक पुनरूत्थान के लक्षण दिखाई देने लगे। तब अनेक ब्रिटिश अधिकारियों ने यह महसूस करना शुरू कर दिया कि 1820 के दशक में किए गए राजस्व संबंधी बंदोबस्त कठोरतापूर्ण थे। माँगा गया राजस्व बहुत ज़्यादा था, व्यवस्था कठोर एवं लचकहीन थी, और किसानों की अर्थव्यवस्था का भट्ठा बैठने वाला था। इसलिए खेती का विस्तार करने के लिए किसानों को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से राजस्व संबंधी माँग को कुछ हलका किया गया। 1845 के बाद कृषि उत्पादों की क़ीमतें शनैः शनैः बढ़ती गईं। किसान अपने कृषि क्षेत्र को बढ़ाने लगे थे, इसके लिए वे नए-नए इलाकों में जा रहे थे और गोचर भूमियों को कृषि भूमि में बदल रहे थे। लेकिन किसानों को अपनी खेती का विस्तार करने के लिए अधिक हल-बैल चाहिए थे। उन्हें बीज और ज़मीन खरीदने के लिए पैसे की ज़रूरत थी। इन सब कामों के लिए उन्हें एक बार फिर पैसा उधार लेने के लिए ऋणदाताओं के पास जाना पड़ा।

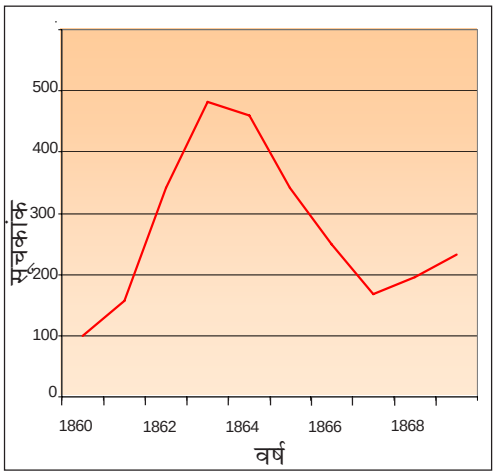

चित्र 10.15
कपास में तेज़ी
इस ग्राफ़ में अंकित रेखा कपास की क़ीमतों में आई तेज़ी और गिरावट को दिखाती है।

3.4 फिर कपास में तेज़ी आई

1860 के दशक से पहले, ब्रिटेन में कच्चे माल के तौर पर आयात की जाने वाली समस्त कपास का तीन-चौथाई भाग अमेरिका से आता था ब्रिटेन के सूती वस्त्रों के विनिर्माता काफ़ी लंबे अरसे से अमेरिकी कपास पर अपनी निर्भरता के कारण बहुत परेशान थे। अगर यह स्रोत बंद हो गया तो हमारा क्या होगा? इस प्रश्न से विचलित होकर, वे बड़े उत्सुकता से कपास की आपूर्ति के वैकल्पिक स्रोत खोज रहे थे।

1857 में, ब्रिटेन में कपास आपूर्ति संघ की स्थापना हुई और 1859 में मैनचेस्टर कॉटन कंपनी बनाई गई। उनका उद्देश्य "दुनिया के हर भाग में कपास के उत्पादन को प्रोत्साहित करना था जिससे कि उनकी कंपनी

चित्र 10.16
कपास ढोने वाली गाड़ियाँ एक बरगद के पेड़ के नीचे खड़ी हैं।
इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़ 13 दिसंबर 1862

का विकास हो सके।" भारत को एक ऐसा देश समझा गया जो अमेरिका से कपास की आपूर्ति बंद हो जाने की सूरत में, लंकाशायर को कपास भेज सकेगा। भारत की भूमि और जलवायु दोनों ही कपास की खेती के लिए उपयुक्त थे और यहाँ सस्ता श्रम उपलब्ध था।

जब सन् 1861 में अमेरिकी गृहयुद्ध छिड़ गया तो ब्रिटेन के कपास क्षेत्र (मंडी तथा कारखानों) में तहलका मच गया। अमेरिका से आने वाली कच्ची कपास के आयात में भारी गिरावट आ गई। वह सामान्य मात्रा का 3 प्रतिशत से भी कम हो गया: 1861 में जहाँ 20 लाख गाँठें (हर गाँठ 400 पाउंड की) आई थीं वहीं 1862 में केवल 55 हज़ार गाँठों का आयात हुआ। भारत तथा अन्य देशों को बड़ी व्यग्रता के साथ यह संदेश भेजा गया कि ब्रिटेन को कपास का अधिक मात्रा में निर्यात करें। बम्बई में, कपास के सौदागरों ने कपास की आपूर्ति का आकलन करने और कपास की खेती को अधिकाधिक प्रोत्साहन देने के लिए कपास पैदा करने वाले ज़िलों का दौरा किया। जब कपास की कीमतों में उछाल आया (चित्र 10.15 देखिए) तो बम्बई के कपास निर्यातकों ने ब्रिटेन की माँग को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक कपास खरीदने का प्रयत्न किया। इसके लिए उन्होंने शहरी साहूकारों को अधिक से अधिक अग्रिम, राशियाँ दी ताकि वे भी आगे उन ग्रामीण ऋणदाताओं को जिन्होंने उपज को उपलब्ध कराने का वचन दिया था, अधिकाधिक

➲ चित्र 10.17 के तीन भाग हैं जिनमें कपास ढोने के भिन्न-भिन्न साधन दर्शाए गए हैं। चित्र में कपास के बोझ से दबे जा रहे बैलों, सड़क पर पड़े शिलाखंडों और नौका पर लदी गाँठों के विशाल ढेर को देखिए। कलाकार इन तसवीरों के जरिए क्या दर्शाना चाहता है?

चित्र 10.17

रेलों का युग शुरू होने से पहले कपास का परिवहन, इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़, 20 अप्रैल 1861। जब अमेरिकी गृहयुद्ध के दौरान अमेरिका से कपास की आपूर्ति बहुत कम हो गई तब ब्रिटेन को यह आशा हुई कि भारत ब्रिटिश उद्योगों की कपास संबंधी सारी ज़रूरतों को पूरा कर देगा। इसके लिए आपूर्ति का आकलन किया जाने लगा, कपास की गुणवत्ता की जाँच होने लगी और उत्पादन तथा विपणन के तरीकों का अध्ययन किया जाने लगा। उनकी यह दिलचस्पी 'इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़' के पृष्ठों में परिलक्षित होती है।

मात्रा में राशि उधार दे सकें। जब बाज़ार में तेज़ी आती है तो ऋण आसानी से दिया जाता है क्योंकि ऋणदाता अपनी उधार दी गई राशियों की वसूली के बारे में अधिक आश्वस्त महसूस करते हैं।

इन बातों का दक्कन के देहाती इलाक़ों में काफ़ी असर हुआ। दक्कन के गाँवों के रैयतों को अचानक असीमित ऋण उपलब्ध होने लगा। उन्हें कपास उगाई जाने वाले प्रत्येक एकड़ के लिए 100 रु. अग्रिम राशि दी जाने लगी। साहूकार भी दीर्घावधिक ऋण देने के लिए एकदम तैयार थे।

जब अमेरिका में संकट की स्थिति बनी रही तो बम्बई दक्कन में कपास का उत्पादन बढ़ता गया। 1860 से 1864 के दौरान कपास उगाने वाले एकड़ों की संख्या दोगुनी हो गई। 1862 तक स्थिति यह आई कि ब्रिटेन में जितना भी कपास का आयात होता था उसका 90 प्रतिशत भाग अकेले भारत से जाता था।

लेकिन इन तेज़ी के वर्षों में सभी कपास उत्पादकों को समृद्धि प्राप्त नहीं हो सकी। कुछ धनी किसानों को तो लाभ अवश्य हुआ। लेकिन अधिकांश किसान कर्ज़ के बोझ से और अधिक दब गए।

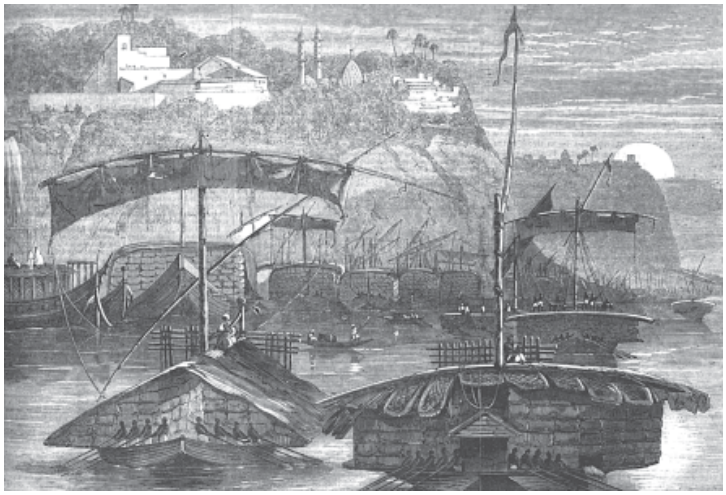

चित्र 10.18
नौकाओं का एक बेड़ा मिर्ज़ापुर से गंगानदी के रास्ते कपास की गांठें ले जा रहा है। इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़, 13 दिसंबर 1862
रेलों का युग प्रारंभ होने से पहले, मिर्ज़ापुर का कस्बा दक्कन से आने वाली कपास के लिए संग्रह केंद्र था।

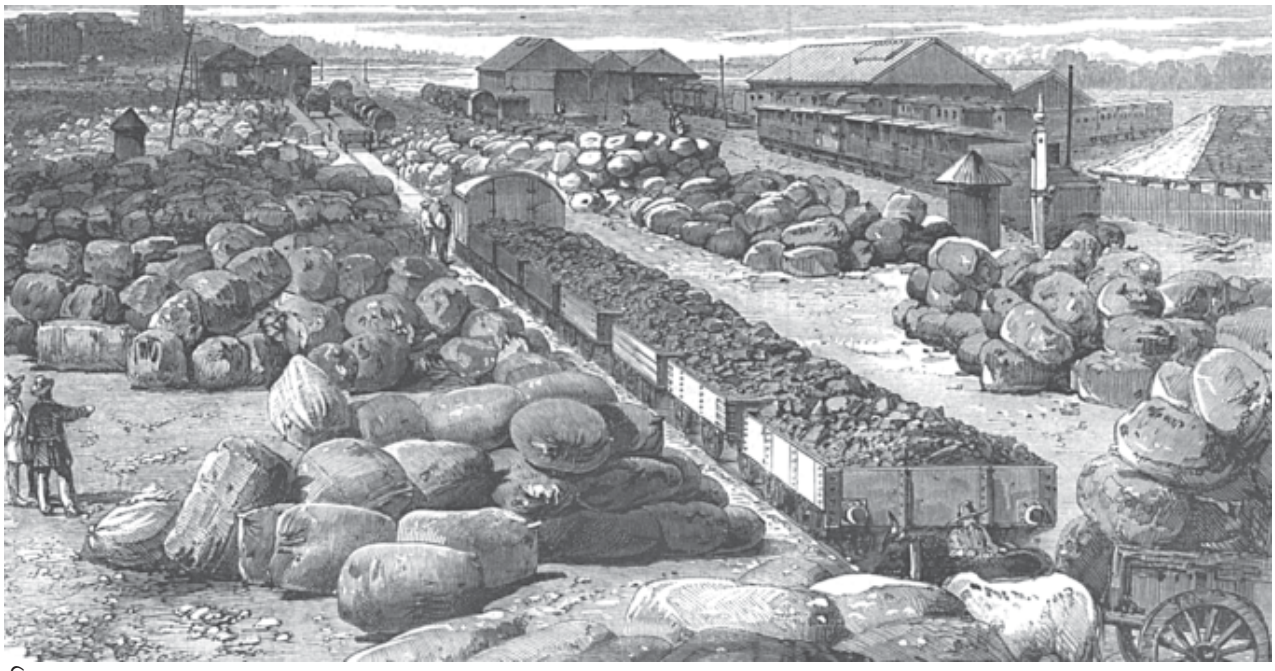

चित्र 10.19
ग्रेट इंडियन पेनिन्सुलर रेलवे के बम्बई टर्मिनस पर कपास की गांठें पड़ी हुई हैं; इन्हें आगे समुद्री जहाज़ से इंग्लैंड भेजा जाएगा।
इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़, 23 अगस्त 1862। जब रेलें चलने लगीं तो कपास की गांठें गाड़ियों और नौकाओं द्वारा ही नहीं, रेलों से भी भेजी जाने लगीं। नदी मार्ग से यातायात धीरे-धीरे कम होता गया परंतु परिवहन के पुराने साधनों का प्रयोग पूरी तरह बंद नहीं हुआ। चित्र में पीछे दाहिनी ओर लदी हुई बैलगाड़ियाँ रेलवे स्टेशन से पत्तन तक कपास की गांठें ले जाने के लिए तैयार खड़ी हैं।

स्रोत 8

रैयत अर्जी

नीचे एक याचिका का उदाहरण दिया गया है जो करजत तालुको के मीरगाँव के एक रैयत द्वारा कलेक्टर अहमदनगर, दक्कन दंगा आयोग को दी गई थी :

> साहूकार लोग काफी दिनों से हम पर अत्याचार कर रहे हैं? चूँकि हम अपना घर खर्च चलाने के लिए काफी मात्रा में पैसा नहीं कमा सकते, इसलिए हम उनसे पैसा, कपड़ा और अनाज माँगने के लिए मजबूर हो गए हैं। उनसे हमें ये चीजें मिलती जाती हैं पर बड़ी कठिनाई से और उसके लिए हमें उनके साथ कड़ी शर्तों पर बंधपत्र लिखने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इसके अलावा कपड़ा और अनाज भी नकद दरों पर नहीं बेचा जाता। हमसे जो कीमतें माँगी जाती हैं वह नकदी कीमत चुकाने वाले ग्राहकों की अपेक्षा आमतौर पर 25 से 50 प्रतिशत होती हैं।... हमारे खेतों की उपज भी साहूकार ले जाते हैं; उपज ले जाते समय तो वे हमें यह आश्वासन देते हैं कि इसकी कीमत हमारे खाते में जमा कर दी जाएगी लेकिन वे हमारे खातों में ऐसा कोई उल्लेख नही करते। वे जब हमारी उपज ले जाते हैं तो बदले में कोई रसीद भी नहीं देते।

3.5 ऋण का स्रोत सूख गया

जिन दिनों कपास के व्यापार में तेज़ी रही, भारत के कपास व्यापारी, अमेरिका को स्थायी रूप से विस्थापित करके, कच्ची कपास के विश्व बाज़ार को अपने क़ब्ज़े में करने के सपने देखने लगे। 1861 में बोंबे गजट के संपादक ने पूछा, "दास राज्यों (संयुक्त राज्य अमेरिका) को विस्थापित करके, लंकाशायर को कपास का एकमात्र आपूर्तिकर्ता बनने से भारत को कौन रोक सकता है?" लेकिन 1865 तक ऐसे सपने आने बंद हो गए। जब अमेरिका में गृहयुद्ध समाप्त हो गया तो वहाँ कपास का उत्पादन फिर से चालू हो गया और ब्रिटेन के भारतीय कपास के निर्यात में गिरावट आती चली गई।

महाराष्ट्र में निर्यात व्यापारी और साहूकार अब दीर्घावधिक ऋण देने के लिए उत्सुक नहीं रहे। उन्होंने यह देख लिया था कि भारतीय कपास की माँग घटती जा रही है और कपास की कीमतों में भी गिरावट आ रही है। इसलिए उन्होंने अपना कार्य-व्यवहार बंद करने, किसानों को अग्रिम राशियाँ प्रतिबंधित करने और बकाया ऋणों को वापिस माँगने का निर्णय लिया।

एक ओर तो ऋण का स्रोत सूख गया वहीं दूसरी ओर राजस्व की माँग बढ़ा दी गई। जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा है, पहला राजस्व बंदोबस्त 1820 और 1830 के दशकों में किया गया था। अब अगला बंदोबस्त करने का समय आ गया था। और इस नए बंदोबस्त में माँग को, नाटकीय ढंग से, 50 से 100 प्रतिशत तक बढ़ा दिया गया। भला, बेचारे रैयत उस हालत में, जबकि कीमतें गिर रही थीं और कपास के खेत गायब हो रहे थे, इस प्रकार बढ़ी हुई माँग को कैसे पूरा कर सकते थे? इसलिए उन्हें एक बार फिर ऋणदाता की शरण में जाना पड़ा। लेकिन ऋणदाता ने अबकी बार ऋण देने से इनकार कर दिया। उसे अब रैयत द्वारा ऋण वापस अदा किए जाने की उसकी क्षमता में विश्वास नहीं रहा था।

3.6 अन्याय का अनुभव

ऋणदाता द्वारा ऋण देने से इनकार किए जाने पर, रैयत समुदाय को बहुत ग़ुस्सा आया। वे इस बात के लिए ही क्रुद्ध नहीं थे कि वे ऋण के गर्त में गहरे से गहरे डूबे जा रहे हैं अथवा कि वे अपने जीवन को बचाने के लिए ऋणदाता पर पूर्ण रूप से निर्भर हैं, बल्कि वे इस बात से ज़्यादा नाराज थे कि ऋणदाता वर्ग इतना संवेदनहीन हो गया है कि वह उनकी हालत पर कोई तरस नहीं खा रहा है। ऋणदाता लोग देहात के प्रथागत मानकों यानी रूढ़ि रिवाजों का भी उल्लंघन कर रहे थे।

➲ रैयत अपनी अर्जी में क्या शिकायत कर रहा है। ऋणदाता द्वारा किसान से ले जाई जाने वाली फसल उसके खाते में क्यों नहीं चढ़ाई जाती? किसानों को कोई रसीद क्यों नहीं दी जाती? यदि आप ऋणदाता होते तो इन व्यवहारों के लिए आप क्या-क्या कारण देते?

पैसा उधार देने का कारोबार निश्चित रूप से औपनिवेशिक शासन से पहले भी काफ़ी फैला हुआ था और ऋणदाता अकसर ताकतवर हस्तियाँ होते थे। कई प्रकार के प्रथागत मानक ऋणदाता और रैयत के पारस्परिक संबंधों पर लागू होते थे और उन्हें विनियमित करते थे। एक सामान्य मानक यह था कि ब्याज मूलधन से अधिक नहीं लिया जा सकता था। इसका प्रयोजन ऋणदाता द्वारा की जाने वाली जबरन वसूली को सीमित करना और यह पारिभाषित करना था कि 'उचित ब्याज' क्या होना चाहिए। औपनिवेशिक शासन में इस नियम की धज्जियाँ उड़ा दी गईं। दक्कन दंगा आयोग द्वारा छानबीन किए गए मामलों में से एक मामले में ऋणदाता ने 100 रु. के मूलधन पर 2,000 रु. से भी अधिक ब्याज लगा रखा था। अनेकानेक याचिकाओं में रैयत लोगों ने इस प्रकार की जबरन वसूलियों और प्रथाओं के उल्लंघन से संबंधित अन्याय के विरुद्ध शिकायत की थी।

स्रोत 8

भाड़ा-पत्र

जब किसान पर ऋण का भार बहुत बढ़ गया तो वह ऋणदाता का ऋण चुकाने में असमर्थ हो गया। अब ऋणदाता के पास अपना सर्वस्व-जमीन, गाड़ियाँ, पशुधन देने के अलावा कोई चारा नहीं था। लेकिन पशुओं के बिना वह आगे खेती कैसे कर सकता था। इसलिए उसने जमीन और पशु भाड़े पर ले लिए। अब उसे उन पशुओं के लिए, जो मूल रूप से उसके अपने ही थे, भाड़ा चुकाना पड़ता था। उसे एक भाड़ा-पत्र (किरायानामा) लिखना पड़ता था जिसमें यह साफतौर पर कहा जाता था कि ये पशु और गाड़ियाँ उसकी अपनी नहीं हैं। विवाद छिड़ने पर, ये दस्तावेज़ न्यायालयों में मान्य होते थे।

नीचे एक ऐसे ही दस्तावेज़ का नमूना दिया गया है जो नवंबर 1873 में एक किसान ने हस्ताक्षरित किया था (यह दक्कन दंगा आयोग के अभिलेखों से उद्धृत है।) :

> मैंने आपको देय ऋण के खाते में, आपको अपनी लोहे के धुरों वाली दो गाड़ियाँ, साज-समान और चार बैलों के साथ बेची हैं... मैंने इस दस्तावेज़ के तहत उन्हीं दो गाड़ियों और चार बैलों को आपसे भाड़े पर लिया है। मैं हर माह आपको चार रुपए प्रतिमाह की दर से उनका किराया (भाड़ा) दूँगा और आपसे आपकी अपनी लिखावट में रसीद प्राप्त करुँगा। रसीद न मिलने पर मैं यह दलील नहीं दूँगा कि किराया नहीं चुकाया गया है।

➲ उन सभी वचनबद्धताओं की सूची बनाइए जो किसान इस दस्तावेज़ में दे रहा है। ऐसा कोई दस्तावेज़ हमें किसान और ऋणदाता के बीच के संबंधों के बारे में क्या बताता है। इससे किसान और बैलों (जो पहले उसी के थे) के बीच के संबंधों में क्या अंतर आएगा?

रैयत ऋणदाता को कुटिल और धोखेबाज समझने लगे थे। वे ऋणदाताओं के द्वारा खातों में धोखाधड़ी करने और कानून को धत्ता बताने की शिकायतें करते थे। 1859 में अंग्रेज़ों ने एक परिसीमन क़ानून

पारित किया जिसमें यह कहा गया कि ऋणदाता और रैयत के बीच हस्ताक्षरित ऋणपत्र केवल तीन वर्षों के लिए ही मान्य होंगे। इस कानून का उद्देश्य बहुत समय तक ब्याज को संचित होने से रोकना था। किंतु ऋणदाता ने इस कानून को घुमाकर अपने पक्ष में कर लिया और रैयत से हर तीसरे साल एक नया बंधपत्र भरवाने लगा। जब कोई नया बांड हस्ताक्षरित होता तो न चुकाई गई शेष राशि– अर्थात् मूलधन और उस पर उत्पन्न तथा इकट्ठा हुए संपूर्ण ब्याज को मूलधन के रूप में दर्ज किया जाता और उस पर नए सिरे से ब्याज लगने लगता। दक्कन दंगा आयोग को प्राप्त हुई याचिकाओं में रैयत लोगों ने यह बतलाया कि यह प्रक्रिया कैसे काम कर रही थी (स्रोत 10 देखिए) और किस प्रकार ऋणदता लोग रैयत को ठगने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाते थे : जब ऋण चुकाए जाते तो वे रैयत को उसकी रसीद देने से इनकार कर देते थे, बंधपत्रों में जाली आंकड़े भर लेते थे, किसानों की फसल नीची कीमतों पर ले लेते थे और आखिरकार किसानों की धन-संपति पर ही कब्जा कर लेते थे।

तरह-तरह के दस्तावेज़ और बंधपत्र इस नयी अत्याचारपूर्ण प्रणाली के प्रतीक बन गए। पहले ऐसे दस्तावेज़ बहुत ही कम हुआ करते थे। किंतु ब्रिटिश अधिकारी अनौपचारिक समझौते के आधार पर पुराने ढंग से किए गए लेन-देन को संदेह की दृष्टि से देखते थे। उनके विचार से लेन-देन की शर्तें, संविदाओं, दस्तावेज़ों और बंधपत्रों में साफ़-साफ़, सुस्पष्ट और सुनिश्चित शब्दों में कही जानी चाहिए और वे विधिसम्मत होनी चाहिए। जब तक कि कोई दस्तावेज़ या संविदा कानून की दृष्टि से प्रवर्तनीय नहीं होगा तब तक उसका कोई मूल्य नहीं होगा।

समय के साथ, किसान यह समझने लगे कि उनके जीवन में जो भी दु:ख तकलीफ है वह सब बंधपत्रों और दस्तावेज़ों की इस नयी

स्रोत 10

कर्ज़ कैसे बढ़ते गए

दक्कन दंगा आयोग को दी गई अपनी याचिका में एक रैयत ने यह स्पष्ट किया कि ऋणों की प्रणाली कैसे काम करती थी :

> एक साहूकार अपने कर्ज़दार को एक बंधपत्र के आधार पर 100 रु. की रकम 3-2 आने प्रतिशत की मासिक दर पर उधार देता है। कर्ज़ लेने वाला इस रकम को बांड पास होने की तारीख से आठ दिन के भीतर वापस अदा करने का करार करता है। रकम वापस अदा करने के लिए निर्धारित समय के तीन साल बाद साहूकार अपने कर्ज़दार से मूलधन तथा ब्याज दोनों को मिला कर बनी राशि (मिश्रधन) के लिए एक अन्य बांड उसी ब्याज दर से लिखवा लेता है और उसे संपूर्ण कर्ज़ा चुकाने के लिए 125 दिन की मोहलत दे देता है। तीन साल ओर 15 दिन बीत जाने पर कर्ज़दार द्वारा एक तीसरा बांड पास किया जाता... (यह प्रक्रिया बार-बार दोहराई जाती है)... 12 वर्ष के अंत में... 1000 रु. की राशि पर उसका कुल ब्याज 2,028 रु. 10 आना 3 पैसे हो जाता है।

➲ ब्याज की उस मद का हिसाब लगाइए जो रैयत इन वर्षों में दे रहा था।

व्यवस्था के कारण ही है। उनसे दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर करवा लिए जाते और अँगूठे के निशान लगवा लिए जाते थे पर उन्हें यह पता नहीं चलता कि वास्तव में वे किस पर हस्ताक्षर कर रहे हैं या अँगूठे के निशान लगा रहे हैं। उन्हें उन खंडों के बारे में कुछ भी पता नहीं होता जो ऋणदाता बंधपत्रों में लिख देते थे। वे तो हर लिखे हुए शब्द से डरने लगे थे। मगर वे लाचार थे क्योंकि जीवित रहने के लिए उन्हें ऋण चाहिए थे और ऋणदाता कानूनी दस्तावेज़ों के बिना ऋण देने को तैयार नहीं थे।

4. दक्कन दंगा आयोग

जब विद्रोह दक्कन में फैला तो प्रारंभ में बम्बई की सरकार उसे गंभीरतापूर्वक लेने को तैयार नहीं थी। लेकिन भारत सरकार ने, जो कि 1857 की याद से चिंतित थी बम्बई की सरकार पर दबाव डाला कि वह दंगों के कारणों की छानबीन करने के लिए एक जाँच आयोग बैठाए। आयोग ने एक रिपोर्ट तैयार की जो 1878 में ब्रिटिश पार्लियामेंट में पेश की गई।

यह रिपोर्ट जिसे दक्कन दंगा रिपोर्ट कहा जाता है, इतिहासकारों को उन दंगों का अध्ययन करने के लिए आधार सामग्री उपलब्ध कराती है। आयोग ने दंगा पीड़ित जिलों में जाँच पड़ताल कराई, रैयत वर्गों, साहूकारों और चश्मदीद गवाहों के बयान लिए, भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में राजस्व की दरों, कीमतों और ब्याज के बारे में आंकडे इकट्ठे किए और जिला कलेक्टरों द्वारा भेजी गई रिपोर्टों का संकलन किया।

ऐसे स्रोतों पर दृष्टिपात करते समय, हमें यह फिर याद रखना होगा कि वे सरकारी स्रोत हैं और वे घटनाओं के बारे में सरकारी सरोकार और अर्थ प्रतिबिंबित करते हैं। उदाहरण के लिए, दक्कन दंगा आयोग से विशिष्ट रूप से यह जाँच करने के लिए कहा गया था कि क्या सरकारी राजस्व की माँग का स्तर विद्रोह का कारण था। और संपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करने के बाद आयोग ने यह सूचित किया था कि सरकारी माँग किसानों के गुस्से की वजह नहीं थी। इसमें सारा दोष ऋणदाताओं या साहूकारों का ही था। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि औपनिवेशिक सरकार यह मानने को कदापि तैयार नहीं थी कि जनता में असंतोष या रोष कभी सरकारी कार्रवाही के कारण उत्पन्न हुआ था।

इस प्रकार, सरकारी रिपोर्टें इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए बहुमूल्य स्रोत सिद्ध होती हैं। लेकिन उन्हें हमेशा सावधानीपूर्वक पढ़ा जाना चाहिए और समाचारपत्रों, गैर-सरकारी वृतांतों, वैधिक अभिलेखों और यथासंभव मौखिक स्रोतों से संकलित साक्ष्य के साथ उनका मिलान करके उनकी विश्वसनीयता की जाँच की जानी चाहिए।

➲ चर्चा कीजिए...

आजकल आप जिस क्षेत्र में रहते हैं वहाँ पर ली जाने वाली ब्याज दरों का पता लगाइए। यह भी पता लगाइए कि क्या ये दरें पिछले 50 वर्षों में बदली हैं। क्या भिन्न-भिन्न वर्गों के लोगों द्वारा अदा की जाने वाली दरों में कोई अंतर है? यदि है तो इन अंतरों के क्या कारण हैं?

काल-रेखा

1765	इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल की दीवानी प्राप्त की
1773	ईस्ट इंडिया कंपनी के क्रियाकलापों को विनियमित करने के लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित किया गया
1793	बंगाल में इस्तमरारी बंदोबस्त
1800 का दशक	संथाल लोग राजमहल की पहाड़ियों में आने लगे और वहाँ बसने लगे
1818	बम्बई दक्कन में पहला राजस्व बंदोबस्त
1820 का दशक	कृषि कीमतें गिरने लगीं
1840 व 1850 का दशक	बम्बई दक्कन में कृषि विस्तार की धीमी प्रक्रिया
1855-56	संथालों की बगावत
1861	कपास में तेज़ी का समारंभ
1875	दक्कन के गाँवों में रैयतों ने बग़ावत की

चित्र 10.20
एक ग्रामीण दृश्य, विलियम प्रिंसेप द्वारा चित्रित, 1820

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. ग्रामीण बंगाल के बहुत से इलाकों में जोतदार एक ताकतवर हस्ती क्यों था?
2. ज़मींदार लोग अपनी ज़मींदारियों पर किस प्रकार नियंत्रण बनाए रखते थे?
3. पहाड़िया लोगों ने बाहरी लोगों के आगमन पर कैसी प्रतिक्रिया दर्शाई?
4. संथालों ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह क्यों किया?
5. दक्कन के रैयत ऋणदाताओं के प्रति क्रुद्ध क्यों थे?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250 से 300 शब्दों में)

6. इस्तमरारी बंदोबस्त के बाद बहुत-सी ज़मींदारियाँ क्यों नीलाम कर दी गईं?
7. पहाड़िया लोगों की आजीविका संथालों की आजीविका से किस रूप में भिन्न थी?
8. अमेरिकी गृहयुद्ध ने भारत में रैयत समुदाय के जीवन को कैसे प्रभावित किया?
9. किसानों का इतिहास लिखने में सरकारी स्रोतों के उपयोग के बारे में क्या समस्याएँ आती हैं?

मानचित्र कार्य

10. उपमहाद्वीप के बाह्यरेखा मानचित्र (खाके) में इस अध्याय में वर्णित क्षेत्रों को अंकित कीजिए। यह भी पता लगाइए कि क्या ऐसे भी कोई इलाके थे जहाँ इस्तमरारी बंदोबस्त और रैयतवाड़ी व्यवस्था लागू थी। ऐसे इलाकों को मानचित्र में भी अंकित कीजिए।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. फ्रांसिस बुकानन ने पूर्वी भारत के अनेक जिलों के बारे मे रिपोर्ट प्रकाशित की थीं। उनमें से एक रिपोर्ट पढ़िए और इस अध्याय में चर्चित विषयों पर ध्यान केंद्रित करते हुए उस रिपोर्ट में ग्रामीण समाज के बारे में उपलब्ध जानकारी को संकलित कीजिए। यह भी बताइए कि इतिहासकार लोग ऐसी रिपोर्टों का किस प्रकार उपयोग कर सकते हैं।
12. आप जिस क्षेत्र में रहते हैं, वहाँ के ग्रामीण समुदाय के वृद्धजनों से चर्चा कीजिए और उन खेतों में जाइए जिन्हें वे अब जोतते हैं। यह पता लगाइए कि वे क्या पैदा करते हैं, वे अपनी रोजी-रोटी कैसे कमाते हैं, उनके माता-पिता क्या करते थे, उनके बेटे-बेटियाँ अब क्या करती हैं और पिछले 75 सालों में उनके जीवन में क्या क्या परिवर्तन आए हैं। अपने निष्कर्षों के आधार पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

सुगाता बोस, 1986
अग्रेरियन बंगाल, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

फ्रांसिस बुकानन, 1930
जरनल ऑफ फ्रांसिस बुकानन केप्ट ड्यूरिंग दि सर्वे ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ भागलपुर, सुपरिटेंडेंट, गवर्नमेंट प्रिंटिंग, बिहार और उड़ीसा, पटना

रामचन्द्र गुहा, 1989
दि अनक्वाइट वुड्स : इकोलॉजिकल चेंज एंड पीज़ेंट रेज़ीस्टेंट इन दि हिमालयाज़, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

सुमित गुहा, 1985
दि अग्रेरियन इकोनॉमी ऑफ दि बॉम्बे डेक्कन, 1818-1941, पेंग्विन, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

रविन्द्र कुमार, 1968
वेस्ट्रन इंडिया इन दि नाइनटिंथ सेंचुरी : ए स्टडी इन दि सोशल हिस्ट्री ऑफ महाराष्ट्रा, लंदन : रूटलेज और केगन पॉल

रत्नलेखा राय, 1979
चेंज इन बेंगाल अग्रेरियन सोसाइटी, ई. 1760-1850, मनोहर, नयी दिल्ली

कुमार सुरेश सिंह, 1966
डस्ट-स्ट्रॉम एंड दि हेंगिंग मिस्ट : ए स्टडी ऑफ बिरसा मुंडा एंड हिज़ मूवमेंट इन छोटानागपुर (1874-1901), फर्मा के. एल. मुखोपाध्याय, कलकत्ता

कक्षा 12 के लिए
इतिहास की पाठ्यपुस्तक

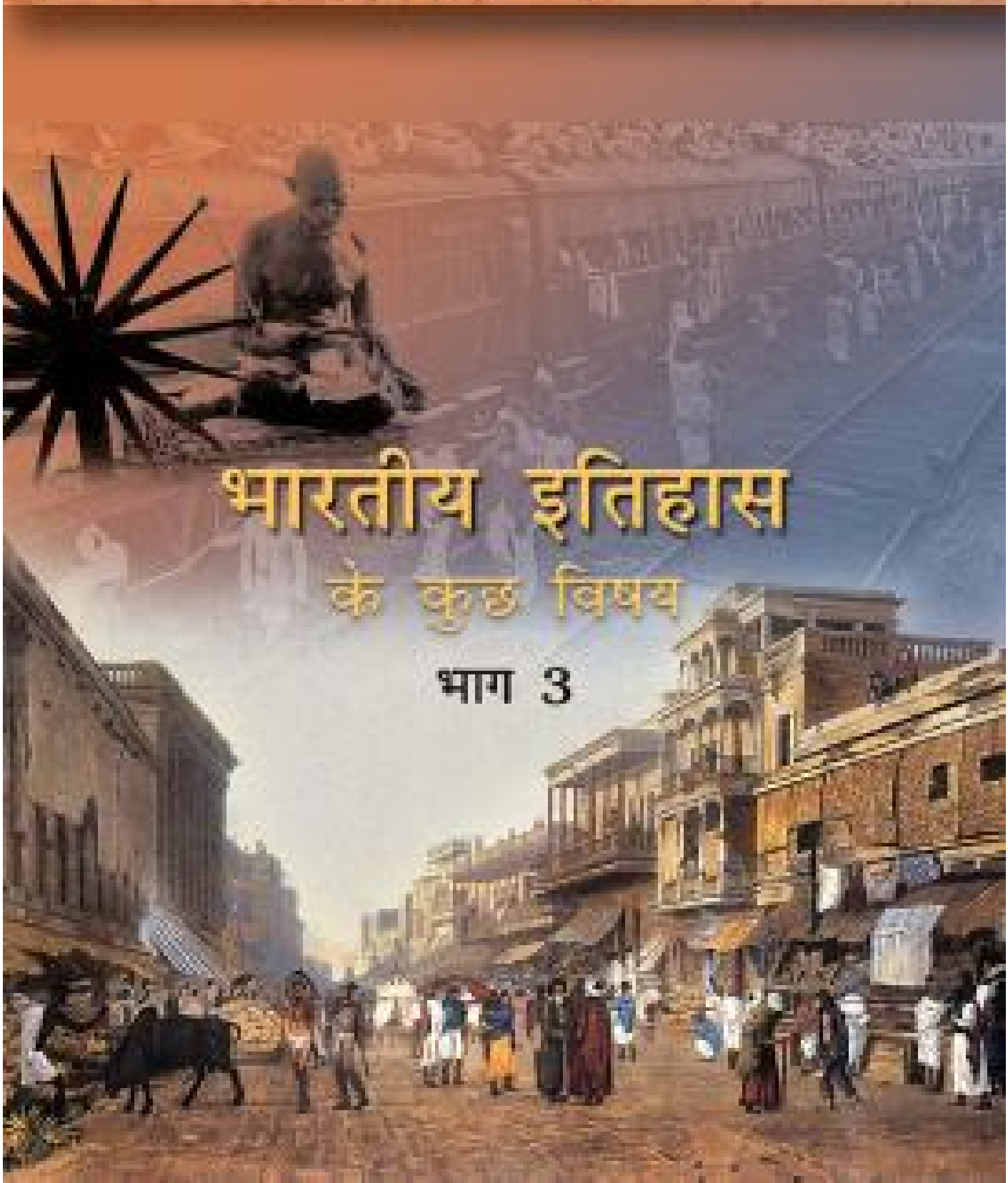

भारतीय इतिहास

के कुछ विषय

भाग 3

विषय सूची

आमुख *iii*
अध्ययन का केंद्रबिंदु निश्चित करना *v*
इस पुस्तक का कैसे प्रयोग किया जाए? *xi*

भाग 3

विषय दस
उपनिवेशवाद और देहात 257
सरकारी अभिलेखों का अध्ययन

विषय ग्यारह
विद्रोही और राज 288
1857 का आंदोलन और उसके व्याख्यान

विषय बारह
औपनिवेशिक शहर 316
नगरीकरण, नगर-योजना, स्थापत्य

विषय तेरह
महात्मा गाँधी और राष्ट्रीय आंदोलन 346
सविनय अवज्ञा और उससे आगे

विषय चौदह
विभाजन को समझना 376
राजनीति, स्मृति, अनुभव

विषय पंद्रह
संविधान का निर्माण 405
एक नए युग की शुरुआत

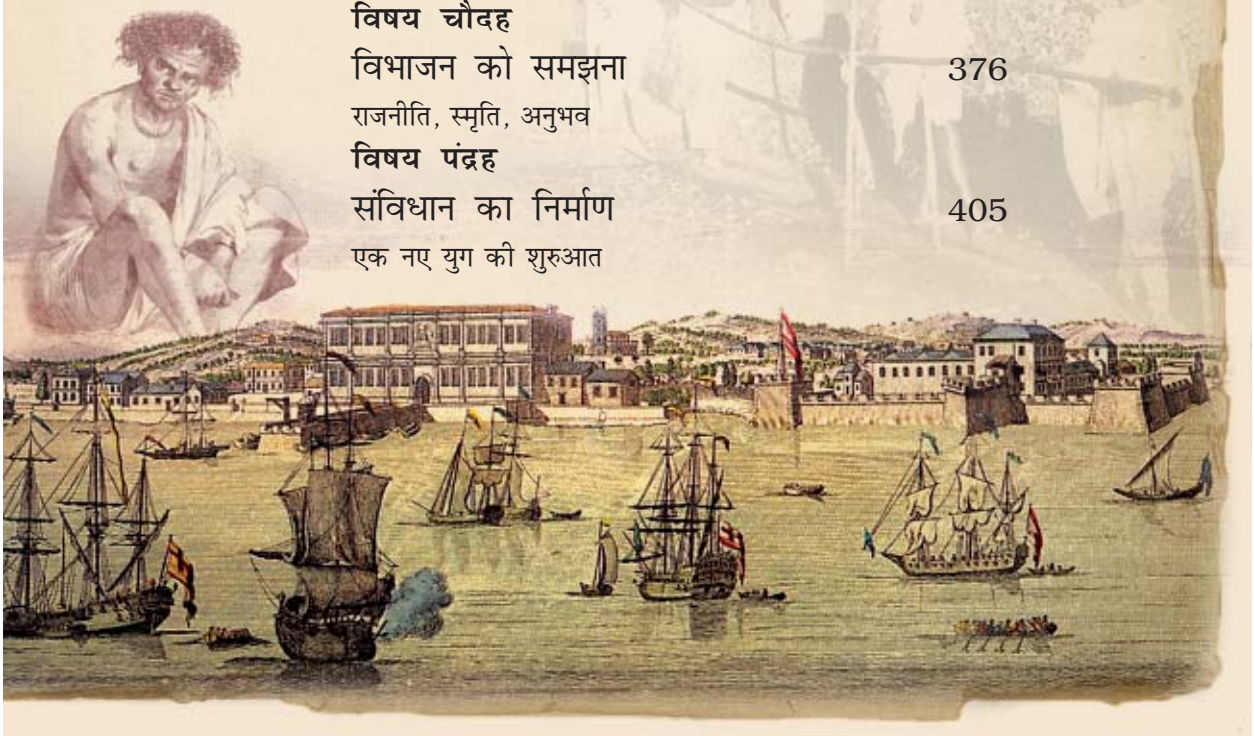

अध्याय ग्यारह

विद्रोही और राज
1857 का आंदोलन और उसके व्याख्यान

10 मई 1857 की दोपहर बाद मेरठ छावनी में सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। हलचल की शुरुआत भारतीय सैनिकों से बनी पैदल सेना से हुई थी जो जल्द ही घुड़सवार फ़ौज और फिर शहर तक फैल गई। शहर और आसपास के देहात के लोग सिपाहियों के साथ जुड़ गए। सिपाहियों ने शस्त्रागार पर क़ब्ज़ा कर लिया जहाँ हथियार और गोला-बारूद रखे हुए थे। इसके बाद उन्होंने गोरों पर निशाना साधा और उनके बंगलों, साजो-सामान को तहस-नहस करना और जलाना-फूँकना शुरू कर दिया। रिकॉर्ड दफ़्तर, जेल, अदालत, डाकखाने, सरकारी खजाने, जैसी सरकारी इमारतों को लूटकर तबाह किया जाने लगा। शहर को दिल्ली से जोड़ने वाली टेलीग्राफ़ लाइन काट दी गई। अँधेरा पसरते ही सिपाहियों का एक जत्था घोड़ों पर सवार होकर दिल्ली की तरफ़ चल पड़ा।

चित्र 11.1
बहादुर शाह का चित्र

यह जत्था 11 मई को तड़के लाल क़िले के फाटक पर पहुँचा। रमज़ान का महीना था। मुग़ल सम्राट बहादुर शाह नमाज़ पढ़कर और सहरी (रोज़े के दिनों में सूरज उगने से पहले का भोजन) खाकर उठे थे। उन्हें फाटक पर हो-हल्ला सुनाई दिया। बाहर खड़े सिपाहियों ने जानकारी दी कि "हम मेरठ के सभी अंग्रेज़ पुरुषों को मारकर आए हैं क्योंकि वे हमें गाय और सुअर की चर्बी में लिपटे कारतूस दाँतों से खींचने के लिए मजबूर कर रहे थे। इससे हिंदू और मुसलमान, सबका धर्म भ्रष्ट हो जाएगा।" तब तक सिपाहियों का एक और जत्था दिल्ली में दाखिल हो चुका था और शहर के आम लोग उनके साथ जुड़ने लगे थे। बहुत सारे यूरोपियन लोग मारे गए, दिल्ली के अमीर लोगों पर हमले हुए और लूटपाट हुई। दिल्ली अंग्रेज़ों के नियंत्रण से बाहर जा चुकी थी। कुछ सिपाही लाल क़िले में दाखिल होने के लिए दरबार के शिष्टाचार का पालन किए बिना बेधड़क क़िले में घुस गए थे। उनकी माँग थी कि बादशाह उन्हें अपना आशीर्वाद दें। सिपाहियों से घिरे बहादुर शाह के पास उनकी बात मानने के अलावा और कोई चारा न था। इस तरह इस विद्रोह ने एक वैधता हासिल कर ली क्योंकि अब उसे मुग़ल बादशाह के नाम पर चलाया जा सकता था।

12 और 13 मई को उत्तर भारत में शांति रही। लेकिन जैसे ही यह ख़बर फैली कि दिल्ली पर विद्रोहियों का क़ब्ज़ा हो चुका है और बहादुर शाह ने विद्रोह को अपना समर्थन दे दिया है, हालात तेज़ी से बदलने लगे। गंगा घाटी की छावनियों और दिल्ली के पश्चिम की कुछ छावनियों में विद्रोह के स्वर तेज़ होने लगे।

1. विद्रोह का ढर्रा

यदि इन विद्रोहों को तारीख़ के हिसाब से सिलसिलेवार रखा जाए तो ऐसा लगता है कि जैसे-जैसे विद्रोह की ख़बर एक शहर से दूसरे शहर में पहुँचती गई वैसे-वैसे सिपाही हथियार उठाते गए। हर छावनी में विद्रोह का घटनाक्रम कमोबेश एक जैसा था।

1.1 सैन्य विद्रोह कैसे शुरू हुए

सिपाहियों ने किसी न किसी विशेष संकेत के साथ अपनी कार्रवाई शुरू की। कई जगह शाम के समय तोप का गोला दाग़ा गया तो कहीं बिगुल बजाकर विद्रोह का संकेत दिया गया। सबसे पहले उन्होंने शस्त्रागार पर क़ब्ज़ा किया और सरकारी ख़ज़ाने को लूटा। इसके बाद उन्होंने जेल, सरकारी ख़ज़ाने, टेलीग्राफ़ दफ़्तर, रिकॉर्ड रूम, बंगलों, तमाम सरकारी इमारतों पर हमला किया और सारे रिकॉर्ड जलाते चले गए। गोरों से संबंधित हर चीज़ और हर शख़्स हमले का निशाना था। हिंदुओं और मुसलमानों, तमाम लोगों को एकजुट होने और फ़िरंगियों का सफाया करने के लिए हिंदी, उर्दू और फ़ारसी में अपीलें जारी होने लगीं।

फ़िरंगी, फ़ारसी भाषा का शब्द है जो संभवत: फ्रैंक (जिससे फ्रांस का नाम पड़ा है) से निकला है। इसे उर्दू और हिंदी में पश्चिमी लोगों का मज़ाक उड़ाने के लिए कभी-कभी इसका प्रयोग अपमानजनक दृष्टि से भी किया जाता है।

विद्रोह में आम लोगों के भी शामिल हो जाने के साथ-साथ हमलों का दायरा फैल गया। लखनऊ, कानपुर और बरेली जैसे बड़े शहरों में साहूकार और अमीर भी विद्रोहियों के गुस्से का शिकार बनने लगे। किसान इन लोगों को न केवल अपना उत्पीड़क बल्कि अंग्रेज़ों का पिट्ठू मानते थे। ज़्यादातर जगह अमीरों के घर-बार लूटकर तबाह कर दिए गए। सिपाहियों की क़तारों में हुए इन छिटपुट विद्रोहों ने जल्दी ही एक चौतरफ़ा विद्रोह का रूप ले लिया। शासन की सत्ता और सोपानों की सरेआम अवहेलना होने लगी।

चित्र 11.2
लखनऊ में ब्रिटिश लोगों के ख़िलाफ़ हमलों में आम लोग भी सिपाहियों के साथ आ जुटते हैं।

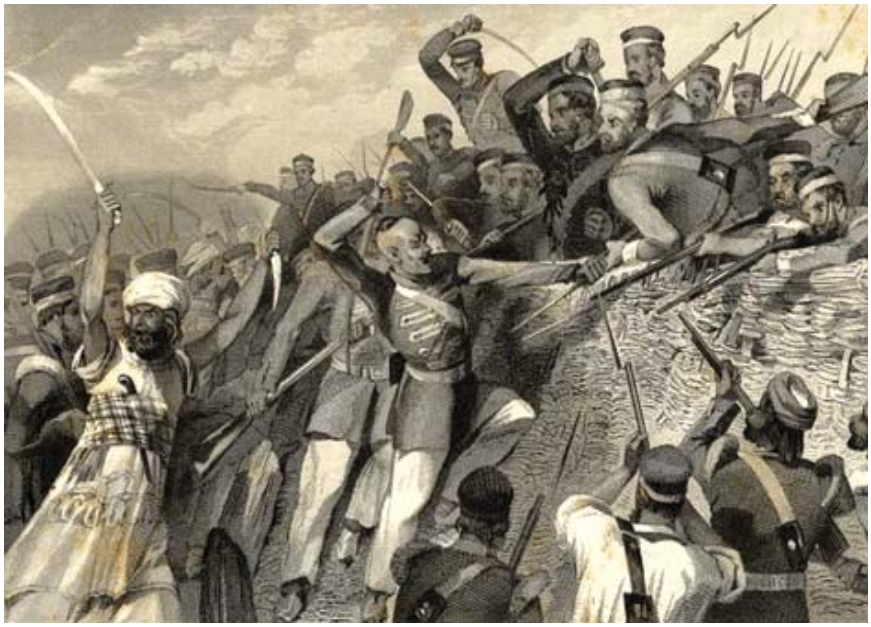

मई-जून के महीनों में अंग्रेज़ों के पास विद्रोहियों की कार्रवाइयों का कोई जवाब नहीं था। अंग्रेज़ अपनी ज़िंदगी और घर-बार बचाने में फँसे हुए थे। जैसा कि एक ब्रिटिश अफ़सर ने लिखा, ब्रिटिश शासन "ताश के क़िले की तरह बिखर गया।"

स्रोत 1

असामान्य समय में सामान्य जीवन

विद्रोह के महीनों में शहरों में क्या हुआ? उथल-पुथल के उन दिनों में लोग अपनी ज़िंदगी कैसे जी रहे थे? सामान्य जीवन किस तरह प्रभावित हुआ? विभिन्न शहरों की रिपोर्टों से पता चलता है कि सामान्य गतिविधियाँ अस्त-व्यस्त हो गई थीं। *दिल्ली उर्दू अख़बार*, 14 जून 1857 की इन रिपोर्टों को पढ़िए :

> यही हालात सब्ज़ियों और साग (पालक) के भी हैं। लोग इस बात पर शिकायत कर रहे हैं कि बाज़ारों में कद्दू और बैंगन तक नहीं मिलते। आलू और अरबी अगर मिलती भी हैं तो बासी, सड़ी जिसे कुँजड़ों (सब्ज़ी बेचने वाले) ने रोक कर (जमाकर) रखा हुआ था। शहर में स्थित बाग़-बगीचों से कुछ माल चंद इलाकों तक पहुँच जाता है लेकिन ग़रीब और मध्यवर्ग वाले उन्हें देखकर बस होठों पर जीभ फिरा कर रह जाते हैं (क्योंकि वे चीज़ें खास लोगों के लिए ही हैं)।
>
> ... यहाँ एक और चीज़ पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए जिससे लोगों को बड़ा नुकसान हो रहा है। मामला यह है कि पानी भरने वालों ने पानी भरना बंद कर दिया है। ग़रीब शुरफ़ा (कुलीन लोग) खुद घड़ों में पानी भरकर लाते हैं और तब जाकर घर में खाना बनता है। हलालख़ोर हरामख़ोर हो गए हैं। कई दिनों से बहुत सारे मोहल्लों में कोई आमदनी नहीं हुई है और यही हालात बने रहे तो गंदगी, मौत और बीमारियाँ शहर की आबो-हवा ख़राब कर देंगी और शहर महामारी की गिरफ़्त में आ जाएगा, यहाँ तक कि आस-पास के इलाके भी उसकी चपेट में आ जाएँगे।

➲ इन दोनों रिपोर्टों तथा उस दौरान दिल्ली के हालात के बारे में इस अध्याय में दिए गए विवरणों को पढ़ें। याद रखें कि अख़बारों में छपी ख़बरें अकसर पत्रकार के पूर्वाग्रह या सोच से प्रभावित होती हैं। इस आधार पर बताएँ कि *दिल्ली उर्दू अख़बार* लोगों की गतिविधियों को किस नज़र से देखता था?

1.2 संचार के माध्यम

अलग-अलग स्थानों पर विद्रोह के ढर्रे में समानता की वजह आंशिक रूप से उसकी योजना और समन्वय में निहित थी। इसमें कोई शक नहीं कि विभिन्न छावनियों के सिपाहियों के बीच अच्छा संचार बना हुआ था। जब सातवीं अवध इर्रेग्युलर कैवेलरी ने मई की शुरुआत में नए कारतूसों का इस्तेमाल करने से इनकार कर दिया तो उन्होंने 48 नेटिव इन्फेंट्री को लिखा कि "हमने अपने धर्म की रक्षा के लिए यह फ़ैसला लिया है और 48 नेटिव इन्फेंट्री के हुक्म का इंतज़ार कर रहे हैं।" सिपाही या उनके संदेशवाहक एक जगह से दूसरी जगह जा रहे थे। लब्बोलुआब ये कि लोग बस बग़ावत के मंसूबे गढ़ रहे थे और उसी के बारे में बात करते थे।

स्रोत 2

सिस्टन और तहसीलदार

विद्रोह और सैनिक अवज्ञा के संदर्भ में सीतापुर के देसी ईसाई पुलिस इंसपेक्टर फ्रांस्वाँ सिस्टन का अनुभव हमें बहुत कुछ बताता है। वह मजिस्ट्रेट के पास शिष्टाचारवश मिलने सहारनपुर गया हुआ था। सिस्टन हिंदुस्तानी कपड़े पहने था और आलथी-पालथी मारकर बैठा था। इसी बीच बिजनौर का एक मुस्लिम तहसीलदार कमरे में दाखिल हुआ। जब उसे पता चला कि सिस्टन अवध में तैनात है तो उसने पूछा, "क्या ख़बर है अवध की? काम कैसा चल रहा है?" सिस्टन ने कहा, "अगर हमें अवध में काम मिलता है तो जनाब-ए-आली को भी पता चल जाएगा।" इस पर तहसीलदार ने कहा, "भरोसा रखो, इस बार हम कामयाब होंगे। मामला काबिल हाथों में है।" बाद में पता चला कि यह तहसीलदार बिजनौर के विद्रोहियों का सबसे बड़ा नेता था।

➲ विद्रोही अपनी योजनाओं को किस तरह एक-दूसरे तक पहुँचाते थे, इस बारे में इस बातचीत से क्या पता चलता है?
तहसीलदार ने सिस्टन को संभावित विद्रोही क्यों मान लिया था?

विद्रोहों की बनावट और जिन साक्ष्यों के आधार पर ऐसा लगता है कि इन विद्रोहों में एक योजना और समन्वय था, उनको देखकर कुछ अहम सवाल खड़े होते हैं। ये योजनाएँ कैसे बनाई गईं? योजनाकार कौन थे? मौजूदा दस्तावेज़ों के आधार पर इन सवालों के सीधे-सीधे जवाब देना कठिन है। फिर भी, एक घटना इस बारे में कुछ सुराग़ ज़रूर देती है कि ये विद्रोह इतने सुनियोजित कैसे थे। विद्रोह के दौरान अवध मिलिट्री पुलिस के कैप्टेन हियर्से की सुरक्षा का ज़िम्मा भारतीय सिपाहियों पर था। जहाँ कैप्टेन हियर्से तैनात था वहीं 41वीं नेटिव इन्फेंट्री भी तैनात थी। इन्फेंट्री की दलील थी कि क्योंकि वे अपने तमाम गोरे अफ़सरों को ख़त्म कर चुके हैं इसलिए अवध मिलिट्री का फ़र्ज़ बनता है कि या तो वे हियर्से को मौत की नींद सुला दें या उसे गिरफ़्तार करके 41वीं नेटिव इन्फेंट्री के हवाले कर दें। मिलिट्री पुलिस ने दोनों दलीलें ख़ारिज कर दीं। अब यह तय किया गया कि इस मामले को हल करने के लिए हर रेजीमेंट के देशी अफ़सरों की एक पंचायत बुलाई जाए। इस विद्रोह के शुरुआती इतिहासकारों में से एक, चार्ल्स बॉल ने लिखा है कि ये पंचायतें रात को कानपुर सिपाही लाइनों में जुटती थीं। इसका मतलब है कि सामूहिक रूप से कुछ फ़ैसले ज़रूर लिए जा रहे थे। क्योंकि सिपाही लाइनों में रहते थे और सभी की जीवनशैली एक जैसी थी और क्योंकि उनमें बहुत सारे प्राय: एक ही जाति के होते थे इसलिए इस बात का अंदाज़ा लगाना मुश्किल नहीं है कि वे इकट्ठा बैठकर अपने भविष्य के बारे में फ़ैसले ले रहे होंगे। ये सिपाही अपने विद्रोह के कर्ताधर्ता ख़ुद ही थे।

चित्र 11.3
रानी लक्ष्मीबाई, एक प्रचलित चित्र

चित्र 11.4
नाना साहिब
1858 के अंत में जब विद्रोह विफल हो गया तो नाना साहिब भाग कर नेपाल चले गए। उनके भागने की घटना को नाना साहिब के साहस और बहादुरी की कहानी का हिस्सा बताया जाता है।

1.3 नेता और अनुयायी

अंग्रेज़ों से लोहा लेने के लिए नेतृत्व और संगठन ज़रूरी थे। इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए विद्रोहियों ने कई बार ऐसे लोगों की शरण ली जो अंग्रेज़ों से पहले नेताओं की भूमिका निभाते थे। जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं, मेरठ के सिपाहियों ने सबसे पहले जो काम किए उनमें एक यह था कि वे फ़ौरन दिल्ली गए और उन्होंने बूढ़े हो चुके मुग़ल बादशाह से विद्रोह का नेतृत्व स्वीकार करने की दरख़्वास्त की। लेकिन इस निवेदन पर सहमति हासिल करने में भी वक़्त लगा। बहादुर शाह इस ख़बर पर भयभीत और बैचेन दिखाई दिए। बहादुर शाह ने नाममात्र का नेता बनने की ज़िम्मेदारी भी तब स्वीकार की जब कुछ सिपाही शाही शिष्टाचार की अवहेलना करते हुए जबरन लाल क़िले के मुग़ल दरबार में जा घुसे और बहादुर शाह के पास वाकई कोई चारा नहीं बचा था।

अन्य स्थानों पर भी, छोटे पैमाने पर ही सही, इसी तरह के दृश्य घट चुके थे। कानपुर में सिपाहियों और शहर के लोगों ने पेशवा बाजीराव द्वितीय के उत्तराधिकारी नाना साहिब के सामने बग़ावत की बागडोर संभालने के सिवा और कोई विकल्प ही नहीं छोड़ा था। झाँसी में रानी को आम जनता के दवाब में बग़ावत का नेतृत्व सँभालना पड़ा। कुछ ऐसी ही स्थिति बिहार में आरा के स्थानीय ज़मींदार कुँवर सिंह की थी। अवध में नवाब वाजिद अली शाह जैसे लोकप्रिय शासक को गद्दी से हटा दिए जाने और उनके राज्य पर क़ब्ज़ा कर लेने की यादें लोगों के ज़हन में अभी भी ताज़ा थीं। लखनऊ में ब्रिटिश राज के ढहने की ख़बर पर लोगों ने नवाब के युवा बेटे बिरजिस क़द्र को अपना नेता घोषित कर दिया था।

सभी जगहों पर नेता दरबारों से जुड़े व्यक्ति–रानियाँ, राजा, नवाब, ताल्लुक़दार–नहीं थे। अकसर विद्रोह का संदेश आम पुरुषों एवं महिलाओं के ज़रिए और कुछ स्थानों पर धार्मिक लोगों के ज़रिए भी फैल रहा था। मेरठ से इस आशय की ख़बरें आ रही थीं कि वहाँ हाथी पर सवार एक फ़क़ीर को देखा गया था जिससे सिपाही बार-बार मिलने जाते थे। लखनऊ में अवध पर क़ब्ज़े के बाद बहुत सारे धार्मिक नेता और स्वयंभू पैगम्बर-प्रचारक ब्रिटिश राज को नेस्तनाबूद करने का अलख जगा रहे थे।

अन्य स्थानों पर किसानों, ज़मींदारों और आदिवासियों को विद्रोह के लिए उकसाते हुए कई स्थानीय नेता सामने आ चुके थे। शाह मल ने उत्तर प्रदेश में बड़ौत परगना के गाँव वालों को संगठित किया। छोटा नागपुर स्थित सिंहभूम के एक आदिवासी काश्तकार गोनू ने इलाके के कोल आदिवासियों का नेतृत्व सँभाला हुआ था।

स्रोत 3

1857 के दो विद्रोही

शाह मल

शाह मल उत्तर प्रदेश के बड़ौत परगना के एक बड़े गाँव के रहने वाले थे। वह एक जाट कुटुम्ब से संबंध रखते थे जो चौरासी देस (चौरासी गाँव) में फैला हुआ था। इस इलाके की ज़मीन सिंचाई की सुविधाओं से लैस और उपजाऊ थी। यहाँ कि मिट्टी काली नम थी। बहुत सारे ग्रामीण संपन्न थे और लोग ब्रिटिश भूराजस्व व्यवस्था को दमनकारी मानते थे : लगान की दर ज़्यादा और वसूली सख़्त थी। नतीजा यह था कि किसानों की ज़मीन बाहरी लोगों के हाथ में जा रही थी। इलाक़े में आने वाले व्यापारी और महाजन ज़मीन पर क़ब्ज़ा करते जा रहे थे।

शाह मल ने चौरासी देस के मुखियाओं और काश्तकारों को संगठित किया। इसके लिए उन्होंने रात के साए में गाँव-गाँव जाकर बात की और लोगों को अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ विद्रोह के लिए तैयार किया। बहुत सारे दूसरे स्थानों की तरह यहाँ भी अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ आंदोलन एक व्यापक विद्रोह में तब्दील हो गया। अब विरोध उत्पीड़न और अन्याय के तमाम चिह्नों के ख़िलाफ़ होने लगा। किसान अपने खेत छोड़कर निकल पड़े और महाजनों व व्यापारियों के घर-बार लूटने लगे। बेदख़ल भूस्वामियों ने छिन चुकी ज़मीनों पर दोबारा क़ब्ज़ा कर लिया। शाह मल के आदमियों ने सरकारी इमारतों पर हमला किया, नदी का पुल ध्वस्त कर दिया और पक्की सड़कों को खोद डाला। इसकी एक वजह यह थी कि वे सरकारी फ़ौजों का रास्ता रोकना चाहते थे। दूसरी वजह यह थी कि पुलों और सड़कों को ब्रिटिश शासन का प्रतीक माना जाता था। उन्होंने दिल्ली में विद्रोह करने वाले सिपाहियों को रसद पहुँचाई और ब्रिटिश हेडक्वार्टर व मेरठ के बीच तमाम सरकारी संचार बंद कर दिया। स्थानीय स्तर पर राजा कहलाने वाले शाह मल ने एक अंग्रेज़ अफ़सर के बंगले में डेरा डाला, उसे "न्याय भवन" का नाम दिया और वहीं से झगड़ों और विवादों का फ़ैसला करने लगे। उन्होंने गुप्तचरी का भी हैरतअंगेज़ नेटवर्क स्थापित कर लिया था। कुछ समय के लिए लोगों को लगा कि फ़िरंगी राज ख़त्म हो चुका है और उनका राज आ गया है। जुलाई 1857 में शाह मल को युद्ध में मार दिया गया।

मौलवी अहमदुल्ला शाह

मौलवी अहमदुल्ला शाह 1857 के विद्रोह में अहम भूमिका निभाने वाले बहुत सारे मौलवियों मे से एक थे। हैदराबाद में शिक्षित शाह काफ़ी कम उम्र में ही उपदेशक बन गए थे। 1856 में उन्हें अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ जिहाद का प्रचार करते और लोगों को विद्रोह के लिए तैयार करते हुए गाँव-गाँव जाते देखा गया था। वे एक पालकी में बैठकर चलते थे। पालकी के आगे-आगे ढोल और पीछे उनके समर्थक होते थे। इसीलिए उन्हें लोग-बाग डंका शाह कहने लगे थे। ब्रिटिश अफ़सर इस बात से परेशान थे कि मौलवी के साथ हज़ारों लोग जुट रहे थे और बहुत सारे मुसलमान उन्हें पैगम्बर मानने लगे थे और समझते थे कि वह इस्लाम के आदर्शों से ओतप्रोत हैं। जब 1856 में वे लखनऊ पहुँचे तो पुलिस ने उन्हें शहर में उपदेश देने से रोक दिया। 1857 में उन्हें फ़ैज़ाबाद जेल में बंद कर दिया गया। रिहा होने पर उन्हें 22वीं नेटिव इन्फेंट्री के विद्रोहियों ने अपना नेता चुन लिया। उन्होंने चिनहाट के विख्यात संघर्ष में हिस्सा लिया जिसमें हेनरी लॉरेंस की अगुवाई वाली टुकड़ियों को मुँह की खानी पड़ी। मौलवी साहब को उनकी बहादुरी और ताकत के लिए जाना जाता था। बहुत सारे लोग मानते थे कि उनको कोई नहीं हरा सकता; उनके पास जादुई शक्तियाँ हैं और अंग्रेज़ उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकते। काफ़ी हद तक इसी विश्वास के कारण उन्हें लोगों में इतना अधिकार प्राप्त था।

चित्र 11.5
हेनरी हार्डिंग, फ्रांसेस ग्रांट द्वारा बनाया चित्र, 1849
गवर्नर जनरल के तौर पर हार्डिंग ने सैनिक साज़ो-सामान के आधुनिकीकरण का प्रयास किया। उसने जिन एन्फ़ील्ड राइफ़लों का इस्तेमाल शुरू किया उनमें चिकने कारतूसों का इस्तेमाल होता था जिनके ख़िलाफ़ सिपाहियों ने विद्रोह किया था।

1.4 अफ़वाहें और भविष्यवाणियाँ

तरह-तरह की अफ़वाहों और भविष्यवाणियों के ज़रिए लोगों को उठ खड़ा होने के लिए उकसाया जा रहा था। जैसा कि हमने पीछे देखा, मेरठ से दिल्ली आने वाले सिपाहियों ने बहादुर शाह को उन कारतूसों के बारे में बताया था जिन पर गाय और सुअर की चर्बी का लेप लगा था। उनका कहना था कि अगर वे इन कारतूसों को मुँह से लगाएँगे तो उनकी जाति और मज़हब, दोनों भ्रष्ट हो जाएँगे। सिपाहियों का इशारा एन्फ़ील्ड राइफ़ल के उन कारतूसों की तरफ़ था जो हाल ही में उन्हें दिए गए थे। अंग्रेज़ों ने सिपाहियों को लाख समझाया कि ऐसा नहीं है लेकिन यह अफ़वाह उत्तर भारत की छावनियों में जंगल की आग की तरह फैलती चली गई।

इस अफ़वाह का स्रोत ढूँढा जा सकता है। राइफ़ल इंस्ट्रक्शन डिपो के कमांडेंट कैप्टेन राइट ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि दम दम स्थित शस्त्रागार में काम करने वाले "नीची जाति" के एक खलासी ने जनवरी 1857 के तीसरे हफ़्ते में एक ब्राह्मण सिपाही से पानी पिलाने के लिए कहा था। ब्राह्मण सिपाही ने यह कहकर अपने लोटे से पानी पिलाने से इनकार कर दिया कि "नीची जाति" के छूने से लोटा अपवित्र हो जाएगा। रिपोर्ट के मुताबिक, इस पर खलासी ने जवाब दिया कि "(वैसे भी) जल्दी ही तुम्हारी जाति भ्रष्ट होने वाली है क्योंकि अब तुम्हें गाय और सुअर की चर्बी लगे कारतूसों को मुँह से खींचना पड़ेगा।" इस रिपोर्ट की विश्वसनीयता के बारे में कहना मुश्किल है लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि जब एक बार यह अफ़वाह फैलना शुरू हुई तो अंग्रेज़ अफ़सरों के तमाम आश्वासनों के बावजूद इसे ख़त्म नहीं किया जा सका और इसने सिपाहियों में एक गहरा ग़ुस्सा पैदा कर दिया।

1857 की शुरुआत तक उत्तर भारत में यही एक अफ़वाह नहीं थी। यह अफ़वाह भी ज़ोरों पर थी कि अंग्रेज़ सरकार ने हिंदुओं और मुसलमानों की जाति और धर्म को नष्ट करने के लिए एक भयानक साज़िश रच ली है। अफ़वाह फैलाने वालों का कहना था कि इसी मकसद को हासिल करने के लिए अंग्रेज़ों ने बाज़ार में मिलने वाले आटे में गाय और सुअर की हड्डियों का चूरा मिलवा दिया है। शहरों और छावनियों में सिपाहियों और आम लोगों ने आटे को छूने से भी इनकार कर दिया। चारों तरफ़ इस आशय का भय और शक बना हुआ था कि अंग्रेज़ हिंदुस्तानियों को ईसाई बनाना चाहते हैं। यह बेचैनी बहुत तेज़ी से फैली। ब्रिटिश अफ़सरों ने लोगों को अपनी बात का यकीन दिलाने का भरसक प्रयास किया लेकिन नाकामयाब रहे। इन्हीं बेचैनियों ने लोगों को अगला कदम उठाने के लिए झिंझोड़ा। किसी बड़ी कार्रवाई के आह्वान को इस भविष्यवाणी से और बल मिला कि प्लासी की जंग के 100 साल पूरा होते ही 23 जून 1857 को अंग्रेज़ी राज ख़त्म हो जाएगा।

बात सिर्फ़ अफ़वाहों तक ही सीमित नहीं थी। उत्तर भारत के विभिन्न भागों से गाँव-गाँव में चपातियाँ बँटने की भी रिपोर्टें आ रही थीं। बताते हैं कि रात में एक आदमी आकर गाँव के चौकीदार को एक चपाती तथा पाँच और चपातियाँ बनाकर अगले गाँवों में पहुँचाने का निर्देश दे जाता था। और यह सिलसिला यूँ ही चलता जाता था। चपातियाँ बाँटने का मतलब और मक़सद न उस समय स्पष्ट था और न आज स्पष्ट है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि लोग इसे किसी आने वाली उथल-पुथल का संकेत मान रहे थे।

1.5 लोग अफ़वाहों में विश्वास क्यों कर रहे थे?

इतिहास में अफ़वाहों और भविष्यवाणियों की ताकत को सिर्फ़ इस आधार पर नहीं समझा जा सकता कि वे वाकई में सच थीं या नहीं। हमें देखना यह चाहिए कि जो उन पर यकीन कर रहे थे उनकी मानसिकता के बारे में इनसे क्या पता चलता है; ये अफ़वाहें और भविष्यवाणियाँ उनके भय, उनकी आशंकाओं, उनके विश्वासों और प्रतिबद्धताओं के बारे में क्या बताती हैं। अफ़वाह तभी फैलती है जब उसमें लोगों के ज़हन में गहरे दबे डर और संदेह की अनुगूँज सुनाई देती है।

अगर 1857 की इन अफ़वाहों को 1820 के दशक से अंग्रेज़ों द्वारा अपनाई जा रही नीतियों के संदर्भ में देखा जाए तो उनका मतलब ज़्यादा आसानी से समझा जा सकता है। जैसा कि आपको मालूम होगा, गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेंटिंक के नेतृत्व में उसी समय से ब्रिटिश सरकार पश्चिमी शिक्षा, पश्चिमी विचारों और पश्चिमी संस्थानों के ज़रिए भारतीय समाज को "सुधारने" के लिए खास तरह की नीतियाँ लागू कर रही थी। भारतीय समाज के कुछ तबकों की सहायता से उन्होंने अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय स्थापित किए थे जिनमें पश्चिमी विज्ञान और उदार कलाओं (Liberal Arts) के बारे में पढ़ाया जाता था। अंग्रेज़ों ने सती प्रथा को ख़त्म करने (1829) और हिंदू विधवा विवाह को वैधता देने के लिए क़ानून बनाए थे।

शासकीय दुर्बलता और दत्तकता को अवैध घोषित कर देने जैसे बहानों के ज़रिए अंग्रेज़ों ने न केवल अवध बल्कि झाँसी और सतारा जैसी बहुत सारी दूसरी रियासतों को भी क़ब्ज़े में ले लिया था। जैसे ही ऐसी कोई रियासत या इलाका उनके क़ब्ज़े में आता था, वहाँ अंग्रेज़ अपने ढंग की शासन व्यवस्था, अपने क़ानून, भूमि विवादों के निपटारे की अपनी पद्धति और भूराजस्व वसूली की अपनी व्यवस्था लागू कर देते थे। उत्तर भारत के लोगों पर इन सब कार्रवाइयों का गहरा असर हुआ।

लोगों को लगता था कि वे अब तक जिन चीज़ों की क़द्र करते थे, जिनको पवित्र मानते थे – चाहे राजे-रजवाड़े हों, सामाजिक-धार्मिक रीति-रिवाज हों या भूस्वामित्व, लगान अदायगी की प्रणाली हो – उन सबको ख़त्म करके एक ऐसी व्यवस्था लागू की जा रही थी जो ज़्यादा हृदयहीन, परायी और दमनकारी थी।

➲ चर्चा कीजिए...

इस भाग को एक बार और पढ़िए तथा विद्रोह के दौरान नेता कैसे उभरते थे, इस बारे में समानताओं और भिन्नताओं की व्याख्या कीजिए। किन्हीं दो नेताओं के बारे में बताइए कि आम लोग उनकी तरफ़ क्यों आकर्षित हो जाते थे।

इस सोच को ईसाई प्रचारकों की गतिविधियों से भी बल मिल रहा था। ऐसे अनिश्चित हालात में अफ़वाहें रातोंरात फैलने लगती थीं।

सन 1857 के विद्रोह के आधार का विस्तार से पता लगाने के लिए आइए अवध का ज़रा नज़दीकी से अध्ययन कीजिए। अवध 1857 के इस भव्य नाटक का बड़ा केंद्र था।

2. अवध में विद्रोह

2.1 "ये गिलास फल (Cherry) एक दिन हमारे ही मुँह में आकर गिरेगा।"

1851 में गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी ने अवध की रियासत के बारे में कहा था कि "ये गिलास फल एक दिन हमारे ही मुँह में आकर गिरेगा।" पाँच साल बाद, 1856 में इस रियासत को औपचारिक रूप से ब्रिटिश साम्राज्य का अंग घोषित कर दिया गया।

रियासत पर क़ब्ज़े का यह सिलसिला ज़रा लंबा चला। 1801 से अवध में सहायक संधि थोप दी गई थी। इस संधि में शर्त थी कि नवाब अपनी सेना ख़त्म कर दे, रियासत में अंग्रेज़ टुकड़ियों की तैनाती की इजाज़त दे और दरबार में मौजूद ब्रिटिश रेज़ीडेंट की सलाह पर काम करे। अपनी सैनिक ताक़त से वंचित हो जाने के बाद नवाब अपनी रियासत में क़ानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए दिनोदिन अंग्रेज़ों पर निर्भर होता जा रहा था। अब विद्रोही मुखियाओं और ताल्लुक़दारों पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था।

अवध पर क़ब्ज़े में अंग्रेज़ों की दिलचस्पी बढ़ती जा रही थी। उन्हें लगता था कि वहाँ की ज़मीन नील और कपास की खेती के लिए मुफ़ीद है और इस इलाक़े को उत्तरी भारत के एक बड़े बाज़ार के रूप में विकसित किया जा सकता है। 1850 के दशक की शुरुआत तक वे देश के ज़्यादातर बड़े हिस्सों पर जीत हासिल कर चुके थे। मराठा भूमि, दोआब, कर्नाटक, पंजाब और बंगाल, सब अंग्रेज़ों की झोली में थे। तक़रीबन एक सदी पहले बंगाल पर जीत के साथ शुरू हुई क्षेत्रीय विस्तार की यह प्रक्रिया 1856 में अवध के अधिग्रहण के साथ मुकम्मल हो जाने वाली थी।

2.2 "देह से जान जा चुकी थी।"

लॉर्ड डलहौज़ी द्वारा किए गए इस अधिग्रहण से तमाम इलाक़ों और रियासतों में गहरा असंतोष था। लेकिन इतना ग़ुस्सा कहीं नहीं था जैसा उत्तर भारत की शान कहे जाने वाले अवध की रियासत में था। यहाँ के नवाब वाजिद अली शाह को यह कहते हुए गद्दी से हटा कर कलकत्ता निष्कासित कर दिया गया था कि वह अच्छी तरह शासन नहीं चला रहे थे। ब्रिटिश सरकार ने यह निराधार निष्कर्ष भी निकाल लिया कि वाजिद

रेज़ीडेंट गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि को कहा जाता था। उसे ऐसे राज्य में तैनात किया जाता था जो अंग्रेज़ों के प्रत्यक्ष शासन के अंतर्गत नहीं था।

सहायक संधि

सहायक संधि लॉर्ड वेलेज़्ली द्वारा 1798 में तैयार की गई एक व्यवस्था थी। अंग्रेज़ों के साथ यह संधि करने वालों को कुछ शर्तें माननी पड़ती थीं। मसलन :

(क) अंग्रेज़ अपने सहयोगी की बाहरी और आंतरिक चुनौतियों से रक्षा करेंगे;

(ख) सहयोगी पक्ष के भूक्षेत्र में एक ब्रिटिश सैनिक टुकड़ी तैनात रहेगी;

(ग) सहयोगी पक्ष को इस टुकड़ी के रख-रखाव की व्यवस्था करनी होगी; तथा

(घ) सहयोगी पक्ष न तो किसी और शासक के साथ संधि कर सकेगा और न ही अंग्रेज़ों की अनुमति के बिना किसी युद्ध में हिस्सा लेगा।

मानचित्र 1
1857 में भारतीय उपमहाद्वीप।

रेखाचित्र
पैमाना नहीं दिया गया है।

अली शाह लोकप्रिय नहीं थे। मगर सच यह है कि लोग उन्हें दिल से चाहते थे। जब वे अपने प्यारे लखनऊ से विदा ले रहे थे तो बहुत सारे लोग विलाप करते हुए कानपुर तक उनके पीछे गए थे।

नवाब के निष्कासन से पैदा हुए दुख और अपमान के इस व्यापक अहसास को उस समय के बहुत सारे प्रेक्षकों ने दर्ज किया है। एक ने लिखा था : "देह से जान जा चुकी थी। शहर की काया बेजान थी...। कोई सड़क, कोई बाज़ार और घर ऐसा न था जहाँ से जान-ए-आलम से बिछड़ने पर विलाप का शोर न गूँज रहा हो।" एक लोक गीत में इस बात पर शोक व्यक्त किया गया कि *"अंगरेज बहादुर आइन, मुल्क लई लीन्हों।"*

इस भावनात्मक उथल-पुथल को भौतिक क्षति के अहसास से और बल मिला। नवाब को हटाए जाने से दरबार और उसकी संस्कृति भी ख़त्म हो गई। संगीतकारों, नर्तकों, कवियों, कारीगरों, बावर्चियों, नौकरों, सरकारी कर्मचारियों और बहुत सारे लोगों की रोज़ी-रोटी जाती रही।

स्रोत 3

नवाब साहब जा चुके हैं

एक और गीत में ऐसे शासक की दुर्दशा पर विलाप किया जा रहा है जिसे मजबूरन अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी :

अभिजात और किसान, सब रो रहे थे।

और सारा आलम रोता-चिल्लाता था।

हाय! जान-ए-आलम देस से विदा लेकर परदेस चले गए हैं।

➲ इस पूरे भाग को पढ़ें और चर्चा करें कि लोग वाजिद अली शाह की विदाई पर इतने दुखी क्यों थे।

चित्र 11.6
अवध का एक ज़मींदार, 1880

2.3 फ़िरंगी राज का आना और एक दुनिया का ख़ात्मा

अवध में विभिन्न प्रकार की पीड़ाओं ने राजकुमारों, ताल्लुक़दारों, किसानों और सिपाहियों को एक-दूसरे से जोड़ दिया था। वे सभी फिरंगी राज के आगमन को विभिन्न अर्थों में एक दुनिया की समाप्ति के रूप में देखने लगे थे। वे चीज़ें बिखर रही थीं जो लोगों के लिए बहुमूल्य थीं, जिनको वे प्यार करते थे। 1857 के विद्रोह में तमाम भावनाएँ और मुद्दे, परंपराएँ और निष्ठाएँ अभिव्यक्त हो रही थीं। बाकी जगहों के मुकाबले अवध में यह विद्रोह एक विदेशी शासन के ख़िलाफ़ लोक-प्रतिरोध की अभिव्यक्ति बन गया था।

अवध के अधिग्रहण से सिर्फ़ नवाब की ही गद्दी नहीं छिनी थी। इसने इलाके के ताल्लुक़दारों को भी लाचार कर दिया था। अवध के समूचे देहात में ताल्लुक़दारों की जागीरें और क़िले बिखरे हुए थे। ये लोग पीढ़ियों से अपने इलाक़े में ज़मीन और सत्ता पर नियंत्रण रखते आए थे। अंग्रेज़ों के आने से पहले ताल्लुक़दारों के पास हथियारबंद सिपाही होते थे। उनके अपने क़िले थे। अगर वे नवाब की संप्रभुता को स्वीकार कर लें और अपने ताल्लुक़दार का राजस्व चुकाते रहें तो उनके पास काफ़ी स्वायत्तता भी होती थी। कुछ बड़े ताल्लुक़दारों के पास तो 12,000 तक पैदल सिपाही होते थे। छोटे-मोटे ताल्लुक़दारों के पास भी 200 सिपाहियों की टुकड़ी तो होती ही थी। अंग्रेज़ इन ताल्लुक़दारों की सत्ता को बरदाश्त करने के लिए कतई तैयार नहीं थे। अधिग्रहण के फौरन बाद ताल्लुक़दारों की सेनाएँ भंग कर दी गईं। उनके दुर्ग ध्वस्त कर दिए गए।

ब्रिटिश भूराजस्व नीति ने ताल्लुक़दारों की हैसियत व सत्ता को और चोट पहुँचाई। अधिग्रहण के बाद 1856 में एकमुश्त बंदोबस्त के नाम से ब्रिटिश भूराजस्व व्यवस्था लागू कर दी गई। यह बंदोबस्त इस मान्यता पर आधारित था कि ताल्लुक़दार बिचौलिए थे जिनके पास ज़मीन का मालिकाना नहीं था। उन्होंने बल और धोखाधड़ी के ज़रिए अपना प्रभुत्व स्थापित किया हुआ था। एकमुश्त बंदोबस्त में ताल्लुक़दारों को उनकी ज़मीनों से बेदखल किया जाने लगा। आंकड़ों से पता चलता है कि अंग्रेज़ों के आने से पहले ताल्लुक़दारों के पास अवध के 67 प्रतिशत गाँव थे। एकमुश्त बंदोबस्त के लागू होने के बाद यह संख्या घटकर 38 प्रतिशत रह गई। दक्षिण अवध के ताल्लुक़दारों को सबसे बुरी मार पड़ी। कुछ के तो आधे से ज़्यादा गाँव हाथ से जाते रहे।

ब्रिटिश भूराजस्व अधिकारियों का मानना था कि ताल्लुक़दारों को हटाकर वे ज़मीन असली मालिकों के हाथ में सौंप देंगे जिससे किसानों के शोषण में कमी आएगी और राजस्व वसूली में इजाफ़ा होगा। वास्तव में ऐसा नहीं हुआ। भूराजस्व वसूली में तो इजाफ़ा हुआ लेकिन किसानों के बोझ में कमी नहीं आई। अधिकारियों को जल्दी ही समझ में आने

लगा कि अवध के बहुत सारे इलाक़े का मूल्य निर्धारण बहुत बढ़ा-चढ़ा कर किया गया था। कुछ स्थानों पर तो राजस्व माँग में 30 से 70 प्रतिशत तक इज़ाफ़ा हो गया था। यानी न तो ताल्लुक़दारों के पास और न ही काश्तकारों के पास इस अधिग्रहण पर खुशी जताने का कोई कारण था।

ताल्लुक़दारों की सत्ता छिनने का नतीजा यह हुआ कि एक पूरी सामाजिक व्यवस्था भंग हो गई। निष्ठा और संरक्षण के जिन बंधनों से किसान ताल्लुक़दारों के साथ बँधे हुए थे वे अस्त-व्यस्त हो गए। अंग्रेज़ों से पहले ताल्लुक़दार ही जनता का उत्पीड़न करते थे लेकिन जनता की नज़र में बहुत सारे ताल्लुक़दार दयालु अभिभावक की छवि भी रखते थे। वे किसानों से तरह-तरह के मद में पैसा तो वसूलते थे लेकिन बुरे वक़्त में किसानों की मदद भी करते थे। अब अंग्रेज़ों के राज में किसान मनमाने राजस्व आकलन और गैर-लचीली राजस्व व्यवस्था के तहत बुरी तरह पिसने लगे थे। अब इस बात की कोई गारंटी नहीं थी कि कठिन वक़्त में या फ़सल खराब हो जाने पर सरकार राजस्व माँग में कोई कमी करेगी या वसूली को कुछ समय के लिए टाल दिया जाएगा। ना ही किसानों को इस बात की उम्मीद थी कि तीज-त्यौहारों पर कोई क़र्जा और मदद मिल पाएगी जो पहले ताल्लुक़दारों से मिल जाती थी।

अवध जैसे जिन इलाकों में 1857 के दौरान प्रतिरोध बेहद सघन और लंबा चला था वहाँ लड़ाई की बागडोर असल में ताल्लुक़दारों और उनके किसानों के ही हाथों में थी। बहुत सारे ताल्लुक़दार अवध के नवाब के प्रति निष्ठा रखते थे इसलिए वे अंग्रेज़ों से लोहा लेने के लिए लखनऊ जाकर बेगम हज़रत महल (नवाब की पत्नी) के खेमे में शामिल हो गए। उनमें से कुछ तो बेगम की पराजय के बाद भी उनके साथ डटे रहे।

किसानों का असंतोष अब फ़ौजी बैरकों में भी पहुँचने लगा था क्योंकि बहुत सारे किसान अवध के गाँवों से ही भर्ती किए गए थे। दशकों से सिपाही कम वेतन और वक़्त पर छुट्टी न मिलने के कारण असंतुष्ट थे। 1850 के दशक तक आते-आते उनके असंतोष के कई नए कारण पैदा हो चुके थे।

1857 के जनविद्रोह से पहले के सालों में सिपाहियों के अपने गोरे अफ़सरों के साथ रिश्ते काफ़ी बदल चुके थे। 1820 के दशक में अंग्रेज़ अफ़सर सिपाहियों के साथ दोस्ताना ताल्लुक़ात रखने पर ख़ासा ज़ोर देते थे। वे उनकी मौजमस्ती में शामिल होते थे, उनके साथ मल्ल-युद्ध करते थे, उनके साथ तलवारबाज़ी करते थे और उनके साथ शिकार पर जाते थे। उनमें से बहुत सारे तो बख़ूबी हिंदुस्तानी बोलना जानते थे और यहाँ के रीति-रिवाजों व संस्कृति से वाकिफ़ थे। उनमें

स्रोत 4

ताल्लुक़दारों की सोच

ताल्लुक़दारों के रवैये को रायबरेली के पास स्थित कालाकंकर के राजा हनवन्त सिंह ने सबसे अच्छी तरह व्यक्त किया था। विद्रोह के दौरान हनवन्त सिंह ने एक अंग्रेज़ अफ़सर को पनाह दी और उसे सुरक्षित स्थान तक पहुँचाया था। उस अफ़सर से आख़िरी मुलाकात में हनवन्त सिंह ने कहा कि –

> साहिब, आपके मुल्क के लोग हमारे देश में आए और उन्होंने हमारे राजाओं को खदेड़ दिया। आप अफ़सरों को भेज कर जिले-जिले में जागीरों के मालिकाने की जाँच करवाते हैं। एक ही झटके में आपने मेरे पुरखों की ज़मीन मुझसे छीन ली। मैं चुप रहा। फिर अचानक आपका बुरा वक़्त शुरू हो गया। यहाँ के लोग आपके ख़िलाफ़ उठ खड़े हुए। तब आप मेरे पास आए, जिसे आपने बर्बाद किया था। मैंने आप की जान बचाई है। लेकिन अब,– अब मैं अपने सिपाहियों को लेकर लखनऊ जा रहा हूँ ताकि आपको देश से खदेड़ सकूँ।

➲इस अंश से आपको ताल्लुक़दारों के रवैये के बारे में क्या पता चल रहा है? 'यहाँ के लोगों' से हनवन्त सिंह का क्या आशय था? उन्होंने लोगों के ग़ुस्से की क्या वजह बताई?

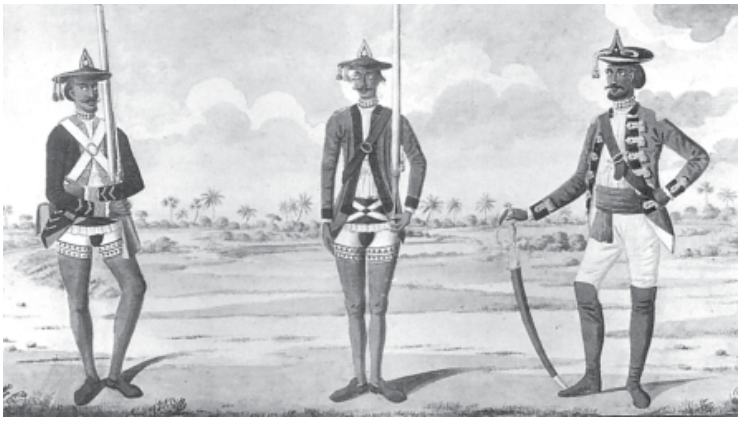

चित्र 11.7
यूरोपीय क़िस्म की वर्दी पहने बंगाल के सिपाही। यहाँ कलाकार सिपाहियों की वर्दी का मज़ाक उड़ा रहा है। इन तस्वीरों के ज़रिए शायद यह जताने का प्रयास किया जा रहा है कि पश्चिमी पोशाक पहन कर भी हिंदुस्तानी सुंदर नहीं दिख सकते।

➲ चर्चा कीजिए...

पता लगाएँ कि क्या आपके राज्य के लोगों ने 1857 के विद्रोह में हिस्सा लिया था? अगर हाँ, तो उन्होंने ऐसा क्यों किया होगा? अगर नहीं, तो उसकी व्याख्या कीजिए।

अफ़सर की कड़क और अभिवावक का स्नेह, दोनों निहित थे।

1840 के दशक में स्थिति बदलने लगी। अफ़सरों में श्रेष्ठता का भाव पैदा होने लगा और वे सिपाहियों को कमतर नस्ल का मानने लगे। वे उनकी भावनाओं की ज़रा-सी भी फ़िक्र नहीं करते थे। गाली-गलौज और शारीरिक हिंसा सामान्य बात बन गई। सिपाहियों व अफ़सरों के बीच फ़ासला बढ़ता गया। भरोसे की जगह संदेह ने ले ली। चिकनाई युक्त कारतूसों की घटना इसका एक बढ़िया उदाहरण थी।

यह भी याद रखना महत्त्वपूर्ण है कि उत्तर भारत में सिपाहियों और ग्रामीण जगत के बीच गहरे संबंध थे। बंगाल आर्मी के सिपाहियों में से बहुत सारे अवध और पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँवों से भर्ती होकर आए थे। उनमें से बहुत सारे ब्राह्मण या "ऊँची जाति" के थे। बल्कि अवध को तो "बंगाल आर्मी की पौधशाला" कहा जाता था। सिपाहियों के परिवार अपने इर्द-गिर्द जिन बदलावों को देख रहे थे और उन्हें जो ख़तरे दिखाई दे रहे थे वे जल्दी ही सिपाही लाइनों में भी दिखाई देने लगे। दूसरी ओर, कारतूसों के बारे में सिपाहियों का भय, छुट्टियों के बारे में उनकी शिकायतें, बढ़ते दुर्व्यवहार और नस्ली गाली-गलौज के प्रति बढ़ता असंतोष गाँवों में भी प्रतिबिंबित होने लगा था।

सिपाहियों और ग्रामीण जगत के बीच मौजूद इन संबंधों से जनविद्रोह के रूप-रंग पर गहरा असर पड़ा। जब सिपाही अपने अफ़सरों की अवज्ञा करते थे और हथियार उठाते थे तो फ़ौरन ही गाँवों में उनके भाई-बिरादर भी उनके साथ आ जुटते थे। हर कहीं किसान शहरों में पहुँचकर सिपाहियों और शहर के आम लोगों के साथ जुड़ कर विद्रोह के सामूहिक कृत्य में शामिल हो रहे थे।

3. विद्रोही क्या चाहते थे?

बतौर विजेता कठिनाइयों, चुनौतियों और बहादुरी के बारे में अंग्रेज़ों की अपनी राय थी। वे विद्रोहियों को अहसानफ़रामोश और बर्बर लोगों का झुंड मानते थे। विद्रोहियों को कुचलने का एक मतलब यह भी था कि उनकी आवाज़ को दबा दिया जाए। कुछ विद्रोहियों को ही इस घटनाक्रम के बारे में अपनी बात दर्ज करने का मौका मिला। यूँ भी विद्रोहियों में ज़्यादातर सिपाही और आम लोग थे जो पढ़े-लिखे नहीं थे। इस प्रकार, अपने विचारों का प्रसार करने और लोगों को विद्रोह में शामिल करने के लिए जारी की गई कुछ घोषणाओं व इश्तहारों के सिवाय हमारे पास ऐसी ज़्यादा चीज़ें नहीं हैं जिनकी बिना पर हम विद्रोहियों के नज़रिए को समझ सकें। इसीलिए,

1857 में जो कुछ हुआ, उसे रचने के लिए इतिहासकारों की कोशिशों को बहुत हद तक, और मजबूरन, अंग्रेज़ों के दस्तावेज़ों पर निर्भर रहना पड़ता है। विडंबना यह है कि इन स्रोतों से अंग्रेज़ अफ़सरों की सोच का तो पता चलता है लेकिन इस बारे में ज़्यादा सुराग़ नहीं मिल पाता कि विद्रोही क्या चाहते थे।

3.1 एकता की कल्पना

1857 में विद्रोहियों द्वारा जारी की गई घोषणाओं में, जाति और धर्म का भेद किए बिना, समाज के सभी तबकों का आह्वान किया जाता था। बहुत सारी घोषणाएँ मुस्लिम राजकुमारों या नवाबों की तरफ़ से या उनके नाम पर जारी की गई थीं। परंतु उनमें भी हिंदुओं की भावनाओं का ख़याल रखा जाता था। इस विद्रोह को एक ऐसे युद्ध के रूप में पेश किया जा रहा था जिसमें हिंदुओं और मुसलमानों, दोनों का नफ़ा-नुकसान बराबर था। इश्तहारों में अंग्रेज़ों से पहले के हिंदू-मुस्लिम अतीत की ओर संकेत किया जाता था और मुग़ल साम्राज्य के तहत विभिन्न समुदायों के सहअस्तित्व का गौरवगान किया जाता था। बहादुर शाह के नाम से जारी की गई घोषणा में मुहम्मद और महावीर, दोनों की दुहाई देते हुए जनता से इस लड़ाई में शामिल होने का आह्वान किया गया। दिलचस्प बात यह है कि आंदोलन

स्रोत 5

आज़मगढ़ घोषणा, 25 अगस्त 1857

विद्रोही क्या चाहते थे, इसके बारे में हमारी जानकारी का यह एक मुख्य स्रोत है :

> यह सर्वविदित है कि इस युग में हिंदुस्तान के लोग, हिंदू और मुस्लिम, दोनों ही अधर्मी और षड्यंत्रकारी अंग्रेज़ों की निरकुंशता व उत्पीड़न से त्रस्त हैं। इसलिए देश के सभी धनवान लोगों को, खासतौर से जिनका मुस्लिम शाही परिवारों से ताल्लुक़ रहा है, और जिन्हें लोगों का धर्मरक्षक और स्वामी माना जाता है, अपने जीवन और संपत्ति को जनता की कुशलक्षेम के लिए होम कर देना चाहिए...।
>
> अपने धर्म की रक्षा के लिए अरसा पहले अपने घर-बार छोड़ चुके और भारत से अंग्रेज़ों को उखाड़ फेंकने के लिए पूरा ज़ोर लगा रहे बहुत सारे हिंदू और मुसलमान मुखिया मेरे पास आए और उन्होंने इस भारतीय धर्म युद्ध में हिस्सा लिया। मुझे पूरी उम्मीद है कि जल्दी ही मुझे पश्चिम से भी मदद मिलेगी। इसलिए जनता की जानकारी के लिए कई भागों का यह इश्तहार जारी किया जा रहा है। यह सबका दायित्व है कि इसको ग़ौर से पढ़ें और इसका पालन करें। इस साझा उद्देश्य में जो लोग अपना योगदान देना चाहते हैं, लेकिन जिनके पास अपनी सेवाएँ देने के साधन नहीं हैं, उन्हें मेरी तरफ़ से दैनिक भोजन दिया जाएगा; और सबको मालूम हो कि हिंदू और मुस्लिम, दोनों तरह के प्राचीन ग्रंथों में, चमत्कार करने वालों के लेखन और भविष्यवक्ताओं में, पंडितों की गणनाओं में... सबमें यह सहमति दिखायी देती कि अब भारत में या कहीं भी अंग्रेज़ों के पैर टिक नहीं पाएँगे। इसलिए यह सबका फ़र्ज़ है कि वे अंग्रेज़ों का वर्चस्व बने रहने की सारी उम्मीद छोड़ दें, मेरा साथ दें और साझे हित में काम करते हुए अपने व्यक्तिगत परिश्रम से बादशाही सम्मान के हकदार बनें और अपने-अपने लक्ष्य प्राप्त करें। अन्यथा, अगर यह स्वर्णिम अवसर हमारे हाथ से चला गया तो हमें अपनी इस मूर्खता पर पश्चाताप करना पड़ेगा...।

भाग-1 – ज़मींदारों के बारे में : ज़ाहिर है कि ज़मींदारी बंदोबस्त तय करने में अंग्रेज़ी सरकार ने बेहिसाब *जमा* (भूराजस्व) थोप दिया है और कई ज़मींदारों को बेइज़्ज़त व बरबाद किया है। बकाया लगान की वजह से उनकी जागीरें नीलाम कर दी गई हैं। हद तो ये है कि एक आम रैयत, किसी ज़नाना नौकर या किसी ग़ुलाम की ओर से दाखिल किए गए मुकदमे पर भी बाइज़्ज़त ज़मींदारों को अदालत में घसीटा जा रहा है, गिरफ़्तार किया जा रहा है, कैदखाने में डाला जा रहा है और बेइज़्ज़त किया जा रहा है। ज़मींदारियों के बारे में दायर किए गए मुक़दमों में भारी ख़र्चे की स्टाम्प और दीवानी अदालतों के गैर-ज़रूरी ख़र्चों का मकसद प्रतिवादियों को दरिद्र करना रहा है। ज़मींदारों के ख़ज़ाने को स्कूलों, अस्पतालों, सड़कों आदि के लिए चन्दे के नाम पर हर साल खाली किया जा रहा है। इस तरह की वसूलियों के लिए बादशाही सरकार में कोई जगह नहीं होगी : *जमा* हलका रहेगा, ज़मींदारों के हितों की रक्षा की जाएगी और हर ज़मींदार को अपनी ज़मींदारी में अपने ढंग से शासन करने का अधिकार होगा...

भाग 2 – व्यापारियों के बारें में : इस अधर्मी और षड्यंत्रकारी ब्रिटिश सरकार ने नील, कपड़े, जहाज व्यवसाय जैसी तमाम बेहतरीन और बहुमूल्य चीज़ों के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लिया है। अब छोटी-मोटी चीज़ों का व्यापार ही लोगों के लिए रह गया है...। डाक खर्चे, नाका वसूली और स्कूलों के लिए चन्दे के नाम पर व्यापारियों के मुनाफ़े में से सेंध मारी जा रही है। इन तमाम रियायतों के बावजूद व्यापारियों को दो कौड़ी के आदमी की शिकायत पर गिरफ़तार किया जा सकता है, बेइज़्ज़त किया जा सकता है। जब बादशाही सरकार बनेगी तो इन सारे फ़रेबी तौर-तरीकों को ख़त्म कर दिया जाएगा और ज़मीन व पानी, दोनों रास्तों से होने वाला हर चीज़ का व्यापार भारत के देसी व्यापारियों के लिए खोल दिया जाएगा...। इसलिए यह हर व्यापारी की जिम्मेदारी है कि वह इस जंग में हिस्सा ले और बादशाही सरकार की हर इनसानी और माली मदद करे...।

भाग 3-सरकारी कर्मचारियों के बारे में : अब यह राज़ की बात नहीं है कि अंग्रेज़ सरकार के तहत प्रशासनिक और सैनिक सेवाओं में भर्ती होने वाले भारतीय लोगों को इज़्ज़त नहीं मिलती, उनकी तनख़्वाह कम होती है और उनके पास कोई ताकत नहीं होती। दोनों महकमों में प्रतिष्ठा और पैसे वाले सारे पद सिर्फ़ अंग्रेज़ों को मिलते हैं. ..। इसलिए ब्रिटिश सेवा में काम करने वाले तमाम भारतीयों को अपने मज़हब और हित पर ध्यान देना चाहिए और अंग्रेज़ों के प्रति अपनी वफ़ादारी छोड़कर बादशाही सरकार का साथ देना चाहिए। उन्हें फ़िलहाल 200 और 300 रुपये प्रतिमाह की तनख़्वाह मिलेगी और भविष्य में ऊँचे ओहदों की उम्मीद रखें...।

भाग 4- कारीगरों के बारे में : इसमें कोई शक नहीं कि इंग्लैंड में बनी चीज़ों को ला-लाकर यूरोपियों ने हमारे बुनकरों, सूती वस्त्र बनाने वालों, बढ़इयों, लोहारों और मोचियों आदि को बेरोज़गार कर दिया है, उनके काम-धंधों पर इस तरह क़ब्ज़ा जमा लिया है कि देसी कारीगरों की हर श्रेणी भिखमंगों की हालत में पहुँच गई है। बादशाही सरकार में देसी कारीगरों को राजाओं और अमीरों की सेवा में तैनात किया जाएगा। इससे निःसंदेह उनकी उन्नति होगी। इसलिए इन करीगरों को अंग्रेज़ों की सेवा छोड़ देनी चाहिए।

भाग 5 – पंडितों, फ़कीरों और अन्य ज्ञानी व्यक्तियों के बारे में : पंडित और फ़कीर क्रमशः हिंदू और मुस्लिम धर्मों के अभिभावक हैं। यूरोपीय दोनो धर्मों के शत्रु हैं और क्योंकि फिलहाल धर्म के कारण ही अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ एक युद्ध छिड़ा हुआ है इसलिए पंडितों और फ़कीरों का फ़र्ज़ है कि वे खुद को मेरे सामने पेश करें और इस पवित्र युद्ध में अपना हिस्सा निभाएँ...।

➲ इस घोषणा में ब्रिटिश शासन के ख़िलाफ़ कौन से मुद्दे उठाए गए हैं। प्रत्येक तबके के बारे में दिए गए भाग को ध्यान से पढ़िए। घोषणा की भाषा पर ध्यान दीजिए और देखिए कि उसमें कौन-सी भावनाओं पर ज़ोर दिया जा रहा है।

स्रोत 6

सिपाही क्या सोचते थे

विद्रोही सिपाहियों की एक अर्ज़ी जो बच गई :

एक सदी पहले अंग्रेज़ हिंदुस्तान आए और धीरे-धीरे यहाँ फौजी टुकड़ियाँ बनाने लगे। इसके बाद वे हर राज्य के मालिक बन बैठे। हमारे पुरखों ने सदा उनकी सेवा की है और हम भी उनकी नौकरी में आए...। ईश्वर की कृपा से और हमारी सहायता से अंग्रेज़ों ने जो चाहा वो इलाका जीत लिया। उनके लिए हमारे जैसे हज़ारों हिंदुस्तानी जवानों को अपनी कुर्बानी देनी पड़ी लेकिन न हमने कभी पैर पीछे खींचें और न कोई बहाना बनाया और न ही कभी बग़ावत के रास्ते पर चले...।

लेकिन सन् 1857 में अंग्रेज़ों ने ये हुक्म जारी कर दिया कि अब सिपाहियों को इंग्लैंड से नए कारतूस और बंदूकें दी जाएँगी। नए कारतूसों में गाय और सुअर की चर्बी मिली हुई है और गेहूँ के आटे में हड्डियों का चूरा मिलाकर खिलाया जा रहा है। ये चीज़ें पैदल-सेना, घुड़सवारों और गोलअंदाज़ फौज की हर रेजीमेंट में पहुँचा दी गई हैं...।

उन्होने ये कारतूस थर्ड लाइट केवेलरी के सवारों (घुड़सवार सैनिक) को दिए और उन्हें दाँतो से खींचने के लिए कहा। सिपाहियों ने इस हुक्म का विरोध किया और कहा कि वे ऐसा कभी नहीं करेंगे क्योंकि अगर उन्होंने ऐसा किया तो उनका धर्म भ्रष्ट हो जाएगा...। इस पर अंग्रेज़ अफ़सरों ने तीन रेजीमेंटों के जवानों की परेड करवा दी। 1400 अंग्रेज़ सिपाही, यूरोपीय सैनिकों की दूसरी बटालियनें, और घुड़सवार गोलअंदाज़ फ़ौज को तैयार कर भारतीय सैनिकों को घेर लिया गया। हर पैदल रेजीमेंट के सामने छर्रों से भरी छह-छह तोपें तैनात कर दी गईं और 84 नए सिपाहियों को गिरफ़्तार करके, बेड़ियाँ डालकर, जेल में बंद कर दिया गया। छावनी के सवारों को इसलिए जेल में डाला गया ताकि हम डर कर नए कारतूसों को दाँतों से खींचने लगें। इसी कारण हम और हमारे सारे सहोदर इकट्ठा होकर अपनी आस्था की रक्षा के लिए अंग्रेज़ों से लड़े...। हमें दो साल तक युद्ध जारी रखने पर मजबूर किया गया। धर्म व आस्था के सवाल पर हमारे साथ खड़े राजा और मुखिया अभी भी हमारे साथ हैं और उन्होंने भी सारी मुसीबतें झेली हैं। हम दो साल तक इसलिए लड़े ताकि हमारा अक़ायद (आस्था) और मज़हब दूषित न हों। अगर एक हिंदू या मुसलमान का धर्म ही नष्ट हो गया तो दुनिया में बचेगा क्या?

➲ इस अर्ज़ी में सैनिक विद्रोह के जो कारण बताए गए हैं उनकी तुलना ताल्लुक़दार द्वारा बताए गए कारणों (स्रोत 3) के साथ कीजिए।

में हिंदू और मुसलमानों के बीच खाई पैदा करने की अंग्रेज़ों द्वारा की गई कोशिशों के बावजूद ऐसा कोई फ़र्क़ नहीं दिखाई दिया। अंग्रेज़ शासन ने दिसंबर 1857 में पश्चिमी उत्तर प्रदेश स्थित बरेली के हिंदुओं को मुसलमानों के ख़िलाफ़ भड़काने के लिए 50,000 रुपये खर्च किए। उनकी यह कोशिश नाकामयाब रही।

3.2 उत्पीड़न के प्रतीकों के ख़िलाफ़

इन घोषणाओं में ब्रिटिश राज (जिसे विद्रोही फ़िरंगी राज कहते थे) से संबंधित हर चीज़ को पूरी तरह खारिज किया जा रहा था। देशी रियासतों पर क़ब्ज़े और समझौतों का उल्लंघन करने के लिए अंग्रेज़ों की निंदा की जाती थी। विद्रोही नेताओं का कहना था कि अंग्रेज़ों पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

लोगों को इस बात पर गुस्सा था कि ब्रिटिश भूराजस्व व्यवस्था ने बड़े-छोटे भूस्वामियों को ज़मीन से बेदख़ल कर दिया था और विदेशी व्यापार ने दस्तकारों और बुनकरों को तबाह कर डाला था। ब्रिटिश शासन के हर पहलू पर निशाना साधा जाता था। फ़िरंगियों पर स्थापित और सुंदर जीवन-शैली को नष्ट करने का आरोप लगाया जाता था। विद्रोही अपनी उस दुनिया को दोबारा बहाल करना चाहते थे।

विद्रोही उद्घोषणाएँ इस व्यापक डर को व्यक्त करती थीं कि अंग्रेज़, हिंदुओं और मुसलमानों की जाति और धर्म को नष्ट करने पर तुले हैं और वे लोगों को ईसाई बनाना चाहते हैं। इसी डर की वजह से लोग चल रही अफ़वाहों पर भरोसा करने लगे। लोगों को प्रेरित किया गया की वे इकट्ठे मिलकर अपने रोज़गार, धर्म, इज़्ज़त और अस्मिता के लिए लड़ें। यह 'व्यापक सार्वजनिक भलाई' की लड़ाई होगी।

जैसा कि हम देख चुके हैं, बहुत सारे स्थानों पर अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ विद्रोह उन तमाम ताकतों के विरुद्ध हमले की शक्ल ले लेता था जिनको अंग्रेज़ों के हिमायती या जनता का उत्पीड़क समझा जाता था। कई दफ़ा विद्रोही शहर के संभ्रांत को जान-बूझकर बेइज़्ज़त करते थे। गाँवों में उन्होंने सूदखोरों के बहीखाते जला दिए और उनके घर तोड़-फोड़ डाले। इससे पता चलता है कि विद्रोही *तमाम* उत्पीड़कों के ख़िलाफ़ थे और परंपरागत सोपानों (ऊँच-नीच) को ख़त्म करना चाहते थे। इसमें हमें एक वैकल्पिक दृष्टि, संभवत: एक ज़्यादा समतापरक समाज की कल्पना दिखाई देती है। पर, यह सोच उनकी घोषणाओं में नहीं दिखाई देती। उनमें तो फ़िरंगी राज के ख़िलाफ़ तमाम सामाजिक समूहों को एकजुट करने का ही आह्वान किया जाता था।

3.3 वैकल्पिक सत्ता की तलाश

ब्रिटिश शासन ध्वस्त हो जाने के बाद दिल्ली, लखनऊ और कानपुर जैसे स्थानों पर विद्रोहियों ने एक प्रकार की सत्ता और शासन संरचना स्थापित करने का प्रयास किया। बेशक यह प्रयोग ज़्यादा समय तक नहीं चला लेकिन इन कोशिशों से पता चलता है कि विद्रोही नेता अठारहवीं सदी की पूर्व-ब्रिटिश दुनिया को पुनर्स्थापित करना चाहते थे। इन नेताओं ने पुरानी दरबारी संस्कृति का सहारा लिया। विभिन्न पदों पर नियुक्तियाँ की गईं। भूराजस्व वसूली और सैनिकों के वेतन के भुगतान का इंतज़ाम किया गया। लूटपाट बंद करने के लिए हुक्मनामे जारी किए गए। इसके साथ-साथ अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ युद्ध जारी रखने की योजनाएँ भी बनाई गई। सेना की कमान शृंखला तय की गई। इन सारे प्रयासों में विद्रोही अठारहवीं सदी के मुग़ल जगत से ही प्रेरणा ले रहे थे – यह जगत उन तमाम चीज़ों का प्रतीक बन गया जो उनसे छिन चुकी थीं।

विद्रोहियों द्वारा स्थापित शासन संरचना का प्राथमिक उद्देश्य युद्ध की ज़रूरतों को पूरा करना था। लेकिन ज़्यादातर मामलों में ये संरचनाएँ

➲ चर्चा कीजिए...

आपकी राय में विद्रोहियों के नज़रिए को पुन:निर्मित करने में इतिहासकारों के सामने कौन-सी मुख्य समस्याएँ आती हैं?

अंग्रेज़ों की मार बरदाश्त नहीं कर पाईं। अवध में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ प्रतिरोध सबसे लंबा चला। वहाँ लखनऊ दरबार द्वारा जवाबी हमले की योजनाएँ बनाई जा रही थीं और 1857 के आखिर तथा 1858 के शुरुआती महीनों तक हुकुम की श्रेणियाँ वजूद में थीं।

4. दमन

1857 के बारे में हमारे पास जो भी विवरण मौजूद हैं उनसे यह साफ़ हो जाता है कि इस विद्रोह को कुचलना अंग्रेज़ों के लिए बहुत आसान साबित नहीं हुआ।

उत्तर भारत को दोबारा जीतने के लिए टुकड़ियों को रवाना करने से पहले अंग्रेज़ों ने उपद्रव शांत करने के लिए फ़ौजियों की आसानी के लिए कई क़ानून पारित कर दिए थे। मई और जून 1857 में पारित किए गए कई क़ानूनों के ज़रिए न केवल समूचे उत्तर भारत में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया बल्कि फ़ौजी अफ़सरों और यहाँ तक कि आम अंग्रेज़ों को भी ऐसे हिंदुस्तानियों पर मुक़दमा चलाने और उनको सज़ा देने का अधिकार दे दिया गया जिन पर विद्रोह में शामिल होने का शक था। कहने का मतलब यह है कि क़ानून और मुकदमें की सामान्य प्रक्रिया रद्द कर दी गई थी और यह स्पष्ट कर दिया गया था कि विद्रोह की केवल एक ही सज़ा हो सकती है – सज़ा-ए-मौत।

स्रोत 7

विद्रोही ग्रामीण

ग्रामीण अवध क्षेत्र से रिपोर्ट भेजने वाले एक अफ़सर ने लिखा :

अवध के लोग उत्तर से जोड़ने वाली संचार लाइन पर ज़ोर बना रहे हैं...। अवध के लोग गाँव वाले हैं...। ये गाँव वाले यूरोपियों की पकड़ से बिलकुल बाहर हैं। पल में बिखर जाते हैं, पल में फिर जुट जाते हैं। शासकीय अधिकारियों का कहना है कि इन गाँव वालों की संख्या बहुत बड़ी है और उनके पास बाकायदा बंदूकें हैं।

➲ इस विवरण के अनुसार गाँव वालों से निपटने में अंग्रेज़ों को किन मुश्किलों का सामना करना पड़ा?

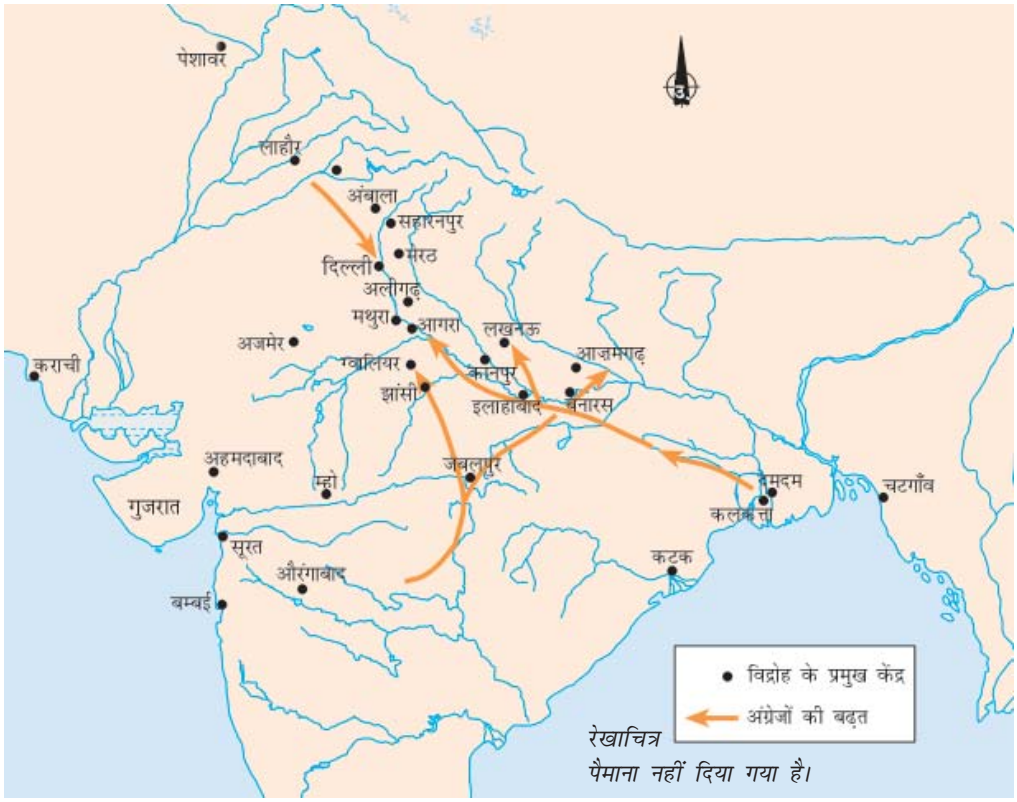

मानचित्र 2
यहाँ विद्रोह के महत्त्वपूर्ण केंद्र दिखाए गए हैं। विद्रोहियों पर ब्रिटिश हमलों के मार्गों को भी दर्शाया गया है।

इन नए विशेष क़ानूनों और ब्रिटेन से मँगाई गई नयी टुकड़ियों से लैस अंग्रेज़ सरकार ने विद्रोह को कुचलने का काम शुरू कर दिया। विद्रोहियों की तरह वे भी दिल्ली के सांकेतिक महत्त्व को बखूबी समझते थे। लिहाज़ा, उन्होंने दोतरफ़ा हमला बोल दिया। एक तरफ़ कलकत्ते से, दूसरी तरफ़ पंजाब से दिल्ली की तरफ़ कूच हुआ हालांकि पंजाब कमोबेश शांत था। दिल्ली को क़ब्ज़े में लेने की अंग्रेज़ों की कोशिश जून 1857 में बड़े पैमाने पर शुरू हुई लेकिन यह मुहिम सितंबर के आखिर में जाकर पूरी हो पाई। दोनों तरफ़ से जमकर हमले किए गए और दोनों पक्षों को भारी नुकसान उठाना पड़ा। इसकी एक वजह ये थी कि पूरे उत्तर भारत के विद्रोही राजधानी को बचाने के लिए दिल्ली में आ जमे थे।

गंगा के मैदान में भी अंग्रेज़ों की बढ़त का सिलसिला धीमा रहा। अंग्रेज़ टुकड़ियों को हर इलाक़ा गाँव-दर-गाँव जीतना था। आम देहाती जनता और आस-पास के लोग उनके ख़िलाफ़ थे। जैसे ही उन्होंने अपनी उपद्रव-विरोधी कार्रवाई शुरू की, अंग्रेज़ों को अहसास हो गया कि उनका सामना सिर्फ़ सैनिक विद्रोह से नहीं है, वे ऐसे आंदोलन से जूझ रहे हैं जिसके पीछे बेहिसाब जन-समर्थन मौजूद है। उदाहरण के लिए, अवध में फॉरसिथ नाम के एक अंग्रेज़ अफ़सर का अनुमान था कि कम से कम तीन-चौथाई वयस्क पुरुष आबादी विद्रोह में शामिल थी। इस इलाक़े को लंबी लड़ाई के बाद मार्च 1858 में जाकर ही अंग्रेज़ दोबारा अपने नियंत्रण में ले पाए।

चित्र 11.8
दिल्ली रिज पर स्थित एक मस्ज़िद, फ़ेलिस बिएतो द्वारा लिया गया चित्र, 1857-58.
1857 के बाद ब्रिटिश फ़ोटोग्राफ़रों ने तबाही और ध्वंस की असंख्य तसवीरें उतारी थीं।

अंग्रेज़ों ने सैनिक ताकत का भयानक पैमाने पर इस्तेमाल किया। लेकिन यह उनका एकमात्र हथियार नहीं था। वर्तमान उत्तर प्रदेश के एक विशाल भू-भाग में बड़े भूस्वामियों और काश्तकारों ने मिलकर अंग्रेज़ों का विरोध किया था। अंग्रेज़ों ने इस एकता को तोड़ने के लिए

चित्र 11.9
सिंकदरा बाग, चित्रकार फ़ेलिस बिएतो, 1858
यहाँ हमें एक ज़माने में नवाब वाजिद अली शाह द्वारा बनवाए गए रंग बाग (प्लेज़र गार्डन) के खंडहरों में चार आदमी दिखायी दे रहे हैं। 1857 में इसकी रक्षा करने वाले 2000 से ज़्यादा विद्रोही सिपाहियों को कैम्पबेल के नेतृत्व में ब्रिटिश सैनिकों ने मार डाला था। अहाते में पड़े नरकंकाल विद्रोह की निरर्थकता की एक ठंडी चेतावनी देते हैं।

बड़े ज़मींदारों को आश्वासन दिया कि उन्हें उनकी जागीरें लौंटा दी जाएँगीं। विद्रोह का रास्ता अपनाने वाले ज़मींदारों को ज़मीन से बेदख़ल कर दिया गया और जो वफ़ादार थे उन्हें ईनाम दिए गए। बहुत सारे ज़मींदार या तो अंग्रेज़ों से लड़ते-लड़ते मारे गए या भागकर नेपाल चले गए जहाँ उन्होंने बीमारी व भूख से दम तोड़ दिया।

5. विद्रोह की छवियाँ

हम इस विद्रोह, विद्रोहियों की गतिविधियों और उन पर किए गए दमन के तरीकों के बारे में किस तरह जान सकते हैं?

जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं, विद्रोहियों की सोच के बारे में हमारे पास बहुत कम दस्तावेज़ मौजूद हैं। हमारे पास विद्रोहियों की कुछ घोषणाएँ, अधिसूचनाएँ तथा नेताओं के पत्र हैं। लेकिन अब तक ज़्यादातर इतिहासकार अंग्रेज़ों द्वारा लिखे गए दस्तावेज़ों की रोशनी में ही विद्रोहियों की कार्रवाइयों पर चर्चा करते आ रहे हैं।

यह तो है ही कि इस बारे में सरकारी ब्योरों की कमी नहीं है : औपनिवेशिक प्रशासक और फ़ौजी अपनी चिट्ठियों, डायरियों, आत्मकथाओं और सरकारी इतिहासों में अपने-अपने ब्योरे दर्ज कर गए हैं। असंख्य मेमों और नोट्स, परिस्थितियों के आकलन एवं विभिन्न रिपोर्टों के ज़रिए भी हम सरकारी सोच और अंग्रेज़ों के बदलते रवैये को समझ सकते हैं। आज इनमें से बहुत सारे दस्तावेज़ों को सैनिक विद्रोह रिकॉर्ड्स पर केंद्रित खंडों में संकलित किया जा चुका है। ये दस्तावेज़ हमें अफ़सरों के भीतर मौजूद भय और बैचेनी तथा विद्रोहियों के बारे में उनकी सोच का पता देते हैं। ब्रिटिश अख़बारों और पत्रिकाओं में इस विद्रोह की जो कहानियाँ छपीं उनमें सैनिक विद्रोहियों द्वारा की गई हिंसा को बड़े लोमहर्षक शब्दों में छापा जाता था। ये कहानियाँ जनता की भावनाओं को भड़काती थीं तथा प्रतिशोध और सबक सिखाने की माँगों को हवा देती थीं।

अंग्रेज़ों और भारतीयों द्वारा तैयार की गई तसवीरें सैनिक विद्रोह का एक महत्त्वपूर्ण रिकॉर्ड रही हैं। इस विद्रोह के बारे में कई चित्र, पेंसिल से बने रेखांकन, उत्कीर्ण चित्र, पोस्टर, कार्टून, और बाज़ार-प्रिंट उपलब्ध हैं। आइए, उनमें से कुछ को देखें और जाने कि वे हमें क्या बताते हैं।

5.1 रक्षकों का अभिनंदन

अंग्रेज़ों द्वारा बनाई तसवीरों को देखने पर तरह-तरह की भावनाएँ और प्रतिक्रियाएँ पैदा होती हैं। उनमें से कुछ में अंग्रेज़ों को बचाने और विद्रोहियों को कुचलने वाले अंग्रेज़ नायकों का गुणगान किया गया है। 1859 में टॉमस जोन्स बार्कर द्वारा बनाया गया चित्र 'रिलीफ़ ऑफ़ लखनऊ' (लखनऊ की राहत) इसी श्रेणी का एक उदाहरण है। जब

चित्र 11.10
"द रिलीफ़ ऑफ़ लखनऊ" चित्रकार टॉमस जोन्स बार्कर, 1859

विद्रोही टुकड़ियों ने लखनऊ पर घेरा डाल दिया तो लखनऊ के कमिश्नर हेनरी लॉरेंस ने ईसाइयों को इकट्ठा किया और बेहद सुरक्षित रेज़ीडेंसी में पनाह ले ली। बाद में लॉरेंस तो मारा गया किंतु कर्नल इंगलिस के नेतृत्व में रेज़ीडेंसी सुरक्षित रहा। 25 सितंबर को जेम्स ऑट्रम और हेनरी हेवलॉक वहाँ पहुँचे, उन्होंने विद्रोहियों को तितर-बितर कर दिया और ब्रिटिश टुकड़ियों को नयी मजबूती दी। 20 दिन बाद भारत में ब्रिटिश टुकड़ियों का नया कमांडर कॉलिन कैम्पबेल भारी तादाद में सेना लेकर वहाँ पहुँचा और उसने ब्रिटिश रक्षकसेना को घेरे से छुड़ाया। अंग्रेज़ों के बयानों में लखनऊ की घेरेबंदी उत्तरजीविता, बहादुराना प्रतिरोध और ब्रिटिश सत्ता की निर्विवाद विजय की कहानी बन गई।

बार्कर की पेंटिंग कैम्पबेल के आगमन के क्षण का जश्न मनाती है। कैन्वस के मध्य में कैम्पबेल, ऑट्रम और हेवलॉक, इन तीन ब्रिटिश नायकों की छवियाँ हैं। उनके इर्द-गिर्द खड़े लोगों के हाथों को देखने पर दर्शक की निगाह चित्र के मध्य भाग की तरफ़ चली जाती है। ये नायक एक ऐसे स्थान पर खड़े हैं जहाँ काफ़ी उजाला है, जिनके अगले हिस्से में परछाईं है और पिछली तरफ़ टूटा-फूटा रेज़ीडेंसी दिखाई देता है। चित्र के अगले भाग में पड़े शव और घायल इस घेरेबंदी के दौरान हुई मारकाट की गवाही देते हैं जबकि मध्य भाग में घोड़ों की विजयी तसवीरें इस तथ्य पर ज़ोर देती हैं कि अब ब्रिटिश सत्ता और नियंत्रण बहाल हो चुका है। इस तरह के चित्रों से अंग्रेज़ जनता में अपनी सरकार के प्रति

भरोसा पैदा होता था। इन चित्रों से उन्हें यह लगता था कि संकट की घड़ी जा चुकी है और विद्रोह ख़त्म हो चुका है : अंग्रेज़ जीत चुके हैं।

5.2 अंग्रेज़ औरतें तथा ब्रिटेन की प्रतिष्ठा

अख़बारों में छपी ख़बरों का जनता की कल्पना और मनोदशा पर भारी असर होता है। वे घटनाओं के बारे में लोगों की भावनाओं और सोच को तय करती हैं। भारत में औरतों और बच्चों के साथ हुई हिंसा की कहानियों को पढ़कर ब्रिटेन की जनता प्रतिशोध और सबक सिखाने की माँग करने लगी। अंग्रेज़ अपनी सरकार से मासूम औरतों की इज़्ज़त बचाने और निस्सहाय बच्चों को सुरक्षा प्रदान करने की माँग करने लगे। कलाकारों ने सदमे और पीड़ा की अपनी चित्रात्मक अभिव्यक्तियों के ज़रिये इन भावनाओं को आकार प्रदान किया।

जोज़ेफ़ नोएल पेटन ने सैनिक विद्रोह के दो साल बाद "इन मेमोरियम" ('स्मृति में', चित्र 11.11) बनाई। इस चित्र में अंग्रेज़ औरतें और बच्चे एक घेरे में एक-दूसरे से लिपटे दिखाई देते हैं। वे लाचार और मासूम दिख रहे हैं, मानो एक भयानक घड़ी की आंशका में हैं।

चित्र 11.11
"इन मेमोरियम", चित्रकार जोज़ेफ़ नोएल पेटन, 1859

चित्र 11.12
कानपुर में सिपाहियों से अपनी रक्षा करती मिस व्हीलर।

वे अपनी बेइज़्ज़ती, हिंसा और मृत्यु का इंतज़ार कर रहे हैं। "इन मेमोरियम" में भीषण हिंसा नहीं दिखती : उसकी तरफ़ सिर्फ़ एक इशारा है। यह दर्शक की कल्पना को झिंझोड़ती है और उसमें ग़ुस्से और बेचेनी का भाव पैदा करती है। इसमें विद्रोहियों को हिंसक और बर्बर बताया गया है हलांकि वे चित्र में अदृश्य हैं। पृष्ठभूमि में आप ब्रिटिश टुकड़ियों को रक्षक के तौर पर आगे बढ़ते देख सकते हैं।

कुछ अन्य रेखाचित्रों व पेंटिंग्स में हमें औरतें अलग तेवर में दिखाई देती हैं। इनमें वे विद्रोहियों के हमले से अपना बचाव करती हुई नज़र आती हैं। उन्हें वीरता की मूर्ति के रूप में दर्शाया गया है। चित्र 11.12 में मिस व्हीलर मध्य में दृढ़तापूर्वक खड़ी है। वह अकेले ही विद्रोहियों को मौत की नींद सुलाते हुए अपनी इज़्ज़त की रक्षा करती है। तमाम ब्रिटिश चित्रों की तरह यहाँ भी विद्रोहियों को दानवों के रूप में दर्शाया गया है। यहाँ चार कद्दावर आदमी हाथों में तलवारें और बंदूक लिये एक अकेली औरत के ऊपर हमला कर रहे हैं। यहाँ इज़्ज़त और ज़िंदगी की रक्षा के लिए औरत के संघर्ष की आड़ में दरअसल एक गहरे धार्मिक विचार को प्रस्तुत किया गया है – यह ईसाइयत की रक्षा का संघर्ष है। चित्र में धरती पर पड़ी किताब बाइबल है।

चित्र 11.13
जस्टिस (न्याय), पन्च, *12 सितंबर 1857*
चित्र के नीचे पट्टी पर लिखा है–"कानपुर में हुए भीषण जनसंहार के समाचार ने समूचे इंग्लैंड में प्रतिशोध की गहरी चाह और भयानक अपमान का भाव पैदा कर दिया है।"

5.3 प्रतिशोध और सबक़

जैसे-जैसे ब्रिटेन में ग़ुस्से और सकते का माहौल बनता गया, बदले की माँग बुलंद होती गई। विद्रोह के बारे में प्रकाशित चित्रों एवं ख़बरों ने ऐसा माहौल रच दिया जिसमें हिंसक दमन और प्रतिशोध को लाज़िमी और वाजिब माना जाने लगा। माहौल ऐसा था मानो न्याय के मूल्यों की रक्षा के लिए ब्रिटिश प्रतिष्ठा और सत्ता को दी जा रही चुनौती को निर्ममता से कुचलना ज़रूरी था। विद्रोह से आतंकित अंग्रेज़ों को लगता था कि उन्हें अपनी अपराजयता का प्रदर्शन करना ही चाहिए। ऐसी ही एक तसवीर (चित्र 11.13) में हमें न्याय की एक रूपकात्मक स्त्री छवि दिखाई देती

चित्र 11.14
चित्र के नीचे पट्टी पर लिखा है– "बंगाल टाइगर से ब्रिटिश शेर का प्रतिशोध", पन्च, *1857*

➲ तसवीर से क्या सोच निकलती है? शेर और चीते की तसवीरों के माध्यम से क्या कहने का प्रयास किया गया है? औरत और बच्चे की तसवीर क्या दर्शाती है?

है जिसके एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में ढाल है। उसकी मुद्रा आक्रामक है : उसके चेहरे पर भयानक गुस्सा और बदला लेने की तड़प दिखाई देती है। वह सिपाहियों को अपने पैरों तले कुचल रही है जबकि भारतीय औरतों और बच्चों की भीड़ भय से काँप रही है।

इनके अलावा भी ब्रिटिश प्रेस में असंख्य दूसरी तसवीरें और कार्टून थे जो निर्मम दमन और हिंसक प्रतिशोध की ज़रूरत पर ज़ोर दे रहे थे।

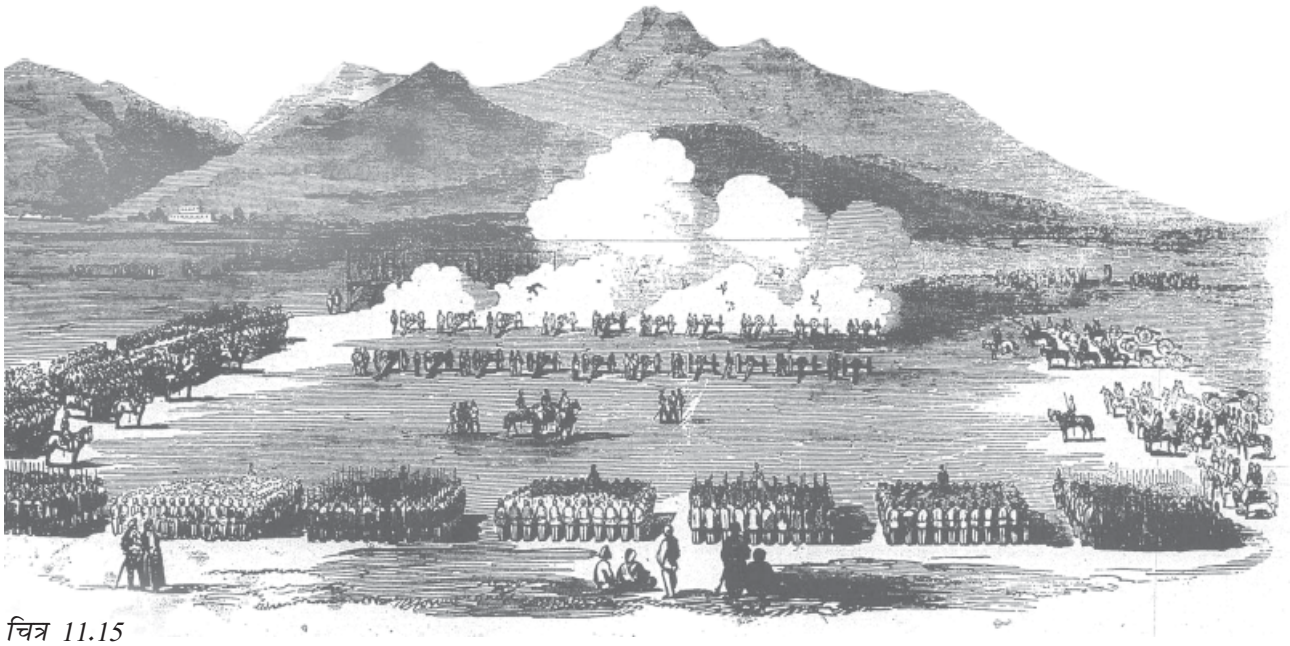

चित्र 11.15
एग्ज़ीक्यूशन ऑफ़ म्यूटिनियर्स ऐट पेशावर : ब्लोइंग फ्रॉम द गन्स (पेशावर में विद्रोहियों को मृत्युदंड : तोप से उड़ाते हुए), इलस्ट्रेटेड लंदन न्यूज़, *3 अक्टूबर 1857*

यहाँ मृत्युदंड का दृश्य एक नाटक के रंगमंच जैसा दिखाई देता है – निर्मम सत्ता का नाट्य मंचन। पूरे दृश्य पर वर्दियों में सजे घुड़सवार सैनिक और सिपाही हावी दिखाई देते हैं। उन्हें अपने साथी सिपाहियों की मृत्यु का दृश्य देखना है और विद्रोह के भयानक परिणामों को महसूस करना है।

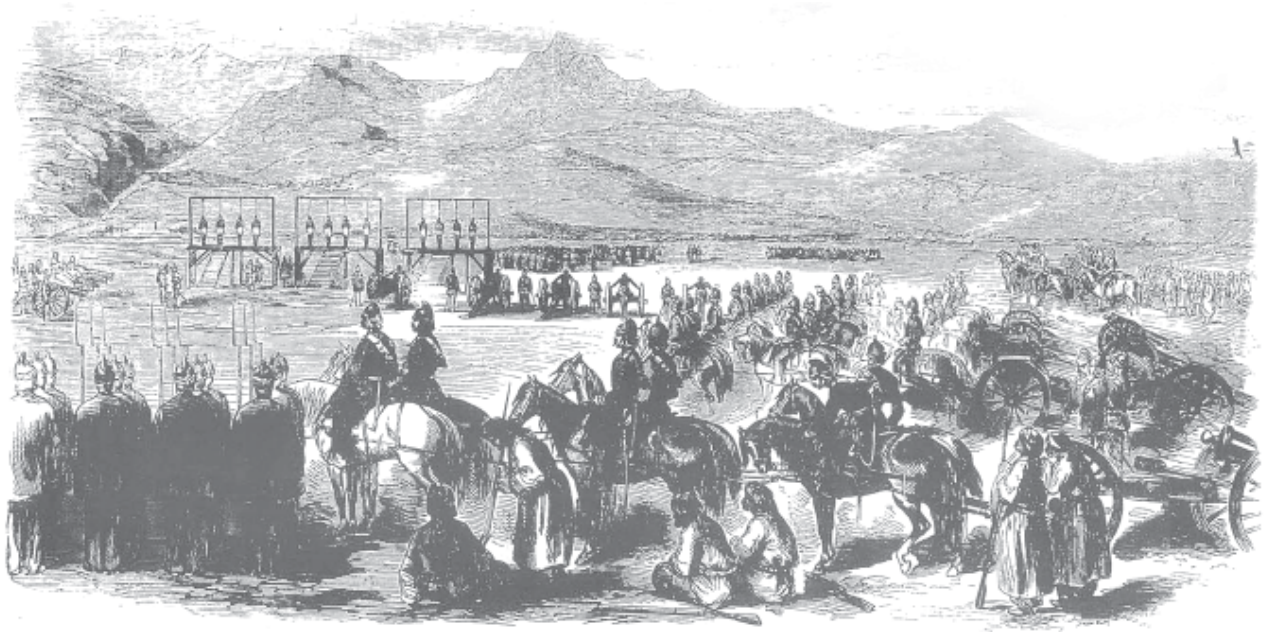

चित्र 11.16
एग्ज़ीक्यूशन ऑफ़ म्यूटिनियर्स ऐट पेशावर (पेशावर में विद्रोहियों को मृत्युदंड), इलस्ट्रेटेड लंदन न्यूज़, *3 अक्टूबर 1857.*
मृत्युदंड के इस दृश्य में 12 विद्रोही एक क़तार में लटके हुए हैं और चारों तरफ़ तोपें तैनात हैं। यह सामान्य दंड का दृश्य नहीं है, यह दहशत का प्रदर्शन है। लोगों को ये अहसास कराने की कोशिश की जा रही है कि सज़ा किसी बंद जगह पर नहीं बल्कि लोगों के बीच भी दी जा सकती है। उसे खुले में नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करना ज़रूरी था।

5.4 दहशत का प्रदर्शन

प्रतिशोध और सबक़ सिखाने की चाह इस बात में भी प्रतिबिम्बित होती है कि विद्रोहियों को कितने निर्मम ढंग से मौत के घाट उतारा गया। उन्हें तोपों के मुहाने पर बाँधकर उड़ा दिया गया या फ़ाँसी पर लटका दिया। इन सज़ाओं की तसवीरें आम पत्र-पत्रिकाओं के ज़रिये दूर-दूर तक पहुँच रही थीं।

5.5 दया के लिए कोई जगह नहीं

जब प्रतिशोध के लिए ही शोर मच रहा हो, ऐसे समय पर नर्म सुझाव मज़ाक का पात्र बन कर ही रह जाते हैं। जब गवर्नर-जनरल कैनिंग ने ऐलान किया कि नर्मी और दया भाव से सिपाहियों की वफ़ादारी हासिल करने में मदद मिलेगी तो ब्रिटिश प्रेस में उसका मज़ाक उड़ाया गया।

हास्यपरक व्यंग्य की ब्रिटिश पत्रिका *पन्च* के पन्नों में प्रकाशित एक कार्टून में कैनिंग को एक भव्य नेक बुजुर्ग के रूप में दर्शाया गया। उसका

चित्र 11.17
"द क्लिमेंसी ऑफ़ केनिंग" (केनिंग का दयाभाव), पन्च, *24 अक्टूबर 1857*
नीचे की पट्टी : गवर्नर जनरल : "बिलकुल सही, फिर वे उसे घिनौनी बंदूकों से नहीं उड़ाएँगे बशर्ते वो एक अच्छा सिपाही बनने का वादा करे।"

हाथ एक सिपाही के सिर पर है जो अभी भी नंगी तलवार और कटार लिए हुए है और दोनों से ख़ून टपक रहा है (चित्र 11.17)। यह एक ऐसी छवि थी जो उस समय की बहुत सारी ब्रिटिश तसवीरों में बार-बार सामने आती थी।

5.6 राष्ट्रवादी दृश्य कल्पना

बीसवीं सदी में राष्ट्रवादी आंदोलन को 1857 के घटनाक्रम से प्रेरणा मिल रही थी। इस विद्रोह के इर्द-गिर्द राष्ट्रवादी कल्पना का एक विस्तृत दृश्य जगत बुन दिया गया था। इसको प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में याद किया जाता था जिसमें देश के हर तबके के लोगों ने साम्राज्यवादी शासन के ख़िलाफ़ मिलकर लड़ाई लड़ी थी।

इतिहास लेखन की तरह कला और साहित्य ने भी 1857 की स्मृति को जीवित रखने में योगदान दिया। विद्रोह के नेताओं को ऐसे नायकों के रूप में पेश किया जाता था जो देश को रणस्थल की तरफ़ ले जा रहे हैं। उन्हें लोगों को दमनकारी साम्राज्यवादी शासन के ख़िलाफ़ उत्तेजित करते चित्रित किया जाता था। एक हाथ में घोड़े की रास और दूसरे हाथ में तलवार थामे अपनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए लड़ाई लड़ने वाली रानी के शौर्य का गौरवगान करते हुए कविताएँ लिखी गईं। रानी झाँसी को एक ऐसी मर्दाना शख़्सियत के रूप में चित्रित किया जाता था जो दुश्मनों का पीछा करते हुए और ब्रिटिश सिपाहियों को मौत की नींद सुलाते हुए आगे बढ़ रही है। देश के विभिन्न भागों में बच्चे सुभद्रा कुमारी चौहान की इन पंक्तियों को पढ़ते हुए बड़े हो रहे थे : *"खूब लड़ी मर्दानी वो तो झाँसी वाली रानी थी।"* लोक छवियों में रानी लक्ष्मीबाई को प्रायः फ़ौजी पोशाक में घोड़े पर सवार और एक हाथ में तलवार लिए दिखाया जाता है - अन्याय और विदेशी शासन के दृढ़ प्रतिरोध का प्रतीक।

इन तसवीरों से पता चलता है कि उन्हें बनाने वाले चित्रकार इन घटनाओं को कैसे देखते थे, उनके अहसास क्या थे और वे क्या कहना चाहते थे। इन चित्रों और कार्टूनों के माध्यम से हम उस जनता के बारे में जान सकते हैं जो उन चित्रों की तारीफ़ या आलोचना करती थी, उनकी नक़लों को ख़रीद कर घरों में सजाती थी।

ये तस्वीरें केवल अपने समय की भावनाओं और अहसासों को ही प्रतिबिंबित नहीं कर रही थीं। उन्होंने संवेदनाओं को भी शक्ल दी। ब्रिटेन में छप रहे चित्रों से उत्तेजित वहाँ की जनता विद्रोहियों को भयानक बर्बरता के साथ कुचल डालने के लिए आवाज़ उठा रही थी। दूसरी तरफ़ भारतीय राष्ट्रवादी चित्र हमारी राष्ट्रवादी कल्पना को निर्धारित करने में मदद कर रहे थे।

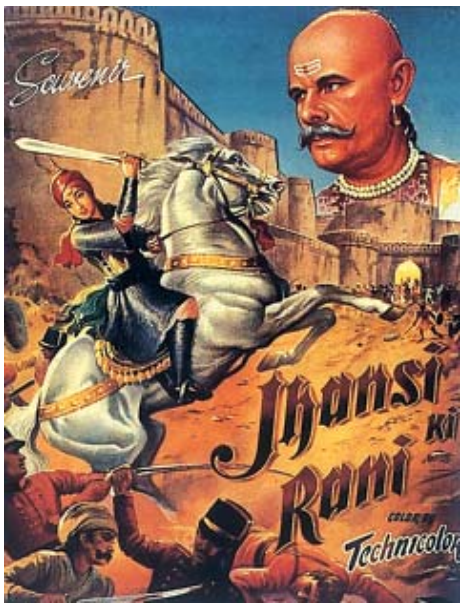

चित्र 11.18
फ़िल्मों और पोस्टरों ने रानी लक्ष्मीबाई की छवि को एक मर्दाना योद्धा के रूप में स्थापित करने में मदद की।

➲ चर्चा कीजिए...

इस भाग में दिए गए प्रत्येक चित्र के विभिन्न तत्वों की जाँच कीजिए और चर्चा कीजिए कि उनके ज़रिए आपको कलाकार की सोच को पहचानने में कैसे मदद मिलती है।

काल-रेखा

1801	अवध में वेलेज़ली द्वारा सहायक संधि लागू की गई
1856	नवाब वाजिद अली शाह को गद्दी से हटाया गया, अवध का अधिग्रहण
1856–57	अंग्रेज़ों द्वारा अवध में एकमुश्त लगान बंदोबस्त लागू
1857	
10 मई	मेरठ में "सैनिक विद्रोह"
11–12 मई	दिल्ली रक्षकसेना में विद्रोह : बहादुर शाह सांकेतिक नेतृत्व स्वीकार करते हैं
20–27 मई	अलीगढ़, इटावा, मैनपुरी, एटा में सिपाही विद्रोह
30 मई	लखनऊ में विद्रोह
मई–जून	सैनिक विद्रोह एक व्यापक जन विद्रोह में बदल जाता है
30 जून	चिनहाट के युद्ध में अंग्रेज़ों की हार होती है
25 सितंबर	हेवलॉक और ऑट्रम के नेतृत्व में अंग्रेज़ों की टुकड़ियाँ लखनऊ रेज़ीडेंसी में दाख़िल होती हैं
1858	
जून	युद्ध में रानी झाँसी की मृत्यु
जुलाई	युद्ध में शाह मल की मृत्यु

चित्र 11.19
विद्रोहियों के चेहरे

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. बहुत सारे स्थानों पर विद्रोही सिपाहियों ने नेतृत्व सँभालने के लिए पुराने शासकों से क्या आग्रह किया?
2. उन साक्ष्यों के बारे में चर्चा कीजिए जिनसे पता चलता है कि विद्रोही योजनाबद्ध और समन्वित ढंग से काम कर रहे थे?
3. 1857 के घटनाक्रम को निर्धारित करने में धार्मिक विश्वासों की किस हद तक भूमिका थी?
4. विद्रोहियों के बीच एकता स्थापित करने के लिए क्या तरीके अपनाए गए?
5. अंग्रेज़ों ने विद्रोह को कुचलने के लिए क्या कदम उठाए?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250 से 300 शब्दों में)

6. अवध में विद्रोह इतना व्यापक क्यों था? किसान, ताल्लुक़दार और ज़मींदार उसमें क्यों शामिल हुए?
7. विद्रोही क्या चाहते थे? विभिन्न सामाजिक समूहों की दृष्टि में कितना फ़र्क़ था?
8. 1857 के विद्रोह के बारे में चित्रों से क्या पता चलता है? इतिहासकार इन चित्रों का किस तरह विश्लेषण करते हैं?
9. एक चित्र और एक लिखित पाठ को चुनकर किन्हीं दो स्रोतों की पड़ताल कीजिए और इस बारे में चर्चा कीजिए कि उनसे विजेताओं और पराजितों के दृष्टिकोण के बारे में क्या पता चलता है?

मानचित्र कार्य

10. भारत के मानचित्र पर कलकत्ता (कोलकाता), बम्बई (मुंबई), मद्रास (चेन्नई) को चिह्नित कीजिए जो 1857 में ब्रिटिश सत्ता के तीन मुख्य केंद्र थे। मानचित्र 1 और 2 को देखिए तथा उन इलाकों को चिह्नित कीजिए जहाँ विद्रोह सबसे व्यापक रहा। औपनिवेशिक शहरों से ये इलाक़े कितनी दूर या कितनी पास थे?

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. 1857 के विद्रोही नेताओं में से किसी एक की जीवनी पढ़ें। देखिए कि उसे लिखने के लिए जीवनीकार ने किन स्रोतों का उपयोग किया है? क्या उनमें सरकारी रिपोर्टों, अख़बारी ख़बरों, क्षेत्रीय भाषाओं की कहानियों, चित्रों और किसी अन्य चीज़ का इस्तेमाल किया गया है? क्या सभी स्रोत एक ही बात कहते हैं या उनके बीच फ़र्क़ दिखाई देते हैं? अपने निष्कर्षों पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।
12. 1857 पर बनी कोई फ़िल्म देखिए और लिखिए कि उसमें विद्रोह को किस तरह दर्शाया गया है। उसमें अंग्रेज़ों, विद्रोहियों और अंग्रेज़ों के भारतीय वफ़ादारों को किस तरह दिखाया गया है? फ़िल्म किसानों, नगरवासियों, आदिवासियों, ज़मींदारों और ताल्लुक़दारों के बारे में क्या कहती है? फ़िल्म किस तरह की प्रतिक्रिया को जन्म देना चाहती है?

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

गौतम भद्रा, 1987
फ़ोर रेबल्स ऑफ़ एटीन फ़िफ़्टी सेवन, सबॉल्टर्न स्टडीज़, खंड 4, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

विलियन डेलरिम्पल, 2006
दि लास्ट मुग़ल : दि फ़ॉल ऑफ़ ए डायनेस्टी, दिल्ली 1857, पेंग्विन, वाइकिंग, नयी दिल्ली

रूद्रांशू मुखर्जी, 1984
अवध इन रिवोल्ट 1857-58, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

तापती रॉय, 2006
राज ऑफ़ दि रानी, पेंग्विन, नयी दिल्ली

ऐरिक स्टॉक्स, 1980
पैज़ेन्ट्स एंड दि राज, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस, दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं

http://books.google.com
(1857 पर अंग्रेज़ अधिकारियों के विवरणों के लिए)

www.copsey-family.org/allenc/lakshmibai/links.html
(रानी लक्ष्मीबाई के पत्रों के लिए)

अध्याय बारह

औपनिवेशिक शहर
नगरीकरण, नगर-योजना, स्थापत्य

इस अध्याय में हम औपनिवेशिक भारत में शहरीकरण की प्रक्रिया पर चर्चा करेंगे, औपनिवेशिक शहरों की चारित्रिक विशिष्टताओं का अन्वेषण करेंगे और उनमें होने वाले सामाजिक परिवर्तनों को देखेंगे। हम तीन बड़े शहरों – मद्रास, कलकत्ता तथा बम्बई के विकासक्रम को गहनता से देखेंगे।

तीनों शहर मूलत: मत्स्य ग्रहण तथा बुनाई के गाँव थे। वे इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की व्यापारिक गतिविधियों के कारण व्यापार के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गए। कम्पनी के एजेंट 1639 में मद्रास तथा 1690 में कलकत्ता में बस गए। 1661 में बम्बई को ब्रिटेन के राजा ने कम्पनी को दे दिया गया था, जिसे उसने पुर्तगाल के शासक से अपनी पत्नी के दहेज के रूप में प्राप्त किया था। कम्पनी ने इन तीन बस्तियों में व्यापरिक तथा प्रशासनिक कार्यालय स्थापित किए।

चित्र 12.1
ओरिएंटल सीनरी, 1798 में प्रकाशित डेनियल के एक चित्र पर आधारित टॉमस तथा विलिमय डेनियल द्वारा फोर्ट सेंट जॉर्ज, मद्रास का दक्षिण-पश्चिमी अवलोकन।
माल से लदे यूरोपीय जहाज दूर क्षितिज पर अंकित हैं। अग्रभाग में मछुआरों की देसी नाव देखी जा सकती हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक ये कस्बे बड़े शहर बन गए थे जहाँ से नए शासक पूरे देश पर नियंत्रण करते थे। आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रित करने तथा नए शासकों के प्रभुत्व को दर्शाने के लिए संस्थानों की स्थापना की गई। भारतीयों ने इन शहरों में राजनीतिक प्रभुत्व का नए तरीकों से अनुभव किया। मद्रास, बम्बई और कलकत्ता के नक़्शे अन्य पुराने भारतीय क़स्बों से काफी हद तक अलग थे, और इन शहरों में बनाए गए भवनों पर अपने औपनिवेशिक उद्भव की स्पष्ट छाप थी। इमारतें क्या अभिव्यक्त करती हैं और स्थापत्य क्या ज़ाहिर कर सकता है? इतिहास के छात्र-छात्राओं को इस सवाल पर ज़रूर सोचना चाहिए।

याद रखिए कि स्थापत्य हमारे विचारों को पत्थर, ईंट, लकड़ी या प्लास्टर के माध्यम से आकार देने में सहायक होता है। सरकारी अधिकारी के बंगले और अमीर व्यापारी के महलनुमा आवास से लेकर श्रमिक की साधारण झोपड़ी तक, भवन सामाजिक संबंधों और पहचानों को कई प्रकार से परिलक्षित करते हैं।

1. पूर्व-औपनिवेशिक काल में क़स्बे और शहर

इससे पहले कि हम औपनिवेशिक काल में शहरों के विकास का अन्वेषण करें, हमें ब्रिटिश शासन के पहले की शताब्दियों के शहरों पर नज़र डालनी चाहिए।

1.1 क़स्बों को उनका चरित्र कैसे मिला?

क़स्बों को सामान्यत: ग्रामीण इलाक़ों के विपरीत परिभाषित किया जाता था। वे विशिष्ट प्रकार की आर्थिक गतिविधियों और संस्कृतियों के प्रतिनिधि बन कर उभरे। लोग ग्रामीण अंचलों में खेती, जंगलों में संग्रहण या पशुपालन के द्वारा जीवन निर्वाह करते थे। इसके विपरीत क़स्बों में शिल्पकार, व्यापारी, प्रशासक तथा शासक रहते थे। क़स्बों का ग्रामीण जनता पर प्रभुत्व होता था और वे खेती से प्राप्त करों और अधिशेष के आधार पर फलते-फूलते थे। अकसर क़स्बों और शहरों की क़िलेबन्दी की जाती थी जो ग्रामीण क्षेत्रों से इनकी पृथकता को चिह्नित करती थी।

फिर भी क़स्बों और गाँवों के बीच की पृथकता अनिश्चित होती थी। किसान तीर्थ करने के लिए लम्बी दूरियाँ तय करते थे और क़स्बों से होकर गुज़रते थे; वे अकाल के समय क़स्बों में जमा भी हो जाते थे। इसके अतिरिक्त लोगों और माल का क़स्बों से गाँवों की ओर विपरीत गमन भी था। जब क़स्बों पर आक्रमण होते थे तो लोग अकसर ग्रामीण क्षेत्रों में शरण लेते थे। व्यापारी और फेरीवाले क़स्बों से माल गाँव ले जाकर बेचते थे, जिसके द्वारा बाज़ारों का फैलाव और उपभोग की नयी शैलियों का सृजन होता था।

स्रोत 1

ग्रामीण क्षेत्रों की ओर पलायन

1857 में ब्रिटिश सेना द्वारा शहर पर अधिकार करने के बाद दिल्ली के लोगों ने क्या किया, इसका वर्णन प्रसिद्ध शायर मिर्ज़ा ग़ालिब इस प्रकार करते हैं:

> दुश्मन को पराजित करने और भगा देने के बाद, विजेताओं (ब्रिटिश) ने सभी दिशाओं से शहर को उजाड़ दिया। जो सड़क पर मिले उन्हें काट दिया गया...। दो से तीन दिनों तक कश्मीरी गेट से चाँदनी चौक तक शहर की हर सड़क युद्धभूमि बनी रही। तीन द्वार – अजमेरी, तुर्कमान तथा दिल्ली – अभी भी विद्रोहियों के क़ब्जे में थे...। इस प्रतिशोधी आक्रोश तथा घृणा के नंगे नाच से लोगों के चेहरों का रंग उड़ गया, और बड़ी संख्या में पुरुष और महिलाएँ... इन तीनों द्वारों से हड़बड़ा कर पलायन करने लगे। शहर के बाहर छोटे गाँवों और देवस्थलों में शरण ले अपनी वापसी के अनुकूल समय का इंतज़ार करते रहे।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में मुग़लों द्वारा बनाए गए शहर जनसंख्या के केन्द्रीकरण, अपने विशाल भवनों तथा अपनी शाही शोभा व समृद्धि के लिए प्रसिद्ध थे। आगरा, दिल्ली और लाहौर शाही प्रशासन और सत्ता के महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। मनसबदार और जागीरदार जिन्हें साम्राज्य के अलग-अलग भागों में क्षेत्र दिये गए थे, सामान्यत: इन शहरों में अपने आवास रखते थे : इन सत्ता केन्द्रों में आवास एक अमीर की स्थिति और प्रतिष्ठा का संकेतक था।

इन केंद्रों में सम्राट और कुलीन वर्ग की उपस्थिति के कारण वहाँ कई प्रकार की सेवाएँ प्रदान करना आवश्यक था। शिल्पकार कुलीन वर्ग के परिवारों के लिए विशिष्ट हस्तशिल्प का उत्पादन करते थे। ग्रामीण अंचलों से शहर के बाज़ारों में निवासियों और सेना के लिए अनाज लाया जाता था। राजकोष भी शाही राजधानी में ही स्थित था। इसलिए राज्य का राजस्व भी नियमित रूप से राजधानी में आता रहता था। सम्राट एक क़िलेबन्द महल में रहता था और नगर एक दीवार से घिरा होता था जिसमें अलग-अलग द्वारों से आने-जाने पर नियंत्रण रखा जाता था। नगरों के भीतर उद्यान, मस्जिदें, मन्दिर, मक़बरे, महाविद्यालय, बाज़ार तथा कारवाँ सराय स्थिति होती थीं। नगर का ध्यान महल और मुख्य मस्जिद की ओर होता था।

दक्षिण भारत के नगरों जैसे मदुरई और काँचीपुरम् में मुख्य केन्द्र मन्दिर होता था। ये नगर महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र भी थे। धार्मिक त्योहार अकसर मेलों के साथ होते थे जिससे तीर्थ और व्यापार जुड़ जाते थे। सामान्यत: शासक धार्मिक संस्थानों का सबसे ऊँचा प्राधिकारी और मुख्य संरक्षक होता था। समाज और शहर में अन्य समूहों और वर्गों का स्थान शासक के साथ उनके संबंधों से तय होता था।

मध्यकालीन शहरों में शासक वर्ग के वर्चस्व वाली सामाजिक व्यवस्था में हरेक से अपेक्षा की जाती थी कि उसे समाज में अपना स्थान पता हो। उत्तर भारत

चित्र 12.2
शाहजहाँनाबाद, 1857
शहर के चारों और बनाई गई दिवारों को 1857 के बाद ढहा दिया गया था। लाल किला नदी के किनारे पर दिखाई दे रहा है। दायीं तरफ फासले पर रिज में आप ब्रिटिश बसावट और छावनी देख सकते हैं।

में इस व्यवस्था को बनाए रखने का कार्य कोतवाल नामक राजकीय अधिकारी का होता था जो नगर में आंतरिक मामलों पर नज़र रखता था और कानून-व्यवस्था बनाए रखता था।

1.2 अठारहवीं शताब्दी में परिवर्तन

यह सब अठारहवीं शताब्दी में बदलने लगा। राजनीतिक तथा व्यापारिक पुनर्गठन के साथ पुराने नगर पतनोन्मुख हुए और नए नगरों का विकास होने लगा। मुग़ल सत्ता के क्रमिक शरण के कारण ही उसके शासन से सम्बद्ध नगरों का अवसान हो गया। मुग़ल राजधानियों, दिल्ली और आगरा ने अपना राजनीतिक प्रभुत्व खो दिया। नयी क्षेत्रीय ताकतों का विकास क्षेत्रीय राजधानियों – लखनऊ, हैदराबाद, सेरिंगपट्म, पूना (आज का पुणे), नागपुर, बड़ौदा तथा तंजौर (आज का तंजावुर) – के बढ़ते महत्त्व में परिलक्षित हुआ। व्यापारी, प्रशासक, शिल्पकार तथा अन्य लोग पुराने मुग़ल केन्द्रों से इन नयी राजधानियों की ओर काम तथा संरक्षण की तलाश में आने लगे। नए राज्यों के बीच निरंतर लड़ाइयों का परिणाम यह था कि भाड़े के सैनिकों को भी यहाँ तैयार रोज़गार मिलता था। कुछ स्थानीय विशिष्ट लोगों तथा उत्तर भारत में मुग़ल साम्राज्य से सम्बद्ध अधिकारियों ने भी इस अवसर का उपयोग 'कस्बे' और 'गंज' जैसी नयी शहरी बस्तियों को बसाने में किया। परंतु राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के प्रभाव सब जगह एक जैसे नहीं थे। कई स्थानों पर नए सिरे से आर्थिक गतिविधियाँ बढ़ीं, कुछ अन्य स्थानों पर युद्ध, लूट-पाट तथा राजनीतिक अनिश्चितता आर्थिक पतन में परिणत हुई।

व्यापार तंत्रों में परिवर्तन शहरी केन्द्रों के इतिहास में परिलक्षित हुए। यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों ने पहले, मुग़ल काल में ही विभिन्न स्थानों पर आधार स्थापित कर लिए थे : पुर्तगालियों ने 1510 में पणजी में, डचों ने 1605 में मछलीपट्नम में, अंग्रेज़ों ने मद्रास में 1639 में तथा फ्रांसीसियों ने 1673 में पांडिचेरी (आज का पुदुचेरी) में। व्यापारिक गतिविधियों में विस्तार के साथ ही इन व्यापारिक केंद्रों के आस-पास नगर विकसित होने लगे। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक स्थल-आधारित साम्राज्यों का स्थान शक्तिशाली जल-आधारित यूरोपीय साम्राज्यों ने ले लिया। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, वाणिज्यवाद तथा पूँजीवाद की शक्तियाँ अब समाज के स्वरूप को परिभाषित करने लगी थीं।

मध्य-अठारहवीं शताब्दी से परिवर्तन का एक नया चरण आरंभ हुआ। जब व्यापारिक गतिविधियाँ अन्य स्थानों पर केंद्रित होने लगीं

दिल्ली का कोतवाल

क्या आप जानते हैं कि हमारे पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के दादा गंगाधर नेहरू 1857 के विद्रोह से पहले दिल्ली के कोतवाल हुआ करते थे? इस बारे में और जानकारी के लिए जवाहरलाल नेहरू की *आत्मकथा* पढ़ें।

क़स्बा ग्रामीण अंचल में एक छोटे नगर को कहा जाता है जो सामान्यतया स्थानीय विशिष्ट व्यक्ति का केन्द्र होता है।
गंज एक छोटे स्थायी बाज़ार को कहा जाता है। क़स्बा और गंज दोनों कपड़ा, फल, सब्ज़ी तथा दूध उत्पादों से संबद्ध थे। विशिष्ट परिवारों तथा सेना के लिए सामग्री उपलब्ध कराते थे।

चित्र 12.3
नदी से गोवा शहर का एक दृश्य, जे. ग्रेग द्वारा, 1812

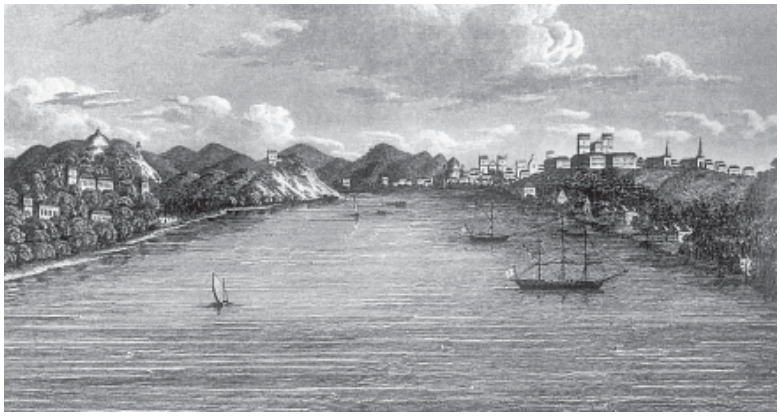

शहरों के नाम

मद्रास, बम्बई और कलकत्ता शब्द उन गाँवों के अंग्रेज़ी प्रभावित नाम हैं जहाँ अंग्रेज़ों ने सबसे पहले अपनी व्यापारिक चौकियाँ बनाई थीं। अब उन्हें चेन्नई, मुम्बई और कोलकाता कहा जाने लगा है।

➲ चर्चा कीजिए...

आप जिस क़स्बे, शहर या गाँव में रहते हैं वहाँ की कौन सी इमारत, संस्थान या स्थान सबसे ज़्यादा फ़ोकस में रहता है। उसके इतिहास की पड़ताल कीजिए, पता लगाइए कि उसका निर्माण कब किया गया, किसने किया, क्यों किया, उस इमारत के क्या उपयोग हैं और क्या उसकी उपयोगिता में कोई बदलाव आया है?

तो सत्रहवीं शताब्दी में विकसित हुए सूरत, मछलीपट्नम तथा ढाका पतनोन्मुख हो गए। 1757 में प्लासी के युद्ध के बाद जैसे-जैसे अंग्रेज़ों ने राजनीतिक नियंत्रण हासिल किया, और इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापार फैला, मद्रास, कलकत्ता तथा बम्बई जैसे औपनिवेशिक बंदरगाह शहर तेज़ी से नयी आर्थिक राजधानियों के रूप में उभरे। ये औपनिवेशिक प्रशासन और सत्ता के केन्द्र भी बन गए। नए भवनों और संस्थानों का विकास हुआ, तथा शहरी स्थानों को नए तरीकों से व्यवस्थित किया गया। नए रोज़गार विकसित हुए और लोग इन औपनिवेशिक शहरों की ओर उमड़ने लगे। लगभग 1800 तक ये जनसंख्या के लिहाज़ से भारत के विशालतम शहर बन गए थे।

2. औपनिवेशिक शहरों की पड़ताल

2.1 औपनिवेशिक रिकॉर्ड्स और शहरी इतिहास

औपनिवेशिक शासन बेहिसाब आंकड़ों और जानकारियों के संग्रह पर आधारित था। अंग्रेज़ों ने अपने व्यावसायिक मामलों को चलाने के लिए व्यापारिक गतिविधियों का विस्तृत ब्यौरा रखा था। बढ़ते शहरों में जीवन की गति और दिशा पर नज़र रखने के लिए वे नियमित रूप से सर्वेक्षण करते थे। सांख्यिकीय आँकड़े इकट्ठा करते थे और विभिन्न प्रकार की सरकारी रिपोर्टें प्रकाशित करते थे।

प्रारंभिक वर्षों से ही औपनिवेशिक सरकार ने मानचित्र तैयार करने पर ख़ास ध्यान दिया। सरकार का मानना था कि किसी जगह की बनावट और भूदृश्य को समझने के लिए नक्शे ज़रूरी होते हैं। इस जानकारी के सहारे वे इलाके पर ज़्यादा बेहतर नियंत्रण कायम कर सकते थे। जब शहर बढ़ने लगे तो न केवल उनके विकास की योजना तैयार करने के लिए बल्कि व्यवसाय को विकसित करने और अपनी सत्ता मज़बूत करने के लिए भी नक्शे बनाये जाने लगे। शहरों के नक्शों से हमें उस स्थान पर पहाड़ियों, नदियों व हरियाली का पता चलता है। ये सारी चीज़ें रक्षा संबंधी उद्देश्यों के लिए योजना तैयार करने में बहुत काम आती हैं। इसके अलावा घाटों की जगह, मकानों की सघनता और गुणवत्ता तथा सड़कों की स्थिति आदि से इलाके की व्यावसायिक संभावनाओं का पता लगाने और कराधान (टैक्स व्यवस्था) की रणनीति बनाने में मदद मिलती है।

उन्नीसवीं सदी के आख़िर से अंग्रेज़ों ने वार्षिक नगर पालिका कर वसूली के ज़रिए शहरों के रखरखाव के वास्ते पैसा इकट्ठा करने की कोशिशें शुरू कर दी थीं। टकरावों से बचने के लिए उन्होंने कुछ ज़िम्मेदारियाँ निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधियों को भी सौंपी हुई थीं। आंशिक लोक-प्रतिनिधित्व से लैस नगर निगम जैसे संस्थानों का उद्देश्य शहरों में जलापूर्ति, निकासी, सड़क निर्माण और स्वास्थ्य व्यवस्था जैसी अत्यावश्यक

सेवाएँ उपलब्ध कराना था। दूसरी तरफ़, नगर निगमों की गतिविधियों से नए तरह के रिकॉर्ड्स पैदा हुए जिन्हें नगर पालिका रिकॉर्ड रूम में सँभाल कर रखा जाने लगा।

शहरों के फैलाव पर नज़र रखने के लिए नियमित रूप से लोगों की गिनती की जाती थी। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक विभिन्न क्षेत्रों में कई जगह स्थानीय स्तर पर जनगणना की जा चुकी थी। अखिल भारतीय जनगणना का पहला प्रयास 1872 में किया गया। इसके बाद, 1881 से दशकीय (हर 10 साल में होने वाली) जनगणना एक नियमित व्यवस्था बन गई। भारत में शहरीकरण का अध्ययन करने के लिए जनगणना से निकले आँकड़े एक बहुमूल्य स्रोत हैं।

जब हम इन रिपोर्टों को देखते हैं तो ऐसा लगता है कि हमारे पास ऐतिहासिक परिवर्तन को मापने के लिए ठोस जानकारी उपलब्ध है। बीमारियों से होने वाली मौतों की सारणियों का अन्तहीन सिलसिला, या उम्र, लिंग, जाति एवं व्यवसाय के अनुसार लोगों को गिनने की व्यवस्था से संख्याओं का एक विशाल भंडार मिलता है जिससे सटीकता का भ्रम पैदा हो जाता है। लेकिन इतिहासकारों ने पाया है कि ये आंकड़े भ्रामक भी हो सकते हैं। इन आंकड़ों का इस्तेमाल करने से पहले हमें इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि आंकड़े किसने इकट्ठा किए हैं, और उन्हें क्यों तथा कैसे इकट्ठा किया गया था। हमें यह भी मालूम होना चाहिए कि किस चीज़ को मापा गया था और किस चीज़ को नहीं मापा गया था।

मिसाल के तौर पर, जनगणना एक ऐसा साधन थी जिसके ज़रिए आबादी के बारे में सामाजिक जानकारियों को सुगम्य आंकडों में तब्दील किया जाता था। लेकिन इस प्रक्रिया में कई भ्रम थे। जनगणना आयुक्तों ने आबादी के विभिन्न तबकों का वर्गीकरण करने के लिए अलग-अलग श्रेणियाँ बना दी थीं। कई बार यह वर्गीकरण निहायत अतार्किक होता था और लोगों की परिवर्तनशील व परस्पर काटती पहचानों को पूरी तरह नहीं पकड़ पाता था। भला ऐसे व्यक्ति को किस श्रेणी में रखा जाएगा जो कारीगर भी था और व्यापारी भी। जो आदमी अपनी ज़मीन पर ख़ुद खेती करता है और उपज को ख़ुद शहर ले जाता है, उसको किस श्रेणी में गिना जाएगा। उसे किसान माना जाएगा या व्यापारी?

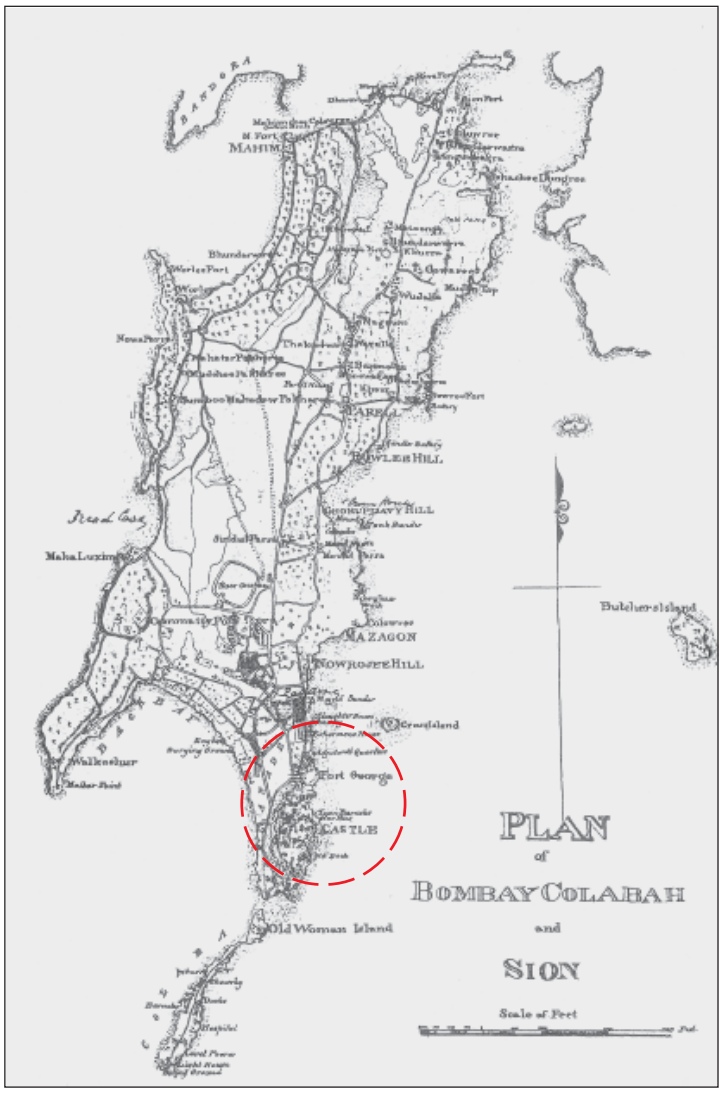

चित्र 12.4
बम्बई का मानचित्र
"कासल" (दुर्ग) नामक गोले में घिरा हिस्सा किलाबंद आबादी का अंग था। बिंदुकित भाग में वे सात द्वीप दर्शाये गये हैं जिन्हें भूमि विकास परियोजनाओं के जरिए एक दूसरे से जोड़ दिया गया था।

नक्शे क्या बताते हैं और क्या छिपाते हैं

सर्वेक्षण पद्धतियों के विकास, सटीक वैज्ञानिक औज़ारों और ब्रिटिश शाही ज़रूरतों की वजह से मानचित्रों को बड़ी सावधानी के साथ तैयार किया जाता था। सर्वे ऑफ़ इंडिया (भारत सर्वेक्षण) का गठन 1878 में किया गया था। उस समय तैयार किए गए नक्शों से हमें काफ़ी सारी जानकारी तो मिलती है, साथ ही अंग्रेज़ शासकों की सोच में निहित भेदभाव भी उजागर हो जाता है। मसलन, शहर में ग़रीबों की बड़ी-बड़ी बस्तियों को नक्शे पर चिह्नित ही नहीं किया गया क्योंकि शासकों के लिए उनका महत्त्व नहीं था। परिणामस्वरूप यह मान लिया गया कि नक्शे पर मौजूद ये रिक्त स्थान अन्य विकास योजनाओं के लिए उपलब्ध हैं। जब इन योजनाओं को शुरू किया गया तो वहाँ से ग़रीबों को हटा दिया गया।

बहुधा लोग खुद भी इस प्रक्रिया में मदद देने से इनकार कर देते थे या जनगणना आयुक्तों को गलत जवाब दे देते थे। काफ़ी अरसे तक वे जनगणना कार्यों को संदेह की दृष्टि से देखते रहे। लोगों को लगता था कि सरकार नए टैक्स लागू करने के लिए जाँच करवा रही है। ऊँची जाति के लोग अपने घर की औरतों के बारे में जानकारी देने से हिचकिचाते थे; महिलाओं से अपेक्षा की जाती थी कि वे घर के भीतरी हिस्से में दुनिया से कट कर रहें, उनके बारे में सार्वजनिक दृष्टि या सार्वजनिक जाँच को सही नहीं माना जाता था।

जनगणना अधिकारियों ने यह भी पाया कि बहुत सारे लोग ऐसी पहचानों का दावा करते थे जो ऊँची हैसियत की मानी जाती थीं। शहरों में ऐसे लोग भी थे जो फेरी लगाते थे या काम न होने पर मज़दूरी करने लगते थे। इस तरह के बहुत सारे लोग जनगणना कर्मचारियों के सामने खुद को अकसर व्यापारी बताते थे क्योंकि उन्हें मज़दूरी के मुकाबले व्यापार ज़्यादा सम्मानित गतिविधि लगती थी।

मृत्यु दर और बीमारियों से संबंधित आंकड़ों को इकट्ठा करना भी लगभग असंभव था। बीमार पड़ने की जानकारी भी लोग प्रायः नहीं देते थे। बहुत बार इलाज भी गैर-लाइसेंसी डॉक्टरों से करा लिया जाता था। ऐसे में बीमारी या मौत की घटनाओं का सटीक हिसाब लगाना कैसे संभव था?

कहने का मतलब यही है कि इतिहासकारों को जनगणना जैसे स्रोतों का भारी अहतियात से इस्तेमाल करना पड़ता है। उन्हें जनगणना के पीछे निहित संभावित पूर्वाग्रहों को ध्यान में रखते हुए इन संख्याओं की सावधानी से पड़ताल करनी चाहिए और यह समझना चाहिए कि ये संख्याएँ क्या नहीं बता रही हैं। मगर जनगणना और नगरपालिका जैसे संस्थानों के सर्वेक्षण मानचित्रों और रिकार्डों के सहारे औपनिवेशिक शहरों का पुराने शहरों के मुकाबले ज़्यादा विस्तार से अध्ययन किया जा सकता है।

2.2 बदलाव के रुझान

जनगणनाओं का सावधानी से अध्ययन करने पर कुछ दिलचस्प रुझान सामने आते हैं। सन् 1800 के बाद हमारे देश में शहरीकरण की रफ़्तार धीमी रही। पूरी उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी के पहले दो दशकों तक देश की कुल आबादी में शहरी आबादी का हिस्सा बहुत मामूली और स्थिर रहा। इसे चित्र 12.5 से समझा जा सकता है। 1900 से 1940 के बीच 40 सालों के दरमियान शहरी आबादी 10 प्रतिशत से बढ़ कर लगभग 13 प्रतिशत हो गई थी।

अपरिवर्तनशीलता के नीचे विभिन्न क्षेत्रों में शहरी विकास के रुझानों में उल्लेखनीय उतार-चढ़ाव छिपे हुए हैं। छोटे क़स्बों के पास आर्थिक रूप से विकसित होने के ज़्यादा मौके नहीं थे। दूसरी तरफ़ कलकत्ता,

बम्बई और मद्रास तेज़ी से फैले और जल्दी ही विशाल शहर बन गए। कहने का मतलब यह है कि नए व्यावसायिक एवं प्रशासनिक केंद्रों के रूप में इन तीन शहरों के पनपने के साथ-साथ कई दूसरे तत्कालीन शहर कमज़ोर भी पड़ते जा रहे थे।

औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का केंद्र होने के नाते ये शहर भारतीय सूती कपड़े जैसे निर्यात उत्पादों के लिए संग्रह डिपो थे। मगर इंग्लैंड में हुई औद्योगिक क्रांति के बाद इस प्रवाह की दिशा बदल गई और इन शहरों में ब्रिटेन के कारखानों में बनी चीज़ें उतरने लगीं। भारत से तैयार माल की बजाय कच्चे माल का निर्यात होने लगा।

इस आर्थिक गतिविधि का स्वरूप ऐसा था कि उसने औपनिवेशिक शहरों को देश के परंपरागत शहरों और क़स्बों से बिलकुल अलग ला खड़ा किया।

1853 में रेलवे की शुरुआत हुई। इसने शहरों की कायापलट कर दी। आर्थिक गतिविधियों का केंद्र परंपरागत शहरों से दूर जाने लगा क्योंकि ये शहर पुराने मार्गों और नदियों के समीप थे। हरेक रेलवे स्टेशन कच्चे माल का संग्रह केंद्र और आयातित वस्तुओं का वितरण बिंदु बन गया। उदाहरण के लिए, गंगा के किनारे स्थित मिर्ज़ापुर दक्कन से कपास तथा सूती वस्तुओं के संग्रह का केंद्र था जो बम्बई तक जाने वाली रेलवे लाइन के अस्तित्व में आने के बाद अपनी पहचान खोने लगा था (देखें अध्याय 10, चित्र 10.18)। रेलवे नेटवर्क के विस्तार के बाद रेलवे वर्कशॉप्स और रेलवे कालोनियों की भी स्थापना शुरू हो गई। जमालपुर, वॉल्टेयर और बरेली जैसे रेलवे नगर अस्तित्व में आए।

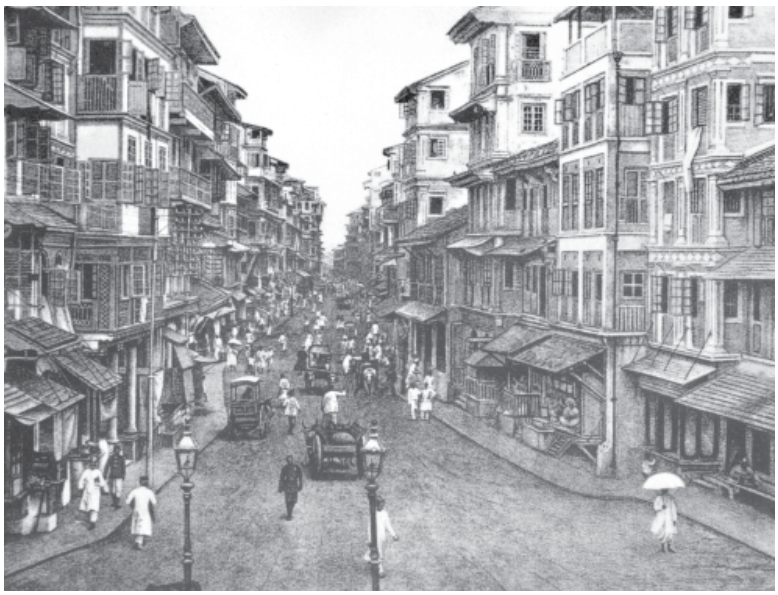

चित्र 12.5

भारत में शहरीकरण
1881–1942

साल	कुल आबादी में शहरी आबादी का प्रतिशत
1891	9.4
1901	10.0
1911	9.4
1921	10.2
1931	11.1
1941	12.8

➲ चर्चा कीजिए...

जनगणना के अलावा ऐसी दो विधियाँ बताइए जिनके माध्यम से आधुनिक शहरों में आंकड़े इकट्ठा करने और उनको संकलित करने का काम अत्यंत महत्त्वपूर्ण बन चुका है। सांख्यिकीय आंकड़ों या शहर के नक़्शों में से किसी एक का अध्ययन कीजिए। पता लगाइए कि ये आंकड़े किसने और क्यों इकट्ठा किए? इस तरह के संग्रह में कौन से संभावित भेद-भाव छिपे हो सकते हैं? कौन सी जानकारियाँ थीं जिनको दर्ज नहीं किया गया? यह पता लगाइए कि वे नक़्शे क्यों बनाए गए और क्या उनमें शहर के सभी भागों को समान बारीकी से चिह्नित किया गया है?

चित्र 12.6
फोर्ट एरिया का बोरा बाज़ार, 1885
जैसे-जैसे बम्बई फैली, फोर्ट एरिया में भी भीड़ बढ़ने लगी। व्यापारी, दुकादार और नौकरीपेशा लोग इस इलाके में आने लगे। बहुत सारे नए बाज़ार खुले और बड़ी-बड़ी इमारतें बनने लगीं। इसके भीड़-भड़ाके से चिंतित अंग्रेज़ों ने फोर्ट के उत्तरी इलाके से भारतीयों को खदेड़ने की कोशिशें शुरू कर दीं।

3. नए शहर कैसे थे?

3.1 बंदरगाह, क़िले और सेवाओं के केंद्र

चित्र 12.7
कलकत्ता में ओल्ड फ़ोर्ट घाट, टॉमस एवं विलियम डेनियल का उत्कीर्ण चित्र, 1787
ओल्ड फ़ोर्ट पानी के किनारे बनाया गया था। कंपनी का माल यहीं उतारा जाता था। स्थानीय लोग यहाँ नहाने-धोने के लिए आते थे।

अठारहवीं सदी तक मद्रास, कलकत्ता और बम्बई महत्वपूर्ण बंदरगाह बन चुके थे। यहाँ जो आबादियाँ बसीं वे चीज़ों के संग्रह के लिए काफ़ी उपयोगी साबित हुईं। ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने कारख़ाने (यानी वाणिज्यिक कार्यालय) इन्हीं बस्तियों में बनाए और यूरोपीय कंपनियों के बीच प्रतिस्पर्धा के कारण सुरक्षा के उद्देश्य से इन बस्तियों की किलेबंदी कर दी। मद्रास में फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज, कलकत्ता में फ़ोर्ट विलियम और बम्बई में फ़ोर्ट, ये इलाके ब्रिटिश आबादी के रूप में जाने जाते थे। यूरोपीय व्यापारियों के साथ लेन-देन चलाने वाले भारतीय व्यापारी, कारीगर और कामगार इन क़िलों के बाहर अलग बस्तियों में रहते थे। यूरोपीयों और भारतीयों के लिए शुरू से ही अलग क्वार्टर बनाए गये थे। उस समय के लेखन में उन्हें "व्हाइट टाउन" (गोरा शहर) और "ब्लैक टाउन" (काला शहर) के नाम से उद्धृत किया जाता था। राजनीतिक सत्ता अंग्रेज़ों के हाथ में आ जाने के बाद यह नस्ली फ़र्क़ और भी तीखा हो गया।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में रेलवे के फैलते नेटवर्क ने इन शहरों को शेष भारत से जोड़ दिया। नतीजा यह हुआ कि जहाँ से कच्चा माल और मज़दूर आते थे, ऐसे देहाती और दूर-दराज़ इलाक़े भी इन बंदरगाह शहरों से गहरे तौर पर जुड़ने लगे। क्योंकि कच्चा माल निर्यात के लिए इन शहरों में आता था और सस्ते श्रम की कोई कमी नहीं थी इसलिए वहाँ कारखानें लगाना आसान था। 1850 के दशक के बाद भारतीय व्यापारियों और उद्यमियों ने बम्बई में सूती कपड़ा मिलें लगाईं। कलकत्ता के बाहरी इलाक़े में यूरोपीयों के स्वामित्व वाली जूट मिलें खोली गईं। यह भारत में आधुनिक औद्योगिक विकास की शुरुआत थी।

हालाँकि कलकत्ता, बम्बई और मद्रास इंग्लिश कारख़ानों के लिए कच्चा माल भेजते थे और पूँजीवाद जैसी आधुनिक आर्थिक ताकतों के बल पर मज़बूती से सामने आ चुके थे लेकिन उनकी अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से फ़ैक्ट्री उत्पादन पर आधारित नहीं थी। इन शहरों की ज़्यादातर कामकाजी आबादी उस श्रेणी में आती थी जिसे अर्थशास्त्री तृतीयक क्षेत्र (Tertiary Sector) या सेवा क्षेत्र कहते हैं। उस समय यहाँ सही मायनों

में केवल दो "औद्योगिक शहर" थे। एक कानपुर और दूसरा जमशेदपुर। कानपुर में चमड़े की चीज़ें, ऊनी और सूती कपड़े बनते थे जबकि जमशेदपुर स्टील उत्पादन के लिए विख्यात था। भारत कभी भी एक आधुनिक औद्योगिक देश नहीं बन पाया क्योंकि पक्षपातपूर्ण औपनिवेशिक नीतियों ने हमारे औद्योगिक विकास को आगे नहीं बढ़ने दिया। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास बड़े शहर तो बने लेकिन इससे औपनिवेशिक भारत की समूची अर्थव्यवस्था में कोई नाटकीय इजाफ़ा नहीं हुआ।

➲ चित्र 12.8 तथा 12.9 को देखिए। सड़कों पर होने वाली उन गतिविधियों पर ध्यान दीजिए जिन्हें डेनियल बंधु चित्र में दर्शाना चाहते हैं। इन गतिविधियों से अठारहवीं सदी के आख़िर में कलकत्ता की सड़कों के सामाजिक जीवन के बारे में क्या पता चलता है?

3.2 एक नया शहरी परिवेश

औपनिवेशिक शहर नए शासकों की वाणिज्यिक संस्कृति को प्रतिबिम्बित करते थे। राजनीतिक सत्ता और संरक्षण भारतीय शासकों के स्थान पर ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारियों के हाथ में जाने लगा। दुभाषिए, बिचौलिए, व्यापारी और माल आपूर्तिकर्ता के रूप में काम करने वाले भारतीयों का भी इन नए शहरों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान था। नदी या समुद्र के किनारे आर्थिक गतिविधियों से गोदियों और घाटियों का विकास हुआ। समुद्र किनारे गोदाम, वाणिज्यिक कार्यालय, जहाज़रानी उद्योग के लिए बीमा एजेंसियाँ, यातायात डिपो और बैंकिंग संस्थानों की स्थापना होने लगी। कंपनी के मुख्य प्रशासकीय कार्यालय समुद्र तट से दूर बनाए गए। कलकत्ता में स्थित राइटर्स बिल्डिंग इसी तरह का एक दफ़्तर हुआ करती थी। यहाँ "राइटर्स" का आशय क्लर्कों से था। यह ब्रिटिश शासन में नौकरशाही के बढ़ते कद का संकेत था। क़िले की चारदिवारी के आस-पास यूरोपीय व्यापारियों और एजेंटों ने यूरोपीय शैली के महलनुमा मकान बना लिए थे। कुछ ने शहर की सीमा से सटे उपशहरी (Suburb, मुफ़स्सिल) इलाक़ों में बग़ीचा घर (Garden House) बना लिए थे। शासक वर्ग के लिए नस्ली विभेद पर आधारित क्लब, रेसकोर्स और रंगमंच भी बनाए गए।

चित्र 12.8
दि ओल्ड कोर्ट हाउस और राइटर्स बिल्डिंग, टॉमस एवं विलियम डेनियल, 1786
दाएँ हाथ पर कोर्ट हाउस (न्यायालय परिसर) के खुले तोरणपथ वाले बरामदे और लंबे खम्भों को 1792 में ढहा दिया गया था। इसके बगल में राइटर्स बिल्डिंग खड़ी है जहाँ ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारी (जिन्हें भारत में आने पर राइटर्स कहा जाता था) रहते थे। बाद में यह इमारत सरकारी कार्यालय बना दी गई।

चित्र 12.9
चौरंगी में नयी इमारतें, टॉमस एवं विलियम डेनियल, 1787
मैदान के पूर्वी किनारे पर अंग्रेज़ों के निजी मकान अठारहवीं सदी के आखिर में बनने लगे थे। इनमें से ज़्यादातर मकान पल्लड़ियन शैली के थे जिनमें गर्मियों से बचने के लिए खम्भों के सहारे बड़े बरामदे बनाए गए थे।

चित्र 12.10
द *मार्बल पैलेस (संगमरमर महल),* कलकत्ता
यह नए शहरी संभ्रांत वर्ग के किसी भारतीय परिवार द्वारा बनवाई गई सबसे भव्य इमारतों में से एक थी।

अमीर भारतीय एजेंटों और बिचौलियों ने बाज़ारों के आस-पास ब्लैक टाउन में परंपरागत ढंग के दालानी मकान बनवाए। उन्होंने भविष्य में पैसा लगाने के लिए शहर के भीतर बड़ी-बड़ी ज़मीनें भी ख़रीद ली थीं। अपने अंग्रेज़ स्वामियों को प्रभावित करने के लिए वे त्योहारों के समय रंगीन दावतों का आयोजन करते थे। समाज में अपनी हैसियत साबित करने के लिए उन्होंने मंदिर भी बनवाए। मज़दूर वर्ग के लोग अपने यूरोपीय और भारतीय स्वामियों के लिए ख़ानसामा, पालकीवाहक, गाड़ीवान, चौकीदार, पोर्टर और निर्माण व गोदी मज़दूर के रूप में विभिन्न सेवाएँ उपलब्ध कराते थे। वे शहर के विभिन्न इलाक़ों में कच्ची झोंपड़ियों में रहते थे।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में औपनिवेशिक शहर का स्वरूप और भी बदल गया। 1857 के विद्रोह के बाद भारत में अंग्रेज़ों का रवैया विद्रोह की लगातार आशंका से तय होने लगा था। उनको लगता था कि शहरों की और अच्छी तरह हिफ़ाज़त करना ज़रूरी है और अंग्रेज़ों को "देशियों" (Natives) के ख़तरे से दूर, ज़्यादा सुरक्षित व पृथक बस्तियों में रहना चाहिए। पुराने क़स्बों के इर्द-गिर्द चरागाहों और खेतों को साफ़ कर दिया गया। "सिविल लाइन्स" के नाम से नए शहरी इलाक़े विकसित किए गए। सिविल लाइन्स में केवल गोरों को बसाया गया। छावनियों को भी सुरक्षित स्थानों के रूप में विकसित किया गया। छावनियों में यूरोपीय कमान के अंतर्गत भारतीय सैनिक तैनात किए जाते थे। ये इलाक़े मुख्य शहर से अलग लेकिन जुड़े हुए होते थे। चौड़ी सड़कों, बड़े बगीचों में बने बंगलों, बैरकों, परेड मैदान और चर्च आदि से लैस ये छावनियाँ यूरोपीय लोगों के लिए एक सुरक्षित आश्रय स्थल

चित्र 12.11
चितपुर बाज़ार, चार्ल्स डी. ऑइली द्वारा
चितपुर बाज़ार कलकत्ता में ब्लैक टाउन और व्हाइट टाउन की सीमा पर स्थित था। यहाँ विभिन्न प्रकार के मकानों को देखिए : एक तरफ अमीर ज़मींदार की ईंटों से बनी इमारत है और दूसरी तरफ फूँस से बनी गरीबों की झोंपड़ियाँ हैं। तसवीर में दिखाई दे रहे मंदिर को अंग्रेज़ ब्लैक पगोडा कहते थे जिसका यहाँ रहने वाले गोविन्द राम मित्तर नामक ज़मींदार ने निर्माण कराया था। नस्ल पर आधारित भाषा के चलते नाम भी अकसर स्याही में रँगे होते थे।

तो थीं ही, भारतीय क़स्बों की घनी और बेतरतीब बसावट के विपरीत व्यवस्थित शहरी जीवन का एक नमूना भी थीं। अंग्रेज़ों की नज़र में

काले इलाक़े न केवल अराजकता और हो-हल्ले का केंद्र थे, वे गंदगी और बीमारी का स्रोत भी थे। काफ़ी समय तक अंग्रेज़ों की दिलचस्पी गोरों की आबादी में सफ़ाई और स्वच्छता बनाए रखने तक ही सीमित थी लेकिन जब हैज़ा और प्लेग जैसी महामारियाँ फैलीं और हज़ारों लोग मारे गये तो औपनिवेशिक अफ़सरों को स्वच्छता व सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए ज़्यादा कड़े क़दम उठाने की ज़रूरत महसूस हुई। उनको भय था कि कहीं ये बीमारियाँ ब्लैक टाउन से व्हाइट टाउन में भी न फैल जाएँ। 1860-70 के दशकों से साफ़-सफ़ाई के बारे में कड़े प्रशासकीय उपाय लागू किए गये और भारतीय शहरों में निर्माण गतिविधियों पर अंकुश लगाया गया। लगभग इसी समय भूमिगत पाइप आधारित जलापूर्ति, निकासी और नाली व्यवस्था भी निर्मित की गई। इस प्रकार भारतीय शहरों को नियमित व नियंत्रित करने के लिए स्वच्छता निगरानी भी एक अहम तरीका बन गया।

3.3 पहला हिल स्टेशन

छावनियों की तरह हिल स्टेशन (पर्वतीय सैरगाह) भी औपनिवेशिक शहरी विकास का एक ख़ास पहलू थी। हिल स्टेशनों की स्थापना और बसावट का संबंध सबसे पहले ब्रिटिश सेना की ज़रूरतों से था। सिमला (वर्तमान शिमला) की स्थापना गुरखा युद्ध (1815-1816) के दौरान की गई। अंग्रेज़-मराठा (1818) युद्ध के कारण अंग्रेज़ों की दिलचस्पी माउंट आबू में बनी जबकि दार्जीलिंग को 1835 में सिक्किम के राजाओं से छीना गया था। ये हिल स्टेशन फ़ौजियों को ठहराने, सरहद की चौकसी करने और दुश्मन के ख़िलाफ़ हमला बोलने के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान थे।

चित्र 12.12
शिमला के एक औपनिवेशिक मकान का चित्र
यह सर जॉन मार्शल का आवास था।

भारतीय पहाड़ों की मृदु और ठंडी जलवायु को फायदे की चीज़ माना जाता था, ख़ासतौर से इसलिए कि अंग्रेज़ गर्म मौसम को बीमारियाँ पैदा करने वाला मानते थे। उन्हें गर्मियों के कारण हैज़ा और मलेरिया की सबसे ज़्यादा आंशका रहती थी। वे फ़ौजियों को इन बीमारियों से दूर रखने की पूरी कोशिश करते थे। सेना की भारी-भरकम मौजूदगी के कारण ये स्थान पहाड़ियों में एक नयी तरह की छावनी बन गये। इन हिल स्टेशनों को सेनेटोरियम के रूप में भी विकसित किया गया था। सिपाहियों को यहाँ विश्राम करने और इलाज कराने के लिए भेजा जाता था।

क्योंकि हिल स्टेशनों की जलवायु यूरोप की ठंडी जलवायु से मिलती-जुलती थी इसलिए नये शासकों को वहाँ की आबो-हवा काफ़ी लुभाती थी। वायसराय अपने पूरे अमले के साथ हर साल गर्मियों में हिल स्टेशनों पर ही डेरा डाल लिया करते थे। 1864 में वायसराय जॉन लॉरेंस ने अधिकृत रूप से अपनी काउंसिल शिमला में स्थानांतरित कर दी और इस तरह गर्म मौसम में राजधानियाँ बदलने के सिलसिले पर विराम लगा दिया। शिमला भारतीय सेना के कमांडर इन चीफ़ (प्रधान सेनापति) का भी अधिकृत आवास बन गया।

हिल स्टेशन ऐसे अंग्रेज़ों और यूरोपीयनों के लिए भी आदर्श स्थान थे जो अपने घर जैसी मिलती-जुलती बस्तियाँ बसाना चाहते थे। उनकी इमारतें यूरोपीय शैली की होती थीं। अलग-अलग मकानों के बाद एक-दूसरे से कटे विला और बागों के बीच में स्थित कॉटेज बनाए जाते थे। एंग्लिकन चर्च और शैक्षणिक संस्थान आंग्ल आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते थे। सामाजिक दावत, चाय, बैठक, पिकनिक, रात्रिभोज, मेले, रेस और रंगमंच जैसी घटनाओं के रूप में यूरोपीयों का सामाजिक जीवन भी एक ख़ास क़िस्म का था।

रेलवे के आने से ये पर्वतीय सैरगाहें बहुत तरह के लोगों की पहुँच में आ गईं। अब भारतीय भी वहाँ जाने लगे। उच्च और मध्यवर्गीय लोग, महाराजा, वकील और व्यापारी सैर-सपाटे के लिए इन स्थानों पर जाने लगे। वहाँ उन्हें शासक यूरोपीय अभिजन के निकट होने का संतोष मिलता था।

हिल स्टेशन औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के लिए भी महत्त्वपूर्ण थे। पास के हुए इलाक़ों में चाय और कॉफ़ी बगानों की स्थापना से मैदानी इलाक़ों से बड़ी संख्या में मज़दूर वहाँ आने लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि अब हिल स्टेशन केवल यूरोपीय लोगों की ही सैरगाह नहीं रह गए थे।

चित्र 12.13
मनाली, हिमाचल प्रदेश का एक गाँव
यद्यपि अंग्रेज़ों ने पहाड़ों में भी औपनिवेशिक स्थापत्य शैलियों का इस्तेमाल किया लेकिन स्थानीय लोग पहले की तरह ही रहते रहे।

3.4 नए शहरों में सामाजिक जीवन

साधारण भारतीय आबादी के लिए नए शहर दाँतों तले उँगली दबा लेने का अनुभव थे जहाँ ज़िंदगी हमेशा दौड़ती-भागती सी दिखाई देती थी। वहाँ चरम संपन्नता और गहन ग़रीबी, दोनों के दर्शन एक साथ होते थे।

घोड़ागाड़ी जैसे नए यातायात साधन और बाद में ट्रामों और बसों के आने से यह हुआ कि अब लोग शहर के केंद्र से दूर जाकर भी बस सकते थे। समय के साथ काम की जगह और रहने की जगह, दोनों एक-दूसरे से अलग होते गए। घर से दफ़्तर या फ़ैक्ट्री जाना एक नए क़िस्म का अनुभव बन गया।

यद्यपि अब पुराने शहरों में मौजूद सामंजस्य और वाकफ़ियत का अहसास ग़ायब था लेकिन टाउन हॉल, सार्वजनिक पार्क, रंगशालाओं और बीसवीं सदी में सिनेमा हॉलों जैसे सार्वजनिक स्थानों के बनने से शहरों में लोगों को मिलने-जुलने की उत्तेजक नयी जगह और अवसर मिलने लगे थे। शहरों में नए सामाजिक समूह बने तथा लोगों की पुरानी पहचानें महत्त्वपूर्ण नहीं रहीं। तमाम वर्गों के लोग बड़े शहरों में आने लगे। क्लर्कों, शिक्षकों, वकीलों, डॉक्टरों, इंजीनियरों, अकाउंटेंट्स की माँग बढ़ती जा रही थी। नतीजा, "मध्यवर्ग" बढ़ता गया। उनके पास स्कूल, कॉलेज और लाइब्रेरी जैसे नए शिक्षा संस्थानों तक अच्छी पहुँच थी। शिक्षित होने के नाते वे समाज और सरकार के बारे में अख़बारों, पत्रिकाओं और सार्वजनिक सभाओं में अपनी राय व्यक्त कर सकते थे। बहस और चर्चा का एक नया सार्वजनिक दायरा पैदा हुआ। सामाजिक रीति-रिवाज, क़ायदे-कानून और तौर-तरीकों पर सवाल उठने लगे।

लेकिन बहुत सारे सामाजिक बदलाव स्वाभाविक रूप से या आसानी से नहीं आ रहे थे। शहरों में औरतों के लिए नए अवसर थे। पत्र-पत्रिकाओं, आत्मकथाओं और पुस्तकों के माध्यम से मध्यवर्गीय औरतें खुद को अभिव्यक्त करने का प्रयास कर रही थीं। परंपरागत पितृसत्तात्मक कायदे-कानूनों को बदलने की इन कोशिशों से बहुत सारे लोगों को असंतोष था। रूढ़िवादियों को भय था कि अगर औरतें पढ़-लिख गईं तो वे दुनिया को उलट कर रख देंगी और पूरी सामाजिक व्यवस्था का आधार ख़तरे में पड़ जाएगा। यहाँ तक कि महिलाओं की शिक्षा का समर्थन करने वाले सुधारक भी औरतों को माँ और पत्नी की परंपरागत भूमिकाओं में ही देखते थे और चाहते थे कि वे घर की चारदीवारी के भीतर ही रहें। समय बीतने के साथ सार्वजनिक स्थानों पर महिलाओं की उपस्थिति बढ़ने लगी। वे नौकरानी और फ़ैक्ट्री मज़दूर, शिक्षिका, रंगकर्मी

चित्र 12.14
कलकत्ता में एक सड़क पर चलती ट्राम गाड़ियाँ।

आमार कथा (मेरी कहानी)

विनोदिनी दासी (1863-1941) बंगाली रंगमच में उन्नीसवीं सदी के आखिर और बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों की जानी-मानी हस्ती थीं। उन्होंने नाटककार और निर्देशक गिरिश चंद्र घोष (1844-1912) के साथ काफ़ी काम किया। स्टार थिएटर, कलकत्ता की स्थापना (1883) के पीछे उनका मुख्य हाथ था। यह थिएटर बाद में कई प्रसिद्ध नाटकों के लिए जाना गया। 1910 से 1913 के बीच उन्होंने *आमार कथा* के नाम से क़िस्तों में अपनी आत्मकथा लिखी। वह एक ज़बरदस्त व्यक्तित्व वाली महिला थीं। उन्होंने समाज में औरतों की समस्याओं पर केंद्रित कई भूमिकाएँ निभाई। वह अभिनेत्री, संस्था निर्माता और लेखिका, कई भूमिकाएँ एक साथ निभाती थीं लेकिन उस समय के पितृसत्तात्मक समाज ने सार्वजनिक दायरे में उनकी उपस्थिति को कभी पसंद नहीं किया।

चित्र 12.15
उन्नीसवीं सदी के आख़िर की एक कालीघट पेंटिंग।

स्त्री सत्ता के बारे में पुरुषों की बेचैनी को अकसर एक ऐसी तसवीर के ज़रिए दर्शाया जाता था जिसमें औरत एक जादूगरनी के भेष में आदमी को भेड़ बना देती है। जैसे-जैसे औरतें पढ़-लिख कर अपने घर की चारदीवारी से निकलने लगीं, लोकप्रिय तसवीरों में औरतों की ऐसी छवियाँ खूब दिखाई देने लगीं।

और फ़िल्म कलाकार के रूप में शहर के नए व्यवसायों में दाख़िल होने लगीं। लेकिन ऐसी महिलाओं को लंबे समय तक सामाजिक रूप से सम्मानित नहीं माना जाता था जो घर से निकलकर सार्वजनिक स्थानों में जा रही थीं।

शहरों में मेहनतकश ग़रीबों या कामगारों का एक नया वर्ग उभर रहा था। ग्रामीण इलाक़ों के ग़रीब रोज़गार की उम्मीद में शहरों की तरफ़ भाग रहे थे। कुछ लोगों को शहर नए अवसरों का स्रोत दिखाई देते थे। कुछ को एक भिन्न जीवनशैली का आकर्षण खींच रहा था। उनके लिए यह एक ऐसी चीज़ थी जो उन्होंने पहले कभी नहीं देखी थी। शहर में जीने की लागत पर अंकुश रखने के लिए ज़्यादातर पुरुष प्रवासी अपना परिवार गाँव में छोड़कर आते थे। शहर की ज़िंदगी एक संघर्ष थी : नौकरी पक्की नहीं थी, खाना मँहगा था, रिहाइश का ख़र्चा उठाना मुश्किल था। फिर भी ग़रीबों ने वहाँ प्रायः अपनी एक अलग जीवंत शहरी संस्कृति रच ली थी। वे धार्मिक त्योहारों, तमाशों (लोक रंगमंच) और स्वांग आदि में उत्साहपूर्वक हिस्सा लेते थे जिनमें ज़्यादातर उनके भारतीय और यूरोपीय स्वामियों का मज़ाक उड़ाया जाता था।

➲ चर्चा कीजिए...

आपके निवास स्थान से सबसे नज़दीक पड़ने वाला रेलवे स्टेशन कौन सा है? पता लगाइए कि उसका निर्माण कब कराया गया और उसे माल ढुलाई के लिए बनाया गया था या सवारी यातायात के लिए?
अन्य लोगों से पूछिए कि वे उस स्टेशन के बारे में क्या जानते हैं? आप स्टेशन पर कितनी बार जाते हैं और क्यों?

स्रोत 2

मछुआरों की नज़र से

यह बीसवीं सदी की शुरुआत में जेलेपाड़ा (मछुआरों के क्वार्टर), कलकत्ता के लोगों में प्रचलित एक स्वांग का हिस्सा है :

दिल-मे एक भावना से कलकत्ता-मे आया
कैसन कैसन मजा हम हिया देखने पाया
अरि-समाज, ब्रह्म-समाज, गिरजा, महजिद
एक लोटा-मे मिलता दूध, पानी, सब चीज
छोटा, बड़ा आदमी सब बाहर करके दात
झापड़ मार के बोलता है अंग्रेज़ी-मे बात।

4. पृथक्करण, नगर नियोजन और भवन निर्माण

यद्यपि मद्रास, कलकत्ता और बम्बई, तीनों औपनिवेशिक शहर पहले के भारतीय क़स्बों और शहरों से अलग थे लेकिन उनमें कुछ साझे तत्त्व थे और उनके भीतर कुछ अनूठी बातें पैदा हो चुकी थीं। इनकी जाँच करने पर औपनिवेशिक शहरों के बारे में हमारी समझ में निश्चय ही इज़ाफ़ा होगा।

4.1 मद्रास में बसावट और पृथक्करण

कंपनी ने अपनी व्यापारिक गतिविधियों का केंद्र सबसे पहले पश्चिमी तट पर सूरत के सुस्थापित बंदरगाह को बनाया था। बाद में वस्त्र उत्पादों की खोज में अंग्रेज़ व्यापारी पूर्वी तट पर जा पहुँचे। 1639 में उन्होंने मद्रासपटम में एक व्यापारिक चौकी बनाई। इस बस्ती को स्थानीय लोग चेनापट्टनम कहते थे। कंपनी ने वहाँ बसने का अधिकार स्थानीय तेलुगू सामंतों, कालाहस्ती के नायकों से ख़रीदा था जो अपने इलाक़े में व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ाना चाहते थे। फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ प्रतिद्वंद्विता (1746–63) के कारण अंग्रेज़ों को मद्रास की किलेबंदी करनी पड़ी और अपने प्रतिनिधियों को ज़्यादा राजनीतिक व प्रशासकीय ज़िम्मेदारियाँ सौंप दीं। 1761 में फ्रांसीसियों की हार के बाद मद्रास और सुरक्षित हो गया। वह एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक शहर के रूप में विकसित होने लगा। यहाँ अंग्रेज़ों का वर्चस्व और भारतीय व्यापारियों की कमतर हैसियत साफ़ दिखाई देती थी।

फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज (सेंट जॉर्ज किला) व्हाइट टाउन का केंद्रक बन गया जहाँ ज़्यादातर यूरोपीय रहते थे। दीवारों और बुर्जों ने इसे एक ख़ास क़िस्म की घेरेबंदी का रूप दे दिया था। किले के भीतर रहने का फ़ैसला रंग और धर्म के आधार पर किया जाता था। कंपनी के लोगों को भारतीयों के साथ विवाह करने की इजाज़त नहीं थी। यूरोपीय ईसाई होने के कारण डच और पुर्तगालियों को वहाँ रहने की छूट थी। प्रशासकीय और न्यायिक व्यवस्था की संरचना भी गोरों के पक्ष में थी। संख्या की दृष्टि से कम होते हुए भी यूरोपीय लोग शासक थे और मद्रास का विकास शहर में रहने वाले मुठ्ठी भर गोरों की ज़रूरतों और सुविधाओं के हिसाब से किया जा रहा था।

ब्लैक टाउन क़िले के बाहर विकसित हुआ। इस आबादी को भी सीधी कतारों में बसाया गया था जोकि औपनिवेशिक शहरों की विशिष्टता थी। लेकिन अठारहवीं सदी के पहले दशक के मध्य में उसे ढहा दिया गया ताकि किले के चारों तरफ़ एक सुरक्षा क्षेत्र बनाया जा सके। इसके बाद उत्तर की दिशा में दूर जाकर एक नया ब्लैक टाउन बसाया गया। इस बस्ती में बुनकरों, कारीगरों, बिचौलियों और दुभाषियों को रखा गया था जो कंपनी के व्यापार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

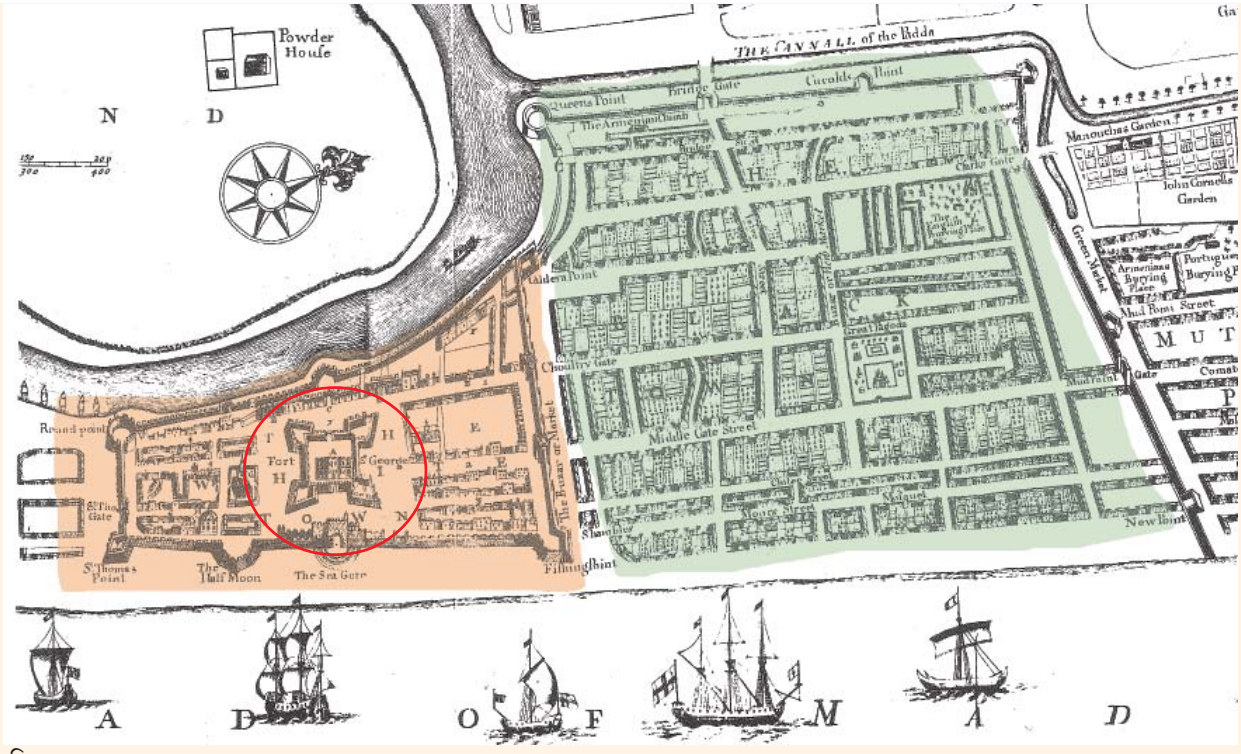

चित्र 12.16

मद्रास का नक़्शा

फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज के इर्द-गिर्द बना व्हाइट टाउन बाएँ सिरे पर तथा पुराना ब्लैक टाउन दाहिने सिरे पर है। फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज घेरे में स्थित है। ध्यान से देखिए कि ब्लैक टाउन को किस तरह बसाया गया था।

चित्र 12.17

ब्लैक टाउन, मद्रास का एक हिस्सा, टॉमस एवं विलियम डेनियल द्वारा चित्रित, ओरिएंटल सीनरी में प्रकाशित डेनियल के एक रेखाचित्र पर आधारित, 1798

पुराने ब्लैक टाउन को ढहाकर यह खुला मैदान तैयार किया गया था। मूल रूप से इसे गोलीबारी में सुविधा के लिए साफ़ किया गया था लेकिन बाद में हरे मैदान के रूप में छोड़ दिया गया। क्षितिज पर आप किले से दूर विकसित हो रहे नए ब्लैक टाउन की झलक देख सकते हैं।

नया ब्लैक टाउन परंपरागत भारतीय शहरों जैसा था। वहाँ मंदिर और बाज़ार के इर्द-गिर्द रिहाइशी मकान बनाए गये थे। शहर के बीच से गुज़रने वाली आड़ी-टेढ़ी संकरी गलियों में अलग-अलग जातियों के मोहल्ले थे। चिन्ताद्रीपेठ इलाक़ा केवल बुनकरों के लिए था। वाशरमेनपेट में रंगसाज़ और धोबी रहते थे। रोयापुरम में ईसाई मल्लाह रहते थे जो कंपनी के लिए काम करते थे।

पेठ एक तमिल शब्द है जिसका मतलब होता है बस्ती, जबकि *पुरम* शब्द गाँव के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

मद्रास को बहुत सारे गाँवों को मिला कर विकसित किया गया था। यहाँ विविध समुदायों के लिए अवसरों और स्थानों का प्रबंध था। नाना प्रकार के आर्थिक कार्य करने वाले कई समुदाय आए और मद्रास में ही बस गए। *दुबाश* ऐसे भारतीय लोग थे जो स्थानीय भाषा और अंग्रेज़ी, दोनों को बोलना जानते थे। वे एजेंट और व्यापारी के रूप में काम करते थे और भारतीय समाज व गोरों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाते थे। वे संपत्ति इकट्ठा करने के लिए सरकार में अपनी पहुँच का इस्तेमाल करते थे। ब्लैक टाउन में परोपकारी कार्यों और मंदिरों को संरक्षण प्रदान करने से समाज में उनकी शक्तिशाली स्थिति स्थापित होती थी।

शुरुआत में कंपनी के तहत नौकरी पाने वालों में लगभग सारे वेल्लालार होते थे। यह एक स्थानीय ग्रामीण जाति थी जिसने ब्रिटिश शासन के कारण मिले नए मौकों का बढ़िया फायदा उठाया। उन्नीसवीं सदी में अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार से ब्राह्मण भी शासकीय महकमों में इसी तरह के पदों के लिए ज़ोर लगाने लगे। तेलुगू कोमाटी समुदाय एक ताकतवर व्यावसायिक समूह था जिसका शहर के अनाज व्यवसाय पर नियंत्रण था। अठाहरवीं सदी से गुजराती बैंकर भी यहाँ मौजूद थे। पेरियार और वन्नियार गरीब कामगार वर्ग में ज़्यादा थे। आरकोट के नवाब पास ही स्थित ट्रिप्लीकेन में जा बसे थे जो एक अच्छी-ख़ासी मुस्लिम आबादी का केंद्र बन गया। इससे पहले माइलापुर और ट्रिप्लीकेन हिंदू धार्मिक केंद्र थे जहाँ अनेक ब्राह्मणों को भरण-पोषण मिलता था। सान थोम और वहाँ का गिरजा रोमन कैथलिक समुदाय का केंद्र था। ये सभी बस्तियाँ मद्रास शहर का हिस्सा बन गईं। इस प्रकार, बहुत सारे गाँवों को मिला लेने से मद्रास दूर तक फैली अल्प सघन आबादी वाला शहर बन गया। इस बात पर यूरोपीय यात्रियों का भी ध्यान गया और सरकारी अफ़सरों ने भी उस पर टिप्पणी की।

चित्र 12.18
पूनामाली रोड पर बना एक गार्डन हाउस

जैसे-जैसे अंग्रेज़ों की सत्ता मज़बूत होती गई, यूरोपीय निवासी क़िले से बाहर जाने लगे। गार्डन हाउसेज़ (बगीचों वाले मकान) सबसे पहले माउंट रोड और पूनामाली

स्रोत 3

एक देहाती शहर?

मद्रास के बारे में *इम्पीरियल गज़ेटियर, 1908* में छपे इस अंश को पढ़िए :

... बेहतर यूरोपीय आवास परिसरों के बीच बनाए जाते हैं जिससे उनकी छवि लगभग पार्क जैसी बन जाती है : और इनके बीच तकरीबन गाँवों की तर्ज पर चावल के खेत आते-जाते रहते हैं। यहाँ तक कि ब्लैक टाउन और ट्रिप्लीकेन जैसी सबसे घनी आबादी वाली देशी बस्तियों में भी वैसी भीड़-भाड़ नहीं दिखती जैसी बहुत सारी दूसरे शहरों में दिखाई देती है...।

➲ रिपोर्टों में लिखी बातों से अकसर रिपोर्ट लिखने वाले के विचारों का पता चलता है। उपरोक्त वक्तव्य में लिखने वाला व्यक्ति किस तरह के शहरी भूदृश्य को बेहतर मानता है और वह किस तरह की बसावट को हेय दृष्टि से देख रहा है? क्या आप इन विचारों से सहमत हैं?

रोड, इन दो सड़कों पर बनने शुरू हुए। ये क़िले से छावनी तक जाने वाली सड़कें थीं। इस दौरान संपन्न भारतीय भी अंग्रेज़ों की तरह रहने लगे थे। परिणामस्वरूप मद्रास के इर्द-गिर्द स्थित गाँवों की जगह बहुत सारे नए उपशहरी इलाक़ों ने ले ली। यह इसलिए संभव था क्योंकि संपन्न लोग परिवहन सुविधाओं की लागत वहन कर सकते थे। गरीब लोग अपने काम की जगह से नजदीक पड़ने वाले गाँवों में बस गए। मद्रास के बढ़ते शहरीकरण का परिणाम यह था कि इन गाँवों के बीच वाले इलाक़े शहर के भीतर आ गए। इस तरह मद्रास एक अर्धग्रामीण सा शहर दिखने लगा।

4.2 कलकत्ता में नगर नियोजन

आधुनिक नगर नियोजन की शुरुआत औपनिवेशिक शहरों से हुई। इस प्रक्रिया में भूमि उपयोग और भवन निर्माण के नियमन के ज़रिए शहर के स्वरूप को परिभाषित किया गया। इसका एक मतलब यह था कि शहरों में लोगों के जीवन को सरकार ने नियंत्रित करना शुरू कर दिया था। इसके लिए एक योजना तैयार करना और पूरी शहरी परिधि का स्वरूप तैयार करना ज़रूरी था। यह प्रक्रिया अकसर इस सोच से प्रेरित होती थी कि शहर कैसा दिखना चाहिए और उसे कैसे विकसित किया जाएगा। इस बात का भी ध्यान रखा जाता था कि विभिन्न स्थानों को कैसे व्यवस्थित करना चाहिए। इस दृष्टि से "विकास" की सोच और विचारधारा प्रतिबिम्बित होती थी और उसका क्रियान्वयन ज़मीन, उसके बाशिंदों और संसाधनों पर नियंत्रण के ज़रिए किया जाता था।

इसकी कई वजह थीं कि अंग्रेज़ों ने बंगाल में अपने शासन के शुरू से ही नगर नियोजन का कार्यभार अपने हाथों में क्यों ले लिया था। एक फ़ौरी वजह तो रक्षा उद्देश्यों से संबंधित थी। 1756 में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला ने कलकत्ता पर हमला किया और अंग्रेज़ व्यापारियों द्वारा माल गोदाम के तौर पर बनाए गए छोटे किले पर क़ब्जा कर लिया। ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारी नवाब की संप्रभुता पर लगातार सवाल उठा रहे थे। वे न तो कस्टम ड्यूटी चुकाना चाहते थे और न ही नवाब द्वारा तय की गई कारोबार की शर्तों पर काम करना चाहते थे। सिराजुद्दौला अपनी ताकत का लोहा मनवाना चाहता था।

कुछ समय बाद, 1757 में प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला की हार हुई। इसके बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने एक ऐसा नया किला बनाने का फ़ैसला लिया जिस पर आसानी से हमला न किया जा सके। कलकत्ता को सुतानाती, कोलकाता और गोविंदपुर, इन तीन गाँवों को मिला कर बनाया गया था। कंपनी ने इन तीनों में सबसे दक्षिण में पड़ने वाले गोविंदपुर गाँव की ज़मीन को साफ करने के लिए वहाँ के व्यापारियों और बुनकरों को हटने का आदेश जारी कर दिया। नवनिर्मित फ़ोर्ट

विलियम के इर्द-गिर्द एक विशाल जगह खाली छोड़ दी गई जिसे स्थानीय लोग मैदान या *गारेर-मठ* कहने लगे थे। खाली मैदान रखने का मकसद यह था कि अगर दुश्मन की सेना क़िले की तरफ़ बढ़े तो उस पर क़िले से बेरोक-टोक गोलीबारी की जा सके। जब अंग्रेज़ों को कलकत्ता में अपनी उपस्थिति स्थायी दिखाई देने लगी तो वे फ़ोर्ट से बाहर मैदान के किनारे पर भी आवासीय इमारतें बनाने लगे। कलकत्ता में अंग्रेज़ों की बस्तियाँ इसी तरह अस्तित्व में आनी शुरू हुईं। फ़ोर्ट के इर्द-गिर्द की विशाल खुली जगह (जो अभी भी मौजूद है) यहाँ की एक पहचान बन गई। यह कलकत्ता में नगर-नियोजन की दृष्टि से पहला उल्लेखनीय काम था।

कलकत्ता में नगर-नियोजन का इतिहास केवल फ़ोर्ट विलियम और मैदान के निर्माण के साथ पूरा होने वाला नहीं था। 1798 में लॉर्ड वेलेज़्ली गवर्नर जनरल बने। उन्होंने कलकत्ता में अपने लिए गवर्नमेंट हाउस के नाम से एक महल बनवाया। यह इमारत अंग्रेज़ों की सत्ता का प्रतीक थी। कलकत्ता में आ जमने के बाद वेलेज़्ली शहर के हिन्दुस्तानी आबादी वाले हिस्से की भीड़-भाड़, ज़रूरत से ज़्यादा हरियाली, गंदे तालाबों, सड़ांध और निकासी की ख़स्ता हालत को देखकर परेशान हो उठा। अंग्रेज़ों को इन चीज़ों से इसलिए परेशानी थी क्योंकि उनका मानना था कि दलदली ज़मीन और ठहरे हुए पानी के तालाबों से ज़हरीली गैसें निकलती हैं जिनसे बीमारियाँ फैलती हैं। उष्णकटिबंधीय जलवायु को वैसे भी स्वास्थ्य के

गोलाबारी के लिए जगह

कलकत्ता के लिए जो पैटर्न तैयार किया गया था उसे बहुत सारे दूसरे शहरों में दोहराया गया। 1857 के विद्रोह के दौरान बहुत सारे शहर विद्रोहियों के गढ़ बन गए थे। विद्रोह के बाद अंग्रेज़ इन स्थानों को अपने लिए सुरक्षित बनाने लगे। उदाहरण के लिए, उन्होंने दिल्ली में लाल क़िले पर कब्ज़ा किया और वहाँ अपनी सैना तैनात कर दी। उन्होंने किले के नज़दीक बनी इमारतों को साफ़ करके भारतीय मोहल्लों और क़िले के बीच काफ़ी फ़ासला बना दिया। इस कारगुज़ारी के पीछे भी दलील वही थी जो 100 साल पहले कलकत्ता में दी गई थी। अगर कभी शहर के लोग दोबारा फ़िरंगी राज के खिलाफ खड़े हो जाएँ तो उन पर गोली चलाने के लिए खुली जगह ज़रूरी थी।

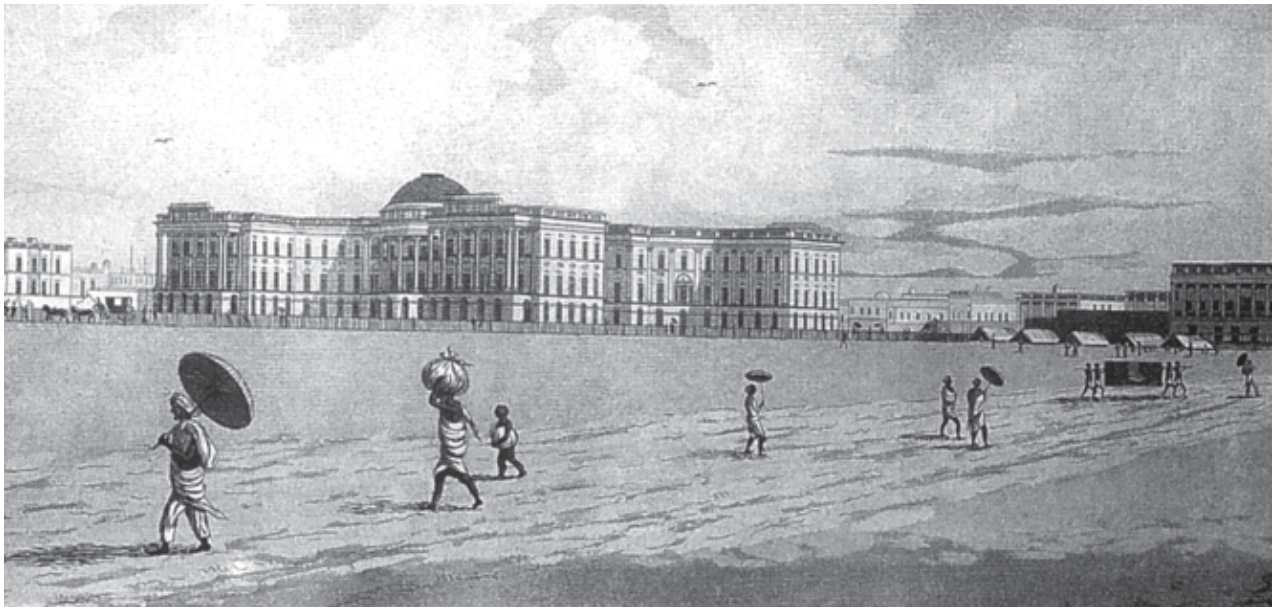

चित्र 12.19
गवर्नमेंट हाउस, कलकत्ता, चार्ल्स डी. ऑइली, 1848
गवर्नर जनरल का निवास गवर्नमेंट हाउस में हुआ करता था जिसे वेलेज़्ली ने ब्रिटिश राज की भव्यता के प्रतीक के रूप में बनवाया था।

चित्र 12.20
कलकत्ता में चितपुर रोड की तरफ़ जाते हुए रास्ते में पड़ने वाला एक बाज़ार
शहर के स्थानीय समुदायों के लिए बाज़ार व्यावसायिक और सामाजिक, दोनों तरह के विनिमय का स्थान था। यूरोप के लोग बाज़ार को देखकर आकर्षित भी होते थे लेकिन उसे भीड़ भरा और गंदा भी मानते थे।

स्रोत 4

"हर तरह की गड़बड़ियों को नियंत्रित करने के लिए"

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में अंग्रेज़ों को यह महसूस होने लगा कि सामाजिक जीवन के सभी आयामों को नियंत्रित करने के लिए स्थायी और सार्वजनिक नियम बनाना जरूरी है। यहाँ तक कि निजी इमारतों और सार्वजनिक सड़कों का निर्माण भी स्पष्ट रूप से संहिताबद्ध मानक नियमों के अनुसार होना आवश्यक था। वेलेज़्ली ने कलकत्ता मिनट्स (1803) में लिखा था :

> यह सरकार की बुनियादी ज़िम्मेदारी है कि वह इस विशाल शहर में सड़कों, नालियों और जलमार्गों में सुधार की एक समग्र व्यवस्था बनाकर तथा मकानों व सार्वजनिक भवनों के निर्माण व प्रसार के बारे में स्थायी नियम बनाकर और हर तरह की गड़बड़ियों को नियंत्रित करने के स्थायी नियम बनाकर यहाँ के निवासियों को स्वास्थ्य, सुरक्षा और सुविधा उपलब्ध कराए।

लिए हानिकारक और शक्ति का क्षय करने वाला माना जाता था। शहर को ज़्यादा स्वास्थ्यपरक बनाने का एक तरीका यह ढूँढ़ा गया कि शहर में खुले स्थान छोड़े जाएँ। वेलेज़्ली ने 1803 में नगर-नियोजन की आवश्यकता पर एक प्रशासकीय आदेश जारी किया और इस विषय में कई कमेटियों का गठन किया। बहुत सारे बाज़ारों, घाटों, कब्रिस्तानों और चर्मशोधन इकाइयों को साफ़ किया गया या हटा दिया गया। इसके बाद "जनस्वास्थ्य" एक ऐसा विचार बन गया जिसकी शहरों की सफ़ाई और नगर-नियोजन परियोजनाओं में बार-बार दुहाई दी जाने लगी।

वेलेज़्ली की विदाई के बाद नगर-नियोजन का काम सरकार की मदद से लॉटरी कमेटी (1817) ने जारी रखा। लॉटरी कमेटी का यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि नगर सुधार के लिए पैसे की व्यवस्था जनता के बीच लॉटरी बेचकर ही की जाती थी। इसका मतलब है कि उन्नीसवीं सदी के शुरुआती दशकों तक शहर के विकास के लिए पैसे की व्यवस्था करना अभी भी केवल सरकार की नहीं बल्कि संवेदनशील नागरिकों की ज़िम्मेदारी ही माना जाता था। लॉटरी कमेटी ने शहर का एक नया नक़्शा बनवाया जिससे कलकत्ता की एक मुकम्मल तसवीर सामने आ सके। कमेटी की प्रमुख गतिविधियों में शहर के हिंदुस्तानी आबादी वाले हिस्से में सड़क-निर्माण और नदी किनारे से "अवैध क़ब्ज़े" हटाना शामिल था। शहर के भारतीय हिस्से को साफ़-सुथरा बनाने की मुहिम में कमेटी ने बहुत सारी झोंपड़ियों को साफ़ कर दिया और मेहनतकश ग़रीबों को वहाँ से बाहर निकाल दिया। उन्हें कलकत्ता के बाहरी किनारे पर जगह दी गई।

अगले कुछ दशकों में महामारी की आशंका से नगर-नियोजन की अवधारणा को और बल मिला। 1817 में हैजा फैलने लगा और 1896 में प्लेग ने शहर को अपनी चपेट में ले लिया। चिकित्सा विज्ञान अभी इन बीमारियों की वजह स्पष्ट नहीं कर पाया था। सरकार ने उस समय के स्वीकृत

सिद्धांत – जीवन परिस्थितियों और बीमारियों के फैलाव के बीच सीधा संबंध होता है – के अनुसार कार्रवाई की। इस सोच को द्वारकानाथ टैगोर और रूस्तमजी कोवासजी जैसे शहर के जाने-माने हिंदुस्तानियों का समर्थन हासिल था। उन लोगों का मानना था कि कलकत्ता को और ज़्यादा स्वास्थ्यकर बनाना ज़रूरी है। घनी आबादी वाले इलाक़ों को अस्वच्छ माना जाता था क्योंकि वहाँ सूरज की रोशनी सीधे नहीं आ पाती थी और हवा निकासी का इन्तज़ाम नहीं था। इसीलिए कामकाजी लोगों की झोंपड़ियों या "बस्तियों" को निशाना बनाया गया। उन्हें तेज़ी से हटाया जाने लगा। मज़दूर, फेरी वाले, कारीगर और बेरोज़गार, यानी शहर के ग़रीबों को एक बार फिर दूर वाले इलाक़ों में ढकेल दिया गया। बार-बार आग लगने से भी निर्माण नियमन में सख़्ती की ज़रूरत दिखाई दे रही थी। उदाहरण के लिए, 1836 में इसी आशंका के चलते फूँस की झोंपड़ियों को अवैध घोषित कर दिया गया और मकानों में ईंटों की छत को अनिवार्य बना दिया गया।

➲ वेलेज़्ली ने सरकार की ज़िम्मेदारी को किस तरह परिभाषित किया है। इस भाग को पढ़िए और चर्चा कीजिए कि इन विचारों को लागू किया जाता तो उनसे शहर में रहने वाले भारतीयों पर क्या असर पड़ता।

बस्ती (बंगला और हिंदी) का मतलब मूल रूप से मोहल्ला या बसावट हुआ करता था। लेकिन अंग्रेज़ों ने इस शब्द का अर्थ संकुचित कर दिया और उसे गरीबों की कच्ची झोंपड़ियों के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा। उन्नीसवीं सदी के आख़िर में ब्रिटिश दस्तावेज़ों में "बस्तियों" को गंदी झोंपड़पट्टियों के रूप में पेश किया जाने लगा।

उन्नीसवीं सदी आते-आते शहर में सरकारी दखलंदाज़ी और ज़्यादा सख्त हो चुकी थी। वो ज़माना लद चुका था जब नगर-नियोजन को सरकार और निवासियों, दोनों की साझा ज़िम्मेदारी माना जाता था। वित्तपोषण (फंडिग) सहित नगर-नियोजन के सारे आयामों को सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। इस आधार पर और ज़्यादा तेज़ी से झुग्गियों को हटाया जाने लगा और दूसरे इलाक़ों की कीमत पर ब्रिटिश आबादी वाले हिस्सों को तेज़ी से विकसित किया जाने लगा। "स्वाथ्यकर" और "अस्वास्थ्यकर" के नए विभेद के सहारे "व्हाइट" और "ब्लैक" टाउन वाले नस्ली विभाजन को और बल मिला। नगर निगम में मौजूद भारतीय नुमाइंदों ने शहर के यूरोपीय आबादी वाले इलाक़ों के विकास पर ज़रूरत से ज़्यादा ध्यान दिए जाने का विरोध किया। इन सरकारी नीतियों के विरुद्ध जनता के प्रतिरोध ने भारतीयों के भीतर उपनिवेशवाद विरोधी और राष्ट्रवादी भावनाओं को बढ़ावा दिया।

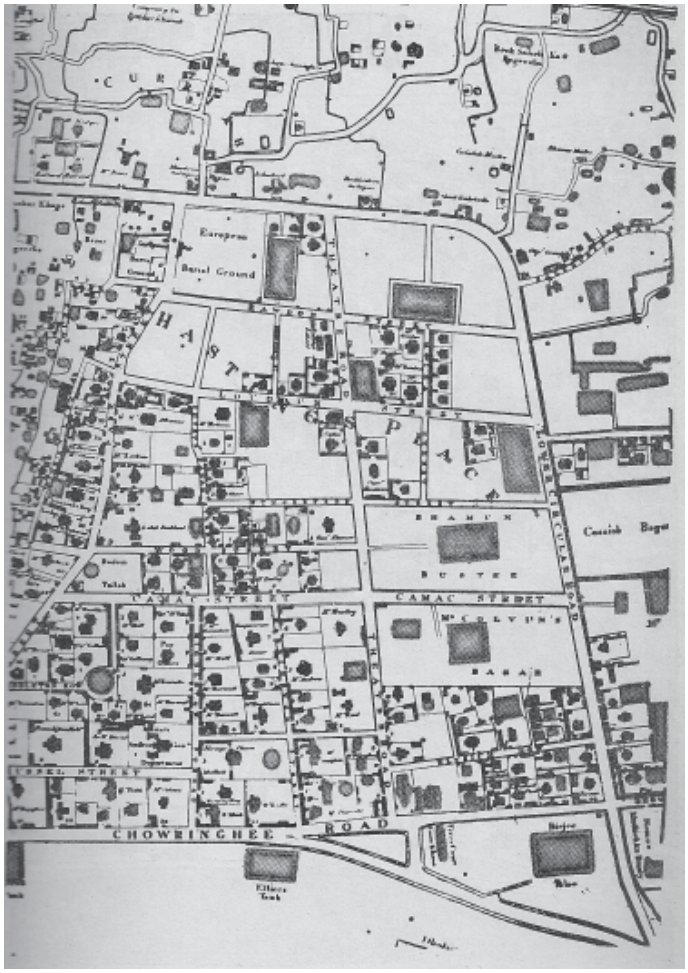

चित्र 12.21
लॉटरी कमेटी सुधारों के बाद कलकत्ता में यूरोपीय टाउन का एक भाग
यहाँ आप विशाल परिसरों में यूरोपीय मकान देख सकते हैं। जे.ए. शाल्च द्वारा बनाई गई योजना से (1825)।

चित्र 12.22
कलकत्ता की एक बस्ती

जैसे-जैसे ब्रिटिश साम्राज्य फैला, अंग्रेज़ कलकत्ता, बम्बई और मद्रास जैसे शहरों को शानदार शाही राजधानियों में तब्दील करने की कोशिश करने लगे। उनकी सोच से ऐसा लगता था मानो शहरों की भव्यता से ही शाही सत्ता की ताकत प्रतिबिंबित होती है। आधुनिक नगर-नियोजन में ऐसी हर चीज़ को शामिल किया गया जिसके प्रति अंग्रेज़ अपनेपन का दावा करते थे : तर्कसंगत क्रम-व्यवस्था, सटीक क्रियान्वयन, पश्चिमी सौंदर्यात्मक आदर्श। शहरों का साफ़ और व्यवस्थित, नियोजित और सुंदर होना ज़रूरी था।

4.3 बम्बई में भवन निर्माण

यदि इस शाही दृष्टि को साकार करने का एक तरीका नगर-नियाजन था तो दूसरा तरीका यह था कि शहरों में भव्य इमारतों के मोती टाँक दिए जाएँ। शहरों में बनने वाली इमारतों में क़िले, सरकारी दफ़्तर, शैक्षणिक संस्थान, धार्मिक इमारतें, स्मारकीय मीनारें, व्यावसायिक डिपो, यहाँ तक कि गोदियाँ और पुल, कुछ भी हो सकता था। बुनियादी तौर पर ये इमारतें रक्षा, प्रशासन और वाणिज्य जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती थीं, लेकिन ये साधारण इमारतें नहीं थीं। अकसर ये इमारतें शाही सत्ता, राष्ट्रवाद और धार्मिक वैभव जैसे विचारों का प्रतिनिधित्व भी करती थीं। आइए देखें कि बम्बई में इस सोच को अमली जामा किस तरह पहनाया गया।

शुरुआत में बम्बई सात टापुओं का इलाका था। जैसे-जैसे आबादी बढ़ी, इन टापुओं को एक-दूसरे से जोड़ दिया गया ताकि ज़्यादा जगह पैदा की जा सके। इस तरह आख़िरकार ये टापू एक-दूसरे से जुड़ गए और एक विशाल शहर अस्तित्व में आया। बम्बई औपनिवेशिक भारत की वाणिज्यिक राजधानी थी। पश्चिमी तट पर एक प्रमुख बंदरगाह होने के नाते यह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का केंद्र था। उन्नीसवीं सदी के अंत तक भारत का आधा निर्यात और आयात बम्बई से ही होता था। इस व्यापार की एक महत्त्वपूर्ण वस्तु अफ़ीम थी। ईस्ट इंडिया कंपनी यहाँ से चीन को अफीम का निर्यात करती थी। भारतीय व्यापारी और बिचौलिये इस व्यापार में हिस्सेदार थे और उन्होंने बम्बई की अर्थव्यवस्था को मालवा, राजस्थान और सिंध जैसे अफीम उत्पादक इलाकों से जोड़ने में मदद दी। कंपनी के साथ यह गठजोड़ उनके लिए मुनाफे का सौदा था और इससे भारतीय पूँजीपति वर्ग का विकास हुआ। बम्बई के पूँजीपति वर्ग में पारसी, मारवाड़ी, कोंकणी मुसलमान, गुजराती बनिये, बोहरा, यहूदी और आर्मीनियाई, विभिन्न समुदायों के लोग शामिल थे।

जैसा कि आपने पीछे पढ़ा है (अध्याय 10), जब 1861 में अमेरिकी गृह युद्ध शुरू हुआ तो अमेरिका के दक्षिणी भाग से आने वाली कपास अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में आना बंद हो गई। इससे भारतीय कपास की माँग पैदा

हुई जिसकी खेती मुख्य रूप से दक्कन में की जाती थी। भारतीय व्यापारियों और बिचौलियों के लिए यह बेहिसाब मुनाफ़े का मौका था। 1869 में स्वेज़ नहर को खोला गया जिससे विश्व अर्थव्यवस्था के साथ बम्बई के संबंध और मज़बूत हुए। बम्बई सरकार और भारतीय व्यापारियों ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए बम्बई को *Urbs prima in Indis* यानी *भारत का सरताज शहर* घोषित कर दिया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक बम्बई में भारतीय व्यापारी कॉटन मिल जैसे नए उद्योगों में अपना पैसा लगा रहे थे। निर्माण गतिविधियों में भी उनका काफ़ी दख़ल रहता था।

जैसे-जैसे बम्बई की अर्थव्यवस्था फैली, उन्नीसवीं सदी के मध्य से रेलवे और जहाज़रानी के विस्तार तथा प्रशासकीय संरचना विकसित करने की ज़रूरत भी पैदा होने लगी। उस समय बहुत सारी नयी इमारतें बनाई गईं। इन इमारतों में शासकों की संस्कृति और आत्मविश्वास झलकता था। इनकी स्थापत्य या वास्तु शैली यूरोपीय शैली पर आधारित थी। यूरोपीय शैलियों के इस आयात में शाही दृष्टि कई तरह से दिखाई देती थी। पहली बात, इसमें एक अजनबी देश में जाना-पहचाना सा भूदृश्य रचने की और उपनिवेश में भी घर जैसा महसूस करने की अंग्रेज़ों की चाह प्रतिबिंबित होती है। दूसरा, अंग्रेज़ों को लगता था कि यूरोपीय शैली उनकी श्रेष्ठता, अधिकार और सत्ता का प्रतीक होगी। तीसरा, वे सोचते थे कि यूरोपीय ढंग की दिखने वाली इमारतों से औपनिवेशिक स्वामियों और भारतीय प्रजा के बीच फ़र्क़ और फ़ासला साफ़ दिखने लगेगा।

शुरुआत में ये इमारतें परंपरागत भारतीय इमारतों के मुक़ाबले अजीब सी दिखाई देती थीं। लेकिन धीरे-धीरे भारतीय भी यूरोपीय स्थापत्य शैली के आदि हो गए और उन्होंने इसे अपना लिया। दूसरी तरफ़ अंग्रेज़ों ने अपनी ज़रूरतों के मुताबिक कुछ भारतीय शैलियों को अपना लिया। इसकी एक मिसाल उन बंगलों को माना जा सकता है जिन्हें बम्बई और पूरे देश में सरकारी अफ़सरों के लिए बनाया जाता था। इनके लिए अंग्रेज़ी का Bunglow शब्द बंगाल के 'बंगला' शब्द से निकला है जो एक परंपरागत फूँस की बनी झोंपड़ी होती थी। अंग्रेज़ों ने उसे अपनी ज़रूरतों के हिसाब से बदल लिया था। औपनिवेशिक बंगला एक बड़ी ज़मीन पर बना होता था। उसमें रहने वालों को न केवल प्राइवेसी मिलती थी बल्कि उनके और भारतीय जगत के बीच फ़ासला भी स्पष्ट हो जाता था। परंपरागत ढलवाँ छत और चारों तरफ़ बना बरामदा बंगले को ठंडा रखता था। बंगले के परिसर में घरेलू नौकरों के लिए अलग से क्वार्टर होते थे। सिविल लाइन्स में बने इस तरह के बंगले एक ख़ालिस नस्ली गढ़ बन गए थे जिनमें

चित्र 12.23
बम्बई का एक बंगला, उन्नीसवीं शताब्दी

चित्र 12.24
बम्बई का टाउन हॉल जिसमें अब ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बॉम्बे का दफ़्तर है।

बीसवीं सदी की शुरुआत से ही बंगलों में ढलवाँ छतों (Pitched Roof) का चलन कम होने लगा था हालाँकि मकानों की सामान्य योजना में कोई बदलाव नहीं आया था।

शासक वर्ग भारतीयों के साथ रोज़ाना सामाजिक संबंधों के बिना आत्मनिर्भर जीवन जी सकते थे।

सार्वजनिक भवनों के लिए मौटे तौर पर तीन स्थापत्य शैलियों का प्रयोग किया गया। दो शैलियाँ उस समय इंग्लैंड में प्रचलित चलन से आयातित थीं। इनमें से एक शैली को नवशास्त्रीय या नियोक्लासिकल शैली कहा जाता था। बड़े-बड़े स्तंभों के पीछे रेखागणितीय संरचनाओं का निर्माण इस शैली की विशेषता थी। यह शैली मूल रूप से प्राचीन रोम की भवन निर्माण शैली से निकली थी जिसे यूरोपीय पुनर्जागरण के दौरान पुनर्जीवित, संशोधित और लोकप्रिय किया गया। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के लिए उसे ख़ास तौर से अनुकूल माना जाता था। अंग्रेज़ों को लगता था कि जिस शैली में शाही रोम की भव्यता दिखाई देती थी उसे शाही भारत के वैभव की अभिव्यक्ति के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। इस स्थापत्य शैली के भूमध्यसागरीय उद्गम के कारण उसे उष्णकटिबंधीय मौसम के अनुकूल भी माना गया। 1833 में बम्बई का टाउन हॉल (चित्र 12.16) इसी शैली के अनुसार बनाया गया था। 1860 के दशक में सूती कपड़ा उद्योग की तेजी के समय बनाई गयी बहुत सारी व्यावसायिक इमारतों के समूह को एल्फ़िंस्टन सर्कल कहा जाता था। बाद में इसका नाम बदलकर हॉर्निमान सर्कल रख दिया गया था। यह नाम भारतीय राष्ट्रवादियों की हिमायत करने वाले एक अंग्रेज़ संपादक के नाम पर पड़ा था। यह इमारत इटली की इमारतों से प्रेरित थी। इसमें पहली मंज़िल पर ढके हुए तोरणपथ (Arcade) का रचनात्मक ढंग से इस्तेमाल किया गया। दुकानदारों व पैदल चलने वालों को तेज़ धूप और बरसात से बचाने के लिए यह सुधार काफ़ी उपयोगी था।

चित्र 12.25
ऐल्फ़िंस्टन सर्कल
यहाँ आप ग्रीको-रोमन स्थापत्य शैली से प्रभावित स्तंभों और मेहराबों को देखिए।

एक और शैली जिसका काफ़ी इस्तेमाल किया गया वह नव-गॉथिक शैली थी। ऊँची उठी हुई छतें, नोकदार मेहराबें और बारीक साज-सज्जा इस शैली की खासियत होती है। गॉथिक शैली का जन्म इमारतों, ख़ासतौर से गिरजों से हुआ था जो मध्यकाल में उत्तरी यूरोप में काफ़ी बनाए गए। नव-गॉथिक शैली को इंग्लैंड में उन्नीसवीं सदी के मध्य में दोबारा अपनाया गया। यह वही समय था जब बम्बई में सरकार बुनियादी ढाँचे का निर्माण कर रही थी। उसके लिए यही शैली चुनी गई। सचिवालय, बम्बई विश्वविद्यालय और उच्च न्यायालय जैसी कई शानदार इमारतें समुद्र किनारे इसी शैली में बनाई गईं।

इनमें से कुछ इमारतों के लिए भारतीयों ने पैसा दिया था। यूनिवर्सिटी हॉल के लिए सर कोवासजी जहाँगीर रेडीमनी ने पैसा दिया था जो एक अमीर पारसी व्यापारी थे। यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी के घंटाघर का निर्माण प्रेमचंद रॉयचंद के पैसे से किया गया था और इसका नाम उनकी माँ के नाम पर राजाबाई टावर रखा गया था। भारतीय व्यापारियों को नव-गॉथिक शैली इसलिए रास आती थी क्योंकि उनका मानना था कि अंग्रेज़ों द्वारा लाए गए बहुत सारे विचारों की तरह उनकी भवन निर्माण शैलियाँ भी प्रगतिशील थीं और उनके कारण बम्बई को एक आधुनिक शहर बनाने में मदद मिलेगी।

लेकिन नव-गॉथिक शैली का सबसे बेहतरीन उदाहरण विक्टोरिया टर्मिनस है जो ग्रेट इंडियन पेनिन्स्युलर रेलवे कंपनी का स्टेशन और मुख्यालय हुआ करता था। अंग्रेज़ों ने शहरों में रेलवे स्टेशनों के डिज़ाइन और निर्माण में काफ़ी निवेश किया

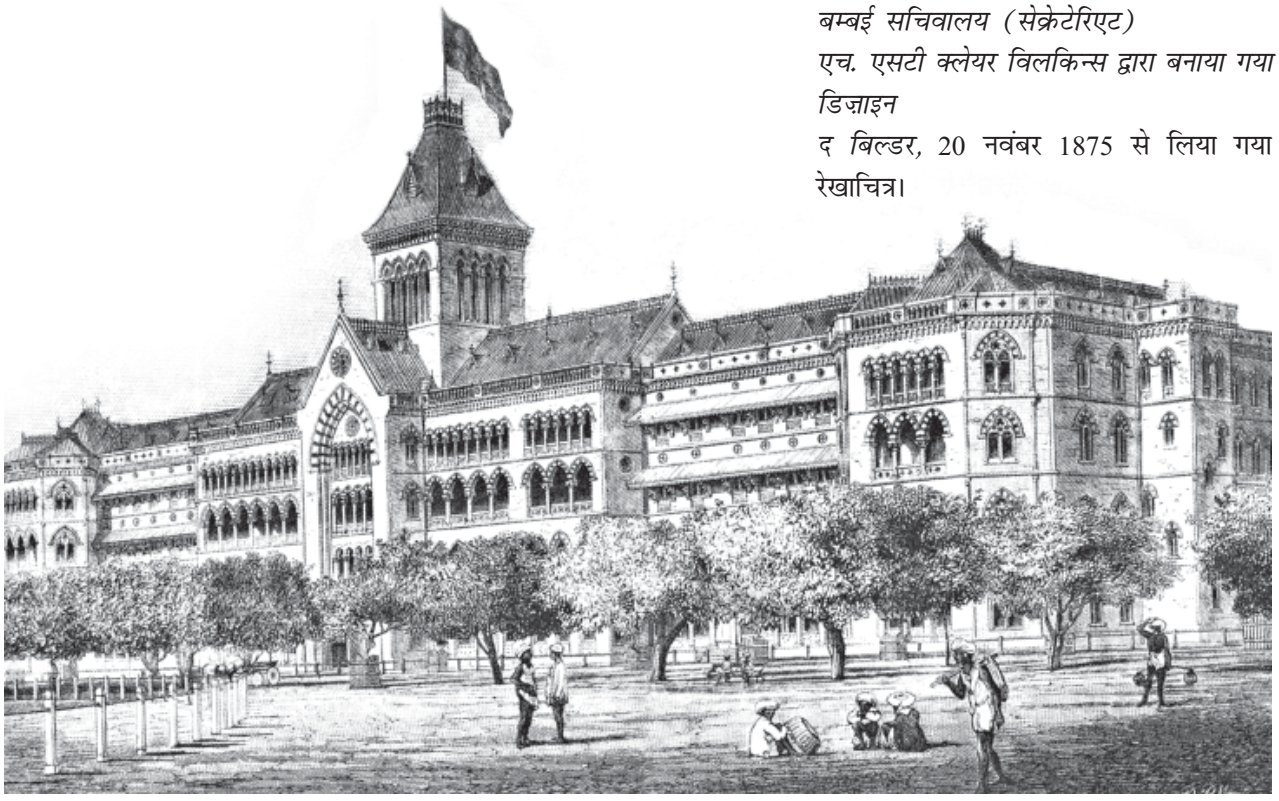

चित्र 12.26
बम्बई सचिवालय (सेक्रेटेरिएट)
एच. एसटी क्लेयर विलकिन्स द्वारा बनाया गया डिज़ाइन
द *बिल्डर*, 20 नवंबर 1875 से लिया गया रेखाचित्र।

चित्र 12.27
विक्टोरिया टर्मिनस रेलवे स्टेशन, एफ़. डब्ल्यू. स्टीवन्स द्वारा बनाया गया डिज़ाइन

चित्र 12.28
मद्रास लॉ कोर्ट्स (1889-1892)
बम्बई में गॉथिक शैली का चलन बढ़ता जा रहा था लेकिन मद्रास में इंडो-सारसेनिक शैली ही ज़्यादा फली-फूली। अदालत की इस इमारत के डिज़ाइन में पठान और गॉथिक, दोनों शैलियों के तत्व दिखाई देते हैं।

था क्योंकि वे एक अखिल भारतीय रेलवे नेटवर्क के सफल निर्माण को अपनी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानते थे। मध्य बम्बई के आसमान पर इन्हीं इमारतों का दबदबा था और उनकी नव-गॉथिक शैली शहर को एक विशिष्ट चरित्र प्रदान करती थी।

बीसवीं सदी की शुरुआत में एक नयी मिश्रित स्थापत्य शैली विकसित हुई जिसमें भारतीय और यूरोपीय, दोनों तरह की शैलियों के तत्व थे। इस शैली को इंडो-सारासेनिक शैली का नाम दिया गया था। "इंडो" शब्द "हिन्दू" का संक्षिप्त रूप था जबकि "सारासेन" शब्द का यूरोप के लोग मुसलमानों को संबोधित करने के लिए इस्तेमाल करते थे। यहाँ की मध्यकालीन इमारतों - गुम्बदों, छतरियों, जालियों, मेहराबों - से यह शैली काफ़ी प्रभावित थी। सार्वजनिक वास्तु शिल्प में भारतीय शैलियों का समावेश करके अंग्रेज़ यह साबित करना चाहते थे कि वे यहाँ के वैध और स्वाभाविक शासक हैं। राजा जॉर्ज पंचम और उनकी पत्नी मेरी के स्वागत के लिए 1911 में गेटवे ऑफ़ इंडिया बनाया गया। यह परंपरागत गुजराती शैली का प्रसिद्ध उदाहरण है। उद्योगपति जमशेदजी टाटा ने इसी शैली में ताजमहल होटल बनवाया था। यह इमारत न केवल भारतीय उद्यमशीलता का प्रतीक थी बल्कि अंग्रेज़ों के स्वामित्व और नियंत्रण वाले नस्ली क्लबों और होटलों के लिए एक चुनौती भी थी।

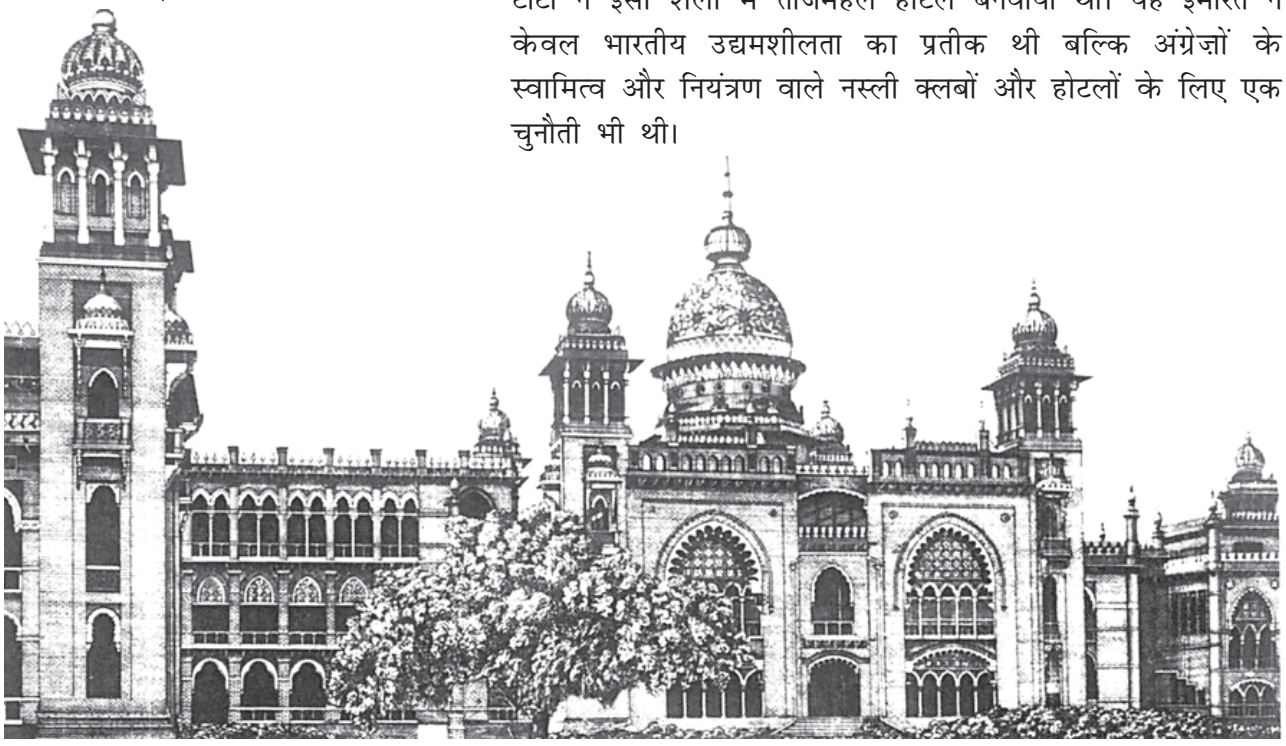

बम्बई के ज़्यादा "भारतीय" इलाकों में सजावट एवं भवन-निर्माण और साज-सज्जा में परंपरागत शैलियों का ही बोलबाला था। शहर में जगह की कमी और भीड़-भाड़ की वजह से बम्बई में ख़ास तरह की इमारतें भी सामने आईं जिन्हें *चॉल* का नाम दिया गया। ये बहुमंज़िला इमारतें होती थीं जिनमें एक-एक कमरे वाली आवासीय इकाइयाँ बनाई जाती थीं। इमारत के सारे कमरों के सामने एक खुला बरामदा या गलियारा होता था और बीच में दालान होता था। इस तरह की इमारतों में बहुत थोड़ी जगह में बहुत सारे परिवार रहते थे जिससे उनमें रहने वालों के बीच मोहल्ले की पहचान और एकजुटता का भाव पैदा हुआ।

5. इमारतें और स्थापत्य शैलियाँ क्या बताती हैं?

स्थापत्य शैलियों से अपने समय के सौंदर्यात्मक आदर्शों और उनमें निहित विविधताओं का पता चलता है। लेकिन, जैसा कि हमने देखा, इमारतें उन लोगों की सोच और नज़र के बारे में भी बताती हैं जो उन्हें बना रहे थे। इमारतों के ज़रिए सभी शासक अपनी ताकत का इज़हार करना चाहते हैं। इस प्रकार एक ख़ास वक़्त की स्थापत्य शैली को देखकर हम यह समझ सकते हैं कि उस समय सत्ता को किस तरह देखा जा रहा था और वह इमारतों और उनकी विशिष्टताओं – ईंट-पत्थर, खम्भे और मेहराब, आसमान छूते गुम्बद या उभरी हुई छतें – के ज़रिए किस प्रकार अभिव्यक्त होती थी।

स्थापत्य शैलियों से केवल प्रचलित रुचियों का ही पता नहीं चलता। वे उनको बदलती भी हैं। वे नयी शैलियों को लोकप्रियता प्रदान करती हैं और संस्कृति की रूपरेखा तय करती हैं। जैसा कि हमने देखा, बहुत सारे भारतीय भी यूरोपीय स्थापत्य शैलियों को आधुनिकता व सभ्यता का प्रतीक मानते हुए उन्हें अपनाने लगे थे। लेकिन इस बारे में सबकी राय एक जैसी नहीं थी। बहुत सारे भारतीयों को यूरोपीय आदर्शों से आपत्ति थी और उन्होंने देशी शैलियों को बचाए रखने का प्रयास किया। बहुतों ने पश्चिम के कुछ ऐसे ख़ास तत्वों को अपना लिया जो उन्हें आधुनिक दिखाई देते थे और उन्हें स्थानीय परंपराओं के तत्वों में समाहित कर दिया। उन्नीसवीं सदी के आख़िर से हमें औपनिवेशिक आदर्शों से भिन्न क्षेत्रीय और राष्ट्रीय अभिरुचियों को परिभाषित करने के प्रयास दिखाई देते हैं। इस तरह सांस्कृतिक टकराव की वृहत्तर प्रक्रियाओं के ज़रिए विभिन्न शैलियाँ बदलती और विकसित होती गईं। इसलिए स्थापत्य शैलियों को देखकर हम इस बात को भी समझ सकते हैं कि शाही और राष्ट्रीय, तथा राष्ट्रीय और क्षेत्रीय/स्थानीय के बीच सांस्कृतिक टकराव और राजनीतिक खींचतान किस तरह शक्ल ले रही थी।

चित्र 12.29
ताजमहल होटल

चित्र 12.30
बम्बई की एक चॉल

➲ चर्चा कीजिए...

किसी ऐसी ऐतिहासिक इमारत को चुनिए जो आपको बहुत पसंद है। उसकी वास्तुशिल्पीय विशेषताओं की सूची बनाइए और उसकी शैली के बारे में पता कीजिए। विचार कीजिए कि उसके लिए वही ख़ास शैली क्यों चुनी गई।

काल-रेखा

1500–1700	यूरोपीय व्यापारिक कंपनियाँ भारत में अपने ठिकाने स्थापित करती हैं। पणजी में पुर्तगाली (1510); मछलीपटनम में डच (1605); मद्रास (1639), बम्बई (1661) और कलकत्ता (1690) में अंग्रेज़ तथा पांडिचेरी (1673) में फ्रांसीसी अपने ठिकाने बनाते हैं।
1757	प्लासी के युद्ध में अंग्रेज़ों की निर्णायक जीत होती है। वे बंगाल के शासक हो जाते हैं।
1773	ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा कलकत्ता में सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना
1803	कलकत्ता नगर सुधार पर लॉर्ड वेलेज़्ली द्वारा लिखित मिनट्स
1818	दक्कन पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा, बम्बई को नए प्रांत की राजधानी बनाया जाता है
1853	बम्बई से ठाणे तक रेल लाइन बिछाई जाती है
1857	बम्बई में पहली स्पिनिंग और वीविंग मिल की स्थापना
1857	बम्बई, मद्रास और कलकत्ता में विश्वविद्यालयों की स्थापना
1870 का दशक	नगर पालिकाओं में निर्वाचित प्रतिनिधियों को शामिल किया जाने लगा
1881	मद्रास हार्बर का निर्माण पूरा हुआ
1896	बम्बई के वाटसन्स होटल में पहली बार फ़िल्म दिखाई गई
1896	बड़े शहरों में प्लेग फैलने लगता है
1911	कलकत्ता की जगह दिल्ली को राजधानी बनाया जाता है

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. औपनिवेशिक शहरों में रिकॉर्ड्स सँभाल कर क्यों रखे जाते थे?
2. औपनिवेशिक संदर्भ में शहरीकरण के रुझानों को समझने के लिए जनगणना संबंधी आंकड़े किस हद तक उपयोगी होते हैं।
3. "व्हाइट" और "ब्लैक" टाउन शब्दों का क्या महत्व था?
4. प्रमुख भारतीय व्यापारियों ने औपनिवेशिक शहरों में खुद को किस तरह स्थापित किया?
5. औपनिवेशिक मद्रास में शहरी और ग्रामीण तत्व किस हद तक घुल-मिल गए थे?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250 से 300 शब्दों में)

6. अठारहवीं सदी में शहरी केंद्रों का रूपांतरण किस तरह हुआ?
7. औपनिवेशिक शहर में सामने आने वाले नए तरह के सार्वजनिक स्थान कौन से थे? उनके क्या उद्देश्य थे?
8. उन्नीसवीं सदी में नगर-नियोजन को प्रभावित करने वाली चिंताएँ कौन सी थीं?
9. नए शहरों में सामाजिक संबंध किस हद तक बदल गए?

मानचित्र कार्य

10. भारत के नक़्शे पर मुख्य नदियों और पर्वत शृंखलाओं को पारदर्शी काग़ज लगा कर रेखांकित करें। बम्बई, कलकत्ता और मद्रास सहित इस अध्याय में उल्लिखित दस शहरों को चिह्नित कीजिए और उनमें से किन्हीं दो शहरों के बारे में संक्षेप में लिखिए कि उन्नीसवीं सदी के दौरान उनका महत्त्व किस तरह बदल गया (इनमें से एक औपनिवेशिक शहर तथा दूसरा उससे पहले का शहर होना चाहिए)।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. पता लगाइए कि आपके कस्बे या गाँव में स्थानीय प्रशासन कौन सी सेवाएँ प्रदान करता है। क्या जलापूर्ति, आवास, यातायात और स्वास्थ्य एवं स्वच्छता आदि सेवाएँ भी उनके हिस्से में आती हैं? इन सेवाओं के लिए संसाधनों की व्यवस्था कैसे की जाती है? नीतियाँ कैसे बनाई जाती हैं? क्या शहरी मज़दूरों या ग्रामीण इलाक़ों के खेतिहर मज़दूरों के पास नीति-निर्धारण में हस्तक्षेप का अधिकार होता है? क्या उनसे राय ली जाती है? अपने निष्कर्षों के आधार पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।
12. अपने शहर या गाँव में पाँच तरह की इमारतों को चुनिए। प्रत्येक के बारे में पता लगाइए कि उन्हें कब बनाया गया, उनको बनाने का फैसला क्यों लिया गया, उनके लिए संसाधनों की व्यवस्था कैसे की गई, उनके निर्माण का ज़िम्मा किसने उठाया और उनके निर्माण में कितना समय लगा। उन इमारतों के स्थापत्य या वास्तु शैली संबंधी आयामों का वर्णन करिए और औपनिवेशिक स्थापत्य से उनकी समानताओं या भिन्नताओं को चिह्नित कीजिए।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

सब्यसाची भट्टाचार्य, 1990
आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

नॉर्मा इंवेंसन, 1989
दि इंडियन मेट्रोपोलिस : ए व्यू टुवर्ड्स द वेस्ट, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

नारायणी गुप्ता, 1981
डेल्ही बिटवीन टू एम्पायर्स 1803-1931, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली

तपन रॉयचौधरी एवं इरफ़ान हबीब द्वारा संपादित *द कैंब्रिज इकॉनमिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* (खंड-1), 1984 में गेविन हेम्बली एवं बर्टन स्टीन द्वारा लिखित अध्याय "*टाउन्स ऐण्ड सिटीज़*", ऑरिऐंट लॉंगमेन एवं कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

एंथनी किंग, 1976
कॉलोनियल अर्बन डिवेलपमेंट : कल्चर, सोशल पावर एंड एनवारनमेंट, रटलेज एंड किगेन पॉल, लंदन

टॉमस आर. मेटकाफ़, 1989
एन इम्पीरियल विजन : इंडियन आर्किटेक्चर एंड ब्रिटेन्स राज, फ़ेबर एंड फ़ेबर, लंदन

लुईस मम्फ़ोर्ड, 1961
द सिटी इन हिस्ट्री : इट्स ओरिजिन्स, इट्स ट्रांसफॉर्मेशन्स एंड इट्स प्रोस्पैक्ट्स, सेकर एंड वारबुर्ग, लंदन

अध्याय तेरह

महात्मा गाँधी और राष्ट्रीय आंदोलन
सविनय अवज्ञा और उससे आगे

राष्ट्रवाद के इतिहास में प्राय: एक अकेले व्यक्ति को राष्ट्र-निर्माण के साथ जोड़कर देखा जाता है। उदाहरण के लिए, हम इटली के निर्माण के साथ गैरीबाल्डी को, अमेरिकी स्वतंत्रता युद्ध के साथ जॉर्ज वाशिंगटन को और वियतनाम को औपनिवेशिक शासन से मुक्त कराने के संघर्ष से हो ची मिन्ह को जोड़कर देखते हैं। इसी तरह महात्मा गाँधी को भारतीय राष्ट्र का 'पिता' माना गया है।

चूँकि गाँधी जी स्वतंत्रता संघर्ष में भाग लेने वाले सभी नेताओं में सर्वाधिक प्रभावशाली और सम्मानित हैं अत: उन्हें दिया गया उपर्युक्त विशेषण गलत नहीं है। हालाँकि, वाशिंगटन अथवा हो ची मिन्ह की तरह महात्मा गाँधी का राजनीतिक जीवन-वृत्त उस समाज ने ही सँवारा और नियंत्रित किया, जिस समाज में वे रहते थे। कोई व्यक्ति चाहे कितना ही महान क्यों न हो वह न केवल इतिहास बनाता है बल्कि स्वयं भी इतिहास द्वारा बनाया जाता है।

इस अध्याय में 1915-1948 के महत्त्वपूर्ण काल के दौरान भारत में गाँधी जी की गतिविधियों का विश्लेषण किया गया है। यह भारतीय समाज के विभिन्न हिस्सों के साथ उनके संपर्कों और उनके द्वारा प्रेरित तथा नेतृत्व किए गए लोकप्रिय संघर्षों की छान-बीन करता है। यह अध्याय विद्यार्थी के समक्ष उन अलग-अलग प्रकार के स्रोतों को भी रखता है जिनका इस्तेमाल, इतिहासकार एक नेता के जीवन-वृत्त तथा वह जिन सामाजिक आंदोलनों से जुड़ा रहा है, के पुनर्निर्माण में करते हैं।

चित्र 13.1
मार्च 1930 में नमक यात्रा शुरू करने से पूर्व साबरमती नदी के किनारे अपने आश्रम के निकट समर्थकों से बात करते महात्मा गाँधी।

1. स्वयं की उद्घोषणा करता एक नेता

मोहनदास करमचंद गाँधी विदेश में दो दशक रहने के बाद जनवरी 1915 में अपनी गृहभूमि वापस आए। इन वर्षों का अधिकांश हिस्सा उन्होंने दक्षिण अफ़्रीका में बिताया। यहाँ वे एक वकील के रूप में गए थे और बाद में वे इस क्षेत्र के भारतीय समुदाय के नेता बन गए। जैसाकि इतिहासकार चंद्रन देवनेसन ने टिप्पणी की है कि दक्षिण अफ़्रीका ने ही गाँधी जी को 'महात्मा' बनाया। दक्षिण अफ़्रीका में ही महात्मा गाँधी ने पहली बार सत्याग्रह के रूप में जानी गई अहिंसात्मक विरोध की अपनी विशिष्ट तकनीक का इस्तेमाल किया, विभिन्न धर्मों के बीच सौहार्द बढ़ाने का प्रयास किया तथा उच्च जातीय भारतीयों को निम्न जातियों और महिलाओं के प्रति भेदभाव वाले व्यवहार के लिए चेतावनी दी।

1915 में जब महात्मा गाँधी भारत आए तो उस समय का भारत 1893 में जब वे यहाँ से गए थे तब के समय से अपेक्षाकृत भिन्न था। यद्यपि यह अभी भी एक ब्रिटिश उपनिवेश था लेकिन अब यह राजनीतिक दृष्टि से कहीं अधिक सक्रिय हो गया था। अधिकांश प्रमुख शहरों और कस्बों में अब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की शाखाएँ थीं। 1905-07 के स्वदेशी आंदोलन के माध्यम से इसने व्यापक रूप से मध्य वर्गों के बीच अपनी अपील का विस्तार कर लिया था। इस आंदोलन ने कुछ प्रमुख नेताओं को जन्म दिया, जिनमें महाराष्ट्र के बाल गंगाधर तिलक, बंगाल के विपिन चंद्र पाल और पंजाब के लाला लाजपत राय हैं। ये तीनों 'लाल, बाल और पाल' के रूप में जाने जाते थे। इन तीनों का यह जोड़ उनके संघर्ष के अखिल भारतीय चरित्र की सूचना देता था क्योंकि तीनों के मूल निवास क्षेत्र एक दूसरे से बहुत दूर थे। इन नेताओं ने जहाँ औपनिवेशिक शासन के प्रति लड़ाकू विरोध का समर्थन किया वहीं 'उदारवादियों' का एक समूह था जो एक क्रमिक व लगातार प्रयास करते रहने के विचार का हिमायती था। इन उदारवादियों में गाँधी जी के मान्य राजनीतिक परामर्शदाता गोपाल कृष्ण गोखले के साथ ही मोहम्मद अली जिन्ना थे, जो गाँधी जी की ही तरह गुजराती मूल के लंदन में प्रशिक्षित वकील थे।

गोखले ने गाँधी जी को एक वर्ष तक ब्रिटिश भारत की यात्रा करने की सलाह दी जिससे कि वे इस भूमि और इसके लोगों को जान सकें। उनकी

चित्र 13.2
दक्षिण अफ़्रीका के जोहेन्सबर्ग़ में महात्मा गाँधी, फरवरी 1908

पहली महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक उपस्थिति फरवरी 1916 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह में हुई। इस समारोह में आमंत्रित व्यक्तियों में वे राजा और मानवप्रेमी थे जिनके द्वारा दिए गए दान ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना में योगदान दिया। समारोह में एनी बेसेंट जैसे कांग्रेस के कुछ महत्त्वपूर्ण नेता भी उपस्थित थे। इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों की तुलना में गाँधी जी अपेक्षाकृत अज्ञात थे। उन्हें यहाँ भारत के अंदर उनकी प्रतिष्ठा के कारण नहीं बल्कि दक्षिण अफ्रीका में उनके द्वारा किए गए कार्य के आधार पर आमंत्रित किया गया था।

जब गाँधी जी की बोलने की बारी आई तो उन्होंने मज़दूर गरीबों की ओर ध्यान न देने के कारण भारतीय विशिष्ट वर्ग को आड़े हाथों लिया। उन्होंने कहा कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना 'निश्चय ही अत्यंत शानदार' है किंतु उन्होंने वहाँ धनी व सजे-सँवरे भद्रजनों की उपस्थिति और 'लाखों गरीब' भारतीयों की अनुपस्थिति के बीच की विषमता पर अपनी चिंता प्रकट की। गाँधी जी ने विशेष सुविधा प्राप्त आमंत्रितों से कहा कि 'भारत के लिए मुक्ति तब तक संभव नहीं है जब तक कि आप अपने को इन अलंकरणों से मुक्त न कर लें और इन्हें भारत के अपने हमवतनों की भलाई में न लगा दें'। वे कहते गए कि, 'हमारे लिए स्वशासन का तब तक कोई अभिप्राय नहीं है जब तक हम किसानों से उनके श्रम का लगभग सम्पूर्ण लाभ स्वयं अथवा अन्य लोगों को ले लेने की अनुमति देते रहेंगे। हमारी मुक्ति केवल किसानों के माध्यम से ही हो सकती है। न तो वकील, न डॉक्टर, न ही ज़मींदार इसे सुरक्षित रख सकते हैं।' बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना एक उत्सव का अवसर था क्योंकि यह भारतीय धन और भारतीय प्रयासों से संभव एक राष्ट्रवादी विश्वविद्यालय की स्थापना का द्योतक था। लेकिन गाँधी जी ने स्वयं को बधाई देने के सुर में सुर मिलाने की अपेक्षा लोगों को उन किसानों और कामगारों की याद दिलाना चुना जो भारतीय जनसंख्या के अधिसंख्य हिस्से का निर्माण करने के बावजूद वहाँ श्रोताओं में अनुपस्थित थे।

चित्र 13.3
करांची में महात्मा गाँधी, मार्च 1916

एक दृष्टि से फरवरी 1916 में बनारस में गाँधी जी का भाषण मात्र वास्तविक तथ्य का ही उद्घाटन था

अर्थात भारतीय राष्ट्रवाद वकीलों, डॉक्टरों और ज़मींदारों जैसे विशिष्ट वर्गों द्वारा निर्मित था। लेकिन दूसरी दृष्टि से देखा जाए तो यह वक्तव्य उनकी मंशा भी जाहिर करता था। यह भारतीय राष्ट्रवाद को सम्पूर्ण भारतीय लोगों का और अधिक अच्छे ढंग से प्रतिनिधित्व करने में सक्षम बनाने की गाँधी जी की स्वयं की इच्छा की प्रथम सार्वजनिक उद्घोषणा थी।

उसी वर्ष के अंतिम माह में गाँधी जी को अपने नियमों को व्यवहार में लाने का अवसर मिला। दिसम्बर 1916 में लखनऊ में हुई वार्षिक कांग्रेस में बिहार में चंपारन से आए एक किसान ने उन्हें वहाँ अंग्रेज़ नील उत्पादकों द्वारा किसानों के प्रति किए जाने वाले कठोर व्यवहार के बारे में बताया।

➲ चर्चा कीजिए...

1915 से पूर्व भारत में हुए राष्ट्रीय आंदोलनों के बारे में और जानकारी इकट्ठा कीजिए व पता लगाइए कि क्या महात्मा गाँधी की टिप्पणियाँ न्यायसंगत हैं।

2. असहयोग की शुरुआत और अंत

1917 का अधिकांश समय महात्मा गाँधी को किसानों के लिए काश्तकारी की सुरक्षा के साथ-साथ अपनी पसंद की फ़सल उपजाने की आज़ादी दिलाने में बीता। अगले वर्ष यानी 1918 में गाँधी जी गुजरात के अपने गृह राज्य में दो अभियानों में संलग्न रहे। सबसे पहले उन्होंने अहमदाबाद के एक श्रम विवाद में हस्तक्षेप कर कपड़े की मिलों में काम करने वालों के लिए काम करने की बेहतर स्थितियों की माँग की। इसके बाद उन्होंने खेड़ा में फ़सल चौपट होने पर राज्य से किसानों का लगान माफ़ करने की माँग की।

चंपारन, अहमदाबाद और खेड़ा में की गई पहल से गाँधी जी एक ऐसे राष्ट्रवादी के रूप में उभरे जिनमें गरीबों के लिए गहरी सहानुभूति थी। इसी तरह ये सभी स्थानिक संघर्ष थे। इसके बाद 1919 में औपनिवेशिक शासकों ने गाँधी जी की झोली में एक ऐसा मुद्दा डाल दिया जिससे वे कहीं अधिक विस्तृत आंदोलन खड़ा कर सकते थे। 1914-18 के महान युद्ध के दौरान अंग्रेज़ों ने प्रेस पर प्रतिबंध लगा दिया था और बिना जाँच के कारावास की अनुमति दे दी थी। अब सर सिडनी रॉलेट की अध्यक्षता वाली एक समिति की संस्तुतियों के आधार पर इन कठोर उपायों को जारी रखा गया। इसके जवाब में गाँधी जी ने देशभर में 'रॉलेट एक्ट' के खिलाफ एक अभियान चलाया। उत्तरी और पश्चिमी भारत के कस्बों में चारों तरफ बंद के समर्थन में दुकानों और स्कूलों के बंद होने के कारण जीवन लगभग ठहर सा गया था। पंजाब में, विशेष रूप से कड़ा विरोध हुआ, जहाँ के बहुत से लोगों ने युद्ध में अंग्रेज़ों के पक्ष में सेवा की थी और अब अपनी सेवा के बदले वे ईनाम की अपेक्षा कर रहे थे। लेकिन इसकी जगह उन्हें रॉलेट एक्ट दिया गया। पंजाब जाते समय गाँधी जी को क़ैद कर लिया गया। स्थानीय कांग्रेसजनों को गिरफ़्तार कर लिया गया था। प्रांत की यह स्थिति धीरे-धीरे और

तनावपूर्ण हो गई तथा अप्रैल 1919 में अमृतसर में यह खूनखराबे के चरमोत्कर्ष पर ही पहुँच गई। जब एक अंग्रेज़ ब्रिगेडियर ने एक राष्ट्रवादी सभा पर गोली चलाने का हुक्म दिया तब जलियाँवाला बाग हत्याकांड के नाम से जाने गए इस हत्याकांड में चार सौ से अधिक लोग मारे गए।

रॉलेट सत्याग्रह से ही गाँधी जी एक सच्चे राष्ट्रीय नेता बन गए। इसकी सफलता से उत्साहित होकर गाँधी जी ने अंग्रेज़ी शासन के खिलाफ 'असहयोग' अभियान की माँग कर दी। जो भारतीय उपनिवेशवाद का ख़ात्मा करना चाहते थे उनसे आग्रह किया गया कि वे स्कूलों, कॉलेज़ों और न्यायालय न जाएँ तथा कर न चुकाएँ। संक्षेप में सभी को अंग्रेज़ी सरकार के साथ (सभी) ऐच्छिक संबंधों के परित्याग का पालन करने को कहा गया। गाँधी जी ने कहा कि यदि असहयोग का ठीक ढंग से पालन किया जाए तो भारत एक वर्ष के भीतर स्वराज प्राप्त कर लेगा। अपने संघर्ष का और विस्तार करते हुए उन्होंने खिलाफ़त आंदोलन के साथ हाथ मिला लिए जो हाल ही में तुर्की शासक कमाल अतातुर्क द्वारा समाप्त किए गए सर्व-इस्लामवाद के प्रतीक खलीफा की पुनर्स्थापना की माँग कर रहा था।

2.1 एक लोकप्रिय आंदोलन की तैयारी

गाँधी जी ने यह आशा की थी कि असहयोग को खिलाफत के साथ मिलाने से भारत के दो प्रमुख धार्मिक समुदाय- हिंदू और मुसलमान मिलकर औपनिवेशिक शासन का अंत कर देंगे। इन आंदोलनों ने निश्चय ही एक लोकप्रिय कार्रवाही के बहाव को उन्मुक्त कर दिया था और ये चीज़ें औपनिवेशिक भारत में बिलकुल ही अभूतपूर्व थीं।

विद्यार्थियों ने सरकार द्वारा चलाए जा रहे स्कूलों और कॉलेजों में जाना छोड़ दिया। वकीलों ने अदालत में जाने से मना कर दिया। कई कस्बों और नगरों में श्रमिक-वर्ग हड़ताल पर चला गया। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक 1921 में 396 हड़तालें हुई जिनमें 6 लाख श्रमिक शामिल थे और इससे 70 लाख कार्यदिवसों का नुकसान हुआ था। देहात भी असंतोष से आंदोलित हो रहा था। उत्तरी आंध्र की पहाड़ी जनजातियों ने वन्य कानूनों की अवहेलना कर दी। अवध के किसानों ने कर नहीं चुकाए। कुमाऊँ के किसानों ने औपनिवेशिक अधिकारियों का सामान ढोने से मना कर दिया। इन विरोध आंदोलनों को कभी-कभी स्थानीय राष्ट्रवादी नेतृत्व की अवज्ञा करते हुए कार्यान्वयित किया गया। किसानों, श्रमिकों और अन्य ने इसकी अपने ढंग से व्याख्या की तथा औपनिवेशिक शासन के साथ 'असहयोग' के लिए उन्होंने ऊपर से प्राप्त निर्देशों पर टिके रहने के बजाय अपने हितों से मेल खाते तरीकों का इस्तेमाल कर कार्रवाही की।

महात्मा गाँधी के अमरीकी जीवनी-लेखक लुई फिशर ने लिखा है कि 'असहयोग भारत और गाँधी जी के जीवन के एक युग का ही नाम

खिलाफ़त आंदोलन क्या था?

खिलाफ़त आंदोलन (1919-1920) मुहम्मद अली और शौकत अली के नेतृत्व में भारतीय मुसलमानों का एक आंदोलन था। इस आंदोलन की निम्नलिखित माँगें थीं- पहले के ऑटोमन साम्राज्य के सभी इस्लामी पवित्र स्थानों पर तुर्की सुल्तान अथवा खलीफ़ा का नियंत्रण बना रहे, जज़ीरात-उल-अरब (अरब, सीरिया, इराक, फिलिस्तीन) इस्लामी सम्प्रभुता के अधीन रहें तथा खलीफ़ा के पास इतने क्षेत्र हों कि वह इस्लामी विश्वास को सुरक्षित करने के योग्य बन सके। कांग्रेस ने इस आंदोलन का समर्थन किया और गाँधी जी ने इसे असहयोग आंदोलन के साथ मिलाने की कोशिश की।

हो गया। असहयोग शांति की दृष्टि से नकारात्मक किंतु प्रभाव की दृष्टि से बहुत सकारात्मक था। इसके लिए प्रतिवाद, परित्याग और स्व-अनुशासन आवश्यक थे। यह स्वशासन के लिए एक प्रशिक्षण था।' 1857 के विद्रोह के बाद पहली बार असहयोग आंदोलन के परिणामस्वरूप अंग्रेज़ी राज की नींव हिल गई। फरवरी 1922 में किसानों के एक समूह ने संयुक्त प्रांत के चौरी-चौरा पुरवा में एक पुलिस स्टेशन पर आक्रमण कर उसमें आग लगा दी। इस अग्निकांड में कई पुलिस वालों की जान चली गई। हिंसा की इस कार्यवाही से गाँधी जी को यह आंदोलन तत्काल वापस लेना पड़ा। उन्होंने ज़ोर दिया कि, 'किसी भी तरह की उत्तेजना को निहत्थे और एक तरह से भीड़ की दया पर निर्भर व्यक्तियों की घृणित हत्या के आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सकता है'।

चित्र 13.4
असहयोग आंदोलन, 1922
विदेशी वस्त्रों को इकट्ठा किया जा रहा है ताकि उन्हें आग में जलाया जा सके।

असहयोग आंदोलन के दौरान हज़ारों भारतीयों को जेल में डाल दिया गया। स्वयं गाँधी जी को मार्च 1922 में राजद्रोह के आरोप में गिरफ़्तार कर लिया गया। उन पर जाँच की कार्रवाही की अध्यक्षता करने वाले जज जस्टिस सी. एन. ब्रूमफील्ड ने उन्हें सजा सुनाते समय एक महत्त्वपूर्ण भाषण दिया। जज ने टिप्पणी की कि, "इस तथ्य को नकारना असंभव होगा कि मैने आज तक जिनकी जाँच की है अथवा करूँगा आप उनसे भिन्न श्रेणी के हैं। इस तथ्य को नकारना असंभव होगा कि आपके लाखों देशवासियों की दृष्टि में आप एक महान देशभक्त और नेता हैं। यहाँ तक कि राजनीति में जो लोग आपसे भिन्न मत रखते हैं वे भी आपको उच्च आदर्शों और पवित्र जीवन वाले व्यक्ति के रूप में देखते हैं। चूँकि गाँधी जी ने कानून की अवहेलना की थी अत: उस न्याय पीठ के लिए गाँधी जी को 6 वर्षों की जेल की सजा सुनाया जाना आवश्यक था। लेकिन जज ब्रूमफील्ड ने कहा कि 'यदि भारत में घट रही घटनाओं की वजह से सरकार के लिए सज़ा के इन वर्षों में कमी और आपको मुक्त करना संभव हुआ तो इससे मुझसे ज़्यादा कोई प्रसन्न नहीं होगा"।

2.2 जन नेता

1922 तक गाँधी जी ने भारतीय राष्ट्रवाद को एकदम परिवर्तित कर दिया और इस प्रकार फरवरी 1916 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में अपने भाषण में किए गए वायदे को उन्होंने पूरा किया। अब यह व्यावसायिकों व बुद्धिजीवियों का ही आंदोलन नहीं रह गया था, अब

हज़ारों की संख्या में किसानों, श्रमिकों और कारीगरों ने भी इसमें भाग लेना शुरू कर दिया। इनमें से कई गाँधी जी के प्रति आदर व्यक्त करते हुए उन्हें अपना 'महात्मा' कहने लगे। उन्होंने इस बात की प्रशंसा की कि गाँधी जी उनकी ही तरह के वस्त्र पहनते थे, उनकी ही तरह रहते थे और उनकी ही भाषा में बोलते थे। अन्य नेताओं की तरह वे सामान्य जनसमूह से अलग नहीं खड़े होते थे बल्कि वे उनसे समानुभूति रखते तथा उनसे घनिष्ठ संबंध भी स्थापित कर लेते थे।

सामान्य जन के साथ इस तरह की पहचान उनके वस्त्रों में विशेष रूप से परिलक्षित होती थी। जहाँ अन्य राष्ट्रवादी नेता पश्चिमी शैली के सूट अथवा भारतीय बंदगला जैसे औपचारिक वस्त्र पहनते थे वहीं गाँधी जी लोगों के बीच एक साधारण धोती में जाते थे। इस बीच, प्रत्येक दिन का कुछ हिस्सा वे चरखा चलाने में बिताते थे। अन्य राष्ट्रवादियों को भी उन्होंने ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित किया। सूत कताई के कार्य ने गाँधी जी को पारंपरिक जाति व्यवस्था में प्रचलित मानसिक श्रम और शारीरिक श्रम की दीवार को तोड़ने में मदद दी।

चित्र 13.5
चरखे के साथ महात्मा गाँधी भारतीय राष्ट्रवाद की सर्वाधिक स्थायी पहचान बन गए।

1921 में दक्षिण भारत की यात्रा के दौरान गाँधी जी ने अपना सिर मुँडवा लिया और गरीबों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करने के लिए उन्होंने सूती वस्त्र पहनना आरंभ कर दिया। उनका यह नया रूप तपस्या और संयम का प्रतीक भी बना और ये ऐसी विशेषताएँ थीं जिनका गाँधी जी, आधुनिक विश्व की उपभोक्तवादी संस्कृति के प्रतिउत्तर में, गुणगान करते थे।

स्रोत 1

चरखा

महात्मा गाँधी आधुनिक युग, जिसमें मशीनों ने मानव को गुलाम बनाकर श्रम को हटा दिया था, के घोर आलोचक थे। उन्होंने चरखा को एक ऐसे, मानव समाज के प्रतीक रूप में देखा, जिसमें मशीनों और प्रौद्योगिकी को बहुत महिमामंडित नहीं किया जाएगा। इससे भी अधिक चरखा गरीबों को पूरक आमदनी प्रदान कर सकता था तथा उन्हें स्वावलम्बी बना सकता था।

चित्र 13.5

मेरी आपत्ति मशीन के प्रति सनक से है। यह सनक श्रम बचाने वाली मशीनरी के लिए है। ये तब तक 'श्रम बचाते' रहेंगे जब तक कि हज़ारों लोग बिना काम के और भूख से मरने के लिए सड़कों पर न फेंक दिए जाएँ। मैं मानव समुदाय के किसी एक हिस्से के लिए नहीं बल्कि सभी के लिए समय और श्रम बचाना चाहता हूँ : मैं धन का केंद्रीकरण कुछ ही लोगों के हाथों में नहीं बल्कि सभी के हाथों में करना चाहता हूँ।

यंग इंडिया, 13 नवंबर 1924

खद्दर मशीनरी को नष्ट नहीं करना चाहता बल्कि यह इसके प्रयोग को नियमित करता है और इसके विकास को नियंत्रित करता है। यह मशीनरी का प्रयोग सर्वाधिक ग़रीब लोगों के लिए उनकी अपनी झोपड़ियों में करता है। पहिया अपने आप में ही मशीनरी का एक उत्कृष्ट नमूना है।

यंग इंडिया, 17 मार्च 1927

इतिहासकार शाहिद अमीन ने एक मंत्रमुग्ध कर देने वाले अध्ययन में स्थानीय प्रेस द्वारा ज्ञात रिपोर्टों और अफवाहों के ज़रिए पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसानों के मन में महात्मा गाँधी की जो कल्पना थी, उसे ढूँढ़ निकालने की कोशिश की है। फरवरी 1921 में जब वे इस क्षेत्र से गुजर रहे थे तो हर जगह भीड़ ने उनका बड़े प्यार से स्वागत किया।

उनके भाषणों के दौरान कैसा माहौल होता था इस पर गोरखपुर के एक हिंदी समाचारपत्र ने यह रिपोर्ट लिखी है:

> भटनी में गाँधी जी ने स्थानीय जनता को संबोधित किया और इसके बाद ट्रेन गोरखपुर के लिए रवाना हो गई। नूनखार, देवरिया, गौरी बाज़ार, चौरी-चौरा और कुसुमही (स्टेशनों) पर 15 से 20 हज़ार से कम लोग नहीं थे... महात्मा जी कुसुमीही के दृश्य को देखकर बहुत प्रसन्न हुए क्योंकि जंगल के बीच स्थित होने के बावजूद उस स्टेशन पर 10,000 से कम लोग नहीं थे। प्रेम में अभिभूत होकर कुछ लोग रोते हुए देखे गए। देवरिया में लोग गाँधी जी को भेनी (दान) देना चाहते थे किंतु इसे उन्होंने उनसे गोरखपुर में देने को कहा। लेकिन चौरी-चौरा में एक मारवाड़ी सज्जन ने किसी तरह उन्हें कुछ दे दिया। इसके बाद यह क्रम रुका ही नहीं। एक चादर फैला दी गई जिस पर रुपयों और सिक्कों की बारिश होने लगी। यह दृश्य था... गोरखपुर स्टेशन के बाहर महात्मा एक ऊँची गाड़ी पर खड़े हो गए और लोगों ने कुछ मिनटों के लिए उनके दर्शन कर लिए।

गाँधी जी जहाँ भी गए वहीं उनकी चामत्कारिक शक्तियों की अफवाहें फैल गईं। कुछ स्थानों पर यह कहा गया कि उन्हें राजा द्वारा किसानों के दुख तकलीफों में सुधार के लिए भेजा गया है तथा उनके पास सभी स्थानीय अधिकारियों के निर्देशों को अस्वीकृत करने की शक्ति है। कुछ अन्य स्थानों पर यह दावा किया गया कि गाँधी जी की शक्ति अंग्रेज़ बादशाह से उत्कृष्ट है और यह कि उनके आने से औपनिवेशिक शासक ज़िले से भाग जाएँगे। गाँधी जी का विरोध करने वालों के लिए भयंकर परिणाम की बात बताती कहानियाँ भी थीं। इस तरह की अफवाहें फैलीं कि गाँधी जी की आलोचना करने वाले गाँव के लोगों के घर रहस्यात्मक रूप से गिर गए अथवा उनकी फसल चौपट हो गई।

'गाँधी बाबा', 'गाँधी महाराज' अथवा सामान्य 'महात्मा' जैसे अलग-अलग नामों से ज्ञात गाँधी जी भारतीय किसान के लिए एक उद्धारक के समान थे जो उनकी ऊँची करों और दमनात्मक अधिकारियों से सुरक्षा करने वाले और उनके जीवन में मान-मर्यादा और स्वायत्तता वापस लाने वाले थे। ग़रीबों विशेषकर किसानों के बीच गाँधी जी की

स्रोत 2

चामत्कारिक व अविश्वसनीय

संयुक्त प्रांत के स्थानीय समाचार-पत्रों में उस समय फैली कई अफवाहें दर्ज हैं। ये अफवाहें थीं कि जिस किसी भी व्यक्ति ने महात्मा की शक्ति को परखना चाहा उसे अचंभा हुआ :

1. बस्ती गाँव के सिंकदर साहू ने 15 फरवरी को कहा कि वह महात्मा जी में तब विश्वास करेगा जब उसके कारखाने (जहाँ गुड़ का उत्पादन होता था) में गन्ने के रस से भरा कड़ाहा (उबलता हुआ) दो भाग में टूट जाएगा। तुरंत ही कड़ाहा वास्तव में बीच में से दो हिस्सों में टूट गया।

2. आजमगढ़ के एक किसान ने कहा कि वह महात्मा जी की प्रामाणिकता में तब विश्वास करेगा जब उसके खेत में लगाए गए गेहूँ तिल में बदल जाएँ। अगले दिन उस खेत का सारा गेहूँ तिल बन गया।

जारी...

स्रोत 2 जारी...

ऐसी अफ़वाहें थीं कि महात्मा गाँधी का विरोध करने वाले लोग निरपवाद रूप से किसी न किसी त्रासदी का शिकार हुए थे।

1. गोरखपुर से एक सज्जन ने चरखा चलाए जाने की आवश्यकता पर प्रश्न उठाया। उनके घर में आग लग गई।

2. अप्रैल 1921 में उत्तर प्रदेश के एक गाँव में कुछ लोग जुआ खेल रहे थे। किसी ने उन्हें ऐसा करने से रोका। जुआ खेल रहे समूह में से एक ने रुकने से मना कर दिया और गाँधीजी को अपशब्द कहा। अगले दिन उसकी बकरी को उसके ही चार कुत्तों ने काट खाया।

3. गोरखपुर के एक गाँव में किसानों ने शराब पीना छोड़ने का निश्चय किया। एक व्यक्ति अपने निश्चय पर कायम नहीं रहा। जब वह शराब की दुकान की तलाश में जा रहा था तो उसके रास्ते में रोड़ों की बारिश होने लगी। ज्योंही उसने गाँधीजी का नाम लिया रोड़ों की बारिश बंद हो गई।

शाहिद अमीन, *'गाँधी जी एज़ महात्मा'*, *सबाल्टर्न स्टड्रीज* III, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

➲ आपने अध्याय 11 में अफ़वाहों के बारे में पढ़ा और देखा कि अफ़वाहों का प्रसार एक समय के विश्वास के ढाँचों के बारे में बताता है, यह बताता है उन लोगों के मन-मस्तिष्क के बारे में जो इन अफ़वाहों में विश्वास करते हैं और उन परिस्थितियों के बारे में जो इन विश्वासों को संभव बनाती हैं। आपके अनुसार गाँधी जी के विषय में अफ़वाहों से क्या पता चलता है?

अपील को उनकी सात्विक जीवन शैली और उनके द्वारा धोती तथा चरखा जैसे प्रतीकों के विवेकपूर्ण प्रयोग से बहुत बल मिला। जाति से महात्मा गाँधी एक व्यापारी व पेशे से वकील थे, लेकिन उनकी सादी जीवन-शैली तथा हाथों से काम करने के प्रति उनके लगाव की वजह से वे ग़रीब श्रमिकों के प्रति बहुत अधिक समानुभूति रखते थे तथा बदले में वे लोग गाँधी जी से समानुभूति रखते थे। जहाँ अधिकांश अन्य राजनीतिक उन्हें कृपा की दृष्टि से देखते थे वहीं ये न केवल उनके जैसा दिखने बल्कि उन्हें अच्छी तरह समझने और उनके जीवन के साथ स्वयं को जोड़ने के लिए सामने आते थे।

महात्मा गाँधी का जन अनुरोध निस्संदेह कपट से मुक्त था और भारतीय राजनीति के संदर्भ में तो बिना किसी पूर्वोदाहरण के यह भी कहा जा सकता है कि राष्ट्रवाद के आधार को और व्यापक बनाने में उनकी सफलता का राज़ उनके द्वारा सावधानीपूर्वक किया गया संगठन था। भारत के विभिन्न भागों में कांग्रेस की नयी शाखाएँ खोली गयी। रजवाड़ों में राष्ट्रवादी सिद्धान्त को बढ़ावा देने के लिए 'प्रजा मंडलों' की एक शृंखला स्थापित की गई। गाँधी जी ने राष्ट्रवादी संदेश का संचार शासकों की अंग्रेज़ी भाषा की जगह मातृ भाषा में करने को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार कांग्रेस की प्रांतीय समितियाँ ब्रिटिश भारत की कृत्रिम सीमाओं की अपेक्षा भाषाई क्षेत्रों पर आधारित थीं। इन अलग-अलग तरीकों से राष्ट्रवाद देश के सुदूर हिस्सों तक फैल गया और अब इसमें वे सामाजिक वर्ग भी शामिल हो गए जो अभी तक इससे अछूत थे।

अब तक कांग्रेस के समर्थकों में कुछ बहुत ही समृद्ध व्यापारी और उद्योगपति शामिल हो गए थे। भारतीय उद्यमियों ने यह बात जल्दी ही समझ ली कि उनके अंग्रेज़ प्रतिद्वन्दी आज जो लाभ पा रहे हैं, स्वतंत्र भारत में ये चीज़ें समाप्त हो जाएँगी। जी. डी. बिड़ला जैसे कुछ उद्यमियों ने राष्ट्रीय आंदोलन का खुला समर्थन किया जबकि अन्य ने ऐसा मौन रूप से किया। इस प्रकार गाँधी जी के प्रशंसकों में गरीब किसान और धनी उद्योगपति दोनों ही थे हालांकि किसानों द्वारा गाँधी जी का अनुकरण करने के कारण उद्योगपतियों के कारणों से कुछ भिन्न और संभवत: परस्पर विरोधी थे।

हालाँकि महात्मा गाँधी की स्वयं बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका थी लेकिन 'गाँधीवादी राष्ट्रवाद' का विकास बहुत हद तक उनके अनुयायियों पर निर्भर करता था। 1917 और 1922 के बीच भारतीयों के एक बहुत ही प्रतिभाशाली वर्ग ने स्वयं को गाँधी जी से जोड़ लिया। इनमें महादेव देसाई, वल्लभ भाई पटेल, जे. बी. कृपलानी, सुभाष चंद्र बोस, अबुल कलाम आज़ाद, जवाहरलाल नेहरू, सरोजिनी नायडू, गोविंद वल्लभ पंत और सी. राजगोपालाचारी शामिल थे। गाँधी जी के ये घनिष्ठ सहयोगी

विशेषरूप से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के साथ ही भिन्न-भिन्न धार्मिक परंपराओं से आए थे। इसके बाद उन्होंने अनगिनत अन्य भारतीयों को कांग्रेस में शामिल होने और इसके लिए काम करने के लिए प्रेरित किया।

महात्मा गाँधी फरवरी 1924 में जेल से रिहा हो गए और अब उन्होंने अपना ध्यान घर में बुने कपड़े (खादी) को बढ़ावा देने तथा छूआ-छूत को समाप्त करने पर लगाया। गाँधी जी राजनीतिक जितने थे उतने ही वे समाज सुधारक थे। उनका विश्वास था कि स्वतंत्रता के योग्य बनने के लिए भारतीयों को बाल विवाह और छूआ-छूत जैसी सामाजिक बुराइयों से मुक्त होना पड़ेगा। एक मत के भारतीयों को दूसरे मत के भारतीयों के लिए सच्चा संयम लाना होगा और इस प्रकार उन्होंने हिंदू-मुसलमानों के बीच सौहार्द्र पर बल दिया। इसी तरह आर्थिक स्तर पर भारतीयों को स्वावलंबी बनना सीखना होगा- ऐसा करके उन्होंने समुद्रपार से आयतित मिल में बने वस्त्रों के स्थान पर खादी पहनने की महत्ता पर ज़ोर डाला।

➲ चर्चा कीजिए...

असहयोग क्या था? विभिन्न सामाजिक वर्गों ने आन्दोलन में किन विभिन्न तरीकों से भाग लिया, इसके बारे में पता लगाइये।

3. नमक सत्याग्रह

नज़दीक से एक नज़र

असहयोग आंदोलन समाप्त होने के कई वर्ष बाद तक महात्मा गाँधी ने अपने को समाज सुधार कार्यों पर केंद्रित रखा। 1928 में उन्होंने पुन: राजनीति में प्रवेश करने की सोची। उस वर्ष सभी श्वेत सदस्यों वाले साईमन कमीशन, जो कि उपनिवेश की स्थितियों की जाँच-पड़ताल के लिए इंग्लैंड से भेजा गया था, के विरुद्ध अखिल भारतीय अभियान चलाया जा रहा था। गाँधी जी ने स्वयं इस आंदोलन में भाग नहीं लिया था पर उन्होंने इस आंदोलन को अपना आशीर्वाद दिया था तथा इसी वर्ष बारदोली में होने वाले एक किसान सत्याग्रह के साथ भी उन्होंने ऐसा किया था।

1929 में दिसंबर के अंत में कांग्रेस ने अपना वार्षिक अधिवेशन लाहौर शहर में किया। यह अधिवेशन दो दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण था : जवाहरलाल नेहरू का अध्यक्ष के रूप में चुनाव जो युवा पीढ़ी को नेतृत्व की छड़ी सौंपने का प्रतीक था; और 'पूर्ण स्वराज' अथवा पूर्ण स्वतंत्रता की उद्घोषणा। अब राजनीति की गति एक बार फिर बढ़ गई थी। 26 फरवरी 1930 को विभिन्न स्थानों पर राष्ट्रीय ध्वज फहराकर और देशभक्ति के गीत गाकर 'स्वतंत्रता दिवस' मनाया गया। गाँधी जी ने स्वयं सुस्पष्ट निर्देश देकर बताया कि इस दिन को कैसे मनाया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि "यदि (स्वतंत्रता की) उद्घोषणा सभी गाँवों और सभी शहरों यहाँ तक कि... अच्छा होगा। अगर सभी जगहों पर एक ही समय में संगोष्ठियाँ हों तो अच्छा होगा।"

गाँधी जी ने सुझाव दिया कि नगाड़े पीटकर पारंपरिक तीरके से संगोष्ठी के समय की घोषणा की जाए। राष्ट्रीय ध्वज को फहराए जाने से समारोहों की शुरुआत होगी। दिन का बाकी हिस्सा किसी रचनात्मक कार्य में चाहे वह

सूत कताई हो अथवा 'अछूतों' की सेवा अथवा हिंदुओं व मुसलमानों का पुनर्मिलन अथवा निषिद्ध कार्य अथवा ये सभी एक साथ करने में व्यतीत होगा और यह असंभव नहीं है। इसमें भाग लेने वाले लोग दृढ़तापूर्वक यह प्रतिज्ञा लेंगे कि "अन्य लोगों की तरह भारतीय लोगों को भी स्वतंत्रता और अपने कठिन परिश्रम के फल का आनंद लेने का अहरणीय अधिकार है और यह कि यदि कोई भी सरकार लोगों को इन अधिकारों से वंचित रखती है या उनका दमन करती है तो लोगों को इन्हें बदलने अथवा समाप्त करने का भी अधिकार है।"

3.1 दाण्डी

'स्वतंत्रता दिवस' मनाए जाने के तुरंत बाद महात्मा गाँधी ने घोषणा की कि वे ब्रिटिश भारत के सर्वाधिक घृणित कानूनों में से एक, जिसने नमक के उत्पादन और विक्रय पर राज्य को एकाधिकार दे दिया है, को तोड़ने के लिए एक यात्रा का नेतृत्व करेंगे। नमक एकाधिकार के जिस मुद्दे का उन्होंने चयन किया था वह गाँधी जी की कुशल समझदारी का एक अन्य उदाहरण था। प्रत्येक भारतीय घर में नमक का प्रयोग अपरिहार्य था लेकिन इसके बावजूद उन्हें घरेलू प्रयोग के लिए भी नमक बनाने से रोका गया और इस तरह उन्हें दुकानों से ऊँचे दाम पर नमक खरीदने के लिए बाध्य किया गया। नमक पर राज्य का एकाधिपत्य बहुत अलोकप्रिय था। इसी को निशाना बनाते हुए गाँधी जी अंग्रेज़ी शासन के खिलाफ व्यापक असंतोष को संघटित करने की सोच रहे थे।

चित्र 13.6
दाण्डी यात्रा, मार्च 1930

अधिकांश भारतीयों को गाँधी जी की इस चुनौती का महत्व समझ में आ गया था किंतु अंग्रेज़ी राज को नहीं। हालाँकि गाँधी जी ने अपनी 'नमक यात्रा' की पूर्व सूचना वाइसराय लार्ड इर्विन को दे दी थी किंतु इर्विन उनकी इस कार्रवाही के महत्व को न समझ सके। 12 मार्च 1930 को गाँधी जी ने साबरमती में अपने आश्रम से समुद्र की ओर चलना शुरू किया। तीन हफ्तों बाद वे अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचे। वहाँ उन्होने मुट्ठी भर नमक बनाकर स्वयं को कानून की निगाह में अपराधी बना दिया। इसी बीच देश के अन्य भागों में समान्तर नमक यात्राएँ अयोजित की गईं।

चित्र 13.7
6 अप्रैल 1930 को दाण्डी यात्रा की समाप्ति पर सत्याग्रही प्राकृतिक नमक को उठाते हुए।

स्रोत 3

नमक सत्याग्रह क्यों?

नमक विरोध का प्रतीक क्यों था? इसके बारे में महात्मा गाँधी ने लिखा है :

प्रतिदिन प्राप्त होने वाली सूचनाओं से पता चलता है कि कैसे अन्यायपूर्ण तरीके से नमक कर को तैयार किया गया है। बिना कर (जो कभी-कभी नमक के मूल्य का चौदह गुना तक होता था) अदा किए गए नमक के प्रयोग को रोकने के लिए सरकार उस नमक को, जिससे वह लाभ पर नहीं बेच पाती थी, नष्ट कर देती थी। अत: यह राष्ट्र की अत्यधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता पर कर लगाती है; यह जनता को इसके उत्पादन से रोकती है और प्रकृति ने जिसे बिना किसी श्रम के उत्पादित किया है उसे नष्ट कर देती है। अत: किसी भी वजह से किसी चीज़ को स्वयं प्रयोग न कर पाने तथा अन्य को भी उसका प्रयोग न करने देने तथा ऐसे में उस चीज़ को नष्ट कर देने की इस अन्यायपूर्ण नीति को किसी भी विशेषण द्वारा नहीं बताया जा सकता है। विभिन्न स्रोतों से मैं भारत के सभी भागों में इस राष्ट्र संपति को बेलगाम ढंग से नष्ट किए जाने की कहानियाँ सुन रहा हूँ। टनों न सही पर कई मन नमक कोंकण तट पर नष्ट कर दिया गया बताया गया है। दाण्डी से भी इस तरह की बातें पता चली हैं। जहाँ कहीं भी ऐसे क्षेत्रों के आस-पास रहने वाले लोगों द्वारा अपने व्यक्तिगत प्रयोग हेतु प्राकृतिक नमक उठा ले जाने की संभावना दिखती है वहाँ तुरंत अधिकारी नियुक्त कर दिए जाते हैं जिनका एकमात्र कार्य विनाश करना होता है। इस प्रकार बहुमूल्य राष्ट्रीय संपदा को राष्ट्रीय खर्चे से ही नष्ट किया जाता है और लोगों के मुँह से नमक छीन लिया जाता है।

नमक एकाधिकार एक तरह से चौतरफा अभिशाप है। यह लोगों को बहुमूल्य सुलभ ग्राम उद्योग से वंचित करता है, प्रकृति द्वारा बहुतायत में उत्पादित संपदा का यह अतिशय विनाश करता है। इस विनाश का मतलब ही है और अधिक राष्ट्रीय खर्च। चौथा और इस मूर्खता का चरमोत्कर्ष भूखे लोगों से हज़ार प्रतिशत से अधिक की उगाही है।

सामान्य जन की उदासीनता की वजह से ही लम्बे समय से यह कर अस्तित्व में बना रहा है। आज जनता पर्याप्त रूप से जग चुकी है अत: इस कर को समाप्त करना होगा। कितनी जल्दी इसे खत्म कर दिया जाएगा यह लोगों की क्षमता पर निर्भर करता है।

दि कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी (सी. डब्ल्यू. एम. जी.) खंड 49

➲ औपनिवेशिक सरकार द्वारा नमक को क्यों नष्ट किया जाता था?
महात्मा गाँधी नमक कर को अन्य करों की तुलना में अधिक दमनात्मक क्यों मानते थे?

स्रोत 4

'कल हम नमक कर क़ानून तोड़ेंगे'

5 अप्रैल 1930 को महात्मा गाँधी ने दाण्डी में कहा था :

जब मैं अपने साथियों के साथ दाण्डी के इस समुद्रतटीय टोले की तरफ चला था तो मुझे यकीन नहीं था कि हमें यहाँ तक आने दिया जाएगा। जब मैं साबरमती में था तब भी यह अफ़वाह थी कि मुझे गिरफ़्तार किया जा सकता है। तब मैंने सोचा था कि सरकार मेरे साथियों को तो दाण्डी तक आने देगी लेकिन मुझे निश्चय ही यह छूट नहीं मिलेगी। यदि कोई यह कहता कि इससे मेरे हृदय में अपूर्ण आस्था का संकेत मिलता है तो मैं इस आरोप को नकारने वाला नहीं हूँ। मैं यहाँ तक पहुँचा हूँ, इसमें शांति और अहिंसा का कम हाथ नहीं है; इस सत्ता को सब महसूस करते हैं। अगर सरकार चाहे तो वह अपने इस आचरण के लिए अपनी पीठ थपथपा सकती है क्योंकि सरकार चाहती तो हम में से हरेक को गिरफ़्तार कर सकती थी। जब सरकार यह कहती है कि उसके पास शांति की सेना को गिरफ़्तार करने का साहस नहीं था तो हम उसकी प्रशंसा करते हैं। सरकार को ऐसी सेना की गिरफ़्तारी में शर्म महसूस होती है। अगर कोई व्यक्ति ऐसा काम करने में शर्मिंदा महसूस करता है जो उसके पड़ोसियों को भी रास नहीं आ सकता, तो वह एक शिष्ट-सभ्य व्यक्ति है। सरकार को हमें गिरफ़्तार न करने के लिए बधाई दी जानी चाहिए भले ही उसने विश्व जनमत का खयाल करके ही यह फैसला क्यों न लिया हो।

कल हम नमक कर कानून तोड़ेंगे। सरकार इसको बर्दाश्त करती है कि नहीं, यह सवाल अलग है। हो सकता है सरकार हमें ऐसा न करने दे लेकिन उसने हमारे जत्थे के बारे में जो धैर्य और सहिष्णुता दिखायी है उसके लिए वह अभिनंदन की पात्र है...।

यदि मुझे और गुजरात व देश भर के सारे मुख्य नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया जाता है तो क्या होगा? यह आंदोलन इस विश्वास पर आधारित है कि जब एक पूरा राष्ट्र उठ खड़ा होता है और आगे बढ़ने लगता है तो उसे नेता की जरूरत नहीं रह जाती।

कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खंड 49

➲ इस भाषण के आधार पर बताइए कि गाँधी जी औपनिवेशिक राज्य को कैसे देखते थे?

असहयोग आन्दोलन की तरह अधिकृत रूप से स्वीकृत राष्ट्रीय अभियान के अलावा भी विरोध की असंख्य धाराएँ थीं। देश के विशाल भाग में किसानों ने दमनकारी औपनिवेशिक वन कानूनों का उल्लंघन किया जिसके कारण वे और उनके मवेशी उन्हीं जंगलों में नहीं जा सकते थे जहाँ एक जमाने में वे बेरोकटोक घूमते थे। कुछ कस्बों में फैक्ट्री कामगार हड़ताल पर चले गए, वकीलों ने ब्रिटिश अदालतों का बहिष्कार कर दिया और विद्यार्थियों ने सरकारी शिक्षा संस्थानों में पढ़ने से इनकार कर दिया। 1920-22 की तरह इस बार भी गाँधी जी के आह्वान ने तमाम भारतीय वर्गों को औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध अपना असंतोष व्यक्त करने के लिए प्रेरित किया। जवाब में सरकार असंतुष्टों को हिरासत में लेने लगी। नमक सत्याग्रह के सिलसिले में लगभग 60,000 लोगों को गिरफ़्तार किया गया। गिरफ़्तार होने वालों में गाँधी जी भी थे।

समुद्र तट की ओर गाँधी जी की यात्रा की प्रगति का पता उनकी गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए तैनात पुलिस अफसरों द्वारा भेजी गई गोपनीय रिपोर्टों से लगाया जा सकता है। इन रिपोर्टों में रास्ते के गाँवों में गाँधी जी द्वारा दिए गए भाषण भी मिलते हैं जिनमें उन्होंने स्थानीय अधिकारियों से आह्वान किया था कि वे सरकारी नौकरियाँ छोड़कर स्वतंत्रता संघर्ष में शामिल हो जाएँ। वसना

नामक गाँव में गाँधी जी ने ऊँची जाति वालों को संबोधित करते हुए कहा था कि "यदि आप स्वराज के हक में आवाज़ उठाते हैं तो आपको अछूतों की सेवा करनी पड़ेगी। सिर्फ नमक कर या अन्य करों के खत्म हो जाने से आपको स्वराज नहीं मिल जाएगा। स्वराज के लिए आपको अपनी उन गल्तियों का प्रायश्चित करना होगा जो आपने अछूतों के साथ की हैं। स्वराज के लिए हिंदू, मुसलमान, पारसी और सिख, सबको एकजुट होना पडेगा। ये स्वराज की सीढ़ियाँ हैं। "पुलिस के जासूसों ने अपनी रिपोर्टों में लिखा था कि गाँधी जी की सभाओं में तमाम जातियों के औरत-मर्द शामिल हो रहे हैं। उनका कहना था कि हज़ारों वॉलंटियर राष्ट्रवादी उद्देश्य के लिए सामने आ रहे हैं। उनमें से बहुत सारे ऐसे सरकारी अफ़सर थे जिन्होंने औपनिवेशिक शासन में अपने पदों से इस्तीफ़े दे दिए थे। सरकार को भेजी अपनी रिपोर्ट में जिला पुलिस सुपरिंटेंडेंट (पुलिस अधीक्षक) ने लिखा था कि "श्री गाँधी शांत और निश्चिंत दिखाई दिए। वे जैसे-जैसे आगे बढ़ रहे हैं, उनकी ताकत बढ़ती जा रही है।"

नमक यात्रा की प्रगति को एक और स्रोत से भी समझा जा सकता है। अमेरिकी समाचार पत्रिका *टाइम* को गाँधी जी की कदकाठी पर हँसी आती थी। पत्रिका ने उनके "तकुए जैसे शरीर" और "मकड़ी जैसे पेडू" का ख़ूब मज़ाक उड़ाया था। इस यात्रा के बारे में अपनी पहली रिपोर्ट में ही *टाइम* ने नमक यात्रा के मंजिल तक पहुँचने पर अपनी गहरी शंका व्यक्त कर दी थी। उसने दावा किया कि दूसरे दिन पैदल चलने के बाद गाँधी जी "ज़मीन पर पसर गए थे।" पत्रिका को इस बात पर विश्वास नहीं था कि इस "मरियल साधु के शरीर में और आगे जाने की ताकत बची है।" लेकिन एक हफ़्ते में ही पत्रिका की सोच बदल गई। *टाइम* ने लिखा कि इस यात्रा को जो भारी जनसमर्थन मिल रहा है उसने अंग्रेज़ शासकों को "ग़हरे तौर पर बेचैन" कर दिया है। अब वे भी गाँधी जी को ऐसा "साधु" और "राजनेता" कह कर

चित्र 13.8
जनवरी 1931 में जेल से महात्मा गाँधी की रिहाई के बाद आंदोलन की भावी योजना के बारे में चर्चा करने के लिए इलाहाबाद में कांग्रेस के नेताओं की बैठक हुई थी।
इस चित्र में आप (दाएँ से बाएँ) जवाहरलाल नेहरू, जमनालाल बजाज, सुभाष चंद्र बोस, गाँधी जी, महादेव देसाई (अग्रभाग में), सरदार वल्लभ भाई पटेल को देख सकते हैं।

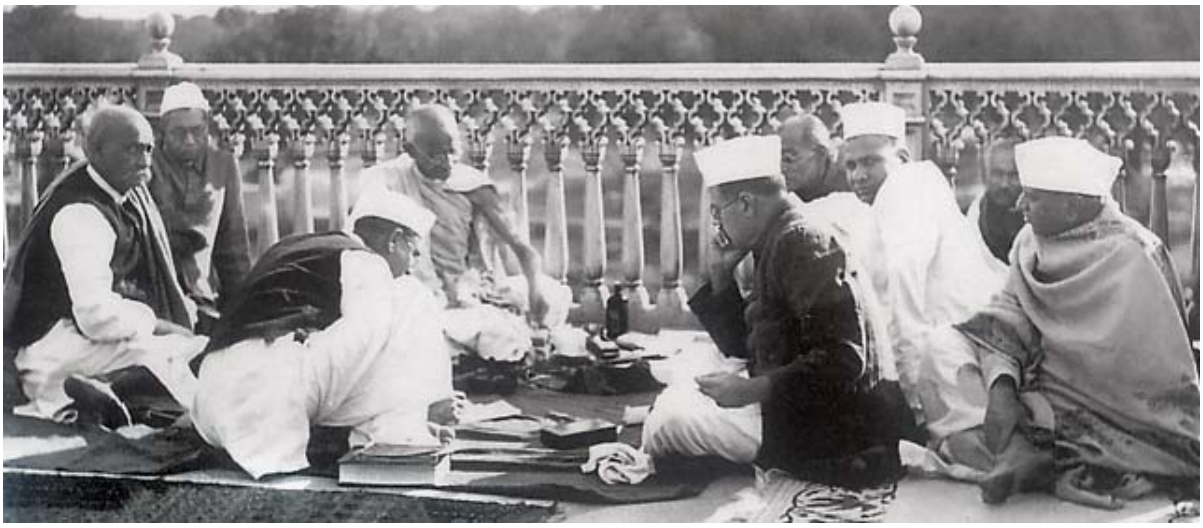

स्रोत 5

पृथक निर्वाचिका के बारे में समस्या

गोल मेज सम्मेलन के दौरान महात्मा गाँधी ने दमित वर्गों के लिए पृथक निर्वाचिका प्रस्ताव के ख़िलाफ़ अपनी दलील पेश करते हुए कहा था :

"अस्पृश्यों" के लिए पृथक निर्वाचिका का प्रावधान करने से उनकी दासता स्थायी रूप ले लेगी...। क्या आप चाहते हैं कि "अस्पृश्य" हमेशा "अस्पृश्य" ही बने रहें? पृथक निर्वाचिका से उनके प्रति कलंक का यह भाव और मजबूत हो जाएगा। जरूरत इस बात की है कि "अस्पृश्यता" का विनाश किया जाए और जब आप यह लक्ष्य प्राप्त कर लें तो एक अड़ियल "श्रेष्ठ" वर्ग द्वारा एक "कमतर" वर्ग पर थोप दी गई यह अवैध व्यवस्था भी समाप्त हो जाएगी। जब आप इस अवैध प्रथा को नष्ट कर देंगे तो किसी को पृथक निर्वाचिका की आवश्यकता ही कहाँ रह जाएगी?

सलामी देने लगे हैं जो "ईसाई धर्मावलंबियों के खिलाफ ईसाई तरीकों का ही हथियार के रूप में इस्तेमाल कर रहा है।"

3.2 संवाद

नमक यात्रा कम से कम तीन कारणों से उल्लेखनीय थी। पहला, यही वह घटना थी जिसके चलते महात्मा गाँधी दुनिया की नजर में आए। इस यात्रा को यूरोप और अमेरिकी प्रेस ने व्यापक कवरेज दी। दूसरे, यह पहली राष्ट्रवादी गतिविधि थी जिसमें औरतों ने भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। समाजवादी कार्यकर्ता कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने गाँधी जी को समझाया कि वे अपने आंदोलनों को पुरुषों तक ही सीमित न रखें। कमलादेवी खुद उन असंख्य औरतों में से एक थीं जिन्होंने नमक या शराब कानूनों का उल्लंघन करते हुए सामूहिक गिरफ़्तारी दी थी। तीसरा और संभवत: सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि नमक यात्रा के कारण ही अंग्रेजों को यह अहसास हुआ था कि अब उनका राज बहुत दिन नहीं टिक सकेगा और उन्हें भारतीयों को भी सत्ता में हिस्सा देना पड़ेगा।

इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए ब्रिटिश सरकार ने लंदन में "गोल मेज सम्मेलनों" का आयोजन शुरू किया। पहला गोल मेज सम्मेलन नवम्बर 1930 में आयोजित किया गया जिसमें देश के प्रमुख नेता शामिल नहीं हुए। इसी कारण अंतत: यह बैठक निरर्थक साबित हुई। जनवरी 1931 में गाँधी जी को जेल से रिहा किया गया। अगले ही महीने वायसराय के साथ उनकी कई लंबी बैठकें हुईं। इन्हीं बैठकों के बाद "गाँधी-इर्विन समझौते" पर सहमति बनी जिसकी शर्तों में सविनय अवज्ञा आंदोलन को वापस लेना, सारे कैदियों की रिहाई और तटीय इलाकों में नमक उत्पादन की अनुमति देना शामिल था। रैडिकल राष्ट्रवादियों ने इस समझौते की आलोचना की क्योंकि गाँधी जी वायसराय से भारतीयों के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता का आश्वासन हासिल नहीं कर पाए थे। गाँधी जी को इस संभावित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए केवल वार्ताओं का आश्वासन मिला था।

दूसरा गोल मेज सम्मेलन 1931 के आखिर में लंदन में आयोजित हुआ। उसमें गाँधी जी कांग्रेस का नेतृत्व कर रहे थे। गाँधी जी का कहना था कि उनकी पार्टी पूरे भारत का प्रतिनिधित्व करती है। इस दावे को तीन पार्टियों ने चुनौती दी। मुस्लिम लीग का कहना था कि वह मुस्लिम अल्पसंख्यकों के हित में काम करती है। राजे-रजवाड़ों का दावा था कि कांग्रेस का उनके नियंत्रण वाले भूभाग पर कोई अधिकार नहीं है। तीसरी चुनौती तेज़-तर्रार वकील और विचारक बी. आर. अंबेडकर की तरफ़ से थी जिनका कहना था कि गाँधी जी और कांग्रेस पार्टी निचली जातियों का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

लंदन में हुआ यह सम्मेलन किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका इसलिए गाँधी जी को खाली हाथ लौटना पड़ा। भारत लौटने पर उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर दिया। नए वायसराय लॉर्ड विलिंग्डन को गाँधी जी से बिलकुल हमदर्दी नहीं थी। अपनी बहन को लिखे एक निजी खत में

चित्र 13.9
दूसरा गोल मेज सम्मेलन, लंदन, नवंबर 1931
महात्मा गाँधी ने "निम्न जातियों" के लिए पृथक निर्वाचिका की माँग का विरोध किया। उनका मानना था कि ऐसा करने पर समाज की मुख्यधारा में उनका एकीकरण नहीं हो पाएगा और वे सवर्ण हिंदुओं से हमेशा के लिए अलग रह जाएँगे।

विलिंग्डन ने लिखा था कि "अगर गाँधी न होता तो यह दुनिया वाकई बहुत खूबसूरत होती। वह जो भी कदम उठाता है उसे ईश्वर की प्रेरणा का परिणाम कहता है लेकिन असल में उसके पीछे एक गहरी राजनीतिक चाल होती है। देखता हूँ कि अमेरिकी प्रेस उसको गज़ब का आदमी बताती है...। लेकिन सच यह है कि हम निहायत अव्यावहारिक, रहस्यवादी और अंधविश्वासी जनता के बीच रह रहे हैं जो गाँधी को भगवान मान बैठी है,..."

बहरहाल, 1935 में नए गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट में सीमित प्रातिनिधिक शासन व्यवस्था का आश्वासन व्यक्त किया गया। दो साल बाद सीमित मताधिकार के आधार पर हुए चुनावों में कांग्रेस को जबर्दस्त सफलता मिली। 11 में से 8 प्रांतों में कांग्रेस के "प्रधानमंत्री' सत्ता में आए जो ब्रिटिश गवर्नर की देखरेख में काम करते थे।

कांग्रेस मंत्रिमंडलों के सत्ता में आने के दो साल बाद, सितंबर 1939 में दूसरा विश्व युद्ध शुरू हो गया। महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू, दोनों ही हिटलर व नात्सियों के कट्टर आलोचक थे। तदनुरूप, उन्होंने फैसला लिया कि अगर अंग्रेज़ युद्ध समाप्त होने के बाद भारत को स्वतंत्रता देने पर राजी हों तो कांग्रेस उनके युद्ध प्रयासों में सहायता दे सकती है। सरकार ने उनका प्रस्ताव ख़ारिज कर दिया। इसके विरोध में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने अक्टूबर 1939 में इस्तीफ़ा दे दिया। युद्ध समाप्त

स्रोत 6

पृथक निर्वाचिका पर अम्बेडकर के विचार

दमित वर्गों के लिए पृथक निर्वाचिका के प्रस्ताव पर महात्मा गाँधी की दलीलों के जवाब में अम्बेडकर ने लिखा था :

'हमारे सामने एक ऐसा वर्ग है जो निश्चय ही अस्तित्व के संघर्ष में खुद को कायम नहीं रख सकता। जिस धर्म से ये लोग बँधे हुए हैं वह उन्हें सम्मानजनक स्थान प्रदान करने की बजाय कोढ़ियों की तरह देखता है जिनके साथ सामान्य संबंध नहीं रखे जा सकते। आर्थिक रूप से यह ऐसा वर्ग है जो दो वक्त की रोटी के लिए सवर्ण हिंदुओं पर पूरी तरह आश्रित है; जिसके पास आजीविका का कोई स्वतंत्र साधन नहीं है। न केवल हिंदुओं के सामाजिक पूर्वाग्रहों के कारण उनके सारे रास्ते बंद हैं बल्कि समग्र इतिहास में हिंदू समाज ने उनके सामने खुलने वाली हर संभावना को बंद कर दिया है जिससे दमित वर्गों को जीवन में ऊपर उठने का कोई अवसर न मिल सके।

इन परिस्थितियों में सभी निष्पक्ष सोच वाले व्यक्ति इस बात पर सहमत होंगे कि आज सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि ऐसे अपंग समुदाय के पास संगठित निरंकुशता के विरुद्ध जीवन के संघर्ष का एकमात्र रास्ता यही है कि उसे राजनीतिक सत्ता में हिस्सा मिले जिससे वह अपनी रक्षा कर सके...।

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, "व्हाट कांग्रेस एंड गाँधी हैव डन टू दि अनटचेबल्स", *राइटिंग्स एंड स्पीचेस*, खंड 9, पृ. 312 से।

चित्र 13.10
महात्मा गाँधी और राजेन्द्र प्रसाद वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो के साथ बैठक के लिए जाते हुए, 13 अक्टूबर 1939
इस बैठक में युद्ध में भारत की हिस्सेदारी के स्वरूप पर चर्चा की गई थी। जब वायसराय के साथ वार्ता टूट गई तो कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने इस्तीफ़ा दे दिया था।

होने के बाद स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए शासकों पर दबाव डालने के वास्ते 1940-1941 के दौरान कांग्रेस ने अलग-अलग सत्याग्रह कार्यक्रमों का आयोजन शुरू कर दिया।

मार्च 1940 में मुस्लिम लीग ने "पाकिस्तान" के नाम से एक पृथक राष्ट्र की स्थापना का प्रस्ताव पारित किया और उसे अपना लक्ष्य घोषित कर दिया। अब राजनीतिक भूदृश्य काफ़ी जटिल हो गया था : अब यह संघर्ष भारतीय बनाम ब्रिटिश नहीं रह गया था। अब यह कांग्रेस, मुस्लिम लीग और ब्रिटिश शासन, तीन धुरियों के बीच का संघर्ष था। इसी समय ब्रिटेन में एक सर्वदलीय सरकार सत्ता में थी जिसमें शामिल लेबर पार्टी के सदस्य भारतीय आकांक्षाओं के प्रति हमदर्दी का रवैया रखते थे लेकिन सरकार के मुखिया प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल कट्टर साम्राज्यवादी थे। उनका कहना था कि उन्हें सम्राट का सर्वोच्च मंत्री इसलिए नहीं नियुक्त किया गया है कि वह ब्रिटिश साम्राज्य को टुकड़े-टुकड़े कर दें। 1942 के वसंत में चर्चिल ने गाँधी जी और कांग्रेस के साथ समझौते का रास्ता निकालने के लिए अपने एक मंत्री सर स्टेफ़र्ड क्रिप्स को भारत भेजा। क्रिप्स के साथ वार्ता में कांग्रेस ने इस बात पर जोर दिया कि अगर धुरी शक्तियों से भारत की रक्षा के लिए ब्रिटिश शासन कांग्रेस का समर्थन चाहता है तो वायसराय को सबसे पहले अपनी कार्यकारी परिषद् में किसी भारतीय को एक रक्षा सदस्य के रूप में नियुक्त करना चाहिए। इसी बात पर वार्ता टूट गई।

चित्र 13.11
स्टेफ़र्ड क्रिप्स के साथ महात्मा गाँधी, मार्च 1942

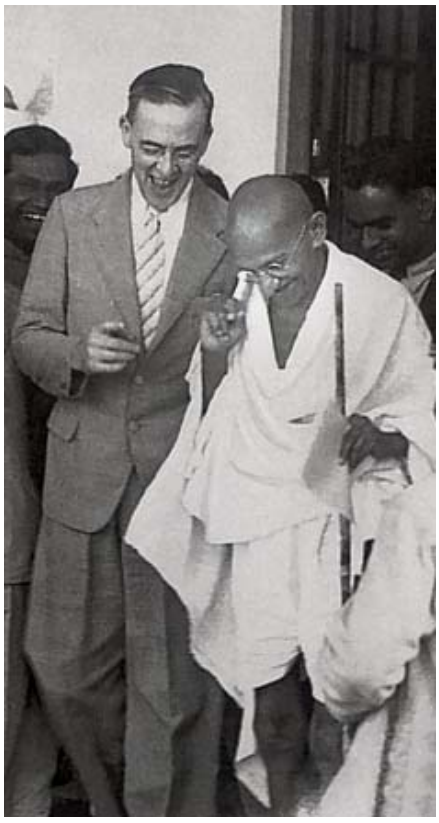

➲ चर्चा कीजिए...

स्रोत 5 एवं 6 को पढ़िए। दमित वर्गों के लिए पृथक निर्वाचिका के मुद्दे पर अम्बेडकर और महात्मा गाँधी के बीच काल्पनिक संवाद को लिखिए।

4. भारत छोड़ो

क्रिप्स मिशन की विफलता के बाद महात्मा गाँधी ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ अपना तीसरा बड़ा आंदोलन छेड़ने का फैसला लिया। अगस्त 1942 में शुरू हुए इस आंदोलन को "अंग्रेज़ों भारत छोड़ो" का नाम दिया गया था। हालांकि गाँधी जी को फौरन गिरफ़्तार कर लिया गया था लेकिन देश भर के युवा कार्यकर्ता हड़तालों और तोड़फोड़ की कार्रवाइयों के जरिए आंदोलन चलाते रहे। कांग्रेस में जयप्रकाश नारायण जैसे समाजवादी सदस्य भूमिगत प्रतिरोध गतिविधियों में सबसे ज्यादा सक्रिय थे। पश्चिम में सतारा और पूर्व में मेदिनीपुर जैसे कई जिलों में "स्वतंत्र" सरकार (*प्रतिसरकार*) की स्थापना कर दी गई थी। अंग्रेज़ों ने आंदोलन के प्रति काफी सख्त रवैया अपनाया फिर भी इस विद्रोह को दबाने में सरकार को साल भर से ज्यादा समय लग गया।

"भारत छोड़ो" (Quit India) आंदोलन सही मायने में एक जनांदोलन था जिसमें लाखों आम हिंदुस्तानी शामिल थे। इस आंदोलन ने युवाओं को बड़ी संख्या में अपनी ओर आकर्षित किया। उन्होंने अपने कॉलेज छोड़कर जेल का रास्ता अपनाया। जिस दौरान कांग्रेस के नेता जेल में थे उसी समय जिन्ना तथा मुस्लिम लीग के उनके साथी अपना प्रभाव क्षेत्र फैलाने में लगे थे। इन्हीं सालों में लीग को पंजाब और सिंध में अपनी पहचान बनाने का मौका मिला जहाँ अभी तक उसका कोई खास वजूद नहीं था।

जून 1944 में जब विश्व युद्ध समाप्ति की ओर था तो गाँधी जी को रिहा कर दिया गया। जेल से निकलने के बाद उन्होंने कांग्रेस और

सतारा, 1943

उन्नीसवीं सदी के आखिर से जाति व्यवस्था और जमींदारी के खिलाफ महाराष्ट्र में एक गैर-ब्राह्मण आंदोलन विकसित हो चुका था। इस आंदोलन ने 1930 के दशक तक राष्ट्रवादी आंदोलन के साथ संबंध स्थापित कर दिया था।

1943 में महाराष्ट्र के सतारा जिले के कुछ युवा नेताओं ने सेवा दलों तथा तूफान दलों (ग्राम इकाई) के साथ मिलकर एक *प्रतिसरकार* (समानांतर सरकार) की स्थापना कर ली थी। उन्होंने जन-अदालतों का आयोजन किया तथा रचनात्मक कार्य किए। कुनबी किसानों के दबदबे और दलितों के सहयोग से चलने वाली सतारा *प्रतिसरकार*, सरकारी दमन तथा अंतिम दौर में कांग्रेस की असहमति के बावजूद 1946 के चुनावों तक चलती रही।

चित्र 13.12
भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान बम्बई में औरतों का एक जुलूस।

लीग के बीच फासले को पाटने के लिए जिन्ना के साथ कई बार बात की। 1945 में ब्रिटेन में लेबर पार्टी की सरकार बनी। यह सरकार भारतीय स्वतंत्रता के पक्ष में थी। उसी समय वायसराय लॉर्ड वावेल ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के बीच कई बैठकों का आयोजन किया।

1946 की शुरुआत में प्रांतीय विधान मंडलों के लिए नए सिरे से चुनाव कराए गए। "सामान्य" श्रेणी में कांग्रेस को भारी सफलता मिली। मुसलमानों के लिए आरक्षित सीटों पर मुस्लिम लीग को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। राजनीतिक ध्रुवीकरण पूरा हो चुका था। 1946 की गर्मियों में कैबिनेट मिशन भारत आया। इस मिशन ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग को एक ऐसी संघीय व्यवस्था पर राज़ी करने का प्रयास किया जिसमें भारत के भीतर विभिन्न प्रांतों को सीमित स्वायत्तता दी जा सकती थी। कैबिनेट मिशन का यह प्रयास भी विफल रहा। वार्ता टूट जाने के बाद जिन्ना ने पाकिस्तान की स्थापना के लिए लीग की माँग के समर्थन में एक "प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस" का आह्वान किया। इसके लिए 16 अगस्त, 1946 का दिन तय किया गया था। उसी दिन कलकत्ता में खूनी संघर्ष शुरू हो गया। यह हिंसा कलकत्ता से शुरू होकर ग्रामीण बंगाल, बिहार और संयुक्त प्रांत व पंजाब तक फैल गई। कुछ स्थानों पर मुसलमानों को तो कुछ अन्य स्थानों पर हिंदुओं को निशाना बनाया गया।

फरवरी 1947 में वावेल की जगह लॉर्ड माउंटबेटन को वायसराय नियुक्त किया गया। उन्होंने वार्ताओं के एक अंतिम दौर का आह्वान किया। जब सुलह के लिए उनका यह प्रयास भी विफल हो गया तो उन्होंने ऐलान कर दिया कि ब्रिटिश भारत को स्वतंत्रता दे दी जाएगी लेकिन उसका विभाजन भी होगा। औपचारिक सत्ता हस्तांतरण के लिए 15 अगस्त का दिन नियत किया गया। उस दिन भारत के विभिन्न भागों में लोगों ने जमकर खुशियाँ मनायीं। दिल्ली में जब संविधान सभा के अध्यक्ष ने मोहनदास करमचंद गाँधी को राष्ट्रपिता की उपाधि देते हुए संविधान सभा की बैठक शुरू की तो "बहुत देर तक करतल ध्वनि" होती रही। असेम्बली के बाहर भीड़ "महात्मा गाँधी की जय" के नारे लगा रही थी।

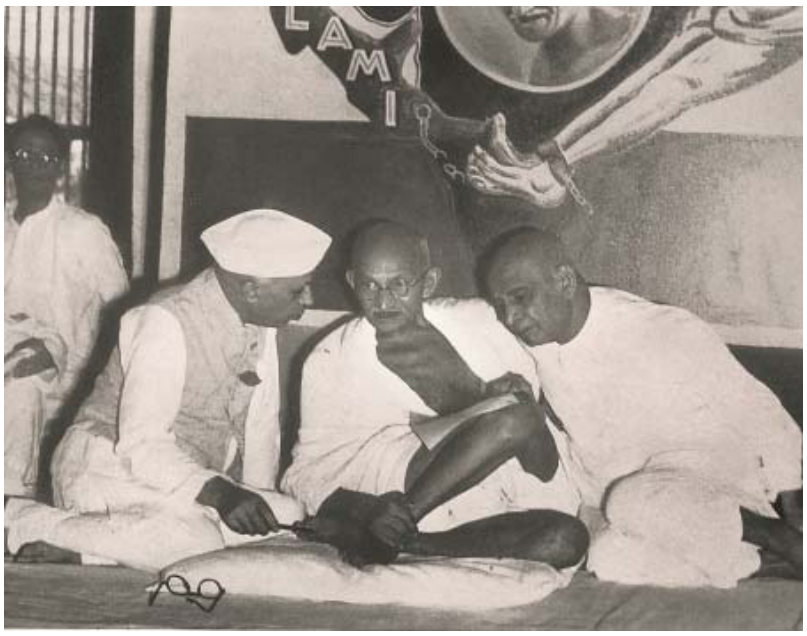

चित्र 13.13
दायीं ओर जवाहरलाल नेहरू तथा बायीं ओर बैठे सरदार वल्लभ भाई पटेल के साथ विचार-विमर्श करते महात्मा गाँधी।
नेहरू और पटेल कांग्रेस के भीतर दो अलग राजनीतिक प्रवृत्तियों – समाजवादी और रूढ़िवादी – का प्रतिनिधित्व करते थे। महात्मा गाँधी को अकसर इन दोनों समूहों के बीच मध्यस्थता करनी पड़ती थी।

5. आखिरी, बहादुराना दिन

15 अगस्त 1947 को राजधानी में हो रहे उत्सवों में महात्मा गाँधी नहीं थे। उस समय वे कलकत्ता में थे लेकिन उन्होंने वहाँ भी न तो किसी कार्यक्रम में हिस्सा लिया, न ही कहीं झंडा फहराया। गाँधी जी उस दिन 24 घंटे के उपवास पर थे। उन्होंने इतने दिन तक जिस स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया था वह एक अकल्पनीय कीमत पर उन्हें मिली थी। उनका राष्ट्र विभाजित था; हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे की गर्दन पर सवार थे।

उनके जीवनी लेखक डी.जी. तेंदुलकर ने लिखा है कि सितंबर और अक्तूबर के दौरान गाँधी जी "पीड़ितों को सांत्वना देते हुए अस्पतालों और शरणार्थी शिविरों के चक्कर लगा रहे थे।" उन्होंने "सिखों, हिंदुओं और मुसलमानों से आह्वान किया कि वे अतीत को भुला कर अपनी पीड़ा पर ध्यान देने की बजाय एक-दूसरे के प्रति भाईचारे का हाथ बढ़ाने तथा शांति से रहने का संकल्प लें...।"

गाँधी जी और नेहरू के आग्रह पर कांग्रेस ने "अल्पसंख्यकों के अधिकारों" पर एक प्रस्ताव पारित कर दिया। कांग्रेस ने "दो राष्ट्र सिद्धांत" को कभी स्वीकार नहीं किया था। जब उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध बँटवारे पर मंजूरी देनी पड़ी तो भी उसका दृढ़ विश्वास था कि "भारत बहुत सारे धर्मों और बहुत सारी नस्लों का देश है और उसे ऐसे ही बनाए रखा जाना चाहिए।" पाकिस्तान में हालात जो रहें, भारत "एक लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होगा जहाँ सभी नागरिकों को पूर्ण अधिकार प्राप्त होंगे तथा धर्म के आधार पर भेदभाव के बिना सभी को राज्य की ओर से संरक्षण का अधिकार होगा।" कांग्रेस ने आश्वासन दिया कि "वह अल्पसंख्यकों के नागरिक अधिकारों के किसी भी अतिक्रमण के विरुद्ध हर मुमकिन रक्षा करेगी।"

बहुत सारे विद्वानों ने स्वतंत्रता बाद के महीनों को गाँधी जी के जीवन का "श्रेष्ठतम क्षण" कहा है। बंगाल में शांति स्थापना के लिए अभियान चलाने के बाद गाँधी जी दिल्ली आ गए। यहाँ से वे दंगाग्रस्त पंजाब के जिलों में जाना चाहते थे। लेकिन राजधानी में ही शरणार्थियों की आपत्तियों के कारण उनकी सभाएँ अस्त-व्यस्त होने लगीं। बहुत सारे शरणार्थियों को उनकी सभाओं में कुरान की आयतों को पढ़ने की प्रथा पर आपत्ति थी। कई लोग इस बात पर नारे लगाने लगते थे कि गाँधी जी उन हिंदुओं और सिखों की पीड़ा के बारे में बात क्यों नहीं करते जो अभी भी पाकिस्तान में फँसे हुए हैं। डी.जी. तेंदुलकर के शब्दों में, गाँधी जी "पाकिस्तान में भी अल्पसंख्यक समुदाय के कष्टों के बारे में समान रूप से चिंतित थे। उन्हें राहत प्रदान करने के लिए वे वहाँ भी जाना चाहते थे। लेकिन वहाँ वे किस

चित्र 13.14
एक दंगाग्रस्त गाँव में जाते हुए महात्मा गाँधी, 1947

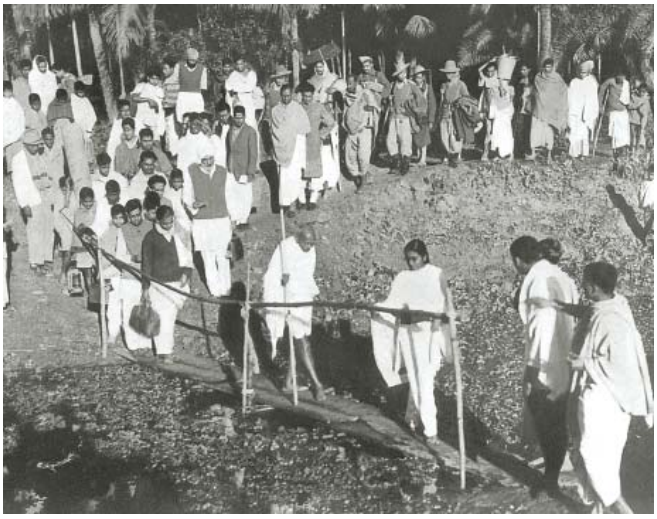

चित्र 13.15
महात्मा गाँधी की मृत्यु, एक प्रचलित चित्र
लोक छवियों में महात्मा गाँधी को एक देवता का रूप दे दिया गया था और उन्हें राष्ट्रवादी आंदोलन में एकीकरण को समर्पित शक्ति के रूप में देखा जाता था। यहाँ आप जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल, यानी कांग्रेस के भीतर दो अलग-अलग धाराओं के प्रतिनिधियों को गाँधी जी की चिता के दोनों ओर खड़ा हुआ देख सकते हैं। मध्य में स्वर्ग से महात्मा गाँधी उन्हें आशीर्वाद दे रहे हैं।

मुँह से जा सकते थे जबकि दिल्ली में ही वे मुसलमानों को पूरी सुरक्षा का आश्वासन नहीं दे पा रहे थे।"

20 जनवरी को गाँधी जी पर हमला हुआ लेकिन वे अविचलित अपना काम करते रहे। 26 तारीख को उन्होंने अपनी प्रार्थना सभा में इस बात का जिक्र किया कि बीते सालों में इस दिन (26 जनवरी) को किस तरह स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया जाता था। अब स्वतंत्रता मिल चुकी थी, लेकिन उसके शुरुआती महीने गहरे तौर पर मोहभंग वाले साबित हुए। फिर भी उनको विश्वास था कि "बुरी घड़ी बीत चुकी है", भारत के लोग अब "सभी वर्गों और धर्मों की समानता" के लिए काम करेंगे तथा "अल्पसंख्यक समुदाय पर बहुल समुदाय का वर्चस्व व श्रेष्ठता स्थापित नहीं होगी भले ही अल्पसंख्यक समुदाय संख्या या प्रभाव की दृष्टि से कितना भी छोटा क्यों न हो।" उन्होंने यह आशा भी जतायी कि "यद्यपि भौगोलिक और राजनीतिक रूप से भारत दो भागों में बँट चुका है लेकिन हृदय में हम सभी सदैव मित्र एवं भाई रहेंगे, एक-दूसरे को मदद व सम्मान देते रहेंगे और शेष विश्व के लिए हम एक ही होंगे।"

गाँधी जी ने स्वतंत्र और अखंड भारत के लिए जीवन भर युद्ध लड़ा। फिर भी, जब देश विभाजित हो गया तो उनकी यही इच्छा थी कि दोनों देश एक-दूसरे के साथ सम्मान और दोस्ती के संबंध बनाए रखें।

बहुत सारे भारतीयों को उनका यह सहृदय आचरण पसंद नहीं था। 30 जनवरी की शाम को गाँधी जी की दैनिक प्रार्थना सभा में एक युवक ने उनको गोली मारकर मौत की नींद सुला दिया। उनके हत्यारे ने कुछ समय बाद आत्मसमर्पण कर दिया। वह नाथूराम गोडसे नाम का ब्राह्मण था। पुणे का रहने वाला गोडसे एक चरमपंथी हिंदुत्ववादी अखबार का संपादक था। वह गाँधी जी को "मुसलमानों का खुशामदी" कहकर उनकी निंदा करता था।

गाँधी जी की मृत्यु से चारों ओर गहरे शोक की लहर दौड़ गई। भारत भर के राजनीतिक फलक पर उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि दी गई। जॉर्ज ऑरवेल तथा एलबर्ट आइंस्टीन जैसे विख्यात गैर-भारतीयों ने भी उनकी मृत्यु पर हृदयस्पर्शी शब्दों में शोक संदेश भेजे। एक ज़माने में उनकी कद-काठी और कथित रूप से बेतुके विचारों के लिए गाँधी जी का उपहास करने वाली *टाइम* पत्रिका ने उनके बलिदान की तुलना अब्राहम लिंकन के बलिदान से की। पत्रिका ने कहा कि एक धर्मांध अमेरिकी ने लिंकन को मार दिया था क्योंकि उन्हें नस्ल या रंग से परे मानवमात्र की समानता में विश्वास था और दूसरी तरफ एक धर्मांध हिंदू ने गाँधी जी की जीवन लीला समाप्त कर दी क्योंकि गाँधी जी ऐसे कठिन क्षणों में भी दोस्ती और भाईचारे में विश्वास रखते थे, विभिन्न धर्मों को मानने वालों के बीच दोस्ती की अनिवार्यता पर बल देते थे। *टाइम* ने लिखा, "दुनिया जानती थी कि उसने उनकी (गाँधी जी की) मृत्यु पर वैसे ही मौन धारण कर लिया है जिस प्रकार उसने लिंकन की मृत्यु पर किया था, और यह समझना एक मायने में बहुत गहरा और बहुत साधारण काम है।"

6. गाँधी को समझना

हमारे पास बहुत सारे स्रोत उपलब्ध हैं जिनके जरिए हम गाँधी जी के राजनीतिक सफर तथा राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास को सूत्रबद्ध कर सकते हैं।

6.1 सार्वजनिक स्वर और निजी लेखन

इस दिशा में महात्मा गाँधी और उनके सहयोगियों व प्रतिद्वंद्वियों, दोनों तरह के समकालीनों के लेखन और भाषण एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इन लेखनों में हमें इस बात का खयाल रखना चाहिए कि किस चीज को जनता के लिए लिखा गया था और किस चीज को अन्य उद्देश्यों के लिए लिखा गया था। उदाहरण के लिए, भाषणों से हमें किसी व्यक्ति के सार्वजनिक विचारों को सुनने का मौका मिलता है जबकि उसके व्यक्तिगत पत्र हमें उसके निजी विचारों की झलक देते हैं। इन पत्रों में हम लिखने वाले को अपना गुस्सा और पीड़ा, असंतोष और बेचैनी, अपनी आशाएँ और हताशाएँ व्यक्त करते हुए देख सकते हैं। इनमें से बहुत सारी बातों को वह अपने सार्वजनिक वक्तव्यों में व्यक्त नहीं कर सकते। लेकिन हमें यह भी याद रखना चाहिए कि कई बार निजी-सार्वजनिक का यह फर्क टूट जाता है। बहुत सारे पत्र व्यक्तियों को लिखे जाते हैं इसलिए वे व्यक्तिगत पत्र होते हैं लेकिन कुछ हद तक वे जनता के लिए भी होते हैं। उन पत्रों की भाषा इस अहसास से भी तय होती है कि संभव है एक दिन उन्हें प्रकाशित कर दिया जाएगा। किसी पत्र के प्रकाशित हो जाने की आशंका के कारण बहुधा लोग निजी पत्रों में भी अपना मत स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त नहीं कर पाते। महात्मा गाँधी *हरिजन* नामक अपने अखबार में उन पत्रों को प्रकाशित करते थे जो उन्हें लोगों से मिलते थे। नेहरू ने राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान उन्हें लिखे गए पत्रों का एक संकलन तैयार किया और उसे *ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स* (पुराने पत्रों का पुलिंदा) के नाम से प्रकाशित किया।

स्रोत 7

एक घटना पत्रों के आइने में

1920 के दशक में जवाहरलाल नेहरू समाजवाद से लगातार प्रभावित होते जा रहे थे और 1928 में जब वे यूरोप की यात्रा से लौटे तो सोवियत संघ के प्रयोगों से गहरे तौर से प्रभावित थे। जब उन्होंने समाजवादियों (जयप्रकाश नारायण, नरेन्द्र देव, एन.जी. रंगा एवं अन्य) के साथ घनिष्ठतापूर्वक काम करना शुरू किया तो कांग्रेस के भीतर समाजवादियों और रूढ़िवादियों के बीच एक खाई पैदा हो गई। 1936 में कांग्रेस का अध्यक्ष बनने के बाद नेहरू ने फ़ासीवाद के खिलाफ़ जमकर बयान दिए और मजदूरों व किसानों की माँगों का समर्थन किया।

नेहरू के समाजवादी वक्तव्यों से चिंतित रूढ़िवादियों ने राजेन्द्र प्रसाद और सरदार पटेल के नेतृत्व में कांग्रेस वर्किंग कमेटी से इस्तीफ़े की धमकी दे डाली। दूसरी ओर, बम्बई के कुछ प्रसिद्ध उद्योगपतियों ने नेहरू की आलोचना करते हुए बयान जारी कर दिया। इसके बाद प्रसाद और नेहरू, दोनों महात्मा गाँधी के पास गए और वर्धा स्थित उनके आश्रम में उनसे मिले। गाँधी जी ने एक बार फिर मध्यस्थ की भूमिका अदा करते हुए नेहरू के रेडिकल तेवरों पर अंकुश लगाने तथा प्रसाद एवं अन्य नेताओं को नेहरू के नेतृत्व की अहमियत पर ध्यान देने के लिए प्रेरित किया।

ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स में नेहरू ने उस समय के बहुत सारे पत्रों को प्रकाशित किया है। इन पत्रों के अंशों को आगे पढ़िए:

स्रोत 7 जारी...

ए बंच ऑफ लेटर्स से

मेरे प्रिय जवाहरलाल जी, ***वर्धा, 1 जुलाई 1936***

कल आपसे विदा लेने के बाद हमने महात्मा जी के साथ लंबी बातचीत और आपस में देर तक चर्चा की। हम समझते हैं कि आपको हमारी ओर से अपनाए गए मार्ग पर काफी दुख है और हमारे पत्र के भावों से आप विशेषत: आहत हुए हैं। आपको शर्मिंदा करना या आपको चोट पहुँचाना कभी भी हमारा इरादा नहीं था और अगर आपको ऐसा लगता है कि इससे आपको ठेस पहुँची है तो हम बिना किसी हिचक के अपना पत्र वापस ले लेते या उसमें संशोधन कर लेते। परंतु हमने समग्र स्थिति पर पुनर्विचार करने के बाद यह पत्र तथा अपने इस्तीफे वापस लेने का फैसला कर लिया है।

हमें लगता है कि प्रेस में छपे आपके सारे बयानों में आप कांग्रेस के सामान्य कार्यक्रम पर उतना नहीं बोल रहे हैं जितना कि एक ऐसे विषय पर बोल रहे हैं जिसे कांग्रेस ने स्वीकृति नहीं दी है और ऐसा करते हुए आप वर्किंग कमेटी में हमारे मुट्ठी भर सहयोगियों और कांग्रेस के अल्पसंख्यक वर्ग के प्रवक्ता की तरह बोल रहे हैं न कि बहुल वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में, जिसकी कांग्रेस अध्यक्ष के नाते हमें आपसे अपेक्षा थी।

हमारे विरुद्ध लगातार एक अभियान चलाया जा रहा है जिसमें हमें ऐसे व्यक्तियों के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिनका समय बीत चुका है, जो पुराने पड़ चुके और वर्तमान में अप्रासंगिक हो चुके विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। हमें ऐसे लोगों के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है जो देश की प्रगति में बाधक हैं और जिन्हें उन पदों से हटा दिया जाना चाहिए जो उन्होंने अनाधिकार प्राप्त कर लिए हैं... हमने महसूस किया है कि अन्य लोगों ने हमारे साथ भारी अन्याय किया है और कर रहे हैं, तथा हमें आपसे वह संरक्षण नहीं मिल रहा है जो एक सहकर्मी और हमारा अध्यक्ष होने के नाते हमें आपसे मिलना चाहिए...।

आपका
राजेन्द्र प्रसाद

मेरे प्रिय बापू, ***इलाहाबाद, 5 जुलाई 1936***

मैं कल रात ही यहाँ पहुँचा हूँ। जब से मैं वर्धा से आया हूँ, शारीरिक दुर्बलता और मानसिक अशांति से घिरा हुआ हूँ।

... यूरोप से लौटने के बाद से मैंने पाया है कि वर्किंग कमेटी की बैठकों में मैं बुरी तरह थक जाता हूँ। मेरी ऊर्जा क्षीण पड़ जाती है और हर नए अनुभव के बाद मैं और ज्यादा बूढ़ा महसूस करने लगता हूँ...।

चीजों को दुरुस्त करने और संकट को टालने में आपने जो कष्ट उठाया है उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ।

मैंने राजेन्द्र बाबू द्वारा भेजा गया (दूसरा) पत्र दोबारा पढ़ा है और उन्होंने जो गंभीर आरोप मुझ पर लगाए हैं उन्हें देखा है...।

तथ्य को चाहे कितनी भी विनम्रता से प्रस्तुत किया जाए, उनका आशय यह है कि मैं एक असहनीय मुसीबत बन चुका हूँ और मेरे जो भी गुण हैं – थोड़ी-बहुत क्षमता, ऊर्जा, गंभीरता, कमोबेश प्रभावित करने वाला व्यक्तित्व – सभी खतरनाक बन चुके हैं क्योंकि वे एक गलत रथ (समाजवाद) को आगे बढ़ा रहे हैं। इन बातों के निष्कर्ष स्पष्ट हैं।

मैंने अपनी पुस्तक में और उसके पश्चात भी अपने वर्तमान विचारों के बारे में विस्तार से लिखा है। मेरे बारे में कोई फैसला लेने के लिए सामग्री की कमी नहीं है। मेरे वे विचार आकस्मिक भी नहीं हैं। वे मेरा हिस्सा हैं और यद्यपि मैं भविष्य में उन्हें बदल सकता हूँ लेकिन जब तक मैं उन्हें नहीं छोड़ता मुझे उनको अभिव्यक्त करना ही होगा। क्योंकि मैं व्यापक एकता को महत्वपूर्ण मानता हूँ इसलिए मैंने कोमलतम शब्दों में उन्हें व्यक्त किया है और निश्चित निष्कर्ष की बजाय विचार-विमर्श के लिए प्रस्ताव के रूप में ही ज्यादा प्रस्तुत किया है। मुझे इस पद्धति में और कांग्रेस जो कुछ भी कर रही है, उसके बीच कोई टकराव दिखाई नहीं देता। जहाँ तक चुनावों का संबंध है, मेरा मानना है कि मेरा रवैया इस दिशा में निश्चय ही एक लाभकारी साधन था क्योंकि उससे जनता में उत्साह का संचार हुआ है। परंतु मेरे कोमल और अस्पष्ट रवैये को मेरे सहयोगी खतरनाक और क्षतिकारक मानते हैं। मुझे यहाँ तक कहा गया है कि भारत में गरीबी और बेरोजगारी पर इस तरह बार-बार जोर देना बेवकूफी थी, या कम से कम यह गलत तो था ही...।

आपने मुझे बताया था कि आप कोई वक्तव्य जारी करना चाहते हैं। मैं आपके वक्तव्य का स्वागत करूँगा क्योंकि मैं मानता हूँ कि हर दृष्टिकोण देश के सामने प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

प्रेमपूर्वक आपका
जवाहरलाल

स्रोत 7 जारी...

प्रिय जवाहरलाल,

सेगाँव, 15 जुलाई 1936

तुम्हारा पत्र मेरा हृदय छू गया। तुम्हें सबसे ज्यादा ठेस महसूस हुई है। तथ्य यह है कि तुम्हारे साथियों के पास तुम्हारे जैसा साहस और बेबाकी नहीं है। इसके परिणाम विनाशकारी रहे हैं। मैंने उन्हें हमेशा समझाया है कि वे तुमसे उन्मुक्त और निर्भय होकर बात करें। परंतु क्योंकि उनके पास साहस नहीं है इसलिए वे जब भी बोलते हैं ऊटपटाँग ही बोलते हैं और उससे तुम चिढ़ जाते हो। मैं तुम्हें बताता हूँ, वे तुम्हें इसलिए डरा रहे हैं क्योंकि तुम उनसे चिढ़ जाते हो और उनके सामने धैर्य खो देते हो। वे तुम्हारी फटकार और साहबी अंदाज से आहत हैं और सबसे बढ़कर वे तुम्हारे भीतर जो अचूकता और श्रेष्ठतर ज्ञान का भाव दिखायी देता है उससे परेशान हैं। उन्हें लगता है कि तुमने उनके साथ न्यूनतम सौम्यता का व्यवहार भी नहीं किया है और कभी भी समाजवादियों के व्यंग्यबाणों या गलत निरूपण से उनका बचाव नहीं किया है।

मुझे यह पूरा प्रसंग एक त्रासद प्रहसन जैसा दिखाई दे रहा है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम भी इस पूरे मसले को हलका होकर देखो।

इस काँटों के ताज (कांग्रेस की अध्यक्षता) के लिए तुम्हारा नाम मैंने ही प्रस्तावित किया था। भले ही सिर छिल जाए इसे उतारना मत। कमेटी की बैठकों में अपना हास्य-विनोद दोबारा दिखाओ। यह तुम्हारे लिए सबसे सामान्य भूमिका है। चिंतित, चिड़चिड़े व्यक्ति का स्वभाव तुम पर नहीं जँचता।

मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे तार के माध्यम से बताओ कि यह पत्र पढ़ते ही तुम्हें वैसी ही खुशी मिली है जैसे लाहौर में नए साल के मौके पर तुम खुश हुए थे जब, कहते हैं कि तुम तिरंगे के चारों ओर झूम-झूम कर नाचे थे।
अपने कंठ को थोड़ा आराम दो।

मेरा प्यार
बापू

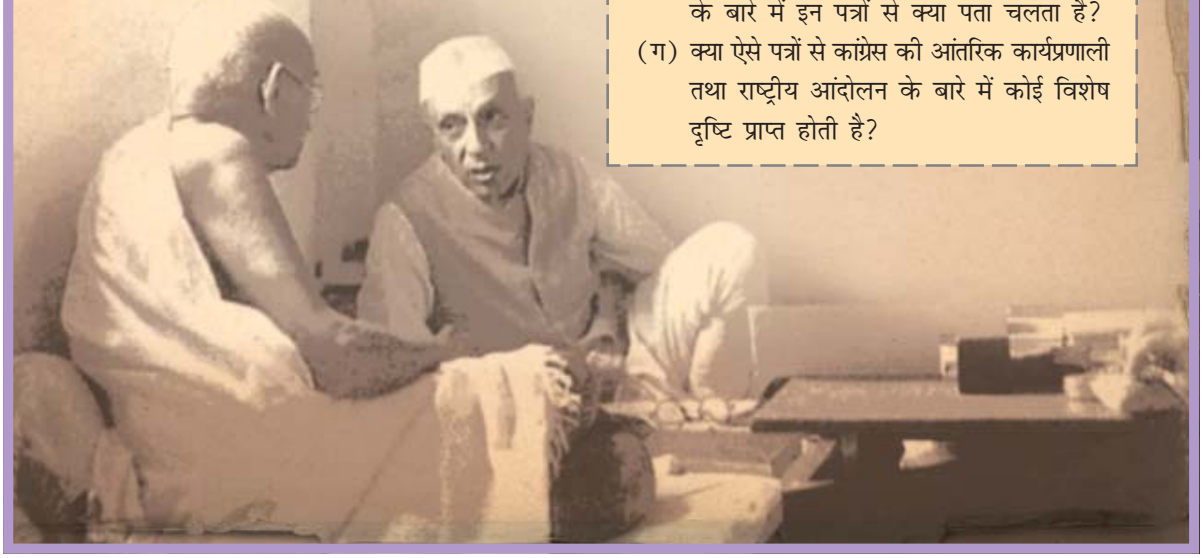

➲

(क) इन पत्रों से इस बारे में क्या पता चलता है कि समय के साथ कांग्रेस के आदर्श किस तरह विकसित हो रहे थे?

(ख) राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गाँधी की भूमिका के बारे में इन पत्रों से क्या पता चलता है?

(ग) क्या ऐसे पत्रों से कांग्रेस की आंतरिक कार्यप्रणाली तथा राष्ट्रीय आंदोलन के बारे में कोई विशेष दृष्टि प्राप्त होती है?

6.2 छवि गढ़ना

आत्मकथाएँ भी हमें उस अतीत का ब्योरा देती हैं जो मानवीय विवरणों के हिसाब से काफ़ी समृद्ध होता है। परंतु यहाँ भी हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हम आत्मकथाओं को किस तरह पढ़ते हैं और उनकी कैसे व्याख्या करते हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि ये आत्मकथाएँ प्राय: स्मृति के आधार पर लिखी गई होती हैं। उनसे हमें पता चलता है कि लिखने वाले को क्या याद रहा, उसे कौन सी चीजें महत्त्वपूर्ण दिखाई दीं या वह क्या याद रखना चाहता था, या वह औरों की नज़र में अपनी ज़िंदगी को किस तरह दर्शाना चाहता है। आत्मकथा लिखना अपनी तसवीर गढ़ने का एक तरीक़ा है। फलस्वरूप, इन विवरणों को पढ़ते हुए हमें वह देखने का प्रयास करना चाहिए जो लेखक हमें नहीं दिखाना चाहता : हमें उन चुप्पियों का कारण समझना चाहिए – इच्छित या अनिच्छित विस्मृति के उन कृत्यों को समझना चाहिए।

6.3 पुलिस की नज़र से

औपनिवेशिक शासक ऐसे तत्वों पर हमेशा कड़ी नजर रखते थे जिन्हें वे अपने विरुद्ध मानते थे। इस लिहाज से सरकारी रिकॉर्ड्स भी हमारे अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। उस समय पुलिसकर्मियों तथा अन्य अधिकारियों द्वारा लिखे गए पत्र तथा रिपोर्टें गोपनीय होती थीं; लेकिन अब ये दस्तावेज़ अभिलेखागारों में उपलब्ध हैं जिन्हें कोई भी देख सकता है।

आइए एक ऐसे ही स्रोत को देखें। बीसवीं सदी के शुरुआती सालों से गृह विभाग द्वारा तैयार की जाने वाली पाक्षिक रिपोर्टें (हर पंद्रह दिन या हर पखवाड़े में तैयार होने वाली रिपोर्टें) इस दिशा में काफ़ी महत्त्वपूर्ण रही हैं। ये रिपोर्टें स्थानीय इलाक़ों से पुलिस की मार्फ़त मिलने वाली सूचनाओं पर आधारित होती थीं लेकिन उनमें यह भी दिख जाता था कि आला अधिकारी क्या देखते थे या क्या मानना चाहते थे। राजद्रोह और विद्रोह की संभावना मानते हुए भी वे ख़ुद को इस बात का आश्वासन देना चाहते थे कि इन आशंकाओं का कोई आधार नहीं है। यदि आप नमक सत्याग्रह के समय की पाक्षिक रिपोर्टों को देखें तो पाएँगे कि गृह विभाग यह मानने को तैयार नहीं था कि महात्मा गाँधी की कार्रवाइयों के प्रति कोई व्यापक जनसमर्थन पैदा हो रहा था। रिपोर्टों में इस यात्रा को एक नाटक, एक करतब, ब्रिटिश शासन के खिलाफ आवाज उठाने के प्रति अनिच्छुक तथा शासन के अंतर्गत सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे लोगों को गोलबंद करने की एक हताश कोशिश के रूप में प्रस्तुत किया जाता था।

चित्र 13.16
सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान बम्बई में कांग्रेस के वॉलंटियरों की पुलिस से भिड़ंत।

➲ क्या आपको इस तसवीर और पुलिस की पाक्षिक रिपोर्टों में दी गई जानकारियों के बीच कोई अंतर्विरोध दिखायी देता है?

स्रोत 8

गृह विभाग की पाक्षिक रिपोर्टें
(गोपनीय)

मार्च 1930 का पहला पखवाड़ा

गुजरात में आ रहे तेज़ राजनीतिक बदलावों पर यहाँ गहरी नज़र रखी जा रही है। इनसे प्रांत की राजनीतिक परिस्थितियों पर किस हद तक और क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका अभी अंदाजा लगाना मुश्किल है। रबी की फसल अच्छी हुई है इसलिए फिलहाल किसान फसलों की कटाई में व्यस्त हैं। विद्यार्थी आने वाली परीक्षाओं की तैयारी में जुटे हैं।

मध्य प्रांत और बेरार

श्री वल्लभ भाई पटेल की गिरफ़्तारी पर कांग्रेसियों के अलावा और कहीं कोई खास उत्तेजना पैदा नहीं हुई। लेकिन नागपुर नगर कांग्रेस कमेटी द्वारा गाँधी की यात्रा शुरू होने पर उन्हें बधाई देने के लिए आयोजित सभा में 3,000 से ज्यादा लोग जुटे थे।

बंगाल

गाँधी के सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत पिछले पखवाड़े की सबसे महत्वपूर्ण घटना रही। श्री जे.एम. सेनगुप्ता ने अखिल बंगाल सविनय अवज्ञा परिषद् का गठन किया है। बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी ने अखिल बंगाल अवज्ञा परिषद् बनाई है। इन परिषदों के गठन के अलावा बंगाल में सविनय अवज्ञा के प्रश्न पर और कोई सक्रिय कदम अभी नहीं उठाया गया है।

जिलों से मिली रिपोर्टों से पता चलता है कि जो बैठकें आयोजित की गई उनमें लोगों ने कोई विशेष उत्साह नहीं दिखाया और आम जनता पर कोई गहरा असर नहीं छोड़ा है। गौरतलब बात यह है कि इन बैठकों में महिलाओं की संख्या बढ़ती जा रही है।

बिहार और उड़ीसा

कांग्रेस की गतिविधि के बारे में रिपोर्ट करने लायक कुछ खास नहीं है। चौकीदारी टैक्स का भुगतान न करने के बारे में एक अभियान की काफी चर्चा हो रही है लेकिन अभी इस प्रयोग के लिए किसी इलाके का चुनाव नहीं किया गया है। गाँधी की गिरफ़्तारी के बारे में खूब कयास लगाए जा रहे हैं लेकिन ऐसा लगता है कि यह भविष्यवाणी सच साबित न हो पाने के कारण उनकी योजनाएँ धरी की धरी रह गई हैं।

मद्रास

गाँधी का सविनय अवज्ञा अभियान शुरू होने से बाकी मुद्दे हाशिये पर चले गए हैं। आम जनता उनकी यात्रा को नाटकीय और उनके कार्यक्रम को अव्यावहारिक मानती है परंतु क्योंकि हिंदू जनता उन्हें अगाध श्रद्धा की दृष्टि से देखती है इसलिए गिरफ़्तारी की संभावना, जिसके बारे में वे खुद बहुत उत्सुक हैं, और उसके राजनीतिक प्रभावों के बारे में काफी गलतफहमियाँ फैली हुई हैं।

12 मार्च को सविनय अवज्ञा अभियान के उद्घाटन दिवस के रूप में मनाया गया। बंबई में सुबह को राष्ट्रीय झंडे को सलामी दी गई।

बम्बई

केसरी प्रेस ने आक्रामक भाषा का प्रयोग किया है और हमेशा की तरह आग उगलने के अंदाज में लिखा है : "अगर सरकार सत्याग्रह की ताकत परखना चाहती है तो उसे पता होना चाहिए कि सत्याग्रह की सक्रियता और निष्क्रियता, दोनों से सरकार को ही नुकसान पहुँचेगा। यदि सरकार गाँधी जी को गिरफ़्तार करती है तो उसे राष्ट्र के कोप का भाजन बनना पड़ेगा और यदि सरकार ऐसा नहीं करती है तो सविनय अवज्ञा आंदोलन फैलता जाएगा। इसलिए हमारा मानना है कि अगर सरकार श्री गाँधी को दंडित करती है तो भी राष्ट्र की विजय होगी और अगर सरकार उन्हें अपने रास्ते पर चलने देती है तो राष्ट्र की और भी बड़ी विजय होगी।"

दूसरी ओर *विविध वृत्त* नामक मध्यमार्गी अखबार ने इस आंदोलन की व्यर्थता की ओर संकेत किया है और कहा है कि यह आंदोलन अपना घोषित उद्देश्य प्राप्त नहीं कर पाया है लेकिन उसने सरकार को भी चेतावनी दी है कि दमन का रास्ता उसके उद्देश्य को कमजोर कर देगा।

जारी...

स्रोत 8 जारी...

मार्च 1930 का दूसरा पखवाड़ा

बंगाल

सबका ध्यान समुद्र तट तक गाँधी की यात्रा और सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने के लिए उनकी तैयारी पर केंद्रित है। चरमपंथी अखबार उनकी गतिविधियों और भाषणों के बारे में विस्तार से लिख रहे हैं और पूरे बंगाल में हो रही बैठकों तथा उनमें पारित होने वाले प्रस्तावों के बारे में विस्तार से जानकारी दी जा रही है। परंतु गाँधी जिस सविनय अवज्ञा की वकालत कर रहे हैं उसके प्रति विशेष उत्साह नहीं दिखाई देता...।

सामान्य रूप से लोग इस बात का इंतजार कर रहे हैं कि गाँधी के साथ क्या किया जाता है और संभावना यही है कि अगर उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई की गई तो बंगाल के ज्वलनशील हालात में चिंगारी भड़क उठेगी। लेकिन फिलहाल ऐसी आग भड़कने के कोई गंभीर आसार दिखाई नहीं देते।

मध्य प्रांत और बेरार

12 मार्च को गाँधी की यात्रा शुरू होने के अवसर पर नागपुर में इन बैठकों में काफी लोग शामिल हुए और ज्यादातर स्कूल-कॉलेज सूने दिखाई दिए।

शराब की दुकानों का बहिष्कार तथा वन क़ानूनों का उल्लंघन हमले की सबसे संभावित कार्यदिशा दिखाई पड़ती है।

पंजाब

ऐसा लगता है कि झेलम जिले में नमक क़ानून तोड़ने के लिए संगठित प्रयास किए जाएँगे; मुल्तान में जल कर न चुकाने के आंदोलन को पुनर्जीवित किया जाएगा; संभवतः गुजराँवाला में राष्ट्रीय झंडे के संबंध में कोई आंदोलन शुरू हो सकता है।

संयुक्त प्रांत

पिछले पखवाड़े के दौरान राजनीतिक गतिविधियों में निश्चित रूप से तेज़ी आई है। कांग्रेस पार्टी का मानना है कि जनता की रुचि बनाए रखने के लिए उसे कुछ अनोखा काम करना चाहिए। श्री गाँधी के आदेश पर वॉलंटियरों की भर्ती, गाँवों में प्रचार और नमक क़ानून के उल्लंघन की तैयारी जैसी गतिविधियाँ कई जिलों से आ रही हैं।

अप्रैल 1930 का पहला पखवाड़ा

संयुक्त प्रांत

इस पखवाड़े में चीजें बहुत तेज़ी से आगे बढ़ी हैं। राजनीतिक सभाओं, जुलूसों और वॉलंटियरों की भर्ती के अलावा आगरा, कानपुर, बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ, मेरठ, रायबरेली, फर्रुखाबाद, इटावा, बलिया और मैनपुरी में नमक कानून की खुलेआम अवहेलना की जा रही है।

चेवकी रेलवे स्टेशन पर पंडित जवाहरलाल नेहरू को 14 अप्रैल की सुबह गिरफ़्तार कर लिया गया था। उस समय वह यूथ लीग की बैठक में शामिल होने मध्य प्रांतों की ओर जा रहे थे। उन्हें रेलवे स्टेशन से फौरन नैनी सेंट्रल जेल ले जाया गया। वहाँ उन पर मुकदमा चला और उन्हें 6 माह के साधारण कारावास की सजा दी गई।

बिहार और उड़ीसा

कुछ स्थानों पर गैरक़ानूनी नमक उत्पादन के अनोखे, मगर छोटे प्रयास हो रहे हैं...।

मध्य प्रांत

जबलपुर में सेठ गोविंद दास ने रासायनिक नमक बनाने का प्रयास किया है जिसकी लागत सामान्य नमक के बाजार भाव से कई गुना ज्यादा रही।

मद्रास

जब पुलिस ने समुद्र के पानी को उबालकर बनाए गए नमक को जब्त करने का प्रयास किया तो विशाखापटनम में पुलिस को भारी विरोध का सामना करना पड़ा। अन्य स्थानों पर अवैध नमक को जब्त करने का कोई खास विरोध नहीं किया गया है।

बंगाल

मुफ़स्सिल इलाकों में अवैध नमक निर्माण की कोशिशें की गई हैं। 24 परगना और मिदनापुर जिले इन गतिविधियों का मुख्य केंद्र रहे हैं।

वास्तव में बहुत कम नमक बनाया गया है और उसमें से भी ज़्यादातर जब्त कर लिया गया है। उसको बनाने के लिए प्रयोग किए गए बर्तनों को नष्ट कर दिया गया।

➲ पाक्षिक रिपोर्टों को ध्यान से पढ़िए। याद रखिए कि ये औपनिवेशिक गृह विभाग की गोपनीय रिपोर्टों के अंश हैं। इन रिपोर्टों में हमेशा केवल पुलिस की ओर से भेजी गई जानकारियों को ही नहीं लिखा जाता था।

(1) स्रोत की पृष्ठभूमि से यह बात किस हद तक प्रभावित होती है कि इन रिपोर्टों में क्या कहा जा रहा है? उपरोक्त अंशों से उद्धरण लेते हुए अपने तर्क को स्पष्ट कीजिए।

(2) क्या आपको लगता है कि गृह विभाग महात्मा गाँधी की संभावित गिरफ़्तारी के बारे में लोगों की सोच को अपनी रिपोर्टों में सही ढंग से दर्ज नहीं कर रहा था? यदि आपका उत्तर हाँ है, तो उसके समर्थन में कारण बताइए। 5 अप्रैल 1930 को दांडी में अपने भाषण में गाँधी जी ने गिरफ़्तारियों के सवाल पर जो कहा था, उसे दोबारा पढ़िए।

(3) महात्मा गाँधी को क्यों गिरफ़्तार नहीं किया गया?

(4) गृह विभाग लगातार यह क्यों कहता रहा कि दांडी यात्रा के प्रति लोगों में कोई उत्साह नहीं है।

6.4 अखबारों से

अंग्रेज़ी तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में छपने वाले समकालीन अख़बार भी एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं जो महात्मा गाँधी की गतिविधियों पर नजर रखते थे और उनके बारे में ख़बरें छापते थे। ये अख़बार इस बात का भी संकेत देते हैं कि आम भारतीय उनके बारे में क्या सोचते थे। लेकिन अख़बारी ब्योरों को पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं माना जाना चाहिए। ये अख़बार प्रकाशित करने वाले ऐसे लोग थे जिनकी अपनी राजनीतिक सोच और विश्व दृष्टिकोण था। उनके विचारों से ही यह तय होता था कि क्या प्रकाशित किया जाएगा और घटनाओं की रिपोर्टिंग किस तरह की जाएगी। इसलिए लंदन से निकलने वाले अख़बार के विवरण भारतीय राष्ट्रवादी अख़बार में छपने वाली रिपोर्टों जैसे नहीं हो सकते थे।

हमें इन रिपोर्टों को देखना तो चाहिए लेकिन उनके आधार पर नतीजे निकालते हुए खास अहतियात भी बरतनी चाहिए। इन अखबारों के हर वक्तव्य को यथार्थ घटनाक्रम का शब्दशः सच ब्योरा नहीं माना जा सकता। अकसर उनमें ऐसे अफसरों की आशंकाओं और बेचैनियों की झलक भी मिलती है जो किसी आंदोलन को नियंत्रित नहीं कर पा रहे थे और उसके प्रसार के बारे में बेचैन थे। उन्हें समझ में नहीं आता था कि महात्मा गाँधी को गिरफ़्तार करना चाहिए या नहीं, अथवा गिरफ़्तारी का क्या परिणाम होगा। औपनिवेशिक सरकार, जनता और उसकी गतिविधियों पर जितनी नजर रखती थी, अपने शासन के आधार के बारे में उसकी चिंता उतनी ही बढ़ती जाती थी।

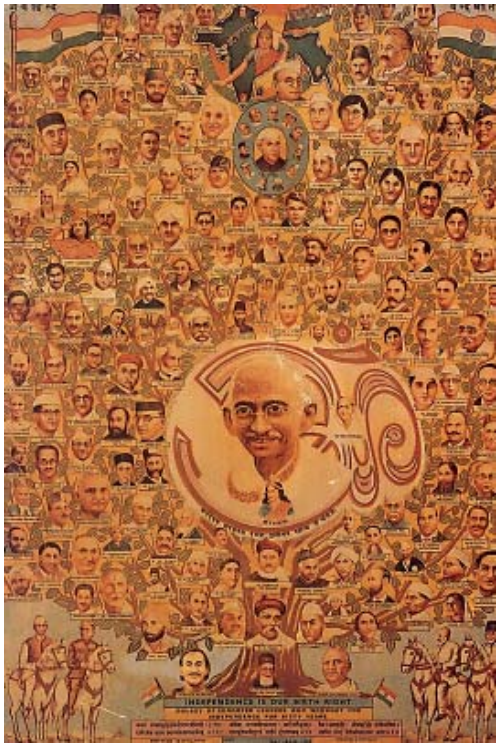

चित्र 13.17
इस तरह के चित्रों से यह प्रदर्शित होता है कि महात्मा गाँधी के बारे में लोगों की समझ क्या थी और लोकप्रिय छापों में उन्हें कैसे व्यक्त किया जाता था। राष्ट्रवाद के वृक्ष में महात्मा गाँधी केंद्र में छाया के रूप में दिख रहे हैं तथा उनमें चारों ओर अन्य नेताओं और मनीषियों के चित्र हैं।

काल-रेखा

1915	महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका से लौटते हैं
1917	चंपारन आंदोलन
1918	खेड़ा (गुजरात) में किसान आंदोलन तथा अहमदाबाद में मजदूर आंदोलन
1919	रॉलट सत्याग्रह (मार्च-अप्रैल)
1919	जलियांवाला बाग हत्याकांड (अप्रैल)
1921	असहयोग आंदोलन और खिलाफ़त आंदोलन
1928	बारदोली में किसान आंदोलन
1929	लाहौर अधिवेशन (दिसंबर) में "पूर्ण स्वराज" को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया जाता है
1930	सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू; दांडी यात्रा (मार्च-अप्रैल)
1931	गाँधी-इर्विन समझौता (मार्च); दूसरा गोल मेज सम्मेलन (दिसंबर)
1935	गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट में सीमित प्रातिनिधिक सरकार के गठन का आश्वासन
1939	कांग्रेस मंत्रिमंडलों का त्यागपत्र
1942	भारत छोड़ो आंदोलन शुरू (अगस्त)
1946	महात्मा गाँधी साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने के लिए नोआखली तथा अन्य हिंसाग्रस्त इलाक़ों का दौरा करते हैं

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. महात्मा गाँधी ने खुद को आम लोगों जैसा दिखाने के लिए क्या किया?
2. किसान महात्मा गाँधी को किस तरह देखते थे?
3. नमक कानून स्वतंत्रता संघर्ष का महत्त्वपूर्ण मुद्दा क्यों बन गया था?
4. राष्ट्रीय आंदोलन के अध्ययन के लिए अख़बार महत्त्वपूर्ण स्रोत क्यों हैं?
5. चरखे को राष्ट्रवाद का प्रतीक क्यों चुना गया?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250 से 300 शब्दों में)

6. असहयोग आंदोलन एक तरह का प्रतिरोध कैसे था?
7. गोल मेज सम्मेलन में हुई वार्ता से कोई नतीजा क्यों नहीं निकल पाया?
8. महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय आंदोलन के स्वरूप को किस तरह बदल डाला?
9. निजी पत्रों और आत्मकथाओं से किसी व्यक्ति के बारे में क्या पता चलता है? ये स्रोत सरकारी ब्योरों से किस तरह भिन्न होते हैं?

मानचित्र कार्य

10. दाण्डी मार्च के मार्ग का पता लगाइए। गुजरात के नक्शे पर इस यात्रा के मार्ग को चिह्नित कीजिए और उस पर पड़ने वाले मुख्य शहरों व गाँवों को चिह्नित कीजिए।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. दो राष्ट्रवादी नेताओं की आत्मकथाएँ पढ़िए। देखिए कि उन दोनों में लेखकों ने अपने जीवन और समय को किस तरह अलग-अलग प्रस्तुत किया है और राष्ट्रीय आंदोलन की किस प्रकार व्याख्या की है। देखिए कि उनके विचारों में क्या भिन्नता है। अपने अध्ययन के आधार पर एक रिपोर्ट लिखिए।
12. राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान घटी कोई एक घटना चुनिए। उसके विषय में तत्कालीन नेताओं द्वारा लिखे गए पत्रों और भाषणों को खोज कर पढ़िए। उनमें से कुछ अब प्रकाशित हो चुके हैं। आप जिन नेताओं को चुनते हैं उनमें से कुछ आपके इलाके के भी हो सकते हैं। उच्च स्तर पर राष्ट्रीय नेतृत्व की गतिविधियों को स्थानीय नेता किस तरह देखते थे इसके बारे में जानने की कोशिश कीजिए। अपने अध्ययन के आधार पर आंदोलन के बारे में लिखिए।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

शेखर बंद्योपाध्याय, 2004
फ्रॉम प्लासी टू पार्टीशन : ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, ऑरिएंट लॉंगमैन, नयी दिल्ली

सर्वपल्ली गोपाल, 1975
जवाहरलाल नेहरू : ए बायोग्राफी, खंड I, 1889-1947, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

डेविड हार्डीमान, 2003
गाँधी इन हिज़ टाइम एंड आवर्स, पर्मानेंट ब्लैक, नयी दिल्ली

ज्ञानेन्द्र पांडेय, 1978
दि असेंडेंसी ऑफ द कांग्रेस इन उत्तर प्रदेश, 1926-34,
ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

सुमित सरकार, 1983
मॉडर्न इंडिया, 1885-1947,
मैक्मिलन, नयी दिल्ली

***कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी* के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं**
http:/www.gandhiserve.org/cwmg/cwmg.html

अध्याय चौदह

विभाजन को समझना
राजनीति, स्मृति, अनुभव

चित्र 14.1
विभाजन की वजह से लाखों लोग उजड़ गए, 'शरणार्थी' बनकर रह गए। उनको अपनी रेशा-रेशा जिंदगी नए सिरे से बुननी पड़ी।

हमें पता है कि 1947 में हमारी आज़ादी से जुड़ी खुशी विभाजन की हिंसा और बर्बरता से बदरंग पड़ गई थी। ब्रिटिश-भारत के दो संप्रभु राज्यों, भारत और पाकिस्तान (जिसके पश्चिमी और पूर्वी भाग थे), में बँटवारे से कई आकस्मिक परिवर्तन आए। लाखों जानें गईं, कइयों की जिंदगियाँ पलक झपकते बदल गईं, शहर बदले, भारत बदला, एक नए देश का उदय हुआ और ऐसा जनसंहार, हिंसा एवं विस्थापन हुआ जिसका इतिहास में पहले कोई उदाहरण न था।

इस अध्याय में हम 1947 के बँटवारे का अध्ययन करेंगे : यह क्यों और कैसे हुआ और इसके चलते 1946 से '50 की काल-अवधि में (और 1950 के बाद भी) आम लोगों के क्या दर्दनाक अनुभव रहे। अध्याय में इस बात की भी चर्चा की जाएगी कि लोगों से बातचीत और साक्षात्कारों के ज़रिए, यानी कि मौखिक इतिहास का प्रयोग करते हुए, हम इन अनुभवों के इतिहास को कैसे रच सकते हैं। इस अध्याय में मौखिक इतिहास के फ़ायदों और उसकी सीमाओं

को दिखाया गया है। साक्षात्कारों से हम किसी समाज के अतीत के ऐसे आयामों के बारे में काफ़ी जानकारी हासिल कर सकते हैं जिनके बारे में दूसरी तरह के स्रोतों से हमें बहुत कम जानकारी मिल पाती है या कोई जानकारी नहीं मिल पाती है। परंतु कई मामलों के बारे में हमें साक्षात्कार की पद्धति से ज़्यादा पता नहीं चलता। ऐसे पहलुओं के इतिहास को रचने के लिए हमें किसी और क़िस्म की सामग्री की मदद लेनी पड़ती है। अध्याय के अंत में हम इस मुद्दे पर दुबारा लौटेंगे।

चित्र 14.2
कैमरे की तसवीरों से हमें उस समय की हिंसा का एहसास होता है।

1. बँटवारे के कुछ अनुभव

यहाँ तीन घटनाएँ दी जा रही हैं जिनका बयान उन दुखद दिनों से गुज़रे लोगों ने 1993 में एक शोधकर्ता के आगे किया था। बयान करने वाले पाकिस्तानी थे और शोधकर्ता भारतीय। शोधकर्ता का उद्देश्य यह समझना था कि जो लोग पीढ़ियों से कमोबेश मेल-मिलाप से रहते आए थे उन्होंने 1947 में एक-दूसरे पर इतना ज़बरदस्त कहर कैसे ढाया।

स्रोत 1

"मैं तो सिर्फ़ अपने अब्बा पर चढ़ा हुआ क़र्ज़ चुका रहा हूँ"

शोधकर्ता की रिपोर्ट इस प्रकार है:

मैं 1992 की सर्दियों में पंजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर के इतिहास विभाग के पुस्तकालय में जाया करता था। वहाँ अब्दुल लतीफ़ नामक एक धर्मनिष्ठ अधेड़ सज्जन मेरी बहुत मदद किया करते थे। जितना उनके लिए करना ज़रूरी था, उससे भी आगे जाकर वे मुझे आवश्यक सामग्री मुहय्या करा देते थे और मेरी अनुरोध की हुई फ़ोटोकॉपियाँ अगली सुबह मेरे पहुँचने के पहले ही बड़े क़ायदे से तैयार रखते थे। मेरे काम के प्रति उनका यह रवैया मुझे इतना अनोखा लगता था कि एक दिन मैं अपने को रोक नहीं पाया और पूछ ही बैठा, 'लतीफ़ साहब, आप ज़रूरत से ज़्यादा आगे बढ़-बढ़कर मेरी इतनी मदद क्यों करते हैं?' अपनी घड़ी पर नज़र डालकर उन्होंने लपककर अपनी नमाज़ी टोपी उठाई और कहा, 'अभी तो मुझे तुरंत नमाज़ के लिए जाना है पर लौटकर मैं आपके सवाल का जवाब ज़रूर दूँगा।' आधे घंटे बाद अपने दफ़्तर में लौटते ही उन्होंने बात आगे बढ़ाई:

'हाँ, आपका सवाल। मैं.... मेरा मतलब है मेरे वालिद जम्मू से थे, जम्मू ज़िले के एक छोटे-से गाँव के बाशिंदे। इस गाँव में हिंदुओं का दबदबा था और अगस्त 1947 में इलाके के हिंदू गुंडों ने गाँव की तमाम मुसलमान आबादी को मार डाला। एक रोज़ तीसरे पहर जब हिंदुओं की भीड़ का पागलपन अपनी हदें पार कर रहा था तो मेरे अब्बा को पता चला कि गाँव में शायद वे ही एकमात्र मुस्लिम नौजवान हैं जो जिंदा बचे हैं। अपने पूरे ख़ानदान को वे पहले ही इस क़त्लेआम में खो चुके थे और अब भागने के रास्ते ढूँढ़ रहे थे। उन्हें एक दयालु बुजुर्ग हिंदू पड़ोसन का ख़याल आया। उन्होंने उनसे

अपने घर में पनाह देने की प्रार्थना की। वे अब्बा की मदद को राज़ी तो हुईं, मगर बोलीं, 'बेटा, अगर तुम यहाँ छिपते हो तो वे लोग हम दोनों को ही धर लेंगे। इससे कोई फ़ायदा नहीं होगा। तुम मेरे पीछे-पीछे वहाँ चलो जहाँ इन लोगों ने मुर्दों के ढेर लगा रखे हैं। तुम वहाँ *मुर्दे जैसे बनकर* लेट जाना और मैं तुम पर कुछ लाशें डाल दूँगी। बेटा *सारी रात* मुर्दों के बीच ऐसे ही लेटे रहना और सुबह पौ फटते ही जी-जान से सियालकोट की तरफ़ दौड़ जाना।

'मेरे अब्बा यह सुझाव मान गए। फिर वे दोनों वहाँ गए जहाँ लाशें पड़ी थीं। अब्बा चुपचाप ज़मीन पर लेट गए और बूढ़ी माई ने उन पर कई लाशें डाल दीं। कोई घंटे भर बाद हथियारबंद हिंदू दंगाइयों का एक जत्था वहाँ आ धमका। उनमें से एक चिल्लाया 'किसी में कुछ जान बची है?' और दूसरे लोग अपनी अनगढ़ लाठियों और बंदूकों से उस ढेर में जिंदगी के आसार तलाशने लगे। कोई चिल्लाया, 'अरे उस लाश की कलाई पर घड़ी है।' उसने राइफ़ल का कुंदा ज़ोर से अब्बा की उँगलियों पर दे मारा। अब्बाजी बताया करते थे कि घड़ी वाली कलाई की फैली हथेली को बिलकुल बिना हिलाए रखना उनके लिए कितना मुश्किल था। किसी तरह कुछ सेकंड तक वे ऐसा करने में कामयाब रहे, तभी दंगाइयों में से कोई बोला, 'अरे, एक घड़ी ही तो है। चलो, चलो यहाँ से, अँधेरा होने लगा है।' अब्बाजी की तक़दीर थी कि वे लोग चले गए और मेरे अब्बा पूरी रात उस मरघट के माहौल में लेटे रहे। सुबह की उजास होते ही वे सचमुच अपनी जान लेकर ही भागे। सियालकोट पहुँचने तक वे रुके ही नहीं।

'मैं आपकी मदद इसलिए करता हूँ कि एक हिंदू माई ने मेरे अब्बा की मदद की थी। मैं तो सिर्फ़ अपने अब्बा पर चढ़ा हुआ कर्ज़ चुका रहा हूँ।'

मैंने कहा, 'मगर मैं तो हिंदू नहीं, सिख ख़ानदान से या हद से हद एक मिले-जुले हिंदू-सिख ख़ानदान से हूँ।'

'मैं ठीक-ठाक नहीं जानता कि आपका मज़हब क्या है? आप केश भी नहीं रखते और मुसलमान भी नहीं हैं। सो, मेरे लिए तो आप हिंदू ही हैं और मैं जो थोड़ा-बहुत आपके लिए करता हूँ वह इसलिए कि एक हिंदू माई ने मेरे अब्बा को बचाया था।'

स्रोत 2

"बरसों हो गए, मैं किसी पंजाबी मुसलमान से नहीं मिला"

शोधकर्ता का दूसरा किस्सा लाहौर के एक यूथ हॉस्टल के मैनेजर के बारे में है :

मैं जगह की तलाश में हॉस्टल गया था और वहाँ मैंने तुरंत अपनी नागरिकता की घोषणा कर दी थी। मैनेजर ने कहा, 'आप हिंदुस्तानी हैं, इसलिए आपको मैं कमरा तो दे नहीं सकता मगर आपको चाय पिला सकता हूँ और एक क़िस्सा सुना सकता हूँ।' इतने ललचाने वाले प्रस्ताव पर मैं नहीं कैसे कह सकता था। मैनेजर ने शुरू किया –

'पचास के दशक के शुरुआती हिस्से में मेरी पोस्टिंग दिल्ली में हुई थी।' मैं ध्यान से सुन रहा था। मैं वहाँ पाकिस्तानी दूतावास में क्लर्क था। मेरे एक लाहौरी दोस्त ने मुझे एक रुक्का (छोटी चिट्ठी) दिया था जो कभी उसके पड़ोसी रहे एक व्यक्ति को देना था। वह व्यक्ति आजकल दिल्ली के पहाड़गंज में रह रहा था। एक दिन मैं अपनी साइकिल लेकर पहाड़गंज को चल पड़ा। जैसे ही मैंने सेंट्रल सेक्रेटेरियट के पास वाले कथीड्रल (बड़ा गिरजाघर) को पार किया, मुझे एक सिख साइकिल पर जाता दिखाई दिया। उसे रोककर मैंने पंजाबी में पूछा, "सरदार जी, पहाड़गंज का रास्ता किधर से है?"

उन्होंने पूछा, "तुम शरणार्थी हो?"

"नहीं, मैं लाहौर से आया हूँ। मैं इक़बाल अहमद हूँ।"

"इकबाल अहमद..... लाहौर से?! रुको, रुको!"

वह "रुको!" की आवाज मुझे बेरहम हुक्म जैसी सुनाई दी और मैंने सोचा कि अब तो मैं गया। ये सिख मुझे ख़त्म ही कर देगा। पर और कोई चारा नहीं था, इसलिए मैं रुक गया। वह भारी-भरकम सिख दौड़ता आया और उसने मुझे कसकर भींच लिया। भीगी आँखों से उसने कहा, "बरसों हो गए, मैं किसी पंजाबी मुसलमान से नहीं मिला। मैं मिलने को तरस रहा था पर यहाँ पंजाबी बोलने वाले मुसलमान मिलते ही नहीं।"

चित्र 14.3
एक करोड़ से ज़्यादा लोग अपने-अपने वतन से उजड़ गए और दूसरी जगहों पर जाने के लिए मजबूर हो गए

स्रोत 3

"ना, नहीं! तुम कभी हमारे नहीं हो सकते"

शोधकर्ता की तीसरी घटना इस प्रकार है :

मुझे अभी भी 1992 में लाहौर में मिले एक आदमी की बहुत अच्छी तरह याद है। वह ग़लती से मुझे विदेश में पढ़ने वाला पाकिस्तानी समझ बैठा था। जाने किस वजह से वह मुझे पसंद करने लगा था। वह मुझसे अनुरोध कर रहा था कि पढ़ाई पूरी करके मैं क़ौम की ख़िदमत करने के लिए वापस लौट आऊँ। मैंने कहा कि मैं लौटूँगा, लेकिन बातचीत के दौर में मैंने जब बताया कि मैं भारत का नागरिक हूँ तो एकदम से उसका लहजा बदल गया और अपने आपको भरसक रोकते-रोकते भी उसके मुँह से निकल गया,

"ओह, हिंदुस्तानी, मैं समझा था आप पाकिस्तानी हैं।" मैंने उसे समझाने की पूरी कोशिश की कि मैं अपने आपको दक्षिण एशियाई मानता हूँ, पर वह अड़ा रहा, "ना, नहीं! तुम कभी हमारे नहीं हो सकते। तुम्हारे लोगों ने 1947 में मेरा पूरा गाँव-का-गाँव साफ़ कर दिया था। हम कट्टर दुश्मन है, और हमेशा रहेंगे।"

➲

(1)प्रत्येक स्रोत से आपस में बातचीत करने वाले इन लोगों के रुख़ के बारे में हमें क्या पता चलता है?

(2) ये कहानियाँ लोगों की विभाजन-संबंधी विभिन्न स्मृतियों के बारे में हमें क्या बताती हैं?

(3) इन लोगों ने खुद को और एक-दूसरे को कैसे पेश किया और पहचाना?

➲ चर्चा कीजिए...

विभाजन संबंधी लेखन में ऐसी कहानियों के महत्त्व का मूल्यांकन कीजिए।

2. ऐतिहासिक मोड़

2.1 बँटवारा या महाध्वंस (होलोकॉस्ट)

अभी जो संस्मरण पेश किए गए हैं उनसे बँटवारे के दौरान हुई चौतरफ़ा हिंसा का पता चलता है। कई लाख लोग मारे गए, न जाने कितनी औरतों का बलात्कार और अपहरण हुआ। करोड़ों उजड़ गए, रातों-रात अजनबी ज़मीन पर "रिफ़्यूजी" (शरणार्थी) बनकर रह गए। इनसानी नुक़सान का कोई सटीक हिसाब लगाना नामुमकिन है। काबिल और जानकार विद्वानों के अनुमानों में भी मरने वालों की संख्या 2,00,000 से 5,00,000 तक रही है। शायद यह अनुमान सही है कि लगभग डेढ़ करोड़ लोगों को भारत और पाकिस्तान के बीच रातों-रात खड़ी कर दी गई सरहद के इस या उस पार जाना पड़ा। जैसे ही उन्होंने इस "छाया सीमा" (Shadow Lines, दोनों नए राज्यों के बीच की सरहद औपचारिक आज़ादी के दो दिन *बाद तक* भी अधिकृत रूप से तय नहीं थी) से ठोकर खाई, वे बेघर हो गए। पलक झपकते उनके माल-असबाब हाथ से जाते रहे, दोस्त-रिश्तेदार बिछड़ गए, वे अपनी जड़ों, मकानों, खेतों और कारोबार से महरूम हो गए, बचपन की यादें उनसे छीन ली गईं। अपनी स्थानीय व क्षेत्रीय संस्कृतियों से वंचित, ये लोग दोबारा तिनकों से अपनी ज़िंदगी खड़ी करने के लिए मजबूर हो गए।

चित्र 14.4
बैलगाड़ियों पर अपने परिवारों और सामान के साथ, 1947

क्या यह महज़ एक *विभाजन*, एक कमोबेश व्यवस्थित, संवैधानिक फ़ैसला, आपसी रज़ामंदी के आधार पर इलाक़े और संपत्तियों का सामान्य बँटवारा भर था? या इसे 16 माह का गृहयुद्ध कहा जाए क्योंकि पाले के दोनों तरफ़ पूरी-की-पूरी आबादियों का दुश्मनों की तरह सफ़ाया कर देने के लिए सुनियोजित कोशिशें की जा रही थीं और इसके लिए संगठित गिरोह कमर कसे खड़े थे? ज़िंदा बच जाने वाले 1947 को अकसर कई दूसरे शब्दों में व्यक्त करते हैं : "माशल-ला" (मार्शल लॉ), "मारामारी", और "रौला", या "हुल्लड़"। विभाजन के दौरान हुई हत्याओं, बलात्कार, आगज़नी और लूटपाट की बात करते हुए समकालीन प्रेक्षकों और विद्वानों ने कई बार "महाध्वंस" (होलोकॉस्ट) शब्द का उल्लेख किया है। ज़ाहिर है वे इस सामूहिक जनसंहार की भयानकता को रेखांकित करना चाहते हैं।

बहरहाल, क्या ये संज्ञाएँ और शब्द सही हैं?

आपने कक्षा 9 में नात्सी शासन के दौरान हुए जर्मन होलोकॉस्ट के बारे में पढ़ा होगा। एक लिहाज़ से देखें तो सन् सैंतालीस में भारतीय उपमहाद्वीप में जो कुछ घटा, उसकी भीषणता को "होलोकॉस्ट" शब्द से ही समझा जा सकता है। यह हादसा इतना जघन्य था कि "विभाजन", "बँटवारे" या "तक़सीम" जैसे शब्दों से उसके सारे पहलू सामने नहीं आते। इससे यह भी समझने में मदद मिलती है कि यूरोपीय होलोकॉस्ट की तरह हमारे समकालीन सरोकारों में भी विभाजन का इतना ज़्यादा ज़िक्र क्यों आता है? लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि दोनों घटनाओं के बीच कोई फ़र्क़ नहीं था या अगर था तो उसे नज़रअदांज़ कर दिया जाए। 1947-48 में भारतीय उपमहाद्वीप में सफ़ाए की कोई सरकारी मुहिम नहीं चली जबकि नात्सी जर्मनी में यही हो रहा था। वहाँ लोगों को मारने के लिए नियंत्रण और संगठन की तमाम आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल किया गया। भारत विभाजन के वक़्त जो "नस्ली सफ़ाया" हुआ, वह सरकारी निकायों की नहीं बल्कि धार्मिक समुदायों के स्वयंभू प्रतिनिधियों की कारगुज़ारी थी।

2.2 रूढ़ छवियों (Stereotypes) की ताक़त

भारत में पाकिस्तान से नफ़रत करने वाले और पाकिस्तान में भारत से नफ़रत करने वाले दोनों ही बँटवारे की उपज हैं। कई बार ग़लतफ़हमी में लोग यह मान लेते हैं कि भारतीय मुसलमानों की वफ़ादारी पाकिस्तान के साथ है। उनकी कथित गैर-भारतीय, अखिल इस्लामी निष्ठा की इस धारणा के साथ कई और भी आपत्तिजनक विचार जुड़े होते हैं। मसलन कई लोगों को लगता है कि मुसलमान क्रूर होते हैं, कट्टर होते हैं, गंदे होते हैं और हमलावरों के वंशज हैं जबकि हिंदू दयालु, उदार, शुद्ध और जिन पर हमला किया गया उनके वंशज हैं। पत्रकार आर. एम. मर्फ़ी ने अपने अध्ययन में दिखाया है कि पाकिस्तान में भी इस तरह की रूढ़ छवियों (stereotypes) की कमी नहीं है। उनका कहना है कि कुछ पाकिस्तानियों को लगता है कि मुसलमान निष्पक्ष, बहादुर, एकेश्वरवादी (एक ईश्वर की पूजा करने वाले) और मांसाहारी होते हैं जबकि हिंदू काले, कायर, बहु-ईश्वरवादी, शाकाहारी होते हैं।

हालाँकि इनमें से कुछ छवियाँ विभाजन से भी पहले की हैं लेकिन 1947 की घटनाओं से उन्हें और बल मिला है। इतिहासकार इन धारणाओं में मौजूद ग़लतफ़हमियों की बार-बार आलोचना करते रहे हैं लेकिन दोनों ही देशों में घृणा के ये स्वर शांत होने का नाम नहीं लेते।

विभाजन ने ऐसी स्मृतियाँ, घृणाएँ, छवियाँ और पहचानें रच दी हैं कि वे आज भी सरहद के दोनों तरफ़ लोगों के इतिहास को तय करती चली जा रही हैं। ये नफ़रतें सामुदायिक टकरावों में साफ़ झलकती हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि सांप्रदायिक टकरावों ने इन पिछली स्मृतियों को ज़िंदा रखने का काम किया है। बँटवारे के दौरान हुई हिंसा की कहानियों को सांप्रदायिक समूह विभिन्न समुदायों के आपसी फ़ासले को और गहरा करने के लिए बार-बार दोहराते हैं। वे लोगों के ज़हन में संशय और अविश्वास पैदा करते हैं, सांप्रदायिक रूढ़ छवियों को मजबूत करते हैं, इस निराधार सोच को हवा देते हैं कि हिंदू, सिख, मुसलमान, इन समुदायों के बीच सीमाएँ स्पष्ट रूप से परिभाषित हैं और उनके हित एक-दूसरे के बिलकुल विपरीत हैं।

पाकिस्तान और भारत के संबंध बँटवारे की इस विरासत से गहरे तौर पर तय होते रहे हैं। उन प्रलयंकारी क्षणों की परस्पर विरोधी स्मृतियों से दोनों तरफ़ विभिन्न समुदायों के बारे में प्रचलित धारणाओं को बल मिला है।

➲ चर्चा कीजिए...

अगर आपने कोई विभाजन संबंधी कहानियाँ सुनी हैं तो उन्हें याद कीजिए। यह सोचिए कि विभिन्न समुदायों के बारे में आपकी अवधारणाएँ इन कहानियों से कैसे बनीं? कल्पना कीजिए कि अलग-अलग समुदायों के लोग एक ही कहानी को कैसे बयान करेंगे?

चित्र 14.5
लोग वही सामान अपने साथ लेकर चले जिसे वे उठाकर ले जा सकते थे। उजड़ने में लोगों को गहरे नुक़सान का अहसास हुआ। जहाँ वे पीढ़ियों से रह रहे थे, उन स्थानों से उनका विच्छेद हो गया।

3. विभाजन क्यों और कैसे हुआ?

3.1 एक लंबे इतिहास का अंतिम चरण?

कुछ इतिहासकार, भारतीय भी और पाकिस्तानी भी, यह मानते हैं कि मोहम्मद अली जिन्ना की यह समझ कि औपनिवेशिक भारत में हिंदू और मुसलमान दो पृथक राष्ट्र थे, मध्यकालीन इतिहास पर भी लागू की जा सकती है। यह इतिहासकार इस बात पर बल देते हैं कि 1947 की घटनाएँ मध्य और आधुनिक युगों में हुए हिंदू-मुस्लिम झगड़ों के लंबे इतिहास से बारीकी से जुड़ी हुई हैं। लेकिन यह तर्क इस बात को अनदेखा कर जाता है कि इन समुदायों में झगड़ों का इतिहास मेल-जोल के लंबे इतिहास के साथ-साथ चला है। फिर, यह भी महत्त्वपूर्ण है कि हिंदू-मुसलमानों में कई तरह के सांस्कृतिक आदान-प्रदान रहे हैं। जो लोग दक्षिण एशिया में हिंदू-मुस्लिम झगड़ों की निरंतरता की बात करते हैं यह नहीं देखते कि लोगों की मानसिकता पर बदलती परिस्थितियों का असर होता है।

कुछ विद्वान यह मानते हैं कि देश का बँटवारा एक ऐसी सांप्रदायिक राजनीति का आख़िरी बिंदु था जो 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में शुरू हुई। उनका तर्क है कि अंग्रेज़ों द्वारा 1909 में मुसलमानों के लिए बनाए गए पृथक चुनाव क्षेत्रों, (जिनका 1919 में विस्तार किया गया), का सांप्रदायिक राजनीति की प्रकृति पर गहरा प्रभाव पड़ा। पृथक चुनाव क्षेत्रों की वजह से मुसलमान विशेष चुनाव क्षेत्रों में अपने प्रतिनिधि चुन सकते थे। इस व्यवस्था में राजनितिज्ञों को लालच रहता था कि वह सामुदायिक नारों का इस्तेमाल करें और अपने धार्मिक समुदाय के व्यक्तियों को नाजायज़ फ़ायदे पहुँचाएँ। इस तरह से, उभरती हुई आधुनिक राजनैतिक व्यवस्था में धार्मिक अस्मिताओं का क्रियाशील प्रयोग होने लगा। चुनावी राजनीति इन अस्मिताओं को ज़्यादा गहरा और पक्का बनाने लगी। अब सामुदायिक अस्मिताओं से जुड़े अभिप्राय केवल विश्वास और अकायद (आस्था) के फ़र्क़ों पर केंद्रित नहीं थे। अब अकसर धार्मिक अस्मिताएँ समुदायों के बीच हो रहे विरोधों से जुड़ गईं। हालाँकि भारतीय राजनीति पर पृथक चुनाव क्षेत्रों का अच्छा-खासा असर पड़ा, हमें इनके महत्त्व को बढ़ा-चढ़ा कर पेश नहीं करना चाहिए और न ही हमें यह मानना चाहिए कि बँटवारा पृथक चुनाव क्षेत्रों की प्रत्यक्ष देन है।

20वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में सांप्रदायिक अस्मिताएँ कई अन्य कारणों से भी ज़्यादा पक्की हुई। 1920 और 1930 के दशकों में कई घटनाओं की वजह से तनाव उभरे। मुसलमानों को "मस्जिद के सामने संगीत", गो-रक्षा आंदोलन, और आर्य समाज की *शुद्धि* की कोशिशें (यानी कि नव मुसलमानों को फिर से हिंदू बनाना) जैसे मुद्दों पर ग़ुस्सा आया। दूसरी ओर हिंदू 1923 के बाद *तबलीग़* (प्रचार) और

लखनऊ समझौता

दिसम्बर 1916 में हुआ यह समझौता कांग्रेस और मुस्लिम लीग (जिसे इस समय यू.पी. में आधारित "युवा पार्टी" नियंत्रित करती थी) के आपसी ताल-मेल को दर्शाता है। इस समझौते के तहत कांग्रेस ने पृथक चुनाव क्षेत्रों को स्वीकारा। समझौते ने कांग्रेस के मध्यमार्गियों, उग्रपंथियों और मुस्लिम लीग के लिए एक संयुक्त राजनीतिक मंच प्रदान किया।

आर्य समाज

19वीं सदी के आख़िरी दशकों और प्रारंभिक 20वीं शताब्दी का यह उत्तर भारतीय हिंदू "सुधार" आंदोलन ख़ासतौर पर पंजाब में सक्रिय था। आर्य समाज वैदिक ज्ञान का पुनरुत्थान कर उसको विज्ञान की आधुनिक शिक्षा से जोड़ना चाहता था।

तंज़ीम (संगठन) के विस्तार से उत्तेजित हुए। जैसे-जैसे मध्यवर्गीय प्रचारक और सांप्रदायिक कार्यकर्ता अपने-अपने समुदायों में, लोगों को दूसरे समुदायों के खिलाफ़ लामबंद करते हुए, ज़्यादा एकजुटता बनाने लगे, देश के विभिन्न भागों में दंगे फैलते गए। प्रत्येक सांप्रदायिक दंगे से समुदायों के बीच फ़र्क गहरे होते गए और हिंसा की परेशान करने वाली स्मृतियाँ भी निर्मित होती गईं।

मस्जिद के सामने संगीत : किसी धार्मिक जुलूस के द्वारा नमाज़ के वक़्त मस्जिद के बाहर संगीत के बजाए जाने से हिंदू-मुस्लिम हिंसा हो सकती थी। रूढ़िवादी मुसलमान इसे अपनी नमाज़ या इबादत में ख़लल मानते थे।

फिर भी ऐसा कहना सही नहीं होगा कि बँटवारा केवल सीधे-सीधे बढ़ते हुए सांप्रदायिक तनावों की वजह से हुआ। *गर्म हवा* फ़िल्म के नायक ने ठीक ही कहा "सांप्रदायिक कलह तो सन् 1947 से पहले भी होती थी लेकिन उसकी वज़ह से लाखों लोगों के घर कभी नहीं उजड़े"। पहले की सांप्रदायिक राजनीति और विभाजन में गुणात्मक फ़र्क है और बँटवारे को समझने के लिए हमें ब्रिटिश राज के आखरी दशक की घटनाओं को बारीकी से देखना होगा।

सांप्रदायिकता से क्या अभिप्राय है?

हमारी अस्मिता के कई पहलू होते हैं। आप बालक हैं या बालिका, आप युवा भी हैं, आप किसी गाँव, शहर, ज़िला अथवा प्रांत के निवासी हैं और आप कुछ विशेष भाषाएँ बोलते हैं। आप भारतीय हैं परंतु आप विश्व-नागरिक भी हैं। परिवारों की आय में फ़र्क होते ही हैं, इसलिए हम सभी किसी न किसी सामाजिक वर्ग के सदस्य हैं। हम में से अधिकांश का कोई न कोई धर्म है और हमारी ज़िंदगी में जाति की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। दूसरे शब्दों में, हमारी अस्मिताओं के कई अभिलक्षण हैं यानी कि वे जटिल होती हैं। कुछ विशेष संदर्भों में लोग अपनी जटिल अस्मिताओं के कुछ चुने हुए पहलुओं (जैसे धर्म) को ज़्यादा महत्त्वपूर्ण मान बैठते हैं। लेकिन इसे सांप्रदायिकता नहीं कहा जा सकता।

सांप्रदायिकता उस राजनीति को कहा जाता है जो धार्मिक समुदायों के बीच विरोध और झगड़े पैदा करती है। ऐसी राजनीति धार्मिक पहचान को बुनियादी और अटल मानती है। सांप्रदायिक राजनीतिज्ञों की कोशिश रहती है कि धार्मिक पहचान को मज़बूत बनाया जाए। वे इसे एक स्वाभाविक अस्मिता मान कर प्रस्तुत करते हैं, मानो लोग ऐसी पहचान लेकर पैदा हुए हों, मानो अस्मिताएँ इतिहास और समय के दौर से गुज़रते हुए बदलती नहीं हैं। सांप्रदायिकता किसी भी समुदाय में एकता पैदा करने के लिए आंतरिक फ़र्क़ों को दबाती है, उस समुदाय की एकता पर ज़ोर देती है, और उस समुदाय को किसी न किसी अन्य समुदाय के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए प्रेरित करती है।

यह कहा जा सकता है कि सांप्रदायिकता किसी चिह्नित "गैर" के खिलाफ़ घृणा की राजनीति को पोषित करती है। मुस्लिम सांप्रदायिकता हिंदुओं को ग़ैर बता कर उनका विरोध करती है और ऐसे ही हिंदू सांप्रदायिकता मुसलमानों को ग़ैर समझ कर उनके ख़िलाफ़ डटी रहती है। इस पारस्परिक घृणा से हिंसा की राजनीति को बढ़ावा मिलता है।

इसका अर्थ है कि सांप्रदायिकता धार्मिक अस्मिता का विशेष तरह से राजनीतिकरण है जो धार्मिक समुदायों में झगड़े पैदा करवाने की कोशिश करता है। किसी भी बहु-धार्मिक देश में "धार्मिक राष्ट्रवाद" शब्दों का अर्थ भी "सांप्रदायिकता" के क़रीब-क़रीब हो सकता है। ऐसे देश में अगर कोई व्यक्ति किसी धार्मिक समुदाय को राष्ट्र मानता है तो वह विरोध और झगड़ों के बीज बो रहा है। मोहम्मद अली जिन्ना के अनुसार ब्रिटिश-भारत के मुसलमान एक राष्ट्र थे और वह यह चाहते थे कि महाद्वीप के मुसलमान अपने राष्ट्रीय-राज्य का निर्माण कर लें।

3.2 1937 में प्रांतीय चुनाव और कांग्रेस मंत्रालय

प्रांतीय संसदों के गठन के लिए 1937 में पहली बार चुनाव कराये गये। इन चुनावों में मताधिकार केवल 10 से 12 प्रतिशत लोगों के पास था। इन चुनावों में कांग्रेस के परिणाम अच्छे रहे। उसने 11 में से 5 प्रांतों में पूर्ण बहुमत प्राप्त किया और 7 में अपनी सरकारें बनाईं। मुसलमानों के लिए आरक्षित चुनाव क्षेत्रों में कांग्रेस का प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा परंतु मुस्लिम लीग भी इन क्षेत्रों में बहुत अच्छा नहीं कर पाई। उसे इस चुनाव में संपूर्ण मुस्लिम वोट का केवल 4.4 प्रतिशत हिस्सा मिल पाया। उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में उसे एक सीट भी नहीं मिली, पंजाब की 84 आरक्षित सीटों में उसे सिर्फ़ 2 प्राप्त हुईं, और सिंध में 33 में से 3 प्राप्त हुईं।

संयुक्त प्रांत (वर्तमान में उत्तर प्रदेश) में मुस्लिम लीग कांग्रेस के साथ मिल कर सरकार बनाना चाहती थी। परंतु यहाँ कांग्रेस का संपूर्ण बहुमत था, इसलिए उसने लीग की इस माँग को ठुकरा दिया। कुछ विद्वानों का तर्क है कि इससे लीग के सदस्यों के दिलों में यह बात घर कर गई कि अगर भारत अविभाजित रहा तो मुसलमानों के हाथ में राजनीतिक सत्ता नहीं आ पाएगी क्योंकि वे अल्पसंख्यक हैं। ऐसी समझ के पीछे लीग की यह मान्यता थी कि मुस्लिम हितों का प्रतिनिधित्व एक मुस्लिम पार्टी ही कर सकती है और कांग्रेस एक हिंदू दल है। परंतु जिन्ना की ज़िद कि लीग को मुसलमानों का "एकमात्र प्रवक्ता" माना जाए उस समय बहुत कम लोगों को मंज़ूर थी। लीग संयुक्त प्रांत, बम्बई और मद्रास में लोकप्रिय थी, परंतु अभी भी उसका सामाजिक आधार बंगाल में काफ़ी कमज़ोर था, और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत एवं पंजाब में न के बराबर था। सिंध में भी लीग सरकार नहीं बना पाई थी और केवल दस साल बाद ही इन सभी प्रांतों से पाकिस्तान बनाया गया। इसीलिए, इस काल से लीग ने सामाजिक समर्थन की अपनी कोशिशें दोहरी कर दीं।

कांग्रेस मंत्रालयों ने भी इस खाई को और गहरा कर दिया। संयुक्त प्रांत में पार्टी ने गठबंधन सरकार बनाने के बारे में मुस्लिम लीग के प्रस्ताव को ख़ारिज कर दिया था क्योंकि मुस्लिम लीग ज़मींदारी प्रथा का समर्थन करती प्रतीत होती थी जबकि कांग्रेस उसको ख़त्म करना चाहती थी यद्यपि कांग्रेस ने अभी तक इस दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया था। न ही कांग्रेस को अपने "मुस्लिम जनसंपर्क" कार्यक्रम में कोई ख़ास सफलता मिल पाई थी। इस प्रकार, कांग्रेस के धर्मनिरपेक्ष और रैडिकल बयानों से रूढ़िवादी मुसलमान और मुसलमान भूस्वामी तो चिंता में पड़ ही गए, कांग्रेस मुसलमानों को अपनी ओर आकर्षित करने में भी सफल नहीं हो पायी। इतना ही नहीं, तीस के दशक के आखिरी

मुस्लिम लीग

मुस्लिम लीग को 1906 में ढाका में शुरू किया गया। जल्द ही लीग यू.पी. के विशेषकर अलीगढ़ के मुस्लिम संभ्रांत वर्ग के प्रभाव में आ गई। 1940 के दशक में पार्टी भारतीय महाद्वीप के मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों की स्वायत्तता या फिर पाकिस्तान की माँग करने लगी।

हिंदू महासभा

हिंदू महासभा की स्थापना 1915 में हुई। यह एक हिंदू पार्टी थी जो कमोबेश उत्तर भारत तक सीमित रही। यह पार्टी हिंदुओं के बीच जाति एवं संप्रदाय के फ़र्कों को खत्म कर हिंदू समाज में एकता पैदा करने की कोशिश करती थी। हिंदू महासभा, हिंदू अस्मिता को मुस्लिम अस्मिता के विरोध में परिभाषित करने का प्रयास करती थी।

सालों में कांग्रेस के बड़े नेता धर्मनिरपेक्षता पर पहले से भी ज़्यादा ज़ोर देने लगे थे मगर कांग्रेस में ऊपर से नीचे तक या कांग्रेस के मंत्री भी इन विचारों पर पूरी तरह सहमत नहीं थे। मौलाना आज़ाद ने 1937 में यह सवाल उठाया था कि कांग्रेस के सदस्यों को लीग में शामिल होने की छूट तो नहीं है लेकिन उन्हें हिंदू महासभा में शामिल होने से नहीं रोका जाता है। उनके मुताबिक कम-से-कम मध्य प्रांत (वर्तमान मध्य प्रदेश) में यही स्थिति थी। कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने दिसंबर 1938 में जाकर यह ऐलान किया कि कांग्रेस के सदस्य हिंदू महासभा के सदस्य नहीं हो सकते। प्रसंगवश, यह वही समय था जब हिंदू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर.एस.एस.) की ताक़त बढ़ती जा रही थी। तीस के दशक में ही आर.एस.एस. नागपुर से बढ़ते हुए संयुक्त प्रांत, पंजाब और देश के अन्य भागों में फैला था। 1940 तक आर.एस.एस. के पास हिंदू राष्ट्रवाद की विचारधारा के प्रति समर्पित अत्यंत अनुशासित 1,00,000 से ज़्यादा कार्यकर्ता थे। उनका विश्वास था कि भारत केवल हिंदुओं का देश है।

यूनियनिस्ट पार्टी

पंजाब में हिंदू, मुस्लिम और सिख भूस्वामियों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली राजनीतिक पार्टी। यह पार्टी 1923-47 के बीच काफ़ी ताकतवर थी।

महासंघ (या परिसंघ) – आधुनिक राजनीतिक शब्दावली में इसका अर्थ है काफ़ी हद तक स्वायत्त और संप्रभु राज्यों का संघ जिसकी केंद्रीय सरकार के पास केवल सीमित शक्तियाँ होती हैं।

पाकिस्तान का नाम

पाकिस्तान अथवा **पाक-स्तान** (**पं**जाब, **अ**फ़गान, **क**श्मीर, **सिं**ध और बालूचि**स्तान**) नाम केम्ब्रिज के एक पंजाबी मुसलमान छात्र, चौधरी रहमत अली ने 1933 और 1935 में लिखित दो पर्चों में गढ़ा। रहमत अली इस नयी ईकाई के लिए अलग राष्ट्रीय हैसियत चाहता था। 1930 के दशक में किसी ने रहमत अली की बात को गंभीरता से नहीं लिया। यहाँ तक कि, मुस्लिम लीग और अन्य मुस्लिम नेताओं ने भी उसके इस विचार को केवल एक छात्र का स्वप्न समझकर ख़ारिज कर दिया था।

3.3 "पाकिस्तान" का प्रस्ताव

पाकिस्तान की स्थापना की माँग धीरे-धीरे ठोस रूप ले रही थी। 23 मार्च 1940 को मुस्लिम लीग ने उपमहाद्वीप के मुस्लिम-बहुल इलाकों के लिए सीमित स्वायत्तता की माँग करते हुए एक प्रस्ताव पेश किया। इस अस्पष्ट से प्रस्ताव में कहीं भी विभाजन या पाकिस्तान का जिक्र नहीं था। बल्कि, इस प्रस्ताव को लिखने वाले पंजाब के प्रधानमंत्री और यूनियनिस्ट पार्टी के नेता सिकंदर हयात ख़ान ने 1 मार्च 1941 को पंजाब असेम्बली को संबोधित करते हुए ऐलान किया था कि वह ऐसे पाकिस्तान की अवधारणा का विरोध करते हैं जिसमें "यहाँ मुस्लिम राज और बाकी जगह हिंदू राज होगा...। अगर पाकिस्तान का मतलब यह है कि पंजाब में ख़ालिस मुस्लिम राज कायम होने वाला है तो मेरा उससे कोई वास्ता नहीं है।" उन्होंने संघीय ईकाइयों के लिए उल्लेखनीय स्वायत्तता के आधार पर एक ढीले-ढाले (संयुक्त) महासंघ के समर्थन में अपने विचारों को फिर दोहराया।

कुछ लोगों का मानना है कि पाकिस्तान के गठन की माँग उर्दू कवि मोहम्मद इकबाल से शुरू होती है जिन्होंने "*सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा*" लिखा था। 1930 में मुस्लिम लीग के अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण देते हुए उन्होंने एक "उत्तर-पश्चिमी भारतीय मुस्लिम राज्य" की ज़रूरत पर ज़ोर दिया था। मगर उस भाषण में इकबाल एक नए देश के उदय पर नहीं बल्कि पश्चिमोत्तर भारत में मुस्लिम बहुल इलाक़ों को एकीकृत, शिथिल भारतीय संघ के भीतर एक स्वायत्त ईकाई की स्थापना पर जोर दे रहे थे।

3.4 विभाजन का अचानक हो जाना

पीछे हम देख चुके हैं कि पाकिस्तान के बारे में अपनी माँग पर लीग की राय पूरी तरह स्पष्ट नहीं थी। उपमहाद्वीप के मुस्लिम-बहुल इलाक़ों के लिए सीमित स्वायत्तता की माँग से विभाजन होने के बीच बहुत ही कम समय - केवल सात साल - रहा। किसी को मालूम नहीं था कि पाकिस्तान के गठन का क्या मतलब होगा और उससे भविष्य में लोगों की ज़िंदगी किस तरह तय होगी। 1947 में अपने मूल इलाक़े छोड़कर नयी जगह जाने वालों में से बहुतों को यही लगता था कि जैसे ही शांति बहाल होगी, वे लौट आएँगे।

शुरुआत में मुस्लिम नेताओं ने भी एक संप्रभु राज्य के रूप में पाकिस्तान की माँग खास संजीदगी से नहीं उठाई थी। शुरुआत में शायद खुद जिन्ना भी पाकिस्तान की सोच को सौदेबाज़ी में एक पैंतरे के तौर पर ही इस्तेमाल कर रहे थे, जिसका वे सरकार द्वारा कांग्रेस को मिलने वाली रियायतों पर रोक लगाने और मुसलमानों के लिए और रियायतें हासिल करने के लिए इस्तेमाल कर सकते थे। दूसरे विश्वयुद्ध के कारण अंग्रेज़ों को स्वतंत्रता के बारे में औपचारिक वार्ताएँ कुछ समय तक टालनी पड़ीं। लेकिन 1942 में शुरू हुए विशाल भारत छोड़ो आंदोलन का परिणाम था कि अंग्रेज़ों को झुकना पड़ा और उसके अफ़सरों को संभावित सत्ता हस्तांतरण के बारे में भारतीय पक्षों के साथ बातचीत के लिए तैयार होना पड़ा।

3.5 युद्धोत्तर घटनाक्रम

जब 1945 में दोबारा वार्ताएँ शुरू हुईं तो अंग्रेज़ इस बात पर सहमत हुए कि एक केंद्रीय कार्यकारणी सभा बनायी जाएगी जिसके सभी सदस्य भारतीय होंगे सिवाय वायसराय और सशस्त्र सेनाओं के सेनापति के। उनकी राय में यह पूर्ण स्वतंत्रता की ओर शुरुआती कदम होगा। सत्ता हस्तांतरण के बारे में यह चर्चा टूट गई क्योंकि जिन्ना इस बात पर अड़े हुए थे कि कार्यकारणी सभा के मुस्लिम सदस्यों का चुनाव करने का अधिकार मुस्लिम लीग के अलावा और किसी को नहीं है। वे सभा में सांप्रदायिक आधार पर वीटो की व्यवस्था भी चाहते थे। उनका कहना था कि अगर मुस्लिम सदस्य किसी फ़ैसले का विरोध करते हैं तो उसे कम-से-कम दो-तिहाई सदस्यों की सहमति से ही पारित किया जाना चाहिए। उस समय के राजनीतिक हालात को देखते हुए लीग की पहली माँग काफ़ी आश्चर्यजनक थी क्योंकि राष्ट्रवादी मुसलमानों का एक बड़ा तबका कांग्रेस का समर्थन करता था (इन वार्ताओं में उसके प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व मौलाना आज़ाद कर रहे थे), और पश्चिमी पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी के सदस्य भी ज़्यादातर

स्रोत 4

मुस्लिम लीग का प्रस्ताव : 1940

मुस्लिम लीग के 1940 वाले प्रस्ताव की माँग थी –

'कि भौगोलिक दृष्टि से सटी हुई ईकाइयों को क्षेत्रों के रूप में चिह्नित किया जाए, जिन्हें बनाने में ज़रूरत के हिसाब से इलाक़ों का फिर से ऐसा समायोजन किया जाए कि हिंदुस्तान के उत्तर-पश्चिम और पूर्वी क्षेत्रों जैसे जिन हिस्सों में मुसलमानों की संख्या ज्यादा है, उन्हें इकट्ठा करके 'स्वतंत्र राज्य' बना दिया जाए, जिनमें शामिल ईकाइयाँ स्वाधीन और स्वायत्त होंगी।'

➲ लीग की माँग क्या थी? क्या वह वैसे पाकिस्तान की माँग कर रही थी जैसा हम आज देख रहे हैं?

चित्र 14.6
नवंबर 1939 में वायसराय के साथ बैठक से पहले महात्मा गाँधी के साथ मोहम्मद अली जिन्ना।

मुसलमान थे। अंग्रेज़ यूनियनिस्टों को नाराज़ नहीं करना चाहते थे क्योंकि पंजाब सरकार में उन्हीं का दबदबा था और वे अंग्रेज़ों के प्रति लगातार वफ़ादार रहे थे।

1946 में दोबारा प्रांतीय चुनाव हुए। सामान्य सीटों पर कांग्रेस को एकतरफा सफलता मिली : 91.3 प्रतिशत गैर-मुस्लिम वोट कांग्रेस के खाते में गए। मुसलमानों के लिए आरक्षित सीटों पर मुस्लिम लीग को भी ऐसी ही बेजोड़ सफलता मिली। मध्य प्रांत में उसने सभी 30 आरक्षित सीटें जीतीं और मुस्लिम वोटों में से 86.6 प्रतिशत उसके उम्मीदवारों को मिले। सभी प्रांतों की कुल 509 आरक्षित सीटों में से 442 मुस्लिम लीग के पास गईं। इसका मतलब है कि 1946 में जाकर ही मुस्लिम लीग ख़ुद को मुस्लिम मतदाताओं के बीच सबसे प्रभुत्वशाली पार्टी के रूप में स्थापित कर पाई। अब जाकर वह भारत के मुसलमानों की "एकमात्र प्रवक्ता" होने का दावा कर सकती थी। लेकिन आपको याद होगा कि इन चुनावों में मताधिकार बेहद सीमित था। आबादी के केवल 10-12 प्रतिशत तबके को ही प्रांतीय चुनावों में वोट डालने का अधिकार दिया गया था। केंद्रीय असेम्बली के चुनावों में तो केवल 1 प्रतिशत लोगों को ही मताधिकार मिला था।

3.6 विभाजन का एक संभावित विकल्प

मार्च 1946 में ब्रिटिश मंत्रिमंडल ने लीग की माँग का अध्ययन करने और स्वतंत्र भारत के लिए एक उचित राजनीतिक रूपरेखा सुझाने के लिए तीन-सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल दिल्ली भेजा। इस केबीनेट मिशन ने तीन महीने तक भारत का दौरा किया और एक ढीले-ढाले त्रिस्तरीय महासंघ का सुझाव दिया। इसमें भारत एकीकृत ही रहने वाला था जिसकी केंद्रीय सरकार काफ़ी कमज़ोर होती और उसके पास केवल विदेश, रक्षा और संचार का ज़िम्मा होता। संविधान सभा का चुनाव करते हुए मौजूदा प्रांतीय सभाओं को तीन हिस्सों में समूहबद्ध किया जाना था : हिंदू-बहुल प्रांतों को समूह 'क', पश्चिमोत्तर मुस्लिम-बहुल प्रांतों को समूह 'ख' और पूर्वोत्तर (असम सहित) के मुस्लिम-बहुल प्रांतों को समूह 'ग' में रखा गया था। प्रांतों के इन खण्डों या समूहों को मिला कर क्षेत्रीय ईकाइयों का गठन किया जाना था। माध्यमिक स्तर की कार्यकारी और विधायी शक्तियाँ उनके पास ही रहने वाली थीं।

शुरुआत में सभी प्रमुख पार्टियों ने इस योजना को मान लिया था। लेकिन यह समझौता ज़्यादा देर नहीं चल पाया क्योंकि सभी पक्षों की इस योजना के बारे में व्याख्या अलग-अलग थी। लीग की माँग थी कि यह समूहबद्धता अनिवार्य हो जिसमें समूह 'ख' और 'ग' के पास भविष्य में संघ से अलग होने का अधिकार होना चाहिए। कांग्रेस चाहती थी कि प्रांतों को अपनी इच्छा का समूह चुनने का अधिकार मिलना चाहिए। काँग्रेस कैबिनेट मिशन के इस स्पष्टीकरण से भी संतुष्ट नहीं थी कि शुरुआत में यह समूहबद्धता अनिवार्य होगी मगर एक बार संविधान बन जाने के बाद उनके पास समूहों से निकलने का अधिकार होगा और बदली हुई परिस्थितियों में नए चुनाव कराए जाएँगे। इस प्रकार, आखिरकार केबिनेट मिशन के प्रस्ताव को लीग और कांग्रेस, दोनों ने ही नहीं माना। यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण पड़ाव था क्योंकि *इसके बाद* विभाजन कमोबेश अपरिहार्य हो गया था। कांग्रेस के ज़्यादातर नेता इसे त्रासद मगर अवश्यम्भावी परिणाम मान चुके थे। केवल महात्मा गाँधी और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत (एन.डब्ल्यू. एफ.पी.) के नेता ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ान ही अंत तक विभाजन का विरोध करते रहे।

चित्र 14.7
एन.डब्ल्यू.एफ.पी. में महात्मा गाँधी, खान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ान (जिन्हें फ्रंटयिर गाँधी या सीमांत गाँधी कहा जाता था), सुशीला नायर और अमतुस सालेम के साथ, अक्तूबर 1938

3.7 विभाजन की ओर

केबिनेट मिशन योजना से अपना समर्थन वापस लेने के बाद मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की अपनी माँग को अमली जामा पहनाने के

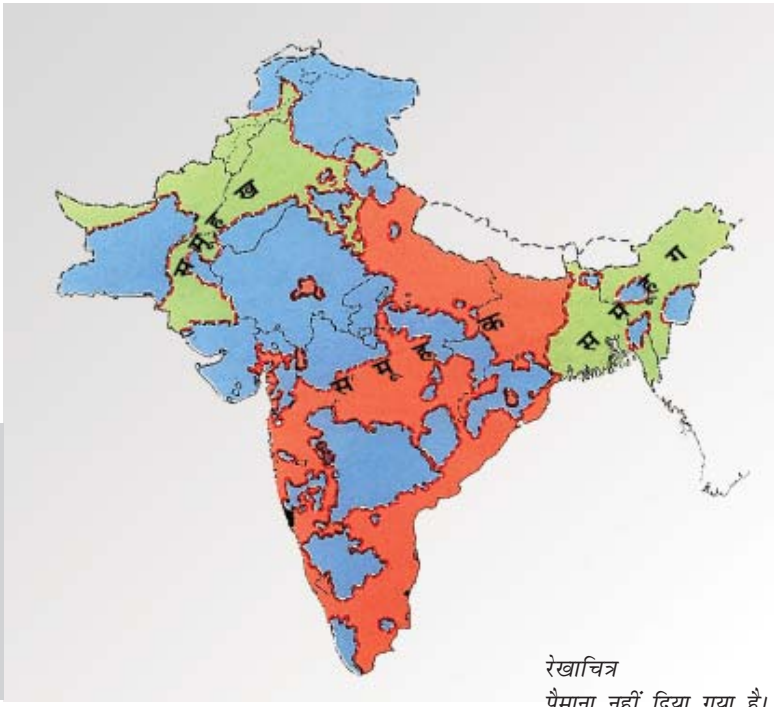

रेखाचित्र
पैमाना नहीं दिया गया है।

मानचित्र 1
तीन समूहों वाले भारतीय संघ के बारे में केबिनेट मिशन का प्रस्ताव

1941 के मुस्लिम-बहुल इलाक़े

1941 के हिंदू-बहुल इलाक़े

राजकुमारों की रियासतें, जिनके लिए प्रस्ताव में स्पष्ट प्रावधान नहीं किया गया था

स्रोत 5

"बीहड़ में एक आवाज़"

महात्मा गाँधी जानते थे कि उनकी स्थिति "बीहड़ में एक आवाज़" जैसी है लेकिन फिर भी वे विभाजन की सोच का विरोध करते रहे :

किंतु आज हम कैसे दुखद परिवर्तन देख रहे हैं। मैं फिर वह दिन देखना चाहता हूँ जब हिंदू और मुसलमान आपसी सलाह के बिना कोई काम नहीं करेंगे। मैं दिन-रात इसी आग में जल जा रहा हूँ कि उस दिन को जल्दी से जल्दी साकार करने के लिए क्या करूँ। लीग से मेरी गुज़ारिश है कि वे किसी भी भारतीय को अपना शत्रु न मानें...। हिंदू और मुसलमान, दोनों एक ही मिट्टी से उपजे हैं। उनका ख़ून एक है, वे एक जैसा भोजन करते हैं, एक ही पानी पीते हैं, और एक ही ज़बान बोलते हैं।

प्रार्थना सभा में भाषण, 7 सितंबर 1946, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी*, खंड 92, पृ. 139

लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की जो माँग उठायी है वह पूरी तरह गैर-इस्लामिक है और मुझे इसको पापपूर्ण कृत्य कहने में कोई संकोच नहीं है। इस्लाम मानवता की एकता और भाईचारे का समर्थक है न कि मानव परिवार की एकजुटता को तोड़ने का। जो तत्व भारत को एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे टुकड़ों में बाँट देना चाहते हैं वे भारत और इस्लाम, दोनों के शत्रु हैं। भले ही वे मेरी देह के टुकड़े-टुकड़े कर दें, परंतु मुझसे ऐसी बात नहीं मनवा सकते जिसे मैं ग़लत मानता हूँ।

हरिजन, 26 सितंबर 1946, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी*, खंड 92, पृ. 229

➲ पाकिस्तान के विचार का विरोध करते हुए महात्मा गाँधी ने क्या तर्क दिए?

चित्र 14.8
कलकत्ता की सड़कें, अगस्त 1946 । लोहे की छड़े और लाठियाँ लिए फ़सादी।

लिए प्रत्यक्ष कार्यवाही करने का फैसला लिया। पार्टी ने 16 अगस्त 1946 को "प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस" (Direct Action Day) मनाने का ऐलान किया। उसी दिन कलकत्ता में दंगा भड़क उठा जो कई दिनों तक चला और उसमें कई हज़ार लोग मारे गए। मार्च 1947 तक उत्तर भारत के बहुत सारे भागों में हिंसा फैल चुकी थी।

मार्च 1947 में कांग्रेस हाईकमान ने पंजाब को मुस्लिम-बहुल और हिंदू/सिख-बहुल, दो हिस्सों में बाँटने के प्रस्ताव पर मंजूरी दे दी। कांग्रेस ने बंगाल के मामले में भी यही सिद्धांत अपनाने का सुझाव दिया। अंकों के खेल में उलझकर पंजाब के बहुत सारे सिख नेता और कांग्रेसी भी इस बात को मान चुके थे कि अब विभाजन अनिवार्य विकृति है जिसे टाला नहीं जा सकता। उनको लगता था कि वे अविभाजित पंजाब में मुसलमानों से घिर जाएँगे और उन्हें मुस्लिम नेताओं के रहम पर जीना पड़ेगा, इसलिए वे भी कमोबेश इस फ़ैसले के हक में थे। बंगाल में भी *भद्रलोक* बंगाली हिंदुओं का जो तबका सत्ता अपने हाथ में रखना चाहता था, वह "मुसलमानों की स्थायी गुलामी" (उनके एक नेता ने यही शब्द कहे थे) की आंशका से भयभीत था। संख्या की दृष्टि से वे कमज़ोर थे इसलिए उनको लगता था कि प्रांत के विभाजन से ही उनका राजनीतिक प्रभुत्व बना रह सकता है।

➲ चर्चा कीजिए...

भाग 3 को पढ़कर ये ज़ाहिर है कि पाकिस्तान कई कारणों से बना। आपके मत में इनमें से कौन से कारण सबसे महत्त्वपूर्ण थे और क्यों?

4. क़ानून व्यवस्था का नाश

चित्र 14.9
1946 के उन रक्त-रंजित महीनों के दौरान हिंसा और आगजनी में हज़ारों लोग मारे गए।

मार्च 1947 से तक़रीबन साल भर तक रक्तपात चलता रहा। इसका एक कारण यह था कि शासन की संस्थाएँ बिखर चुकी थीं। उसी समय बहावलपुर (पाकिस्तान) में तैनात पेंडेरल मून नाम के एक अफ़सर ने इस बारे में लिखा था कि जब मार्च 1947 में पूरे अमृतसर में आगज़नी और मारकाट हो रही थी तो पुलिस एक भी गोली नहीं चला पाई।

साल के आख़िर तक शासन तंत्र पूरी तरह नष्ट हो चुका था। पूरा अमृतसर ज़िला चौतरफ़ा रक्तपात में डूबा हुआ था। अंग्रेज़ अफ़सरों को सूझ नहीं रहा था कि हालात को कैसे सँभाला जाए। वे फ़ैसले लेना नहीं चाहते थे और हस्तक्षेप करने में हिचकिचा रहे थे। जब दहशतज़दा लोगों ने मदद के लिए गुहार लगाई तो अंग्रेज़ अफ़सरों ने उनसे महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल या मोहम्मद अली जिन्ना की शरण में जाने को कहा। किसी को मालूम नहीं था कि सत्ता किसके हाथ में है। महात्मा गाँधी के अलावा भारतीय दलों के सभी वरिष्ठ नेता आज़ादी के बारे में जारी वार्ताओं में व्यस्त थे जबकि प्रभावित प्रांतों के बहुत सारे भारतीय प्रशासनिक अफ़सर अपने ही जान-माल के बारे में भयभीत थे। अंग्रेज़ भारत छोड़ने की तैयारी में लगे थे।

समस्या इसलिए और बढ़ गई क्योंकि भारतीय सिपाही और पुलिस वाले भी हिंदू, मुसलमान या सिख के रूप में आचरण करने लगे थे। जैसे-जैसे सांप्रदायिक तनाव बढ़ा, वर्दीधारियों की पेशेवर प्रतिबद्धता पर भरोसा कमज़ोर पड़ता गया। बहुत सारे स्थानों पर न केवल पुलिस वालों ने अपने धर्म के लोगों की मदद की बल्कि उन्होंने दूसरे समुदायों पर हमले भी किए।

"एक गोली भी नहीं चलायी गयी"

मून ने जो लिखा :

> 24 घंटे से भी ज़्यादा वक़्त तक दंगाई भीड़ को इस विशाल व्यावसायिक शहर में बेरोक-टोक तबाही फैलाने दी गई। बेहतरीन बाज़ारों को जलाकर राख कर दिया गया जबकि उपद्रव फैलाने वालों के ऊपर एक गोली भी नहीं चलाई गयी। ...ज़िला मजिस्ट्रेट ने अपने (विशाल पुलिस) बल को शहर में मार्च का आदेश दिया और उसका कोई सार्थक इस्तेमाल किए बिना वापस बुला लिया...।

4.1 महात्मा गाँधी–एक अकेली फ़ौज

इस सारी उथल-पुथल में सांप्रदायिक सद्भाव बहाल करने के लिए एक आदमी की बहादुराना कोशिशें आख़िरकार रंग लाने लगीं। 77 साल के बुज़ुर्ग गाँधीजी ने अहिंसा के अपने जीवनपर्यंत सिद्धांत को एक बार फिर आज़माया और अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया। उनका फ़ैसला इस यक़ीन पर आधारित था कि लोगों का हृदय परिवर्तन किया जा सकता है। वे पूर्वी बंगाल के नोआखली (वर्तमान बांग्लादेश) से बिहार के गाँवों में और उसके बाद कलकत्ता व दिल्ली के दंगों में झुलसी झोंपड़-पट्टियों की यात्रा पर निकल पड़े। उनकी कोशिश थी कि हिंदू मुसलमान एक दूसरे को ना मारें और हर जगह उन्होंने अल्पसंख्यक समुदाय को, हिंदू अथवा मुस्लिम, दिलासा दी। अक्तूबर 1946 में पूर्वी बंगाल के मुसलमान हिंदुओं पर निशाना कस रहे थे। गाँधीजी वहाँ गए, पैदल, गाँव-गाँव पहुँचे और उन्होंने स्थानीय मुसलमानों को समझाया कि वे हिंदुओं की रक्षा करें। इसी तरह अन्य स्थानों पर, जैसे कि दिल्ली में, उन्होंने दोनों समुदायों में पारस्परिक भरोसा और विश्वास बनाने की कोशिश की। जान बचाने के लिए भागकर पुराने क़िले के भीड़ भरे शिविर में पनाह लेने वाले शाहिद अहमद देहलवी नामक दिल्ली के एक मुसलमान ने 9 सितंबर 1947 को दिल्ली में गाँधीजी के आगमन को "बड़ी लंबी और कठोर गर्मी के बाद बरसात की फुहारों के आने" जैसा महसूस किया। देहलवी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मुसलमान एक-दूसरे से कहने लगे थे : "अब दिल्ली बच जाएगी"।

चित्र 14.10
नोआखली में महात्मा गाँधी की एक झलक पाने को इकट्ठा गाँव वालों का हुजूम।

चित्र 14.11
बिहार में एक दंगा पीड़ित गाँव के लोग महात्मा गाँधी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

28 नवंबर 1947 को गुरु नानक जयंती के मौके पर जब गाँधीजी गुरुद्वारा सीसगंज में सिखों की एक सभा को संबोधित करने गये तो उन्होंने देखा कि दिल्ली का दिल कहलाने वाले चाँदनी चौक की सड़क पर एक भी मुसलमान नहीं था। उसी शाम को अपने भाषण में उन्होंने कहा, "हमारे लिए इससे ज़्यादा शर्म की बात और क्या हो सकती है कि चाँदनी चौक में एक भी मुसलमान नहीं है?" गाँधीजी अपनी हत्या तक दिल्ली में ही रहे और आख़िरी दिनों में मुसलमानों को शहर से बाहर खदेड़ने की सोच से तंग आकर उन्होंने अनशन शुरू कर दिया था। आश्चर्यजनक बात है कि पाकिस्तान से आए हिंदू और सिख शरणार्थी भी अनशन में उनके साथ बैठते थे।

मौलाना आज़ाद ने लिखा है कि इस अनशन का असर, "आसमान की बिजली" जैसा रहा। लोगों को मुसलमानों के सफ़ाए के अभियान की निरर्थकता दिखाई देने लगी। मगर हिंसा का यह नंगा नाच आख़िरकार गाँधीजी की शाहदत के साथ ही ख़त्म हुआ। दिल्ली के बहुत सारे मुसलमानों ने बाद में कहा, "दुनिया सच्चाई की राह पर आ गई थी।"

➲ चर्चा कीजिए...

भारत छोड़ते समय अंग्रेज़ों ने शांति बनाए रखने के लिए क्या किया? महात्मा गाँधी ने ऐसे दु:खद दिनों में क्या किया?

5. बँटवारे में औरतें

5.1 औरतों की "बरामदगी"

पिछले तकरीबन डेढ़ दशक से इतिहासकार बँटवारे के दौरान आम लोगों के अनुभवों की पड़ताल कर रहे हैं। कई विद्वानों ने उस हिंसक काल में औरतों के भयानक अनुभवों के बारे में लिखा है। उनके साथ बलात्कार हुए, उनको अग़वा किया गया, बार-बार बेचा-ख़रीदा गया, अनजान हालात में अजनबियों के साथ एक नयी ज़िंदगी बसर करने के लिए मजबूर किया गया। औरतों ने जो कुछ भुगता था उसके गहरे सदमे के बावजूद बदले हुए हालात में कुछ औरतों ने अपने नए पारिवारिक बंधन विकसित किए। लेकिन भारत और पाकिस्तान की सरकारों ने इनसानी संबंधों की जटिलता के बारे में कोई संवेदनशील रवैया नहीं अपनाया। इस तरह की बहुत सारी औरतों को ज़बरदस्ती घर बिठा ली गई मानते हुए उन्हें उनके नए परिवारों से छीनकर दोबारा पुराने परिवारों या स्थानों पर भेज दिया गया। जिन औरतों के बारे में फ़ैसले लिए जा रहे थे उनसे इस बार भी सलाह नहीं ली गई। अपनी ज़िंदगी के बारे

में फ़ैसला लेने के उनके अधिकार को एक बार फिर नज़रअंदाज़ कर दिया। एक अंदाज़े के मुताबिक इस मुहिम में कुल मिलाकर लगभग 30,000 औरतों को, "बरामद" किया गया। इनमें से 22,000 मुस्लिम औरतों को भारत से और 8,000 हिंदू व सिख औरतों को पाकिस्तान से निकाला गया। यह मुहिम 1954 में जाकर ख़त्म हुई।

5.2 "इज़्ज़त" की रक्षा

विद्वानों ने इस बात पर भी रोशनी डाली है कि इस भीषण शारीरिक और मनोवैज्ञानिक ख़तरे के काल में किस तरह समुदाय की

स्रोत 6

औरतों की "बरामदगी" का मतलब क्या था

प्रकाश टण्डन ने उपनिवेशी पंजाब का एक आत्मकथात्मक सामाजिक इतिहास *पंजाबी सैंचुरी* के नाम से लिखा है। वहाँ उन्होंने एक महिला और एक जोड़े की दास्तान बयान की है। यहाँ उसका संक्षिप्त रूप दिया जा रहा है लेकिन हमने जहाँ तक संभव हो, मूल की भाषा और अभिव्यक्तियों को बनाए रखने की कोशिश की है।

एक घटना ऐसी हुई कि बँटवारे के दौरान मारकाट बचाने वाले एक सिख नौजवान ने हत्याकांड पर तुली हुई भीड़ को मनाकर एक ख़ूबसूरत मुसलमान लड़की को अपने लिए माँग लिया। उन दोनों ने शादी कर ली और धीरे-धीरे एक दूसरे से प्यार भी करने लगे। लड़की के दिमाग़ से अपने मारे गए माता-पिता और पिछली ज़िंदगी की यादें क्रमशः धुँधली पड़ने लगीं। वे एक दूसरे के साथ खुश थे और उनके एक बेटा भी हुआ। पर जल्दी ही अपहृत औरतों का पता लगा कर उन्हें वापस लौटाने में लगन से जुटे सामाजिक कार्यकर्ताओं और पुलिसवालों को उनकी भनक मिल गई। उन्होंने उस सिख के गृह-ज़िले जालंधर में पूछ-ताछ की। उसे इसकी ख़बर मिल गई और वह परिवार के साथ कलकत्ता भाग निकला। सामाजिक कार्यकर्ता भी कलकत्ता पहुँच गए इस बीच उसके मित्रों ने अदालत से स्टे-ऑर्डर लेने की कोशिश की पर कानून अपनी ही भारी-भरकम चाल से चल रहा था। कलकत्ता से यह जोड़ा इस उम्मीद में पंजाब के किसी अनजान से गाँव को भागा कि पीछा करने वाली पुलिस वहाँ नहीं पहुँच सकेगी। लेकिन पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया और पूछ-ताछ करने लगी। उसकी पत्नी फिर से गर्भवती हो गई थी और अब बच्चे का जन्म नज़दीक ही था। उस सिख ने अपने छोटे-से बेटे को तो अपनी माँ के पास भेज दिया और खुद अपनी पत्नी को गन्ने के खेत में ले गया। वहाँ एक गड्ढे में उसने अपनी पत्नी को यथा संभव आराम से लिटा दिया और खुद पुलिस की राह देखते हुए एक बंदूक लेकर लेट गया। उसने ठान रखी थी कि जीते-जी वह अपनी पत्नी को अपने से अलग न होने देगा। उस गड्ढे में ही उसने अपने हाथों से पत्नी की जचगी कराई। अगले दिन उसकी पत्नी को तेज़ बुख़ार आ गया और तीन दिन में वह मर गई। पति उसे अस्पताल ले जाने की हिम्मत न कर सका क्योंकि वह डरता था कि सामाजिक कार्यकर्ता और पुलिस उसे उससे छीन लेंगे।

चित्र 14.12
अपने घरवालों की मौत की ख़बर सुनकर औरतें एक-दूसरे को ढाँढ़स बँधा रही हैं।
दंगों में पुरुष बड़ी संख्या में मारे गए थे।

इज़्ज़त बचाने की सोच भी एक अहम भूमिका अदा कर रही थी। इज़्ज़त का यह विचार मर्दानगी की एक ख़ास अवधारणा पर आधारित था जिसमें मर्दानगी *ज़न* (औरत) और ज़मीन पर मालिकाने से तय होती है। उत्तर भारतीय किसान समाजों में यह ख़ासा पुराना विचार रहा है। मर्द का पुंसत्व उसकी इस काबिलियत में निहित माना जाता था कि वह अपनी चीज़ों यानी ज़न और ज़मीन को औरों के क़ब्ज़े से बचाए रख सकता है या नहीं। अकसर इन दो सबसे प्राथमिक "संपत्तियों" पर ही टकराव शुरू होता था। और अकसर ही औरतें भी इन्हीं मूल्यों को आत्मसात कर लेती थीं।

इसीलिए कई बार जब पुरुषों को यह भय होता था कि, "उनकी" औरतों – बीवी, बेटी, बहन – को "शत्रु" नापाक कर सकता है तो वे औरतों को ही मार डालते थे। उर्वशी बुटालिया ने अपनी पुस्तक *दि अदर साइड ऑफ़ साइलेंस* में रावलपिंडी ज़िले के थुआ खालसा गाँव के एक ऐसे ही दर्दनाक हादसे का ज़िक्र किया है। बताते हैं कि तक़्सीम के समय सिखों के इस गाँव की 90 औरतों ने "दुश्मनों" के हाथों में पड़ने की बजाय "अपनी मर्ज़ी से" कुएँ में कूदकर अपनी जान दे दी थी। इस गाँव से आए शरणार्थी दिल्ली के एक गुरुद्वारे में आज भी इस घटना पर कार्यक्रम आयोजित करते हैं। वे इन मौतों को आत्महत्या नहीं बल्कि शहादत का दर्जा देते हैं। उनको लगता है कि उस समय पुरुषों ने औरतों के फ़ैसले को बहादुरी से स्वीकार किया। बल्कि कई दफ़े तो उन्होंने औरतों को अपनी जान देने के लिए उकसाया भी। हर साल 13 मार्च को जब उनकी "शहादत" पर कार्यक्रम आयोजित किया जाता है तो इस घटना को मर्दों, औरतों और बच्चों की सभा में विस्तार से सुनाया जाता है। औरतों को अपनी बहनों के बलिदान और बहादुरी को अपने दिलों में संजोने और खुद को भी उसी साँचे में ढालने के लिए प्रेरित किया जाता है।

यह स्मृति कार्यक्रम समुदाय के ज़िंदा बचे लोगों के लिए उन यादों को जीवित रखने में मदद देता है। इस कार्यक्रम में उन औरतों को याद नहीं किया जाता है जो मरना नहीं चाहती थीं, जिन्हें अपनी इच्छा के ख़िलाफ़ मौत का रास्ता चुनना पड़ा।

➲ चर्चा कीजिए...

किन विचारों की वजह से विभाजन के दौरान कई निर्दोष महिलाओं की मृत्यु हुई और उन्होंने कष्ट उठाया?

भारतीय और पाकिस्तानी सरकारें क्यों 'अपनी' महिलाओं की अदला-बदली के लिए तैयार हुईं?

क्या आपको लगता है कि ऐसा करते समय वे सही थे?

6. क्षेत्रीय विविधताएँ

अभी तक हम आम लोगों के जिन अनुभवों पर चर्चा कर रहे हैं वे उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी इलाक़े से संबंधित थे। आइए देखें कि बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य भारत और दक्कन में विभाजन किस रूप में सामने आया? कलकत्ता और नोआखली में 1946 में भी जनसंहार हो चुके थे लेकिन विभाजन का सबसे ख़ूनी और विनाशकारी रूप पंजाब में सामने आया। पश्चिमी पंजाब से तक़रीबन सभी हिंदुओं और सिखों को भारत की तरफ़ और तक़रीबन सभी पंजाबी भाषी मुसलमानों को पाकिस्तान की तरफ़ हाँक दिया गया। और यह सब कुछ 1946 से 1948 के बीच, महज़ दो साल में हो गया।

उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और हैदराबाद (आंध्र प्रदेश) के बहुत सारे परिवार पचास के दशक और साठ के दशक के शुरुआती सालों में भी पाकिस्तान जाकर बसते रहे लेकिन बहुत सारों ने भारत में ही रहने का फ़ैसला किया। पाकिस्तान गए ऐसे ज़्यादातर उर्दू भाषी लोग, जिन्हें मुहाजिर (अप्रवासी) कहा जाता है, सिंध के कराची-हैदराबाद इलाक़े में बस गए।

बंगाल में यह पलायन ज़्यादा लंबे समय तक चलता रहा। लोग ढीली-ढाली अंतर्राष्ट्रीय सीमा के आर-पार जाते रहे। इसका एक अर्थ यह था कि बंगाली विभाजन से जो पीड़ा उपजी वह उतनी तीखी नहीं थी लेकिन जिसकी टीस लगातार महसूस होती रही। पंजाब के विपरीत, बंगाल में धर्म के आधार पर आबादी का बँटवारा भी उतना साफ़ नहीं था। बहुत सारे बंगाली हिंदू पूर्वी पाकिस्तान में जबकि बहुत सारे बंगाली मुसलमान पश्चिम बंगाल में ही रुके रहे। आख़िरकार, बंगाली मुसलमानों (पूर्वी पाकिस्तानियों) ने अपनी राजनीतिक पहलकदमी के ज़रिए जिन्ना के द्विराष्ट्र सिद्धांत को नकारते हुए पाकिस्तान से अलग होने का फ़ैसला लिया और 1971-72 में बांग्लादेश की स्थापना हुई। ज़ाहिर है, धार्मिक एकता पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान को एक-दूसरे से जोड़कर नहीं रख पाई।

इसके बावजूद पंजाब और बंगाल के अनुभवों में ज़बरदस्त समानताएँ भी दिखाई देती हैं। दोनों ही जगह औरतों व लड़कियों को यातना का मुख्य निशाना बनाया गया। हमलावर औरतों की देह को जीते जाने वाले इलाक़े की तरह देखते थे। एक समुदाय की औरतों के अपमान को उनके पूरे समुदाय के अपमान तथा बदले की कार्रवाई के रूप में देखा जाता था।

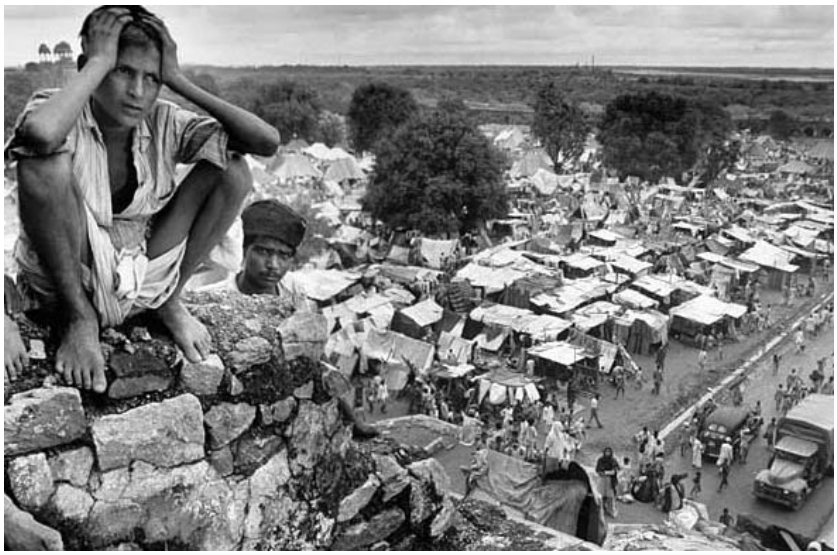

चित्र 14.13
हताश चेहरे
1947 में पुराने क़िले के भीतर एक विशाल शरणार्थी शिविर खोला गया था जिसमें विभिन्न स्थानों से आने वाले शरण लेते थे।

कहानी, कविता, फ़िल्म

क्या आप विभाजन से संबंधित किसी लघुकथा, उपन्यास, कविता या फ़िल्म के बारे में जानते हैं? प्रायः ऐसा होता है कि बँटवारे से संबंधित साहित्य और फ़िल्मों में उस विध्वंसक घटना को इतिहासकारों के मुक़ाबले ज़्यादा गहरी अंतर्दृष्टि के साथ पेश किया जाता है। उनमें सामूहिक पीड़ा और कठिनाइयों को किसी एक व्यक्ति या एक छोटे से समूह के ज़रिए समझने की कोशिश की जाती है। उनकी नियति एक ऐसी विशाल घटना से तय होती है जिस पर उनका कोई वश नहीं था। इन कृतियों में उस समय के आक्रोश व भ्रमों, लोगों को जो अजीबोग़रीब रास्ते अपनाने पड़े, उनको दर्ज किया जाता है। उनमें हिंसा की भीषणता, इनसानी पतन और दुर्दशा पर सदमे व हैरानी का भाव दिखता है। उनमें उस उम्मीद और उन तरीकों का भी ज़िक्र होता है जिनके ज़रिए लोग ऐसी मुश्किल घड़ियों का मुक़ाबला करते हैं।

उर्दू के बेहद प्रतिभाशाली कहानीकार सआदत हसन मंटो ने अपने लेखन के बारे में कहा था:

> लंबे अर्से तक मैं देश के बँटवारे से अपनी उथल-पुथल के नतीजों को स्वीकार करने से इनकार करता रहा। महसूस तो मैं अब भी वही करता हूँ, पर मुझे लगता है कि आख़िरकार मैंने अपने आप पर तरस खाए या हताश हुए बगैर उस ख़ौफ़नाक सच्चाई को मंज़ूर कर लिया है। इस प्रक्रिया में मैंने इनसान के बनाए हुए लहू के इस समुंदर से अनोखी आब वाले मोतियों को निकालने की कोशिश की- मैंने इनसानों को मारनेवाले इनसानों की एकचित्त धुन के बारे में लिखा, उनमें से कुछ के पछतावे के बारे में लिखा, उन क़ातिलों के बहाए गए आँसुओं के बारे में लिखा जो समझ नहीं पा रहे थे कि उनमें अब तक कुछ इनसानी जज़्बे बाकी कैसे रह गए। इन तमाम, और इनके अलावा और भी बहुत-सी बातों को मैंने अपनी किताब *सियाह हाशिये* में लिखा है।'

विभाजन से संबंधित साहित्य और फ़िल्में बहुत सारी भाषाओं में मौजूद हैं। हिंदी, उर्दू, पंजाबी, सिंधी, बंगाली, असमिया और अंग्रेज़ी, इन सारी भाषाओं में इस विषय पर ख़ूब काम हुआ है। संभव है आप मंटो, राजिन्दर सिंह बेदी, इन्तेज़ार हुसैन (उर्दू); भीष्म साहनी, कमलेश्वर, राही मासूम रज़ा (हिंदी); नारायण भारती (सिंधी); संत सिंह सेखों (पंजाबी); नरेन्द्रनाथ मित्रा, सैयद वलीउल्ला (बंगला); ललिताम्बिका अंतरज्ञानम (मलयालम); अमिताव घोष और बाप्सी सिधवा (अंग्रेज़ी) जैसे लेखकों को पढ़ना चाहते हों। अमृता प्रीतम, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ और दिनेश दास ने पंजाबी, उर्दू और बंगला में विभाजन पर यादगार कविताएँ लिखी हैं। संभव है इस विषय पर आप कुछ और फ़िल्में भी देखना चाहें। इस दिशा में आप ऋत्विक घटक (*मेघे ढाका तारा और सुबर्णरेखा*), एम.एस. सथ्यू (*गर्म हवा*), गोविन्द निहलानी (*तमस*), और हबीब तनवीर द्वारा निर्देशित नाटक *जिस लाहौर नई देख्या, ओ जम्या-ई-नई* को देख सकते हैं।

➲ चर्चा कीजिए...

क्या विभाजन से आपके राज्य या किसी पड़ोसी राज्य पर भी असर पड़ा? पता लगाइए कि इससे इलाक़े के मर्द-औरतों की ज़िंदगियों पर क्या असर पड़े और उन्होंने हालात का किस तरह सामना किया।

7. मदद, मानवता, सद्भावना

हिंसा के कचरे और विभाजन की पीड़ा के तले, इनसानियत और सौहार्द का एक विशाल इतिहास दबा पड़ा है। अब्दुल लतीफ़ के मर्मस्पर्शी बयानों जैसे बहुत सारे वृत्तांतों से इस बात का पता चलता है। इतिहासकारों ने इस आशय की अनगिनत कहानियाँ उजागर की हैं कि किस तरह बहुत सारे आम लोग बँटवारे के वक़्त एक-दूसरे की मदद भी कर रहे थे। ये आपसी हमदर्दी और साझेदारी, नए मौक़ों के खुलने और सदमे पर विजय की कहानियाँ हैं।

इस लिहाज़ से खुशदेव सिंह हमारे सामने एक बेहतरीन मिसाल हैं। खुशदेव सिंह एक सिख डॉक्टर थे और तपेदिक के विशेषज्ञ थे। वे उस समय धर्मपुर में तैनात थे जो अब हिमाचल प्रदेश में पड़ता है। दिन-रात लग कर डॉक्टर साहब ने असंख्य प्रवासी मुसलमानों, सिखों, हिंदुओं को बिना किसी भेदभाव के एक कोमल स्पर्श, भोजन, आश्रय और सुरक्षा प्रदान की। धर्मपुर के लोगों में उनके इनसानी जज़्बे और सहृदयता के प्रति गहरी आस्था और विश्वास पैदा हो गया था। उन पर लोगों का वैसा ही भरोसा था जैसा दिल्ली और कई जगह के मुसलमानों को गाँधीजी पर था। उनमें से एक, मुहम्मद उमर ने खुशदेव सिंह को चिट्ठी में लिखा था : "पूरी विनम्रता से मैं यह कहना चाहता हूँ कि मुझे आपके अलावा किसी की शरण में सुरक्षा दिखाई नहीं देती। इसलिए मेहरबानी करके आप मुझे अपने अस्पताल में एक सीट दे दीजिए।"

इस डॉक्टर द्वारा किए गए अथक राहत प्रयासों के बारे में उनके संस्मरणों - *लव इज़ स्ट्रॉंगर देन हेट, ए रिमेम्बेरेंस ऑफ़ 1947* (मुहब्बत नफ़रत से ज़्यादा ताक़तवर होती है : 1947 की यादें) से पता चलता है। यहाँ डॉक्टर साहब ने अपने कामों को बयान करते हुए लिखा है कि यह "एक इनसान होने के नाते बिरादर इनसानों के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी का निर्वाह करते हुए मेरी छोटी सी कोशिश" थी। उन्होंने 1949 में कराची की दो संक्षिप्त यात्राओं का गर्व से ज़िक्र किया है। उनके पुराने दोस्तों और धर्मपुर में उनसे मदद लेने वालों को कराची हवाई अड्डे पर

चित्र 14.14
हर जगह शरणार्थी शिविर लोगों से भरे हुए थे और इन लोगों को केवल खाना और छत ही नहीं चाहिए थी बल्कि प्यार और सहृदयता की भी ज़रूरत थी।

स्रोत 7

अंगूरों की एक छोटी सी टोकरी

कराची हवाई अड्डे पर 1949 में हुई मुलाक़ात का ब्योरा : डॉ. खुशदेव सिंह की ज़बानी :

'मेरे दोस्त मुझे हवाई अड्डे के एक कमरे में ले गए जहाँ हम सब बैठकर गपशप करने लगे.... (और) साथ ही दोपहर का खाना भी खाया। मुझे कराची से रात 2.30 बजे की उड़ान से लंदन जाना था।.... शाम को 5.00 बजे ..... मैंने अपने दोस्तों से निवेदन किया कि उन्होंने बड़ी फ़राख़दिली से मुझे अपना समय दिया है। मेरी समझ से अब उनसे सारी रात रुकने की उम्मीद करना तो बड़ी ज़्यादती होगी और वे यह तकलीफ़ न ही उठाएँ। मगर रात के खाने तक कोई भी नहीं उठा..... फिर उन्होंने कहा कि वे लोग जा रहे हैं और मैं जहाज़ पर चढ़ने से पहले थोड़ा आराम कर लूँ।.... मैं रात के क़रीब पौने दो बजे उठा और जब दरवाज़ा खोला तो पाया कि वे सबके सब तब तक वहीं थे।..... वे सब जहाज़ तक मेरे साथ आए और बिछुड़ने के पहले उन्होंने मुझे अंगूरों की एक छोटी सी टोकरी भेंट की। मेरे लिए प्यार के इस उमड़ते सैलाब और इस पड़ाव से मुझे मिली खुशी के लिए कृतज्ञता व्यक्त करने को मेरे पास शब्द नहीं थे।

➲ चर्चा कीजिए...

इस बारे में और जानकारी जुटाएँ कि किस तरह लोगों ने विभाजन के समय एक-दूसरे को मदद दी और कई लोगों की ज़िंदगी बचाई।

उनके साथ कुछ यादगार घंटे बिताने का मौका मिला। पहले से उन्हें जानने वाले 6 पुलिस कॉंस्टेबल उन्हें लेकर जहाज़ तक गए और जहाज़ पर चढ़ते हुए उन्हें सलामी दी। "मैंने हाथ जोड़कर उनका अभिवादन किया। मेरी आँखों से आँसू छलक आए थे।"

8. मौखिक गवाही और इतिहास

क्या आपने उन चीज़ों पर गौर किया है जिनके सहारे इस अध्याय में विभाजन के इतिहास को सूत्रों में पिरोया जा रहा है। मौखिक वृत्तांत, संस्मरण, डायरियाँ, पारिवारिक इतिहास और स्वलिखित ब्योरे – इन सबसे तक़्सीम के दौरान आम लोगों की कठिनाइयों व मुसीबतों को समझने में मदद मिलती है। लाखों लोग बँटवारे को पीड़ा तथा एक स्याह दौर की चुनौती के रूप में देखते हैं। उनके लिए यह सिर्फ़ संवैधानिक विभाजन या मुस्लिम लीग, कांग्रेस अथवा औरों की दलगत सियासत का मामला ही नहीं था। उनके लिए यह जीवन में अनपेक्षित बदलावों का वक़्त था। 1946-1950 के और उसके बाद भी जारी रहने वाले इन बदलावों से निपटने के लिए मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक और सामाजिक समायोजन की ज़रूरत थी। यूरोपीय महाध्वंस (होलोकॉस्ट) की तरह हमें विभाजन को सिर्फ़ एक राजनीतिक घटना के रूप में नहीं देखना चाहिए बल्कि इससे गुज़रने वालों द्वारा उसे दिए गए अर्थों के ज़रिए भी समझना चाहिए। किसी घटना की हक़ीक़त को स्मृतियों और अनुभवों से भी आकार मिलता है।

व्यक्तिगत स्मृतियों – जो एक तरह का मौखिक स्रोत है – की एक ख़ूबी यह है कि उनमें हमें अनुभवों और स्मृतियों को और बारीक़ी से समझने का मौका मिलता है। इससे इतिहासकारों को बँटवारे जैसी घटनाओं के दौरान लोगों के साथ क्या-क्या हुआ, इस बारे में बहुरंगी और सजीव वृत्तांत लिखने की काबिलियत मिलती है। सरकारी दस्तावेज़ों से इस तरह की जानकारियाँ हासिल कर पाना नामुमकिन होता है। सरकारी दस्तावेज़ नीतिगत और दलगत मामलों तथा विभिन्न सरकारी योजनाओं से संबंधित होते हैं। विभाजन के मामले में सरकारी रिपार्टों व फ़ाइलों और आला सरकारी अफ़सरों के निजी लेखन से अंग्रेज़ों तथा प्रमुख राजनीतिक पार्टियों के बीच भारत के भविष्य या शरणार्थियों के पुनर्वास के बारे में चलने वाली वार्ताओं पर तो काफ़ी रोशनी पड़ती है लेकिन उनसे देश विभाजन के लिए सरकार द्वारा लिए गए फ़ैसलों से प्रभावित होने वालों के रोज़मर्रा हालात और अनुभवों के बारे में ख़ास पता नहीं चलता।

मौखिक इतिहास से इतिहासकारों को ग़रीबों और कमज़ोरों – मसलन अब्दुल लतीफ़ के पिता, थुआ खालसा की औरतों, गेहूँ के खाली बोरों को बेच कर चार पैसे का जुगाड़ करने और थोक भाव पर खुदरा गेहूँ बेचने वाले शरणार्थियों, बिहार में बन रही सड़क पर काम के बोझ से दोहरी हुई जा रही एक मध्यवर्गीय बंगाली विधवा, एक पेशावरी व्यापारी जिसे भारत जा कर कटक में छोटी-मोटी नौकरी गज़ब की चीज़ दिखाई

दे रही थी लेकिन जिसे यह मालूम न था कि "कटक कहाँ है, यह हिंदुस्तान के ऊपरी हिस्से में है या निचले हिस्से में, पेशावर में तो हमने कभी उसके बारे में सुना नहीं" – के अनुभवों को उपेक्षा के अंधकार से निकाल कर अपने विषय के किनारों को और फैलाने का मौका मिलता है।

इस प्रकार संपन्न और सुज्ञात लोगों की गतिविधियों से आगे जाते हुए विभाजन का मौखिक इतिहास ऐसे मर्दों-औरतों के अनुभवों की पड़ताल करने में कामयाब रहा है जिनके वजूद को अब तक नज़रअंदाज़ कर दिया जाता था, सहज-स्वाभाविक मान लिया जाता था, या जिनका मुख्यधारा के इतिहास में बस चलते-चलते ज़िक्र कर दिया जाता था। यह उल्लेखनीय बात है क्योंकि जो इतिहास हम आमतौर पर पढ़ते हैं उसमें आम इनसानों के जीवन और कार्यों को अकसर पहुँच के बाहर या महत्वहीन मान लिया जाता है।

अभी भी बहुत सारे इतिहासकार मौखिक इतिहास के बारे में शंकालु हैं। वे यह कह कर इसको खारिज कर रहे हैं कि मौखिक जानकारियों में सटीकता नहीं होती और उनसे घटनाओं का जो क्रम उभरता है वह अकसर सही नहीं होता। इतिहासकारों की दलील है कि निजी तजुर्बों की विशिष्टता के सहारे समान्यकरण करना, यानी किसी सामान्य नतीजे पर पहुँचना मुश्किल होता है। उनका कहना है कि इस तरह के छोटे-छोटे अनुभवों से मुक़म्मल तसवीर नहीं बनाई जा सकती और सिर्फ़ एक गवाह को गवाह नहीं माना जा सकता। उनको यह भी लगता है कि मौखिक विवरण सतही मुद्दों से ताल्लुक रखते हैं और यादों में चस्पां रह जाने वाले छोटे-छोटे अनुभव इतिहास की वृहत्तर प्रक्रियाओं का कारण ढूँढ़ने में अप्रासंगिक होते हैं।

भारत के विभाजन और जर्मनी के महाध्वंस जैसी घटनाओं के संदर्भ में ऐसी गवाहियों की कोई कमी नहीं होगी जिनसे पता चलता है कि उनके दरमियान अनगिनत लोगों ने कितनी तरह की और कितनी भीषण कठिनाइयों व तनावों का सामना किया। इस प्रकार इनमें रुझानों की शिनाख़्त करने और अपवादों को चिह्नित करने के लिए साक्ष्यों की भरमार है। मौखिक या लिखित बयानों की तुलना करके उनसे निकलने वाले नतीजों को दूसरे स्रोतों से मिलाकर देखने और आंतरिक अंतर्विरोधों के बारे में चौकस रहते हुए इतिहासकार किसी भी दिए गए साक्ष्य की विश्वसनीयता को तौल सकते हैं। इसके अलावा वैसे भी, अगर इतिहास में साधारण व कमज़ोरों के वजूद को जगह देनी है तो यह कहने में कोई हर्ज़ नहीं है कि बँटवारे का मौखिक इतिहास केवल सतही मुद्दों से संबंधित नहीं है। विभाजन के अनुभव पूरी कहानी का इस कदर केंद्रीय हिस्सा हैं कि अन्य स्रोतों की जाँच करने के लिए मौखिक स्रोतों तथा मौखिक स्रोतों की जाँच करने के लिए अन्य स्रोतों का इस्तेमाल किया ही जाना चाहिए। अलग तरह के सवालों के जवाब ढूँढ़ने के लिए अलग तरह के स्रोतों को तो ढूँढ़ना ही होगा। मिसाल के तौर पर, सरकारी रिपोर्टों से हमें भारतीय और पाकिस्तानी सरकारों द्वारा "बरामद" की गई औरतों की अदला-बदली और तादाद का पता तो चल जाता है लेकिन उन औरतों ने भोगा क्या, उन पर क्या कुछ बीती, इसका जवाब तो सिर्फ़ वे औरतें ही दे सकती हैं।

लेकिन हमें इस बात का एहसास होना चाहिए कि बँटवारे के बारे में मौखिक ब्योरे ख़ुद-ब-ख़ुद या आसानी से उपलब्ध नहीं होते। उन्हें साक्षात्कार के ज़रिए ही हासिल किया जा सकता है और साक्षात्कार में भी लोगों के दर्द के अहसास और सूझबूझ से काम लेना पड़ता है। इस सिलसिले में सबसे पहले मुश्किल यही होती है कि मुमकिन है इन अनुभवों से गुज़रने वाले निहायत निजी आपबीती के बारे में बात करने को राज़ी ही न हों। मिसाल के तौर पर, कोई ऐसी औरत किसी अजनबी के सामने अपने ख़ौफ़नाक अनुभवों को कैसे बेपर्दा कर देगी जिसका बलात्कार किया गया था? साक्षात्कार लेने वालों को किसी की एकदम निजी पीड़ा और सदमे में झाँकने से आमतौर पर परहेज़ करना चाहिए। उन्हें पीड़ित महिला से सघन और उपयोगी जानकारियाँ हासिल करने के लिए आत्मीय संबंध विकसित करने चाहिए। इसके बाद याददाश्त की समस्या आती है, सो अलग। किसी घटना के बारे में कुछ दशक बाद जब बात की जाती है तो लोग क्या याद रखते हैं या भूल जाते हैं, यह आंशिक रूप से इस पर निर्भर करता है कि बीच के सालों में उनके अनुभव किस तरह के रहे हैं, इस दौरान उनके समुदायों और राष्ट्रों के साथ क्या हुआ है। मौखिक इतिहासकारों को विभाजन के "वास्तविक" अनुभवों को "निर्मित" स्मृतियों के जाल से बाहर निकालने का चुनौतीपूर्ण काम भी करना पड़ता है।

निष्कर्षत:, विभाजन का एक समग्र वृत्तांत बुनने के लिए बहुत तरह के स्रोतों का इस्तेमाल करना ज़रूरी है ताकि हम उसे एक घटना के साथ-साथ एक प्रक्रिया के रूप में भी देख सकें और उन लोगों के अनुभवों को समझ सकें जो उस स्याह ख़ौफ़नाक दौर से गुज़र रहे थे।

चित्र 14.15
न तो सभी गाड़ी से यात्रा कर सकते थे और न ही सभी पैदल चल सकते थे।

काल-रेखा

1930	प्रसिद्ध उर्दू कवि मुहम्मद इक़बाल एकीकृत ढीले-ढाले भारतीय संघ के भीतर एक 'उत्तर-पश्चिमी भारतीय मुस्लिम राज्य' की ज़रूरत का विचार पेश करते हैं
1933, 1935	कैम्ब्रिज में पढ़ने वाले एक पंजाबी मुसलमान युवक चौधरी रहमत अली ने पाकिस्तान या *पाक-स्तान* नाम पेश किया
1937-39	ब्रिटिश भारत के 11 में से 7 प्रांतों में कांग्रेस के मत्रिमंडल सत्ता में आए
1940	लाहौर में मुस्लिम लीग मुस्लिम बहुल इलाकों के लिए कुछ हद तक स्वायत्तता की माँग करते हुए प्रस्ताव पेश करती है
1946	प्रांतों में चुनाव संपन्न होते हैं। सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में कांग्रेस को और मुस्लिम सीटों पर मुस्लिम लीग को शानदार कामयाबी मिलती है।
मार्च से जून	ब्रिटिश कैबिनेट अपना तीन सदस्य मिशन दिल्ली भेजता है
अगस्त	मुस्लिम लीग पाकिस्तान की स्थापना के लिए 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' के पक्ष में फ़ैसला लेती है
16 अगस्त	कलकत्ता में हिंदू-सिखों और मुसलमानों के बीच हिंसा फूट पड़ती है, कई दिन चलने वाली इस हिंसा में हज़ारों लोग मारे जाते हैं
मार्च 1947	कांग्रेस हाईकमान पंजाब को मुस्लिम बहुल और हिंदू/सिख बहुल हिस्सों में बाँटने के पक्ष में फ़ैसला लेता है और बंगाल में भी इसी सिद्धांत को अपनाने का आह्वान करता है
मार्च 1947 के बाद	अंग्रेज़ भारत छोड़कर जाने लगते हैं
14-15 अगस्त 1947	पाकिस्तान का गठन होता है; भारत स्वतंत्र होता है। महात्मा गाँधी सांप्रदायिक सौहार्द बहाल करने के लिए बंगाल का दौरा करते हैं

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. 1940 के प्रस्ताव के ज़रिए मुस्लिम लीग ने क्या माँग की?
2. कुछ लोगों को ऐसा क्यों लगता था कि बँटवारा बहुत अचानक हुआ?
3. आम लोग विभाजन को किस तरह देखते थे?
4. विभाजन के ख़िलाफ़ महात्मा गाँधी की दलील क्या थी?
5. विभाजन को दक्षिणी एशिया के इतिहास में एक ऐतिहासिक मोड़ क्यों माना जाता है?

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

जसोदरा बागची एवं शुभॉरंजन दासगुप्ता (सं.), 2003
द ट्रॉमा एंड दि ट्रायम्फ़ : जेंडर एंड पार्टीशन इन इस्टर्न इंडिया, स्त्री, कोलकाता

आलोक भल्ला (सं.), 1994
स्टोरीज़ एबाउट द पार्टीशन ऑफ़ इंडिया, खंड, 1, 2, 3 इंडस (हार्पर कॉलिंस), नयी दिल्ली

उर्वशी बुटालिया, 1998
द अदर साइड ऑफ़ वॉयलेंस : वॉयसेज़ फ़्रॉम द पार्टीशन ऑफ़ इंडिया, वाइकिंग (पेंगुइन बुक्स), नयी दिल्ली

ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, 2001
रिमेम्बरिंग पार्टीशन : वॉयलेंस, नेशनलिज़्म एंड हिस्ट्री इन इंडिया,
कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

अनिता इंदर सिंह, 2006
द पार्टीशन ऑफ़ इंडिया,
नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली

इयान टालबॉट, 1998
पंजाब एंड द राज, 1849–1947,
मनोहर, दिल्ली

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250 से 300 शब्दों में)

6. ब्रिटिश भारत का बँटवारा क्यों किया गया?
7. बँटवारे के समय औरतों के क्या अनुभव रहे?
8. बँटवारे के सवाल पर कांग्रेस की सोच कैसे बदली?
9. मौखिक इतिहास के फ़ायदे/नुकसानों की पड़ताल कीजिए। मौखिक इतिहास की पद्धतियों से विभाजन के बारे में हमारी समझ को किस तरह विस्तार मिलता है?

मानचित्र कार्य

10. दक्षिणी एशिया के नक्शे पर कैबिनेट मिशन प्रस्तावों में उल्लिखित भाग, क, ख और ग को चिह्नित कीजिए। यह नक्शा मौजूदा दक्षिण एशिया के राजनैतिक नक्शे से किस तरह अलग है?

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. यूगोस्लाविया के विभाजन को जन्म देने वाली नृजातीय हिंसा के बारे में पता लगाइए। उसमें आप जिन नतीजों पर पहुँचते हैं उनकी तुलना इस अध्याय में भारत विभाजन के बारे में बताई गई बातों से कीजिए।
12. पता लगाइए कि क्या आपके शहर, कस्बे, गाँव या आस-पास के किसी स्थान पर दूर से कोई समुदाय आकर बसा है (हो सकता है आपके इलाक़े में बँटवारे के समय आए लोग भी रहते हों)। ऐसे समुदायों के लोगों से बात कीजिए और अपने निष्कर्षों को एक रिपोर्ट में संकलित कीजिए। लोगों से पूछिए कि वे कहाँ से आए हैं, उन्हें अपनी जगह क्यों छोड़नी पड़ी और उससे पहले व बाद में उनके कैसे अनुभव रहे। यह भी पता लगाइए कि उनके आने से क्या बदलाव पैदा हुए।

अध्याय पंद्रह

संविधान का निर्माण
एक नए युग की शुरुआत

भारतीय संविधान 26 जनवरी 1950 को अस्तित्व में आया और यह दुनिया का सबसे लंबा संविधान है। यदि हम अपने देश के आकार और विविधता पर ध्यान दें तो इसकी लंबाई व पेचीदगी को आसानी से समझ सकते हैं। स्वतंत्रता के समय भारत न केवल एक विशाल और विविधतापूर्ण बल्कि गहरे तौर पर बिखरा हुआ देश भी था। ऐसे में देश की एकजुटता और प्रगति के लिए एक विस्तृत, गहन विचार-विमर्श पर आधारित और सावधानीपूर्वक सूत्रबद्ध किया गया संविधान लाज़िमी था। हमारे संविधान ने अतीत और वर्तमान के घावों पर मरहम लगाने और विभिन्न वर्गों, जातियों व समुदायों में बँटे भारतीयों को एक साझा राजनीतिक प्रयोग में शामिल करने में मदद दी है। दूसरी ओर, इस संविधान ने लंबे समय से चली आ रही ऊँच-नीच और अधीनता की संस्कृति में लोकतांत्रिक संस्थानों को विकसित करने का भी प्रयास किया है।

भारत के संविधान को दिसंबर 1946 से दिसंबर 1949 के बीच सूत्रबद्ध किया गया। इस दौरान संविधान सभा में इसके मसविदे के एक-एक भाग पर लंबी चर्चाएँ चलीं। संविधान सभा

चित्र 15.1
दिसंबर 1949 में तीन साल तक चली बहस के बाद संविधान पर हस्ताक्षर किए गए।

के कुल 11 सत्र हुए जिनमें 165 दिन बैठकों में गए। सत्रों के बीच विभिन्न समितियाँ और उपसमितियाँ मसविदे को सुधारने और सँवारने का काम करती थीं।

राजनीति शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके होंगे कि भारत का संविधान कैसा है। आप देख चुके हैं कि आज़ादी के बाद इस संविधान की क्या उपयोगिता और सार्थकता रही है। इस अध्याय में हम संविधान के इतिहास और उसके निर्माण के दौरान हुई गहन परिचर्चा को जानेंगे। यदि संविधान सभा में उठने वाली आवाज़ों को सुनने का प्रयास करें तो हमें उन प्रक्रियाओं का अंदाज़ा लग जाएगा जिनके माध्यम से संविधान को सूत्रबद्ध किया गया और एक नए राष्ट्र की कल्पना साकार हुई।

1. उथल-पुथल का दौर

चित्र 15.2
विनाश और उथल-पुथल की छवियाँ संविधान सभा के सदस्यों को लंबे समय तक परेशान करती रहीं।

संविधान निर्माण से पहले के साल काफी उथल-पुथल वाले थे। यह महान आशाओं का क्षण भी था और भीषण मोहभंग का भी। 15 अगस्त 1947 को भारत आज़ाद तो कर दिया गया किंतु इसके साथ ही इसे विभाजित भी कर दिया गया। लोगों की स्मृति में 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन अभी भी जीवित था जो ब्रिटिश राज के खिलाफ संभवत: सबसे व्यापक जनांदोलन था। विदेशी सहायता से सशस्त्र संघर्ष के जरिए स्वतंत्रता पाने के लिए सुभाष चंद्र बोस द्वारा किए गए प्रयास भी लोगों को बखूबी याद थे। 1946 के वसंत में बम्बई तथा अन्य शहरों में रॉयल इंडियन नेवी (शाही भारतीय नौसेना) के सिपाहियों का विद्रोह भी लोगों को बार-बार आंदोलित कर रहा था। लोगों की सहानुभूति सिपाहियों के साथ थी। चालीस के दशक के आखिरी सालों में देश के विभिन्न भागों में मजदूरों और किसानों के आंदोलन भी हो रहे थे।

व्यापक हिंदू-मुस्लिम एकता इन जनांदोलनों का एक अहम पहलू था। इसके विपरीत कांग्रेस और मुस्लिम लीग, दोनों प्रमुख राजनीतिक दल धार्मिक सौहार्द्र और सामाजिक सामंजस्य स्थापित करने के लिए सुलह-सफाई की कोशिशों में नाकामयाब होते जा रहे थे। अगस्त 1946 में कलकत्ता में शुरू हुई हिंसा के साथ उत्तरी और पूर्वी भारत में लगभग साल भर तक चलने वाला दंगे-फसाद और हत्याओं का लंबा सिलसिला शुरू हो गया था (अध्याय 13 और 14 देखिए)। बर्बर हिंसा का यह वीभत्स नाच भीषण जनसंहारों के साथ हुआ। इसके साथ ही देश-विभाजन की घोषणा हुई और असंख्य लोग एक जगह से दूसरी जगह जाने लगे।

15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता दिवस पर आनंद और उम्मीद का जो माहौल था वह उस समय के लोगों को कभी नहीं भूलेगा। लेकिन भारत के बहुत सारे मुसलमानों और पाकिस्तान में रहने वाले हिंदुओं व सिखों

चित्र 15.3
14 अगस्त 1947 की मध्यरात्रि को संविधान सभा में बोलते जवाहरलाल नेहरू
इसी समय नेहरू ने अपना वह प्रसिद्ध भाषण दिया था जिसकी शुरुआती पंक्तियाँ इस प्रकार थीं : "बहुत समय पहले हमने नियति से साक्षात्कार किया था और अब समय आ चुका है कि हम अपने उस संकल्प को न केवल पूर्ण रूप से या समग्रता में, बल्कि उल्लेखनीय रूप से साकार करें। अर्धरात्रि के इस क्षण में जब दुनिया सो रही है, भारत जीवन और स्वतंत्रता की ओर जाग रहा है।"

के लिए यह एक निर्मम चुनाव का क्षण था – उनके सामने यह तत्क्षण मृत्यु तथा पीढ़ियों पुरानी जड़ों से उखड़ जाने के बीच चुनाव का क्षण था। करोड़ों शरणार्थी यहाँ से वहाँ जा रहे थे। मुसलमान पूर्वी व पश्चिमी पाकिस्तान की तरफ तो हिंदू और सिख पश्चिमी बंगाल व पूर्वी पंजाब की तरफ बढ़े जा रहे थे। उनमें से बहुत सारे कभी मंज़िल तक नहीं पहुँचे, बीच रास्ते में ही मर गए।

नवजात राष्ट्र के सामने इतनी ही गंभीर एक और समस्या देशी रियासतों को लेकर थी। ब्रिटिश राज के दौरान उपमहाद्वीप का लगभग एक-तिहाई भू-भाग ऐसे नवाबों और रजवाड़ों के नियंत्रण में था जो ब्रिटिश ताज की अधीनता स्वीकार कर चुके थे। उनके पास अपने राज्यों को जैसे चाहे चलाने की सीमित ही सही लेकिन काफी आज़ादी थी। जब अंग्रेज़ों ने भारत छोड़ा तो इन नवाबों और राजाओं की संवैधानिक स्थिति बहुत अजीब हो गई। एक समकालीन प्रेक्षक ने कहा था कि कुछ महाराजा तो "बहुत सारे टुकड़ों में बँटे भारत में स्वतंत्र सत्ता का सपना देख रहे थे।"

संविधान सभा की बैठकें इसी पृष्ठभूमि में संपन्न हो रही थीं। बाहर जो कुछ चल रहा था उससे संविधान सभा में होने वाली बहस और विचार-विमर्श भी भला अछूता कैसे रह सकता था?

1.1 संविधान सभा का गठन

संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव 1946 के प्रांतीय चुनावों के आधार पर किया गया था। संविधान सभा में ब्रिटिश भारतीय प्रांतों द्वारा भेजे गए सदस्यों के अलावा रियासतों के प्रतिनिधि भी शामिल थे। उन्हें इसलिए शामिल किया गया था क्योंकि ये राज्य भी एक-एक करके भारतीय संघ में शामिल हो चुके थे। मुस्लिम लीग ने शुरुआती बैठकों (यानी 15 अगस्त 1947 से पहले) का बहिष्कार किया जिसके कारण उस दौर में

संविधान सभा एक ही पार्टी का समूह बनकर रह गई थी। सभा के 82 प्रतिशत सदस्य कांग्रेस के भी सदस्य थे।

लेकिन कांग्रेस अपने आप में बहुत व्यापक मोर्चा थी इसलिए इन सदस्यों के विचार भी काफी भिन्न थे। उनमें से कुछ निरीश्वरवादी और धर्मनिरपेक्ष थे; (एक एंग्लो-इंडियन सदस्य फ्रेंक एंथनी के शब्दों में) कुछ "तकनीकी रूप से कांग्रेस के परंतु आध्यात्मिक स्तर पर आर.एस.एस. और हिंदू महासभा के सदस्य" थे। आर्थिक विचारों के मामले में कुछ समाजवादी थे तो कुछ सदस्य ज़मींदारों के समर्थक थे। आंतरिक विविधता के अलावा कांग्रेस ने विभिन्न जातियों और धर्मों का प्रतिनिधित्व करने के लिए कुछ स्वतंत्र सदस्यों तथा महिलाओं को भी नामांकित किया था। विधि विशेषज्ञों को संविधान सभा में लाने पर पार्टी ने विशेष ध्यान दिया। संविधान सभा में हुई गंभीर बहसों से सदस्यों के दृष्टिकोणों में विविधता साफ दिखाई देती है।

संविधान सभा में हुई चर्चाएँ जनमत से भी प्रभावित होती थीं। जब संविधान सभा में बहस होती थी तो विभिन्न पक्षों की दलीलें अखबारों में भी छपती थीं और तमाम प्रस्तावों पर सार्वजनिक रूप से बहस चलती थी। इस तरह, प्रेस में होने वाली इस आलोचना और जवाबी आलोचना से किसी मुद्दे पर बनने वाली सहमति या असहमति पर गहरा असर पड़ता था। सामूहिक सहभागिता का भाव पैदा करने के लिए जनता के सुझाव भी आमंत्रित किए जाते थे। इस प्रसंग में सभा को सैकड़ों सुझाव मिले जिनके कुछ नमूनों को देखने पर ही पता चल जाता है कि हमारे विधि निर्माताओं को कितने परस्पर विरोधी हितों पर विचार करना था। ऑल इंडिया वर्णाश्रम स्वराज्य संघ (कलकत्ता) ने आग्रह किया कि हमारा संविधान "प्राचीन हिंदू कृतियों में उल्लिखित सिद्धातों पर आधारित होना चाहिए।" गौ-हत्या पर पाबंदी और बूचड़खानों को बंद करने की विशेष रूप से माँग की गई थी। कथित निचली जातियों के समूहों ने माँग की कि "सवर्णों द्वारा दुर्व्यवहार"

चित्र 15.4
संविधान सभा का अधिवेशन।
सरदार वल्लभ भाई पटेल दाएँ से दूसरे स्थान पर बैठे हैं।

पर रोक लगाई जाए और "विधायिका, सरकारी महकमों और स्थानीय निकायों आदि में जनसंख्या के आधार पर सीटों के आरक्षण की व्यवस्था" की जाए। भाषायी अल्पसंख्यक चाहते थे कि "मातृभाषा में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता" मिले तथा "भाषायी आधार पर प्रांतों का पुनर्गठन" किया जाए। धार्मिक अल्पसंख्यकों ने विशेष सुरक्षाओं का आग्रह किया। विज़यानगरम के जिला शिक्षा संघ तथा बम्बई के सेंट्रल ज्यूइश बोर्ड जैसे बहुत सारे संगठनों ने आग्रह किया कि "विधायिका इत्यादि सहित सभी सार्वजनिक संस्थानों" में उनके लोगों को "पर्याप्त प्रतिनिधित्व" मिलना चाहिए।

1.2 मुख्य आवाज़ें

संविधान सभा में कुल तीन सौ सदस्य थे। इनमें से छह सदस्यों की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण दिखाई देती है। इन छह में से तीन – जवाहर लाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल और राजेंद्र प्रसाद – कांग्रेस के सदस्य थे। "ऐतिहासिक उद्देश्य" प्रस्ताव नेहरू ने पेश किया था। यह प्रस्ताव भी उन्होंने ही पेश किया था कि भारत का राष्ट्रीय ध्वज "केसरिया, सफेद और गहरे हरे रंग की तीन बराबर चौड़ाई वाली पट्टियों का तिरंगा" झंडा होगा जिसके बीच में नीले रंग का चक्र होगा। पटेल मुख्य रूप से परदे के पीछे कई महत्त्वपूर्ण काम कर रहे थे। उन्होंने कई रिपोर्टों के प्रारूप लिखे, कई परस्पर विरोधी विचारों के बीच सहमति पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। राजेंद्र प्रसाद संविधान सभा के अध्यक्ष थे। उन्हें न केवल चर्चा को रचनात्मक दिशा में ले जाना था बल्कि इस बात का खयाल भी रखना था कि सभी सदस्यों को अपनी बात कहने का मौका मिले।

कांग्रेस के इस त्रिगुट के अलावा प्रख्यात विधिवेत्ता और अर्थशास्त्री बी.आर. अम्बेडकर भी सभा के सबसे महत्त्वपूर्ण सदस्यों में से एक थे। यद्यपि ब्रिटिश शासन के दौरान अम्बेडकर कांग्रेस के राजनीतिक विरोधी रहे थे परंतु स्वतंत्रता के समय महात्मा गाँधी की सलाह पर उन्हें केंद्रीय विधि मंत्री का पद सँभालने का न्यौता दिया गया था। इस भूमिका में उन्होंने संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में काम किया। उनके साथ दो और वकील काम कर रहे थे। एक गुजरात के के.एम. मुंशी थे और दूसरे मद्रास के अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर थे। दोनों ने ही संविधान के प्रारूप पर महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए।

इन छह सदस्यों को दो प्रशासनिक अधिकारी भी महत्त्वपूर्ण सहायता दे रहे थे। इनमें से एक बी.एन. राव थे। वह भारत सरकार के संवैधानिक सलाहकार थे और उन्होंने अन्य देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का गहन अध्ययन करके कई चर्चा पत्र तैयार किए थे। दूसरे अधिकारी एस.एन. मुखर्जी थे। मुख्य योजनाकार मुखर्जी के बारे में अम्बेडकर ने कहा था कि "बेहद जटिल प्रस्तावों को भी सरलतम और स्पष्टतम कानूनी रूप में प्रस्तुत करने की उनकी क्षमता का विरले ही कोई मुकाबला कर पाएगा।"

अम्बेडकर के पास सभा में संविधान के प्रारूप को पारित करवाने की ज़िम्मेदारी थी। इस काम में कुल मिलाकर 3 वर्ष लगे और इस दौरान हुई चर्चाओं के मुद्रित रिकॉर्ड 11 भारी-भरकम खंडों में प्रकाशित हुए। यह लंबी मगर दिलचस्प प्रक्रिया थी। संविधान सभा के सदस्यों ने अपने विविध दृष्टिकोण बड़ी सफाई से पेश किए थे। उनकी प्रस्तुतियों में हम भारत के भावी स्वरूप, भारतीय भाषाओं, राष्ट्र के लिए आदर्श राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था, नागरिकों के नैतिक मूल्य आदि के बारे में परस्पर विरोधी विचार देख सकते हैं।

➲ चर्चा कीजिए...

अध्याय 13 और 14 को एक बार फिर देखिए। अब चर्चा कीजिए कि उस समय के राजनीतिक हालात से संविधान सभा में चले बहस-मुबाहिसे पर किस तरह असर पड़ा।

चित्र 15.5
बी.आर. अम्बेडकर हिंदू कोड बिल पर चर्चा का संचालन कर रहे हैं।

2. संविधान की दृष्टि

13 दिसंबर 1946 को जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा के सामने ''उद्देश्य प्रस्ताव'' पेश किया। यह एक ऐतिहासिक प्रस्ताव था जिसमें स्वतंत्र भारत के संविधान के मूल आदर्शों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी और वह फ्रेमवर्क सुझाया गया था जिसके तहत संविधान का कार्य आगे बढ़ना था। इसमें भारत को एक "स्वतंत्र सम्प्रभु गणराज्य" घोषित किया गया था, नागरिकों को न्याय, समानता व स्वतंत्रता का आश्वासन दिया गया था, और यह वचन दिया गया था कि "अल्पसंख्यकों, पिछड़े व जनजातीय क्षेत्रों एवं दमित व अन्य पिछड़े वर्गों के लिए पर्याप्त रक्षात्मक प्रावधान किए जाएँगे...।" इन उद्देश्यों को रेखांकित करते हुए नेहरू ने भारतीय प्रयोग को एक व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ में प्रस्तुत किया। इस अवसर पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि उनकी नज़र बरबस अतीत में हुए उन ऐतिहासिक प्रयोगों की ओर जा रही है जिनमें अधिकारों के ऐसे दस्तावेज़ तैयार किए गए थे।

स्रोत 1

"हम सिर्फ नकल करने वाले नहीं हैं"

13 दिसंबर 1946 को अपने प्रसिद्ध भाषण में जवाहरलाल नेहरू ने यह कहा था :

मेरे ज़हन में बार-बार वे सारी संविधान सभाएँ आ रही हैं जो पहले यह काम कर चुकी हैं। मुझे उस महान अमेरिकी राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया का खयाल आ रहा है जहाँ राष्ट्र-निर्माताओं ने एक ऐसा संविधान रच दिया जो इतने सारे सालों, डेढ़ सदी से भी ज़्यादा समय तक काल की कसौटी पर खरा उतरा है। उन्होंने एक महान राष्ट्र गढ़ा जो उसी संविधान पर आधारित है। इसके साथ ही मेरी नज़र उस महान क्रांति की ओर जाती है जो 150 साल पहले एक अन्य स्थान पर हुई थी। मुझे उस संविधान सभा का विचार आता है जो स्वतंत्रता के लिए इतने सारे संघर्ष लड़ने वाले पेरिस के भव्य एवं खूबसूरत शहर में जुटी थी। उस संविधान सभा ने कितनी मुश्किलों का सामना किया था और किस तरह राजा व तमाम अन्य अधिकारी उसके रास्ते में रोड़ा बन रहे थे। इतिहास के ये सारे अध्याय बरबस मुझे याद आ रहे हैं। सदन इस बात को याद रखेगा कि जब इस तरह की मुश्किलें आईं और जब उन संविधान सभाओं के लिए एक कमरा तक नहीं दिया जा रहा था तो उन्होंने टेनिस के खुले मैदान में सभा की थी और एक शपथ ली थी जिसे 'टेनिस कोर्ट की शपथ' के नाम से जाना जाता है। उन्होंने राजाओं व अन्य ताकतों की रुकावटों के बावजूद अपनी बैठकें जारी रखीं और तब तक वहाँ से नहीं हिले जब तक उन्होंने अपना काम पूरा नहीं कर लिया था। मुझे विश्वास है कि हम भी उसी शुद्ध भावना से यहाँ इकट्ठा हुए हैं और चाहे हमारी बैठक इस कक्ष में हो या कहीं और, चाहे खेतों में हो या बाज़ार में, हमारी बैठकें तब तक जारी रहेंगी जब तक हम अपना काम पूरा नहीं कर लेंगे।

जारी...

स्रोत 1 जारी...

इसके साथ ही मुझे हाल की एक क्रांति का विचार आता है जिसमें एक नए किस्म के राज्य का जन्म हुआ। यह रूस की क्रांति थी जिसने दुनिया के एक शक्तिशाली देश के रूप में सोवियत समाजवादी गणराज्य को जन्म दिया। आज यह देश दुनिया में अप्रतिम भूमिका निभा रहा है। यह न केवल दुनिया का ताकतवर देश है बल्कि हमारा पड़ोसी भी है।

ये सारे महान प्रयोग हमारे सामने हैं। हमें उनकी सफलताओं से सीखना है और उनकी विफलताओं से बचने का प्रयास करना है। हो सकता है हम उन्ही विफलताओं से बचने में सफल न हो पाएँ क्योंकि किसी भी इनसानी कोशिश में थोड़ी-बहुत नाकामी की गुंजाइश तो रहती ही है। परंतु, मुझे विश्वास है कि तमाम रुकावटों और कठिनाइयों के बावजूद हम आगे बढ़ेंगे और उस सपने को प्राप्त व साकार करके ही दम लेंगे जिसे हम इतने अरसे से अपने दिलों में संजोए हुए हैं...।

हमने एक स्वतंत्र संप्रभु गणराज्य की स्थापना का दृढ़ और पवित्र संकल्प लिया है। भारत का संप्रभु होना नियत है। इसका स्वतंत्र होना और गणराज्य होना भी स्वाभाविक है...। कुछ मित्रों ने सवाल उठाया है : "आपने यहाँ 'लोकतांत्रिक' शब्द क्यों नहीं रखा।" मैंने उन्हें कहा है कि निस्संदेह यह सोचा जा सकता है कि कोई गणराज्य लोकतांत्रिक न हो परंतु हमारा पूरा इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि हम लोकतांत्रिक संस्थानों के ही पक्षधर हैं। स्वाभाविक है कि हमारा लक्ष्य लोकतंत्र है। लोकतंत्र से कम कुछ भी नहीं। यह लोकतंत्र कैसा होगा, उसकी शक्ल-सूरत कैसी होगी, यह एक अलग मसला है? आज के लोकतंत्रों ने दुनिया की प्रगति में जबरदस्त भूमिका निभायी है और उनमें से बहुत सारे यूरोप तथा अन्य स्थानों के देश हैं। परंतु यह संदेहजनक हो सकता है कि अगर उन्हें पूरी तरह लोकतांत्रिक बने रहना है तो न जाने कब उन लोकतंत्रों को अपनी शक्ल-सूरत थोड़ी बहुत बदलनी पड़ती। मैं आशा करता हूँ कि किसी कथित लोकतांत्रिक देश की एक खास लोकतांत्रिक प्रणाली या किसी संस्थान विशेष की हम सिर्फ नकल करने वाले नहीं हैं। हो सकता है कि हम उससे बेहतर कुछ रच दें। बहरहाल, किसी भी सूरत में, हम यहाँ जैसी चाहे सरकार बनाएँ, वह हमारे लोगों के स्वभाव के अनुरूप और उनको स्वीकार्य ज़रूर होनी चाहिए। हम लोकतंत्र के हक में हैं। यह इस सदन को तय करना है कि इस लोकतंत्र, पूर्णतम लोकतंत्र का स्वरूप कैसा होगा। सदन इस बात को देख सकता है यद्यपि इस प्रस्ताव में हमने "लोकतांत्रिक" शब्द का इस्तेमाल नहीं किया है क्योंकि हमें लगा कि यह तो स्वाभाविक ही है कि "गणराज्य" शब्द में यह शब्द पहले ही निहित होता है। इसलिए हम अनावश्यक और अनुपयोगी शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहते थे। हमने शब्दों के उपयोग मात्र से कहीं ज़्यादा ध्यान दिया है। हमने इस प्रस्ताव में लोकतंत्र की अंतर्वस्तु प्रस्तुत की है। बल्कि लोकतंत्र की ही नहीं, आर्थिक लोकतंत्र की अंतर्वस्तु प्रस्तुत की है। अन्य सदस्यों को इस बात पर आपत्ति हो सकती है कि इस प्रस्ताव में हमने भारत को एक समाजवादी राज्य बनाने का उल्लेख क्यों नहीं किया है। यहाँ मेरा केवल इतना ही कहना है कि मैं समाजवाद का समर्थक हूँ और मुझे आशा है कि एक दिन भारत भी समाजवाद के पक्ष में होगा और वही भारत एक समाजवादी राज्य की स्थापना के मार्ग पर चलेगा और मुझे पूरा विश्वास है कि एक दिन पूरी दुनिया को इसी मार्ग पर चलना होगा।

संविधान सभा बहस, खंड 1

टेनिस कोर्ट की शपथ

नेहरू के भाषण (स्रोत 1) की सावधानी से पड़ताल की जानी चाहिए। उसमें क्या कहा जा रहा है? नेहरू के अतीत-प्रेम से क्या पता चलता है? संविधान की दृष्टि को निर्धारित करने वाले विचारों के उदगम के बारे में वह क्या कह रहे हैं? अतीत की ओर जाते हुए अमेरिकी और फ़्रांसीसी क्रांति का हवाला देते हुए नेहरू भारत में संविधान निर्माण के इतिहास को मुक्ति व स्वतंत्रता के एक लंबे ऐतिहासिक संघर्ष का हिस्सा सिद्ध कर रहे हैं। वह भारतीय संघर्ष के ऐतिहासिक महत्त्व को अतीत के क्रांतिकारिक क्षणों के समकक्ष बता रहे हैं। लेकिन नेहरू के कहने का आशय यह नहीं है कि उन घटनाओं को आज के लिए ब्लूप्रिंट मान लिया जाए; या कि उन क्रांतियों के विचारों को बिना सोचे-विचारे भारत पर लागू किया जा सकता है। वह किसी खास तरह के लोकतंत्र को अपनाने का विरोध करते हैं और कहते हैं कि हमारे लोकतंत्र की रूपरेखा हमारे बीच होने वाली चर्चा से ही उभरेगी। वे इस बात पर जोर देते हैं कि भारत में संविधान के आदर्श और प्रावधान कहीं और से उठाए गए नहीं हो सकते। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि 'हम सिर्फ नकल करने वाले नहीं हैं'। उनके शब्दों में, भारत में शासन की जो व्यवस्था स्थापित हो वह 'हमारे लोगों के स्वभाव के अनुरूप और उनको स्वीकार्य होनी चाहिए।' पश्चिम से, वहाँ की उपलब्धियों और विफलताओं से सबक लेना ज़रूरी तो है लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि पश्चिमी समाजों को भी अन्य स्थानों पर हुए प्रयोगों से बहुत कुछ सीखना पड़ा था और लोकतंत्र की अपनी अवधारणा बदलनी पड़ी थी। भारतीय संविधान का उद्देश्य यह होगा कि लोकतंत्र के उदारवादी विचारों और आर्थिक न्याय के समाजवादी विचारों का एक-दूसरे में समावेश किया जाए और भारतीय संदर्भ में इन विचारों की रचनात्मक व्याख्या की जाए। नेहरू इस बात पर जोर दे रहे थे कि भारत के लिए क्या उचित है – इस बारे में हमें रचनात्मक ढंग से सोचना चाहिए।

➲ उद्देश्य प्रस्ताव में "लोकतांत्रिक" शब्द का इस्तेमाल न करने के लिए जवाहरलाल नेहरू ने क्या कारण बताया था?

2.1 लोगों की इच्छा

संविधान सभा के कम्युनिस्ट सदस्य सोमनाथ लाहिड़ी को संविधान सभा की चर्चाओं पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का स्याह साया दिखाई देता था। उन्होंने सदस्यों तथा आम भारतीयों से आग्रह किया कि वे साम्राज्यवादी शासन के प्रभाव से खुद को पूरी तरह आज़ाद करें। 1946-47 के जाड़ों में जब संविधान सभा में चर्चा चल रही थी तो अंग्रेज़ अभी भी भारत में ही थे। जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम सरकार शासन तो चला रही थी परंतु उसे सारा काम वायसराय तथा लंदन में बैठी ब्रिटिश सरकार की देखरेख में करना पड़ता था। लाहिड़ी ने अपने साथियों को समझाया कि संविधान सभा अंग्रेज़ों की बनाई हुई है और वह 'अंग्रेज़ों की योजना को साकार करने का काम कर रही है।'

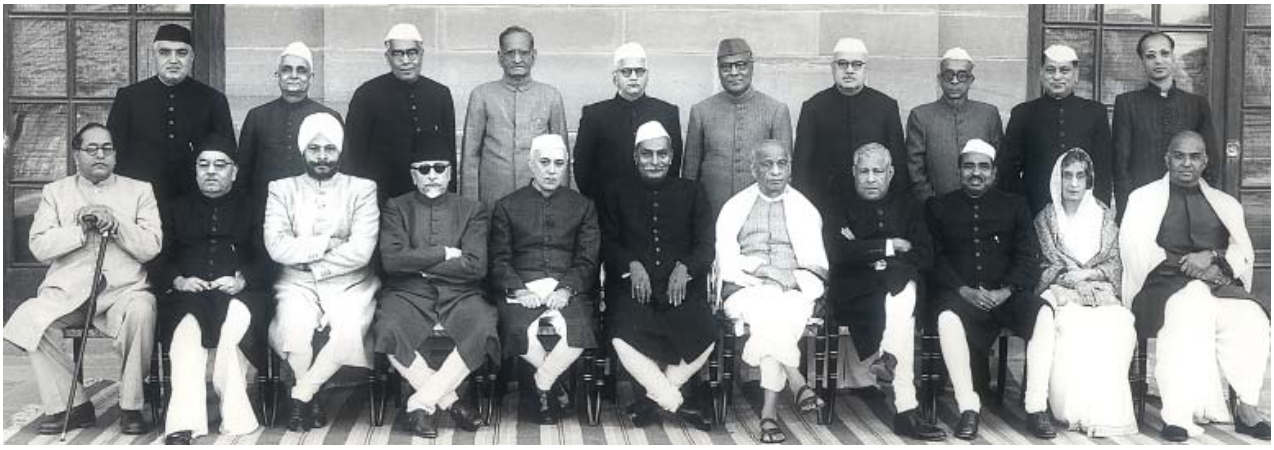

चित्र 15.6
अंतरिम सरकार के सदस्य
राजेंद्र प्रसाद मध्य में बैठे हैं। उनके दाहिनी ओर जवाहरलाल नेहरू तथा बाईं ओर सरदार पटेल हैं। इसी कतार में एकदम बाईं ओर बी.आर. अम्बेडकर तथा एकदम दाहिनी ओर श्यामाप्रसाद मुखर्जी हैं।

स्रोत 2

"बहुत अच्छा महोदय – साहसिक शब्द, उदात्त शब्द"

सोमनाथ लाहिड़ी ने कहा था :

महोदय मैं पंडित नेहरू को इस बात के लिए मुबारकबाद देना चाहता हूँ कि उन्होंने यह कह कर भारतीय जनता की भावना को इतने सटीक शब्दों में व्यक्त किया है कि भारत के लोग अंग्रेज़ों द्वारा थोपी गई किसी चीज को स्वीकार नहीं करेंगे। उन्होंने कहा कि इस तरह की जबरदस्ती पर असंतोष व आपत्ति व्यक्त की जाएगी और अगर आवश्यकता हुई तो हम संघर्ष की घाटी में उतरेंगे। बहुत अच्छा महोदय – साहसिक शब्द, उदात्त शब्द।

परंतु देखना यह है कि इस चुनौती को आप कैसे और कब साकार करते हैं। महोदय, मसला यह है कि यह जबरदस्ती इसी समय की जा रही है। न केवल ब्रिटिश योजना ने भावी संविधान बना दिया है... जो अंग्रेज़ों की संतुष्टि पर आश्रित होगा बल्कि इससे यह भी संकेत मिलता है कि मामूली से मामूली मतभेद के लिए भी आपको संघीय न्यायालय तक दौड़ना होगा या वहाँ इंग्लैंड में जाकर नाचना पड़ेगा; या ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लेमेंट एटली या किसी और के दरवाज़े पर दस्तक देनी होगी। केवल यही सच नहीं है कि हम चाहे जो भी योजना क्यों न बनाएँ यह संविधान सभा ब्रिटिश बंदूकों, ब्रिटिश सेना, उनके आर्थिक व वित्तीय शिकंजे के साये में है – इसका मतलब यह निकलता है कि मूल रूप से सत्ता अभी भी अंग्रेज़ों के हाथ में है और सत्ता का प्रश्न बुनियादी तौर पर अभी तय नहीं हुआ है, जिसका अर्थ यह निकलता है कि हमारा भविष्य अभी भी पूरी तरह हमारे हाथों में नहीं है। इतना ही नहीं, हाल ही में एटली तथा अन्य लोगों द्वारा दिए गए वक्तव्यों में यह भी स्पष्ट हो गया है कि अगर ज़रूरत पड़ी तो वे विभाजन से भी पीछे नहीं हटेंगे। महोदय इसका आशय यह है कि इस देश में कोई स्वतंत्रता नहीं है। जैसा कि अभी कुछ दिन पहले सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा था, हमारे पास केवल आपस में लड़ने की स्वतंत्रता है। हमें बस इतनी ही स्वतंत्रता मिली है...। इसलिए हमारा विनम्र सुझाव है कि यहाँ सवाल इस योजना की रूपरेखा के जरिए कुछ पा लेने का नहीं बल्कि यहाँ और अभी स्वतंत्रता की घोषणा करने और अंतरिम सरकार, भारत की जनता से यह आह्वान करने का है कि वे आपस में लड़ने की बजाय अपने शत्रु को देखें, जिसके हाथ में अभी भी कोड़ा है, वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद को देखें – और उससे मिलकर लड़ने के लिए आगे बढ़ें और जब हम स्वतंत्र हो जाएँगे, तब हम अपने दावों का हल ढूँढ़ सकते हैं।

संविधान सभा बहस, खंड 1

नेहरू ने स्वीकार किया कि ज़्यादातर राष्ट्रवादी नेता एक भिन्न प्रकार की संविधान सभा चाहते थे। एक लिहाज से यह भी सही था कि ब्रिटिश सरकार का 'उसके गठन में काफी हाथ था' और उसने सभा के कामकाज पर कुछ शर्तें भी लगा दी थीं। 'परंतु', नेहरू ने कहा, 'आपको उस स्रोत को नज़रअंदाज नहीं करना चाहिए जहाँ से इस सभा को शक्ति मिल रही है।'

> सरकारें सरकारी कागजों से नहीं बनतीं। सरकार जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति होती है। हम यहाँ इसलिए जुटे हैं क्योंकि हमारे पास जनता की ताकत है और हम उतनी दूर तक ही जाएँगे जितनी दूर तक लोग हमें ले जाना चाहेंगे फिर चाहे वे किसी भी समूह या पार्टी से संबंधित क्यों न हों। इसलिए हमें भारतीय जनता के दिलों में समायी आकांक्षाओं और भावनाओं को हमेशा अपने ज़ेहन में रखना चाहिए और उन्हें पूरा करने का प्रयास करना चाहिए।

संविधान सभा उन लोगों की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का साधन मानी जा रही थी जिन्होंने स्वतंत्रता के आंदोलनों में हिस्सा लिया था। लोकतंत्र, समानता तथा न्याय जैसे आदर्श उन्नीसवीं सदी से भारत में सामाजिक संघर्षों के साथ गहरे तौर पर जुड़ चुके थे। जब उन्नीसवीं शताब्दी में समाज सुधारकों ने बाल-विवाह का विरोध किया और विधवा-विवाह का समर्थन किया तो वे सामाजिक न्याय का ही अलख जगा रहे थे। जब विवेकानंद ने हिंदू धर्म में सुधार के लिए मुहिम चलाई तो वह धर्मों को और ज़्यादा न्यायसंगत बनाने का ही प्रयास कर रहे थे। जब महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले ने दमित जातियों की पीड़ा का सवाल उठाया या कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों ने मजदूरों और किसानों को एकजुट किया तो वे भी आर्थिक और सामाजिक न्याय के लिए ही जूझ रहे थे। एक दमनकारी और अवैध सरकार के खिलाफ राष्ट्रीय आंदोलन अपरिहार्य रूप से लोकतंत्र व न्याय का, नागरिकों के अधिकारों और समानता का संघर्ष भी था।

जैसे-जैसे प्रतिनिधित्व की माँग बढ़ी, अंग्रेज़ों को चरणबद्ध ढंग से संवैधानिक सुधार करने पड़े। प्रांतीय सरकारों में भारतीयों की हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए कई कानून (1909, 1919 और 1935) पारित किए गए। 1919 में कार्यपालिका को आंशिक रूप से प्रांतीय विधायिका के प्रति उत्तरदायी बनाया गया और 1935 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के अंतर्गत उसे लगभग पूरी तरह विधायिका के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया। जब गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के तहत 1937 में चुनाव हुए तो 11 में से 8 प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी।

➲ स्रोत 2 में वक्ता को ऐसा क्यों लगता है कि संविधान सभा ब्रिटिश बंदूकों के साये में काम कर रही है।

चित्र 15.7
एडविन मोंटेग्यू (बाएँ) ने ही 1919 के मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों की रूपरेखा तैयार की थी जिनके जरिए प्रांतीय विधायिकाओं में सीमित प्रतिनिधित्व की व्यवस्था लागू हुई थी।

➲ चर्चा कीजिए...

जवाहरलाल नेहरू ने "उद्देश्य प्रस्ताव" पर अपने भाषण में कौन से विचार पेश किए?

इसके बावजूद हम पहले के संवैधानिक बदलावों तथा 1946 से अगले तीन साल के दौरान घटी घटनाओं को स्वाभाविक रूप से एक ही प्रक्रिया का हिस्सा नहीं मान सकते। इससे पहले के संवैधानिक प्रयोग एक प्रतिनिध्यात्मक सरकार के लिए लगातार बढ़ती माँग के जवाब में थे जबकि विभिन्न कानूनों (1909, 1919 और 1935) को पारित करने की प्रक्रिया में भारतीयों की कोई प्रत्यक्ष हिस्सेदारी नहीं थी। उन्हें औपनिवेशिक सरकार ने ही लागू किया था। प्रांतीय निकायों का चुनाव करने वाले निर्वाचन मंडल का दायरा समय के साथ फैलता जा रहा था लेकिन 1935 में भी यह अधिकार वयस्क आबादी के 10-15 प्रतिशत हिस्से तक ही सीमित था। तब तक सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की व्यवस्था नहीं थी। 1935 के कानून के तहत निर्वाचित विधायिकाएँ औपनिवेशिक शासन के ढाँचे में काम कर रही थीं और अंग्रेज़ों द्वारा नियुक्त गवर्नर के प्रति उत्तरदायी थीं। 13 दिसंबर 1946 को नेहरू जिस कल्पना की बात कर रहे थे वह एक स्वतंत्र संप्रभु भारतीय गणराज्य के संविधान की कल्पना थी।

3. अधिकारों का निर्धारण

नागरिकों के अधिकार किस तरह निर्धारित किए जाएँ? क्या उत्पीड़ित समूहों को कोई विशेष अधिकार मिलने चाहिए? अल्पसंख्यकों के क्या अधिकार हों? वास्ताव में अल्पसंख्यक किसे कहा जाए? जैसे-जैसे संविधान सभा के पटल पर बहस आगे बढ़ी, यह साफ हो गया कि इनमें से किसी भी सवाल का कोई ऐसा उत्तर मौजूद नहीं है जिस पर पूरी सभा सहमत हो। इन सवालों के जवाब विचारों में टकराव और व्यक्तिगत मुठभेड़ों से ही पैदा होने थे। अपने उद्घाटन भाषण में नेहरू ने "जनता की इच्छा" का हवाला दिया था और कहा था कि संविधान निर्माताओं को "जनता के दिलों में समायी आकांक्षाओं और भावनाओं" को पूरा करना है। यह कोई आसान काम नहीं था। जैसे-जैसे आज़ादी की उम्मीद पैदा हुई, विभिन्न समूह अलग-अलग तरह से अपनी इच्छाएँ व्यक्त करने लगे। इन सभी अभिव्यक्तियों पर बहस करना ज़रूरी था। परस्पर विरोधी विचारों के बीच किसी समाधान पर पहुँचना और एक आम सहमति पर पहुँचना ज़रूरी था।

3.1 पृथक निर्वाचिका की समस्या

27 अगस्त 1947 को मद्रास के बी. पोकर बहादुर ने पृथक निर्वाचिका बनाए रखने के पक्ष में एक प्रभावशाली भाषण दिया। बहादुर ने कहा कि अल्पसंख्यक सब जगह होते हैं; उन्हें हम चाह कर भी नहीं हटा सकते। हमें ज़रूरत एक ऐसे राजनीतिक ढाँचे की है जिसके भीतर अल्पसंख्यक भी औरों के साथ सद्भाव के साथ जी सकें और समुदायों के बीच मतभेद कम से कम हों। इसके लिए ज़रूरी है कि राजनीतिक व्यवस्था में अल्पसंख्यकों का पूरा प्रतिनिधित्व हो, उनकी आवाज़ सुनी जाए और उनके विचारों पर ध्यान दिया जाए। देश के शासन में मुसलमानों की एक सार्थक हिस्सेदारी

सुनिश्चित करने के लिए पृथक निर्वाचिका के अलावा और कोई रास्ता नहीं हो सकता। बहादुर को लगता था कि मुसलमानों की ज़रूरतों को गैर-मुसलमान अच्छी तरह नहीं समझ सकते; न ही अन्य समुदायों के लोग मुसलमानों का कोई सही प्रतिनिधि चुन सकते हैं।

पृथक निर्वाचिका की हिमायत में दिए गए इस बयान से ज़्यादातर राष्ट्रवादी भड़क गए। इसके बाद जो गरमागरम बहस चली उसमें इस माँग के खिलाफ तरह-तरह के तर्क दिए गए। ज़्यादातर राष्ट्रवादियों को लग रहा था कि पृथक निर्वाचिका की व्यवस्था लोगों को बाँटने के लिए अंग्रेज़ों की चाल थी। आर.वी. धुलेकर ने बहादुर को संबोधित करते हुए कहा था, "अंग्रेज़ों ने संरक्षण के नाम पर अपना खेल खेला। इसकी आड़ में उन्होंने तुम्हें (अल्पसंख्यकों) फुसला लिया है। अब इस आदत को छोड़ दो...। अब कोई तुम्हें बहकाने वाला नहीं है।"

विभाजन के कारण तो राष्ट्रवादी नेता पृथक निर्वाचिका के प्रस्ताव पर और भड़कने लगे थे। उन्हें निरंतर गृहयुद्ध, दंगों और हिंसा की आशंका दिखाई देती थी। सरदार पटेल ने कहा था कि पृथक निर्वाचिका एक ऐसा "विष है जो हमारे देश की पूरी राजनीति में समा चुका है।" उनकी राय में यह एक ऐसी माँग थी जिसने एक समुदाय को दूसरे समुदाय से भिड़ा दिया, राष्ट्र के टुकड़े कर दिए, रक्तपात को जन्म दिया और देश के विभाजन का कारण बनी। पटेल ने कहा, "क्या तुम इस देश में शांति चाहते हो? अगर चाहते हो तो इसे (पृथक निर्वाचिका को) फौरन छोड़ दो।"

चित्र 15.8
1946 के जाड़ों में भारतीय नेता एटली के साथ वार्ता करने लंदन गए। इन वार्ताओं का कोई नतीजा नहीं निकला। (बाएँ से दाएँ - लियाकत अली, मोहम्मद अली जिन्ना, बलदेव सिंह, पैथिक-लॉरेंस)

स्रोत 3

"अंग्रेज़ तो चले गए, मगर जाते-जाते शरारत का बीज बो गए"

सरदार वल्लभ भाई पटेल ने कहा था :

यह दोहराने का कोई मतलब नहीं है कि हम पृथक निर्वाचिका की माँग इसलिए कर रहे हैं क्योंकि हमारे लिए यही अच्छा है। यह बात हम बहुत समय से सुन रहे हैं। हम सालों से यह सुन रहे हैं और इसी आंदोलन के कारण अब हम एक विभाजित राष्ट्र हैं...। क्या आप मुझे एक भी स्वतंत्र देश दिखा सकते हैं जहाँ पृथक निर्वाचिका हो? अगर आप मुझे दिखा दें तो मैं आपकी बात मान लूँगा। लेकिन अगर इस अभागे देश में विभाजन के बाद भी पृथक निर्वाचिका की व्यवस्था बनाए रखी गई तो यहाँ जीने का कोई मतलब नहीं होगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि यह सिर्फ मेरे भले की बात नहीं है बल्कि आपका भला भी इसी में है कि हम अतीत को भूल जाएँ। एक दिन हम एकजुट हो सकते हैं...। अंग्रेज़ तो चले गए, मगर जाते-जाते शरारत का बीज बो गए हैं। हम इस शरारत को और बढ़ाना नहीं चाहते। (सुनिए, सुनिए)। जब अंग्रेज़ों ने यह विचार पेश किया था तो उन्होंने यह उम्मीद नहीं की थी कि उन्हें इतनी जल्दी भागना पड़ेगा। उन्होंने तो अपने शासन की सुविधा के लिए यह किया था। खैर, कोई बात नहीं। मगर अब वे अपनी विरासत पीछे छोड़ गए हैं। अब हम इससे बाहर निकलेंगे या नहीं?

संविधान सभा बहस, खंड 5

पृथक निर्वाचिकाओं की माँग का जवाब देते हुए गोविन्द वल्लभ पंत ने ऐलान किया कि यह प्रस्ताव न केवल राष्ट्र के लिए बल्कि अल्पसंख्यकों के लिए भी खतरनाक है। वह बहादुर के इस विचार से सहमत थे कि किसी लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि समाज के विभिन्न तबकों में वह कितना आत्मविश्वास पैदा कर पाती है। उन्हें इस तर्क पर भी कोई आपत्ति नहीं थी कि एक मुक्त देश में प्रत्येक नागरिक के साथ ऐसा आचरण किया जाना चाहिए जिससे "न केवल उसकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो बल्कि उसमें स्वाभिमान का आध्यात्मिक भाव भी पैदा हो" तथा बहुल समुदाय का यह दायित्व है कि वह अल्पसंख्यकों की समस्याओं को समझे, उनकी आकांक्षाओं को महसूस करे। इसके बावजूद पंत पृथक निर्वाचिका का विरोध कर रहे थे। उनका कहना था कि यह एक आत्मघाती माँग है जो अल्पसंख्यकों को स्थायी रूप से अलग-थलग कर देगी, उन्हें कमज़ोर बना देगी और शासन में उन्हें प्रभावी हिस्सेदारी नहीं मिल पाएँगी।

स्रोत 4

"मेरा मानना है कि पृथक निर्वाचिका अल्पसंख्यकों के लिए आत्मघाती साबित होगी।"

27 अगस्त 1947 को संविधान सभा की बहस में गोविंद वल्लभ पंत ने कहा था :

> मेरा मानना है कि पृथक निर्वाचिका अल्पसंख्यकों के लिए आत्मघाती साबित होगी और उन्हें बहुत भारी नुकसान पहुँचाएगी। अगर उन्हें हमेशा के लिए अलग-थलग कर दिया गया तो वे कभी भी खुद को बहुसंख्यकों में रूपांतरित नहीं कर पाएँगे। निराशा का भाव शुरू से उन्हें अपंग बना देगा। आप क्या चाहते हैं और हमारा अंतिम उद्देश्य क्या है? क्या अल्पसंख्यक हमेशा अल्पसंख्यकों के रूप में ही रहना चाहते हैं या वे भी एक दिन एक महान राष्ट्र का अभिन्न अंग बनने और उसकी नियति को निर्धारित व नियंत्रित करने का सपना देखते हैं? मेरा विचार है कि अगर उन्हें शेष समुदाय से अलग रखा जाता है और ऐसे हवाबंद कमरे में काटकर रखा जाता है जहाँ उन्हें हवा के लिए भी औरों पर निर्भर रहना पड़ेगा तो यह उनके लिए भयानक रूप से खतरनाक होगा...। अगर अल्पसंख्यक पृथक निर्वाचिकाओं से जीतकर आते रहे तो कभी प्रभावी योगदान नहीं दे पाएँगे।
>
> *संविधान सभा बहस, खंड 2*

➲ स्रोत 3 और 4 को पढ़िए। पृथक निर्वाचिकाओं के विरोध में कौन-कौन से तर्क दिए गए हैं?

इन सारी दलीलों के पीछे एक एकीकृत राज्य के निर्माण की चिंता काम कर रही थी। राजनीतिक एकता और राष्ट्र की स्थापना करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को राज्य के नागरिक के साँचे में ढालना था, हर समूह को

राष्ट्र के भीतर समाहित किया जाना था। संविधान नागरिकों को अधिकार देगा परंतु नागरिकों को भी राज्य के प्रति अपनी निष्ठा का वचन लेना होगा। समुदायों को सांस्कृतिक इकाइयों के रूप में मान्यता दी जा सकती थी और उन्हें सांस्कृतिक अधिकारों का आश्वासन दिया जा सकता था। मगर राजनीतिक रूप से सभी समुदायों के सदस्यों को राज्य के सामान्य सदस्यों के रूप में काम करना था अन्यथा उनकी निष्ठाएँ विभाजित होतीं। पंत ने कहा, "हमारे भीतर यह आत्मघाती और अपमानजनक आदत बनी हुई है कि हम कभी नागरिक के रूप में नहीं सोचते बल्कि समुदाय के रूप में ही सोच पाते हैं...। हमें याद रखना चाहिए कि महत्त्व केवल नागरिक का होता है। सामाजिक पिरामिड का आधार भी और उसकी चोटी भी नागरिक ही होता है।" जब सामुदायिक अधिकारों का महत्त्व रेखांकित किया जा रहा था, उस समय भी बहुत सारे राष्ट्रवादियों में यह भय सिर उठाने लगा था कि इससे निष्ठाएँ खंडित होंगी और एक शक्तिशाली राष्ट्र व शक्तिशाली राज्य की स्थापना नहीं हो पाएगी।

सारे मुसलमान भी पृथक निर्वाचिका की माँग के समर्थन में नहीं थे। उदाहरण के लिए, बेगम ऐज़ाज़ रसूल को लगता था कि पृथक निर्वाचिका आत्मघाती साबित होगी क्योंकि इससे अल्पसंख्यक बहुसंख्यकों से कट जाएँगे। 1949 तक संविधान सभा के ज़्यादातर सदस्य इस बात पर सहमत हो गए थे कि पृथक निर्वाचिका का प्रस्ताव अल्पसंख्यकों के हितों के खिलाफ जाता है। इसकी बजाय मुसलमानों को लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए ताकि राजनीतिक व्यवस्था में उनको एक निर्णायक आवाज़ मिल सके।

3.2 "केवल इस प्रस्ताव से काम चलने वाला नहीं है"

उद्देश्य प्रस्ताव का स्वागत करते हुए किसान आंदोलन के नेता और समाजवादी विचारों वाले एन.जी. रंगा ने आह्वान किया कि अल्पसंख्यक शब्द की व्याख्या आर्थिक स्तर पर की जानी चाहिए। रंगा की नज़र में असली अल्पसंख्यक गरीब और दबे-कुचले लोग थे। उन्होंने इस बात का स्वागत किया कि संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को कानूनी अधिकार दिए जा रहे हैं मगर उन्होंने इसकी सीमाओं को भी चिह्नित किया। उन्होंने कहा कि जब तक संविधानसम्मत अधिकारों को लागू करने का प्रभावी इंतज़ाम नहीं किया जाएगा तब तक गरीबों के लिए इस बात का कोई मतलब नहीं है कि अब उनके पास जीने का, पूर्ण रोजगार का अधिकार आ गया है; या अब वे सभा कर सकते हैं, सम्मेलन कर सकते हैं, संगठन बना सकते हैं और उनके पास अन्य नागरिक स्वतंत्रताएँ हैं। यह ज़रूरी था कि ऐसी परिस्थितियाँ बनाई जाएँ जहाँ संविधान द्वारा दिए गए अधिकारों का जनता प्रभावी ढंग से प्रयोग कर सके। रंगा ने कहा कि, "उन्हें सहारों की ज़रूरत है। उन्हें एक सीढ़ी चाहिए।"

स्रोत 5

"खंडित निष्ठा के लिए कोई जगह नहीं"

गोविंद वल्लभ पंत ने कहा कि निष्ठावान नागरिक बनने के लिए लोगों को समुदाय और खुद को बीच में रख कर सोचने की आदत छोड़नी होगी :

> लोकतंत्र की सफलता के लिए व्यक्ति को आत्मानुशासन की कला का प्रशिक्षण लेना होगा। लोकतंत्र में व्यक्ति को अपने लिए कम तथा औरों के लिए ज़्यादा फिक्र करनी चाहिए। यहाँ खंडित निष्ठा के लिए कोई जगह नहीं है। सारी निष्ठाएँ केवल राज्य पर केंद्रित होनी चाहिए। यदि किसी लोकतंत्र में आप प्रतिस्पर्धी निष्ठाएँ रख देते हैं या ऐसी व्यवस्था खड़ी कर देते हैं जिसमें कोई व्यक्ति या समूह अपने अपव्यय पर अंकुश लगाने की बजाय बृहत्तर या अन्य हितों की ज़रा भी परवाह नहीं करता, तो ऐसे लोकतंत्र का डूबना निश्चित है।

संविधान सभा बहस, खंड 2

➲ जी. बी. पंत निष्ठावादी नागरिकों के अभिलक्षणों को कैसे परिभाषित करते हैं?

स्रोत 6

"जी नहीं, असली अल्पसंख्यक इस देश की जनता है"

जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत किए गए उद्देश्य प्रस्ताव का स्वागत करते हुए एन.जी. रंगा ने कहा था :

> महोदय, अल्पसंख्यकों के बारे में बहुत बातें हो रही हैं। असली अल्पसंख्यक कौन हैं? तथाकथित पाकिस्तानी प्रांतों में रहने वाले हिंदू, सिख और यहाँ तक मुसलमान भी अल्पसंख्यक नहीं हैं। जी नहीं, असली अल्पसंख्यक तो इस देश की जनता है। यह जनता इतनी दबी-कुचली और इतनी उत्पीड़ित है कि अभी तक साधारण नागरिक के अधिकारों का लाभ भी नहीं उठा पा रही है। स्थिति क्या है? आप आदिवासी इलाकों में जाइए। उनके अपने कानूनों, उनके जनजातीय कानूनों, उनकी ज़मीन को उनसे नहीं छीना जा सकता। लेकिन हमारे व्यापारी वहाँ जाते हैं, और तथाकथित मुक्त बाज़ार के नाम पर उनकी ज़मीन छीन लेते हैं। भले ही कानून ज़मीन की इस बेदखली के खिलाफ हो, व्यापारी इन आदिवासियों को तरह-तरह के बंधनों में जकड़कर गुलाम बना लेते हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी दासता के नर्क में ढकेल देते हैं। आइए अब आम गाँव वालों को देख लेते हैं। वहाँ सूदखोर पैसा लेकर जाता है और गाँव वालों को अपनी जेब में डाल लेता है। वहाँ ज़मींदार हैं और मालगुजार व अन्य लोग हैं जो इन गरीब देहातियों का शोषण करते हैं। इन लोगों में मूलभूत शिक्षा तक नहीं है। असली अल्पसंख्यक यही लोग हैं जिन्हें सुरक्षा और सुरक्षा का आश्वासन मिलना चाहिए। उन्हें आवश्यक सुरक्षा प्रदान करने के लिए केवल इस प्रस्ताव से काम चलने वाला नहीं है...।
>
> *संविधान सभा बहस, खंड 2*

➲ रंगा द्वारा 'अल्पसंख्यक' की अवधारणा को किस तरह परिभाषित किया गया है?

रंगा ने आम जनता और संविधान सभा में उसके प्रतिनिधित्व का दावा करने वालों के बीच मौजूद विशाल खाई की ओर भी ध्यान आकर्षित कराया। उन्होंने पूछा :

> हम किसका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं? अपने देश की आम जनता का। और इसके बावजूद हममें से ज़्यादातर लोग उस जनता का हिस्सा नहीं हैं। हम उनके हैं, उनके लिए काम करना चाहते हैं, लेकिन जनता खुद संविधान सभा तक नहीं पहुँच पा रही है। इसमें कुछ समय लग सकता है, तब तक हम यहाँ उनके ट्रस्टी हैं, उनके हिमायती हैं और उनके पक्ष में आवाज़ उठाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं।

रंगा ने आदिवासियों को भी ऐसे ही समूहों में गिनाया था। इस समूह के प्रतिनिधियों में जयपाल सिंह जैसे ज़बरदस्त वक्ता भी शामिल थे। उद्देश्य प्रस्ताव का स्वागत करते हुए जयपाल सिंह ने कहा था :

> ... एक आदिवासी होने के नाते मुझसे यह उम्मीद नहीं की जाती कि मैं इस प्रस्ताव की पेचीदगियों को समझता होऊँगा। लेकिन मेरा सहज विवेक कहता है कि हममें से हरेक व्यक्ति को मुक्ति के उस मार्ग पर चलना चाहिए और मिलकर लड़ना चाहिए। महोदय, अगर भारतीय जनता में ऐसा कोई समूह है जिसके साथ सही व्यवहार नहीं किया गया है तो वह मेरा समूह है। मेरे लोगों को पिछले 6,000 साल से अपमानित किया जा रहा है, उपेक्षित किया जा रहा है...। मेरे समाज का पूरा इतिहास भारत के गैर-मूल निवासियों के हाथों लगातार शोषण और छीनाझपटी का इतिहास रहा है जिसके बीच में जब-तब विद्रोह और अव्यवस्था भी फैली है। इसके बावजूद मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों पर विश्वास करता हूँ। मैं आप सबके इस संकल्प का विश्वास करता हूँ कि अब हम एक नया अध्याय रचने जा रहे हैं। स्वतंत्र भारत का एक ऐसा अध्याय जहाँ सबके पास अवसरों की समानता होगी, जहाँ किसी की उपेक्षा नहीं होगी।

सिंह ने आदिवासियों की सुरक्षा तथा उन्हें आम आबादी के स्तर पर लाने के लिए ज़रूरी परिस्थितियाँ रचने की आवश्यकता पर सुंदर वक्तव्य दिया। उन्होंने कहा कि आदिवासी कबीले संख्या की दृष्टि से अल्पसंख्यक नहीं हैं लेकिन उन्हें संरक्षण की आवश्यकता है। उन्हें वहाँ से बेदखल कर दिया गया जहाँ वे रहते थे, उन्हें उनके जंगलों और चारागाहों से वंचित कर दिया गया, उन्हें नए घरों की तलाश में भागने के लिए मजबूर किया गया। उन्हें आदिम और पिछड़ा मानते हुए शेष समाज उन्हें हिकारत की नज़र से देखता है। जयपाल ने आदिवासियों और शेष समाज के बीच मौजूद भावनात्मक और भौतिक फासले को खत्म करने के लिए बड़ा जज़बाती बयान दिया : "हमारा कहना है कि आपको हमारे साथ घुलना-मिलना चाहिए। हम आपके साथ मेलजोल चाहते हैं...।" जयपाल सिंह पृथक निर्वाचिका के हक में नहीं थे लेकिन उनको भी यह लगता था कि विधायिका में आदिवासियों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए सीटों के आरक्षण की व्यवस्था ज़रूरी है। उन्होंने कहा कि इस तरह औरों को आदिवासियों की आवाज़ सुनने और उनके पास आने के लिए मजबूर किया जा सकेगा।

3.3 "हमें हज़ारों साल तक दबाया गया है"

संविधान में दमित जातियों (Dispressed Castes) के अधिकारों को किस तरह परिभाषित किया जाए? राष्ट्रीय आंदोलनों के दौरान अम्बेडकर ने दमित जातियों के लिए पृथक निर्वाचिकाओं की माँग की थी जिसका

स्रोत 7

"हम अपनी सामाजिक अक्षमताओं को हटाना चाहते हैं"

मद्रास की दक्षायणी वेलायुधान की दलील थी :

> हमें सब तरह की सुरक्षाएँ नहीं चाहिए। इस देश के कमज़ोरों को नैतिक सुरक्षा का आवरण चाहिए ...। मैं यह नहीं मान सकती कि सात करोड़ हरिजनों को अल्पसंख्यक माना जा सकता है...। जो हम चाहते हैं वह यह है... हमारी सामाजिक अपंगताओं का फौरन खात्मा।
>
> संविधान सभा बहस, खंड 1

स्रोत 8

हमने विशेषाधिकार कभी नहीं माँगे

बम्बई की हंसा मेहता ने महिलाओं के लिए न्याय की माँग की, आरक्षित सीटों की नहीं और न ही पृथक चुनाव क्षेत्र की :

> हमने विशेषाधिकार कभी नहीं माँगे। हमने सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय और राजनीतिक न्याय की माँग की है। हमने उस बराबरी की माँग की है जिसके बिना पारस्परिक आदर और समझ नहीं बन सकते, जिसके बिना पुरुष और महिला के बीच वास्तविक सहयोग संभव नहीं है।

महात्मा गाँधी ने यह कहते हुए विरोध किया था कि ऐसा करने से ये समुदाय स्थायी रूप से शेष समाज से कट जाएँगे। संविधान सभा इस विवाद को कैसे हल कर सकती थी? दमित जातियों को किस तरह की सुरक्षा दी जा सकती थी?

दमित जातियों के कुछ सदस्यों का आग्रह था कि "अस्पृश्यों" (अछूतों) की समस्या को केवल संरक्षण और बचाव के ज़रिए हल नहीं किया जा सकता। उनकी अपंगता के पीछे जाति विभाजित समाज के सामाजिक कायदे-कानूनों और नैतिक मूल्य-मान्यताओं का हाथ है। समाज ने उनकी सेवाओं और श्रम का इस्तेमाल किया है परंतु उन्हें सामाजिक तौर पर खुद से दूर रखा है, अन्य जातियों के लोग उनके साथ घुलने-मिलने से कतराते हैं, उनके साथ खाना नहीं खाते और उन्हें मंदिरों में नहीं जाने दिया जाता। मद्रास के सदस्य जे. नागप्पा ने कहा था, "हम सदा कष्ट उठाते रहे हैं पर अब और कष्ट उठाने को तैयार नहीं हैं। हमें अपनी ज़िम्मेदारियों का अहसास हो गया है। हमें मालूम है कि अपनी बात कैसे मनवानी है।"

नागप्पा ने कहा कि संख्या की दृष्टि से हरिजन अल्पसंख्यक नहीं हैं। आबादी में उनका हिस्सा 20-25 प्रतिशत है। उनकी पीड़ा का कारण यह है कि उन्हें बाकायदा समाज व राजनीति के हाशिए पर रखा गया है। उसका कारण उनकी संख्यात्मक महत्त्वहीनता नहीं है। उनके पास न तो शिक्षा तक पहुँच थी और न ही शासन में हिस्सेदारी। सवर्ण बहुमत वाली संविधान सभा को संबोधित करते हुए मध्य प्रांत के श्री के.जे. खाण्डेलकर ने कहा था :

> हमें हज़ारों साल तक दबाया गया है। ... दबाया गया ... इस हद तक दबाया कि हमारे दिमाग, हमारी देह काम नहीं करती और अब हमारा हृदय भी भावशून्य हो चुका है। न ही हम आगे बढ़ने के लायक रह गए हैं। यही हमारी स्थिति है।

बँटवारे की हिंसा के बाद अम्बेडकर तक ने पृथक निर्वाचिका की माँग छोड़ दी थी। संविधान सभा ने अंततः यह सुझाव दिया कि अस्पृश्यता का उन्मूलन किया जाए, हिंदू मंदिरों को सभी जातियों के लिए खोल दिया जाए और निचली जातियों को विधायिकाओं और सरकारी नौकरियों में आरक्षण दिया जाए। बहुत सारे लोगों का मानना था कि इससे भी सारी समस्याएँ हल नहीं हो पाएँगी। सामाजिक भेदभाव को केवल संवैधानिक कानून पारित करके खत्म नहीं किया जा सकता। समाज की सोच में बदलाव लाना होगा। परंतु लोकतांत्रिक जनता ने इन प्रावधानों का स्वागत किया।

➲ चर्चा कीजिए...

आदिवासियों के लिए सुरक्षात्मक उपायों की माँग करते हुए जयपाल सिंह कौन-कौन से तर्क देते हैं?

4. राज्य की शक्तियाँ

संविधान सभा में इस बात पर काफी बहस हुई कि केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के क्या अधिकार होने चाहिए। जो लोग शक्तिशाली केंद्र के पक्ष में थे उनमें जवाहरलाल नेहरू भी थे। संविधान सभा के अध्यक्ष के नाम लिखे पत्र में उन्होंने कहा था, "अब जबकि विभाजन एक हकीकत बन चुका है... एक दुर्बल केंद्रीय शासन की व्यवस्था देश के लिए हानिकारक होगी क्योंकि ऐसा केंद्र शांति स्थापित करने में, आम सरोकारों के बीच समन्वय स्थापित करने में और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पूरे देश के लिए आवाज़ उठाने में सक्षम नहीं होगा।"

संविधान के मसविदे में विषयों की तीन सूचियाँ बनाई गयी थीं : केंद्रीय सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। पहली सूची के विषय केवल केंद्र सरकार के अधीन होने थे जबकि दूसरी सूची के विषय केवल राज्य सरकारों के अंतर्गत आते। तीसरी सूची के विषय केंद्र और राज्य, दोनों की साझा ज़िम्मेदारी थे। परंतु अन्य संघों की तुलना में बहुत ज़्यादा विषयों को केवल केंद्रीय नियंत्रण में रखा गया था। समवर्ती सूची में भी प्रांतों की इच्छाओं की उपेक्षा करते हुए बहुत ज़्यादा विषय रखे गए। खनिज पदार्थों तथा प्रमुख उद्योगों पर भी केंद्र सरकार को ही नियंत्रण दिया गया। अनुच्छेद 356 में गवर्नर की सिफारिश पर केंद्र सरकार को राज्य सरकार के सारे अधिकार अपने हाथ में लेने का अधिकार दे दिया।

संविधान में राजकोषीय संघवाद की भी एक जटिल व्यवस्था बनाई गयी। कुछ करों (जैसे- सीमा शुल्क और कंपनी कर) से होने वाली सारी आय केंद्र सरकार के पास रखी गई; कुछ अन्य मामलों में (जैसे - आय कर और आबकारी शुल्क) में होने वाली आय राज्य और केंद्र सरकारों के बीच बाँट दी गई तथा अन्य मामलों से होने वाली आय (जैसे राज्य स्तरीय शुल्क) पूरी तरह राज्यों को सौंप दी गई। राज्य सरकारों को अपने स्तर पर भी कुछ अधिभार और कर वसूलने का अधिकार दिया गया। उदाहरण के लिए, वे ज़मीन और संपत्ति कर, ब्रिकी कर तथा बोतलबंद शराब पर अलग से कर वसूल कर सकते थे।

4.1 "केंद्र बिखर जाएगा"

राज्यों के अधिकारों की सबसे शक्तिशाली हिमायत मद्रास के सदस्य के. सन्तनम ने पेश की। उन्होंने कहा कि न केवल राज्यों को बल्कि केंद्र को मजबूत बनाने के लिए भी शक्तियों का पुनर्वितरण ज़रूरी है। "यह दलील एक ज़िद-सी बन गई है कि तमाम शक्तियाँ केंद्र को सौंप देने से वह मजबूत हो जाएगा।" सन्तनम ने कहा कि यह गलतफहमी है। अगर केंद्र के पास ज़रूरत से ज़्यादा ज़िम्मेदारियाँ होंगी तो वह प्रभावी ढंग से काम नहीं कर पाएगा। उसके कुछ दायित्वों में कमी करने से और उन्हें राज्यों को सौंप देने से केंद्र ज़्यादा मजबूत हो सकता है।

स्रोत 9

बेहतर देशभक्त कौन है?

मैसूर के सर ए. रामास्वामी मुदालियार ने 21 अगस्त 1947 की बहस में कहा था :

> शक्तिशाली केंद्र की हिमायत के बहाने दिल को यह तसल्ली देने का कोई फायदा नहीं है कि हम ज़्यादा बड़े देशभक्त हैं और जो इन संसाधनों पर कड़ी नज़र रखना चाहते हैं उनके भीतर राष्ट्रीय भावना या देशभक्ति का अभाव है।

जहाँ तक राज्यों का सवाल है, सन्तनम का मानना था कि शक्तियों का मौजूदा वितरण उनको पंगु बना देगा। राजकोषीय प्रावधान प्रांतों को खोखला कर देगा क्योंकि भूराजस्व के अलावा ज़्यादातर कर केंद्र सरकार के अधिकार में दे दिए गए हैं। यदि पैसा ही नहीं होगा तो राज्यों में विकास परियोजनाएँ कैसे चलेंगी। "मैं ऐसा संविधान नहीं चाहता जिसमें इकाई को आकर केंद्र से यह कहना पड़े कि 'मैं अपने लोगों की शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकता। मैं उन्हें साफ-सफाई नहीं दे सकता, मुझे सड़कों में सुधार, उद्योगों की स्थापना के लिए खैरात दे दीजिए।' बेहतर होगा कि हम संघीय व्यवस्था को पूरी तरह खत्म कर दें और एकल व्यवस्था (यूनिटरी सिस्टम) स्थापित करें।" सन्तनम ने कहा कि अगर पर्याप्त जाँच-पड़ताल किए बिना शक्तियों का प्रस्तावित वितरण लागू किया गया तो हमारा भविष्य अंधकार में पड़ जाएगा। उन्होंने कहा कि कुछ ही सालों में सारे प्रांत "केंद्र के विरुद्ध" उठ खड़े होंगे।

प्रांतों के बहुत सारे दूसरे सदस्य भी इसी तरह की आशंकाओं से परेशान थे। उन्होंने इस बात के लिए जमकर ज़ोर लगाया कि समवर्ती सूची और केंद्रीय सूची में कम से कम विषयों को रखा जाए। उड़ीसा के एक सदस्य ने यहाँ तक चेतावनी दे डाली कि संविधान में शक्तियों के बेहिसाब केंद्रीकरण के कारण "केंद्र बिखर जाएगा।"

4.2 "आज हमें एक शक्तिशाली सरकार की आवश्यकता है"

प्रांतों के लिए अधिक शक्तियों की माँग से सभा में तीखी प्रतिक्रियाएँ आने लगीं। शक्तिशाली केंद्र की ज़रूरत को असंख्य अवसरों पर रेखांकित किया जा चुका था। अम्बेडकर ने घोषणा की थी कि वह "एक शक्तिशाली और एकीकृत केंद्र (सुनिए, सुनिए); 1935 के गवर्नमेंट एक्ट में हमने जो केंद्र बनाया था उससे भी ज़्यादा शक्तिशाली केंद्र" चाहते हैं। सड़कों पर हो रही जिस हिंसा के कारण देश टुकड़े-टुकड़े हो रहा था, उसका हवाला देते हुए बहुत सारे सदस्यों ने बार-बार यह कहा कि केंद्र की शक्तियों में भारी इज़ाफा होना चाहिए ताकि वह सांप्रदायिक हिंसा को रोक सके। प्रांतों के लिए अधिक शक्तियों की माँग का जवाब देते हुए गोपालस्वामी अय्यर ने ज़ोर देकर कहा कि "केंद्र ज़्यादा से ज़्यादा मजबूत होना चाहिए।" संयुक्त प्रांत के एक सदस्य बालकृष्ण शर्मा ने विस्तार से इस बात पर प्रकाश डाला कि एक शक्तिशाली केंद्र का होना ज़रूरी है ताकि वह देश के हित में योजना बना सके, उपलब्ध आर्थिक संसाधनों को जुटा सके, एक उचित शासन व्यवस्था स्थापित कर सके और देश को विदेशी आक्रमण से बचा सके।

विभाजन से पहले कांग्रेस ने प्रांतों को काफी स्वायत्तता देने पर अपनी सहमति व्यक्त की थी। कुछ हद तक यह मुस्लिम लीग को इस बात का

भरोसा दिलाने की कोशिश थी कि जिन प्रांतों में लीग की सरकार बनी है वहाँ दखलअंदाज़ी नहीं की जाएगी। बँटवारे को देखने के बाद ज़्यादातर राष्ट्रवादियों की राय बदल चुकी थी। उनका कहना था कि अब एक विकेंद्रीकृत संरचना के लिए पहले जैसे राजनैतिक दवाब नहीं बचे हैं।

औपनिवेशिक शासन द्वारा थोपी गई एकल व्यवस्था पहले से ही मौजूद थी। उस ज़माने में हुई घटनाओं से केंद्रीयतावाद को बढ़ावा मिला जिसे अब अफरा-तफरी पर अंकुश लगाने तथा देश के आर्थिक विकास की योजना बनाने के लिए और भी ज़रूरी माना जाने लगा। इस प्रकार संविधान में भारतीय संघ के घटक राज्यों के अधिकारों की तुलना में केंद्र के अधिकारों की ओर स्पष्ट झुकाव दिखाई देता है।

➲ चर्चा कीजिए...

एक शक्तिशाली केंद्र सरकार की हिमायत में क्या दलीलें दी जा रही थीं?

5. राष्ट्र की भाषा

जब एक देश के विभिन्न भागों में लोग अलग-अलग भाषाएँ बोलते हों, उनकी सांस्कृतिक विरासत अलग हो तो एक राष्ट्र का निर्माण कैसे किया जा सकता है? कैसे लोग एक-दूसरे की बात सुन सकते हैं या एक-दूसरे से जुड़ सकते हैं जबकि वे एक-दूसरे की भाषा भी नहीं समझते? संविधान सभा में भाषा के मुद्दे पर कई महीनों तक बहस हुई और कई बार काफी तनातनी पैदा हो गई।

तीस के दशक तक कांग्रेस ने यह मान लिया था कि हिंदुस्तानी को राष्ट्रीय भाषा का दर्ज़ा दिया जाए। महात्मा गाँधी का मानना था कि हरेक को एक ऐसी भाषा बोलनी चाहिए जिसे लोग आसानी से समझ सकें। हिंदी और उर्दू के मेल से बनी हिंदुस्तानी भारतीय जनता के बहुत बड़े हिस्से की भाषा थी और यह विविध संस्कृतियों के आदान-प्रदान से समृद्ध हुई एक साझी भाषा थी। जैसे-जैसे समय बीता, बहुत तरह के स्रोतों से नए-नए शब्द और अर्थ इसमें समाते गए और उसे विभिन्न क्षेत्रों के बहुत सारे लोग समझने लगे। महात्मा गाँधी को लगता था कि यह बहुसांस्कृतिक भाषा विविध समुदायों के बीच संचार की आदर्श भाषा हो सकती है : वह हिंदुओं और मुसलमानों को, उत्तर और दक्षिण के लोगों को एकजुट कर सकती है।

लेकिन उन्नीसवीं सदी के आखिर से एक भाषा के रूप में हिंदुस्तानी धीरे-धीरे बदल रही थी। जैसे-जैसे सांप्रदायिक टकराव गहरे होते जा रहे थे, हिंदी और उर्दू एक-दूसरे से दूर जा रही थीं। एक तरफ तो फ़ारसी और अरबी मूल के सारे शब्दों को हटाकर हिंदी को संस्कृतनिष्ठ बनाने की कोशिश की जा रही थी। दूसरी तरफ उर्दू लगातार फ़ारसी के नज़दीक होती जा रही थी। नतीजा यह हुआ कि भाषा भी धार्मिक पहचान की राजनीति का हिस्सा बन गई। लेकिन हिंदुस्तानी के साझा चरित्र में महात्मा गाँधी की आस्था कम नहीं हुई।

स्रोत 10

राष्ट्रीय भाषा की क्या विशेषताएँ होनी चाहिए?

अपनी मृत्यु से कुछ माह पहले महात्मा गाँधी ने भाषा के प्रश्न पर अपने विचार दोहराते हुए कहा था :

> यह हिंदुस्तानी न तो संस्कृतनिष्ठ हिंदी होनी चाहिए और न ही फ़ारसीनिष्ठ उर्दू। यह दोनों का सुंदर मिश्रण होना चाहिए। उसे विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं से शब्द खुलकर उधार लेने चाहिए। विदेशी भाषाओं के ऐसे शब्द लेने में कोई हर्ज नहीं है जो हमारी राष्ट्रीय भाषा में अच्छी तरह और आसानी से घुलमिल सकते हैं। इस प्रकार हमारी राष्ट्रीय भाषा एक समृद्ध और शक्तिशाली भाषा होनी चाहिए जो मानवीय विचारों और भावनाओं के पूरे समुच्चय को अभिव्यक्ति दे सके। खुद को हिंदी या उर्दू से बाँध लेना देशभक्ति की भावना तथा समझदारी के विरुद्ध एक अपराध होगा।

हरिजन सेवक, 12 अक्तूबर 1947

5.1 हिंदी की हिमायत

संविधान सभा के एक शुरुआती सत्र में संयुक्त प्रांत के कांग्रेसी सदस्य आर.वी. धुलेकर ने इस बात के लिए पुरज़ोर शब्दों में आवाज़ उठाई थी कि हिंदी को संविधान निर्माण की भाषा के रूप में इस्तेमाल किया जाए। जब किसी ने कहा कि सभा के सभी सदस्य हिंदी नहीं समझते तो धुलेकर ने पलटकर कहा कि, "इस सदन में जो लोग भारत का संविधान रचने बैठे हैं और हिंदुस्तानी नहीं जानते वे इस सभा की सदस्यता के पात्र नहीं हैं। उन्हें चले जाना चाहिए।" जब इन टिप्पणियों के कारण सभा में हंगामा खड़ा हुआ तो धुलेकर हिंदी में अपना भाषण देते रहे। जवाहरलाल नेहरू के हस्तक्षेप के चलते आखिरकार सदन में शांति बहाल हुई लेकिन भाषा का सवाल अगले तीन साल तक बार-बार कार्रवाइयों में बाधा डालता रहा और सदस्यों को उत्तेजित करता रहा।

तकरीबन 3 साल बाद 12 सितंबर 1947 को राष्ट्र की भाषा के सवाल पर धुलेकर के भाषण ने एक बार फिर तूफान खड़ा कर दिया। तब तक संविधान सभा की भाषा समिति अपनी रिपोर्ट पेश कर चुकी थी। समिति ने राष्ट्रीय भाषा के सवाल पर हिंदी के समर्थकों और विरोधियों के बीच पैदा हो गए गतिरोध को तोड़ने के लिए एक फार्मूला विकसित कर लिया था। समिति ने सुझाव दिया कि देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी भारत की राजकीय भाषा होगी। परंतु इस फार्मूले को समिति ने घोषित नहीं किया था। समिति का मानना था कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए हमें धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए। पहले 15 साल तक सरकारी कामों में अंग्रेज़ी का इस्तेमाल जारी रहेगा। प्रत्येक प्रांत को अपने कामों के लिए कोई एक क्षेत्रीय भाषा चुनने का अधिकार होगा। संविधान सभा की भाषा समिति ने हिंदी को राष्ट्रभाषा की बजाय राजभाषा कहकर विभिन्न पक्षों की भावनाओं को शांत करने और सर्वस्वीकृत समाधान पेश करने का प्रयास किया था।

धुलेकर बीच-बचाव की ऐसी मुद्रा से राज़ी होने वाले नहीं थे। वे चाहते थे कि हिंदी को राजभाषा नहीं बल्कि राष्ट्रभाषा घोषित किया जाए। उन्होंने ऐसे लोगों की आलोचना की जिन्हें लगता था कि हिंदी को उन पर थोपा जा रहा है। धुलेकर ने ऐसे लोगों का मज़ाक उड़ाया जो महात्मा गाँधी का नाम लेकर हिंदी की बजाय हिंदुस्तानी को राष्ट्रीय भाषा बनाना चाहते हैं :

> महोदय, इस बात पर मेरे से ज़्यादा हर्ष किसी और को नहीं होगा कि हिंदी को देश की राजभाषा घोषित कर दिया गया है...। कुछ लोग कहते हैं कि यह हिंदी को एक रियायत दी गई है। मैं कहता हूँ, "बिलकुल नहीं" यह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया की परिणति है।

बहुत सारे सदस्यों को धुलेकर के बात करने के अंदाज़ से काफी परेशानी हो रही थी। उनके भाषण के दौरान संविधान सभा के अध्यक्ष ने कई बार उन्हें टोककर कहा कि, "इस तरह बात करके मेरे विचार में आप अपनी बात को आगे नहीं बढ़ा पाएँगे।" लेकिन धुलेकर ने अपने ही अंदाज़ में बात जारी रखी।

5.2 वर्चस्व का भय

धुलेकर के बोलने के बाद मद्रास की सदस्य श्रीमति जी. दुर्गाबाई ने इस चर्चा पर अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहा :

> अध्यक्ष महोदय, अभी हाल तक भारत की राष्ट्रीय भाषा का जो सवाल लगभग सहमति तक पहुँच गया था, अचानक बेहद विवादास्पद मुद्दा बन गया है। चाहे यह सही हुआ हो या गलत, गैर-हिंदी भाषी इलाकों के लोगों को यह अहसास कराया जा रहा है कि यह झगड़ा, या हिंदी भाषी इलाकों का यह रवैया असल में इस राष्ट्र की साझा संस्कृति पर भारत की अन्य शक्तिशाली भाषाओं के स्वाभाविक प्रभाव को रोकने की लड़ाई है।

श्रीमति दुर्गाबाई ने सदन को बताया कि दक्षिण में हिंदी का विरोध बहुत ज़्यादा है : "विरोधियों का यह मानना संभवत: सही है कि हिंदी के लिए हो रहा यह प्रचार प्रांतीय भाषाओं की जड़ें खोदने का प्रयास है...।" इसके बावजूद बहुत सारे अन्य सदस्यों के साथ-साथ उन्होंने भी महात्मा गाँधी के आह्वान का पालन किया और दक्षिण में हिंदी का प्रचार जारी रखा, विरोध का सामना किया, हिंदी के स्कूल खोले और कक्षाएँ चलायीं। "अब इस सबका क्या नतीजा निकलता है?" दुर्गाबाई ने पूछा, "सदी के शुरुआती सालों में हमने जिस उत्साह से हिंदी को अपनाया था, मैं उसके विरुद्ध यह आक्रामकता देखकर सकते में हूँ।" दुर्गाबाई हिंदुस्तानी को जनता की भाषा स्वीकार कर चुकी थीं मगर अब उस भाषा को बदला जा रहा था, उर्दू तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों को उससे निकाला जा रहा था। उनका मानना था कि हिंदुस्तानी के समावेशी और साझा स्वरूप को कमज़ोर करने वाले किसी भी कदम से विभिन्न भाषायी समूहों के बीच बेचैनी और भय पैदा होना निश्चित है।

जैसे-जैसे चर्चा तीखी होती गई बहुत सारे सदस्यों ने परस्पर समायोजन व सम्मान की भावना का आह्वान किया। बम्बई के एक सदस्य श्री शंकरराव देव ने कहा कि कांग्रेसी तथा महात्मा गाँधी का अनुयायी होने के नाते वे हिंदुस्तानी को राष्ट्र की भाषा के रूप में स्वीकार कर चुके हैं, परंतु उन्होंने चेतावनी देते हुए कहा : "अगर आप (हिंदी के लिए) दिल से समर्थन चाहते हैं तो आपको ऐसा कोई

कदम नहीं उठाना चाहिए जिससे मेरे भीतर संदेह पैदा हो और मेरी आंशकाओं को बल मिले।" मद्रास के श्री टी.ए. रामलिंगम चेट्टियार ने इस बात पर ज़ोर दिया कि जो कुछ भी किया जाए, एहतियात के साथ किए जाए। यदि आक्रामक होकर काम किया गया तो हिंदी का कोई भला नहीं हो पाएगा। चाहे लोगों के भय निराधार हों, उनको शांत किया जाना चाहिए वरना "लोगों में गहरी कड़वाहट रह जाएगी।" उन्होंने कहा, "जब हम साथ रहना चाहते हैं और एक एकीकृत राष्ट्र की स्थापना करना चाहते हैं तो परस्पर समायोजन होना ही चाहिए और लोगों पर चीज़ें थोपने का सवाल नहीं उठना चाहिए...।"

निष्कर्षत:, भारतीय संविधान गहन विवादों और परिचर्चाओं से गुज़रते हुए बना। उसके कई प्रावधान लेन-देन की प्रक्रिया के ज़रिए बनाए गए थे। उन पर सहमति तब बन पाई जब सदस्यों ने दो विरोधी विचारों के बीच की ज़मीन तैयार कर ली।

परंतु संविधान के एक केंद्रीय अभिलक्षण पर काफी हद तक सहमति थी। यह सहमति प्रत्येक वयस्क भारतीय को मताधिकार देने पर थी। इसके पीछे एक ख़ास किस्म का भरोसा था जिसके पूर्वउदाहरण अन्य देश के इतिहास में नहीं थे। दूसरे लोकतंत्रों में पूर्ण वयस्क मताधिकार धीरे-धीरे, कई चरणों से गुज़रते हुए, लोगों को मिला। संयुक्त राज्य अमेरिका और यूनाइटेड किंगडम जैसे देशों में शुरू-शुरू में मताधिकार केवल संपत्ति रखने वाले पुरुषों को ही दिया गया; फिर पढ़े-लिखे पुरुषों को इस विशेष वर्ग में शामिल किया गया। लंबे व कटु संघर्षों के बाद श्रमिक और किसान वर्ग के पुरुषों को मताधिकार मिल पाया। ऐसा अधिकार पाने के लिए महिलाओं को और भी लंबा संघर्ष करना पड़ा।

हमारे संविधान का दूसरा महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण था धर्मनिरपेक्षता पर बल। संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता के गुण तो नहीं गाए गए थे परंतु संविधान व समाज को चलाने के लिए भारतीय संदर्भों में उसके मुख्य अभिलक्षणों का ज़िक्र आदर्श रूप में किया गया था। ऐसा मूल अधिकारों की शृंखला को रचने के ज़रिए किया गया, विशेषकर 'धार्मिक स्वतंत्रता' (अनुच्छेद 25-28), "सांस्कृतिक व शैक्षिक अधिकार" (अनुच्छेद 29, 30) एवं 'समानता के अधिकार' (अनुच्छेद 14, 16, 17) राज्य ने सभी धर्मों के प्रति समान व्यवहार की गारंटी दी और उन्हें हितैषी संस्थाएँ बनाए रखने का अधिकार भी दिया। राज्य ने अपने आपको विभिन्न धार्मिक समुदायों से दूर रखने की कोशिश की और अपने स्कूलों व कॉलेजों में अनिवार्य धार्मिक शिक्षा पर रोक लगा दी। सरकार ने रोज़गार में धार्मिक भेद-भाव को अवैध ठहराया। लेकिन, दूसरी ओर धार्मिक समुदायों से जुड़े सामाजिक सुधार

कार्यक्रमों के लिए कुछ कानूनी गुंजाइश रखी गई। इसी वजह से अस्पृश्यता पर कानूनी रोक लग पाई और इसी कारण से व्यक्तिगत एवं पारिवारिक कानूनों में परिवर्तन हो पाए। भारतीय राजनीतिक धर्मनिरपेक्षता में राज्य व धर्म के बीच पूर्ण विच्छेद नहीं रहा। हमने दोनों के बीच एक विवेकपूर्ण फासला बनाने की कोशिश की है।

संविधान सभा के विवादों से हमें यह समझ आती है कि संविधान के निर्माण में कैसी-कैसी विरोधी आवाज़ें उठीं और कैसी-कैसी माँगें की गईं। ये चर्चाएँ हमें उन आदर्शों और सिद्धांतों के बारे में बताती हैं जिनका ज़िक्र संविधान के निर्माताओं ने किया, परंतु इन विवादों को समझने में हमें याद रखना चाहिए कि आदर्शों को विशेष संदर्भों के मुताबिक बदला गया। इसके अलावा ऐसा भी हुआ कि सभा के कुछ सदस्यों ने तीन वर्षों में हुई चर्चाओं के साथ-साथ अपने विचार ही बदल डाले। कुछ सदस्यों ने दूसरों के तर्कों के प्रकाश में अपनी समझ बदली और खुले दिलों-दिमाग से काम किया। कुछ अन्य सदस्यों ने आस-पास की घटनाओं को देखते हुए अपने विचार बदल डाले।

चित्र 15.9
संविधान सौंपते हुए बी.आर. अम्बेडकर और राजेंद्र प्रसाद एक-दूसरे को बधाई देते हुए।

काल-रेखा

1945	
26 जुलाई	ब्रिटेन में लेबर पार्टी की सरकार सत्ता में आती है
दिसंबर-जनवरी	भारत में आम चुनाव
1946	
16 मई	कैबिनेट मिशन अपनी संवैधानिक योजना की घोषणा करती है
16 जून	मुस्लिम लीग कैबिनेट मिशन की संवैधानिक योजना पर स्वीकृति देती है
16 जून	कैबिनेट मिशन केंद्र में अंतरिम सरकार के गठन का प्रस्ताव पेश करता है
2 सितंबर	कांग्रेस अंतरिम सरकार का गठन करती है जिसमें नेहरू को उपराष्ट्रपति बनाया जाता है
13 अक्तूबर	मुस्लिम लीग अंतरिम सरकार में शामिल होने का फैसला लेती है
3-6 दिसंबर	ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली कुछ भारतीय नेताओं से मिलते हैं। इन वार्ताओं का कोई नतीजा नहीं निकलता।
9 दिसंबर	संविधान सभा के अधिवेशन शुरू हो जाते हैं
1947	
29 जनवरी	मुस्लिम लीग संविधान सभा को भंग करने की माँग करती है
16 जुलाई	अंतरिम सरकार की आखिरी बैठक
11 अगस्त	जिन्ना को पाकिस्तान की संविधान सभा का अध्यक्ष निर्वाचित किया जाता है
14 अगस्त	पाकिस्तान की स्वतंत्रता : कराची में जश्न
14-15 अगस्त मध्यरात्रि	भारत में स्वतंत्रता का जश्न
1949	
दिसबंर	संविधान पर हस्ताक्षर

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. उद्देश्य प्रस्ताव में किन आदर्शों पर ज़ोर दिया गया था?
2. विभिन्न समूह 'अल्पसंख्यक' शब्द को किस तरह परिभाषित कर रहे थे?
3. प्रांतों के लिए ज़्यादा शक्तियों के पक्ष में क्या तर्क दिए गए?
4. महात्मा गाँधी को ऐसा क्यों लगता था कि हिंदुस्तानी राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250 से 300 शब्दों में)

5. वे कौन सी ऐतिहासिक ताकतें थीं जिन्होंने संविधान का स्वरूप तय किया?
6. दमित समूहों की सुरक्षा के पक्ष में किए गए विभिन्न दावों पर चर्चा कीजिए।
7. संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने उस समय की राजनीतिक परिस्थिति और एक मजबूत केंद्र सरकार की ज़रूरत के बीच क्या संबंध देखा?
8. संविधान सभा ने भाषा के विवाद को हल करने के लिए क्या रास्ता निकाला?

मानचित्र कार्य

9. वर्तमान भारत के राजनीतिक मानचित्र पर यह दिखाइए कि प्रत्येक राज्य में कौन-कौन सी भाषाएँ बोली जाती हैं। इन राज्यों की राजभाषा को चिह्नित कीजिए। इस मानचित्र की तुलना 1950 के दशक के प्रारंभ के मानचित्र से कीजिए। दोनों मानचित्रों में आप क्या अंतर पाते हैं? क्या इन अंतरों से आपको भाषा और राज्यों के आयोजन के संबंधों के बारे में कुछ पता चलता है।

परियोजना कार्य (कोई एक)

10. हाल के वर्षों के किसी एक महत्त्वपूर्ण संवैधानिक परिवर्तन को चुनिए। पता लगाइए कि यह परिवर्तन क्यों हुआ, परिवर्तन के पीछे कौन-कौन से तर्क दिए गए और परिवर्तन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या थी? अगर संभव हो, तो संविधान सभा की चर्चाओं को देखने की कोशिश कीजिए (http://parliamentofindia.nic.in/ls/debaes/debates.htm) । यह पता लगाइए कि मुद्दे पर उस वक्त कैसे चर्चा की गई। अपनी खोज पर संक्षिप्त रिपोर्ट लिखिए।
11. भारतीय संविधान की तुलना संयुक्त राज्य अमेरिका अथवा फ्रांस अथवा दक्षिणी अफ्रीका के संविधान से कीजिए। ऐसा करते हुए निम्नलिखित में से किन्हीं दो विषयों पर गौर कीजिए : धर्मनिरपेक्षता, अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकार और केंद्र एवं राज्यों के बीच संबंध। यह पता लगाइए कि इन संविधानों में अंतर और समानताएँ किस तरह से उनके क्षेत्रों के इतिहासों से जुड़ी हुई हैं।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

ग्रेनविले ऑस्टिन, 1972
दि इंडियन कॉंस्टीट्यूशन : दि कॉर्नरस्टॉन ऑफ ए नेशन
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

राजीव भार्गव
"डेमोक्रेटिक विज़न ऑफ ए न्यू रिपब्लिक", *ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया : सोशल एंड पॉलिटिकल डायनेमिक्स ऑफ डेमोक्रेसी*, एफ. आर. फ्रेंकिल एवं अन्य द्वारा संपादित,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

सुमित सरकार, 1983
"इंडियन डेमोक्रेसी : दि हिस्टॉरिकल इनहेरिटेंस", *दि सक्सेस ऑफ इंडियाज़ डेमोक्रेसी*, संपादक अतुल कोहली, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

सुमित सरकार, 1983
मॉडर्न इंडिया : 1885-1947
मेकमिलन, नयी दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं
parliamentofindia.nic/ls/debates/debates.htm
(यहाँ आप संविधान सभा की बहसों का डिजिटल संस्करण देख सकते हैं।)

चित्रों के लिए श्रेय

संस्थाओं से

Alkazi Foundation for the Arts, New Delhi
(Figs. 11.6; 11.8; 12.12; 12.13)
Collection Jyotindra and Juta Jain, CIVIC Archives, New Delhi (Fig. 13.15)
Photo Division, Government of India, New Delhi
(Figs. 14.3; 14.10; 15.3; 15.4; 15.5; 15.6; 15.9)
The Osian's Archive and Library Collection, Mumbai
(Figs. 11.9; 11.18; 13.17)
Victoria Memorial Museum and Library, Kolkata
(Fig. 10.6, 10.7)

पत्रिकाओं से

Builder (Figs. 12.26)
Punch (Figs. 11.13; 11.14; 11.17)
The Illustrated London News (Figs. 10.1; 10.10; 10.11; 10.12; 10.13; 10.14; 10.16; 10.17; 10.18; 10.19; 11.15; 11.16)

पुस्तकों से

Bayly, C.A., *The Raj: India and the British 1600-1947*
(Figs. 10.4; 11.10; 11.11; 12.27)
Dalrymple, William, *The Last Mughal* (Fig. 11.1)
Daniell, Thomas and William, *Views of Calcutta*
(Figs. 12.7; 12.8; 12.9; 12.19)
Evenson, Norma, *The Indian Metropolis: A View Toward the West* (Figs. 12.14; 12.16; 12.20; 12.22; 12.23; 12.25; 12.29; 12.30)
Metcalf, T.R., *An Imperial Vision: Indian Architecture and British Raj* (Fig. 12.28)
Publications Division, *Mahatma Gandhi* (many of the Figs. in Ch.14)
Ruhe, Peter, *Gandhi* (Figs. 13.7; 13.11; 13.12)
Singh, Khuswant, *Train to Pakistan* (Figs. 15.1; 15.4; 15.12; 15.13; 15.15)